



# श्री जननवादनप्रथम

विद्यमानपंक्तिप्रवरमहामुनिआत्मारामजी

आनंदविजयजीविरचित,

समस्तजनडराग्रहतिमिरपाटनप्रज्ञाकरतुल्य

तथा

सुहितोपदेशामृतहृदमय

तिनकू

श्री मकशुदाबादनिवासी बाबुसाहेब राय

धनपतिसिंहजी प्रतापसिंहजी बाहादूरके

आश्रयसें

जीमसिंह माणकाजिध श्रावकनें

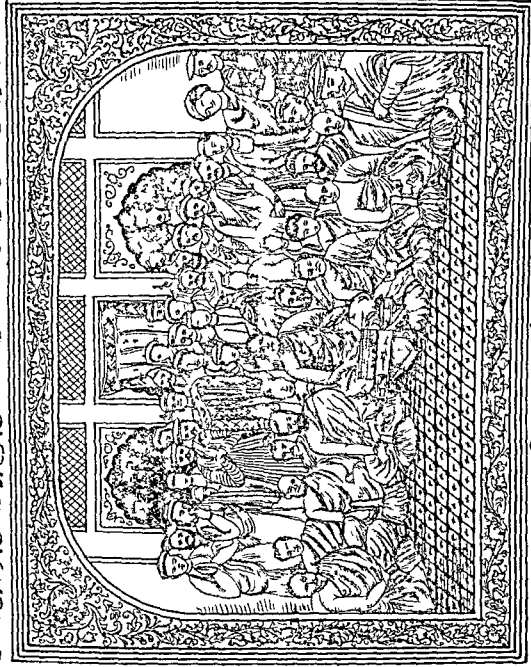
श्री मुंबापुरीमे

निर्णयसागर मुद्रालयके विषे मुद्रित करायके प्रसिद्ध किया है.

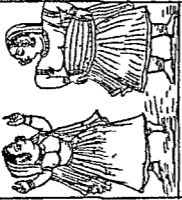
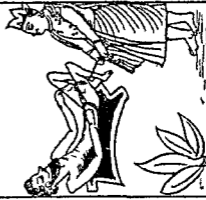
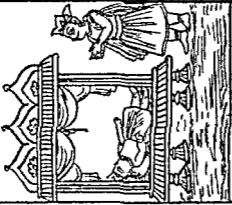
संवत् १९४० के ज्येष्ठ शुद्ध त्रयोदशी भृगुवासर तारीख ६ सने १८८४ ई०

यह पुस्तकके छपनेका हक सने १८६० के कायदे मुजब रजिष्टर करके  
बनानेवाले साहेबके हुकमसें छपाने वालेने अपने स्वाधीन रख्खा है.





मुनि आलारामजी आनदविजयजी



## प्रस्तावना.

— ८६९ —

अनेक जैन ग्रंथोंके वेत्ता अरु अन्यमतकेनी बहोत ग्रंथोंके अवलोकन करने वाले महामुनि आत्मरामजी आनंदविजयजी हैं, इनके तत्त्वज्ञानकी शक्ति अरु परोपकारबुद्धि तथा यह पंचम कालके वर्तमान समयमें लिखंतोक्त उत्सर्गपवाद पूर्वक यथार्थ जैनमार्गी सुसाधुयोंकी शुद्ध क्रियामें प्रवर्त हो कर पृथ्वीमें विहार करने संबंधी प्रख्याती यह भारतवर्षके बहुत देशोंके रहनेवाले श्रावक मंजुलमें प्रसिद्ध है अरु इनकी निश्रामें रहने वाले साधुयोंका समुदायनी पूर्व महामुनियोंके सदृश बहोत गुणवान् निर्विकारी मुझवाला है, तातें आत्मस्वरूपको जान कर परम पदकों साधने वाले, ह्यां व्यादिक दशविध यतिधर्मके आराधक यह सत्पुरुष विषे हमारे इहां कुठ विशेष प्रशंसा लिखनेकी आवश्यकता नहीं है. इनके तीव्रबुद्धि अरु धर्मान्निरुचि आदिक उत्तम गुण जो है, सो इनका बनाया यह ग्रंथ बांचनेसैं सदबुद्धिमान् आपही जान जायंगे. ऐसे सर्वदर्शनग्रंथज्ञाता अरु मुनिधर्मपालनशील महान्पुरुष, यह सांप्रत कालमें थोडेही दिखनेमें आते हैं.

अब पूर्वाचार्योंके संस्कृत अरु मागधी जापामें रचे दूये ग्रंथोंका आशय न जाननेवाले और जैनतत्त्वस्वरूपके अज्ञात जनोके उपर उपकार बुद्धि करके हालमें पूर्वोक्त महात्माने यह " जैनतत्त्वादरी " नामा ग्रंथकी रचना न्यारे न्यारे बारह परिच्छेदरूपसैं करी है सो इस प्रकारसैं कि—

प्रथम परिच्छेदमें शुद्ध देवतत्त्वका स्वरूप कथन कीया है, दूसरे परिच्छेदमें कुदेवका स्वरूप वर्णन कीया है, तीसरे परिच्छेदमें शुद्ध गुरुतत्त्वका स्वरूप कहा है, चौथे परिच्छेदमें कुगुरुका स्वरूप कथन करा है, पाचवे परिच्छेदमें शुद्ध धर्मतत्त्वका स्वरूप नव तत्त्वरूपसैं कथन कीया है, षष्ठे परिच्छेदमें सम्यक्ज्ञानका स्वरूप कथन करने वास्ते चौदह गुणस्थानकोंके स्वरूप कहे है, सातवे परिच्छेदमें सम्यक्दर्शनका स्वरूप कथन करा है, आठवे परिच्छेदमें सम्यक्चारित्रके स्वरूप कथनमे देशविरतिचारित्र संबंधी श्रावकोंके बारह ब्रतोंके स्वरूपका विस्तारपूर्वक वर्णन कीया है, नववे परिच्छेदमें श्रावकोंका दिनकृत्य, श्राद्धविधि ग्रंथानुसारसैं लिखा है, दशवे परिच्छेदमें श्रावकोंका रात्रि

कृत्य, पाक्षिककृत्य, चौमासीकृत्य, संवत्सरीकृत्य अरु जन्मकृत्य, यह पांच कृत्यका स्वरूप वर्णन करा है, इग्यारहवें परिच्छेदमें श्रीआदीश्वर जगवान्सें ले कर श्रीमहावीर जगवान् पर्यंतके कितनेक इतिहासोंका वर्णन करके उस्सें जैनमत आनादि है ऐसा सिद्ध करा है, अरु दूसरा नवीन बौद्धादिक पाखंडी धर्मके मतों अमुक अमुक बखतसें निकले हैं यहनी दर्साय दीया है, बारहवें परिच्छेदमें श्रीवर्द्धमान स्वामीके निर्वाण पीठें के किंचित् इतिहास लिखे है. इस्सेंकी कितनेक नवीन मतों निकलनेका बखत मालुम पडजाता है.

इस प्रकारसें उपर लिखे दूये बारह परिच्छेदों करिके यह ग्रंथ समाप्त किया है यह ऊपर कहे दूये प्रत्येक परिच्छेदमें मात्र उसमें लिखे नये विषयोंकाही वर्णन किया है, इतनाही नहीं, परंतु उसके साथ मीमांसकादि अन्यमतवालोंका स्वरूप लिखके पीठें पूर्वाचार्य रचित सम्मत्तिकादि अनेक जैनशास्त्रोंके अनुसार उन मतोंका खंडनकी सविस्तर किया है, तातें यह ग्रंथके वाचनेवालोंके अन्य सांख्यादि दर्शनोंका कबुक स्वरूपनी मालुम हो जावेगा, फेर उसका यथास्थित खंडनकी जाननेमें आवेगा.

जैसें मनःकल्पनासें निकले दूये नवीन दर्शनोंका उद्घापन करनेमें यह ग्रंथ उपयोगी है तैसेंही कितनेक जैनमतमें प्रवर्त्तनेवाले जैनशास्त्रोंकी अनेकांत शैलीकों न पीठाननेवाले जैसें विचित्र विकार युक्त अल्पज्ञानोंकी अज्ञानता दूर करनेकोनी यह ग्रंथ बहोत उपयोगी है, क्यों कि, इस वर्त्तमान कालमें कितने एक जैनमती अपनीअपनी मरजी माफक अध्यात्मज्ञानी बनके व्यवहारपद्धका त्याग करके आवश्यकदि कि यायोंको उद्घापके एकही निश्चयमार्गको स्वीकार करनेकाही उपदेश लोकोको करते फिरते हैं, जैसें अल्पवेत्ता एकांतपद्धके ग्राहक, स्वमतीयोंको नी बहोत जैनशास्त्रोंके अनुसार तिनकी आशंकायोंके निवारण पूर्वक क्रियादि शुभव्यवहारमें प्रवृत्त करनेका बहोत करके ठठे परिच्छेदमें चौदह गुण स्थानोंके स्वरूपमें जहां ठठे सातमें गुणस्थानकका स्वरूप कथन किया है, उसी जगापर अरु दूसरें परिच्छेदोंमेंनी बहोत स्थलोंमें उपवेश किया है.

तथा अथके समयमें कबुक संस्कृतादि शास्त्रान्यास करके अरु कोइ ग्रंथ देखे न देखे जैसें कितनेक लोक अपनी मनःकल्पित बातों कहते हैं कि जैनमत बौद्धमतमेंसें निकला ह, कितनेक कहते हैं कि गौतमऋषिने जैनमत

चलाया है, ऐसी विचित्र प्रकारकी कल्पना अज्ञानी लोक करते हैं, तथा वेदोंको सच्चा करणे वास्ते उनके पुराना अर्थोंको उलटायके नवीन अर्थ बनाने वाले दयानंदजीने तो जैनमतके लक्षावधि ग्रंथो आज मौजूद है तिनमेंसू कोइएक ग्रंथके एक पत्तेजी देखे न होवेंगें तोजी विचारे नइक शिष्योंको अपना पांफित्य दर्शावनेके वास्ते आपके बनवाये दूये पुस्तकोंमें जैन अरु चार्वाक ए दोनुं मत एकही करके लिख दीये है, जैसे जैसे अपनी कपोल कल्पित बातों करके जोले लोकोंको फसाने वाले कपटी लोकोंका कपट रूप वद्वीका छेदन करणेकोजी यह ग्रंथ कुठार समान है

तथा वर्त्तमान समयमें कितनेक अल्पतर, सांसारिक विद्यामात्रकाही कबुक अन्यास करिके, जैसे जान रहे हैं कि, हमही सर्व शास्त्रोंके रहस्यार्थ जान गये है, दूसरे धर्माचार्यादिकों तो कुठनी समजते नहि वो अपनी डुबुदिके प्राबल्यसे जैसे जान रहे हैं कि, पुण्यपापादिक, स्वर्ग नरक परजवादिक अरु धर्मकर्मादिक कुठनी नही है, सब ढांग है, खाना, पीनां और मौज करनां यही सच्चा है, इत्यादि चार्वाक दर्शनके न्याई नास्तिक होय बैठने वालोंकोजी अनेक शास्त्रोंका हेतु दृष्टांत दर्सायके कोइ कोइ परिच्छेदके कोइ कोइ स्थलोंमें अच्ची युक्तियों पूर्वक उनका डुराग्रह दूर करणेका उपदेश करणेमें आया है.

तैसेही मात्र हम जैनमतवाले है, ऐसा नाम धराय के निकेवल अपने अज्ञानसे परानवित दूये हठग्राहिलकी प्रकर्षतासे श्रीवीतरागजापित धर्मको उलटाय के अपनी स्वेच्छासे श्री जिनप्रतिमाको उद्याप के जैनमतकी देलना करनेवाले जैसे हुंढकादि लोकों जो यह पंचमकालके महात्म्यसे बहोत डुप परिणतिकों धारण करके, नइकजनोंको अधर्मका उपदेश करते फिरते रहते है, उन डुर्गतिमें पडनेवाले जनोके विषकों दूर करणे वास्तेजी यह ग्रंथ सुधा तुल्य औपधसदृश दीख पडता है, कपोकि, इन लोकोंकोजी कुमार्गसे हटायके सन्मार्गमें ल्यावने वास्ते यह ग्रंथके प्रत्येक परिच्छेदोंमें बहोत जगेपर अनेक शास्त्रोंकी साक्षीयों दर्सायके उपदेश कीया है, इस्से इन लोकोंपरजी यह ग्रंथ बनानेवालेने बडा उपकार कीया मालुम होता है.

औ इस ग्रंथमें कितनेक इतिहासो जैसे लिखे है कि—जिन इतिहासकां वांचनेसे शास्त्रोंमें कही दुइ वार्त्तायोंकू आजके समयमे अयोग्य माननेवालोंकी शंकायों तत्काल दूर होयके उलटी तिस शास्त्रोंके उपर यथार्थ आस्ता



हो जावे, इत्यादिक अनेक धार्मिक चमत्कृतियुक्त इस ग्रंथमें सूचन कराई है, इसवास्ते यह ग्रंथ, उत्कृष्ट सुबोधकारक अरु कुमार्गीकी प्रवृत्तिसें हटाने वाला बहोत मनोरंजक है इन ग्रंथस्थ सब बातके यथार्थ स्वरूप इस जगापर लिखनेसें प्रस्तावनाकी वृद्धि होती है इस वास्ते बांचने वाले सज्जनोंकों इस ग्रंथका सूक्ष्म बुद्धिसें विचारपूर्वक संपूर्ण अवलोकन करणसें यथार्थ स्वरूप समजनेमे आ जावेगा.

और यह ग्रंथकी हिडस्थानी जापामें रचना करी है तिस्सें गुर्जर, मारवाड, पंजाव, पूर्व अरु दक्षिण, आदिक सर्व देशोंके रहनेवाले. कोइनी दे सकी जाया जाननेवालेकोंजी बांचनेमें यह ग्रंथ अत्यंत सुगम पडेगा.

निष्पक्षपात बुद्धिवाले तथा धर्मतत्त्वकी जिज्ञासा करनेके अजिजानी, सधर्म अंगीकार करनेके अधिकारी, विवेकी नव्यजीवोंकूं इस ग्रंथके बांचने तथा पढने सुननेसें उत्तम प्रकारके सदबोधका लाभ प्राप्त होवेगा, ऐसा जानिकें श्रीमच्छुदावाद शहरके रहनेवाले बाबूसाहेब राय धनपति सिंहजी प्रतापसिंहजी बाहादूर जो अबके समयमें कुमारपालादिकोंकी तरें जैनशास्त्रोंके उद्धार करनेमें आगेवान गिने जाते है, तिन साहेबका बडा आश्रय लेके मैंने यह ग्रंथ ठपा कर प्रसिद्ध कीया है, औरनी जैनधर्मकी वृद्धि इब्बनेवाले हमारे साधर्मिक नाइयोंकों मैं अर्ज करता हूं कि, उद्धार तापूर्वक यह ग्रंथके यथाशक्ति पुस्तकों खरीद करके शास्त्रान्यासी जनोंकों बांट दे कर मुजकों अवश्य आश्रय देनां, ये बडा उत्तम पुण्यानुबंधी पुण्य उपाजन करनेका हेतु है, और इस ग्रंथकी श्लोक संख्या (१६०००) आशरे है.

यह ग्रंथके पढने वाले समस्त साहेबोंकों मैं बडी नम्रतापूर्वक विनति करता हूं कि, ये ग्रंथ बनानेवालेने तो यथार्थ जैनशैली पूर्वक लखाण कीया है, परंतु मैंने मेरी बुद्धिकी न्यूनतासें, दृष्टिदोषकी प्रवृत्ततासें तथा शास्त्रोंकी शैलीका परिपूर्ण ज्ञानके अभावसें जो कुछ ठपनेमें चूक करी होवे, सो गुणज्ञानतोनें मेरेकों मंद प्रज्ञावाला जानके मेरे पर सुनजरही रक्क कर दोष सुधार लेनां चाहियें, यही सत्पुरुषके लक्षणका श्रेष्ठ चिन्ह है. किं बहु विवेचनेन.

## ॥ अस्य ग्रंथस्यानुक्रमणिका प्रारच्यते ॥

॥ तत्र ॥

॥ प्रथम परिच्छेदमें देव तत्त्वका स्वरूप है तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

श्रं.क. विषय पृष्ठ.

- १ ग्रंथ करणोका प्रयोजन. १
- २ देवादिक तीनों तत्त्वोंमें प्रथम देवतत्त्वका स्वरूप तिसके अंतर्गत श्री अरिहंतके वारा गुण कहे है, तिस बारह गुणोंमेंची वचनातिशय नामा जो दूसरा गुण है, तिनका पैचीस जेद तथा बारह गुणोंमें तीसरा अपायापगमातिशय गुण, और चौथा पूजातिशय गुण, इन दोनों गुणोंकी विस्तार रूप चौतीस अतिशय होती है, तिनका स्वरूप. १
- ३ श्री देवाधिदेव अष्टारह दूषणसें रहित होते है तिसका नाम. ४
- ४ श्री देवाधिदेवके चौबीस नाम दो श्लोकों करिके कहे है. ७
- ५ पीठली उत्सर्पिणीमें जो चोवीश तीर्थकर दूये हैं, तिनका नाम. ९
- ६ वर्तमान श्री रूपजादि चोवीश अरिहंतके नाम. १०
- ७ चोवीश तीर्थकरोके नाम किस किस कारणसें दूये है, सो सो मान्य और विशेष यह दो अर्थ सहित कहे हैं १०
- ८ चोवीश तीर्थकरोके कुल अरु शरीरका वर्ण कहा है १४
- ९ चोवीश तीर्थकरोके दक्षिण पगोंमें जो चिन्ह होते है, सो कहे है. १५
- १० चोवीश तीर्थकरोके पिताश्रोंका नाम. १५
- ११ चोवीश तीर्थकरोके माताश्रोंका नाम. १७
- १२ चोवीश तीर्थकरोके साथ वावन बोलका संबंध है तिस वावन बोलका नाम तथा स्वरूप यंत्रबंध लिखा है. १८
- १३ जिस तीर्थकरोके निवारण दूवा पीठें तीर्थका व्यवच्छेद दूवा सो. ३५

॥ अथ दूसरे परिच्छेदमें कुदेवका स्वरूप है, तिसकी अनुक्रमणिका लिखते है ॥

१ कुदेवमें स्त्रीसेवनादिक बहुत दूषण बताये है. ३५

- २ जैनमत वाले ईश्वरकों मानते है यह बात सिद्ध करी हैं . ३०
- ३ जगत्का कर्ता ईश्वर नहीं है यह बातका निर्णय इहांसे चला है. ४०
- ४ एक तो जगदुत्पत्तिसें पहलेलां केवल जगत्का उपादानादिक को इन्ही कारण वा दूसरी वस्तु नहीं थी, एकही शुद्ध बुद्ध सच्चिदानंदादि स्वरूप युक्त परमेश्वर था ऐसा ईश्वर जगत् वा सर्व वस्तुका रचने वाला कितनेक मतावलंबियोंके अजिनमत हैं और कितनेक मतावलंबियोंकों तो एक ईश्वर और दूसरी जगत् उत्पन्न करणेकी सामग्री, ए दोनो किसीने बणाये नहीं ऐसा सम्मत है, इसी तरें दो प्रकारके परमेश्वरमें पहलेले जो केवल एकही ईश्वर था, उसने यह जगत् रचा है इसी तरहके मतावलंबियोंका खंमन. ४१
- ५ ईश्वरकी शक्तिही जगत्का उपादानकारन है यह प्रश्नका उत्तर. ४२
- ६ ईश्वर उपादान कारण बिनाही जगत् रच सकता है तिनका उत्तर ४३
- ७ ईश्वर सृष्टिकर्ता प्रत्यक्ष प्रमाणसें सिद्ध करनेवाले पूर्वपक्षियोंका खंमन ४३
- ८ जगत्के कर्ताबिना जगत् कैसें हो गया इसी प्रकारके प्रश्नका जूटे जूटे है पक्षों करके उत्तर दे कर समाधान कीया हैं. ४४
- ९ ईश्वर जगत्में अपनी ईश्वरता प्रगट करनेकूं सृष्टि रचता है, ऐसें मानने वाले मतावलंबियोंका खंमन. ४६
- १० ईश्वरने परोपकारके लिये सृष्टि रची है, ऐसे पूर्वपक्षीका खंमन. ४७
- ११ ईश्वरही पुण्य पापादि कराता है ऐसे पूर्वपक्षीयोंका खंमन. ४७
- १२ यह जगत् बाजीगरकी बाजीवत् है, नरक स्वर्ग और पुण्य पापादि कुठ नहीं है ऐसे कहने वाले पूर्वपक्षीयोंका खंमन ४८
- १३ एकही परम ब्रह्म पारमार्थिक सङ्ग मानने वाले पूर्वपक्षीयोंका प्रश्नोका उत्तर पूर्वक खंमन, इसमें अद्वैत मतकांनी खंमन है. ४८
- १४ शंकरस्वामीके शिष्य आनंदगिरिने शंकरदिग्विजय ग्रंथके अष्टावनवे प्रकरणमें जो शंकरस्वामीका वृत्तांत लिखा है, तिस्से ऐसा प्रतीत होता है कि वेदातीयोंका अद्वैत ब्रह्मज्ञान जब तां ५ यह स्थूलदेह रहेगी, तब तां ५ रहेगा तथा शंकरस्वामी आपनी अज्ञानी अरु कामी बनगया है तिसका हास्यकारक कथा पूर्वक अद्वैतमतका खंमन. ५५

- ५ दूसरा जो जगत्के उपादान कारणवाला एक ईश्वर अरु दूसरी जगत् उत्पन्न करणकी सामग्री, ये दो पदार्थ अनादि है, इसी तरें कहनेवाले मतवालोंकी पूर्वपक्ष उत्तरपक्ष पूर्वक खंमन. ६२
- ६ ईश्वरकूं जगत्का कर्ता सिद्ध करनेवाला अनुमान प्रमाण है. इस प्रकारके कथन करनेवाले पूर्वपक्षियोंके प्रश्नोका समाधान. ६६
- ७ ईश्वर जगवान् सर्वजीवोंकूं शुनकर्म करनेहीमें प्रवृत्त कर्ता है इसीतरें कहनेवाले पूर्वपक्षियोंका खंमन... ६७
- ८ शुनाशुन कर्म करणमें जीव आपही प्रवृत्त होता है, अरु तिस कर्मके फल देनेवाला ईश्वर है इस प्रकारके पूर्वपक्षियोंका खंमन. ६७
- ९ ईश्वर अपणी क्रीडाके वास्ते किसीकूं नरकमें मालता है किसीकूं तिर्यचमें उत्पन्न करता है इत्यादि विरुद्ध वाक्य कहनेवाले मतवादीयोंका पूर्वपक्ष उत्तरपक्ष पूर्वक खंमन. ७०
- १० एक ईश्वर है यह बात सिद्ध करणे वाले मतवादीयोंका खंमन. ७३
- ११ ईश्वरकों देहधारी मानने वाले मतवादीयोंका खंमन. ७४
- १२ जगत्का कर्ता ईश्वर अवश्य होना चाहियें, इसीतरेंके खरड ज्ञानीयोंके ईश्वरवादका खंमन. ७७
- १३ सर्वथा जगत्का कर्ता किसीतरेंजी ईश्वर सिद्ध नहीं होसका है यह बात विशेष करके जाननेकी चाहना रखनेवाले सुज्ञ जनोंने सम्मतितर्कादि ग्रंथ देखना तिसमेंसें वीस ग्रंथके नाम. ७२

तीसरे परिच्छेदमें गुरुतत्त्वका स्वरूप कहा है तिसकी अनुक्रमणिका ॥

- १ शुद्धगुरुके लक्षण जैनमतानुसारे कहा है. ७३
- २ प्राणातिपातादिक पांच महाव्रतका स्वरूप. ७४
- ३ प्राणातिपातादिक पांच महाव्रतमें प्रत्येक व्रतकी पांच पांच जावना ७६
- ४ चरण सित्तरीके सित्तर जेद जैसेकि पांच महाव्रत, दश प्रकारका श्रमणधर्म, सत्तर प्रकारका संयम, दश प्रकारका वैयावृत्त, नव प्रकारे ब्रह्मचर्यकी गुप्ति, ज्ञानादिकत्रिक, बारह प्रकारका तप, ऋधादि चारका निग्रह, यह सर्व सित्तर जेवके स्वरूप ७९

- ५ करणसित्तरीके सित्तर नेद जैसेकि चार प्रकारकी पिंमविशुद्धि, पांच प्रकारकी समिति, बाहर प्रकारकी जावना, इग्यारह प्रकारकी पडिमा, पांच प्रकारे इंडियोंका निरोध, पच्चीस प्रतिलेखना, तीन गुप्ति, अरु चार प्रकारका अग्निग्रह, यह सित्तर नेदके स्वरूप. ए५
- ६ जैसा जैनमतके शास्त्रोंमें गुरुका स्वरूप लिखा है, वैसी वृत्ति वाला कोईनी जैनका साधु देखनेमें नहीं आता है ऐसी आशंका करणे वालेका समाधान तथा इस पंचमकालमें कैसी प्रवर्त्तिवालेकों संयमी कहनां अरु बकुशावि पांच चारित्रके स्वरूप. १०९

॥ चतुर्थ परिच्छेदमें कुगुरुका स्वरूप कहा है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

- १ प्रथम क्रियावादीयोंके कालवादी, ईश्वरवादी, आत्मवादी, नियतवादी अरु स्वभाववादी यह पांच विकल्प करके तिसका पृथक् पृथक् नेद मिलायके एकसौ अस्सी मत कहे है. ११५
- २ दूसरे अक्रियावादीयोंके स्वरूप पूर्वक चौराशीमत दिखलाये हैं. ११९
- ३ तीसरा अज्ञानवादीयोंका स्वरूप अरु तिनका सडसठ मत. १२०
- ४ चौथा विनयवादीयोंके बत्तीस मत. १२५
- ५ क्रियावादीयोंमें प्रथम कालवादीयोंके मतका खंमन. १२५
- ६ क्रियावादीयोंमें दूसरे ईश्वरवादीयोंके मतका खंमन. १२६
- ७ क्रियावादीयोंमें तीसरे आत्मवादी (अद्वैत) वादीयोंका खंमन १२७
- ८ क्रियावादीयोंमें चौथे नियतवादीयोंके मतका खंमन. १२७
- ९ क्रियावादीयोंमें पाचमे स्वभाववादीयोंके मतका खंमन. १२१
- १० दूसरे अक्रियावादीयोंमें यहृह्वावादीयोंके मतका खंमन. १२३
- ११ तीसरे अज्ञान वादीयोंके मतका खंमन. १२३
- १२ चौथे विनय वादीयोंके मतका खंमन १२६
- १३ नव्यजीवोंको शीघ्र बोध होने वास्ते पट्ट दर्शनका किंचित् स्वरूप, तिसमें प्रथम बौद्धदर्शनका स्वरूपमें बौद्धमतके गुरुका लिग, बौद्ध नगवान्के बत्तीस नाम, सात बुद्धके नाम और सातमें से पीठला जो शाक्यसिंह बुद्ध है, उसके आठ नाम तथा गून्यवादी बौद्धोंके ठे नाम तथा ग्रंथोंके करणोवाले गुरुओंका नाम

- तथा तर्क शास्त्रोंके नाम, बौद्धोंकी चार शाखाके नाम तथा बौ  
द्ध मतमें चार वस्तु मानते हैं तिसका नाम इत्यादि. १३७
- १४ दूसरा नैयायिक दर्शनका स्वरूपमें नैयायिक मतके गुरुका लिंग,  
इनके देवका अठारह अवतारका नाम, प्रत्यक्षादि चार प्रमाण, अरु  
सोलह पदार्थका नाम तथा इनके तर्क शास्त्रोंके नाम इत्यादि. १४०
- १५ तीसरा वैशेषिक मतका संक्षेपमें स्वरूप. १४३
- १६ चौथा सांख्यमतका स्वरूप बहोत विस्तारमें. .. १४३
- १७ पांचवा मीमांसकमत इसका अपरनाम जैमिनीय तिसका स्वरूप १४७
- १८ नास्तिक चार्वाक दर्शन इनको लोक वाममार्गी कहते हैं ए ना  
स्तिक दर्शन पट्ट दर्शनमें नहीं गिने जाते हैं, इसका स्वरूप तथा  
यह मत बृहस्पतिनाम पुरुषमें उत्पन्न हुआ तिसकी कथा . १५३
- १९ प्रथम बौद्धमतमें पूर्वापर विरोध तथा इस मतका खंडन. .. १५९
- २० दूसरे नैयायिक मतमें पूर्वापर विरोध तथा इस मतका खंडन.  
इसमेंनी सृष्टिका कर्ता ईश्वर न मानना चाहिये तथा ईश्वर सु  
ख दुःखादिके देनेवाला नहीं है, यह बात सिद्ध करी है. .. १६६
- २१ तीसरे वैशेषिक मतका खंडन. . . . . १७९
- २२ चौथे सांख्य मतका खंडन. . . . . १८३
- २३ पांचवे मीमांसक मतका खंडनमें वेदांतीयोंके ब्रह्म ( अद्वैत )  
का खंडन तो पहिलेही ईश्वरवादमें कर चुके हैं परंतु इसका अ  
परनाम जैमिनीय मत है, तिसका स्वरूप तथा खंडन. .. १८५
- २४ वेदोंमें जो यज्ञादि करके हिंसा करणी लिखी है तिसका खंडन.  
इहां प्रसंगमें श्राद्धादिक करणोंमें पाप लगता है यहनी कहा है. १८६
- २५ चार्वाक ( नास्तिक ) मतका पूर्वपक्ष उत्तर पक्ष करके खंडन. १९८

॥ पंचम परिच्छेदमें शुद्ध धर्मतत्त्वका स्वरूप कहा है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

- १ नवतत्त्वमें प्रथम जीवतत्त्वका स्वरूप .. २०७
- २ पृथिवी आदिक पांच स्थावरोमें जीवत्व सिद्ध करा है. . २०९
- ३ दूसरे अजीवतत्त्वके स्वरूपमें धर्मास्तिज्ञायादिक इव्योंका लक्षण. २१७

- ४ तीसरे पुण्य तत्त्वके स्वरूपमें पुण्य उपार्जन करणेका नव प्रकार अरु पुण्य बेंतालीश प्रकार करके जोगनेमें आता है, तिसका नाम. ११४
- ५ चौथे पाप तत्त्वके स्वरूपमें कर्माभाववादी नास्तिक अरु वेदांतिक कहते हैं कि पुण्य पाप जो है, सो आकाशके फूल सदृश असत् है अरु इनके फल जोगनेके स्थान जो स्वर्ग नरक सो जी नहीं है, इसी प्रकारके कथन करणे वालोंका निराकरण करके पाप अछारह प्रकारसे बंधाता है, सो व्यासी प्रकारों करके जोगनेमें आता है तिसका नाम, तदंतर्गत ११६ वे पृष्ठमें नीच उच्च वर्ण नहीं मानने वाले नास्तिक लोकोंका नी निराकरण है. ११७
- ६ पांचवे आश्रव तत्त्वके स्वरूपमें आश्रवके उत्तर जेद जो पांच इंद्रिय, चार कपाय, पांच अत्रत, पच्चीश असत् क्रिया अरु तीन योग, यह बेंतालीश जेद कहे है, इसमें आठ मदका स्वरूप तथा पांच अत्रत इव्य अरु नाव यह दोनो जेदों करके दीखाये हैं तथा इव्यहिंसा अरु नावहिंसाका स्वरूप चतुर्नगी करके कहा है अैसे पांचोही व्रतोंका स्वरूप चतुर्नगी पूर्वक कहे हैं. ११८
- ७ ठठे संवरतत्त्वके स्वरूपमें पांच समिति आदिक सत्तावन जेद कहे है, इनका स्वरूप गुरुतत्त्वमें लिखे है औ इहा तो तिसमेंसे बावीश परीतहोंका स्वरूप विस्तारसे है. .. ११९
- ८ सातवे निर्झरा तत्त्वके स्वरूप, गुरुतत्त्वमें संक्षेपसे कहे है. १२०
- ९ आठवे बंध तत्त्वके स्वरूपमें कोइक वादी कहते है कि जीव प्रथम पुण्य पापके बंध करके रहित था, पीठेंसे पुण्य पापका बंध हुआ है. इत्यादि ठ विकल्पका समाधान करके पीठें बंधके मूल हेतु चार और पांच प्रकारके मिथ्यात्व, वारह प्रकारकी अविरति, पच्चीश कपाय अरु पंदरा योग, मिल कर सत्तावन उत्तर हेतुके नाम १२०
- १० नवमे तत्त्वमें सत्पदादि नव द्वारों करके सिद्ध जगवानका स्वरूप १२१
- 
- ॥ पष्ठ परिवेदमें चौदह गुणस्थानकका स्वरूप है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥
- १ प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानकके स्वरूपमें मिथ्यात्वकों गुणस्था

- नक किसी रीतिसें कहते है ? औसी आशंकाका समाधान तथा मिथ्यात्वका कबुक स्वरूपनी कहा है. . . . . १५५
- १ दूसरे सास्वादन गुण स्थानकके स्वरूपमें इसका कारण नूत जो औपशमिक सम्यक्त्व है तिसका स्वरूप. . . . . १५७
- ३ तीसरा मिश्रगुणस्थानकका स्वरूप. . . . . १५८
- ४ चौथे अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकके स्वरूपमें सम्यक् दृष्टिजीवका लक्षण औ यथा प्रवृत्त्यादि त्रण करणोंका लक्षण १५९
- ५ पांचवे देशविरति गुणस्थानकके स्वरूपमें श्रावकका पट्कर्मादि. १६१
- ६ षष्ठे प्रमत्तसंयत गुणस्थानकके स्वरूपमें किंचित् धर्मध्यानका स्वरूप तथा यह गुणस्थानमें निरालंबन ध्यान होता नहीं है तिसका निश्चय करके, आजके कालमें कितनेक अपनी कल्पनासैं औरका और बोलते है तिनकों उपदेश दीया है. १६४
- ७ सप्तम अप्रमत्त गुण स्थानकके स्वरूपमें धर्मध्यानका स्वरूप मै त्रयादि अनेक जेद रूप तथा यह गुण स्थानमें सामायिकादि पट् आवश्यक नहीं है तिसका व्याख्यानादि करे है १६८
- ८ आठवा, नववा, दसवा, इग्यारहवा, अरु बारहवा, यह पांच गुण स्थानोंके स्वरूप एकिठे कहे है, इसमें उपशम श्रेणि और रूपक श्रेणिका किंचित् स्वरूप और शुक्लध्यानका स्वरूप अहे विस्तार पूर्वक, रेचक, पूरक, कुंनकादि ध्यानका व्युत्पत्ति सहित अर्थ करके और स्वरूप कहके निरूपण करा है. . . . . १७१
- ९ तेरहवे सयोगी गुण स्थानमें सयोगी केवलीका जाव कहा है, तथा तीर्थकरनाम कर्म उपार्जन करनेका वीश स्थानक औ तीर्थ कर जगवानकी महिमा तथा तीर्थकरनाम कर्म वेदनेका स्वरूप, केवली समुद्धातका स्वरूप तथा कौन समुद्धात करता है ? अरु कौनसा केवली नहीं करता है ? तिसका स्वरूप तथा मना दि योगोंको किसी तरेह सूक्ष्म करता है, इत्यादि स्वरूप. १७३
- १० चौदहवा अयोगी गुण स्थानकका स्वरूप तिसमें कर्मरहित जीवों की जो कर्ध्वगति होती है तिसका हेतु औ सिद्धोंकी स्थिति, सिद्धोंका आठ गुण, सिद्धोंका सुख अरु मुक्तिका स्वरूप. १७७



- ॥ सप्तम परिच्छेदमे सम्यग् दर्शनका स्वरूप लिखा है, तिसकी अनुक्रमणिका
- १ व्यवहार अरु निश्चय यह दो प्रकारके सम्यक्त्वके स्वरूपमें देवादि तीन तत्त्वोंपर व्यवहार अरु निश्चय यह दो प्रकारके अ-ज्ञान होते है, तिसमें प्रथम व्यवहार अ-ज्ञानका कथन तथा तीन तत्त्वोंमेंनी प्रथम देवतत्त्वके स्वरूप कथनमें श्री अरिहंतजीके नामादि चार निष्केपका स्वरूप. ३९३
- २ श्री अरिहंतजीकी प्रतिमाकों पूजना नमस्कार करणां तिसके स्वरूप प्रतिपादनमें मूर्ति अपूजक लोकोंका प्रश्नोत्तर पूर्वक तिनकी कुयुक्तियोंका अन्वी तरेसें खंनन कीया है. ३९३
- ३ गुरुतत्त्वका स्वरूप. ३९५
- ४ धर्मतत्त्वके स्वरूपमें दयाका स्वरूप अनेक प्रकारसें कहे है. ३९६
- ५ निश्चय धर्मका स्वरूप. ३९७
- ६ निश्चय सम्यक्त्वका स्वरूप. ३९८
- ७ सम्यक्त्वकी करणी. ३९८
- ८ सम्यक्त्वका शंका नाम अतिचारमें पंचम कालमें एक सौ बीस वर्षके आयुष्यकी शंकाका समाधान तथा जरत क्षेत्रके समुद्र अरु जूमिसंबधी आशंकायोंके समाधान तथा पृथिवीका गोला फिरेते है, एसी आशंकाका समाधान तथा वेदोंका प्राचीन अर्थ ढोडके नवीन अर्थ बनानेका कारण तथा जैनमतके ग्रंथ पुस्त कारूढ कवसे दूयें इत्यादि ३९९
- ९ दूसरा आकाहा नामा अतिचारका स्वरूप ३९९
- १० तीसरा वितिगिह्वा नामा अतिचारका स्वरूप इसमें पुण्य पापादि का फल जीवकों अवश्य प्राप्त होते है, यह बातका निश्चय तथा कुगुरुओंके अनाचार प्रदर्शित करा है. ३९९
- ११ चौथा मिथ्यादृष्टिकी प्रशंसा रूप अतिचारका स्वरूप. ३९९
- १२ पांचमा मिथ्यादृष्टिके परिचय करणेका अतिचार ३९९
- १३ रायानियोगेणादि ठै आगारका स्वरूप. ३९९
- १४ अन्नवृणानोगेणादि चार आगारका स्वरूप. ३९९

- ॥ अष्टम परिच्छेदमें चारित्रिका स्वरूप कहा है तिसको अनुक्रमणिका ॥
- १ गृहस्थके देशविरति चारित्रमें इत्य जावसें प्रथम व्रतका स्वरूप. ३१८
  - २ आकुट्टी आदिक चार प्रकारकी हिंसाका स्वरूप. . . ३१८
  - ३ गृहस्थसें सवा विश्वा दया पल सक्ति है तिसका स्वरूप. ३१९
  - ४ प्राणातिपात विरमण व्रतके पांच अतिचारके स्वरूप. . ३२२
  - ५ दूसरा स्थूल मृषावाद विरमण व्रतका स्वरूप. .. ३२३
  - ६ तीसरा स्थूल अदत्तादान विरमण व्रतका स्वरूप... ३२६
  - ७ चौथा मैथुन त्याग व्रतका स्वरूप. . . . ३२९
  - ८ पांचवा स्थूल परिग्रह परिमाण व्रतका स्वरूप. .. ३३२
  - ९ ठठा दिक् परिमाण व्रतका स्वरूप. . . . ३३६
  - १० सातमा जोगोपजोग व्रतका स्वरूप. ३३८
  - ११ मदिरा पान करनेमें एकावन्न दोष दीखलाया है. . . ३३९
  - १२ मांस नरुण करणेमें अनेक प्रकारके दूषण दीखलाया है. ३४१
  - १३ निर्विवेकी लोक, व्याघ्र काग प्रमुख हिंसक जीवोंको अपना धर्मोपदेशक गुरु मानते हैं तिनोके मतका खंजन. ३४२
  - १४ मांसाहारी आपही आपको अधर्मी बनाते है तिनका स्वरूप. ३४४
  - १५ मांस नरुण करणेवाले महामूढ है यह सिद्ध करा है. . ३४४
  - १६ मांस खानेमे अनुत्तर दूषण बताये है. .. ३४६
  - १७ मांस खानां जिनोने कथन करा उन कुशास्त्र बनाने वाजोंका नाम. ३४६
  - १८ जैसे और विचारे निरपराधी पशुयोका मांस खानां दुष्ट लोकोने अपने बनाये कुशास्त्रोमे लिख दीया है तैसे मनुष्य का मांस खाना किसी शास्त्रमें नही लिखा है, तिसका हेतु. ३४६
  - १९ माखन अरु मधुआदिक अजह्य वस्तुके नरुणमें दोषोत्पत्ति. ३४७
  - २० रात्रि नोजन करणेसे इस लोकमें तो प्रत्येक दूषण अरु परलोकमें अनेक दुःखका हेतु होता है इत्यादि रात्रिनोजनका निषेध . ३५०
  - २१ बहुवीजादि अजह्य वस्तु खानेका निषेध. ३५४
  - २२ बत्तीस अनंतकाय अजक्षयवस्तु है तिसका नाम. ३५६
  - २३ सचित्त परिमाणादि चौदह नियमका स्वरूप. . . ३५७
  - २४ इंगाल कर्म आदिक पंदरह कर्मादानका स्वरूप. .. ३६०

२५ सप्तम जोगोपजोग व्रतके पांच अतिचारका कथन.	३६३
२६ अष्टम अनर्थदंन विरमणव्रतका स्वरूप	३६४
२७ आर्त्तध्यानके अनिष्टार्थसंयोगादि चार जेदोंका स्वरूप.	३६४
२८ रौद्र ध्यानके हिसानंद रौद्र आदिक चार जेद.	३६७
२९ दूसरा पापकर्मोपदेश अनर्थ दंन अरु तीसरा हिसप्रदान अनर्थ दंन तथा चौथा प्रमादाचरण अनर्थदंनका स्वरूप.	३६८
३० अनर्थदंन विरमणव्रतके पांच अतिचार.	३७०
३१ नवमे सामायिक व्रतके स्वरूपमें वचीस दोषादिके नाम.	३७१
३२ दशवा देशावकाशिक व्रतका स्वरूप.	३७४
३३ ईंधारहवा पौषधोपवास व्रतका स्वरूप.	३७६
३४ बारहवा अतिथिसंविनाग व्रतका स्वरूप.	३७९

॥नवम परिच्छेदमें श्रावकोंका दिन कृत्य विधि कहा है, तिसकी अनुक्रमणिका॥

१ श्रावकों निजा स्वल्प लेनी एक प्रहरादि रात्रिमें जागनां ५०	३८२
२ सबेरकों निजा ठेदनेके बखत पृथ्वीआदिकतत्त्वके वहेनेसें सुख दुःखादिकका कथन अरु पृथ्वीआदिक पांच तत्त्वोंका स्वरूप	३८३
३ किस किस कार्यमें कौनसा कौनसा तत्त्व गुनागुन है	३८४
४ पंच परमेष्ठी आदिक जाप किसी रीतिसें करनां	३८५
५ धर्म जागरणा किसी तरे करणी	३८८
६ स्वप्न नव कारणोंसें आते है तिसका गुनागुन फलादि.	३८८
७ प्रजातमें मातापितादिकोंकों नमस्कार करना इत्यादि कृत्य	३९०
८ श्रावकों सबेरे उठके चोटह नियमादि करणोका उपदेश अरु ग्रहण करणोकी विधि तथा सचित्त वस्तुका स्वरूप.	३९०
९ मिठाइकी मर्यादा, विदलका निषेध, तथा वैगन टींबरु आदिक वस्तु न खानेका उपदेश.	३९४
१० श्रावकों निरवद्य आहार करणा तिसका तथा नवकारसी आदिक नियमोका स्वरूप, अरु चार प्रकारके आहारका विनाग	३९५
११ मलोत्सर्ग, दंतधावन, केशसमारन, स्नान करनां इत्यादि	३९७
१२ जिनपूजादि करणोंमें प्रथम अंगपूजाका विधि.	४०१

- १३ प्रथम मूलनायकों पूजनां अरु पीठें दूसरे विंवीकी पूजा करणी  
यह तो स्वामी सेवक नाव ठहरा अैसी आशंकाका समाधान. ४०६
- १४ दूसरी अग्रपूजाका स्वरूप. . ४०८
- १५ तीसरी नावपूजाका स्वरूप. . . . . ४०९
- १६ पंचोपचारादि बहुत प्रकारके पूजाके चेद. ४११
- १७ पूजा करणेका विधि वत्तीस प्रकारका. ४११
- १८ पूजाके इक्कीस प्रकारके नाम. . . ४१३
- १९ विषमासनादि वैठके पूजा न करना इत्यादि स्वरूप. ४१३
- २० स्नात्र करे पीठें जलधारा देनेका विधि. . ४१४
- २१ आरति अरु मंगलदीपक करणेका विधि. . ४१५
- २२ स्नात्रादिकमें समाचारी विशेषसैं विविध प्रकारका विधि देखने  
सैं व्यामोह न करनां इत्यादि स्वरूप. . . ४१६
- २३ जिन प्रतिमाजी अनेक प्रकारकी होती है इत्यादि . ४१६
- २४ अविधिसें जिन मंदिर अरु जिन प्रतिमा बनी होय उसकों न  
पूजनेका विकल्प न करणां इत्यादि स्वरूप. . ४१७
- २५ जिनमंदिरमें मकड़ीका जाला उतारनेका उपदेश. . ४१७
- २६ सामायिक त्यागकें इव्यपूजा करणी उचित नही एसी आशं  
काका निराकरण. ४१८
- २७ विधि न होवे तो न करणांही श्रेष्ठ है यह कहनांजी अयुक्त है ४१८
- २८ अंग अग्रादि तीनों पूजाके फल. ४१८
- २९ इव्यपूजामें यद्यपि पट्कायकी किंचित् विराधना होती है तोनी  
करणी योग्य है, तिसका उदाहरण. ४१९
- ३० प्रतिदिन तीन संध्यामें पूजा करणेका विधि. ४२०
- ३१ हृदयमें बहुमान पूर्वक देवपूजादि करणां इहां प्रीति नक्ति  
आदिक चार प्रकारके अनुष्ठानके स्वरूप कहे हैं. ४२१
- ३२ श्री जिनमंदिरोंका प्रमाजन अरु समारन प्रमुखका अग्रिकार. ४२२
- ३३ जिनमंदिरमें जघन्य दश अरु मध्यम चालीश तथा उत्कृष्टसैं  
चौरासी प्रकारकी आशातना वर्जन करनी तिसका नाम ४२३
- ३४ गुरुकी तेत्तीस आशातना वर्जन करनी तिसका नाम. ४२५

- ३५ स्थापनाचार्यकी तीन प्रकारकी आशातना. ४५६
- ३६ देवड्य, ज्ञानड्य, साधारणड्य अरु गुरुके ड्यका विनाश करणे वालेकों साधु न हटावे तो अनंत संसारी होवे. ४५७
- ३७ जिनमंदिरकी आमदानीके जंग करणे वाला तथा जो मुखसे कह कर देवड्य न देवे वो संसार ज्रमण करे तिसका स्वरूप. ४५८
- ३८ जो ड्य, देवके नामका बोव्या होवे, सो तत्काल देनां ४५९
- ३९ देवादिककी कोइनी वस्तु अपने काममें न लेनी. ४६०
- ४० देवादिकके घरादिकनी श्रावककों जाडे लेनां न चाहियें. ४६१
- ४१ घर देरासरमें चढे दूए अहतादिककी व्यवस्थाका प्रकार तथा देवादि ड्य लेने खरचनेका प्रकार इत्यादि. ४६२
- ४२ गुरुवंदनाका विधि तथा निचमादिकनी गुरु साहिकही करणां. ४६३
- ४३ धन उपार्जन करनेकी चिंताके स्वरूपमें व्यापारादिक सात प्रकार करके आजीविका चलानेका स्वरूप. ४६४
- ४४ तीन अछाड आदिक पर्वतिथिके दिनोमें व्यापार न करणां. ४६५
- ४५ देनां होवे सो करार ऊपर विना माग्यांही दे देनां. ४६६
- ४६ श्रावककों मुख्यवृत्तिसे तो धर्माजनोसैंही व्यापार करनां. ४६७
- ४७ बहोत धन जाता रहे तोनी धर्म करणेमें आलस न करनां ४६८
- ४८ बहोत धनाढ्य हो जावे तोनी अनिमान न करनां ४६९
- ४९ स्वामिडोह अरु मित्रडोहादि न करनां इत्यादि. ४७०
- ५० पुण्यानुबंधी पुण्य, पापानुबंधी पुण्य, पुण्यानुबंधी पाप, अरु पापानुबंधी पाप यह चार प्रकारका किंचित् स्वरूप. ४७१
- ५१ यथार्थ कहनेसे मित्रका मनोहरण. ४७२
- ५२ साह्वीविना मित्रके घरमेंनी धनादिक न रखनां. ४७३
- ५३ मुख्यवृत्तिसे तो जित्त गाममें रहेणां उहांही व्यापार करणा परंतु जो परदेश जानां पडे तो किसरीतिसैं जाना तिसका कथन. ४७४
- ५४ जलां वस्त्रादि पहिरनेका आमंवर न ठोडना. ४७५
- ५५ धन प्राप्त होवे तब धर्ममें लगाकर मनोरथ सफल करणां. ४७६
- ५६ न्यायोपार्जितादिक धन खरचनेका चार जंग ४७७

५७ देशविरुद्ध, कालविरुद्ध, राज्यविरुद्ध, लोकविरुद्ध, अरु धर्म विरुद्ध कार्य न करनां, तिसका स्वरूप .	४४५
५८ पिताके साथ अरु माताके साथ उचिताचरणका स्वरूप.	४४८
५९ सहोदरके साथ अरु स्त्रीके साथ उचिताचरणका स्वरूप. .	४४९
६० पुत्रके साथ अरु सर्गोंके साथ उचिताचरणका स्वरूप. ..	४५१
६१ गुरुके साथ उचिताचरणका स्वरूप. ..	४५३
६२ नगरनिवासी जनोंके साथ उचिताचरणका स्वरूप. ..	४५४
६३ परतीर्थियोंके साथ उचिताचरणका स्वरूप. ..	४५४
६४ औरजी अवसरमें उचित बोलनां अरु कुशोनाकारी त्यागनां.	४५५
६५ सुपात्रकों दानादिक देनेकी युक्ति.	४५६
६६ माता पितादिक अरु गुरुप्रमुखकी चिंताका प्रकार. ..	४५८
६७ नोजन करनेका विधि. ..	४५९

॥दशम परिच्छेदमें रात्रिकृत्य आदिक पांच कृत्य कहे हैं, तिसकी अनुक्रमणिका॥

१ पौषधशालादिकमें यज्ञपूर्वक प्रतिक्रमणादि करणकी रीति. ..	४६२
२ सकल परिवारकों धन खरचनां आदिक धर्मोपदेश करणकी रीति	४६३
३ निद्रा लेनेका विधि अरु सूता पीनें रात्रिमें जब जाग जावे, तब कदाचित्काम पीडा करे तो स्त्रीके शरीरका अग्रुचि पणा विचारे.	४६३
४ कपायजीतनेकाठपायअरुनवस्थितिकोंमहाडु खरूपविचारे. ..	४६५
५ धर्ममनोरथ जावना अरु अष्टमी आदिक पर्वकृत्यका स्वरूप	४६५
६ चातुर्मासिक कृत्यका स्वरूप . ..	४६८
७ वर्षकृत्यका बारह द्वारोंमें प्रथम संघपूजाका स्वरूप. .	४७१
८ दूसरा सार्धर्मिक वात्सलका स्वरूप. .	४७१
९ तीसरा यात्राविधिका स्वरूप अरु चौथा स्नात्रविधिका स्वरूप.	४७३
१० पांचवा देवड्यकी वृद्धिका, ठठा सुंदर अंगीआदिकका, सातवा देवकेंआगें विविध प्रकारके गीत नृत्यादिक करणका विधि. ..	४७४
११ आठवा श्रुतज्ञानकी पूजा कर्पूरादिसें करणका विधि. .	४७४
१२ नववा पंचपरमेष्टि नमस्कारका तथा तप करणका विधि.	४७४

- १३ दशवा तीर्थकी प्रजावना करे तिनका विधि. .. ४७
- १४ अगीअरहवा गुरुके योगमिले दूवे आलोचना करे तिनका विधि. ४७
- १५ श्रावकका जन्मकृत्य अछारह द्वारों करके कहा है तिसमें प्रथम वसनेका स्थान जो घर बनाना तिनका स्वरूप. .. ४७
- १६ दूसरा विद्यान्यास करणेका अरु तीसरा विवाह करणेका स्वरूप. ४७
- १७ चौथा मित्र करणेका अरु पांचवा जिनमंदिर बनानेका स्वरूप. ४७
- १८ ठछा प्रतिमा बनानेका, सातवा प्रतिमाकी प्रतिष्ठाका, आठवा दूसरेको दीक्षा देनेका, नववा तत्पद स्थापनाका स्वरूप. ४७
- १९ दशवा पुस्तक लिखानेका द्वार. .. ४७
- २० इग्यारहवा पौषधशाला बनानेका द्वार, बारहवा सम्यक्त्व दर्शनका द्वार, तेरहवा व्रतादि पालनेका द्वार, चौदहवा दीक्षा ग्रहणका स्वरूप, इसमें जाव श्रावकके सत्तरह गुण कहे हैं. .. ४७
- २१ पंदरहवा आरंभ त्यागका, शोलहवा ब्रह्मचर्य पालनेका, सत्तरहवा प्रतिमादि तप विशेषका अरु अछारहवा आराधनाका द्वार. ४७

॥ एकादश परिच्छेदमें श्री रूपनादिसँ महावीर पर्यंत जैनमतादि शास्त्रों

॥ के अनुसार इतिहास कहे हैं, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

- १ जैनमत कांहांसँ प्रचलित दूआ ऐसी त्रांतिका समाधान. . ४९
- २ जगतके स्वरूपमें उत्सर्पिणी अथवसर्पिणी काल औ सखम सखमादिक ठे आरेका तथा सात कुलकरोंका किंचित् स्वरूप. ४९
- ३ रूपनदेव स्वामीका किंचित् वृत्तांत अरु तिनके सौ पुत्रोंके नाम तथा हाथी घोडादिकके संग्रहका विधि. . ४९
- ४ आहारका विधि तथा शिल्पका नेद. .. ५०
- ५ कर्म द्वारमें खेती वाणिज्यादिकका स्वरूप तथा पुरुषकी बहोत्तर कला और स्त्रीकी चोशठ कला तथा अछारह प्रकारकी लीपी. ५०
- ६ माता पिताकी दीनी कन्याका विवाह प्रवर्तनेका स्वरूप. .. ५०
- ७ कोइ सृष्टिके कर्ता नही है तिनका स्वरूप. . ५०
- ८ ब्रह्मादि शब्दोंसे ध्यान करणेकी प्रवृत्ति अरु निष्ठा देनेकी रीति ५०
- ९ धर्मचक्रतीर्थ विक्रमराजा तक चला, तिसका वृत्तांत. .. ५०

- १० म्लेह, निर्दयी, अरु अनार्थ लोक होनेका वृत्तांत. .. ५०५
- ११ श्री रूपनदेवकाही ब्रह्मा नाम प्रचलित होनेका वृत्तांत ५०५
- १२ श्री शत्रुंजयका पुंमरिकगिरि नाम होनेका स्वरूप. ५०५
- १३ परिव्राजकोंका लिंग उत्पन्न होनेका स्वरूप. . .. ५०६
- १४ मरीचीसें कापिलादि मत उत्पन्न होनेका स्वरूप. .. ५०६
- १५ ये नरत खंमका नाम नरतखंम रखनेका हेतु. . ५०८
- १६ श्रावकोंका ब्राह्मण नाम कहाँसें प्रचलित हूवा तिसका स्वरूप. ५०८
- १७ कुरुवंशकी उत्पत्ति, यज्ञोपवीतकी उत्पत्ति, चारों वेदोंका नाम बदलनेका अरु मतलब फिरानेका हेतु, चारों वेदोंकी उत्पत्ति. ५१०
- १८ याज्ञवल्क्य, सुलसा, पीपलाद, अरु पर्वत प्रमुखोंसें फेर अ सल वेदोंकों फिरायकें हिंसायुक्त वेदोंकी रचना हूइ, तिसका स्वरूप पूर्वोक्त पुरुषोंका कथानक सहित. .. ५११
- १९ इस वर्तमान कालमें जो चार वेद है तिनकी उत्पत्ति. .. ५१२
- २० तेचीस क्रोड देवतायोंका मुख अग्नि है, यह कथन कहाँसें चला. ५१२
- २१ ब्राह्मणोंकों आहिताग्नय कहेने लगेका कारण अरु राखकों म स्तक पर त्रिपुंजाकारसें लगानेका तथा कैलास पर्वतकी उत्पत्ति. ५१३
- २२ श्री अजितनाथ और पहिले सगरचक्रवर्तीका अधिकार. .. ५१३
- २३ श्री संनवनाथसें ले कर नवमे तीर्थकर तक तो सर्व जैनधर्मी ब्राह्मणही श्रावक थे तिनका स्वरूप. . . . ५१५
- २४ दशवे तीर्थकरके शासनमें हरिवंशकी उत्पत्ति हूइ तिनका स्वरूप. ५१६
- २५ वेदोमें प्रजापतिवै स्वां॥ यह श्रुति लिखी गइ, तिनका हेतु तथा चक्रवर्ती आदिककी क्रमसें उत्पत्ति अरु परशुरामकी उत्पत्ति. ५१७
- २६ ब्राह्मणोने जो जो राजायोंकों अपने शास्त्रोंमें दैत्य अरु राक्षसके नामसें लिख दीया है, तिसका हेतु ५३५
- २७ विष्णुकुमारकी किंचित् कथा अरु ब्राह्मणोने जो पुराणोंमें लिखा है कि विष्णु नगवानने वामनरूप करके यज्ञ करते दूये बजीराजाकों भला है, यह बात कहाँसें उत्पन्न हूइ है. . ५३६
- २८ असजी पार्श्वनाथकी मूर्त्तिका बड़ीनाथ नाम रखनेका हेतु. .. ५३९
- २९ श्री रुष्णकों नगवान् कहेनेका हेतु. . .... ५३९



॥ वारहवे परिच्छेदमें श्री महावीर जगवानसें ले कर आजपर्यंत

॥ कितनेक वृत्तांत लिखे हैं, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

- १ सत्यकी श्रावकके संबंधमें महेश्वरकी उत्पत्ति. ५४३
- २ मृतकोंकों पिण्डप्रदान श्राद्धादि प्रवृत्त होनेका हेतु. ५४६
- ३ प्रयाग तीर्थकी मानता चलनेका हेतु. ५४७
- ४ श्री महावीरके गौतमादि गणधरोंका वृत्तांत कथा सहित. ५४७
- ५ श्री महावीरकी गद्दी उपर श्री सुधर्मास्वामी बैठे तहांसे ले कर  
आठवे श्रीयूलिजइजी तक आठ पाटका संक्षेप वृत्तांत. ५५५
- ६ सुहस्तिस्वरिके वखतमें संप्रति राजा दूआ तिनका वृत्तांत. ५५९
- ७ उज्जयिनमें शिवका लिंग फट कर पार्श्वनाथकी मूर्ति प्रगट दूइ  
तिनका कुमुदचंद्र आचार्यकी कथापूर्वक वृत्तांत. ५६०
- ८ तेरहवा श्री सिंहगिरिजीके पाट उपर श्रीवज्रस्वामी दूये जिसने  
जावड शाह शेरके कीये शत्रुंजयतीर्थका उद्धारकी प्रतिष्ठा करी. ५६०
- ९ श्री महावीरसें ( ५४७ ) मे वपे त्रैराशिक मत निकला. ५६९
- १० चौदहवे श्री वज्रसेनस्वरिके वखतमें नागेंडादि चार कुल दूये. ५६९
- ११ पंदरहवे श्री चंद्रस्वरिके पाटसें लेकर एकावन्नवे मुनिसुंदर सू  
रि पर्यंत बहोत चमत्कारिक बातोंका किंचित् इतिहास. ५६९
- १२ बावनवे श्री रत्नशेखर स्वरिके समयमें जिनप्रतिमाके उद्घापक  
लुंका नामक लीखारीने लुंका मत चलाया तिसकी कथा. ५७१
- १३ त्रेपनवे श्रीलक्ष्मीतागरस्वरिसें ले कर सत्तावनवे श्रीविजयदान सू  
रि तक आचार्योंकी कथाउं कबुक इतिहासो युक्त संक्षेप लिखी है. ५७३
- १४ अष्टावन्नवे पाटें श्री हीरविजय स्वरि दूआ तिनकी कथा कबुक  
क अकव्वर वादशाहके वृत्तांत युक्त संक्षेपसें लिखी है ५७५
- १५ वाशठवे पाटें श्री विजयप्रन स्वरिके समयमें सुहबंधे हुंढीयोंका  
पंथ निकला तिसकी उत्पत्तिके कारण अरु ये दिनसें ले कर आ  
ज तक विद्यमान विचरनेवाले हुंढोंका नाम. ५९३
- १६ त्रेशठवे पाटसें लेकर वर्तमान उगणोतेरमे पाट तक होनेवाले आ  
चार्योंका नाम तथा ये ग्रंथ बनानेवालेके गुर्वावलीका नाम अरु ये  
ग्रंथ बनानेवालेके समयमें जितने नवीन पंथ निकले तिनके नाम. ५९४

॥ ॐ नमः स्याद्वादवादिने ॥

॥ अथ तपागच्छीये ॥

॥ मुनिश्री आनंद विजय आत्मारामजी विरचित् ॥

॥ जैनतत्त्वादशी नामक ग्रंथ प्रारंभः ॥

॥ तत्र प्रथम परिच्छेद ॥

॥ अनुष्टुप् वृत्तम् ॥

॥ स्यात्कारमुजितानेक, सदसञ्जाववेदिनम् ॥

॥ प्रमाणरूपमव्यक्तं, जगवंतमुपास्महे ॥ १ ॥

॥ अथ प्रथम देव, गुरु औ धर्म इन तीनों ॥

॥ तत्वोंका स्वरूप किंचित् लिख्यते ॥

विदित हो कि जो यह जैनमत है तिसका स्वरूप श्री तीर्थकर, गणधर और पूर्वाचार्यादिकोंने आगम निर्युक्ति जाप्य चूर्मि टीका औ प्रकरण तर्कादि अनेक ग्रंथद्वारा स्पष्ट निष्कन कीया है परंतु पूर्वाचार्य रचित सर्व ग्रंथ प्रा कृत वा सस्कृत जापामे है सो अब जैन लोगोंके पढ़णेमें उद्यमके नकर एसें उन अति उत्तम अद्भुत ग्रंथोंका आशय लुप्त प्राय हो रहा है सोकि तनेक नव्य जीवाकी प्रेरणासे तथा स्वर्गमें निर्झंराकी आशयसें जिनकूं प्रारुत वा सस्कृत पढ़णी कठिन है तिनोके उपकारार्थ देव, गुरु औ ध र्मका स्वरूप किंचित् मात्र इन जापा ग्रंथमें लिखते हैं।

सर्वे श्रोतृगणसे नमृता पूर्वक यह विनती है कि जो इस ग्रंथकूं पढ़े सो जहा मैने जिनमार्गसे विरुद्ध लिखा हो तहा यथार्थ लिख देवें यह मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह होगा इस ग्रंथके लिखनेका मेरा मुख्य प्रयोजनतो यह है जो इस कालमें बहुत नविन मत लोकोने स्वकपोल कल्पित प्रगट करे है तथा अंगरेजोंकी औ मुसलमानोंकी विद्यापढ़णेसे तथा अनेक प्रकार के मत मतातरोकी वातां सुणनेसें अनेक नव्य जीवाकूं अनेक प्रकारके सशय उत्पन्न हो रहे हैं तिनके दूर करणेके वास्ते इस ग्रंथका प्रारंभ की या है अब पूर्वोक्त तीनों तत्वोंमें प्रथम देवतत्वका स्वरूप लिखते हैं।

देव नाम परमेश्वरकाहै सो परमेश्वरके स्वरूपमें अनेक प्रकारके विकल्प मतांतरिये पुरुष करतेहै सो जैनमतमें परमेश्वरका क्यास्वरूप मान्या है सो तिस परमेश्वरका स्वरूप नाम रूप औ विशेषण संयुक्त लिखतेहैं जैन मतमेजो परमेश्वर मान्याहै सो चारां गुण संयुक्त औ अष्टादश दूषण रहित अर्हत परमेश्वरहै औ जो परमेश्वर उक्त चारांगुण रहित तथा अष्टादश दूषण सहित होगा तिसमे कदापि परमेश्वरता सिद्ध नहीं होगी यह कथन आगे चलकर लिखेंगे.

अब प्रथम चारां गुण लिखतेहैं अशोकवृक्षादि अष्टमहा प्रातिहार्य सर्व जैनलोगोमें प्रसिद्धहैं तथा चार मूलातिशय एवं सर्व चारां गुणहै तिनमें चार मूलातिशयका नाम कहतेहै (१) ज्ञानातिशय (२) वागतिशय (३) अयायापगमातिशय (४) पूजातिशय तत्र प्रथम ज्ञानातिशयका स्वरूप कहेंहै केवलज्ञान केवल दर्शन करी नूत जविष्य वर्तमान कालमे जो सामान्य विशेषात्मक वस्तुहै तिसकू तथा उत्पाद व्यय ध्रौवयुक्तं सत् त्रिकाल संबंधि जो सत् वस्तुका जानना तिसका नाम ज्ञानातिशयहै. दूजी वचनातिशय तिणमें जगवंतका वचन पैतीस अतिशय करी संयुक्त होताहै तिन पैतीस अतिशयका स्वरूप ऐसाहै (१) संस्कारवत्त्व (संस्कृतादि लक्षण युक्त) (२) औदार्य (शब्दमे उच्चपणा उपचारपरीतता) (३) अग्राम्यत्व (ग्रामके रहण हारे पुरुषके वचन समान जिनोका वचन नहीं) (४) मेघगंजीर घोषत्वं (मेघकी तरें गंजीर शब्द) (५) प्रतिनाद विधायिता (सर्व वाजित्रोंके साथ मिलता शब्द) (६) दक्षिणत्वं (वचनकी सरलता संयुक्त) (७) उपनीतरागत्वं (मालव कौशक्यादि ग्राम राग करी युक्तता) ए सात अतिशयतो शब्दकी अपेक्षा सैं जाननी औ अन्य अतिशयजो है सो अर्थाश्रय जाननी (८) महार्थता (बहामोटा जिसमे अनिधेय कहने योग्य अर्थहै) (९) अव्याहृतत्व (पूर्वापर विरोध रहित) (१०) शिष्टत्वं (अनिमत सिद्धातोकार्थता) एतावता अनिमत सिद्धांतजो कहना सोइ वक्ताके शिष्टपणेका सूचकहै (११) संशयनाम संभवः (जिनोके कहणेमे श्रोताकू संशय नहीं होता) (१२) निराकृताऽन्योत्तरत्व (जिनोके कथनमे कोइवी दूषण नहीं नतो श्रोताकू शंका उत्पन्न होवे न जगवान दूसरीवार उत्तर दें) (१३) हृदय गमता (हृदय आहतत्व) हृदयमे ग्रहणे योग्य (१४) मिथ.साकांकृता (परस्पर आपसमे

पद वाक्योंका सापेक्ष पणा) ( १५ ) प्रस्तावौचित्यं (देशकाल करके रहित पणा नहीं) ( १६ ) तत्त्वनिष्टता (विवक्षित वस्तुके स्वरूपानुसारि पणा) ( १७ ) अप्रकीर्णप्रसृतत्वं (सुसंबंध होकर प्रसरणा अथवा असंबंधादि कारका अतिविस्तार नहीं) ( १८ ) अस्वश्लाघाऽन्यनिंदता (आत्मोत्कर्ष पर निंदा करके वर्जित) ( १९ ) अनिजात्यं (प्रतिपाद्य वस्तुकी नूमिकानुसारि पणा) ( २० ) अतिस्निग्धमधुरत्वं (घृत गुडादिवत् सुखकारि) ( २१ ) प्रशस्यता (कहेजो हैं गुण तिनकी योग्यतासे प्राप्तहुइहै श्लाघा) ( २२ ) अमर्म वेधिता (परका मर्म जिसमे उग्घाडणा नहींहै) ( २३ ) औदार्य (अनिधेय अर्थका तुल्यपणा नहीं) ( २४ ) धर्मार्थप्रतिबद्धता (धर्म औ अर्थ करके संयुक्त) ( २५ ) कारकाद्यविपर्या सो कारक काल वचन औ लिंगादि जहां विपर्यय नहीं ( २६ ) विभ्रमादि वियुक्तता विभ्रमवक्ताके मनकी प्रांति विद्वेषादि दोष रहित ( २७ ) चित्ररुत्व (उत्पन्न कखाहै चित्र कौतुहल पणा) ( २८ ) अद्भुतत्व (अद्भुत पणा) ( २९ ) अनति विलम्बिता (अतिविलंब रहित) ( ३० ) अनेकजाति वैचित्र्य (जातियां वर्णन करणे योग्य वस्तु स्वरूप उनाका आश्रय) ( ३१ ) आरोपिता विशेषता (वचनांतरकी अपेक्षा करके स्थापन कियाहै विशेषपणा) ( ३२ ) सत्त्वप्रधानता (साहसकरी संयुक्त) ( ३३ ) वर्णपदवाक्य विविक्तता (वर्णादिकोंका विचित्रपणा) ( ३४ ) अव्युच्चिन्ति: (विवक्षितार्थकी सम्यक् सिद्धि जहां लग नहोवे तहा तांइ अव्यवचित्र वचनका प्रमेय पणा) ( ३५ ) अखेदित्व (अकेवा रहित) एह जगवंत की दुसरी वचनातिशयके पैतीस जेदहै. तीजी अपायापगमातिशय एतावता उपध्व निवारक औ चोथी पूजातिशय सो जगवान तीनलोकके पूजनीक है इनदोनो अतिशयांकी विस्तार रूप चौतीश अतिशय होतीहैं सो लिखतेहै.

( १ ) तीर्थकर जगवानकी देहका रूप औ सुगंध सर्वोत्कृष्ट औ रोग रहित देह तथा पसीना औ मल करि वर्जित ( २ ) स्वास निःस्वास पद्म कमलकी तरें सुगंधवाला ( ३ ) रुधिर औ मांस गो दुग्ध वत् उज्वल ( ४ ) आहार निहारकी विधि चर्मचक्रुवालेकूं नहीं दीखे ए चार अतिशय जन्मसे साथ ( १ ) एक्योजन प्रमाणही समवसरणका क्षेत्रहै परंतु तिसमे देवता मनुष्य तिर्यचकी कोटाकोटीनि समायसक्तिहै जीड नहीं होती ( २ ) वाणी जापा अर्द्ध मागवी देवता मनुष्य तिर्यचकू अपणी अपणी

जापापणे परिणमतिहै औ एक योजनमे सुणाईदेतीहै ( ३ ) प्रजामंजल मस्तकके पीछे सूर्यके विंबकी मानो विडंबना करताहै थापणी शौना कर के ऐसा मनोहर नामंजल शोने है ( ४ ) साठे पचीश योजन प्रमाण चारो पासें उपड्वरूप ज्वरादि रोग नहोवे तथा ( ५ ) वैर (परस्पर विरोध नहोवे) तथा ( ६ ) इति (धान्याद्युपड्व कारी घणे सुपकादि नहोवे) ( ७ ) मारिमरीका उपड्व नहोवे ( ८ ) अतिवृष्टी (निरंतर वर्षणा नहोवे) तथा ( ९ ) अष्टी (वर्षणैका अजाव नहोवे) ( १० ) डुर्निद्र नहोवे ( ११ ) स्वचक्र परचक्रका जय नहोवे ए इग्यार अतीशय ज्ञानावरणीय आदि चार घाति कर्मोंके ह्य होनेसे उत्पन्न होतीहै अब ( १ ) आकाशमें धर्म प्रकाशक चक्र होताहै ( २ ) आकाशगत चामर ( ३ ) आकाशमें पाद पीठ सहित रंफटिक मय सिंहासन होताहै ( ४ ) आकाशमें तीन ठत्र ( ५ ) आकाश में रत्नमय ध्वज ( ६ ) जव जगवान चलतेहै तव पगके हेठ सुवर्ण कमल देवता रच देतेहै ( ७ ) समवसरणमे रत्न सुवर्ण औ रूपामय तीन कोट मनोहर होतेहैं ( ८ ) समवसरणमे प्रभुके चार मुख दीखतेहै ( ९ ) अशोक वृक्ष ठाया करताहै ( १० ) कांटे अयोमुख हो जातेहै ( ११ ) वृक्ष ऐसे नमृत होतेहै मानो नमस्कार करतेहै ( १२ ) उच्चनादें डडनि जुवन व्यापक नाद ध्वनी करतीहै ( १३ ) पवन सुखदाइ चलतीहै ( १४ ) पंही प्रदहणा देतेहैं ( १५ ) सुगंध पाणीकि वर्षा होतीहै ( १६ ) गोडे प्रमाण पंच वर्षके फूजोकी वर्षा होतीहै ( १७ ) केश भाढी मुंठ नख अवस्थित रहतेहै ( १८ ) चार प्रकारके देवता जघन्यसें जघन्य जगवतके पास एक कोटी होतेहै ( १९ ) पटक्रतु अनुकूल गुन स्पर्श रस गंध रूप शब्द ए पांचो धुरेतो जुन हो जातेहै और अछे प्रगट होजातेहै ए उगणीश अतीशय देवता करते हैं मतांतर तथा वांचनातरमें कोइ कोइ अतीशय अन्य प्रकारसेवीहै ए पूर्वोक्त चार मूलातिशय और आठ प्रातिहार्य एवं वारां गुणा करी विराजमान थईत जगवत परमेश्वरहै औ अछारह दूषण करके रहितहै सो अछारह दूषणोका नाम दो श्लोक करके लिखीयेहै.

अंतरायदानलाज, वीर्यनोगोपज्ञोगगाः ॥ हासो रत्नरतीजोति, जुंयु  
प्ला शोक एवच ॥ १ ॥ कामो मिय्यात्वमज्ञान, निडा चाविरतिस्तथा ॥  
रागो द्वेषश्च नो दोषा, स्तेपामष्टादशाप्यऽमी ॥ २ ॥ इन दोनो श्लोकोंका

अर्थ ( १ ) दान देणेमें अंतराय ए प्रथम दोषः ( २ ) लाजगत अंतराय ( ३ ) वीर्यगत अंतराय ( ४ ) जो एक वेरी नोगीये सो नोग पुष्पमाला दि तजतो अंतराय सो नोगातराय ( ५ ) वार वार नोगणेमे आवे रुयादि घरादि कंरुण कुंमलादि तजतांतराय सो उपनोगांतराय ( ६ ) हास्य (ह संना) ( ७ ) पदार्थोंके उपरि प्रीति (रति) ( ८ ) रतिसे विपरीत सो अरति ( ९ ) जय सप्त प्रकारका ( १० ) जुगुप्सा ( घृणा ) मलीन व स्तुकुं देखकर नाक चढाणा ( ११ ) शोक ( चित्तका वैधूर्यपणा ) विकल पणा ( १२ ) काम ( मन्मथ ) स्त्री पुरुष नपुंसक इन तीनोंका वेद विकार ( १३ ) मिथ्यात्व ( दर्शनमोह ) ( १४ ) अज्ञानं ( मूढपणा ) ( १५ ) निडा (सौंतां) ( १६ ) अविरति (प्रत्याख्यान रहित) ( १७ ) राग (पूर्व सुख तिसके साधनेमे गृहि पणा) ( १८ ) द्वेष (पूर्व दुःखांका स्मरण औ पूर्व दुःखमे वा तिसके साधन विषय क्रोध) येह अछारह दूषण जिनमे नही सो अर्हत जगवत परमेश्वरहै इन अछारह दूषण मेसे एकबी दूषण जिसमे होगा सो कटेनी अर्हत जगवत परमेश्वर नही हो सक्ता ॥ प्रथम पांच विघ्न जिस मे लग रहेहै सो परमेश्वर क्युं कर हो सक्ताहै ?

प्रश्न - दानातरायके नष्ट होनेसे क्या परमेश्वर दान देताहै ? अरु लाजांतरायके नष्ट होनेसे क्या लाज परमेश्वरकों होताहै ? तथा वीर्यांतरायके नष्ट होनेसे क्या परमेश्वर सक्ति दिखलाता है ? तथा नोगातरायके नष्ट होनेसे क्या परमेश्वर नोग करताहै ? उप नोगातरायके नष्ट होनेसे एतावता क्युं होनेसे क्या परमेश्वर उपनोग करतेहै ?

उत्तर पूर्वोक्त पांच विघ्नके क्युं होनेसे जगवतमें पूर्ण पांच शक्तियां प्रगट होतीयांहै जैसे निर्मल चक्रका पटलादिक बाधकोंके नष्ट होनेसे देखनेकी शक्ति प्रगट होतीहै चाहे देखे चाहे नदेखे परंतु शक्ति विद्यमान है तैसेंही अर्हत जगवतके पांच शक्तियां प्रगट होतीयाहै पीठे दानादि चाहे करे चाहे नकरे परंतु शक्ति विद्यमानहै जो पांच शक्तियोंसे रहित होगा सो परमेश्वर कैसें होसक्ताहै ?

६ ठाठा दूषण "हसना" हास्यजो आताहैसो अपूर्व वस्तुके देखनेसे वा अपूर्व वस्तुके सुननेसे वा अपूर्व आश्चर्यके अनुभवके स्मरणसे इत्यादिक हास्यके निमित्तहै औ हास्यका मोहकर्मकी प्रकृतिरूप उपादान कारणहै

सो ए दोनोही कारण अर्हत जगवंतमे नहीहै प्रथम निमित्तकारणका संज्ञ व कैसें होवे अर्हत जगवत सर्वज्ञ सर्व दर्शीहै उनके ज्ञानमे कोइ अपूर्व ऐसी वस्तु नही जिसके देखे सुने अनुभव आश्चर्य होवे इसते कोइजी हास्यका निमित्त कारण नही औ मोह कर्मतो अर्हत जगवतने सर्वथा कृपा कखाहै सो उपादान कारण कथुंकर संज्ञवे इस हेतुसे अर्हतमें हास्य रूप दूषण नही औ जो हसनशील होगा सो अवश्य असर्वज्ञ असर्वदर्शी औ मोहकरी संयुक्त होगा सो परमेश्वर कैसें होवे?

७ सातमा दूषण रति जिसकी प्रीति पदार्थों उपर होगी सो अवश्य सुंदर शब्द रूप गंध रस स्पर्श स्त्री आदिके उपर प्रीतिमान होगा जो प्रीतिमान होगा सो अवश्य उस पदार्थकी लालसा वाला होगा अरु जो लालसा वाला होगा सो अवश्य उस पदार्थकी अप्राप्तिसें दुःखी होगा सो अर्हत परमेश्वर कैसें होसकाहै ?

८ आठमां दूषण अरति जिसकी पदार्थों उपर अप्रीतिहोगी सोतो आपही अप्रीतिरूपोये दुःखकरी दुःखीयाहै सो अर्हत जगवंत कैसें हो सके ?

९ नवमा दूषण "जय" सो जिसने आपणाही जय दूर नही कीया सो अर्हत परमेश्वर कैसें होवे ?

१० दशमां दूषण जुगुप्साहै सो मलीन वस्तुकुं देखके घृणा करणी (नाक चढाणी) सो परमेश्वरके ज्ञानमे सर्ववस्तुका जासन होताहै जो परमेश्वरमे जुगुप्सा होवेतो बडा दुःख होवे इस कारणते जुगुप्सामान अर्हत जगवंत कैसें होवे ?

११ इगारमां दूषण शोक है सो जो आपही शोक वालाहै सो परमेश्वर नही ?

१२ वारवा दूषण कामहै सो आपही जो विषयीहै स्त्रीयोके साथ जोग करताहै तिस विषयान्जिलापीकुं कोन बुद्धिमान पुरुष परमेश्वर मानताहै ?

१३ तेरवा दूषण मिथ्यात्व है सो जो दर्शनमोह करी जित्तहै सो जगवतनही.

१४ चौदवा दूषण अज्ञान है सो जो आपही मूटहै सो अर्हत जगवत नही.

१५ पदरवा दूषण निडा है सो जो निडामे होता है सो निडामे कुछ नही जानता औ अर्हत जगवानतो सदा सर्वज्ञ है सो निडवान् कैसें होवे ?

१६ शोलमां दूषण अप्रत्याख्यान है सो जो प्रत्याख्यान रहित है सो स  
र्वाजिजापी है सो तृष्णा वाला कैसे अर्हत जगवत होसके ?

१७-१८ सत्तारवां ओ अचारवां ए दोनो दूषण राग अरु द्वेष हे सो  
राग द्वेषवान मध्यस्थ नहीं होता अरु जो रागी द्वेषी होता है तिसमें  
क्रोध मान मायाका संभव है जगवान तो वीतराग, सम शत्रु मित्र, सर्वजी  
वो पर समबुद्धि, न किसीकूं दुःखी अरु न किसीकूं सुखी करे, जेकर दुःखी  
सुखी करतेतो वीतराग करुणा समुद् कदेइ नहोसक्ता इत कारणतें राग द्वेष  
वाला अर्हत जगवंत परमेश्वर नहीं ए पूर्वोक्त अचारद्व दूषण रहित अर्ह  
त जगवंत परमेश्वरहै अपर कोइ परमेश्वर नहीं

अथ अर्हतके नाम दो श्लोकों करि लिखतेहै.—अर्हन् जिन पारगत  
स्विकालवित् क्लीणाष्टकर्मा परमेष्ठयधीश्वर ॥ शंछुः स्वयंभूजगवान् जगत्प्र  
भु, स्तीर्यकरस्तीर्यकरो जिनेश्वर. ॥ १ ॥ स्याद्वाद्यऽन्यदसर्वा सर्वज्ञः  
सर्वदर्शि केवलिनौ । देवादिदेव बोधिद पुरुषोत्तम वीतरागाऽऽ ॥ २ ॥ इन  
दोनो श्लोकोंका अर्थ —( १ ) चौतीश अतीशय करी सबसें अग्रिक होने  
सें सुरेंद्र आदिकोंकी करी दुइ अष्ट महा प्रातिहार्या जन्म स्नात्रादि पूजा  
के जो योग्य है सो अर्हन् अथवा ज्ञानावरणीयादि आठ कर्म रूप वैरी ह  
ननेसें अर्हन् अथवा वध्यमान कर्म रजके हननेसे अर्हन् अथवा नहीं है  
कोइ पदार्थ ठाना जिनोके ज्ञानमे सो अर्हन् तथा नामांतरमें अरुहन्  
नहीं उत्पन्न होना नवरूपी अंकूर जिनोके सो अरुहन् ए प्रथम नाम (१)  
जीते है राग द्वेष मोहादि अष्टादश दूषण जिसने सो जिन ए द्वितीय  
नाम. (२) संसारके अथवा प्रयोजन जातके, ( प्रयोजन मात्रके ) पारपर्य  
त ब्रेह्मेको गत ( प्राप्त ) हुआ है एतावता संसारमे जिनका कोइ प्रयोजन  
नहीं सो पारगत ए तृतीय नाम (४) नूत, नविष्य, वर्त्तमान, इन तीनों  
कालोंकूं जो जाणे सो त्रिकालवित्. ए चतुर्थ नाम (५) क्लीणानि क्य  
हूये है आठ ज्ञानावरणीय आदि कर्म जिसके सो क्लीणाष्टकर्मा ए पंचम  
नाम. ( ६ ) परमेश्वर पदे तिष्ठतीति परमेष्ठी परम उत्कृष्ट पदमे जो रहे  
है सो परमेष्ठी ए षष्ठ नाम. (७) जगतका ईश्वर (स्वामी) सो अधीश्वर ए  
सप्तम नाम. (८) शं शास्वतं सुखं तिसमे जो होवे सो शंछु ए अष्टम नाम.  
( ९ ) स्वयं आपही आपणी आत्मा करके तथा नव्यत्वादि सामग्रीके प



रिपक होणोसे परंतु परके उपदेशसे नही यह तिसही जवकी अपेक्षाक  
 कयन् है ऐसाजो होवे सो स्वयंजु ए नवम नाम. (१०) जग शब्दके चौदह  
 अर्थ हे तिनमेसे अर्के औ योनि ए दो अर्थ वर्जके ग्रेष वारां अर्थ ग्रहण  
 करणा तिसका नाम कहते है. (१) ज्ञानवत, (२) माहात्म्यवत, (३)  
 शास्वत वैरीयांके वैर उपगमनेते यशस्वि, (४) राज्य लक्ष्मीके त्यागणे  
 से वैराग्यवत, (५) मुक्तिवत, (६) रूपवत, (७) अनंतवल हाणोसे  
 वीर्यवत, (८) तप करनेमे उत्साह वान होनेसे प्रयत्नवत, (९)  
 इच्छावत सो ससार सेती जीवांका उदार करणेमे इच्छावंत, (१०) चौतीश  
 अतिगय रूप लक्ष्मी करी बिराजमान होणेसे श्रीमत, (११) धर्मवत,  
 (१२) अनेक देव कोटि करी सेव्यमान होनेसे ऐश्वर्यवत ए वारा अर्थ  
 करी सयुक्त सो जगवान् ए दशम नाम. (११) जगत प्रभु ए एकादशम  
 नाम (१२) तरीये संसार समुद्र जिस करेके सो तीर्थ प्रवचनका आवा  
 र चार प्रकारका संघ अथवा प्रथम गणधर तिसके करणेका है शील जि  
 सका सो तीर्थकर, एद्वादशम नाम, (१३) रागादिकोंके जीतनेहारे  
 जिन (केवली) तिनका जो ईश्वर सो जिनेश्वर ए त्रयोदशम नाम. (१४)  
 स्यात् एहजो अव्यय है सो अनेकातका वाचक है वस्तुकों अनेकात पणे  
 अनेक स्वरूपे कहणेका शील है जिनका सो स्याद्वादि ए चतुर्दशम नाम.  
 (१५) अनयद नय जो है सो सात प्रकारका है (१) मनुष्यादिकों  
 को मनुष्यादि स्वजातीयसे अर्थात् एक मनुष्यकूं अन्य मनुष्य सेति  
 जो नय होवे सो इहलोक नय, (२) विजातीय तिर्यंच देवतादिक  
 सेती जो नय होवे सो परलोक नय, (३) आदान नय सो आदान क  
 द्विये धन तिस धनके कारणे चोरादिक सेती जो नय होवे सो आदान  
 नय, (४) बाहिरले निमित्त विना घरादिको विपे वैठेक रात्रि आदिक  
 विपे जो नय होवे सो अकस्मात् नय, (५) आजीविका नय सो में नि  
 र्दनहुं कैसे पुनिहादिहमे अपने आपकूं पारण एसाजो नय सो  
 आजीविका नय, (६) मरणसे नय सो एह प्रसिद्ध है  
 (७) अश्लावा नय अयशका नय सो में ऐसे मरणसे अ  
 यश होगा अयशके नयमें प्रवचन अश्लावा  
 का नय इसका जो विपद्ही सो

का स्वास्थ्यपणा निश्रेयस धर्मनिबंधन जूमिकाचूत तिस गुणके प्रकर्षते  
 अचिंत्य शक्ति युक्त होणेसें सर्वथा परहितकारी होणेसें ऐसा अन्नय  
 देवे सो अन्नयद् ए पंचदशम नाम. ( १६ ) सार्वीः सर्व प्राणीयोके  
 तांs जो हित सो सार्वी ए षोडशम नाम. ( १७ ) सर्वज्ञ सर्वजो जाणे सो  
 सर्वज्ञ. ए सप्तदशम नाम. ( १८ ) सर्वजो देखे सो सर्वदर्शि, ए अष्टादशम  
 नाम. ( १९ ) सर्वथा प्रकारें कर्मावरणके दूर होनेसे, जो चेतन स्वरूप प्रगट  
 नया "केवल" केवलज्ञान है इसके सो केवली. ए एकोनविसतिस नाम. ( २० )  
 देवताओंका जो अधिपति सो देवो देवाधिदेव ए विसतिस नाम. ( २१ )  
 बोधिः जिनप्रणीत धर्मकी प्राप्ति तिसकूं जो देवे सो बोधिद् ए एकविंसति  
 म नाम. ( २२ ) पुरुषा मांहे उत्तम सहज तथा जव्यत्वादि जव करी  
 श्रेष्ठ सो पुरुषोत्तम ए षाविंसतिस नाम. ( २३ ) बीतो गतो रागो अस्मा  
 त् इति बीतराग ए त्रयोविसतिस नाम. ( २४ ) आप्त हितोपदेशक होणेसें  
 आप्त कहियें ए चतुर्विसतिस नाम. इत्यादिक हजारो नाम परमेश्वरके है  
 ए पूर्वोक्त सर्व परमेश्वरका स्वरूप श्रीहेमचंदाचार्य कृत ग्रंथोके अनुसार  
 तथा समवायांग राजप्रश्रीय प्रमुख शास्त्रोंके अनुसार लिखे है अन्यथा जि  
 नसहस्रनाम ग्रंथमे तो एकहजार आठ नाम अन्वयार्थ सहित कहे है, सर्व  
 नाम व्युत्पत्ति सहित अर्हंत परमेश्वरके है, सो अर्हंत पद तो एक अना  
 दि अनंतहै, परंतु इसपदके धारक जीव अनंत अतीत कालमे होगये है  
 क्युंके एकैक उत्सर्पिणि अवसर्पिणि कालमे नारत वर्षमे चोवीश चोवी  
 श जीव अर्हंत पदकूं धारकर पीठे सिद्धपदकूं प्राप्त हो गयें है.

इस वर्तमान अवसर्पिणिसें पिबलि उत्सर्पिणीमे जो जीव अर्हंत  
 पदके धारक हुये है. तिनके नाम ( १ ) केवलज्ञानी ( २ ) नीर्वाणी  
 ( ३ ) सागर ( ४ ) महायश ( ५ ) विमल नाथ ( ६ ) सर्वानुचूति ( ७ )  
 श्रीधर ( ८ ) दत्त ( ९ ) दामोदर ( १० ) सुतेज ( ११ ) स्वामि ( १२ )  
 मुनिमुव्रत ( १३ ) सुमति ( १४ ) शिवगति ( १५ ) अस्ताग ( १६ ) नेमीश्वर  
 ( १७ ) अनिल ( १८ ) यशोधर ( १९ ) कृतार्थ ( २० ) (जिनेश्वर ( २१ )  
 शुद्धमति ( २२ ) शिवकर ( २३ ) स्थंदन ( २४ ) संप्रति ॥

११ 'श्रेयान्समस्तञ्चवनस्यैवहितकरः प्राकृतशैल्याठांदसत्वाच्चश्रेयांसस्त्पुञ्जते" सर्व जगतको जो हित करे सो श्रेयांस तथा "यद्वागर्नस्येअस्मिन् केनापिनाक्रांत पूर्वीदेवताधिष्ठितशय्याजनन्याआक्रांततेतिश्रेयोजातमितिश्रेयांसः" जगवान् जब गर्नमेंथे, तदा जगवतके पिताके घरमे देवताधिष्ठित शय्याथी उस उपरि जो वैठताथा उसहीकू असमाधि उत्पन्न होतीथी, जगवतकी माताकूं उसी शय्या उपरि सोनेका ढोहद उत्पन्न हूया, माताउसी शय्या उपरि सूती देवता शांति जया उपडव नक्या इस हेतुसैं श्रेयांस/११

१२ "तत्रवसूनांपूज्य.वसुपूज्यः वसवोदेवा" वसुओंकर जो पूज्यनीक होवे सो वसुपूज्यः वसु कहियें देवता "वसुपूज्यनृपतेरपत्यं वासुपूज्यः" वसुपूज्य नामा राजेका जो पुत्र सो वासुपूज्य "वासवो देवराया तस्त गप्पगयस्त अजिस्करणं अजिस्करणं जणणीए पूयंकरेति तेणवासुपुद्योति अहवा वसूणि रयणाणि वासवो वेसमणो सो गप्पगए अजिस्करणं अजिस्करणं तं रायकुजं रयणेहिं पूरेयत्ति वासुपुद्योत्ति ॥ अस्थार्थः/वासव नाम इंद्रका है सो जगवान् जब गर्नमें थाये तदा वार वार इंद्रने जगवतकी माताकूं पूज्या, इस कारणसैं वासुपूज्य/अथवा वसु कहिये रतन अरुवासव नाम है वैश्रमणका सो वैश्रमण यदा जगवान् गर्नमेथे तदा वार वार तिस राजाके कुलकूं रत्ना करी पूरण करता जया इस हेतुसैं वासुपूज्य ॥ १२ ॥

१३ "विगतोमलोऽस्यविमल. विमलज्ञानादियोगाद्वाविमलः" दूरदूआ है अष्ट कर्मरूप मल जिसका सो विमल अथवा निर्मल ज्ञानादि योगसे विमल "यद्वागर्नस्येमातुर्मतिस्तनुश्रविमलाजातेतिविमल" तथा जगवान् यदा गर्नमेंथे, तदा माताकी बुद्धि अरु शरीर ए दोनु निर्मल हो गये इस कारणे "विमल" नाम जानना/॥ १३ ॥

१४ "नविद्यतेगुणानामंतोऽस्यअनंत. अनंतकर्मांशजयादानंत' अनंतानिवाज्ञानादीनियस्येत्यनंत." नही जाणिये है गुणका अंत जिसका सो अनंत, अथवा अनंत कर्मांस जीतनेसे अनंत, अथवा अनंत है ज्ञानादि गुण जिसके सो अनंत "रयणविचित्तं रयण, स्ववियं अणंत अतिमह पमाणं ॥ दामं सुमिणे जणणीए, दिंठं तउ अणंतोत्ति" रत्न विचित्र रत्नजडि

त अति मोटी दाम माला स्वप्नमे माताने देखी तिस कारणे अनन्ता ॥ १४ ॥

१५ “दुर्गतौ प्रततं सत्त्व संघातं धारयतीतिधर्मः”/दुर्गतिमें पडतां जीवांके समूहकूं जो धारण करे सो धर्म तथा “गर्भस्थेजननीदानादिधर्मपराजातेति धर्मः” परमेश्वरके गर्भमे आवणसे माता दानादिक धर्ममे तत्पर नयी इस कारणे धर्म नाम ॥ १५ ॥

१६ “शांतियोगात्तदात्मकत्वात्तत्कर्तृकत्वाच्चायंशांतिः”/शांतिके योगसें वा शांति रूप होणेसें वा शांति करणेसें शांति तथा “गर्भस्थेपूर्वोत्पन्नाशिवं शांतिरजूदितिशांतिः” तथा गर्भमे जगवान्के उत्पन्न होणेसे पूर्वं जो अशिव उत्पन्नया, सो शांति होगया इस कारणे शांति नाम ॥ १६ ॥

१७ “कुःपृथ्वी तस्यांस्थितिचानितिकुंशुः पृषोदरादित्वात्” कु नाम पृथ्वी का है तिस पृथ्वीमे जो स्थित होता नया सो कुंशु तथा “गर्भस्थे जगवतिजननीरत्नानां कुंशुराशिदृष्टवतीतिकुंशुः”/जगवतके गर्भमे स्थित हूया माता रत्नमयी कुंशुओंकी राशि देखती नइ इस हेतुसें कुंशु ॥ १७ ॥

१८ “सर्वोत्तममहासत्वः, कुलेयउपजायते तस्यानिवृक्षायब्रूवै, रसारवरउदाहृतः ॥ १ ॥ इतिवचनादर ” सर्वसें उत्तम महासात्विक कुलमे जो उत्पन्न होवे, और तिस कुलकी वृद्धिके ताइ है तिसकुं वृक्ष पुरुष, प्रधान अर कहते है तथा “गर्भस्थेजगवतिजनन्यास्वप्नेसर्वरत्नमयोऽरोदृष्टइत्यपरः”/तथा जगवतके गर्भमे स्थित होया माताने स्वप्नमे सर्व रत्न मयी अर देख्या इस कारणसे अर इति नाम ॥ १८ ॥

१९ “परीसादिमहजयनान्निरुक्तान्मह्वि” परीसहादि मह्वोके जीतनेसे मह्वि तथा ‘गर्भस्थे जगवतिमातु सुरनिकुसुममाढ्यशयनीयदोहदोदेवतया पूरितइति “मह्वि” तथा/जगवतके गर्भमे स्थित हूया जगवतकी माताकूं सुगंध वाले फूलोकी मालाकी सख्या उपरि सोनेका दोहद उत्पन्न नया, सो देवताने पूरण कीया इस कारणसे मह्वि ॥ १९ ॥

० “मन्यतेजगतस्त्रिकालावस्थामितिमुनिः शोचनानिब्रतान्यस्येतिमुव्रत. आसौसुव्रतश्चमुनिसुव्रत ” मानेजो जगतकूं तीनोही कालमे सो “मुनि” है व्रत जिसके सो सुव्रत ए दोनो पद एकठे करणेसें मुनिसुव्रत तथा

“गर्भस्थेजननीमुनिवत्सुव्रताजातेतिमुनिसुव्रतः”/तथा जगवतके गर्भमे स्थित दूया माता मुनिकी तरें जले व्रत वाली होतीजइस हेतुसें मुनिसुव्रत ॥१०

११ “परीसहोपसर्गादीनां नामनात्नमेस्तुवेतिविकल्पेनोपांत्यस्थेकारानावपक्वेनमिः” परीसह उपसर्गाकूं नमावणोसे नमि तथा “यद्वागर्भस्थे जगवति परचक्रनृपैरपिप्रणति. कृतेतिनमि”/ जगवतके गर्भमे स्थित होण वैरी राजार्योनेजी नमस्कार करी इस कारणसें नमि ॥ ११ ॥

१२ “धर्मचक्रस्यनेमिवत्नेमिः” धर्मचक्रकी धारावत् सो नेमि तथा “गणगएतस्तमायाए, रिचरयणामउमहृतिमहाजव नेमि ॥ उष्ययमाणो सुमिणदिष्ठोत्ति तेणसेरिष्ठनेमिति नामंकयंति” तथा/जगवतके गर्भगत दूया मताने अरिष्ट रत्नमय वडा मोटा नेमी (चक्रधारा) आकाशमे उत्पत साखप्रमें देख्या तिस कारणे अरिष्ट नेमि नाम कहा ॥ १२ ॥

१३ “स्पृशतिज्ञानेनसर्वजावानितिपार्श्वः” स्पर्श जाणे सर्व पदार्थोंकूं कृ न करी सो पार्श्व तथा “गर्भस्थेजनन्यानिशिशयनीयस्थयांऽधकारेसर्पदृष्टइतिगर्जानुजावोयमितिपञ्चतीतिनिरुक्तात्पार्श्वः पार्श्वोअस्यवैयावृत्त्यारोयकृस्तस्यनाथः पार्श्वनाथ जीमोजीमसेनइतिन्यायाद्वापार्श्वः”/तथा जगवतके गर्भमे स्थित होणोसे माता निशि रात्रिमे शय्या उपर बैठीने अरिमे जाता दूया सर्प देख्या माता पिताने विचास्या जो ए गर्भका प्रजा है देखे सो पार्श्व. अथवा पार्श्व नामा वैयावृत्त करणहारा देवता तिका जो नाथ सो पार्श्व नाथ ॥ १३ ॥

१४ “विज्ञोपेणईरयतिप्रेरयतिकर्माणीतिवीरः”/विज्ञोप करके प्रेरेंजो कर्म कूं सो वीर तथा वडे उग्र परीसह उपसर्ग सहणोसें, देवताने नाम कक श्रमण जगवान् महावीर तथा माता पिताका नाम दीया बर्द्धमान् ॥१४

इस प्रकार यह अवसर्पिणीमे जो तीर्थकर हो गये तिनोके नाम अफिस हेतुसे यह नाम रक्कगये सो समाप्त हूये.

यह चौवीश तीर्थकर है इनमें सुं बावीश अर्हंततो इहवाकु कुजमे तपन्न हूये है एतावता रूपन देवकी संतानमे है, इहवाकु कुज रूपनदेवसें प्रसिद्ध है. यह स्वरूप आगे चलकर जिखेंगे और एठ तो वीशमे मुनि

मुव्रत स्वामी तथा दूसरा बावीशमें श्रीअरिष्टनेमि जगवान्, ए दोनो तीर्थ हर हरिंशमे उत्पन्न हूये थे तथा इन चोवीसों तीर्थकरोंमें ठाठा पद्मप्रज प्रौर बारहवा वासुपूज्य ए दोनो तीर्थकर रक्तवर्ण शरीर वाले हूये है तथा आठवां चड्प्रज और नवमे सुविधिनाथ ( पुष्पदंत ) ए दोनो तीर्थ हर, स्वेत वर्ण स्फटिक वत् उज्वल शरीर वाले हूये है, तथा उन्नीसवा म छेनाथ और तेइसवां पार्श्वनाथ ए दोनो तीर्थकर, हरित वर्ण शरीर वाले हूये है, तथा बीसवां मुनिसुव्रत स्वामी और बावीसवां अरिष्टनेमि जगवान् ए दोनो तीर्थकर स्यामवर्ण अलसीके फूलवत् रंगवाले शरीरके धारक हूये है अरु शेष शोलां तीर्थकर सुवर्णवर्ण शरीरवाले हूये हैं.

अथ चोवीश तीर्थकरोंके चिन्ह उनके दक्षिण पगोंमें रहे हूये वा उनकी वज्रामे ए चिन्ह होते है अबनी इनकी प्रतिमाके आसनमे ए चिन्ह हो ने है, सो कहते है ( १ ) रूपनदेवजीके बैलका चिन्ह. ( २ ) अजितनाथ जीके हाथीका चिन्ह. ( ३ ) संनवनाथजीके घोड़ेका चिन्ह. ( ४ ) अग्निं इनजीके बंदरका चिन्ह. ( ५ ) सुमति नाथजीके क्रौंच पक्षीका चिन्ह. ( ६ ) पद्मप्रजजीके कमलका चिन्ह. ( ७ ) सुपार्श्वनाथजीके साथीयेका चिन्ह. ( ८ ) चड्प्रजजीके चंडमाका चिन्ह. ( ९ ) सुविधिनाथ ( पुष्पदंतजी ) के मकरका चिन्ह. ( १० ) शीतलनाथजीके श्रीवत्सका चिन्ह. ( ११ ) श्रेयासनाथजीके गैमेका चिन्ह. ( १२ ) श्रीवासुपूज्यजीके महिषीका चिन्ह. ( १३ ) श्रीविमलनाथजीके सूअरका चिन्ह. ( १४ ) अर्धनाथजीके बाजका चिन्ह. ( १५ ) धर्मनाथजीके वज्रका चिन्ह ( १६ ) शांति नाथजीके हरिणका चिन्ह. ( १७ ) कुंशुनाथजीके बकरेका चिन्ह. ( १८ ) अरुनाथजीके नंदावर्तका चिन्ह. ( १९ ) श्रीमछिनाथजीके कुंज का चिन्ह ( २० ) मुनिसुव्रत स्वामीजीके कबुका चिन्ह. ( २१ ) नमी नाथजीके नीले कमलका चिन्ह. ( २२ ) अरिष्टनेमिजीके शंखका चिन्ह. ( २३ ) श्रीपार्श्वनाथजीके सूर्यका चिन्ह. ( २४ ) श्रीमहावीरजीके सिंह का चिन्ह. यह चिन्ह चोवीश तीर्थकरोंके पगोमे होते है.

अथ चोवीश तीर्थकरोंके पितायोंके नाम तथा मतायोंके नाम कहतेहैं.  
१ नाजिनह्यत्यन्यायिनोहकारादिचिर्नीतिचिरितिनानिरंत्यकुजकरः, ( २ )

जिताःशत्रवोऽनेनजीतशत्रुः ( जीतेहै शत्रु जिसने सो जितशत्रु ) ( ३ )  
जिताश्चरयोऽनेनजितारिः ( जीतेहै वैरी जिसने सो जितारि ) ( ४ ) संघ  
तींद्रियाणिसंवरः ( वस करीया है इंद्रिया सो संवर, ( ५ ) सकलसत्वसंता  
पहरणात् मेघश्वमेघः ( सकल जीवाका संताप हरणसें मेघकी तरें मेघ,  
( ६ ) धरतिधात्रीमितिधरः ( धारण करे जो पृथ्वीकुं सो धर, ( ७ ) प्रतिष्ठा  
प्रति धर्मकार्ये प्रतिष्ठ. ( धर्मके कार्य कार्यमें जो रहै सो प्रतिष्ठ, ( ८ ) मह  
हतोपूज्यासेनाऽस्यमहासेनः ( मोटी पूजने योग्य है सेना जिसकी सो महासे  
न ) सचासौनरेश्वरश्च महासेननरेश्वरः, ( ९ ) शोचननाग्रीवाऽस्यसुग्रीव. ( नज  
है ग्रीवा जिसकी, सो सुग्रीव, ( १० ) दृढोरथो, स्यदृढरथः ( दृढ ( बलवान ) रथ  
जिसका सो दृढरथ, ( ११ ) विवेष्टिवलैः पृथिवीविष्णु. ( विवेष्टन कीया  
है पृथिवीकुं सैना करी जिसने सो विष्णु, ( १२ ) अथैराजनिर्वसुनिर्वसु  
पूज्यते इतिवसुपूज्यः सचासौराट्च वसुपूज्यगट् ( दूसरे राजाउने धर्म  
करी पूज्या सो वसुपूज्य राजा, ( १३ ) कृतवर्मानेन कृतवर्मा ( कखो है  
सनाह जिसने सो कृतवर्मा, ( १४ ) सिंहवत्पराक्रमवतीसेनास्य सिंहसे  
न ( सिंहकीतरे है पराक्रम वाली सेना जिसकी सो सिंहसेन, ( १५ ) ना  
तित्रिवर्गेणानुः सोजे है जो अर्थ काम अरु धर्म करके सो जानु, ( १६ )  
विश्वव्यापिनीसेनाऽस्यविश्वसेन ( जगतमे व्यापने वाली सेना है जिसके  
सो विश्वसेन सचासौराट्चविश्वसेनराट् ( १७ ) तेजसासूरश्वसूर ( तेज  
करके सूर्यवत् सो सूर, ( १८ ) शोचनदर्शनमस्यसुदर्शन. ( नजा है दर्  
जिसका सो सुदर्शन, ( १९ ) गुणपयसामाधारनूतत्वात् कुंजश्च कुंजः ( गु  
णरूप पाणीका आधारनूत दोषसे कुंजकी तरे कुंज, ( २० ) शोचनानि  
मित्राणिअस्यसुमित्र. ( नजे है मित्र जिसके सो सुमित्र, ( २१ ) विजयते  
शत्रुनितिजयः ( जीते हैं शत्रुओंकुं सो विजय, ( २२ ) गांजीर्येणसमुद्रस्या  
पिविजेतासमुद्रविजयः ( गांजीर्यता करी समुद्रकुं जीतने वाला समुद्रविजय,  
( २३ ) अश्वप्रधानासेनास्यअश्वसेनः ( घोडों करी प्रधान है सेना जिसकी  
सो अश्वसेन, ( २४ ) सिद्धार्था पुरुषार्था अस्यसिद्धार्थे ॥ ए रूपेण आदि  
चोवीस तीर्थकरोके क्रम करके चोवीस पिताओंके नाम कहै.

अथ चोवीश तीर्थकरोंकी माताओंके नाम लिखते हैं. ( १ ) मरुद्भिर्दी  
यतेस्तूयतेमरुदेवा ष्टषोदरादित्वात् तलोपःसुरदेव्यपि स्यात् ( देवतां करी जो  
तवीधे सा मरुदेवा सुरदेवी एतानी नाम है, ( २ ) विजयतेविजया ( ज  
यंतविजया, ( ३ ) सहअनेनजितारिस्वामिनावर्त्ततेसेना ( जितारिराजा  
हे साथ जो वर्त्त सा सेना, ( ४ ) सिद्धोऽर्थोऽस्याःसिद्धार्थाः ( सिद्धहूया  
हे अर्थ जिसका सा सिद्धार्थाः ( ५ ) मंगलहेतुत्वात्मंगला ( मंगलके हे  
तुनूत होनेसें मंगला, ( ६ ) शोचनासीमामर्यादाऽस्याः सुसीमा ( नली है  
पर्यादा जिसकी सा सुसीमा, ( ७ ) स्थेम्नापृथ्वीवपृथ्वी ( स्थिर है पृथ्वी  
ही तरे पृथ्वी, ( ८ ) लक्ष्मीशोनाऽस्त्यस्या लक्ष्मणा ( लक्ष्मीकीतरे  
शोना है जिसकी सा लक्ष्मणा, ( ९ ) धर्मकृत्येपुरमतेरामा ( धर्मकृत्यमें जो  
रामे सा रामा, ( १० ) नदतिसुपात्रेणनंदा ( वृद्धिवान् होवे जो सुपा  
त्रदान देणेसें सा नंदा, ( ११ ) विवेष्टिगुणैर्जगदिति विष्णुः ( लपेटे जो गु  
णा करी जगत् सा विष्णु, ( १२ ) जयतिसतीत्वेनजया ( उत्कृष्टपणेवर्त्त है  
नती पणे करी सा जया, ( १३ ) श्यामवर्णत्वात्श्यामा ( श्यामवर्ण  
होनेसें श्यामा, ( १४ ) शोचनंयशोऽस्याःसुयशा ( नला है यश जिसका  
ना सुयशा, ( १५ ) शोचनंव्रतमस्याःसुव्रतापतिव्रतत्वात् ( नला है व्रत  
जिसके सा सुव्रता, ( पतिव्रता होनेसें सुव्रता, ( १६ ) नचिरयतिधर्मका  
चिराः ( नही चिर करती धर्मकार्यों विषे सा अचिरा, ( १७ ) श्रीरि  
श्रीदेवीवदेवीप्रनाऽस्त्यस्याःश्री ( लक्ष्मीकी तरे प्रना है जिसकी सा श्री, ( १८ )  
देवीकी तरे प्रना है जिसकी सा देवी, ( १९ ) प्रनावतीप्रनावती. ( २० )  
पद्मश्वपद्मावती ( पद्मकी तरे पद्मावती, ( २१ ) धर्मबीजमितिवप्रा, ( २२ )  
शिवहेतुत्वात्शिवा ( निरुपश्व होणेके हेतुसें शिवा, ( २३ ) मनोऽज्ञत्वा  
दामा पापकार्येषुप्रतिकूल्या दामा ( मनोऽज्ञ होणेसें वामा ) अथवा पापकार्यो  
विषे प्रतिकूल होनेसें वामा, ( २४ ) त्रिणिज्ञानदर्शनचारित्राणिशलयति  
प्राप्नोतीतित्रिशला ( तीन ज्ञान दर्शन औ चारित्रकूं प्राप्ति होवे सा त्रिशला,  
इस क्रम करके रूपनादि चोवीश तीर्थकरोंके माताओंका नाम है ॥ अथ  
वा सुगमताके कारण चोवीश तीर्थकरोंके साथ बावन बोलका संबंध है  
जिसका स्वरूप यंत्र बंध लिखते है प्रथम बावन बोलका नाम लिखे है.



वाचन बोलका नाम कहते हैं.

१	श्रीतीर्थकरका नाम.	१८	गणधरोंकी संख्या.
२	चवणतिथि.	१९	साधुओंकी संख्या.
३	किस विमानसे आये.	२०	साधवीर्योंकी संख्या.
४	किस नगरीमें जन्म हुआ.	२१	वैक्रिय लब्धिवंतोंकी संख्या.
५	जन्म तिथि.	२२	अवधि ज्ञानीयोंकी संख्या.
६	पिताओंका नाम.	२३	केवल ज्ञानीयोंकी संख्या.
७	माताओंका नाम.	२४	मन.पर्यवज्ञानीयोंकी संख्या.
८	किस नक्षत्रमें जन्मे.	२५	चौदह पूर्वधारियोंकी संख्या.
९	जन्मराशि.	२६	वाडिओंकी संख्या
१०	लांठनका नाम.	२७	श्रावकोंकी संख्या.
११	शरीरके उच्च पणोका मान.	२८	श्राविकायोंकी संख्या.
१२	आयुके वर्षका प्रमाण.	२९	शासनके यज्ञोका नाम.
१३	शरीरका वर्ण.	३०	शासनके यज्ञणीयोंका नाम.
१४	पदवी.	३१	प्रथम गणधरका नाम.
१५	विवाहे के कुमारे ?	३२	प्रथम आर्याका नाम
१६	कितने जनोके साथ दीक्षा लीई	३३	मोक्ष होनेका स्थान
१७	दीक्षा कोनसी नगरीमें लीई.	३४	मोक्ष पोहोचनेकी तिथि.
१८	दीक्षा दिने कितना तप.	३५	मोक्ष दिने तप.
१९	प्रथम पारणे क्या आहार मिला	३६	मोक्ष जानेके आसन.
२०	प्रथम पारणेका घर	३७	परस्पर अंतरका मान.
२१	कितने दिनाका पारणा	३८	गण नाम.
२२	दीक्षाकी तिथि	३९	योनि नाम.
२३	उद्भवस्थ पणोका कालमान.	४०	मोक्ष परिवार.
२४	किस नगरीमें केवलज्ञान प्राप्त हुआ	४१	सम्यक्त्वपायां पीठे सहोटे ज
२५	ज्ञानोत्पत्ति दिने क्या तप.	४२	किस कुलमें उत्पन्न हुआ.
२६	किम वृद्धके हेतु दीक्षा लीनी	४३	गर्भवासका कालमान.
२७	किस तिथिमें ज्ञान उत्पन्न हुआ.		

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थकरोमे कहते है.

१	श्रीतीर्थकरनाम.	१ श्रीरूपनदेव.	१ श्रीअजितनाथ	३ श्रीसंजवनाथ.
२	चवणतिथि	आपाढवदि ४	वैशाखशुदि १३	फाल्गुनशुदि ८
३	विमाननाम.	मर्वार्थसिदि	विजयविमान	उपरलाग्रैवेयक
४	जन्मनगरी.	विनीतानूमि	अयोध्या	सावडी
५	जन्मतिथि.	चैत्रवदि ८	माहशुदि ८	माहशुदि १४
६	पिताका नाम.	नानिकुलकर	जितशत्रु	जितारि
७	माताका नाम.	मरुदेवी	विजया	सेना
८	जन्मनक्षत्र.	उत्तरापाढा	रोहिणी	मृगशिर
९	जन्मराशि.	धन	वृष	मिथुन
१०	लांठननाम.	वृषज	हस्ती	अश्व
११	शरीरमान.	५००)धनुष	४५०)धनुष	४००)धनुष
१२	आयुमान.	८४)जह्नपूर्व	७२)जह्नपूर्व	६०)जह्नपूर्व
१३	शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण
१४	पदवी राजकी.	राजपदवी	राजपदवी	राजपदवी
१५	पाणिग्रहण.	विवाह दूया	विवाह दूया	विवाह दूया
१६	कितनेसाथ दीक्षा.	४०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७	दीक्षानगरी.	विनीता	अयोध्या	सावडी
१८	दीक्षातप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९	प्रथमपारणिकाया०	इक्षुरस	परमान्नक्षीर	परमान्नक्षीर
२०	पारनेका स्थान.	श्रेयासके घरे	ब्रह्मदत्तके घरे	सुरेन्द्रदत्तके घरे
२१	कितनेदिनफारणा	एकवर्षपीठे	दो दिन पीठे	दो दिनपीठे
२२	दीक्षातिथि.	चैत्रवदि ८	महावदि ९	मगसिरशुदि १५
२३	उद्गस्थकाल.	१०००)वर्ष	१२)वर्ष	१४)वर्ष
२४	ज्ञाननगरी.	पुरिमताल	अयोध्या	सावडी
२५	ज्ञानतप.	तीनउपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृह	वटवृह	सालवृह	प्रियालवृह
२७	ज्ञानतिथि.	फागुणवदि ११	पोषवदि ११	कर्तिकवदि ५

यह वाचन बोल प्रत्येक तीर्थकरोमें कहते हैं

३८	गणधरसंख्या.	८४)	ए५)	१०३)
३९	साधुओंकी संख्या	८४०००)	१०००००)	२०००००)
३०	साधवियोंकीसंख्या	३०००००)	३३००००)	३३६०००)
३१	वैक्रियलब्धिवंत.	२०६००)	२०४००)	१९८००)
३२	वादिओंकीसंख्या.	१२६५०)	१२४००)	१२०००)
३३	अवधिज्ञानीसंख्या.	९०००)	९४००)	९६००)
३४	केवलीसंख्या.	२००००)	२२०००)	१५०००)
३५	मनःपर्यवसंख्या.	१२३५०)	१२५५०)	१२१५०)
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	४७५०)	३७२०)	२१५०)
३७	श्रावकसंख्या.	३५००००)	२९८०००)	२९३०००)
३८	श्राविकासंख्या.	५५४०००)	५४५०००)	६३६०००)
३९	शासनयज्ञनाम.	गोमुखयज्ञ	महायज्ञ	त्रिमुखयज्ञ
४०	शासनयज्ञणी.	चक्रेश्वरी	अजितबला	दुरितारि
४१	प्रथमगणधरनाम.	पुमरीक	सिंहसेन	चारु
४२	प्रथमअर्यानाम.	ब्राह्मी	फाल्गु	श्यामा
४३	मोक्षस्थान.	अष्टपद	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि.	माघवदि १३	चैत्रशुदि ५	चैत्रशुदि ५
४५	मोक्षसंज्ञेपणा.	ठ उपवास	एक मास	एक मास
४६	मोक्षआसन.	पद्मासन	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग
४७	अंतर मान.	५०लाखकोटीसा	३०लाखकोटीसा	१०लाखकोटी
४८	गणनाम.	मानवगण	मानवगण	देवगण
४९	योनि नाम.	नकुजयोनि	सर्पयोनि	सर्पयोनि
५०	मोक्षपरिवार.	१००००)	१०००)	१०००)
५१	जवसंख्या.	तेर जव कखा	तीन जव कखा	तीन जव कखा
५२	कुजगोत्रनाम.	इक्ष्वागकुज	इक्ष्वागकुज	इक्ष्वागकुज
५३	गर्जकालमान.	नवमासचारदिन	८मास पच्चीशदि.	नवमास ठदिन

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोंमें कहते हैं

१	श्रीतीर्थंकरनाम.	४ श्रीअजिनंदन	५ श्रीसुमतिनाथ	६ श्रीपद्मप्रज
२	चवणतिथि.	वैशाखशुदि ४	श्रावणशुदि २	माघवदि ६
३	विमाननाम.	जयंतविमान	जयंतविमान	उवरिमत्रैवेयक
४	जन्मनगरी.	अयोध्या	अयोध्या	कौसुंबी
५	जन्मतिथि.	माघशुदि २	वैशाखशुदि ८	कार्तिकवदि १२
६	पिताका नाम.	संबरराजा	मेघराजा	श्रीधरराजा
७	माताका नाम.	सिद्धार्था	मंगला	सुसीमा
८	जन्म नक्षत्र.	पुनर्वसु	मघा	चित्रा
९	जन्मराशि.	मिथुन	सिंह	कन्या
१०	लांठनका नाम.	वंदरका	कौंचपट्टीका	पद्मकमलका
११	शरीरमान.	३५०)धनुष	३००)धनुष	२५०)धनुष
१२	आयुमान.	५०)लाखपूर्व	४०)लाखपूर्व	३०)लाखपूर्व
१३	शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	रक्तवर्ण
१४	पदवीराजकी.	राजा	राजा	राजा
१५	पाणिग्रहण.	परएथा	परएथा	परएथा
१६	कितनेसाथदीक्षा.	१०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७	दीक्षानगरी.	अयोध्या	अयोध्या	कौसुंबी
१८	दीक्षातप.	दो उपवास	नित्य नक्त	एक उपवास
१९	प्रथमपारणिकाया०	क्षीर	क्षीर	क्षीर
२०	पारनेका स्थान.	इन्द्रत घरें	पद्म घरें	सोमदेव घरें
२१	कितनेदिनकापारणा	दोदिन (२)	दोदिन (२)	दोदिन (२)
२२	दीक्षातिथि.	माघशुदि १२	वैशाखशुदि ९	कार्तिकवदि १२
२३	उद्भवस्थकाल.	अठारहवर्ष	वीशवर्ष	ठ मास
२४	ज्ञाननगरी.	अयोध्या	अयोध्या	कौसुंबी
२५	ज्ञानतप	दो उपवास	दो उपवास	चोष नक्त
२६	दीक्षावृत्त.	प्रियंगु वृत्त	साल वृत्त	उत्र वृत्त
२७	ज्ञानतिथि.	पोषवदि १४	चैत्रशुदि ११	चैत्रशुदि १५

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोंमें कहते हैं

१८	गणधरसंख्या.	११६)	१००)	१०७)
१९	साधुओंकीसंख्या.	३०००००)	३२००००)	३३००००)
२०	साधवीयोंकीसंख्या	६३००००)	५३००००)	४२००००)
२१	वैक्रियलब्धिवत्.	१९०००)	१८४००)	१६१०८)
२२	वादीओंकीसंख्या.	११०००)	१०४००)	९६००)
२३	अवधिज्ञानीसंख्या.	९८००)	११०००)	१००००)
२४	केवलीसंख्या.	१४०००)	१३०००)	१२०००)
२५	मनःपर्यवसरख्या.	११६५०)	१०४५०)	१०३००)
२६	चौदहपूर्वीसंख्या.	१५००)	१४००)	१३००)
२७	श्रावकसंख्या	२८८०००)	२८१०००)	२७६०००)
२८	श्राविकासंख्या.	५२७०००)	५१६०००)	५०५०००)
२९	शासन यद् नाम.	नायक यद्	तुंवरु यद्	कुसमय यद्
४०	शासनयद्णीनाम.	कालिका	महाकाली	श्यामा
४१	प्रथमगणधरनाम.	वज्रनाज	चरम	प्रद्योतन
४२	प्रथमआर्यानाम.	अजिता	काश्यपी	रति
४३	मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि.	वैशाखशुद्धि	चैत्रशुद्धि	मगसिरवदि
४५	मोक्षसजेपणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन.	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग
४७	अंतरमान.	एलाखकोडीसा.	ए०हजारकोडीस	ए०हजारकोडी
४८	गणनाम.	देवगण	राक्षसगण	राक्षसगण
४९	योनिनाम.	ठागयोनि.	मूपकयोनि	महिपयोनि
५०	मोक्षपरिवार.	१०००)	१०००)	३०८)
५१	नवसंख्या.	तीननवकीया	तीननवकीया	तीननवकीया
५२	कुजगोत्रनाम.	इहागकुज	इहागकुज	इहागकुज
५३	गर्भकालमान.	८मास २८ दिन	नवमामठदिन	नवमासठदिन

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थकरोंमें कहते हैं

१	श्रीतीर्थकरनाम.	७ श्रीसुपार्श्वनाथ	८ श्रीचंद्रप्रच	९ श्रीसुविधिनाथ
२	चवणतिथि.	नाडववदि ८	चैत्रवदि ५	फागणवदि ९
३	विमाननाम.	मद्यिमग्रैवेयक	विजयंत	आनतदेवलोक
४	जन्मनगरी.	वणारसी नगरी	चडपुरीनगरी	काकंदीनगरी
५	जन्मतिथि	ज्येष्ठशुदि १२	पोपवदि १२	मगसिरवदि ५
६	पिताका नाम.	प्रतिष्ठराजा	महासेनराजा	सुग्रीवराजा
७	माताका नाम.	पृथिवीमाता	लक्ष्मणामाता	रामाराणीमाता
८	जन्मनक्षत्र.	विशाखानक्षत्र	अनुराधानक्षत्र	मूलनक्षत्र
९	जन्मराशि	तुलराशि	वृश्चिकराशि	धनराशि
१०	लांठननाम.	साथीधाकालंठन	चडकालंठन	मगरमहकालंठन
११	शरीरमान	२००)धनुष	१५०)धनुष	१००)धनुष
१२	आयुमान.	२०)लाखपूर्व	१०)लाखपूर्व	२)लाखपूर्व
१३	शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	श्वेतवर्ण	श्वेतवर्ण
१४	पदवीराजकी	राजा	राजा	राजा
१५	पाणिग्रहण.	परएषा	परएषा	परएषा
१६	कितनेसाथदीहा.	१०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७	दीहानगरी	वनारसीनगरी	चडपुरीनगरी	काकंदीनगरी
१८	दीहातप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९	प्रथमपारणोकाआ०	ह्रीरकाचोजन	ह्रीरकाचोजन	ह्रीरका चोजन
२०	पारणोका स्थान.	माहेंड घरे	सोमदत्त घरे	पुष्प घरे
२१	कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीहातिथि.	ज्येष्ठशुदि १३	पोपवदि १३	मगसिरवदि ६
२३	उभयस्थकाल.	नव मास रह्या	त्रण मास रह्या	चार मास रह्या
२४	ज्ञाननगरी	वणारसी नगरी	चडपुरी नगरी	काकंदी नगरी
२५	ज्ञानतप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीहावृह.	सरीसवृह	नागवृह	सालीवृह
२७	ज्ञानतिथि.	फागणवदि ६	फागणवदि ७	कार्तिकशुदि ३

यह वाचन बोल प्रत्येक तीर्थकरोमें कहते हैं

२८	गणधरसंख्या.	ए५)गणधर	ए३)गणधर	८८)गणधर
२९	साधुओंकीसंख्या	३०००००)	२५००००)	२०००००)
३०	साधवीयोंकीसंख्या	४३००००)	३८००००)	१२००००)
३१	वैक्रियलब्धिवंत.	१५३००)	१४०००)	१३०००)
३२	वादिओंकीसंख्या.	८४००)	७६००)	६०००)
३३	अवधिज्ञानीसंख्या	ए०००)	८०००)	८४००)
३४	केवलीसंख्या.	११०००)	१००००)	७५००)
३५	मनःपर्यवसंख्या.	ए१५०)	८०००)	७५००)
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	२०३०)	२०००)	१५००)
३७	श्रावकसंख्या.	२५७०००)	२५००००)	२२ए०००)
३८	श्राविकासंख्या.	४ए३०००)	४७ए०००)	४७१०००)
३९	शासनयज्ञनाम.	मातंगयज्ञ	विजययज्ञ	अजिता यज्ञ
४०	शासनयज्ञणीनाम	शांता	नृकुटी	सुतारिका
४१	प्रथमगणधरनाम.	विदर्भ	दिन्न	वराहक
४२	प्रथमअर्थीनाम.	सोमा	सुमना	वारुणी
४३	मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि.	फागणवदि४	जाइवावदि४	जाइवावदि९
४५	मोक्षसंक्षेपणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन.	काउस्तग	काउस्तग	काउस्तग
४७	अंतर मान.	एसोकोडीसागर	ए०कोडीसागर	एकोडीसागर
४८	गणनाम	राक्षसगण	देवगण	राक्षसगण
४९	योनिनाम.	मृगयोनि	मृगयोनि	वानरयोनि
५०	मोक्षपरिवार.	५००)	१०००)	१०००)
५१	जवसंख्या.	तीन जव कीया	तीन जव कीया	तीन जव कीव
५२	कुजगोत्रनाम.	इद्दागकुल	इद्दागकुल	इद्दागकुल
५३	गर्भकालमान.	मासनवदिन १ ए	मासनवदिनसात	मास ८दिनबबीम

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थकरोमें कहेते हैं.

१	श्रीतीर्थकरनामः	१० शीतलनाथ	११ त्रैयांसनाथ	१२ श्रीवासुपूज्य
२	चवणतिथि.	वैशाखवदि ६	ज्येष्ठवदि ६	ज्येष्ठशुदि. ए
३	विमाननाम.	अच्युतदेवलोक	अच्युतदेवलोक	प्राणतदेवलोक
४	जन्मनगरी.	नदिलपुर	सिंहपुरी	चंपापुरी
५	जन्मतिथि.	महावदि १२	फागणवदि १२	फागणवदि १४
६	पिताका नाम.	दृढरथराजा	विष्णुराजा	वसुपूज्यराजा
७	माताका नाम.	नंदामाता	विष्णुमाता	जयामाता
८	जन्मनक्षत्र.	पूर्वाषाढा	श्रवणनक्षत्र	शतनिषानक्षत्र
९	जन्मराशि.	धनराशि	मकरराशि	कुंजराशि
१०	लांठननाम.	श्रीवत्सकालांठन	गेंमाका लांठन	पाढाका लांठन
११	शरीरमान.	नेवुं धनुष	अंशीधनुष	सीत्तरे धनुष
१२	आयुमान.	एकलाख पूर्व	(८४)लाख वर्ष	(७२)लाख वर्ष
१३	शरीरका वर्ष.	सुवर्णवर्ष	सुवर्णवर्ष	लालवर्ष
१४	पदवी राजकी.	राजा	राजा	कुमार
१५	पाणिग्रहण.	परण्या	परण्या	परण्या
१६	कितने साथ दीक्षा.	(१०००) साथ	(१०००) साथ	(६००) साथ
१७	दीक्षानगरी.	नदिलपुर	सिंहपुरी	चपापुरी
१८	दीक्षातप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९	प्रथमपारणिकाया	द्वीरनोजन	द्वीरनोजन	द्वीरनोजन
२०	पारनेका स्थान.	पुनर्वसुके घरें	नंदके घरें	सुनंदके घरें
२१	कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि.	महावदि १२	फागणवदि १३	फागणशुदि १५
२३	उद्गस्थकाल.	तीन मासरह्या	दो मासरह्या	एक मासरह्या
२४	ज्ञाननगरी.	नदिलपुर	सिंहपुरी	चपापुरी
२५	ज्ञानतप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृद्ध.	प्रियंगुवृद्ध	तडकवृद्ध	पामलवृद्ध
२७	ज्ञानतिथि.	पौषवदि १४	महावदि ३	महाशुदि ३



यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोंमें कहते हैं

३८	गणधरसंख्या.	८१)गणधर	७६)गणधर	६६)गणधर
३९	साधुओंकीसंख्या.	१०००००	८४०००	७२०००
३०	साधवीथोंकीसंख्या	१००००६	१०३०००	१०००००
३१	वैक्रियलब्धिवत्.	१२०००	११०००	१०००६
३२	वाढीओकीसंख्या.	५८००	५०००	४७००
३३	अवधिज्ञानीसंख्या.	७२००	६०००	५४००
३४	केवलीसंख्या.	७०००	६५००	६०००
३५	मनःपर्यवसरख्या.	७५००	६०००	६५००
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	१४००	१३००	१२००
३७	श्रावकसंख्या.	२८९०००	२७९०००	२१५०००
३८	श्राविकासंख्या.	४५८०००	४४८०००	४३६०००
३९	शासन यद्द नाम.	ब्रह्मायद्द	जङ्घेयद्द	कुमारयद्द
४०	शासनयद्दिणीनाम	अशोका	मानवी	चंदा
४१	प्रथमगणधरनाम.	नंद	कह्लप	सुचूम
४२	प्रथमआर्यानाम.	सुयशा	धारणी	धरणी
४३	मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	चंपापुरी
४४	मोक्षतिथि.	वैशाखवदि ३	श्रावणवदि ३	आषाढशुदि १४
४५	मोक्षसंलेपणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन.	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग
४७	अंतरमान.	एककोडीसागर	चोपनसागर	त्रीशसागर
४८	गणनाम.	मानवगण	देवगण	राक्षसगण
४९	योनिनाम.	नकुलयोनि	वानरयोनि	अश्वयोनि
५०	मोक्षपरिवार.	१०००)परिवार	१०००)परिवार	६००)परिवार
५१	जवसरख्या.	तीन जव कखा	तीन जव कखा	तीन जव कखा
५२	कुलगोत्रनाम.	इहागकुज	इहागकुज	इहागकुज
५३	गनेकालमान	मासनव दिन ठ	मासनव दिन ठ	मास८दिन २०

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थकरोंमें कहते हैं

१	श्रीतीर्थकरनाम.	१३ विमलनाथ	१४ अनंतनाथ	१५ श्रीधर्मानाथ
२	चवणतिथि.	वैशाखशुदि १३	श्रावणवदि ४	वैशाखशुदि ७
३	विमाननाम.	सहस्रारदेवलोक	प्राणतदेवलोक	विजयविमान
४	जन्मनगरी.	कंपिलपुरी	अयोध्या	रत्नपुरीनगरी
५	जन्मतिथि.	महाशुदि ३	वैशाखवदि १३	महाशुदि ३
६	पिताका नाम.	रुतवर्मराजा	सिंहसेनराजा	नानुराजा
७	माताका नाम.	श्यामामाता	सुयशामाता	सुवृतामाता
८	जन्म नक्षत्र.	उत्तरानाशुपद	रेवतीनक्षत्र	पुष्यनक्षत्र
९	जन्मराशि.	मीनराशि	मीनराशि	कर्कराशि
१०	लांठनका नाम.	वराहका लाठन	सीचाणाका लां०	वज्र लांठन
११	शरीरमान.	शाठ धनुष	पचाशधनुष	पीस्तालीशधनुष
१२	आयुमान.	शाठलाखवर्ष	त्रीशलाखवर्ष	दशलाखवर्ष
१३	शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण
१४	पदवीराजकी.	राजा	राजा	राजा
१५	पाणिग्रहण.	परण्या	परण्या	परण्या
१६	कितने साथदीक्षा.	१०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७	दीक्षानगरी.	कंपिलपुर	अयोध्या	रत्नपुरी
१८	दीक्षातप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९	प्रथमपारणोकाआ०	ह्रीरजोजन	ह्रीरजोजन	ह्रीरजोजन
२०	पारनेका स्थान.	जयराजाकेघरें	विजयराजाकेघरें	धनसिंहके घरें
२१	कितनेदिनकापारुणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि.	महाशुदि ४	वैशाखवदि १४	महाशुदि १३
२३	व्रतस्थकाल.	दो मास	तीन वर्ष	दो वर्ष
२४	ज्ञाननगरी	कंपिलपुरी	अयोध्या	रत्नपुरा
२५	ज्ञानतप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृद्ध.	जंबूवृद्ध	अशोकवृद्ध	दधिपणवृद्ध
२७	ज्ञानतिथि.	पौषशुदि ६	वैशाखवदि १४	पौषशुदि १५

यह वाचन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोंमें कहते है

१८	गणधरसंख्या.	५७)गणधर	५०)गणधर	४३)गणधर
१९	साधुओंकी संख्या	६८०००)	६६०००)	६४०००)
२०	साधवियोंकीसंख्या	१००८००)	६२०००)	६२४००)
२१	वैक्रियलब्धिवंत.	९०००)	८०००)	७०००)
२२	वादिओंकी संख्या.	३६००)	३२००)	२८००)
२३	अवधिज्ञानीसंख्या.	४८००)	४३००)	३६००)
२४	केवलीसंख्या.	५५००)	५०००)	४५००)
२५	मनःपर्यवसंख्या.	५५००)	५०००)	४५००)
२६	चौदहपूर्वासंख्या.	११००)	१०००)	९००)
२७	श्रावकसंख्या.	२०८०००)	२०६०००)	२०४०००)
२८	श्राविकासंख्या.	४२४०००)	४१४०००)	४१३०००)
२९	शासनयज्ञनाम.	पण्मुखयज्ञ	पातालयज्ञ	किन्नरयज्ञ
३०	शासनयज्ञिणी.	विदिता	अंकुशा	कंदर्पा
३१	प्रथमगणधरनाम.	मंदरगणधर	जस गणधर	अरिष्ट
३२	प्रथमअर्यानाम.	धरा	पद्मा	आर्यशिवा
३३	मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
३४	मोक्षतिथि.	आपाठवदि ७	चैत्रशुदि ५	ज्येष्ठशुदि ५
३५	मोक्षसंलेपणा.	एकमास	एकमास	एकमास
३६	मोक्षआसन.	काउस्तग्ग	काउस्तग्ग	काउस्तग्ग
३७	अंतर मान.	नवसागरोपम	चारसागरोपम	तीनसागरोप
३८	गणनाम.	मानवगण	देवगण	देवगण
३९	योनि नाम.	ठागयोनि	हस्तियोनि	मंजारयोनि
४०	मोक्षपरिवार.	६००)	७००)	१००)
४१	नवसंख्या.	तीननवकखा	तीननवकखा	तीननवकख
४२	कुजगोत्रनाम.	इहागकुज	इहागकुज	इहागकुज
४३	गर्भकालमान.	मास ८ दिन २१	मासनवदिन	८मास८दिन७

यह वाचन बोल प्रत्येक तीर्थकरोमें कहते हैं

श्रीतीर्थकरनाम.	१ श्रीशान्तिनाथ	१ श्रीकुण्डुनाथ	१ श्रीअरनाथ
चवणतिथि.	जाडवावदि ७	श्रावणवदि ९	फागणशुदि ३
विमाननाम.	सर्वार्थसिद्ध	सर्वार्थसिद्ध	सर्वार्थसिद्ध
जन्मनगरी.	गजपुर	गजपुर	गजपुर
जन्मतिथि.	ज्येष्ठवदि १३	वैशाखवदि १४	मगशिरशुदि १०
पिताका नाम.	विश्वसेन	सूरराजा	सुदर्शन
माताका नाम.	अचिराराणी	श्रीराणी	देवीराणी
जन्मनक्षत्र.	नरणीनक्षत्र	रुत्तिकानक्षत्र	रेवतीनक्षत्र
जन्मराशि.	मेघराशि	वृषराशि	मीनराशि
लांठननाम.	हरिणका लांठन	बकराका लांठन	नंदावर्तकालांठन
शरीरमान.	४० धनुष	३५ धनुष	३० धनुष
आयुमान.	एकलाखवर्ष	(९५०००) वर्ष	(८४०००) वर्ष
शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण
पदवीराजकी.	चक्रवर्ती	चक्रवर्ती	चक्रवर्ती
पाण्ड्यहण.	(६४०००) स्त्री	(६४०००) स्त्री	(६४०००) स्त्री
कितनेसाथदीक्षा.	(१०००) साधु	(१०००) साधु	(१०००) साधु
दीक्षानगरी.	गजपुर	गजपुर	गजपुर
दीक्षातप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
प्रथमपारणोकाआरा	क्षीरनोजन	क्षीरनोजन	क्षीरनोजन
पारणोका स्थान.	सुमित्रघरें	व्याघ्रसिंहघरें	अपराजितघरे
कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
दीक्षातिथि.	ज्येष्ठवदि १४	चैत्रवदि ५	मगशिरशुदि ११
उद्घ्नस्थकाल.	एकवर्ष	शोलवर्ष	तीनवर्ष
ज्ञाननगरी.	गजपुर	गजपुर	गजपुर
ज्ञानतप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
दीक्षावृद्ध.	नंदीवृद्ध	नीलकवृद्ध	आवाकावृद्ध
ज्ञानतिथि:	पौषशुदि ९	चैत्रशुदि ३	कार्तिकशुदि १२

यह वाचन बोल प्रत्येक तीर्थकरोमें कहते हैं

२८	गणधरसंख्या.	३६ गणधर	३५ गणधर	३३ गणधर
२९	साधुओंकीसंख्या	६२०००	६००००	५००
३०	साधवीयोंकीसंख्या	६१६००	६०६००	६००
३१	वैक्रियलब्धिवंत.	६०००	५१००	७३
३२	वादिओंकीसंख्या.	२४००	२०००	१६
३३	अवधिज्ञानीसंख्या	३०००	२५००	२६
३४	केवलीसंख्या.	४३००	३२००	२८
३५	मनःपर्यवसंख्या.	४०००	३३४०	२५
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	८००	६७०	६
३७	श्रावकसंख्या.	१९००००	१७९०००	१८४०
३८	श्राविकासंख्या.	३९३०००	३८१०००	३७२०
३९	शासनयज्ञनाम.	गरुडयज्ञ	गंधर्वयज्ञ	यक्षेदयज्ञ
४०	शासनयक्षिणीनाम	निर्वाणी	बला	धणा
४१	प्रथमगणधरनाम.	चक्रयुद्ध	सांव	कुंज
४२	प्रथमआर्यानाम.	सुचि	दामिनी	रक्षिता
४३	मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि.	ज्येष्ठवदि १३	वैशाखवदि १	मगशिरषुदि
४५	मोक्षसंलेपणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन.	काउस्तग	काउस्तग	काउस्तग
४७	अंतर मान.	० ॥ पत्योपम	० । पत्योपम	१०००क्रोड
४८	गणनाम.	मानवगण	राक्षसगण	देवगण
४९	योनिनाम.	हस्तियोनि	ठागयोनि	हस्तियोनि
५०	मोक्षपरिवार.	९०० परिवार	१००० परिवार	१००० परि
५१	नवसंख्या.	वारांनव कखा	तीननव कखा	तीननव कर
५२	कुजगोत्रनाम.	इहागकुज	इहागकुज	इहागकुज
५३	गर्भकालमान.	मासनवदिनठ	मासनवदिनपांच	मासनवदिन

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थकरोमें कहते हैं.

१	श्रीतीर्थकरनाम.	१ ए श्रीमल्लीनाथ	२ ० श्रीमुनिसुवृत	३ १ श्रीनमीनाथ
२	चवणतिथि.	फागुणशुद्धि ४	श्रावणशुद्धि १ ५	आशोशुद्धि १ ५
३	विमाननाम.	जयंतविमान	अपराजितविमा.	प्राणतदेवलोक
४	जन्मनगरी.	मथुरानगरी	राजगृहीनगरी	मथुरानगरी
५	जन्मतिथि.	मगशिरशुद्धि १ १	ज्येष्ठवदि ८	श्रावणवदि ८
६	पिताका नाम.	कुंजराराजा	सुमित्राराजा	विजयराजा
७	माताका नाम.	प्रजावती	पद्मावती	विप्राराणी
८	जन्मनक्षत्र.	अश्विनीनक्षत्र	श्रवणनक्षत्र	अश्विनीनक्षत्र
९	जन्मराशि.	मेपराशि	मकरराशि	मेपराशि
१०	लांठननाम.	कलशका लांठन	कञ्चपका लांठन	कमलका लांठन
११	शरीरमान.	पचीशधनुष	वीशधनुष	पंदरधनुष
१२	आयुमान.	५५०००) वर्ष	३००००)वर्ष	१००००)वर्ष
१३	शरीरका वर्ण	नीलावर्ण	श्यामवर्ण	पीलावर्ण
१४	पटवी राजकी.	कुमार	राजा	राजा
१५	पाणिग्रहण.	नर्दा परण्या	परण्या	परण्या
१६	कितने साथ दीक्षा	३००) साधु	१०००) साधु	१०००)साधु
१७	दीक्षानगरी.	मिथिलानगरी	राजगृहीनगरी	मथुरानगरी
१८	दीक्षातप.	तीन उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९	प्रथमपारणिकाया ०	क्षीरजोजन	क्षीरजोजन	क्षीरजोजन
२०	पारनेका स्थान	विश्वसेन	ब्रह्मदत्त	दिन्नकुमार
२१	कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि.	मगशिरशुद्धि १ १	फागुणशुद्धि १ २	आषाढवदि ९
२३	व्रतस्थकाल.	एक अहोरात्र	इग्यार मास	नव मास
२४	ज्ञाननगरी.	मथुरानगरी	राजगृहीनगरी	मथुरानगरी
२५	ज्ञानतप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृद्ध.	अशोकवृद्ध	चपकवृद्ध	बकुल वृद्ध
२७	ज्ञानतिथि.	मगशिरशुद्धि १ १	फागुणवदि १ २	मगशिरशुद्धि १ १

यह वाचन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोंमें कहते हैं.

३८	गणधरसंख्या.	३८)गणधर	३८)गणधर	३९)
३९	साधुओंकीसंख्या	४००००	३००००	२००००
४०	साधवीयोंकीसंख्या	५५०००	५००००	४१०००
४१	वैक्रियलब्धिवंत.	२९००	२०००	५०००
४२	वादिओंकीसंख्या.	१४००	१२००	१०
४३	अवधिज्ञानीसंख्या.	२२००	१८००	१६
४४	केवलीसंख्या.	२२००	१८००	१६००
४५	मन.पर्यवसंख्या.	१७५०	१५००	१२५०
४६	चौदहपूर्विसंख्या.	६६८	५००	४५०
४७	श्रावकसंख्या.	१८३०००	१७२०००	१७००००
४८	श्राविकासंख्या.	३७००००	३५००००	३४८०००
४९	शासनयज्ञनाम.	कुवेरयज्ञ	वरुणयज्ञ	नृकुटीयज्ञ
५०	शासनयज्ञिणीनाम.	धरणीप्रिया	नरदत्ता	गंधारी
५१	प्रथमगणधरनाम.	अजीहकगणधर	मल्लीगणधर	द्युजगणधर
५२	प्रथमआर्यानाम.	बधुमती	पुष्पमती	अनिला
५३	मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
५४	मोक्षतिथि.	फागुणशुद्धि १५	ज्येष्ठवदिण	वैशाखवदि १०
५५	मोक्षसंलेपणा.	एकमास	एकमास	एकमास
५६	मोक्षशासन.	काउस्तग	काउस्तग	काउस्तग
५७	अंतरमान.	५४००००००वर्ष	६०००००० वर्ष	५००००००)वर्ष
५८	गणनाम.	देवगण	देवगण	देवगण
५९	योनि नाम.	अश्वयोनि	वानरयोनि	अश्वयोनि
६०	मोक्षपरिवार.	५०० परिवार	१००० परिवार	१००० परिवार
६१	नवसंख्या.	तीननवकखा	तीननवकखा	तीननवकखा
६२	कुलगोत्रनाम.	इन्द्रागवंशकुल	हरिवंशकुल	इन्द्रागवंशकुल
६३	गर्भकालमान.	मासतनवदिनसात	मास तनव दिन	८ मासतनवदिनआठ

यह वाचन बोल प्रत्येक तीर्थकरोमें कहते हैं.

१	श्रीतीर्थकरनाम.	११ श्रीनेमिनाथ	१३ श्रीपार्श्वनाथ	१४ श्रीमहाबीर.
२	चवणतिथि.	कार्तिकवदि १ २	चैत्रवदि ४	आषाढशुदि ६
३	विमाननाम.	अपराजित	प्राणतदेवलोक	प्राणतदेवलोक
४	जन्मनगरी.	सौरीपुर	बणारसी	हृत्तीकुंम
५	जन्मतिथि.	श्रावणशुदि ५	पौषवदि १ ०	चैत्रवदि १ ३
६	पिताका नाम.	समुद्रविजय	अश्वसेन	सिद्धार्थराजा
७	माताका नाम.	शिवा देवी	वामादेवी	त्रिशलादेवी
८	जन्मनक्षत्र.	चित्रानक्षत्र	विशाखानक्षत्र	उत्तराफाल्गुनी
९	जन्मराशि.	कन्याराशि	तुलाराशि	कन्याराशि
१०	लंठननाम.	शंखलंठन	सर्पलंठन	केशरीलंठन
११	शरीरमान.	दश धनुष	नव हाथ	सात हाथ
१२	आयुमान.	हजार वर्ष	शो वर्ष	बहोत्तर वर्ष
१३	शरीरका वर्ण	श्यामवर्ण	नीलावर्ण	पीलावर्ण
१४	पदवी राजकी	कुमारपदवी	कुमारपदवी	कुमारपदवी
१५	पाणिग्रहण.	नहीं परएया	परएया	परएया
१६	कितने साथ दीक्षा	१०००) साधु	३००) साधु	एकाकी दीक्षा
१७	दीक्षानगरी.	सौरीपुर	बणारसी	हृत्तीकुंम
१८	दीक्षातप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९	प्रथमपारणिकाया ०	हीरनोजन	हीरनोजन	हीरनोजन
२०	पारनेका स्थान	वरदिन्न	धन्यनाम	बहुलब्राह्मण
२१	कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि.	श्रावणशुदि ६	पौषवदि १ १	मगसिरवदि १ १
२३	उत्सवस्थकाल.	चौपनदिन	चौराशीदिन	वारा वर्ष
२४	ज्ञाननगरी	गिरनार	बणारसी	रुञ्जवालुकानदी
२५	ज्ञानतप.	तीन उपवास	तीन उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृद्ध.	वेडसवृद्ध	धातकीवृद्ध	सालवृद्ध
२७	ज्ञानतिथि.	आशोवदि ७)	चैत्रवदि ४	वैशाखशुदि १ ०



यह वाचन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोंमें कहते हैं.

१७	गणधरसंख्या.	११)गणधर	१०)गणधर	११)गणधर
१८	साधुओंकीसंख्या.	१००००)	१६०००)	१४०००)
१९	साधवीयोंकीसंख्या	४००००)	३००००)	३६०००)
२०	वैक्रियलब्धिवंत.	१५००)	११००)	३००)
२१	वादिओंकीसंख्या.	८००)	६००)	४००)
२२	अवधिज्ञानीसंख्या.	१५००)	१०००)	१३००)
२३	केवलीसंख्या.	१५००)	१०००)	३००)
२४	मन.पर्यवसंख्या.	१०००)	३५०)	५००)
२५	चौदहपूर्वीसंख्या.	४००)	३५०)	३००)
२६	श्रावकसंख्या.	१६९०००)	१६४०००)	१५९०००)
२७	श्राविकासंख्या.	३३६०००)	३३९०००)	३१८०००)
२८	शासनयज्ञनाम.	गोमेधयज्ञ	पार्श्वयज्ञ	मातंगयज्ञ
२९	शासनयज्ञिणीनाम.	अंबिका	पद्मावती	सिद्धांबिका
३०	प्रथमगणधरनाम.	वरदत्त	आर्यदिन्न	इंद्रचूति
३१	प्रथमआर्यानाम.	यज्ञदिन्ना	पुष्पचूडा	चंदनवाजा
३२	मोक्षस्थान.	गिरनार	समेतशिखर	पावापुरी
३३	मोक्षतिथि.	आषाढशुद्धि ८	श्रावणशुद्धि ८	कार्तिकवदिश
३४	मोक्षसंज्ञेपणा.	एकमास	एकमास	दोउपवास
३५	मोक्षआसन.	पद्मासन	काउस्तगग	पद्मासन
३६	अंतरमान.	८३३५०)वर्ष	३५०)वर्ष	चर्मजिनेश्वर
३७	गणनाम.	राक्षसगण	राक्षसगण	मानवगण
३८	योनि नाम.	महिषयोनि	मृगयोनि	महिषयोनि
३९	मोक्षपरिवार.	५३६)परिवार	३३)परिवार	एकाकीयाप
४०	नवसंख्या.	नव नव कखा	दश नव कखा	सत्तावीशनवक
४१	कुलगोत्रनाम.	हरिवंश	इक्ष्वाकुकुल	इक्ष्वाकुकुल
४२	गर्भकालमान.	मासनव दिन ८	मास नव दिन ८	मासनवदिन

इस घंत्रके अनुसार एकैक तीर्थकरके साथ वावन वावन बोलका संबंध जान लेनां. इनमेंसू मातादिक कितनेक द्वार जो प्रथम न्यारे लिखे गये हैं, सो व्युत्पत्तिके कारणसें लिखे हैं.

॥ इन चौबीस तीर्थकरोंमें नववां, दशवां, इग्यारवां, बारवां, तेरवां, चौदहवां अरु पंद्रवां, एसात तीर्थकरोंके निर्वाण हुआ पीछे इन सातोंका शासक जो द्वादशांग वाणीरूप शास्त्र अरु साधु तथा साधवी, श्रावक, और पाविका. ए चतुर्विध श्रीसंघरूप तीर्थ सो कितनेक काल तांइ प्रवृत्त हो कर पीछेसें व्यवहृत गया, तब तो नारत वर्षमें जैन मतका नामनी न रखा था, तबहीसें अनेक मत मतांतर और कुशास्त्रोंकी प्रायें प्रवृत्ति जयी हो अबतांइ होतीही चली जाती है, बहुत लोकोने स्वकपोल कल्पित शास्त्र बना करके पूर्व मुनि, वा ऋषि, वा ईश्वरप्रणीत प्रसिद्ध करे है जैसे तीसरासो त्रेशठ मत प्रवृत्त कर दीये अरु अर्थ चारों वेद व्यवहृत हो गये अरु नवीन वेद बना लीये उन नवीनोकोनी कइ चार लोकोने नवी नवी मत बनासें बना कर उलट पुलट कर दीये जो कुठ बन बनाके शेष रहे उक्त तीर्थकीनी अनेक तरेंके नाप्य, टीका, दीपिका रच कर अर्थोंकी गड बड कर दीये नीनी सो अबतांइ करतेही चले जाते हैं; ए सर्व स्वरूप जहां वेदोंकी उत्पत्ति लिखेंगे तहां स्पष्ट करके लिखेंगे वेद जो नाम है सोतो बहुत प्राचीन कालसे है, अरु जिन पुस्तकोंका नाम वेद अब प्रसिद्ध है सो पुस्तक प्राचीन नहीं है, इसका प्रमाण आगे चलके लिखेंगे ॥ इति श्रीतपगह्वीये मुनि श्री बुद्धिविजय शिष्यमुनि आनंदविजय आत्मारामविरचिते जैनतत्त्वादर्शे प्रथमः परिच्छेदः सम्पूर्णः ॥ १ ॥

॥ अथ द्वितीयः परिच्छेद प्रारंभः ॥

अब दूसरे परिच्छेदमें कुदेवका स्वरूप लिखते हैं, कुदेव उसकुं कहते हैं जो जगवान् तो नहीं परंतु लोकोंने अपनी बुद्धिसें परमेश्वरका आरोप कर लीया है सो कुदेवका स्वरूप तो उक्त देव स्वरूपसें विपर्यय सर्व बुद्धिमान् आपही जान लेंगे, परंतु विस्तारसें लिखाही जो समझ सके है ति नोंके तांइ लिखते है.

॥श्लोका॥ ये स्त्रीशस्त्राक्षत्रादि, रागाद्यंककलंकिताः ॥ नियहानुग्रहपरा,

स्तेदेवास्पुर्न मुक्तये ॥ १ ॥ नाट्याट्टहाससंगीता, शुपड्वविसंस्थुताः ॥  
 नयेयुः पदं शांतं, प्रपन्नांप्राणिनः कथं ॥२॥ इति योगशास्त्रे ॥ अस्वार्थः  
 जिस देवके पास स्त्री होवे तथा तिसकी प्रतिमाके पास स्त्री होवे क्युंकि  
 जैसा पुरुष होता है उसकी मूर्त्तिजी प्राये वैसीही होती है. आज काल  
 सर्व चित्रोंमें वैसाही देखनेमें आता है, सो मूर्त्ति द्वारा देवकाजी स्वरूप  
 गट हो जाता है इस कारणें मूर्त्तिद्वारा तथा मत्तावलंबी पुरुषोंके प्रयत्न  
 सार समझ लेनां तथा शस्त्र, धनुष्य, चक्र, त्रिशूलादि जिसके पास होते  
 तथा अक्षसूत्र, जपमाला, आदि शब्दसं कर्मफल प्रमुख होवे, फेर कैसा करे  
 देव होवे ? राग देपादि द्रुपणोंका जिनमें चिन्ह होवे अरु स्त्रीकूं जो पान  
 रकेगा वो जरूर कामी और स्त्रीसं जोग करनेवाला होगा. इसमें अधि  
 रागी होणेका दूसरा कौनसा चिन्ह है ? इसी काम रागके वश होकर कुं  
 वोंने परस्त्री, स्वस्त्री, बेटी, माता, वहिन, अरु पुत्रकी बधू प्रमुखसं धने  
 कामक्रीडा कुचेष्टा करी है

अब जो पुरुष मात्र होकर परस्त्री गमन करता है उसकूं आज कालमें  
 मत्तावलंबीयोमेंसं कोइनी अज्ञा नहीं कहता, तो फेर परमेश्वर हो कर जो  
 परस्त्रीसे काम कुचेष्टा करे, तो उसके कुदेव होनेमें कोइनी बुद्धिमान् शंका  
 नहीं कर सकता; जो आपणी स्त्रीसे काम सेवन करता है औ परस्त्रीका त्यागी  
 है उसकूंनी परस्त्रीका त्यागी, धर्मी गृहस्थ, लोक कह संके हैं, परंतु उसको मु  
 नि वा ऋषि वा ईश्वर कनी नहीं कहेंगे क्युंकि जो आपही कामाधिके कुं  
 में प्रज्वलित हो रहा है तिसमें कनी ईश्वरता नहीं हो सकी, इस हेतुसं  
 जो रागरूप चिन्ह करी संयुक्त है, सो कुदेव है. पुनः जो देपके चिन्ह  
 करी संयुक्त है वोनी कुदेव है देपके चिन्ह शस्त्रादि धारण करणं क्युं के जो  
 शस्त्र, धनुष, चक्र, त्रिशूल प्रमुख रकेगा उसने अथवश्य किसी वैरीकूं मारणा  
 है, नहींतो शस्त्र रखणेसे क्या प्रयोजन है ? तो जिसकूं वैर विरोध लगा हुआ है  
 सो परमेश्वर नहीं हो सकता है; जो ढाल वा खड्ग रकेगा वह नयकरी अथ  
 व नय संयुक्त होगा अरु जो आप ही नय संयुक्त है तो उसकी सेवा करनेमें  
 हम निर्णय कैसें हो सके है ? उन हेतुसं देप संयुक्तको कौन बुद्धिमान्, प  
 रमेश्वर कह सकता है ? परमेश्वर जो है सो तो- वीतराग है अरु जो राग  
 देप करी संयुक्त है सो कुदेव है.

तथा जिसके हाथमें जपमाला है, सो असर्वज्ञताका चिन्ह है जेकर सर्वज्ञ होता तो मालाके मणिकियों बिना नी जपकी संख्या कर सका, अरु जो जपकों करता है, सोनी अपणोंसे उच्चका करता है, तो परमेश्वर कसे उच्च कौन है जिसका वो जप करता है? इस हेतुसे जो मालासे जप करता है सो कुदेव है.

तथा जो शरीरकूं नस्म लगाता है, औ धूणी तापता है, नंगा होकर प्रवेष्टा करता है; नांग, अफीम, धतूरा, मदिरा प्रमुख पीता है तथा मांसादि अशुद्ध आहार करता है; वा हस्ती, कंट, बैल, गर्जन प्रमुखकी शो असवारी करता है सोनी कुदेव है, क्युंकि जो शरीरकों नस्म लगाता है, अरु जो धूणी तापता है सो किसी वस्तुकी इञ्जा वाला है, सो जिसका हाजीतक मनोरथ पूरा नहीं दूञ्जा सो परमेश्वर नहीं वो तो कुदेव है.

अरु जो नशे, अमलकी चीजे खाता पीता है, सो तो नशेके अमलमें आनंद और हर्ष हुंढता है, अरु परमेश्वर तो सदा आनंद औ सुखरूप परमेश्वरमें वो कौनसा आनंद नहीं था जो नशा पीनेसे उसकूं मि होता है? इस हेतुसे नशा पीने वाला अरु मांसादि अशुद्ध आहार करने वाला जो है सो कुदेव है.

और जो असवारी है सो परजीवोंकूं पीडाका कारण है, अरु परमेश्वर को व्यालु है, सो पर जीवोंकूं पीडा कैसे देवे? इस हेतुसे जो असवारी करे, सो कुदेव है.

और जो कमल रखता है, सो शुचि होणेके कारण रखता है अरु परमेश्वर तो सदाही पवित्र है उनकूं कमलसे क्या काम है?

यत. ॥ श्लोक ॥ स्त्रीसंगं काममाचष्टे, देपं चायुधसंग्रहं ॥ व्यामोहं चास्त्रादि, रशौचं च कमंजलुं ॥ १ ॥ अर्थ.—स्त्रीका जो संग है सो कामकूं कहता है, शस्त्र जो है सो देपकूं कहता है, जपमाला जो है सो व्यामोहकूं कहती है. अरु कमंजलु जो है सो अशुचिपणोंकूं कहता है तथा निग्रह जो (जिसके उपर क्रोध करे) तिसकूं वध, वंधन, मारण, रोगी, शोकी, अती वियोगी, नरकपात, निर्धन, हीन, दीन, ह्नीण करे, सोनी कुदेव है और जो जिसके उपर अनुग्रह (तुष्टमान) होवे तिसकूं इन्द्र, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, महामंजलिक, मंजुकादिकोंको राज्यादि पदवीका वर देवे तथा

सुंदर स्वर्गसदृश स्त्रीका संयोग, पुत्र परिवारादिकोंका संयोग जो करे, सो देव है, क्युंकि जो ऐसा रागी देपी है वो मोक्षके तांड कनी नहीं हो सका सो तो जूत, प्रेत, पिशाचादिकोंकी तरे क्रीडाप्रिय देवता मात्र है. ऐसा देव अपने सेवकोंके कैसे मोक्ष दे सका है? आपही यदि वो रागी, देपी, परतंत्र है, तो सेवकोंका क्या कार्य सार सका है? इस हेतुसें वोनी कुदेव है.

पुनः कुदेवके लक्षण लिखते है जो नाद, नाटक, हास्य, संगीत, इन सबमें मग्न है वाद्यंत्र (बाजा) बजाता है अरु आप नृत्य करता है तथा औरोंको नचाता है, आप हसता अरु कूदता है, विषयी रागोंको गाता है अरु संगीत बोलता है इत्यादिक मोहकर्मके वश संसारकी चेष्टा करता है स्वभाव जिसका अस्थिर हो रहा है, जो आपही ऐसा है तो फेर सेवकोंके शांतिपद कैसे प्राप्त कर सका है? जैसें एरमवृद्ध कल्पवृद्धकी तरे इन्हें नहीं पूर सका, किसी मूढ पुरुषने जो एरमकूं कल्पवृद्ध मान लीया तो क्या वो कल्पवृद्धका सारा काम दे सका है? ऐसेंही किसी मिथ्यादि पुरुषने जो कुदेवकूं परमेश्वर मान लीया तो क्या वो परमेश्वर हो सका है? कनी नहीं हो सका. इसी वास्ते प्रथम परिच्छेदमें जो लक्षण परमेश्वरके लिखे है तिनही लक्षणों वाला परमेश्वर देव है शेष सर्व कुदेव है.

प्रश्नः—हमने तो ऐसा सुण रक्का है जो जैनी ईश्वरको नहीं मानते. उनका जो मत है, सो अनीश्वरीय है और तुमने तो प्रथम परिच्छेदमें कइ जे अर्हत जगवंत परमेश्वर लिखा है अरु प्रथम परिच्छेद तो जगवान्हीके स्वरूपकथनमें समाप्त किया है, यह कैसे संभव हो सका है?

उत्तरः—हे नव्य ! जे केइ कहते हैं कि जैनमतावलंबी ईश्वरको नहीं मानते. ऐसा कहणा उनका मिथ्या है उनोंने कनी जैनमतका शास्त्र पढा वा सुना न होगा तथा किसी बुद्धिमान् जैनीका संसर्गनी न करा होगा, जेकर जैनमतका शास्त्र पढा, वा सुना होता तो कनी ऐसा न कहता, जो जैनी ईश्वरको नहीं मानते. जेकर जैनी ईश्वरको न मानते तो यह जो श्लोक लिखे जाते है, वो किसकी स्तुतिके है ॥श्लोक॥ त्वामव्ययं त्रिचुमच्चित्यमसंख्यमायं ब्रह्माण्मीश्वरमनंतमनंगकेतुम् ॥ योगीश्वर विदितयोगमनेक्रमेकं, ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदंति नतः ॥१॥ अत्यार्थ —हे जिन ! (मंतः) मत्पुरुष (त्वां) तरे प्रवि (अव्ययं) अव्यय (प्रवदंति) कहते है अव्यय अपचयकू जान प्राप्ति होने

सो इव्यार्थे नयके मतसे अव्यय तीनों कालोंमें एक स्वरूप है. विजातिः—शो  
 नता है परमेश्वर पणा करी सो ( विञ्चु ) अथवा विञ्चवतिः—समर्थ होवे  
 कर्मोन्मूलन करके सो ( विञ्चु ) अथवा इंद्रादिक देवताओंका जो स्वामी सो  
 विञ्चु, सत्पुरुष इसवास्ते तुजकूं विञ्चु कहते है. पुनः कैसें तुजकूं ? ( अचिं  
 त्यं ) अव्यात्म ज्ञानीनी तुजकूं चिंतवन करनेकूं समर्थ नही फेर कैसें तुजकूं ?  
 ( असंख्यं ) गुणाकी संख्या ( गिणती ) नही कि इतने गुण है जगवानमें  
 इस हेतुसें सत्पुरुष तुजकूं असंख्य कहते है. फेर कैसें तुजकूं ? ( आद्यं )  
 आदिमें जो होवे सर्व लोक व्यवहारके प्रवर्त्तावणसें, सत तेरेकूं आद्य क  
 हते है, अथवा अपने तीर्थकी आदि करणसें आद्यं. फेर कैसें तुजकूं ?  
 ( ब्रह्माणं ) अनंत आनंद करी जो सर्वसें अधिक वृद्धि वाजा है सो ब्रह्म,  
 सत्पुरुष तुजकूं ब्रह्म कहते है. फेर कैसें तुजकूं ? ( ईश्वरं ) सर्व देवताओंमें  
 ठाकुर कहते है. फेर कैसें तुजकूं ? ( अनंत ) अनंत ज्ञान दर्शनके योगते अ  
 नंत अथवा नही है अंत जिसका सो अनंत कहते है अथवा अनंत चारों  
 करी संयुक्त १ अनंतज्ञान, २ अनंतवल, ३ अनंतमुख, ४ अनंतजीवन,  
 सो अनंत कहते हैं. फेर कैसें तुजकूं ? ( अनंगकेतुं ) कामदेवकूं केतुके उदय  
 समान नाशकारक सो अनंगकेतु कहते है अथवा नही है अंग औदारिक,  
 वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण शरीर रूपी चिन्ह जिसके सो अनंग  
 केतु. जविष्य नैगमके मत करी कहते है. फेर कैसें तुजकूं ? ( योगीश्वरं )  
 योगी जो चार ज्ञानके धरनारे तिनोंका ईश्वर कहते है फिर कैसें तुजकूं ?  
 ( विदितयोगं ) जाण्या है सम्यक् ज्ञानादिरूप जिसने अथवा योगी ( ध्यानादि  
 जाण्या है जिसने ) अथवा विशेष करके दितः खंडित कीया है कर्मका सं  
 योग जीवके साथ जिसने सो विदितयोग कहते हैं, फेर कैसें तुजकूं ?  
 ( अनेकं ) ज्ञान करके सर्वगत होनेसें अथवा अनेक सिद्धांके एकत्र रहनेसें  
 अथवा गुण पर्यायकी अपेक्षा करके अथवा रूपनाटि व्यक्ति जेदसे अने  
 क कहते हैं फिर कैसें तुजकूं ? ( एकं ) अद्वितीय उत्तमोत्तम अथवा जीव  
 इव्यापेक्षया एक कहते हैं. फेर कैसें तुजकूं ? ( ज्ञानस्वरूपं ) ज्ञान क्वायिक  
 केवल है स्वरूप जिसका. सो ज्ञानस्वरूप कहते है. फेर कैसें तुजकूं ? ( अ  
 मलं ) नही है अष्टादश दोपरूप मल जिसके सो अमल कहते है, ए पूर्वा  
 क पदरा विशेषण ईश्वरके मतांतरोंमें प्रसिद्ध है.

तथा श्लोक "बुद्धस्त्वमेव विबुधाञ्चितबुद्धिबोधात्, त्वं शं करोसि च  
त्रयशंकरत्वात् ॥ धातासि धीर शिवमार्गविधेर्विधानात्, व्यक्तं त्वमेव न  
पुरुपोत्तमोसि ॥ २ ॥ अर्थः—हे विबुधाञ्चित! विबुध जो देवताओं  
पूजिता सातो सुगतामैसें कोइएक सुगत, तिसकूं बुद्ध कहीयें, सो बुद्ध  
है, किस कारणसे? धर्मबुद्धि प्रगट करणेसे फेर तूं शंकर है किस  
तीन ज्वनमें शं जो सुख करे सो शंकर. हे धीर! त्व धाता (ब्रह्मा है) कि  
कारणसे? शिव मोक्ष तिसका मार्ग जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप तिस  
विधि करणेसे तूं विधाता है. हे जगवन्! तूं व्यक्त प्रगट पुरुपोमें उत्तम  
॥२॥ इत्यादि लाखों श्लोक परमेश्वरकी स्तुतिके है, जे कर जैनी ईश्वर  
न मानते तो इन श्लोकोसें उनोने किसकी स्तुति करी है? इस कार  
जो कहते है कि जैनी लोग ईश्वरकूं नही मानते, वे प्रत्यक्ष मृपावादी

प्रश्नः—बहुत अछा दूआ जो मेरे मनका संशय दूर दूआ परंतु  
वातका संशय मेरे मनमें है जो तुमने ईश्वर तो मान्या, परंतु जगत्का ई  
ईश्वर जैनमतमें तुमने मान्या है वा नहीं?

उत्तरः—हे जव्य! जगत्का कर्ता जो ईश्वर सिद्ध हो जावें तो जैनी  
नहीं माने? परंतु सर्व वस्तुका कर्ता ईश्वर किसी प्रमाणसें सिद्ध नहीं हो

प्रश्नः—जे कर किसी प्रमाणसे ईश्वर सर्व वस्तुका कर्ता सिद्ध नहीं  
ता तो (१) नवीन वेदांती, (२) नैयायिक, (३) वैशेषिक, (४) पातंज  
(५) नवीन सांख्य, (६) ईसाइ, (७) मुसलमान प्रमुख अनेक मतावल  
पुरुष ईश्वरको जगत्का कर्ता वा सर्व वस्तुका कर्ता मानते है. क्या इन  
कोइची ईश्वरकूं जगत्का कर्तापणामें निषेध करनेवाला समज वार न जा

उत्तरः—हे जव्य! (१) जैन, (२) बौद्ध, (३) प्राचीन सांख्य, (४)  
वैमीमांसाकारक जैमनीय मुनिके संप्रदायी जट्ट प्रजाकर इत्यादिक अ  
मतावलंबीयोमेंसें कोइची समजवार न जया जो ईश्वरकूं जगत्का क  
स्थापन करता.

प्रश्नः—जैन बौद्ध अरु प्राचीन सांख्यादि उक्त मतावलंबी सर्व अछ  
दूबे है इस हेतुसें ईश्वरकूं जगत्का कर्ता नहीं मानते?

उत्तरः—नवीन वेदांती, नैयायिक अरु वैशेषिकादि यहूनी सर्व अछ  
दूबे है, जो ईश्वरकूं जगत्का कर्ता मानते है.

प्रश्न:— ईश्वर जगत्का वा सर्व वस्तुका कर्ता है, औरें जो मानियें, तो  
 का दूषण है ?

उत्तर:—ईश्वरकूं जगत्का कर्ता वा सर्व वस्तुका कर्ता माननेसें बहुत  
 दूषण आते हैं.

प्रश्न:—तुम तो अपूर्व वात सुणाते हो. हमने तो कदेइ नहीं सुना जो ईश्वर  
 है जगत् कर्ता वा सर्व वस्तुका कर्ता माननेमें दूषण आता है? अब तो आ  
 कूं कहनां चाहियें जो जगत्का कर्ता माननेसें ईश्वरकूं क्या दूषण आता है?

उत्तर:—हे नव्य! प्रथम तुम यह बात कहो की तुम कोणसा ईश्वर जगत्  
 का कर्ता मानता हो ?

प्रश्न:—क्या ईश्वरजी कइक तरेके है, जो आप हमसें ऐसा पूछते हो ?

उत्तर:—क्या तुम नहीं जानते जो दो तरेके ईश्वर मतावलंबीयोंने माने  
 ? एक तो जगदुत्पत्तिसें पहिला केवल एकही ईश्वर था जगत्का उपादा  
 तिक कोइनी कारण वा दूसरी वस्तु नहीं थी, एकही शुद्ध बुद्ध सच्चिदानं  
 तिक स्वरूप युक्त परमेश्वर था. एकैक जीवोंके तो ऐसा ईश्वर, जगत् वा  
 सर्व वस्तुका रचने वाला अजिमत है, और दूसरोंने तो (१) जीव, (२)  
 अणु, (३) आकाश, (४) काल, (५) दिशादि सामग्री वाला, एतावता  
 एक तो ईश्वर उक्त विशेषण संयुक्त, और दूसरी सामग्री जिससें जगत् रचा  
 जावे, ए दोनो वस्तु अनादि हैं, एतावता एक तो ईश्वर और दूसरी जगत्  
 उत्पन्न करणोकी सामग्री. ए दोनो किसिने बणाये नहीं ऐसे माने है, तुम  
 इन दोनो मतोंमेंसें कोनसा मत सम्मत है ?

पूर्वपक्ष:—हमकूं तो प्रथम मत सम्मत है, क्युं के वेदादि शास्त्रोंमें ऐसा  
 लिखा है. “एतस्मादात्मनश्चाकाशः संजतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्ने  
 रपः अन्नघः पृथिवी पृथिव्या ओषधयः ओषधिन्योऽन्नं अन्नाद्देतः रेतसः  
 पुरुषः सवा एषपुरुषोन्नरसमयः” यह तैत्तिरीय शाखाकी श्रुति है, तथा “स  
 वि सौम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीय तदैकत बहु स्यां प्रजायेयेति” यह श्रु  
 ति ब्राह्मण्य उपनिषद्की है, तथा “नासदासीन्नो सदासीत्तदानीन्नासीद्जोन  
 अमपरोयत् किमावरीव कुहकस्य शर्मण्यन्नः किमासीद्गहनं गनीर” यह श्रु  
 ति ऋग्वेदकी है, “आत्मा वा इदमग्रआसीन्नान्यत् किंचिन्मिपत् स ईदृत् लो  
 कानुसृजइति” यह ऐतरेय ब्राह्मणकी श्रुति है. इत्यादि अनेक श्रुतियोंसे सिद्ध



होता है, जो सृष्टिसँ पहले एक केवल ईश्वरही था, न जगत् था अ जगत्का कारण था, एकही ईश्वर शुद्ध स्वरूप था, तथा ईसाऽ वा मुः न मतवालेनी जैसे ही मानते है. इस हेतुसे हम प्रथम पक्ष मानते

उत्तर:-हे पूर्वपक्षी ! तुमारा यह कहना ईश्वरकूँ बडा कलंकित करत पूर्वपक्ष.-जगत्के रचनेसँ ईश्वरकूँ क्या कलंक प्राप्त होता है ?

उत्तरपक्ष-प्रथम तो जगत्का उपादान कारण है नहीं, इस हेतु गत् कवेनी उत्पन्न नहीं हो सकता, जिसका उपादान कारण नहीं कार्य कदापि उत्पन्न नहीं हो सकता; जैसे गङ्गेका सौग.

पूर्वपक्ष-ईश्वरनेँ अपनी शक्ति, नामांतर कुदरतसेँ जगत्कूँ रचा श्वरकी जो शक्ति है, सोऽ उपादान कारन है.

उत्तरपक्ष:-ईश्वरकी जो शक्ति है सो ईश्वरसेँ निन्न है, वा अनिन्न जे कर कहोगे निन्न है, तो फेर जड है वा चेतन है ? जेकर कहोगे है. तो फेर नित्य है, वा अनित्य है ? जेकर कहोगे नित्य है, तो फेर जो तुमारा कहनां था जो सृष्टिसे पहिलेँ एक केवल ईश्वर था दूसरा नहीं था; यह ऐसा दुवाकि जैसे उन्मत्ताका वचन, अपने ही वचन पक्षी जूठ करा. जे कर कहोगे अनित्य है, तो फेर उसका उपादान कर और ईश्वरकी शक्ति दुइ तिस शक्तिकी उत्पन्न करणे वाली और जति इती तरे करता धनवस्थादूपण आता है, जे कर कहोगे चेतन है, तो नित्य है, वा अनित्य है ? दोनोही पक्षोमें पूर्वोक्त अपरापरत्ववचनव अरु धनवस्था दूपण है, जेकर कहोगे ईश्वर शक्ति ईश्वरसेँ अनिन्न है सर्व वस्तुको ईश्वरही कहनां चाहियेँ, जब सर्व वस्तु ईश्वरही हो ग फेर अज्ञा और चुरा, नरक और स्वर्ग, पुण्य और पाप, धर्म और अध ऊच नीच, रंक राजा, सुजीन और दु.जीन, राजा और प्रजा, चोर नाथ, (नंत) मुखी और दु खी. इत्यादिक सर्व कुठ ईश्वरही आप बना तो ईश्वरने जगत् क्या रचा, आपही आपणा सत्तानाश कर लीया, ए कलंक ईश्वरकूँ लगता है. (१) तथा जब ईश्वर आपही सब कुठ बन तो फेर वेदादिक शास्त्र क्युं बनाये ? अरु उनके पदणोमे क्या फल है ए दृग्ग कलंक. (२) तथा जब वेदादिक बणाये तब आपणे आपकूँ होणे चास्ते पहिलेँ तो अज्ञानी था ए तीसरा कलंक. (३) तथा शुद्ध

गुण बना, जो जगत् रूप होणेकी मेहनत करी, सो निष्फल हुई, ए चौथा कलंक. ( ५ ) कोइ वस्तु जगत्में अच्छी वा बुरी नहीं ए पांचवा कलंक. ( ६ ) क्युं आपणो आपकूं संकटमें माला? ए ठा कलंक. इत्यादि अनेक कलंक तुम ईश्वरकूं लगाते हो.

पूर्वपक्षः—ईश्वर सर्व शक्तिमान् है, इस हेतुसें ईश्वर, बिनाही उपादान कारणसें जगत् रच सका है.

उत्तरपक्षः—यह जो तुमारा कहनां है सो प्यारी ज्ञार्या, वा मित्र भांगा परंतु प्रेक्षावान् कोइनी नहीं मानेगा, क्युंकि इस तुमारे कहनेमें कोइनी प्रमाण नहीं परंतु जिसका उपादान कारण नहीं वो कार्य कदेनी हो सका. जैसे गधेका सींग, अैसे प्रमाण तुमारे कहनेकूं बाधने वाला हो है, परंतु साधने वाला कोइनी नहीं, जेकर हठ करके स्वकपोलकल्पि इहीकूं मानोगे तो परीक्षा वालोकी पंक्तिमें कदेनी नहीं गिने जाउंगे. तथा इस तुमारे कहनेमें इतरेतराश्रय दूषणरूप वज्रका प्रहार पडता है, तथा सृष्टिसें पहिले उपादानादि सामग्री रहित केवल शुद्ध, एक ईश्वर सेइ हो जावे तो सर्वशक्तिमान् सिद्ध होवे, जब सर्व शक्तिमान् सिद्ध हो तो सृष्टिसे पहिले उपादानादि सामग्री रहित केवल शुद्ध एक ईश्वर सेइ होवे, इन दोनोमेंसूं जब तक एक सिद्ध न होवे तब तक दूसरा कनी सेइ नहीं होता, तथा इस तुमारे कहनेमें चक्रकदूषण होता है, सृष्टि का कर्ता सिद्ध होवे, तदा सर्व शक्तिमान् सिद्ध होवे. जब सर्व शक्तिमान् सेइ होवे तब सृष्टिसे पहिले सामग्री रहित केवल शुद्ध एक ईश्वर सिद्ध होवे, तब सृष्टिकर्ता सिद्ध होवे. अैसे प्रगट, चक्रक दूषण है.

पूर्वपक्षः—ईश्वरतो प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध है, फेर तुम उसकूं सृष्टिकर्ता क्युं नहीं मानते ?

उत्तरपक्षः—जे कर ईश्वर सृष्टिका कर्ता प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध होवे, तो किसीकूंनी अमान्य न होवे, औ तुमारा हमारा ईश्वर विषयिक विवाद कनी नहीं होवे, क्युंकि प्रत्यक्षमें विवाद नहीं होता है, तथा ईश्वरका प्रत्यक्ष देखणाकी तुमारे वेद मंत्रसे विरुद्ध है. तथा च वेदमंत्र. ॥ अथाणिपादो जवनोमहीता, पश्यत्यचक्रु. शृणोत्यकर्ण. ॥ स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता,

तमाद्भुरभ्यं पुरुषं पुराणम् ॥ इत मंत्रसें कहता है ईश्वरकों जानने वा कोइनी नही।

**पूर्वपक्ष.**—बिना कर्त्ताके जगत् कैसे हो गया ? इस अनुमान नमाने ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता सिद्ध होता है, सो तुम क्यों नहीं मानते ?

**उत्तरपक्ष.**—इस तुमारे अनुमानकूं दूसरे ईश्वरपक्षमे खंमन करेंगे, उक्त प्रकारसें एक केवल उपादानादि सामग्री रहित, जैसे सृष्टिसें पहि परमेश्वर नहीं सिद्ध हुआ, तोनी हम आगे चलते है कि जब ईश्वरने जीवोंकूं रचे थे तब ( १ ) निर्मल रचे थे ? ( २ ) पुण्य वाले रचे थे ? ( ३ ) पाप वाले रचे थे ? ( ४ ) मिश्रित पुण्य पाप अर्द्धो अर्द्ध वाले रचे थे ? ( ५ ) पुण्य थोडा पापाधिक जैसे रचे थे ? ( ६ ) किंवा पुण्याधिक पाप थोडे वा रचे थे ? जे कर प्रथम पक्ष ग्रहण करो गे तो जगत्में सर्व जीव निर्मल चाहिये, फेर वेदादि शास्त्रों द्वारा उनकूं उपदेश करना वृथा है, ग्रह वेदिका शास्त्रोंका कर्त्तानी मूढ सिद्ध हो जावेगा, क्युंकि जब आगेही जीव निर्मल हैं तो उसके वास्ते शास्त्र काहेकूं रचने थे, जो वस्त्र निर्मल हो है तिसकूं कोइनी बुद्धिमान् धोता नही, जे कर धोवे तो महामूढ इस कारणसे जो निर्मल जीवोंके उपदेश निमित्त शास्त्र रचे सोनी मूढ

**पूर्वपक्ष.**—ईश्वरनेतो जीवोंकूं शुद्ध निर्मल एतावता अज्ञाही बना था, परंतु जीवोंने अपनी इच्छासे अज्ञा वा बुरा ( चूंका ) काम कर ली है, इसमें ईश्वरकूं कुछ दोष नही ?

**उत्तर पक्ष.**—जब ईश्वरने जीवोंमें अज्ञा वा बुरा काम करणेकी शक्ति ही रखी. तो फेर जीवोंकूं पुण्य वा पाप करणेकी शक्ति कहासें आई ?

**पूर्वपक्ष.**—शक्तियां तो जीवमे सर्व ईश्वरनेही रचियां है. परंतु जीव बुरा काम करणेमें प्रवृत्त नहीं करता, बुरे कामोंमें जीव आपही प्रवृत्त जाता है. जैसे कोइ गृहस्थने अपने प्रिय पुत्र वाजककूं खेलणे वास्ते खिलोना दीया है, परंतु जो वो बालक, उस खिलोनेसें आपणी अ निहाज लेवे तां माता पिताका क्या दूषण है? तैसेही जीवोंकूं ईश्वरने ज्ञान, प्रेम, प्रमुख वस्तु दई है. सो नित्य केवल धर्म करणेके कारणे हैं. पीछे जो जीव उनसें अपनी इच्छासें पाप कर लेवे तां इनमें ईश्वर

उत्तरपक्षः—हे नव्य ! यह जो तुमने बालकका दृष्टांत दीया सो यथा  
 ि नहीं, क्युंकि बालकके माता पिताकूं यह ज्ञान नहीं है, जो हम इस  
 लकके खेलणे वास्ते खिलोना देते है, सो हमारा बालक इस खिलो  
 से अपनी आंख फोड लेगा जेकर बालकके माता पिताकूं यह ज्ञान होता  
 सो हमारा बालक, इस खिलोनेसे अपनी आंख फोड लेगा तो माता पिता  
 नी उसके हाथमें खिलोनां न देते, जे कर जान करकें देवें तो वो माता  
 पिता नहीं किंतु ? उस बालकके परम शत्रु है, इसीतरें ईश्वर, माता पिता  
 द्रव्य है अरु तुम हम उसके बालक है, जे कर ईश्वर जानता था जो मैं इ  
 कूं रचा इसके तांइ हाथ, पग, मन. इंद्रियादि सामग्री दीनी है, इस जीवने इस  
 सामग्रीसे बहुत पाप करकें नरक जाना है तो फेर ईश्वरने उस जीवकूं क्युं  
 रचा ? जे कर कहोगे ईश्वर यह बात नहीं जानता था जो मेरी धर्मकरणेकी  
 गिनी दुइ सामग्रीसे पाप करके यह जीव नरक जावेगा, तो फेर ईश्वर तु  
 मारे कहनेहीसे अज्ञानी असर्वज्ञ सिद्ध होता है. जेकर कहोगे ईश्वर जान  
 ता था जो यह जीव मेरी देइ दुइ सामग्रीसे पाप करकें नरकें जायगा तो  
 फेर हमारा रचने वाला ईश्वर, परम शत्रु दुआ के नहीं ? बिना प्रयोजन  
 एक जीवोंकूं सामग्रीद्वारा पाप करायके क्युं उनकूं नरकमें माले ? जब साम  
 ग्रीद्वारा प्रथम पाप कराना और पीठें नरकपात करनेका दंभ देना इस तुमारे  
 कहनेसे ईश्वरसे अधिक अन्यायी कोइ नहीं क्युं के उस जीवकूं प्रथम तो  
 रचा, फेर नरकमें माला, वस येही तुमने ईश्वरकूं अन्यायी, असर्वज्ञ, निर्द  
 यी, अज्ञानी, वृथा मेहनतीरूप कलंक दीने, इस वास्ते निर्मल जीव ईश्वर  
 ने नहीं रचा. ए प्रथम पक्षोत्तर.

अथ दूसरा पक्षोत्तरः—जेकर कहोगे ईश्वरने पुण्य वालेही जीव रचे है  
 तो यहजी कहनां तुमारा मिथ्या है, क्युंकि जब पुण्यही वाले सर्व जीव  
 थे तो गर्भमेंही अंधे, लंगडे, लूले, बहिरे होनां, जूंमा रूप, नीच वा निर्धन  
 के कुलमें उत्पन्न होना, जाव जीव डु खी रहनां, खाने पीनेको पूरा न मि  
 लना, महा कष्ट कारक मेहनत करकें पेट नरनां, यह पुण्यके उदयसे नहीं  
 हो सके, अरु बिनाही करे पुण्यके जीवोंकूं ईश्वरने पुण्य क्यु लगा दीया ?  
 जेकर बिनाही कहां जीवोंकूं ईश्वरने पुण्य लगा दीया तो ऐसे बिनाही  
 धर्म कहां जीवोंकूं स्वर्ग नरक मोक्ष कर्म नरक पादंजाय देता ?

देग करायकें, जूखें मारकें, तृष्णा बुढायकें, राग द्वेष मिटायकें; घर वान बुढायकें, साधु बनायकें, दुकडे मंगायकें, दया, दम, दान, सत्यवचन, पीरिका त्याग, स्त्रीका त्याग, इत्यादिक अनेक साधन करायकें, पीठे स्वर्ग माह्मे पहुँचाना, यह संकट ईश्वरने व्यर्थ खडा करके क्युं जीवोंकें दुःख दीन इत वातसें तो ऐसा प्रतीत होता है, जो ईश्वरकूं कुठनी समझ नहीं. इति.

अथ तृतीय पद्दोत्तरः—जे कर कहोगे ईश्वरने पाप संयुक्त ही जीव रचे है, तो फेर बिनाही जीवोंके कखां पाप लगा दीया तो फेर जब ईश्वर ही हमारा सत्तानाश करा, तो हम कित आगें विनति करे जो बिना युक्त ह हमकूं यह ईश्वर पाप लगाता है, तुम इतकूं मने करो, जो बिनाही करे पाप लगा देवे, ऐसे अन्यायी ईश्वरकातो कनी नामही न लेना चाहिये तथा जेकर ईश्वरने पाप संयुक्तही सर्व जीव रचे है, तो राजा, धामात्म ( मंत्री ) श्रेष्ठ, सेनापति, धनवानोंके घरमें उत्पन्न होना, नीरोगकाय. सुंदर रूप, सुंदर सहनन, घरमें आदर, बाहिर यशोकीर्ति, पंचिदिविषय जोग, इत्यादिक सामग्री पापसें कवेइ संजन नहीं होती. इत वास्ते जीवोंके केवल पापवान् ईश्वरने नहीं रचे ॥ इति तृतीय पद्दोत्तर ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ पद्दोत्तरः—जेकर कहोगे अर्द्धोऽर्द्ध पुण्य पाप वाजे जीव ईश्वरने रचे है यह पद्दनी अज्ञा नहीं, क्युकि आधे सुखी आधे दुःखी अमनी सर्व जीव देखनेमें नहीं आते ॥ इति चतुर्थपद्दोत्तर ॥

अथ पंचमपद्दोत्तरः—पांचवा पद्द सोनी ठीक नहीं, सुख छोटा और दुःख बहुत ऐसेनी सर्व जीव देखणेमें नहीं आते, परंतु सुख बहुत अम दुःख अल्प, ऐसें बहुत जीव देखणेमें आते है ॥ इति पंचमपद्दोत्तर ॥

अथ षष्ठ पद्दोत्तर.—ठठा पद्दनी समीचीन नहीं, सुख बहुत अरु दुःख छोटा ऐसेंनी सर्व जीव देखणेमें नहीं आते है, दुःख बहुत अरु सुख अल्प, ऐसें बहुत जीव देखणेमें आते है. इन हेतुओंमें ईश्वर जीवोंके किसी व्यवस्था बाजा नहीं रच सकता, तो फेर ईश्वर सृष्टिका कर्ता क्यु कर निरु हो सकता है? कनी नहीं हो सकता. तथा जब ईश्वरने नृष्टि नहीं रची थी तत्र तो ईश्वरकूं क्या दुःख था? अरु जब नृष्टि रची तत्र क्या सुख हुआ? पूर्वपद्द—ईश्वर तो सदाही परम सुखी है, क्या ईश्वरमें कृत्र नृपनता

हे जो उस न्यूनताके पूर्ण करणोकूँ सृष्टि रचे ? वो तो जगतमें अपनी  
ईश्वरता प्रगट करणोकूँ सृष्टि रचता है.

उत्तरपक्षः—जब ईश्वरने सृष्टि नहीं रची थी तब तो ईश्वरकी ईश्वरता प्रगट  
नहीं थी अरु जब सृष्टि रची तब ईश्वरता प्रगट नइ, तो प्रथम जब ईश्वरकी  
ईश्वरता प्रगट नहीं नइ थी तब तो ईश्वर बडा उदास अरु असंपूर्ण मनो  
रथ ईश्वरताकों प्रगट करणोमें विवहल था. इस हेतुसे अवश्य ईश्वरकूँ दुःख  
होना चाहिये. जब ईश्वर सृष्टिसे पहिलेँ ऐसा दुःखी था तब तो खाली  
क्युँ वैठ रहा था ? इस सृष्टिसे पहिलेँ अपर सृष्टि क्युँ नहीं रचकेँ अपना  
दुःख दूर करा ?

पूर्वपक्षः—ईश्वरने जो सृष्टि रची हैं सो जीवोंसेँ धर्म करकेँ उनकूँ अ  
न्त सुख देगा इस परोपकारके वास्ते ईश्वरने सृष्टि रची है.

उत्तरपक्षः—धर्म करायकेँ जीवोंकूँ सुख देना यह तो तुमारे कहनेसेँ परोप  
कार हुआ परंतु जो पाप करकेँ नरक गयेँ उनके उपरि क्या उपकार करा ?  
उनकूँ दुःखी करणोसेँ क्या ईश्वर परोपकारी हो सक्ता है ?

पूर्वपक्षः—उनकूँ नरकसेँ निकालके फेर स्वर्गमें स्थापन करेगा.

उत्तरपक्षः—तो फेर प्रथमही नरकमें क्युँ जाने दीये ?

पूर्वपक्षः—ईश्वरही सर्व कुठ पुण्य पापादि कराता है, जीवके अधीन कु  
ठनी नहीं. ईश्वर जो चाहता है सो कराता है, जैसे काठकी पुतलीकूँ वा  
जीगर जैसेँ चाहता है, तैसेँ नचाता है, पुतलीके कुठ अधीन नहीं.

उत्तरपक्षः—जब जीवके कुठ अधीन नहीं, तो जीवकूँ अन्ते बुरेका फ  
लनी नहीं चाहिये. क्युँ के जो कोइ सिरदार किसी नौकरकूँ कहै जो तुम  
यह काम करो, फेर नौकर सिरदारके कहनेसेँ वो काम करे, अरु वो काम  
अन्ना वा बुरा है तो क्या फेर वो सिरदार उस नौकरकूँ कुठ दंड दे सक्ता ?  
कुठनी नहीं दे सक्ता. ऐसेँही ईश्वरकी आज्ञासे जब जीवने पुण्य वा पाप  
करे, तो फेर पुण्य पापका फल जीवकूँ नहीं चाहिये. जब पुण्य पाप जी  
वके करे न हुए तब स्वर्ग अरु नरक एनी जीवकूँ न होंगे, तब जीवकूँ  
नरक, स्वर्ग, तिर्थग अरु मनुष्य, ए चार गतिनी न होगी. जब चार गति  
न होवेगी, तब संसारनी न होगा, जब संसार न होगा तब तो वेद, पुरा  
ण. कुरान, तौरे, तजबूर, इंजील प्रमुख शास्त्रनी न होंगे. जब शास्त्र न

होंगे तब शास्त्रका उपदेशकनी न होगा जब शास्त्रका उपदेशकनी नहीं तो ईश्वरनी नहीं. जब ईश्वरही नहीं तो फेर सर्व शून्यता सिद्ध नह. कलंक क्युंकर मिटेगा ?

**पूर्वपक्षः**—यह जो जगत् है सो वाजीगरकी वाजीवत् है. धरु ईश्वर इसका वाजीगर है, सो इस जगत्कूं रच कर ईश्वर इस खेजते. खेजते (क्रीडा करता) है, नरक, स्वर्ग, पुण्य, औ पाप कुठ नही.

**उत्तरपक्षः**—जब ईश्वरने क्रीडाहीके वास्ते जगत् रचा, तो क्रीडाहीमात्र फल होना चाहियें, परंतु इस जगत्में तो कुष्टी, रोगी, गोक्री. धनहीन, बलहीन, महादुःखी, महाप्रलाप कर रहे है, जिनकूं देखनेसे दयाके बर होकर हमारे रोधटे (रोम) खडे होते है, तो क्या फेर ईश्वरकूं इन दुःख यांकूं देख कर दया नहीं आती ? जब ईश्वरकूं दया नही तो फेर निर्दयीनी कदेई ईश्वर हो सक्ता है ? धरु जो क्रीडा करने वाला है, सो बालकमें तरे रागी, द्वेषी, धरु होता है, जब राग द्वेष है, तो उसमें सर्व दूषण है. जब आपही औगुणसे नखा है, तो वो ईश्वर काहेका ? वोतो संसार जीव है. धरु जब राग, द्वेष वाला होवेगा तब सर्वज्ञ कदापि न होवेगा. जब सर्वज्ञ नहीं तो उसकूं ईश्वर कौन कह सक्ता है ?

**पूर्वपक्षः**—जीवोंके करे दूये पुण्य पापके अनुसार ईश्वर दंड देता है. हेतुसे ईश्वरकूं क्या दोष है ? जैसा जिसने किया, वैसाही उसकूं फल दीया.

**उत्तरपक्षः**—इस तुमारे कहनेसे यह संसार अनादि सिद्ध हो गया, आ ईश्वर कर्ता नहीं, ऐसा सिद्ध हुआ. गहरे मित्र ! तेने अपने हाथमें आणां मुंद्र काला किया, खुं के जे जीव अब हैं, धरु जो कुठ इनकूं इहां फल मिजा है, सो पूर्व जन्ममें करा हुआ वहरा धरु जो पूर्व जन्म था उसमें जे दुःख सुख जीवकूं मिजा था, वो उससे पूर्व जन्ममें करा था, इमी तरे पूर्व जन्ममें दुःख सुख करणां धरु उत्तरोत्तर जन्ममें सुख दुःखका जागण इमी तरे संसार अनादि सिद्ध होता है. अब शोचो कि जगत्का कर्ता ईश्वर कर्ता सिद्ध हुआ ?

**पूर्वपक्षः**—हम तो एकही परम ब्रह्म पारमार्थिक मङ्गल मानते हैं.

**उत्तरपक्षः**—जे करे एकही परम ब्रह्म राडूप है, तो फेर यह जो साज

माल, प्रियाल, हंताल, ताल, तमाल, प्रवाल प्रमुख पदार्थ अग्रगामि पणे  
रके जो प्रतीत होते है, उ क्युं कर सत् स्वरूप नहीं है ?

पूर्वपक्षः—ए पूर्वोक्त जो पदार्थ प्रतीत होते है, वे सर्व मिथ्या है तथा च  
अनुमान प्रपंच मिथ्या है, प्रतीत होणेसे जो ऐसा है, सो ऐसा है. यथा  
रोप, चांदी रूप, तैसाही यह प्रपंच है, इस अनुमानसे प्रपंच मिथ्यारूप है,  
एक एक ब्रह्मही पारमार्थिक सद्रूप है.

उत्तरपक्ष—हे पूर्वपक्षी ! इस अनुमानके कहनेसे तूं तीक्ष्ण बुद्धिमान  
हो है, सोइ बात कहते है, यह जो प्रपंच तुमने मिथ्यारूप माना है सो  
मिथ्या तीन तरेका होता है, एक तो अत्यंत असत् रूप, अरु दूसरा है  
कुछ और, अरु प्रतीति होवे औरतरे. अरु तीसरा अनिर्वाच्य इन ती  
मेंसे कौनसा मिथ्यारूप प्रपंचकूं माना है ?

पूर्वपक्षः—इन तीनों पक्षोंमेंसे प्रथम दो पक्ष तो मेरे स्वीकारही नहीं  
स कारण मैं तो तीसरा अनिर्वाच्य पक्ष मानता हूं, सो यह प्रपंच अनि  
र्वाच्य मिथ्यारूप है.

उत्तरपक्षः—प्रथम तो तुम यह कहो कि अनिर्वाच्य क्या वस्तु है ? ए  
सबता तुम अनिर्वाच्य किस वस्तुकूं कहते हो ? (१) क्या वस्तुका कहने  
गला शब्द नहीं है ? (२) वा शब्दका निमित्त नहीं है ? प्रथम विकल्प तो  
कल्पनाही करने योग्य नहीं है ? यह सरल है, यह रसाल है, ऐसा शब्द  
तो प्रत्यक्ष सिद्ध है. अथ दूसरा पक्ष है तो शब्दका निमित्त ज्ञान नहीं है ?  
यथा पदार्थ नहीं है ? प्रथम पक्ष तो समीचीन नहीं. सरल, रसाल, ताल,  
तमाल प्रमुखका ज्ञान तो प्राणी प्राणी प्रत्येक प्रतीत है, सर्व जीव देखने  
वाले जानते है, जो सरल, रसाल, ताल, तमाल प्रमुखका ज्ञान हमकूं है.  
अथ दूसरा पक्ष तो पदार्थ, जावरूप नहीं है ? कि अजावरूप नहीं है ? जे  
कर कहोगे पदार्थ जावरूप नहीं अरु प्रतीत होता है, तो तुमकूं विपरीता  
ख्याति मानणी पडी अरु अद्वैतवादीयोंके मतमें विपरीताख्याति मानणी  
महा दूषण है. अथ दूसरा पक्ष. जो पदार्थ अजावरूप नहीं तो जावरूप  
सिद्ध नया, तब तो सत् ख्याति मानणी पडी अरु जब अद्वैतवाद मतां  
गीकार कीया, अरु सत्ख्याति मानणी पडी, तब तो सत् ख्यातिके माननेसे  
अद्वैत मतकी जडकूं कूहाडेसे काटा. कदापि अद्वैतमते नहीं सिद्ध होगा.



पूर्वपक्षः—जावरूप तथा अजावरूप ए दोनोही प्रकारें वस्तु नहीं।  
 उत्तरपक्षः—हम तुमकूं पूठते है जो नाव अरु अजाव इन दोनोका जो  
 जो लौकिकमें सिद्ध है वही तुमने माना है? वा इससे विपरीत और  
 का अर्थ, नाव अरु अजावका तुमने माना है? जे कर प्रथम पक्ष माने  
 तो जहां नावका निषेध करो गे तव तो तहां अवश्यमेव अजाव कहना  
 पड़ेगा, अरु जहां अजावका निषेध करोगे, तहां अवश्यमेव नाव कहना  
 गा, जो परस्पर विरोधी है, तिसमें एकका निषेध करोगे तो दूसरेकी सिद्धि  
 अवश्य कहनी पड़ेगी अनिर्वाच्यता तो जडाभूलसे नष्ट हो गइ अथवा  
 रा पक्ष—तव तो हमारी कुठ हानी नहीं, क्यु के अलौकिक एतावता तुम  
 रे मनःकल्पित शब्द अरु शब्दका निमित्त जो नष्ट हो जावेगा, तो लौकिक  
 शब्द अरु लौकिक शब्दका निमित्त कदापि नष्ट नहीं होगा, तो फेर अ  
 र्वाच्य प्रपंच किस तरें सिद्ध होगा? जब अनिर्वाच्य न सिद्ध दुया,  
 प्रपंच मिथ्या कैसे सिद्ध दुया? तव एकही अद्वैत ब्रह्म कैसे सिद्ध दुया  
 पूर्वपक्षः—हम तो जो प्रतीत न होवे, उसकूं अनिर्वाच्य कहते है।  
 उत्तरपक्षः—इत तुमारे कहनेमें तो बहुत विरोध आवे है, जे कर प्र  
 च प्रतीत नहीं होता तो तुमने अपने प्रथम अनुमानमें जो प्रपंचको  
 तीयमान हेतु स्वरूप पणे क्यु कर ग्रहण कीया? अरु प्रपंचकूं अनुमान  
 करती वेलां धर्मापणे क्यु कर ग्रहण कीया? जे कर कहोगे धर्मापणे  
 वा प्रतीयमान हेतुपणे प्रपंचकूं ग्रहण करणेमें क्या दूषण है? तो फेर  
 तुमने यह जो उपर प्रतिज्ञा करी थी, कि हम तो जो प्रतीत नहीं होवे  
 उसकूं अनिर्वाच्य कहते है, तो फेर प्रपंच अनिर्वाच्य कैसे सिद्ध दुया  
 जब प्रपंच अनिर्वाच्य नहीं तव या तो जावरूप प्रपंच सिद्ध होगा, वा  
 तो अजावरूप प्रपंच सिद्ध होगा. इन दोनोही पक्षोंमें एकरूप प्रपंचको  
 माननेसे पूर्वोक्त विपरीताख्याति तथा सत्ख्याति रूप दोनो दूषण फेर  
 मारे गलेमें रस्ती मालते है, अथ नाग कर कहां जावोगे? हम फेर तुम  
 कों पूठते है कि यह जो तुम इस प्रपंचकूं अनिर्वाच्य मानते हो, तो प्र  
 पक्षः प्रमाणसे मानते हो? वा अनुमान प्रमाणमें मानते हो? प्रपंच  
 प्रमाण तो इस प्रपंचकूं सत्स्वरूपही सिद्ध करता है, जैसा जैसा प्रमाण  
 है, तैसा तैसाही प्रत्यक्ष ज्ञान उपपन्न होता है. अरु प्रपंच जो है ता

कार (आपसमें) न्यारी न्यारी जो वस्तु है सो अपने अपने स्वरूपमें जाव  
 है अरु दूसरे पदार्थके स्वरूपकी अपेक्षासे अजाव रूप है, इस इतरे  
 विविक्त वस्तुओंकीही प्रपंच रूप माना है, तो फेर प्रत्यक्ष प्रमाण प्रपं  
 अनिर्वाच्य कैसे सिद्ध कर सकता है?

पूर्वपक्षः—पूर्वोक्त जो हमारा पक्ष है, तिसकूं प्रत्यक्ष प्रतिक्षेप नहीं कर  
 सकता, क्युं कि प्रत्यक्ष तो विधायकही है, जे कर प्रत्यक्ष इतर वस्तुमें इतर  
 वस्तुके स्वरूपका निषेध करे, तो हमारे पक्षकूं बाधक ठहरे, परंतु प्रत्यक्ष  
 प्रमाण तो ऐसा है नहीं, प्रत्यक्ष प्रमाणते इतर वस्तुमें इतर वस्तुके स्व  
 रूप निषेध करणेकूं कुंठ है

उत्तरपक्षः—यहनी तुमारा कहनां असत्य है अन्य वस्तुके स्वरूपके  
 ना निषेधां वस्तुके यथार्थ स्वरूपका कदापि बोध न होगा, पीतादिक  
 र्णों करी रहित जब बोध होगा, तवही नील जैसे रूपका बोध होगा.  
 या जब प्रत्यक्ष प्रमाण करी यथार्थ वस्तु स्वरूप ग्रहण कीया जायगा,  
 तब तो अवश्य अपरवस्तुके स्वरूपका निषेधनी तिहां जाना जायगा. जे  
 र अन्य वस्तुके निषेधकूं अन्य वस्तुमें प्रत्यक्ष न जानेगा तो तिस  
 वस्तुके विधि स्वरूपकूंनी प्रत्यक्ष न जान सकेगा, केवल जो वस्तुके  
 स्वरूपकूं ग्रहण करणा है, सोइ अन्य वस्तुके स्वरूपका निषेध करनां है.  
 तब प्रत्यक्ष प्रमाण, विधि अरु निषेध दोनोहीकूं ग्रहण करता है, तब  
 ही प्रपंच मिथ्यारूप कदापि सिद्ध न होगा, जब प्रपंच मिथ्यारूप प्रत्यक्ष  
 प्रमाणसे न सिद्ध जया, तब तो परम ब्रह्मरूप एकही अद्वैत तत्त्व  
 से सिद्ध जया? तथा जो तुम प्रत्यक्षकूं नियम करके विधायकही मानोगे,  
 तब तो विद्यावत् अविद्याकीनी विधि तुमकूं मानणी पड़ेगी. सो यह ब्रह्म  
 प्रविचारहित प्रत्यक्ष प्रमाणसे ग्रहण कीया, तब तो अविद्यानी प्रत्यक्ष  
 निषेध ग्रहण होगी. फेर जो तुमारा यह कहनां है की 'प्रत्यक्ष जो है,  
 तो विधायकही है, परंतु निषेधक नहीं.' ऐसे वचन कहने वालेकूं क्युं न  
 उन्मत्त कहना चाहिये? अब जो आगे अनुमान कहेंगे, तिस करकेनी पू  
 र्वोक्त तेरे अनुमानका पक्ष बाधित है, सो अनुमान हमारा जैसे है, प्रपंच  
 मिथ्या नहीं है, असत्से विलक्षण होणेसे जो असत्से विलक्षण है, सो  
 ऐसा है. यथा आत्मा तैसा ही यह प्रपंच है, तथा प्रतीयमान जो तुमा

रा हेतुं है, सो ब्रह्मात्माके साथ व्यभिचारी है, जैसे ब्रह्मात्मा प्रती-  
तो है, परंतु मिथ्यारूप नहीं है, जे कर कहोगे कि ब्रह्मात्मा अन-  
है तो वचनगोचर न होगा, जब वचनगोचर नहीं तब तो तुमकू  
वनना ठीक है, क्युं कि ब्रह्म बिना अपर तो कुठ है नहीं, अरु जो  
त्मा है, सो प्रतीयमान नहीं, तो फेर तुमकूं हम गुंके बिना और  
कहे ? प्रथम अनुमानमें जो तुमने सीपका दृष्टांत दीया था, सो  
विकल है, क्युं कि जो सीप है सोनी प्रपंचके अंतर्गत है, अरु तुम त  
पंचकूं मिथ्यारूप सिद्ध करा चाहते हो, यह कनी नहीं हो सका है.  
साध्य होवे सोइ दृष्टांतमें कहा जावे, जब सीपकानी अनीतक सत्-  
त पणा सिद्ध नहीं, तो उसकूं दृष्टांतमें काहेकूं लानां ? तथा  
तुमकूं पूठते है कि यह जो तुमने प्रथम अनुमान, प्रपंचके मिथ्या  
नेकूं कीना था सो अनुमान, इस प्रपंचसें निन्न है वा अनिन्न है ? जे  
कहोगे निन्न है, तो फेर सत्य है, वा असत्य है ? जे कर कहोगे  
है, तो तिस अनुमान सत्यकी तरें प्रपंचकी सत्यही स्वरूप है. जे  
कहोगे असत्य स्वरूप है, तो फेर क्या शून्य है ? वा अन्यथा  
है ? वा अनिर्वचनीय है ? प्रथम दोनो पदू तो कदापि साध्यके  
धक नहीं है, मनुष्यके शृंगकी तरे, तथा सीपके रूपकी तरे. अरु त-  
रा जो अनिर्वचनीय पदू है तिसका तो संभवही है नहीं; सो अ-  
साध्यकूं कैसे साधेगा ?

पूर्वपदू:-हमारा जो अनुमान है, सो व्यवहार सत्य है, इस का  
असत्य नहीं, फेर आपणे साध्यकूं क्युं कर नहीं साध्य सका ? अ-  
साध्यही सका है.

उत्तरपदू:-हम तुमसें पूठते हैं कि जो यह व्यवहारसत्यका क्या रू-  
प है ? व्यवहतीति (व्यवहार) जैसें जो व्युत्पत्ति कर्मिं तब तो ज्ञान  
ही नाम व्यवहार उद्गरा, ज्ञानमें जो सत्य है, सो पारमाधिकारी है,  
पदूमें सत् स्वातिरूप प्रपंच सिद्ध हुवा. जब प्रपंच नत् सिद्ध हु-  
तब तो एरुही परम ब्रह्म सद्रूप अक्षततत्त्व हित्ती तरुनी सिद्ध न  
हो सका, जे कर कहोगे व्यवहार नाम शब्दका मन्य है, तो फेर हम त  
कूं पूठते है जो व्यवहार नाम शब्दका है, तो फेर शब्द, स्वल्पसें सत्य है

वा असत्य है? जे कर कहोगे शब्द सत्स्वरूप है तो शब्दकी तरें प्रपंचनी सत् स्वरूप है, जे कर कहोगे असत्स्वरूप शब्द है, तो फेर ब्रह्मादि शब्दसें कहे दुये, कैसें सत् स्वरूप हो सकेंगे? क्युं कि जो आपही असत् स्वरूप है, सो परकी व्यवस्था करणे वा कहनेका हेतु कनी न हो सकता.

पूर्वपक्षः—जैसे खोटा रूपक सत्य रूपकके क्रय विक्रयादिक व्यवहारका जनक होणेसें सत्य रूपक माना जाता है, तैसें ही अनुमान हमारा यद्यपि असत् स्वरूप है तोनी जगत्में सत् व्यवहार करके प्रवर्तक होणेसें व्यवहार सत् है, इस वास्ते आपणे साध्यका साधक है.

उत्तरपक्षः—हे जव्य ! इस तुमारे कहनेसें तुमारा अनुमान पारमार्थिक असत् स्वरूप है, फेर तो जो दूषण असत् पक्षमें दीने हैं, सो सर्व इहां पढ़ेंगे, जे कर कहोगे कि हम प्रपंचसें अचेद अनुमानकूं मानते है, तब तो प्रपंचका तरें अनुमाननी मिथ्यारूप उहारा, तब तो आपणे साध्यकूं कैसें साध सकेगा? इस पूर्वोक्त विचारसें प्रपंच मिथ्यारूप नहीं, कितु आत्मा की तरें सत्स्वरूप है, तो फेर एक ही ब्रह्म अद्वैततत्त्व है यह तुमारा कहनां क्युं कर सत्य हो सकता है? कनी नहीं हो सकता.

पूर्वपक्षः—हमारी उपनिषदोंमें तथा शंकर स्वामीका शिष्य आनंदगिरि, शंकरदिग्विजयके तीसरे प्रकरणमें लिखता है कि “ परमात्मा जगदुपादानकारणमिति ” परमात्मा जो है, सोइ इस सर्व जगत्का कारण है, कारणनी कैसा उपादान रूप है. उपादान कारण उसकूं कहते है कि जो कारण होवे सोइ कार्यरूप हो जावे, इस कहनेसें यह सिद्ध हुआ जो कुठ जगत्में है, सो सर्व कुठ परमात्मा ही आप बन गया, तब तो जगत् परमात्मा रूप ही है, फेर तुम सृष्टि कर्ता ईश्वर क्युं नहीं मानते?

उत्तरपक्षः—वाह रे नास्तिक शिरोमणि ! तुम अपणे कहणेकूं कनी विचार शोच कर कहते हो, वा नहीं? इस तुमारे कहनेसे तो पूर्ण नास्तिक पणा तुमारे मतमे सिद्ध होता है, यथा जब सर्व कुठ जगत् स्वरूप परमात्मरूपही है, तब तो न कोइ पापी है, न कोइ धर्मी है, न कोइ ज्ञानी है, न कोइ अज्ञानी है, न तो नरक है, न तो स्वर्ग है, साधुनी नहीं, अरु चोर नी नहीं, सत्शास्त्र नी नहीं, अरु मिथ्या शास्त्रनी नहीं, तथा जैसा गोमासजही, तैसाही अन्नजही है, जैसा स्वचार्यासें कामजो

ग सेवन कीया तैसा ही माता, वहिन, बेटियों कीया, जैसा चमाल, तैसा ब्राह्मण, जैसा गधा, तैसा संन्यासी, क्युं के जब सर्व वस्तुका कारण ईश्वर परमात्माही उहारा, तब तो सर्व जगत् एकरस एक स्वरूप है, दूसरा तो कोइ है नही.

पूर्वपक्ष.—हम एक ब्रह्म मानते है, अरु एक माया मानते है. सो तुम ने जो उपर बहुतसे आल जंजाल लिखे है, सो सर्व मायाजन्य है अरु ब्रह्म तो सच्चिदानंद एकही शुद्ध स्वरूप है.

उत्तरपक्ष.—हे अद्वैतवादी! यह जो तुमने पक्ष माना है सो बहुत अ समीचीन है यथा. माया जो है सो ब्रह्मसें जेद है, वा अजेद है? जेकर जेद है तो जड है, वा चेतन है? जे कर जड है, तो फेर नित्य है, वा अनित्य है? जे कर कहोगे नित्य है, तो अद्वैत मतके मूलहीकुं दाह करती है, क्युंकि जब ब्रह्मसें जेद रूप दुइ, अरु जड रूप नइ. अरु नित्य दुइ, फेर तो तुमने द्वैतपंथ आपही आपणे कहनेसें सिद्ध कर लीया. अरु अद्वैत पंथ जड मूलसें कट गया, जेकर कहोगे कि अनित्य है, तो द्वैतता दूर कनी नही होगी, क्युंकि जो नाश होने वाला है, सो कार्य रूप है, अरु जो कार्य है, सो कारण जन्य है, तो फेर उस मायाका उपादान कारण कौन है? सो कहनां चाहिये. जे कर कहोगे अरु माया तब तो अनवस्था दूषण है, अरु अद्वैत तीनों कालोमें कदापि सिद्ध नहीं होगा, जे कर ब्रह्महीकुं उपादान कारण मानोगे, तब तो ब्रह्मही आप सर्व कुच बन गया. तब तो पूर्वोक्त दूषण आया जे कर मायाको चैतन्य मानोगे, तोनी यही पूर्वोक्त दूषण होगा, जे कर कहोगे माया ब्रह्मसें अजेद है तब तो ब्रह्मही कहनां चाहिये, माया नहीं कहनां चाहिये.

पूर्वपक्ष.—हम तो मायाकुं अनिर्वचनीय मानते है.

उत्तरपक्ष.—इम अनिर्वचनीय पक्षकुं उपर समन कर आये हैं, तेमें समन करणां, इज्जानी कह देनां तथा अनिर्वचनीय जो शब्द है तिसमें नित् जो उपसर्ग है. तिसका अर्थ तो निषेध रूप कीया है. कदापक क्या करणमें शेष जो शब्द है, सो या तो जावका वाचक है वा अजावका वाचक है? जब जावकुं निषेध करोगे, तब तो अजाव आ जावेगा, अथ जे कर अजावकुं निषेधोगे, तब तो जाव आ जावेगा. ए जावाजाव दोनों सर्व

के तीसरा वस्तुका रूप कोइ नहीं. इस वास्ते अनिर्वचनीय जो शब्द है, सो दंजी पुरुषोनें उलरूप रचा प्रतीत होता है, इस कहनेसें तो वैत ही सिद्ध होता है, अद्वैत नहो.

पूर्वपक्षः—यह जो अद्वैत मत है, इसके मुख्य आचार्य शंकरस्वामी हैं जिनोंने सर्वमतोंकूं खंमन करके अद्वैत मत सिद्ध किया है, तो फेर ऐसे शंकर स्वामी साक्षात् शिवका अवतार, सर्वज्ञ, ब्रह्मज्ञानी, शीजवान्, सर्वसामर्थ्ययुक्त, उनोंके अद्वैत मतकों खंमने वाला कौन है ?

उत्तरपक्षः—हे वल्लभ मित्र ! तुमारी समज मूजब तो जरूर जैसें तुम कहते हो, तैसेंही है, परंतु शंकरस्वामीके शिष्य आनंदगिरिने शंकरदिग्विजय के अष्टावनवे प्रकरणमें जो शंकरस्वामीका वृत्तांत लिखा है, उसके पढ़नेसें तो ऐसा प्रतीत होता है, जो शंकरस्वामी सर्वज्ञ नहीं, अरु कामी है, अरु अज्ञानी है, अरु असमर्थ है, तिस लिखनेसें ऐसाजी प्रतीत होता है कि वेदांतीयोका अद्वैत ब्रह्मज्ञान जब तांइ यह स्थूल देह रहेगी, तब तांइ रहेगा, परंतु इस शरीरके बूट्या पीठें किसी वेदांतीयोको ब्रह्म ज्ञान नहीं रहेगा.

पूर्वपक्षः—वो कौनसा शंकरस्वामीका वृत्तांत है जिस्सें तुमारी पूर्वोक्त वाताते सिद्ध होती है ?

उत्तरपक्षः—जो तुमकूं वृत्तांत सुनना है, तो हमारे क्या ढील है, हम इसी जगगे लिख देते हैं जब शंकरस्वामीने मंमनमिश्रकूं जीता, तब मंमनमिश्रने यतिव्रत लीया, अरु मंमनमिश्रकी चार्या जिसका नाम सरसबाणी था, सो सरसबाणी आपणे पतिकूं यतिव्रत लीया देख कर आप सरसबाणी ब्रह्मलोककूं चली, सरसबाणीकूं जातीकूं देख कर शंकरस्वामी जीवन दुर्गामंत्र करके दिग्वंधन करते दुये, तिसके पीठें हे सरसबाणी ! तूं ब्रह्म शक्ति है, ब्रह्मके अशूनत मंमनमिश्रकी तूं चार्या है, उपाधि करके सर्वकूं फलित है, तिस कारणसें मेरे साथ प्रसंग करके फेर तुमकूं जाणां योग्य है. ऐसे शंकरस्वामीने कहा. पीठें सरसबाणी शंकरस्वामी प्रतें कहती हुई कि—पतिके संन्यासतें प्रथम ही वैधव्य होणेके नयसें मैने पृथिवी त्यागी है, तिस कारणसें फेर मै पृथिवीका स्पर्श न करुंगी. हे यति ! तूं तो पृथिवीमें स्थित है कैसें तेरे प्रसंगके तांइ एरु विषय स्थिति होवे, ऐसे शंकरस्वामीकूं कहती प्रतें फेर शंकरस्वामी कहते नये किः—हे माता!

तोजी चूमिकाके उपरि ठ हाथ प्रमाण उंची आकाशमें रहो मेरे माथे  
 सर्व बचनका प्रपंच संचार करके, पीठसे जानां. जैसे आदर पर होकर  
 शंकरस्वामीके साथ सर्वशास्त्रों विषे वेद, इतिहास, पुराणों विषे समस्त  
 प्रसंग करके पीठें शंकरकूं तिरस्कारके तांड़ जिसमे दुःखें प्रवेग है, ऐसा  
 जो कामशास्त्र, तिस विषे नायिका, अरु नायक, इनके जेद विस्तारसे तू  
 सबाणी शंकरको पृठे. तब तो शंकरस्वामी इस विषयकूं जानते नहीं थे.  
 ताते शंकरस्वामी उत्तर न दे सके, मौनी होते जये, तिस पीठें तू  
 सबाणी शंकरस्वामीकूं सत्य करके कहती दुइ कि:-तुमारे जाननेमें यह  
 शास्त्र नहीं आया, निश्चय करके तिस शास्त्रकूं मैही जानती हूं, कालका  
 जानकार शंकरस्वामी सरसबाणी प्रति कहते दुये कि:-हे माता! तू  
 इहांही ठ महीने रहो, पीठे में सर्व अर्थोंका निश्चय करके तेरे कहेका उ  
 त्तर कहूंगा. जैसे कह कर शंकरस्वामी आग्रह पूर्वक सरसबाणीकूं तिहांही  
 आकाश मफलमें स्थापन करके सर्व शिष्योंकूं यथास्थान जेज करके  
 चार शिष्यो सहित (१) हस्तामलक, (२) पद्मपाद, (३) विधिवत्, (४)  
 आनंदगिरि, ए चार नामक प्रधान शिष्यों करी सेव्यमान तिस नगरसे प  
 श्विमदिशा नाम गढमें गये, सरसबाणीके प्रश्नोके उत्तर जानने के तांड़  
 उस नगरका राजा मर गया था, उसका शरीर तिस अवसरमे चितामें ज  
 लानेके वास्ते ररका था, उस शरीरकूं देख कर शंकरस्वामीने अपणा श  
 रीर उस नगरके प्रांत एक पर्वतकी गुफामे स्थापन करके, शिष्योंकूं कहे  
 दीया कि तुमने इस शरीरकी रक्षा करनी. अरु आप शंकरस्वामी परकाय  
 प्रवेश विद्या करके, लिंगशरीर सयुक्त अजिमान सहित उस राजाके शरीर  
 में ब्रह्मरंध्रमें प्रवेश कर गये; तब तो राजाजी उठा शीतोपचार करा, औ  
 उत्सवसे नगरमें ले आये, राजा मरा नहीं था यह बात प्रसिद्ध कर दी  
 नो, तब तो शंकरस्वामीकूं लोकोने राजसिंहासन उपर विठलाया. पश्चात्  
 राजसिंहासनसे उठ कर स्वामीजी वडी राणीके घरमें गये, तहां जाकर  
 उस राणीसे काम क्रीडा करने लगे, तब तो शंकरस्वामीकी कुशलतासे ति  
 सके आलिंगन करनेसे उत्पन्न हुआ जो सुख संजोग ताकारिके शंकरस्व  
 ामीने उस राणीके मुखके साथ तो अपणा मुख जोडा, औ अपणी ठाती  
 उस राणीके दोनो कुचों (स्तनो) के उपर जोडी, तैसेही उस राणीकी

जीसैं अपनी नानी जोड़ी, औ अपने पगों करकें राणीके पग संकोचे। शवता जंघोमें जंघा फसाइ अर्थात् एक शरीरवत् हो गये, दोनो जने व नि गाढा आलिंगन करनेमें तत्पर हुये, तब तो शंकरस्वामी राणीके कट्ठा प्राणो विषे हाथों करी स्पर्श करते हुये, बहुत सुखमें मग्न हुये, तब तो राणी उनकी आलाप, चतुराइ देख कर चित्तमें विचार करने लगी कि देह विषय करी तो मेरा जन्ता है, परंतु इसका जीव मेरा जन्ता नहीं, एतो कोइ विद्वान् है। ऐसा विचार करके राणीने आपणे नौकरोकूं चारों दिसामें ने ला, अरु कह दीया कि जो पर्वतोमें, वा गुफाउमें बारह योजनोके विचमें जितने शरीर जीव रहित होवे सो सर्व शरीर चितामें रख कर जला दिउं। शंकरस्वामी तो विषयमें मूर्च्छित हो गये, तब तो राणीके नौकरोने चार कोणो कूं रक्षक देख कर शंकरस्वामीके शरीरकूं चितामें रख कर उनके शरीरकूं अग्नि करके दाह करने लगे, तब तो शंकरस्वामीके चारों शिष्य, उस शहरमें गये, जिहा शंकरस्वामी थे, उहां शंकरस्वामिकूं काम लोलुपी अति प्रपयमें वदबुद्धि देख कर शंकर राजाके आगें नाटक करने लगे, शंकरस्वामीकूं परोक्ति करकें प्रतिबोध करने लगे सो यह है, जो लिखते हैं.—

दे। ( १ ) ' यत्सत्यमुख्यशब्दार्थानुकूलं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! ( २ ) नह्येतत्त्वं विदितं नृपु नाव, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! ( ३ ) विश्वो यत्पादिविधिहेतुतत्त्व, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! ( ४ ) सर्वचिदात्म किं सर्वमद्वैत, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! ( ५ ) परतार्किकैरीश्वरसर्वहेतु, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! ( ६ ) यद्वेदांतादिनिर्ब्रह्मसर्वस्थं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! ( ७ ) यज्जैमिनोक्तमखिलकर्म, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! ( ८ ) यत्पाणिनिः प्राह शब्दस्वरूपं तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! ( ९ ) यत्सांख्यानं मतहेतुनूतं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! ( १० ) अष्टागयो गेन अर्नंतरूपं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! ( ११ ) सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! ( १२ ) नह्येतददृश्यप्रपंच, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! ( १३ ) यद्ब्रह्मणोब्रह्मविषावीश्वराह्यनवन, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! ( १४ ) त्वदूपमेवमस्मान्निर्विदितं राजन् ! तव पूर्वय त्याश्रमस्थम् " ॥ इन परोक्तिया करके राजा प्रतिबोध हुआ, सर्वके सन्मुख तित राजाकी देहसैं निकल कर जब गये तब तो उस पर्वतकी कंदरामें



अपणे शरीरकूं न प्राप्ति हुवे तव तो अपणे शरीरकूं चितामें देखा, कर कपालमध्यमें हो कर प्रवेश करा; तव शरीरके चारो ओर अग्नि ज्वलित हो रही थी, तव तो निकलनां डुप्कर हो गया, फेर शंकरस्वामी लक्ष्मी नृसिंहकी स्तुति करी तव लक्ष्मीनृसिंहने शंकरस्वामीकूं जीता, मेंसें बाहिर निकाला ॥ इति कथा समाप्ता ॥ अब हे नव्य ! तूं विचार देख जो में पूर्वे तुजकूं वार्त्ता कही थी सो सर्व सत्य है या नहीं ? क्या (१) जब सरसबाणीके कहनेके प्रश्नका उत्तर नहीं आया, तव तो शंकरस्वामीकूं सर्वज्ञ कौन बुद्धिमान् निष्पत्ती मान सक्ता है ? कोऽनी नहीं माने (२) अरु जब राजाकी राणीसें विषय सेवन करा, तव तो कामी होणे कोऽ शंकाची रहती है ? (३) अरु जब शिष्योंने आकर प्रतिबोध का तव तो अज्ञानी अवश्य हो चूके, (४) जब चितामेंसें न निकल सके, त लक्ष्मीनृसिंहकी स्तुति करी तव नृसिंहने आय करके ज्वलती अग्निमेंसें काले, तव शंकरस्वामी असमर्थ सिद्ध हो गये, जब शंकरस्वामीने फेर कर सरसबाणीके प्रश्नका उत्तर दीया, तव तो सरसबाणीने कहा; स्वामी ! तूं सर्वज्ञ है क्या मृतकके शरीरमें प्रवेश करके उसकी राणी साथ विषय सेवन करके राणी पासों कबुक कामशास्त्रकी वातां शीख सर्वज्ञ हो सक्ता है ? सर्वज्ञ तो नहीं हो सक्ता, परतु गधे खुरकणी तो गधे सरसबाणीकूं उसने सर्वज्ञ कह दीया, अरु शंकरकूं सरसबाणीने स कह कह दीया. वाह क्याही सर्वज्ञोंकी जोडी मिली है ? सरसबाणी त ब्रह्मकी शक्ति हो कर फेर स्त्री बन कर मंमनमिश्रसें विषय सेवन करती रह अरु सर्वज्ञनी बन बैठी, अरु शंकरस्वामी परस्त्रीसे विषयसेवन कर अरु कबुक काम शास्त्र शीख कर सर्वज्ञ बन बैठे, क्या यह गधे खुरकणी न होऽ तो और क्या हुआ ? जब शंकरस्वामी, अपणां स्थूल शरीर छो कर राजाके शरीरमें गये, अरु ब्रह्मविद्या सर्व जूल गये, जे कर न जूल होते तो उनके शिष्य काहेकूं तत्त्वमसिका उपदेश करने ? जब शंकरस्वामी स्थूल शरीरके वदल जाने परब्रह्म विद्या जूल गये, तव तो ब्रह्मविद्या का संबंध, न तो जिग शरीरके साथ रहा, न आत्माके साथ, संबंध रहा किंतु स्थूल शरीरहीके साथ रहा, इसमें यह सिद्ध हुआ कि—जब वेदांत मर जाते है. तव उनका ज्ञानची नष्ट हो जाता है, अरु स्थूल शरीरहीके

नाथ ज्ञानका संबंध रहा परंतु आत्माके साथ नहीं और जो तुमने कहा था कि.—शंकरस्वामीके प्रगट कथन कीये अद्वैत मतकूं कौन खंडन कर सका है ? सो है नव्य ! जब शंकरस्वामीका चरित्रही असमंजस है, तो तैरे उनके कहे हुये मतकूं कौन सयौक्तिक समज सका है ?

पूर्वपक्षः—“ पुरुषएवेदं ” इत्यादि श्रुतियोंसे अद्वैतही सिद्ध होता है.

उत्तरपक्षः—यहजी तुमारा कहना असत् है, क्युंकि जो पुरुष मात्र रूप प्रद्वैततत्त्व होवे तब तो यह जो दिखलाइ देता है कोइ सुखी, कोइ दुःखी, ! सर्व परमार्थसे असत् हो जावेंगे. जब ऐसे होगा तब तो यह जो क इनां है, “ प्रमाणतोअविगम्य संसारनैर्गुणं तद्विसुखया प्रज्ञया तदुद्वेदाय भवतिरित्यादि ” अस्यार्थ —संसारका निर्गुणपणा प्रमाणसें जान कर, तैस संसारसें विमुख बुद्धि हो करके तिस संसारके उद्वेदके ताइ प्रवृत्ति तरे, यह जो कहनां है, सो आकाशके फूजकी सुगंधिका वर्णन करने स रेखा है, क्युं कि जब अद्वैत रूपही तत्त्व है, तब तो नरकादि जवन्नमण रूप संसार कहा रहा ? जिस संसारकूं निर्गुण जान कर तिसके उद्वेद क णेकी प्रवृत्ति होवे.

पूर्वपक्षः—तत्त्वतः पुरुष अद्वैत मात्रही है, और यह जो संसार निर्गु य वर्णन करा है, सो सदा सर्व जीवोंकूं जो प्रतिभासन हो रहा है, सो सर्व चित्रामकी स्त्रीके अंगोपांग उंचे नीचे जैसे प्रतीत होते है, तैसे सर्व संसार प्रतीत होता है परंतु सर्व चित्रामकी स्त्रीके अंगोपांग उच्च नीचकी तरे प्रातिरूप है वा प्रातिजन्य है

उत्तरपक्षः—यह जो तुमारा कहनां है सो असत् है, इस बातमें कोइ वास्तव्य प्रमाण है नहीं. तत् यथा जे कर अद्वैत सिद्ध करणे वास्ते कोइ पृथग्नूत प्रमाण मानोगे, तब तो दैतापत्ति होगी, क्युंकि प्रमाणके बिना किसीकाजी मत नहीं सिद्ध होता, जे कर प्रमाणके बिनाही सिद्ध मानोगे तब तो सर्ववादी अरण्ये अरण्ये अजिमतकूं सिद्ध कर लेवेगे, तथा प्रातिज्ञी प्रमाणनूत अद्वैतसें निन्नही माननी चाहिये. अन्यथा प्रमा णनूत अद्वैत अप्रमाणही हो जावेगा, प्रांति जब अद्वैतकाही रूप दुइ तब तो पुरुषका रूप दुइ, ताते प्रांतिस्वरूपवाला पुरुषही है नहीं, तब तो तत्त्वव्यवस्था कुबजी सिद्ध न होइ जे कर प्राति निन्न मानोगे, तब

तो द्वैतापत्ति होवेगी, अद्वैत मतकी हानि हो जावेगी, जेकर स्थानकूँ  
दिकोंसें जेद माननां इसीकूँ प्राप्ति कहोगे, तब तो निश्चय करके  
प कुंजादिक किसी जगें तो जरूर होंगे. अत्रांतिके देखे बिना कदापि प्रा  
देखनेमें नहीं आवेगी, पूर्व जिसने सच्चा सूर्य नहीं देखा, तिसकूँ  
सूर्यकी प्राप्ति कदापि न होवेगी ॥ तदुक्तं ॥ श्लोक ॥ नादृष्टपूर्वसूर्य  
रज्ज्वां सूर्यमतिः क्वचित् ॥ ततः पूर्वानुसारित्वाद्प्राप्तिरत्रांतिपूर्विका ॥  
इस कहनेसेंजी अद्वैत तत्त्व खंमन हो गया तथा पुरुष अद्वैतरूप  
अवश्य करके दूसरेकूँ निवेदन करना. अरण्य आपकूँ नहीं. आपणमें  
व्यामह है नहीं जे कर कहने वालेमें व्यामोह होवे तब तो अद्वैतकी  
तिपत्ति कबीजी नहीं होवेगी.

पूर्वपक्ष—जब आत्माकूँ व्यामोह है तब ही तो अद्वैत तत्त्वका  
श कीया जाता ?

उत्तरपक्ष—जब आत्माका व्यामोह दूर होगा तब तो आत्मा  
अवस्थातरकूँ प्राप्ति होगी, जब अवस्था बदलेगी, तब तो अवश्य  
ति हो जावेगी, तथा जब अद्वैत तत्त्वका उपदेशक पुरुष परकूँ उप  
करेगा, तब तो परकूँ अवश्य मानेगा, फेर अद्वैत तत्त्व परकूँ निवेदन  
रनां अरु अद्वैत तत्त्व माननां, यह तो ऐसें दुआ के, जैमें मेरा पिता  
मार ब्रह्मचारी है, इस वचनके कहनेसें जरूर वो पुरुष उन्मत्त है, जे  
अपणकूँ अरु परकूँ इन दोनोकूँ जब मानेगा, तब तो द्वैतापत्ति अव  
होगी, इस कारणसें जो अद्वैत माननां है, सो युक्ति विकल है.

पूर्वपक्ष—परमब्रह्मरूप सिद्धही सकल जेद ज्ञान प्रत्ययोंके निराजं  
पणकी सिद्धि है.

उत्तरपक्ष—ए कथन जी तुमारा ठीक नहीं है, क्युंकि परम ब्रह्मही  
सिद्धि नहीं है जे कर है तो स्वत सिद्धि है, वा परम सिद्धि है ? तब  
स्वतःसिद्धि तो है नहीं, जे कर होवे तब तो किसीकाजी विवाह न रहे  
जे कर कहोगे परतःसिद्धि है, तो क्या अनुमानसें है, वा आगमसें है  
जे कर कहोगे अनुमानसें है तो वो अनुमान कौनसा है ? कहा

पूर्वपक्ष—तो अनुमान यह है कि विवाडरूप जो अर्थ है सो प्रतिना  
सात प्रविष्ट ब्रह्मचासके अंतर है, प्रतिचासमान होणसें जो जो प्रतिना

मान है सो सो प्रतिजासांत प्रविष्टही देखा है, जैसे प्रतिजास आत्मा प्रतिजासमान है सकल अर्थ सचेतन अचेतन विवादरूप है तिस का जैसे प्रतिजासात प्रविष्ट है, घटपटादि यह अनुमान है.

उत्तरपक्ष—यह अनुमान तुमारा सम्यक् नहीं है, (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत, इन तीनोंके प्रतिजासांत प्रविष्ट होऐसें साध्यरूपही दुये.

पूर्वपक्ष—तब तो (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत. इन तीनोंके न होवे अनुमानही नहीं बन सकता. जे कर कहोगे कि, (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत, ए तीनों प्रतिजासांत प्रविष्ट नहीं है, तो इनोहीके साथ हेतु, निचारी होगा जे कर कहोगे अनादि अविद्या वासनाके बलसें हेतु दृष्टांत है, सो प्रतिजासके बाहिरकी तरे निश्चय करते हैं, जैसे प्रतिपाद्य, प्रतिपादक, सत्ता, सत्तापति जनकी तरे तिस कारणसें अनुमाननी हो सकता है, अरु तब सकल अनादि अविद्याका विलास दूर हो जावेगा, तब तो प्रतिजासांत प्रविष्टही प्रतिजास होगा. विवादनी न रहेगा, प्रतिपाद्य प्रतिपादक, साध्य साधन जावनी नहीं रहेगा, तब तो अनुमान करनेकाजी कुछ फल हों, आपही अनुभवमान परम ब्रह्मके होते दुये देश काल अव्यवच्छिन्न रूपके होयां निर्व्यञ्जित, सकल अवस्था व्यापकपणे वालेमें अनुमान का कुछ प्रयोगनी नहीं चाहिये है.

उत्तरपक्ष—जो अनादि अविद्या प्रतिजासांत प्रविष्ट है, तब तो विद्या ही गइ. तब तो असत् रूप (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत आदि कहे कैसें दिखा सके? जे कर कहोगे प्रतिजासके बाहिरनूत है, तब (१) अविद्या प्रतिजासमान है? वा (२) अप्रतिजासमान है? तब (३) अविद्याकूं प्रतिजासमान रूप होऐसें अप्रतिजासमान तो नहीं. जे (१) कहोगे प्रतिजासमान है, तो तिसहीके साथ हेतु व्यनिचारी है तथा प्रतिजासके बाहिरनूत होऐसें तिसके प्रतिजासमान होऐसें जेकर तुमारे नामे ऐसा होवेकी अविद्या जो है, सो नतो प्रतिजासमान है, न अप्रतिजासमान, न प्रतिजासके बाहिर, न प्रतिजासके अंदर प्रविष्ट है न प्रविष्ट है, न अनेक है, न नित्य है, न अनित्य है, न व्यनिचारिणी, न अव्यनिचारिणी है, सर्वथा विचारके योग नहीं सकल विचा

रांतर अतिक्रान्त स्वरूप है. रूपांतरके अभावसे अविद्या जो है, निरूपता लक्षण है, यहनी तुमारी बडी अज्ञानताका विस्तार तैसी निरूपता स्वभावकूं यह अविद्या है, यह अप्रतिजासमान है, कौन कथन करनेकूं समर्थ है ? जे कर कहोगे यह अविद्या तिपात है, तो फेर क्युंकर अविद्या नीरूपसिद्ध होगी, जो वस्तु, जिस स्वरूप रकें प्रतिजासमान है, सो तिसही वस्तुका रूप है; तथा अविद्या जो सो विचार गोचर है, वा विचार गोचर रहित है ? जे कर कहोगे गोचर है तव तो नीरूप नहीं, जे कर विचार गोचर नहीं, तव तो मानने वाला महा मूर्ख है, जब विद्या अविद्या दोनोही सिद्ध है, तो एक परमब्रह्म अनुमानसे कैसे सिद्ध हुआ ? इस कहने करके जो निपदमें ऐक ब्रह्मके कहनेवाली श्रुति है सोची खंमन हो गइ, तथा वैखण्डिवदंब्रह्मेत्यादि" वचनकूं परमात्माके अर्थांतर होणेसे पैताप हो जावेगी, जे कर कहोगे अनादि अविद्यासे ऐसा प्रतीत होता है. तो पूर्वोक्त दूषणोंका प्रसंग होगा, तिस वास्ते अद्वैतकी सिद्धि वध्य पुत्रकी शोभावत् है. इस कारणसे अद्वैतमत युक्तिविकल है. इस एकही ईश्वर जगत्से प्रथम था, यह कहना मिथ्या है. यह प्रथम के माननेवालोंके मतका खंमन हुआ.

अथ दूसरा ईश्वर जगत्के उपादान कारणवाला एक ईश्वर अरु ११ री सामग्री, ए दो पदार्थ अनादि है, तिन दोनोमेंसे सामग्री जो है, ए अैसे है, ( १ ) पृथिवी, ( २ ) जल, ( ३ ) अग्नि, ( ४ ) वायु इन चार के परमाणु, ( ५ ) आकाश, ( ६ ) दिशा, ( ७ ) आत्मा, ( ८ ) मन ( ९ ) काल, ए नव वस्तु नित्य है, अनादि है, किसोके बनाइ होइ नहीं सो ईश्वर इस पूर्वोक्त कारणोसे इस सृष्टिकों रचता है अथ मत्तावलंबीयोंने जिस रीतिसे ईश्वरकों जगत्का कर्ता माना है, सो रीती इहां लिखते है.

उपजातिवृद्ध ॥ कर्तास्ति कश्चिद्भूत सच्चैक, ससर्वग-सस्ववशः सति त्वः ॥ इमां कुहेवाकविडंबनास्यु, स्तेपा न वेपामनुशासकस्त्वम् ॥ १ ॥  
अस्यार्थ-जगत् जो है, सो प्रत्यक्षादि प्रमाणों करके लक्ष्यमाण (दीसता) है, चराचर रूप तीनों जगत्का कोइक जिसका स्वरूप कह नहीं सकें, असा पुरुष विशेष रचनेवाला है, ईश्वरकूं जगत्का कर्ता मानने वाले

आदी जैसे अनुमान करते हैं कि:- पृथिवी, पर्वत, वृद्धादिक सर्व, बुद्धिवा  
 कर्ताके करे हुये है, कार्य होऐसें जो जो कार्य है, सो सो सर्व बु  
 देवालेके करे हुये है, जैसें घट जैसेंही यह जगत् है, तिस कारणसे जग  
 बुद्धि वालेका रचा हुआ है, जो बुद्धिवाला है, सोही जगवान् ईश्वर है,  
 प्रेसानी मत कहनां, जो यह तुमारा हेतु अस्ति है, किस कारणसें अ  
 सिद्ध है ? सो कहते है कि:- पृथिवी, पर्वत, वृद्धादिक अपणे अपणे कार  
 एके समूह करके उत्पन्न होये है, इस वास्ते कार्य रूप है तथा अवय  
 णी है, इस करके कार्यरूप है; सर्व वाढीयोकुं निश्चित है. तथा जैसेंजी न  
 रहना जो यह तुमारा हेतु अनेकांतिक है तथा विरुद्ध है क्युंकि हम  
 हेतु विपक्षसें अत्यंत हटा हुआ है, तथा जैसेंजी मत कहनां जो यह  
 तुमारा हेतु कालात्ययापदिष्ट है, क्युंकि प्रत्यक्ष अनुमान आगम करके  
 ग्राह्या नहीं है, धर्म धर्मी अनंतर कहनेसें. तथा यहजी मत कहनां जो  
 तुमारा हेतु प्रकरण सम है, क्युं कि अनुमानसें जो साध्य है, तिसका शत्रु  
 मत दूसरे साध्यके साधने वाले अनुमानके अनावसें. तथा जैसेंजी मत  
 कहनां जो ईश्वर, पृथिवी, पर्वत, वृद्धादिकोंका कर्ता नहीं है, बिना शरीरके  
 होऐसें मुक्त आत्माकी तरें. यह पीढले तुमारे अनुमानका वैरी अनुमान  
 है, सो ईश्वरकुं जगत्का कर्तासिद्ध नहीं होऐ देता; क्युं कि तुमने तो ईश्वरकुं  
 शरीर रहित सिद्ध करके जगत्का अकर्ता सिद्ध कीया, परंतु हमने तो ईश्वर  
 शरीरवाला माना है इस कारणे तुमारा अनुमान असत्य है, अरु हमारा  
 जो हेतु है, सो निरवद्य है. तथा ईश्वर जो है सो एक है, क्युं कि जो बहुत  
 ईश्वर मानीयें, तब तो एक कार्य करनेमें ईश्वरोंकी न्यारी न्यारी बुद्धि हो जावे,  
 तब तो इनके मने करने वाला तो और कोइ है नहीं, फेर कार्य कैसे  
 उत्पन्न होवे ? कोइ ईश्वर तो अपणी इत्तासें चार पगवाला मनुष्य रच  
 देवे, अरु दूसरा ईश्वर ठ पग वाला रच देवे, तथा तीसरा दो पग वाला  
 रच देवे, अरु चौथा आठ पग वाला रच देवे, इसी तरें सर्व वस्तुकुं विल  
 कृण विलकृण रच देवे, तब तो सर्व जगत् असमजस रूप हो जावे.  
 परंतु सो है नहीं इस हेतुसें ईश्वर एकही होनां चाहिये, तथा ईश्वर सर्व  
 गत् सर्वव्यापी है, जे कर ईश्वर सर्व व्यापक न होवे, तब तो तीन सुवन  
 मे एक साथ जो उत्पन्न होऐे वाले कार्य है, सो सर्व एक कालमें कज।

उत्पन्न न होंगे, जैसे कुंजारादिक जहां होंगे, तहांही कुंजादिक करगे, परंतु देशांतरमें कच्ची कार्य न कर सकेंगे. तथा ईश्वर जो है, सो झूठा है, जो कर सर्वज्ञ न होवेगा तब तो सर्व कार्योंका उपादान कैसें जानेगा? जब कार्योंके उपादान कारणकूं न जानेगा, तब तो तू विचित्र कैसें रच सकेगा? तथा स्ववश ईश्वर जो है, सो स्वतंत्र किसि दूसरेके अधीन नहीं. ईश्वर अपनी इच्छासें सर्व जीवोंकूं सुख का फल देता है ॥ उक्तं च ॥ ईश्वरप्रेरितोगच्छेत्, स्वर्गं वा स्वप्नमेव वा ॥ जंतुरनीशोय, मात्मनः सुखदुःखयोरिति ॥ १ ॥ अर्थ—ईश्वरहीकी इच्छासें जगत्वासी जीव, स्वर्ग तथा नरकमें जाता है, क्युं कि ईश्वरके ना और सर्व जीव आपणे आपकूं सुख दुःखका फल देनेकूं समर्थ है, जेकर ईश्वरकूं नी परतंत्र (पराधीन) मानीयें, तब तो मुख्य कर्ता ईश्वर न रहेगा, अपर अपरके अधीन माननेसें अनवस्था दूषणची जावेगा, इस हेतुसें ईश्वर आपणेही वश है, परंतु पराधीन नहीं "सनित्यः" (सो ईश्वर) नित्य है जेकर ईश्वर अनित्य होवे तब तो सके उत्पन्न करने वाला कोइ और चाहियें, सोतो है नहीं, इस ईश्वर नित्यही है, ऐसें पूर्वोक्त विशेषणों करी संयुक्त ईश्वर (जगत्वासी जगत्का कर्ता है, इति पूर्वपक्षः

उत्तरपक्षः—हे वादी! जो तुमारा यह कहनां है पृथिवी, पर्वत, दिक बुद्धिवाले कर्ताके रचे हुये हैं, सो अयुक्त है, क्युं के इस अनुमानमे व्याप्तिका ग्रहण नहीं हो सकता है, अरु हेतु जो होता सो सर्वत्र व्याप्तिमें प्रमाण करके सिद्ध हुया होयाही आपणे साध्यकामक होता है, इस कहनेमें सर्व वादियोंकी सम्मति है.

अथ प्रथम तुम यह कहो जब ईश्वर जगत्कूं रचता है, तो ईश्वर शरीर वाला है? वा शरीर रहित है? जेकर कहोगे ईश्वर शरीर वाला तो हमारा सरीखा दृश्य शरीर अर्थात् दिखलाइ देने वाला शरीर है अथवा पिशाच आदिकोंकी तरे अदृश्य (न दिखलाइ देने वाले) शरीर संयुक्त है? जेकर प्रथम पक्ष मानोगे तब तो प्रत्यक्ष बाधा है तिस ईश्वर बिनाही अब नी उत्पन्न होते हुये तृण, वृक्ष, इधनुष, वादल प्रमुख

के देखनेसें, जैसे “अनित्यशब्दप्रमेयत्वात्” जैसे यह प्रमेयत्व हेतु साधारण अनेकांतिक है, तैसें ही यह कार्यत्व हेतुसाधारण अनेकांतिक है।

१ जेकर दूसरा पक्ष मानोगे, तब जो ईश्वरका शरीर नहीं दिखलाइ देंगे (१) सो ईश्वरके माहात्म्य करके नहीं दिखलाइ देता? (२) वा हमारा बुरी अदृष्टका प्रभाव है? एतावता हमारे खोटे कर्मके प्रभावसें नहीं दिखलाइ देता है? जे कर प्रथम पक्ष ग्रहण करोगे जो ईश्वरके माहात्म्यसें ईश्वरका शरीर नहीं दीखता, इस पक्षमें कोइ नी प्रमाण नहीं है, जिससे ईश्वरका माहात्म्य सिद्ध होवे परंतु हे वादी! जे कर त्रपु ( जिस्त ) तब कर पीवें ऐसी सच्ची धीज करे तो कदाचित् मान नी लेवे, अन्यथा नहीं। अरु इस तुमारे कहनेमें इतरेतर आश्रय दूषण नी है जब माहात्म्य विशेष सिद्ध हो जावे तब अदृश्यशरीर वाला सिद्ध होवे, जब अदृश्य शरीर वाला सिद्ध होवे, तब माहात्म्य विशेष सिद्ध होवे, इतीतरेतराश्रय दूषण।

जेकर दूसरा पक्ष पिशाचाटिकोंकी तरे अदृश्य शरीर ईश्वरका है ऐसे मानोगे, तब तो संशय की निवृत्ति न होवेगी सो कैसें कि:-क्या ईश्वर है नही जिसकरें उसका शरीर नहीं दीख पडता? तब तो बांफके पुत्रके शरीरकी तरें, तब हमारे पूर्व पापोंके प्रभावसें ईश्वरका शरीर नहीं दीखता; यह संशय कनी दूर न होवेगा जे कर कहोगे हमारा ईश्वर शरीर रहित है, तब तो अंत अरु दार्ष्टान्तिक यह दोनो विपम हो जावेंगे और हेतु विरुद्ध हो जावेगा, क्युंकि घटादिक कार्योंका कर्ता शरीरवालाही कुंजारादिक दीख पडता है, अरु ईश्वरकूं जब शरीर रहित मानोगे तब तो ईश्वर कुठनी कार्य करेणेंकूं समर्थ न होवेगा, आकाशकी तरें नित्यव्यापक अक्रिय जो है, कनी अकर्ता है, इस हेतुसे शरीर सहित तथा शरीर रहित ईश्वरके साथ कार्यत्व हेतुकी व्याप्ति सिद्ध नहीं होती है, तथा तेरा हेतु कालात्ययापदि कनी है, तेरे साथके धर्माका एक देश, वृद्ध, बीजली, बाढल, इंधनुपादिकोंका अवननी कोइ बुद्धिमान् कर्ता नहीं दीख पडता है, इस वास्ते प्रत्यक्ष करके बाधित होयां पीठे तुमने अपना हेतु कट्या, इस वास्ते तुमारा हेतु कालात्ययापदिष्ट है, इस तुमारे कार्यत्वहेतुसे बुद्धिमान् ( बुद्धिवाला ) ईश्वर जगत्का कर्ता कनी सिद्ध नहीं होता है।

तथा दूसरी तरें जगत् कर्ताके खमन करनेका स्वरूप लिखते हैं; जो



कोई ईश्वरवादी यह कहते हैं. जगत् सर्व ईश्वरका रचा हुआ है, यह नका कहनां समीचीन नहीं है. काहेतें कि जगत्का कर्त्ता ईश्वर किसा माणसे सिद्ध नहीं होता है.

**पूर्वपक्षः**—ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता सिद्ध करनेवाला अनुमान प्रमाण तथाहि जो उहर उहर करके अजिमत फलके संपादन करनेके ताई वृत्त होवे, तिसका अधिष्ठाता कोई बुद्धिमान् जरूर होना चाहिये. वसोला आरी प्रमुख शस्त्र, काष्ठके दो टुकड़े करणमें प्रवर्त्तते हैं, तैसे उहर उहर कर सर्व जगत्कूं सुख दुःखादिक जे फल देते है तिनका अधिष्ठाता कोई बुद्धिमान् जरूर चाहिये है, तुमने ऐसे न कहनां जो वसो आरी प्रमुख आपही काष्ठके दो टुकड़े करणमें प्रवृत्त होते हैं, क्युं कि तो अचेतन है आपही कैसे प्रवृत्त हो सके ? जे कर कहोगे वसोला प्रमुख स्वभावसे प्रवृत्त होते है तब तो तिनकूं सदाही प्रवृत्त होना चाये, बीचमें कनी उहरनां न चाहिये, परतु ऐसे है नहीं, इस पूर्वोक्त हेतु जो उहर उहर कर अपने अपने फलके साधनेवाले जीव है, तिनका अधिष्ठाता ईश्वर ( जगवान् ) ही सिद्ध हो सक्ता है, तथा दूसरा अनुमान जो परिमंजलादिक. वृत्त, त्र्यंश, चतुरंश, संस्थान वाले गाम, नगरादि हैं; वे सर्व ज्ञानवान्के करे दुये हैं, जैसे घटादिक पदार्थ, तैसेही पूर्व संस्थान संयुक्त पृथिवी, पर्वत प्रमुख है इस अनुमानसेंही जगत्का कर्त्ता ईश्वर सिद्ध होता है, इति पूर्वपक्षः ॥

**उत्तरपक्षः**—जिस अनुमानसे तुमने जगत्का कर्त्ता ईश्वर सिद्ध करा सो तुमारा अनुमान अयुक्त है, क्योकि यह तुमारा पूर्वोक्त अनुमान मारे मतमें जैसे आगे सिद्ध है, तैसेही सिद्ध करता है, इस वास्ते सिद्ध साधन दृषण तुमारे अनुमानमें होता है, जैसे हमारे मतमें आगे सिद्ध है तैसे लिखते है:—संपूर्ण यह जगत्की विचित्रता जो है सो कर्मके फलसे है, ऐसे हम मानते है, क्योकि यह जो चारतवर्षमें एक देशोमें, अनेक टापुओंमें, अनेक हेमवत आदिक पर्वतोमें, अनेक प्रकारके मनुष्यादि प्राणी जो वास करते है, अरु जो उनकूं सुख दुःखादि अनेक तरेकी अवस्था बण रही है, तिन सर्व अवस्थाओंका कारण वही जानने, दूसरा कोई नहीं. अरु देखनेमेंही कर्मही कारण हो सके

क्योंकि जब कोई पुण्यवान् राजा राज करता है, तब उसके राजमें सुका  
 मन, निरुपद्रव देशोंमें होता है, तो वो उस राजाके शुभ कर्मका प्रभाव है,  
 इस कारणसे जो उद्दर उद्दर जीवोंकूं फल देते है सो कर्म है कर्म जो है  
 जो जीवोंके आश्रय है, अरु जीव जो है सो चेतन होणेसे बुद्धि वाले है  
 तब तो बुद्धिवालेके अधीन हो कर कर्म उद्दर उद्दर कर फल देते हैं. इस  
 कारणसे सिद्ध साधन दूषण है. जे कर कहोगे हम तो विशिष्ट बुद्धिवाला  
 ईश्वरही सिद्ध करते है; परंतु सामान्य बुद्धिवाले जीव नहि सिद्ध करते?  
 जब तो तुमारा दृष्टांत साध्यविकल है, बसोला आरि प्रमुख विषे ईश्वर  
 अधिष्ठितका व्यापार, नही उपलब्ध होता है, किंतु कुंजकाराटिकोंका व्या  
 पार तहां तहां अन्वयव्यतिरेक करके उपलब्ध होता है.

पूर्वपक्षः—बहुक्याटिकनी ईश्वरकी प्रेरणाहीसे तिस तिस काममें प्रवृत्त  
 होते है, इस वास्ते हमारा दृष्टांत साध्य विकल नही है.

उत्तरपक्षः—तब तो ईश्वरनी और ईश्वरकी प्रेरणाहीसे प्रवृत्त होवेगा प  
 रंतु आप नही प्रवृत्त होता, सोनी ईश्वर दूसरे ईश्वरकी प्रेरणासे प्रवृत्त  
 होगा, तब तो अनवस्था दूषण होगा.

पूर्वपक्षः—बहु प्रमुख जीव तो सर्व अज्ञानी हैं, इस वास्ते ईश्वरकी  
 प्रेरणाहीसे अपने अपने काममें प्रवृत्त होते है, अरु ईश्वर (जगवान्) तो  
 सर्व पदार्थोंका ज्ञाता है, इस वास्ते अनवस्था दूषण नही है.

उत्तरपक्षः—यहनी तुमारा कहना असत् है, क्योंकि इस तुमारे कहनेमें  
 इतरेतर दूषण होता है, प्रथम ईश्वर सर्व पदार्थका यथावस्थित स्वरूप ज्ञाता  
 सिद्ध हो जावे, तब अन्यकी प्रेरणा बिना ईश्वर आपही प्रवृत्त होता है  
 ऐसा सिद्ध होवे, जब अन्यकी प्रेरणा बिना ईश्वर आपही प्रवृत्त होता है  
 ऐसे सिद्ध हो जावे तब तो ईश्वर सर्व पदार्थका यथावस्थित स्वरूप जान  
 नेवाला सर्वज्ञ सिद्ध होवे, जब तांइ दोनोमेंसे एरु सिद्ध न होवे, तब  
 तांइ दूसरेकी सिद्धि कनी न होगी, तथा हे ईश्वरवादी ! हम तुमकूं पूठ  
 ते है जे कर ईश्वर सर्वज्ञ अरु वीतराग है तो काहेकूं और जीवोंकूं अ  
 सत् व्यवहारमें प्रवर्त्तिते है? क्योंकि जो विवेकी होते है वे मध्यस्थही  
 होते हैं. फेर तो जीवोंकूं सत्व्यवहारहीमें प्रवृत्त करना चाहियें परंतु  
 असत् व्यवहारमें नही प्रवृत्त करना चाहियें अरु ईश्वर तो असत् व्यवहा

रोंमेंनी जीवोंकूँ प्रवृत्त करता है, तब तो ईश्वरकूँ सर्वज्ञ और वीतराग बन कर कहना चाहिये ?

पूर्वपक्षः—ईश्वर ( जगवान् ) तो सर्व जीवोंकूँ शुच कर्म करनेहीमें प्रवृत्त करता है, इस वास्ते जगवान् सर्वज्ञ और वीतरागही है, अरु जो जीव अधर्म करनेवाले है, उनकूँ असत् व्यवहारमें प्रवृत्त करके पीठे नरकपाप करके उनकूँ फल देता है, जो फेर वो जीव इस दुःखसें मरता हुआ फेर पान करे, इस वास्ते उचित फल देणे करके ईश्वर ( जगवान् ) विवेकवान् व वीतराग सर्वज्ञ है, उसमें कोइनी दूषण नहीं है.

उत्तरपक्षः—यहनी तुमारा कहना बिना विचारेका है, क्योंकि प्रथम पाप करनेमेंनी तो ईश्वरही प्रवृत्त करता है, ईश्वर बिना दूसरा तो कोइ प्रेरक नहीं. अरु जीव आप तो कुठ कर सकता है नहीं, क्योंकि जीव तो अज्ञानी पापमें वा धर्ममें आप नहीं प्रवृत्त हो सकता, तो फेर प्रथम पाप करानेकूँ जीवोंकूँ प्रवृत्त करनां, पीठे नरकमें मालके उस जीवकूँ फल सुक्तानां, पीठे धर्ममें प्रवृत्त करनां, क्या यही ईश्वरकी ईश्वरता, अरु विचार पूर्वक करणां हे

पूर्वपक्षः—ईश्वर ( जगवान् ) जीवोंकूँ कदेइ नहीं प्रवृत्त कर्ता, कि जीव आपही प्रवृत्त होता है, तब तो जो जीव जैसा जैसा कर्म करता है, उस कर्मके वशसें ईश्वर ( जगवान् ) नी तैसा तैसा फल उन जीवों देता है, जैसे राजा राज करता है, परंतु राजा चोरकूँ ऐसें नहीं कहता जो तूं चोरी कर, किंतु चोरी करनेकी मनाइ तो करता है, फेर जे चोर चोर जो आपही चोरी करेगा, तब दंड तो राजा देवेगा, तैसें ईश्वर ( जगवान् ) पाप तो नहीं कराता, परंतु पाप करने वालोंको दंड देता है.

उत्तरपक्षः—यहनी तुमारा कहना अशुक्त है, क्योंकि दूसरे जो राजा है, सो चोरोंकूँ निषेध करनेमें समर्थ नहीं है; क्योंकि कैसाही उग्र (कठिन) हुकम वाला राजा होवे और मन वचन काया करके कितनाही चोरी आदिक पाप कर्म मने करा चाहे, परंतु लोक चोरी आदिक पापकर्म वापि सर्वथा न ठोडेगे, अरु ईश्वर ( जगवान् ) तो सर्व शक्तिमान् तुल्य मानते हो, तो फेर सर्व जीवोंकूँ पाप करनेमें प्रवृत्त होतोंकूँ क्यों नहीं प्रवृत्त करता ? जब ईश्वर जीवोंकूँ पाप करता मने नहीं करता, तब तो ईश्वरही जीवोंपासों पाप कराता है, फेर उनकूँ दंड देता है, तो फेर वाह

क्ति दूषण है. जेकर कहोगे कि जीवोंकूँ पापमें प्रवृत्त होतोंकूँ ईश्वर म करने समर्थ नहीं, तो फेर उंचे शब्दसँ ऐसँ न कहनां जो “सर्व कु ईश्वरनेही करा है, और ईश्वर सर्व शक्तिमान् है” तथा जेकर जीव पा आपही करता है, अरु धर्मनी आपही करता है, तो फलनी आप नोग लेवेगा, तो फेर हँ पूर्वपक्षी ! ईश्वर कर्ताकी कल्पना व्यर्थ है.

पूर्वपक्षः—धर्म अधर्म तो जीव, आपही करते हैं, परंतु उनका फल न तो ईश्वरही कर्ता है, जीव जो है, सो आपणे करे दुवे धर्म अधर्म फल आप नोगनेकूँ समर्थ नहीं है, जैसे चोर चोरी करता है सो ही तो आपही करता है, परंतु उस चोरीका फल (बंदीखाना) नोगना प नहीं नोग सक्ता, कोइ दूसरा बंदीखानेमें मालने वाला चाहिये.

उत्तरपक्षः—यहनी तुमारा कहना असत् है, क्योंकि जब जीव, धर्म धर्म करने समर्थ है, तो फेर फल नोगनेमें समर्थ क्युं नहीं ? इस सं रमें जैसा जैसा जो जीव पाप, धर्म करता है, तैसा तैसा पाप धर्मके न नोगनेमें निमित्तनी बन जाता है, जैसे चोर चोरी करता है, तिस रोहा फल राजा देता है, तथा कुष्ट हो जाता है, तथा शरीरमें कीड़े जाते हैं, तथा अग्निमें जल मरता है, तथा पाणीमें मूव मरता है, या खड्डसँ कट जाता है, तथा तोप बंदूककी गोला गोलोंसँ मर जाता तथा हाट, हवेली,औ माटीके खानेके नीचें दब कर अनेक तरेके संक नोग कर मर जाता है, निर्धन हो जाता है, इत्यादि असंख्य निमित्तों आपणे करे कर्मके फलकूँ जोक्ता है. इहां बिना निमित्तके दूसरा ईश्वर जदाता कोइ नहीं दीखता, जैसे ही नरक स्वर्गादि परलोकमे नी शुजा न कर्म फल नोगनेके असंख्य निमित्त है. जे कर कहोगे जो परस्त्रीगमन रनेसे इत्यादि पापफलमें क्या निमित्त मिलेगा, जिसके जोगसँ फल जो ना होगा ? यह बात तो मे (अधकार) नहीं जानता, जो इस पुण्य पा ना यह निमित्त तुमकूँ मिल कर फल होगा, क्युंकि मेरेकूँ इतना ज्ञान है जो ठीक ठीक पूरा पूरा निमित्त बता सकूँ ? परंतु इतना कह सक्ता कि जो जो जीव पुण्य पाप करते है, उनके फल नोगनेमें अवश्य कोइक निमित्त जरूर होगा. अरु इस तरेंसँ फल नोगेगा, यह निमित्त मिलेगा, मुक देशमे, अमुक कालमे, इत्यादि सर्व प्रत्यक्षपणे तो अर्हत, नगवंत

(परमेश्वर) सर्वज्ञके ज्ञानमें जासन होता है. निमित्त विना कोऽभी फल ही जोग सक्ता. इस वास्ते ईश्वर फलदाता कल्पना व्यर्थ है, क्या वह बुद्धिमानोका कहना है कि जो रोटी पका तो सक्ता है, परंतु आप नही सक्ता, तथा ईश्वरकूं फलदाता कल्पना करनेसे एक और चीज तुम परमेश्वरकूं लगाते हो, जैसे किसी पुरुषकूं किसी दूसरे पुरुषने मार दि शस्त्रसे मारे, तब तो मरने वालेने जो संकट पाया, सो किसके गसे ? किसकी प्रेरणासे पाये ? जे कर कहोगे ईश्वरने उस शस्त्र वालेकूं तब तिसने उसकूं मारा, तो फेर उस मारने वालेकूं फांसी क्युं मित्त है ? क्या ईश्वरका वही न्याय है, जो प्रथम पुरुषके हाथसे उसकूं मारना, अरु पीठे फेर उस मारने वालेकूं फांसी देना, इस तुमारी उजने ईश्वरकूं बडा अन्यायी सिद्ध कर है जे कर कहोगे ईश्वरकी प्रेरणाके विना ही उस पुरुषने दूसरे पुरुषकूं मारा, अरु डुःखदीया, तब तो मित्तहीसे सुख डुःखका जोगनां सिद्ध हो गया, फेरनी ईश्वर फलदाता कल्पना करना यह अल्प बुद्धिवालोंका काम है, तथा हे ईश्वर वा तुमकूं एक और बात पूठते है कि जो धर्मका फल है किं उन्मत्त देवोंके सुकुमार शरीरका स्पर्श करना सो तो जीवोंकूं सुखका कारण है. वास्ते ईश्वरने यह फल तो जीवोंकूं दीया. परंतु जो अधर्मका फल घोर रकके कुंममें पडनां, नाना प्रकारकें डुःख, (संकट) त्रास कुंजीपाक चर्मदहन, अग्निमें ज्वलना, इत्यादि महा डुःख ईश्वर उस जीवकूं क्यों देता

पूर्वपक्ष - उस जीवने जो पाप करे थे, उनका फल उस जीवकूं र होनां चाहिये इस वास्ते ईश्वर फल देता है

उत्तरपक्ष - इस तुमारे कहनेसे तो ईश्वर व्यर्थ हो जीवोंकूं पीडा देता है, क्योंकि जब ईश्वर उस जीवकूं पापका फल न देगा. तब तो जीव धर्मका फल आप तो जोग सक्ता नहीं. फेर नतो शरीर धारेगा अरु न पापनी न करेगा, फेर वैठे वेठाये ईश्वरकूं क्या गुदगुदी उठती है फेर उन जीवोंकूं नरकमें माल देता है ? जो मध्यस्थ नाव वाला अरु राम दवालु होता है. वो किनी जीवकूं कनी निरर्थक पीडा नहीं देता.

पूर्वपक्ष - ईश्वर (जगवान्) अपनी कीटाके वास्ते किसीकूं नरकमें मारता है, किनीकूं तिर्थचयोनिमें उत्पन्न करता है, किसीकूं मनुष्य जन्म

नीकूँ स्वर्गमें उत्पन्न करता है, जब वो जीव नाचते, कूदते, रोते, पीट विलाप करते हैं, तब ईश्वर अपनी रची हुई बाजीका तमासा देखता इस वास्ते जगत् रचता है

उत्तरपक्षः—जब ऐसे है, तब तो ईश्वर प्रेक्षावान् नहीं है, क्या कि नकी तो क्रीडा होती है, अरु रंक जीव तडफ तडफके महा करुणा व हो कर मर रहें है, तो फेर ईश्वरकूँ दयालु माननां यह कैसी तुमा अज्ञानता है? क्योंकि जो महा पुरुष दयालु सर्वज्ञ होते है, वै कदा किसी जीवोंकूँ दुःख दे कर क्रीडा नहीं करते, तो फेर ईश्वर क्रीडार्थी न हो सकता है? तथा क्रीडा जो है, सो सरागीकूँ होती है अरु ईश्व (जगवान्) तो वीतराग है, तो फेर ईश्वर (जगवान्कूँ) क्रीडा रसमें मग्न एण कैसे सजवे ?

पूर्वपक्षः—हमारा जो ईश्वर है सो रागी देषी है, इस कारणसे उसमे डा करणोका सजव हो सकता है

उत्तरपक्षः—तब तो तुमने मुख चोपडनेके बदले आपणा मुख काला र लीया, क्योंकि जब रागी देषी होगा, तब तो ईश्वर शेष जीवोंकी तरें रागी हुवा, वीतराग न हुवा, अरु सर्वज्ञनी न हुवा, तब तो हमारे सरी र हुवा फेर जगत्का रचने वाला क्यों कर हो सकता है ?

पूर्वपक्षः—हम तो ईश्वरकूँ राग देष सयुक्त सर्वज्ञ मानते हे, इस वास्ते वै जगत्का कर्ता है

उत्तरपक्षः—इस तुमारे कहनेमें कोइनी प्रमाण नहीं है. जिस प्रमाण ईश्वर रागी, देषी, सर्वज्ञ सिद्ध होवे ?

पूर्वपक्ष—ईश्वरका स्वभाव ही ऐसा है, जो रागी देषीनी होनां. अरु र्वज्ञनी रहना, स्वभावमें कोइ तर्क नहीं हो सकती जैसे अग्नि तो दा क है, परंतु आकाश दाहक क्यों नहीं ? इस प्रश्नमें उत्तर यह दीया ायगा जो अग्निमें दाहक स्वभाव है, आकाशमें नहीं. इसी तरें ईश्वर ी स्वभावसेही रागी, देषी अरु सर्वज्ञ है

उत्तरपक्ष—ऐसे तो कोइक वादी नी कह सकता है जो यह हमारे न्मुख गधा खडा है, सो सर्व जगत्का रचने वाला है. जे कर कोइ वादी वैकि किस हेतुसे यह गर्दन जगत्का रचने वाला है? तब तो तिसकूँ

ऐसा उत्तर दीया जायगा जो इस गर्दनका खजाव ही ऐसा है, जो गतकूं रचके राग द्वेष वाला सर्वज्ञ हो कर फेर गर्दन बन जाता है, तरें महिप आदिक सर्व जीव जगत्के कर्त्ता वादी सिद्ध कर देवंगे, तो ईश्वर क्या हुआ जो कुछ अपने मनमें मान्या सो बना लीया, तो ईश्वरकूं बड़ा कलंक लगाना है. इस हेतुसे ईश्वर (जगवान्) सर्वज्ञ बीतराग है, फेर क्रीडाके अर्थे कनी जगत्कूं न रचेगा, तथा हे दी ! तेरे कहनेसे जब ईश्वरनेही सर्व कुछ रचा है तब तो सर्व ती श्रेष्ठ पाखंड मतके सर्व शास्त्रनी ईश्वरहीने रचे हैं, अरु शास्त्र सर्व पसमें विरुद्ध हैं, तब तो अवश्य कितनेक शास्त्र सत्य अरु कितनेक सत्य है, तब तो फूठ अरु सत्य दोनोंका उपदेशक ईश्वर ही ठहरा, तब ईश्वर आपही सर्व मतांतरियोंको आपसमें लडाता है, हजारों मनुष्य इन मतोंके जगडोंमें मर जाते हैं, तब तो ईश्वरने शास्त्र क्या एक जगत्में बड़ा उपद्रव रचा, जैसे फूठे सच्चे शास्त्र रचनेवालेकूं महा कर्त्त कहना चाहियें, नतु ईश्वर. जे कर कहोगे ईश्वरने तो सच्चे शास्त्र ही हैं, फूठे नहीं रचे जूठे तो जीवोंने आपही बना लीये है, तब तो जे जगत् नी नही रचा होगा, जगत् नी जीवोंने ही रचा होगा, ईश्वर सर्व वस्तुका कर्त्ता सिद्ध हुआ नहीं.

तथा तुमने जो पूर्वे दूसरा अनुमान करा था, कि जो जो आकार वस्तु है, सो सो सब बुद्धिवालेकी रची हुई है, जैसे पुराना कूवा यद्यपि कारीगर तहां नहीनी उपलब्ध होता, तोनी कारीगर ही अनुमानसे सिद्ध होगा, जैसे नवे कूवेका कर्त्ता उपलब्ध होता है.

उत्तरपद्धः—यह तुमारा कहनां समीचीन नहीं, क्यों कि आकार वास्तु हेतु, तुमारा संख्या, वादल, सर्पकी वंवी प्रमुख संस्थान वालोंमें है परतु बुद्धिवाला कर्त्ता कोइ नहीं है. जे कर कहोगे वादल, इन्द्रधनुष सर्पकी वंवी प्रमुख संगण वाले बुद्धिमानके करे दुये नहीं माने जाते हैं तैसे ही पृथिवी, पर्वत नी बुद्धिमानके करे दुये नहीं मानने चाहियें.

इन पूर्वोक्त प्रमाणोंसे कित्ती तरें नी ईश्वर जगत्का कर्त्ता सिद्ध नहीं होता. अब जे पुरुष, ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता मानते है, उनसे हम यह कहते है, कि जब तक इन हमारी युक्तियोंका उत्तर सर्वथा न दीया जावे.

जब तांइ ईश्वरकूं जगत्का कर्ता न मानना चाहियें. जब कोइ ईश्वरवादी न युक्तियोंका उत्तर, पूरा दे देवेगा, तब तो हमनी जगत्का कर्ता ईश्वर मान लेवेंगें, अन्यथा कनी नही माना जायगा.

पूर्वपक्ष:—ईश्वर तो जगत्का कर्ता सिद्ध नहीं होता, परंतु एक ईश्वर है ऐसा तो सिद्ध होता है कि नहीं ?

उत्तरपक्ष:—ईश्वर एकही है, यह बात सिद्ध करनेवाला कोई प्रमाण नहीं है, तब तो ईश्वर एक सिद्ध कैसे होवे ?

पूर्वपक्ष:—ईश्वरके एकत्व सिद्ध होणेमें यह प्रमाण है, कि जहां बहुते एकते हो कर एक कामकूं करने लगते हैं, तब तो अन्य अन्य मति होणेसे एक कार्यनी नहीं बन सकता, जैसेही जब ईश्वर अनंत होंगे, तब तो सृष्टि मुख्य एकही कार्यके करनेमें न्यारी न्यारी मति होणेसे असमंजस कार्य उत्पन्न होवेगा, इस वास्ते ईश्वर एकही होना चाहियें.

उत्तरपक्ष:—इस तुमारे प्रमाणसे तो ईश्वर, एक नहीं सिद्ध होता है, क्यों कि ईश्वर तो किसी वस्तुका कर्ता उक्त प्रमाणोंसे सिद्ध नहीं होता है, तथा एक मधुठत्तेके बनानेमें सर्व मल्लीयोंका एक मता तो हो जाता है, अरु ईश्वर, परमात्मा, निर्विकार, निरुपाधिक, ज्योतिस्वरूपोंका एरु मता नहीं हो सकता, यह बड़े आश्चर्यकी बात है ? क्या तुमने ईश्वरोंकूं कीड़ों सेनी बुद्धिहीन, अजिमानी, अरु अज्ञानी बना दीया. जो उन सर्वका एक मता नहीं हो सकता ?

पूर्वपक्ष:—महिका जो बहुत एकठी हो कर एक मधुठत्ता आदिक कार्य बनाती है, तहानी एक ईश्वरहीके व्यापारसे एक मधुठत्ता बनता है.

उत्तरपक्ष:—तब तो घडा बनाना, चोरी करना, परस्त्रीगमन करना, इत्यादिक सर्व काम, ईश्वरके व्यापारसे बने सिद्ध होंगे, अरु जीव सर्व, अकर्ता सिद्ध हो जावेगे; फेर पुण्य पापका फल किसकूं होगा ? अरु नरक स्वर्गमें जीव, क्यों चेजे जायगे

पूर्वपक्ष:—जीव, कुंनारादिक चोरादिक सर्व स्वतंत्रतासे अपना अपना कार्य करते है, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है.

उत्तरपक्ष:—क्या मल्लीयोंहीने तुमारा कुठ अपराध करा है, जो उनकूं स्वतंत्र नहीं कहते हो ? इस तुमारे एक ईश्वरके माननेसे तो ऐसानी प्र



तीत होता है, जे कर अनंत ईश्वर माने जावे, तब जो कदाचित् एक रचनेमें विवाद हो जावे, तो फेर उस विवादकूं दूर कौन करे? गिर, तो कोइ हे नही, तथा एऊ ईश्वरकूं देख के दूसरा ईश्वर ईर्ष्या करेगा, यह मेरे तुल्य क्युं है? इत्यादिक अनेऊ उपद्ब उत्पन्न हो जावेंगे. वास्ते ईश्वर एकही मानना चाहियें, यहनी तुमारी समज घुणकी खाइ दुइ है, क्युं कि जब ईश्वर (जगवान्) सर्वज्ञ है, तब तो के ज्ञानमें एकही सरीखा ज्ञान होना चाहिये, तो फेर विवाद क्यों होगा? तथा ईश्वर तो राग, द्वेष, ईर्ष्या, अजिमानादि सर्व दूषणोंसे रहै, तब तो दूसरे ईश्वरकूं देख कर ईर्ष्या अजिमान क्यों कर करेंगे? जे ईश्वर हो करनी आपसमें विवाद, जगडे, ईर्ष्या, अजिमान करेगे, तो तिन रोंकूं ईश्वरही कैसें माना जायगा? जब जगत्कर्त्ताही ईश्वर सिद्ध नहीं हो, तब तो विवाद जगडाही ईश्वरोंका आपसमें काहेकूं होगा? इस वास्ते अनंते माननेमे कुठनी दूषण नहीं. तथा "सर्वगतत्व" ईश्वर सर्व व्यापक है, यहनी जो मानते है, सो नी प्रामाणिक नहीं है, क्योंकि जब ईश्वरकूं सर्व व्यापक, वाढी मानते हैं, तब शरीर करके व्यापक मानते हैं? वा ज्ञान रूप करके व्यापक मानते है? जे कर शरीर करके ईश्वरकूं व्यापक माने, तब तो ईश्वरका शरीरही सर्व जगा समा जायगा, दूसरे पदार्थोंके रहने वास्ते कोइनी अवकाश न मिलेगा? इस वास्ते ईश्वर देह करके तो तत्र व्यापक नहीं है.

प्रश्न.—स्या ईश्वरकेनी शरीर है, जो तुम ऐसे विकल्प करते हो?

उत्तर—हे ज्ञव्य! ऐसेनी इस जगत्में मत है, जो ईश्वरकूं देहधारी मानते हैं.

प्रश्न—वो कौनसे मत है, जिनोंने शरीरधारी ईश्वर माना है?

उत्तर—तौरतनामा ग्रंथ है, तिसमे ऐसें लिखा है, जो ईश्वरने अथाहामके यहा रोटी खाइ, उस लिखनेसे, तथा याकूबके साथ कुम्ती करी, उग लिखनेसे प्रतीत हांता है जो ईश्वर देहधारी है तथा शंकरदिग्विजयके दूसरे प्रकरणमें गकरस्वामीका शिष्य, आनंदगिरि जो कि उनी ग्रंथ की आदिमें लिखता है, जो मै सर्वज्ञ हुं सो लिखता है कि जब नारदजी ने देसा की उस लोकमें बहुत कपोतकल्पित मत उत्पन्न हो गये है, अरु सनातन धर्म लुप्त हो गया है, तब तो नारदजी शीघ्रही ब्रह्म

कीके पारु पहुंचे, अरु जा कर कहने लगे कि हे पिताजी ! तुमारा मत तो गाय नहीं रहा, अरु लोकोने अनेक मत बना लीये हे. सो इम बातका कठ उपाय करना चाहिये. तब तो ब्रह्माजी बहुत काल तांइ चिंता करके मित्र, मित्र, नक्त जनोंकूं साथ ले कर अरण्ये लोकसें चल कर शिवलोक प्रवेश करते हुये. आगे क्या देखते हे कि जैसे मध्यान्हमें कोटि सूर्यो का तेज तथा कोटि चंद्रमा समान शीतल, और पांच जिसके मुख हैं, चंद्रमा मुकुट है, विजलीवत् पिंगल जटाका धारक, औ पार्वती जिसके वामांग अंगमें है, सर्वका ईश्वर महादेव देखा. फेर ब्रह्माजीने नमस्कार करके तुति करी, और कहते हुये कि जो महादेव, सर्वज्ञ, सर्वलोकेश, सर्वसाक्षी, सर्वमय, सर्वकारण, इत्यादि इस लिखनेसें प्रगट प्रतीत होता है जो ईश्वर देहधारी है, जेकर देहधारी ईश्वर न होवे, तो फेर पांच मुख कैसें हो ? इस लिखनेसें ईश्वर शरीर रहित नहीं सिद्ध हो सका है. अब जेकर शरीरधारी ईश्वर होवे तब तो इस लोकमें एकिला ईश्वरही व्यापक हो कर रहेगा, दूसरे पदार्थोंके वास्ते कोइ दूसरा लोक रहनेकूं चाहिये ? जेकर कहोगे ज्ञानात्मा करके ईश्वर सर्व व्यापक है, तब तो सिद्ध साय नहीं है, हमजी तो ज्ञानस्वरूप करके जगवान्कूं सर्वव्यापी मानते हैं, परंतु जेकर तुमारे वेदसें न विरोध होवे ? क्युंकि वेदोंमें शरीर करवाही सर्व व्यापक कहा है ॥ तथाच ॥ “ विश्वतश्चक्रुस्त विश्वतोमुखो विवतो बाहुरुत विश्वतस्पादित्यादि श्रुतेः ” इस श्रुतिसें सिद्ध है, जो ईश्वर शरीर करके सर्व व्यापक है, फेर तो पूर्वोक्त दूषण है, इस वास्ते ईश्वर व्यापक नहीं. तथा तुम कहते हो जो ईश्वर सर्वज्ञ है, परंतु तुमारा ईश्वर सर्वज्ञ ची नहीं. क्यों के हम जो ईश्वर सृष्टिकर्ताके खंमने वाले है, सो उससें विपरीत चलते है, फेर हमकूं उसने क्यों रचा ? जेकर कहोगे जमांतरोंमें उपार्जित जो जो तुमारे गुणाद्युज कर्म, तिनोके अनुसारसें तुम ह ईश्वर फल देता है, तो फेर तुमारे कहनेहीसें ईश्वरके स्वतंत्रपणेकूं जनाजलि दीनी गइ, क्यों कि जब हमारे कर्मोंके बिना ईश्वर फल नहीं देसता, तब तो ईश्वरके कुठ अधीन नहीं, जैसें हमारे कर्म होंगे, तैसा हमकूं फल मिलेगा. जेकर कहोगे ईश्वर जो इहे, सो करे, तब तो क्यों न जानता है जो ईश्वर क्या करेगा, धर्मीयोंकूं नरकमें, पापीयोंकूं स्वर्गमें भेजेगा ? जेकर

कहागे परमेश्वर न्यायी है, जैसा जैसा जो करेगा, उसकूं वैसा वैसा देता है, तो फेरनी वोही परंतत्रतारूप दूषण ईश्वरमें लगता है, ईश्वर नित्य है, यह नी कहनां उनका अणु घरेहीमें चुंढर लगता क्यों कि नित्य तो उस वस्तुकूं कहते हैं, जो तीनों कालोंमें एक रूप जब ईश्वर नित्य है, तो क्या जगत्को बनानेवाला स्वभाव है वा जे कर कहागे ईश्वरमें जगत् रचनेका स्वभाव है, तब तो ईश्वर निरंत गत्कूं रचाही करेगा, कदापि रचनेसें न बंध होगा, क्योंकि जगत्के नेका स्वभाव तो ईश्वरमें नित्य है. जेकर कहागे ईश्वरमें जगत् रचनेका स्वभाव नही है, तब तो ईश्वर कदापि जगत्कूं न रचेगा. क्योंकि जगत् नेका स्वभाव ईश्वरमें हैही नही. तथा जे कर ईश्वरमें एकांत नित्य रचनेका स्वभाव है, तब तो प्रलय कदेइ न होगी, क्यों कि ईश्वरमें करनेका स्वभाव नही है. जे कर कहागे ईश्वरमें रचनेकी अरु प्रलय की दोनोही शक्तियां नित्य है, तब तो न कदापि जगत् रचा जायगा न कदेइ प्रलय होगी, क्योंकि दो शक्तियां परस्पर विरुद्ध एक जगे एक कालमें कदापि नही रहेगी; जे कर रहेगी, तब तो जगत् न रचा जावेगा न प्रलय करा जायगा, क्योंकि जिस कालमें रचने वाली शक्ति रचेगी, तिसी कालमें प्रलय करनेवाली शक्ति प्रलय करेगी, अरु जिस कालमें प्रलयशक्ति प्रलय करेगी, तिसी कालमें रचने वाली शक्ति रच देवेगी, ऐसे व शक्तियोंका परस्पर विरोध होगा, तब तो न जगत् रचा जावेगा, न प्रलय कोया जावेगा. तब तो हमाराही मत सिद्ध हो गया, क्योंकि न किसीने जगत् रचा है, अरु न इस जगत्की कदेइ प्रलय होती है, तब यह जगत् अनादि, अनंत सिद्ध हो गया. जेकर कहागे ईश्वरमें दोनोंही शक्तियां नहिं है, फेरनी तो जगत् न रचा, न प्रलय किया जायगा, तब तो अनादि, अनंत सिद्ध हुआ. जेकर कहागे ईश्वर जब चाहता है, तब रचनेकी इच्छा कर लेता है, अरु जब प्रलय करता है, तब प्रलयकी इच्छा कर लेता है, इसमें क्या दूषण है? तब तो ईश्वरकी शक्तियां अनित्य होवेगी, सो चुखेन अनित्य होवे इसमें हमारी क्या हानी है? जे कर ईश्वरकी शक्तियां अनित्य है, तब तो ईश्वर नी अनित्य हो जावेगा, क्यों कि ईश्वर अणु शक्तियोंसें अनेक है. जे कर कहागे शक्तियां ईश्वरमें

रूप है, तबजी शक्तियोंके नित्य होएसैं जगत् न रचा जायगा, न प्र  
न कीया जायगा, अरु ईश्वर अकिंचित्कर सिद्ध हो जावेगा, क्यों कि ज  
ईश्वर सर्व शक्तियोंसैं रहित है, तब तो ईश्वर कुछनी करने समर्थ नहीं  
फेर जगत् रचनेमें क्यों कर समर्थ होवेगा ? अरु शक्तियोंका उपादा  
कारण कौन होवेगा ? अरु ईश्वरका अज्ञाव हो जावेगा. क्योंकि जब  
शक्तिही कोइ नहीं, तब तो ईश्वर काहेका ? वो तो आकाशके फू  
समान असत् है, फेर जगत्का कर्त्ता किसकूं मानोगे ?

अथाग्रे खरड ज्ञानीयोंका ईश्वरवाद लिखते हैं. खरडज्ञानी कहता है,  
जगत्में जितने पदार्थ है, उनके विलक्षण विलक्षण संयोग, आकृति,  
गुण, और स्वभाव, दीख पडते हैं, जे कर इनका तथा इनके निय  
कर्त्ता कोइ न होगा, तो ये नियम कनी न बनेगे, क्योंकि जड प  
योंमें तो मिलने वा जुड़े होनेकी यथावत् समर्थता नहीं, इस हेतुसैं ई  
कर्त्ता अवश्य होना चाहिये.

उत्तर.—प्रथमही हम जगत् कर्त्ता ईश्वरका खंडन कर चुके है, तो  
आप जगत् कर्त्ता क्यों कर मानते है ? अरु जो तुमने लिखा है कि  
जगत्के पदार्थोंमें न्यारे न्यारे स्वभाव दीख पडते है, इस्सैं ईश्वर सिद्ध  
होता है, इस कहनेसैं ईश्वर जगत्कर्त्ता नहीं सिद्ध होता, क्यों कि सर्व प  
योंमें अनंत शक्तियां हैं. सो अपणी अपणी शक्तियोंसैं सर्व पदार्थ अ  
पणों अपणों कार्यकूं करते है, इनके मिलनेमें निमित्त यह है, एक तो का  
न, दूसरा पदार्थका स्वभाव, तीसरी नियती, चउथा जीवोंका कर्म, पा  
वा जीवोंका उद्यम, इन पूर्वोक्त पांचों निमित्त बिना कोइनी और निमित्त  
नहीं है, इन पांचोंका स्वरूप, आगें चल कर लिखेंगे ?

प्रत्यहमेंनी इन पांचोंके निमित्तसैं ही सर्व कुछ उत्पन्न होता है, जैसें  
बीजाकुर जब बीज बोया जाता है, तब कालही यथानुकूलही होना चा  
हिये, अरु बीज तथा जल, पृथिवी, इत्यादिकोंका स्वभावनी अवश्य  
होना चाहिये. तथा नियतीनी जो पदार्थोंका स्वभाव है, तिन पदार्थों  
का तथा तथा जो परिणाम होता है, तिसका नाम नियती है, सोनी  
कारण है. तथा अष्टविध कर्मनी कारण है तथा पुरुपाकार ( जीवोंका  
उद्यमनी ) कारण है. ए पांचो वस्तु अनादि है, कीतीनेनी प्रथम रची

नहिं है, क्योंकि जो जो वस्तुका स्वभाव है, सो सो सर्व है, जो जो कर वस्तुमें अपणा अपणा स्वभाव न होवेगा, तब तो कोइ सत् रूप न रहेगी. सर्व शशशृंगवत् असत् हो जायगी; अरु जो दृष्ट पृथिवी, आकाश, सूर्य, चंद्रमा, आदि पदार्थ दीख पडते हैं, इसी तरें अनादि रूपसैं सिद्ध है, अरु पृथ्वी उपर जो जो रचना ती है, सो सर्व प्रवाहसैं जैसेही चली आती है; अरु जो जो नियम है, वे सर्व इन पांचो निमित्तोंके बिना नहीं हो सके हैं. इस्ते सर्व पदार्थ अपणे अपणे नियममें है, जो कर तुम इव्यकी ईश्वर मान लोगे, तब तो हमारी कुठ हानी नहीं, क्योंकि हम अनादि शक्तिका नाम ईश्वर रख लेवेंगे, अरु तुम अनादि इव्यकी कूं ईश्वर मान लेवेंगे, तब तो तुमारा हमारा विवाद दूर हो जावेगा. तुमने लिखा जो जडमें यथावत् मिलनेकी शक्ति नहीं है, मारा कहना मिय्या है, क्योंकि जगत्में अनेक तरेंके जड पदार्थ आप ही इन पूर्वोक्त पांच निमित्तोंसैं आपसमें मिल जाते हैं, जैसे किरणों वादलोंमें पडती है, तब इंधनुप बन जाता है, तथा संघ होनां, पांच वर्षोंके वादलोंकी चिनी दुइ घटा, चंद्रमा सूर्यके गिरद कुं आकाशमें पवनोंके मिलनेसैं जल. और अग्निका उत्पन्न होना, अरु व होनेसे उन पूर्वोक्त पांचो निमित्तोंसैं अनेक प्रकारके घास तृणादि प्रकारकी वनस्पति, तथा अनेक प्रकारके कीट पतंग प्रमुख जीव उ हो जाते हैं, इन पांचो निमित्तोंके बिना किसी वस्तुको बनाता दुआ र नहीं दिखलाइ देता; जरा पट्टपात ठोड कर विचार कर देखो के, कर्त्ता किस तरेंसे हो सका है? क्यों कि पृथिवी, आकाश, चंद्र, सूर्य. दिक तो इव्यार्थिक नयके मतसैं अनादि है. फेर इनके वास्ते पूठन यह किसने बनाये हैं? तो फेर हम पूठते हैं, ईश्वर किसने बनाया? कर कहोगे ईश्वर तो, किसीनेही बनाया नहीं, वो तो अनादिसैं बनायाही है, तो फेर पृथिवी प्रमुख कितनेरु पदार्थनी बने बनाये नादिसेही है. जैसे माननेमें क्युं लज्जा करते हो?

खरड ज्ञानी कहते हैं की सजावने जगत्की उत्पत्ति जो मानते हैं, उ मतमें यह दोष आवेंगे. यह पृथिवी होतो, तो इतका कर्त्ता

जाता न होता, इस पृथिवीसें निम्न दशमे कोश अंतरिक्षमें दूसरा आपसें  
 एक पृथिवी बन जाती, सो आज तक नहीं बनी, इससें जाना जाता है,  
 ईश्वर कर्ता है.

उत्तर.—तुमकूं कुछ विचार है, वा नहीं? जे कर है, तो पूर्वोक्त तुमारा  
 अणुनां अयुक्त है, क्यों कि जब हम तो यह कहते है, जो पृथ्वी आदिक  
 अनादि है, किसीनें नहीं बनाये अरु तुम कहते हो आकाशमेउंची दश को  
 अंतरे दूसरी पृथिवी क्यों नहि बन जाती? अब विचारो यह तुमारा  
 अणुनां अयुक्त है, वा नहीं? तथा इस प्रश्नके उत्तरमें जो कोइ तुमकूं पूछे,  
 ईश्वर स्वभावसें बना होवे, तब तो ईश्वरसें अलग दूसरा ईश्वर क्यों  
 उत्पन्न होता? जे कर कहोगे ईश्वर तो अनादि है, वो क्यों कर नवा  
 ईश्वर बन जावे? इस तरे हमनी कह सक्ते हे जो पृथ्वी अनादि है,  
 अनादि नहीं बनती, तो फेर दश कोश आकाशमे क्यों कर बन जावे?

पूर्वपक्ष.—जे कर आपसें आपही वस्तु बनती होवे, तब सर्व परमाणु  
 कवे क्यों नहा मिल जाते? अथवा एकैक हो कर विखर क्यों नहीं जाते?  
 उत्तरपक्ष.—हमारी कुछ आज्ञा जड नहीं मानते है, जो हमारे कहेसें एक  
 होकर एकरूप हो जावे, अथवा एक एक होकर विखर जावे, पूर्वोक्त  
 पांच निमित्त मिलनेके जहां-होंगे, तहां मिल जावेंगे, जहां निमित्त नहीं  
 होवेंगे, तहां नहीं मिलेंगे.

पूर्वपक्ष.—सर्व परमाणुओंके एकत्र मिलनेके पांच निमित्त क्यों नहीं मिलते?

उत्तरपक्ष.—जो अनादि संसारकी नियतीरूप मर्यादा है, वो कदापि अन्य  
 या नहीं होती, जे कर हो जावे, तब तो संसारमें जो जीव जन्म लेते है, सो  
 सर्व, स्त्रीयोहीके वा पुरुषोंकेही रूपसें क्यों नहीं उत्पन्न होते? जे  
 कर कहोगे जैसें जैसे कर्म करे थे, वैसा वैसा ही उनकूं फल मिलता है,  
 फेर एक स्त्री आदिक स्वरूपसे कैसें उत्पन्न होवे? तब हम यह पूछते है,  
 जो सर्व जीवोंने स्त्री होनेके वा पुरुष होनेके न्यारे न्यारे कर्म क्यों करे?  
 एकही सरीखे कर्म क्यों न करे? जे कर कहोगे संसारमे यह सनातनसें  
 रीति है, जो सर्व जीव, एक सरीखे कर्म कदापि नहीं करते. तब तो पर  
 माणुओंमेंनी यही सनातन स्वभाव है, जो एकत्र कदेही न मिलना, त  
 या एक एक हो कर विखरनी नहीं जाना? हे पूर्वपक्षी! यह तुमारा ई

श्वर जगत् जो रचता है, सो तुमारे कहनेसें ध्यागें अनंत सृष्टियां का है, अरु एकैक जीवकूं अशुन कर्मोंका फल, अनंत बेर देचूका है, जी वो जीव ध्याज तांइ पाप करतेही चले जाते है, तो फेर दंन ईश्वरकूं क्या जान हुआ ? जो अनंत कालसें इती विडंबनामें फन है ? तथा ईश्वरकूं सृष्टि रचनेसें क्या प्रयोजन था ?

पूर्वपक्षः—ईश्वरकूं सृष्टि नहीं रचनेका क्या प्रयोजन था ?

उत्तरपक्षः—वाह रे बठडेके बाबा ! यह तूने क्या उत्तर दीया, क्या उत्तर देखके विघ्न तेरा उपहास्य न करेगे ? ईश्वर जे कर सृष्टि रचे, ईश्वरताही नष्ट हो जावे, यह वृत्तांत उपर अष्टी तरेंसे लिख आवे

पूर्वपक्षः—ईश्वरकी जो सर्व शक्तियां है, सो सर्व अथनां अथनां करती है, जैसे ध्यांख देखनेका काम करती है, कान सुननेका काम ते है, तैसेही जो ईश्वरमें रचना शक्ति है, सो रचनेसेंही सफल होती इत वास्ते जगत् रचता है.

उत्तरपक्षः—जब तुमनें ईश्वरकूं सर्व शक्तिमान् माना, तब तो ईश्वर सर्व शक्तियां सफल होनी चाहिये, तब तो ईश्वर एक सुंदर पुत्र रूप रच कर १ सर्व जगत्की सुंदर सुंदर स्त्रीयोंसें नोग करे, अरु २ चोर कर चोरी करे, ३ विश्वास घातीपना करे, ४ जीवहत्या करे, ५ जूठ ले, ६ अथन्याय करे, ७ अवतार हो कर गोपीयोंसें कद्वोल करे, ८ कुव्जासे नोग करे, ९ दूसरेकी मांगकूं जगा कर ले जावे, १० तथा शिर जटा रक्के, ११ तीन ध्यांख बनावे, १२ बैल उपर चढे, १३ तनमें जूति लगावे, १४ एक स्त्रीकूं वामार्धंगमे रक्के, १५ किसी सुनिके अथ नंगा हो कर नच्चे, १६ किसीकूं वर देवे, १७ किसीकूं शाप देवे, इती १८ चार मुख बनाके एक स्त्री रक्के, अरु १९ अथनी पुत्रीमें नोग करे तथा २० संग्राम करे, २१ स्त्रीको चोर ले जावे, तो पीठें उस स्त्री वास्ते रोता फिरे, २२ एक अथना जाठ बनावे, उमकूं जब संग्राममें को शस्त्र लगे, तब जाइके डखसें बहुत रोवे, २३ अथणे ध्यापकां तो अथनी समजे, २४ जाइकी चिकित्सा वास्ते वैद्य बुलावे, २५ सर्वे कुठ खावे, २६ पीठे, २७ नाचे, २८ कूदे, २९ रोवे, ३० पीठे. पीठेमें ३१ निर्मज, ३२ ज्योति रूप, ३३ निरहंकार, ३४ सर्वव्यापक, वन बैठे, इत्यादिक पूर्वोक्त शक्तियां

में है, वा नहीं ? जे कर है तो इतने पूर्वोक्त सर्व काम ईश्वरकूं करने हुंगे जे कर न करेगा, तब तो ईश्वरकीयां सर्व शक्तियां सफल न होवेगी ? तब तो ईश्वर महा दुःखी हो जावेगा ? क्योंकि जिसने नेत्र तो पाये है, अरु देखना उसकूं न मिले, तो वो कैसा दुःखी होता है ? जे कर कहोगे पूर्वोक्त अयोग्य शक्तियां ईश्वरमें नही है, तब तो सर्व शक्तिमान् ईश्वर है, ऐसे फिर आपि न कहना चाहियें. जे कर कहोगे कि योग्य शक्तियांकी अपेक्षा हम सर्व शक्तिमान् मानते है, तब तो जगत् रचनेकीनी शक्ति अयोग्यही है, यह भी परमात्मामे नही इस शक्तिकी अयोग्यता उपर लिख आये है. तथा पूर्वपक्षी ! जब ईश्वरने प्रथमही सृष्टि रची थी, तब तो स्त्री पुरुषादिक नही, तब तो माता पिताके बिना मनुष्य क्यों कर उत्पन्न होये होंगे ?

पूर्वपक्षः—जब ईश्वरने सृष्टि रची थी, तबही बहुत पुरुष, अरु बहुत स्त्रियों, माता पिताके बिनाही रच गये थे, उनके आगें फिर गर्भसें उत्पन्न होने लगे.

उत्तरपक्षः—यह अप्रामाणिक कहना कोइनी विद्वान नही मानेगा, क्यों माता पिताके बिना कनी पुत्र नही उत्पन्न हो सका है ? जेकर ईश्वरने प्रथम माता पिताके बिनाहि मनुष्य, स्त्री, उत्पन्न करे थे, तो अब नी घडे घडाये, बने बनाये, स्त्री पुरुष क्यों नहीं जेज देता ? गर्भ धारण कराणां, स्त्री पुरुषका मैथुन कराणां, गर्भवासका दुःख जोगानां, योनियंत्र द्वारा खैरके निकालना. इत्यादि संकट काहेकूं रचने थे ? अनंत वार ईश्वरने सृष्टि रची, अरु प्रलय करी, तब तो ईश्वर थाका नही, तो क्या मनुष्योंहीके जनानेसें थकेंवा चड गया ? जो घडे घडाये, बने बनाये, नहीं जेज सका ? यह कनी नही हो सका, जो माता पिताके बिना पुत्र उत्पन्न हो जावे. इस हेतुसेंनी जगत्का प्रवाह अनादिसें इसी तरें तारतम्य रूपसें चला आता लिख होता है

पूर्वपक्षः—जे कर ईश्वर सर्व वस्तुका कर्ता न होवे, अरु जीवही कर्ता होवे, तब तो जीव आपही शरीर धारण कर लेवेगा, अरु शरीरकूं कदेइ न ठोडे गा, अरु आपणे आपकूं अन्ना फल लगा लेलेंगे, फेर तो कनी मरेगे नहीं.

उत्तरपक्षः—जो तुमने कहा है सो सर्व, कर्मोंके बश है, परतु जीवके अधीन नही जे कर कहोगे कर्मनी तो जीवनेही करे थे, तब क्यों जीवने अधुन कर्म करे ? क्योंकि कोइ नी अपणो बुरे करणोमे नही है, इस



का उत्तर तो दीया गया है, परंतु तुमारी समझ थोड़ी है, जो नहीं, क्यों कि जो जो अथवस्था जीवोंकी चुन अचुन है, सो सर्व है. तथा जीव जो है, सो कर्म करणमें तो प्रायः स्वतंत्रही है, परंतु नोगनेमें स्ववश नहीं. क्योंकि जैसे कोइ जीव धनुपसैं तीर चजावे, फिर उस तीरकूं पकडने सामर्थ्य नहीं. तथा कोइ जीव विष खावे, स्ववश है, परंतु उस विषवेगके रोकणेमें जीव समर्थ, नही ऐसेही कर्म तो स्वतंत्रतासे प्रायः करता है, परंतु फल नोगनेमें जीव वश है, जैसे वर्तमानमें रेलगाडी सर्व जीवोंहीने इस तरकी परंतु उस चलती दुइ रेलके तथा तारके वेगकूं जितना चिर, उस प्रेरणाशक्ति नहीं हटती, इतना चिर, कोइ जीव नहीं रोक कर ऐसेही कर्मफल वेगके रोकणेकूं जीवकी समर्थ नहीं है, तथा कूं नवांतरमे कौन ले जाता है? तथा जीवके शरीरकी रचना पडवे तथा नाना प्रकारके रंग वरंगके हाड, चाम, जोडु, वीर्य त्यादिक रचना कौन रचता है? इसका पूर्ण स्वरूप जहां कर्म (१४८) का स्वरूप लिखेंगे, तहांसे जाननां. इस हेतुसैं ईश्वर जगत् फिली तरेनी सिद्ध नही होता, विशेष करके जगत् कर्ता ईश्वरका देखनां होवे, तो श्री (१) सम्मत्तिकर्क, (२) षादशसार नयचक्र (३) षादरत्नाकर, (४) अनेकांतजयपताका, (५) शास्त्रसमुच्चय स्था व्पलता. (६) स्याषाढमंजरी, (७) स्याषादरत्नाकरावतारिका, (८) त्रकृतांग, (९) नंदीतिहात, (१०) शब्दांचोनिधिगंधस्तीमहानाप्य, (११) प्रमाणसमुच्चय, (१२) प्रमाणपरीक्षा, (१३) प्रमाणमीमांसा, (१४) समीमांसा, (१५) प्रमेयकमलमार्त्तक, (१६) प्रमेयव्रमार्त्तक, (१७) यावतार, (१८) धर्मसंग्रहणी, (१९) तत्त्वार्थ, (२०) १८८ इत्यादि जैनमतके ग्रंथ देख लैने. इस वास्ते जो कामी, क्रोधी, उन्नी, च. परस्त्री स्वस्त्री गमन करनेवाला, नाचने वाला, गाने वजाने वाला, ने पीटने वाला, नरम लगाने वाला, माला जपने वाला, संग्राम करने वाला, तथा ममरु आदिक वाजे वजाने वाला, वर वा शापके देने वाला विना प्रयोजन अनेक संक्षेशोमें फसने वाला, इत्यादिक जो अताह पण करी सहित हे, सो कुदेव है, उसकूं ईश्वर मानना सोइ मिथ्यात्व है.

कुदेवोंकूं मानने वाले पञ्चरकीं नावो उपर बैठे है, इस वास्ते लिखनेका जोजन इतना ही है, जो कुदेवकूं कदेइ अर्हंत नगवंत परमेश्वर करी न जानां ॥ इतिश्री तपागह्वीयेमुनिश्रीबुद्धिविजयशिष्यमुनिआनंदविजयआरामविरचिते, जैनतत्त्वादशे, कुदेवनिर्णयनामा द्वितीयःपरिच्छेदःसंपूर्णः३

॥ अथ तृतीयपरिच्छेद प्रारंभः ॥

यह तीसरे परिच्छेदमें गुरुतत्त्वका स्वरूप कहते है, जैनमतमें गुरुके लक्षण लिखे है ॥ अनुपुत्र वृत्तं ॥ महाव्रतधरा धीरा, नैऋमात्रोपजीविनः ॥ मायिकस्था धर्मोप, देशकागुरवो मताः ॥१॥ अर्थः—अहिंसादि पांच मव्रतका धारने पालने वाला होवे, अरु आपदा आ पडे, तब धीर साहस कपणा करे, अपने जो व्रत हैं, तिनकूं दूषण लगा के कलकित न करे, आ वेंतालीश दूषण रहित, जिह्वावृत्ति माधुकरीवृत्ति करी, अपने चारित्र्यके तथा शरीरके निर्वाह वास्ते जोजन करे, जोजनकी पूरा पेट भर न करे, जोजनके वास्ते अन्न, पाणी, रात्रिकूं न राखे, तथा धर्मसाधके उपकरण वज्रके और कुठनी संग्रह न करे तथा धन, धान्य, सुवर्ण, पा, मणि, मोती, प्रवालादि परिग्रह न राखे. तथा राग, द्वेषके परिणाम हेत, मध्यस्थ वृत्ति हो कर, सदा वर्त्त, तथा “धर्मोपदेशक” जो धर्म, जीवों उदार वास्ते सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र्यरूप परमेश्वर, अर्हंत, नगवं स्याद्वादअनेकांत स्वरूप निरूपण कीया है, उस धर्मकूं जो नव्य जीवोंके तांइ उपदेश करे, परतु ज्योतिषशास्त्र, अष्ट प्रकारका निमित्त शास्त्र, तथा वैद्यशास्त्र, धन उत्पन्न करनेका शास्त्र, राजसेवा आदिक अनेक शास्त्र, जिनसैं धर्मकूं बाधा पहुंचे, तिनका उपदेशक न होवे, क्यों कि लौकिक जो शास्त्र है, सो तो बुद्धिमान् पुरुष वर्त्तमानमेनी बहुत सीखते है, तथा नवीन नवीन अनेक सांसारिक विद्याके पुस्तक बनाते दुये चले जाते है, तथा अंगरेजोकी बुद्धि देख कर इस देशके लोकनी बहुत सांसारिक विद्यामें निपुण होते चले जाते है. इस वास्ते साधुकूं धर्मोपदेश ही करना चाहिये. क्यों कि धर्मही जीवोंकूं पाना कठिन है; ऐसे गुरुके लक्षण जैन मतमे है.

तथा प्रथम जो पांच महाव्रत साधुकुं धारने कहे है, सो कोन सें वे पांच महाव्रत है ? सो कहते हैं:-श्लोक ॥ अहिंसा च ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः ॥ पंचनि. पंचनिर्युक्ता, जावनानिर्विमुक्तये ॥ अस्यार्थः-( १ ) अहिंसा, ( जीवदया, ) ( २ ) सन्नृत, ( सत्य बोलनां, ) ( ३ ) अस्तेय ( साधुके उचित, वस्तुकुं बिना दीक्षा लेनां, ) ( ४ ) ब्रह्मचर्यका पालनां, ( ५ ) सर्व परिग्रहका त्याग, पांचोंका नाम महाव्रत कहते है, तथा ए पांच महाव्रतोंमें महाव्रतकी पांच पांच जावना हैं, यह पांच महाव्रत, अरु पञ्चग ए सर्व मोक्षके वास्ते पाले.

अब इन पांचो महाव्रतोंमेंसू प्रथम महाव्रतका स्वरूप लिखीये ॥ श्लोक ॥ न यत् प्रमादयोगेन, जीवितव्यपरोपणं ॥ त्रसनां णां च, तदहिंसाव्रत मत ॥ ३ ॥ अस्यार्थः-त्रस, ( ईर्ष्यादिक जीव) स्थावर, ( १ ) पृथ्वीकाया, ( २ ) अप्काया, ( ३ ) अग्निकाया, ( ४ ) नकाया, ( ५ ) वनस्पतिकाया, ए पांचोकुं स्थावर जीव कहते हैं, इन सर्व पूर्वोक्त जीवोंकुं प्रमाद वश हो कर मारे नहीं, प्रमाद नाम है, द्वेष, असावधानपणा, अज्ञान, मन वचन कायाका चंचल पणा, विषे अनादर, इत्यादि प्रमादके वश हो कर जो प्राणातिपात करना, का जो त्याग करणां, इसका नाम अहिंसा व्रत है.

अब दूसरे महाव्रतका स्वरूप लिखते है ॥ श्लोक ॥ प्रियं पथ्यं स्तथ्यं, सन्नृतव्रतमुच्यते ॥ तच्चथ्यमपि नो तथ्य, मप्रियं चाहित च यत् ॥ ४ ॥ अस्यार्थः-जिस वचनके सुननेसे दूसरा जीव हर्ष पावे, तिस वचनकुं प्रिय वचन कहियें, तथा जो वचन जीवोकुं पथ्यकारी होवे, एतामसुंदर होवे, एतावता जिस वचनसे जीवके आगे बहुत सुधारा वे, तथा जो वचन सत्य होवे, ऐसा जो वचन बोले, सो सन्नृतव्रत हियें, इस व्रत विषे कठुक विशेष लिखते हैं, जो वचन व्यवहारमें चाही सत्यही होवे, परंतु जो आगले जीवकुं डखदायी होवे, ऐसा वचन न बोले, जैसे काणोकुं काणा कहनां, चोरकुं चोर कहनां, कुष्टीकुं कुष्टी कहनां, इत्यादिक जो वचन दूसरेकुं डख दायी होवे, सो न बोले, तथा जो वचन जीवोकुं आगे अर्थका देतु होवे, वसुराजावत् सोची न बोले. जे

दोनों बचन बोले, तब तो उस साधुके सन्नृत व्रतमें कलंक लग जावें,  
कि ए दोनो बचन ज्वरहीमें गिने हैं.

अब तीसरा महाव्रत लिखते है ॥ श्लोक ॥ अनादानमदत्तस्या, स्ते  
तमुदीरितं ॥ बाह्याः प्राणानृणामर्थो, हरतात्तहताहिते ॥ ५ ॥ अस्या

अदत्त, मालिकके विना दीया ले लेणां, तिसका जिसके नियम है,

अस्तेय व्रत कहीयें, अचोरीव्रत नामांतर है, अदत्तादान चार प्रका  
र है ( १ ) जो वस्तु साधुके लेने योग्य है, अचित्त जीवरहित वस्तु

ए, काष्ठ, पापाणादिक वस्तुयोंके स्वामीकूं विना पूछे ले लेनां सो स्वामी  
दत्त. ( २ ) तथा जैसें कोइ जेड. बकरी, गौ प्रमुख कोइ इनका स्वामी

अरे हिंसक जीवकूं मोल लेकर दे देवे, अथवा विना मोल दे देवे, अरु लेने  
लेने देइ होइ वस्तु लोनी है, परंतु उस जीवने तो अपणा शरीर नहीं

या है, इस हेतुसे जीवअदत्त. ( ३ ) तथा जो जो वस्तु आधाकर्मादिक  
आहार, अचित्त जीव रहितनी है, अरु दीनीनी उस वस्तुके स्वामीने है,

परंतु तीर्थकर जगवतें निषेध करी है, फेर जो साधु उस वस्तुकूं लें लेवे,  
तो तीर्थकर अदत्त. ( ४ ) तथा जो वस्तु निर्दोष है, वस्त्र आहारादिक

अरु उस वस्तुके स्वामीने वो दीनी है, अरु तीर्थकर जगवते निषेध नहीं  
करी है, परंतु गुरुकी आज्ञा विना वो वस्तुकूं साधु ले लेवे, सो गुरु अ

दत्त. इस महाव्रतमें ए चार प्रकारका अदत्त न लेणा. जितने व्रत नियम  
हैं, वे सर्व अहिंसाव्रतकी रक्षा वास्ते बाडी समान है, यह पूर्वोक्त तिसरे

व्रतका जो पालनां है, सो अहिंसा व्रतहीकी रक्षा होती है. अरु जो  
तीसरा महाव्रत न पाले तो अहिंसा व्रतकूं दूषण लगे है, यही बात कहते

है ॥ “बाह्याः प्राणा नृणां” मनुष्योंका अर्थ, (जङ्घी) जो है, सो बाहिरला  
प्राण है. जब कोइ किसीकी चोरी करता है, सो निश्चय करके उसके प्राणो

हिका नाश करता है. इसी हेतुसे चोरी करनां महा पाप है, सर्व चोरीका  
जो त्याग करना है, इसीका नाम तीसरा अदत्तादान त्यागरूप महा व्रत है.

अब चौथे महाव्रतका स्वरूप लिखते है ॥ श्लोक ॥ दिव्यौदारिकामाना,  
कृतानुमतिकारितैः ॥ मनोवाक्कायतस्त्यागो, ब्रह्मापट्टशया मतम् ॥ ६ ॥ अ

स्यार्थ.—दिव्य (देवताके) वैक्रिय शरीर संबधि जो काम नोग, अरु औदा  
रिक शरीर तिर्यच मनुष्यका, तिन संबंधी जो काम नोग, एतावता वैक्रिय

शरीर अरु औदारिक शरीर, ए दोनोंके साथ विषय सेवन करनां, औ सरायोंसें विषय सेवन करावणां, विषय सेवन जो करे उसकूं अत्रा ए ठ चेद मन करकें, ठ वचन करकें, अरु ठ काया करकें, एवं अछार कारका जो मैथुन सेवनका त्याग करे, उसकूं ब्रह्मचर्य व्रत कहते है.

अव पांचवा महाव्रत लिखते है ॥ श्लोक ॥ सर्वजावेपु मूर्ध्वाया, गस्यादपरिग्रहः ॥ यदि सत्त्वपि जीयेत, मूर्ध्वाया चित्तविद्धवः ॥ ७ ॥  
 श्यार्थः—सर्व संपूर्ण जो अज्ञानाव पदार्थ, इष्य, क्षेत्र, काजनावरु स्तु, तिस विपे जो मूर्ध्वा, ममत्वजाव मोह, तिसका जो त्याग करे, का नाम अपरिग्रह व्रत कहिये, परंतु जिसके पास अपणे शरीरके दूसरी कोइ वस्तु नहीं, तोनी तिसकूं निष्परिग्रहपणा न कहियें. जिसकी मूर्ध्वा, ममत्व, सर्व वस्तुसें हठ जावे, उसीको निष्परिग्रह न कहियें, क्योंकि जिसके पास कोइ वस्तु नही, अरु अण होइ वस्तुकी कूं चाहना लग रही है, वो त्यागी नही, जे कर ज्ञानद्वारा मूर्ध्वा विना, त्यागी हो जावे, तव तो कुत्ते अरु गधेनी त्यागी होना चाहियें. रु जो पुरुष ममत्व रहित है, सो निष्परिग्रह है, चाहो उसके पास साधनके कितनेक उपकरणनी हैं, तोनी मूर्ध्वाके न होनेसें वो परिग्रह

अव इन पूर्वोक्त एकेक महाव्रतकी पांच पांच जावना लिखते है ॥ श्लोक ॥ जावनाजिर्जावितानि, पंचनिः पंचनिः क्रमात् ॥ महाव्रतानि कस्य, साधयंत्यव्ययं पदम् ॥ १ ॥ अश्वार्थः—यह जो पांच म पञ्चीश जावना है, जो कोइ इन जावना करकें अपणे अपणे म जित वासित करे. एतावता पाच पाच जावना पूर्वक अखंड महाव्रत लेतो अैसा कोइ जीव नही है, जिसकूं ए महाव्रत मोक्षपदमें न

अव प्रथम महाव्रतकी पांच जावना लिखते है ॥ श्लोक ॥ मया ह्येपणादानै, यानिः नमितिनि सदा ॥ दृष्टान्नपानग्रहणे ना हिंसा येत्सुधिः ॥ १ ॥ अश्वार्थः—मनकूं पापके काममे न प्रवर्त्तावे, किंतु पापके कामसे अपणे मनकूं हटा लेवे, इसका नाम मनोगुप्ति कहते है. जे कर पापके काममे मनकूं प्रवर्त्तावे, अरु चाहो वाह्यवृत्ति करकें हिंसा नहींनी करत तोनी प्रसन्नचंद्र राजर्षिकी तरें सातमी नरकके जाने योग्य कामे ठरें न कर लेता है, इस वास्ते मुनिकूं अवश्य मनोगुप्ति करनी चाहियें, ए

म जावना. दूसरी जावना एषणासमिति. सो आहारादिक चार वस्तु  
 धाकर्मादिक वैतालीश दूषण रहित लेवे, वैतालीश दूषणका पूरा स्वरू  
 देखनां होवे, तो पिंमनिर्युक्ति शास्त्र (४०००) श्लोक प्रमाण है, सो  
 लेनी, ए दूसरी जावना. तीसरी जावना आठाननिक्षेप नामा है, जो  
 पात्रक. दंन, फलक प्रसुख लेना पडे, तथा जूमिकाके उपरि रखना प  
 तव प्रथम नेत्रोसे देख लेनां, पीठें रजोहरण करके पूंज लेवे, पीठे  
 लेना अरु रखना करें, क्योकि विबु सपर्पादिक अनेक जहेरी जीव,  
 कर उस उपकरणके उपर बैठे होवे, तब तो काट खावें, अरु दूसरा  
 व विचारा अनाथ कोइ बैठा होवे, तो हाथके स्पर्शीसे मर जावे, तब  
 जीवहत्याका पाप लग जावे, इस वास्ते जो काम करनां, सो यत्नपूर्वक  
 तां, ए तीसरी जावना. चौथी जावना जब चलनेका काम पडे, तब अ  
 आखोसे चार हाथ प्रमाण धरती देख कर चले, जो कोइ नीचा दे  
 चलता है, उसकूं इस लोकमें कितनेक गुण प्राप्त हो जाते है, प्र  
 गकूं गेकर नही लगती, दूसरा जिसके परिग्रहका त्याग न होवे,  
 पडा पैसा, रूपक, आदि मिल जावे, तीसरे लोकमें नला म  
 ती वहु वेटीकूं देखता नही, अैसा प्रसिद्ध हो जाता है, जो  
 करनेसे धर्मकी प्राप्ति होती है, ए चौथी जावना. पाचमी  
 पाणी, साधु लेवे, सो प्रकाशवाली जगामें लेवे, अंधकार  
 है, क्योकि अधकारवाली जगामें एक तो जीव नही दीख  
 साप विबुके काटनेका मर रहेता है, तथा गृहस्थका  
 जाता रहै, तब उसके मनमें शंका उत्पन्न हो जा  
 उरैमेंसे साधुही ले गया होगा ? तथा अंधेरेमें सुंदर  
 धुईत् कोइ उत्कट विकार वाली स्त्री लिपट जावे, अरु  
 स्त्री जता होवे, तो धर्मकी बड़ी निंदा होवे, तथा सा  
 प्राप्ति देख कर विगड जावे, साधु स्त्रीकूं पकड लेवे,  
 पांचमंघडी धर्मकी हानी, होवे तथा साधुओंकी अ  
 अम्बरेकी जगामें साधु अन्नादिक न लेवे, ए  
 नकी पांच जावना हैं.

गना लिखते है ॥ श्लोक ॥ हास्यलोचन

शरीर अरु औदारिक शरीर, ए दोनोंके साथ विषय सेवन करना, सरायोंसे विषय सेवन करावणां, विषय सेवन जो करे उसकूं अन्न ए व जेद मन करके, उ वचन करके, अरु उ काया करके, एवं अन्न कारका जो मैद्युन सेवनका त्याग करे, उसकूं ब्रह्मचर्य व्रत कहते हैं.

अथ पांचवा महाव्रत लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ सर्वजावेपु मूर्ध्या, गस्यादपरिग्रहः ॥ यदि सत्स्वपि जीयेत, मूर्ध्या चित्तविग्रहः ॥ ४ ॥  
 अर्थ.—सर्व संपूर्ण जो अन्नजाव पदार्थ, इव्य, क्षेत्र, वस्तु, तिस विषे जो मूर्ध्या, ममत्वजाव मोह, तिसका जो त्याग करे, का नाम अपरिग्रह व्रत कहिये, परंतु जिसके पास अपणे शरीरके दूसरी कोइ वस्तु नही, तोनी तिसकूं निष्परिग्रहपणा न कहिये. जिसकी मूर्ध्या, ममत्व, सर्व वस्तुसें हठ जावे, उसीको निष्परिग्रह व्रत हिये, क्योंकि जिसके पास कोइ वस्तु नही, अरु अण होइ वस्तुकी कूं चाहना लग रही है, वो त्यागी नही, जे कर ज्ञानद्वारा मूर्ध्या विना, त्यागी हो जावे, तव तो कुजे अरु गद्देनी त्यागी होना चाहिये रु जो पुरुष ममत्व रहित है, सो निष्परिग्रह है, चाहो उसके पास साधनके कितनेक उपकरणनी हैं, तोनी मूर्ध्याके न होनेसें वो परिग्रह

अथ इन पूर्वोक्त एकेक महाव्रतकी पांच पांच जावना लिखते श्लोक ॥ जावनात्तिर्जावितानि, पंचनिः पंचनिः क्रमात् ॥ महाव्रतानि कस्य, साधयंत्यव्ययं पदम् ॥ १ ॥ अर्थ—यह जो पांच महाव्रत पञ्चीश जावना हैं, जो कोइ इन जावना करके अपणे अपणे जित वासित करे, एतावता पाच पाच जावना पूर्वक अखंड महाव्रत लेतो अस्ता कोइ जीव नही है, जिसकूं ए महाव्रत मोक्षपदमें न पहुचवे.

अथ प्रथम महाव्रतकी पांच जावना लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ मनो ह्येपणादाने, यानिः समितिनिः सदा ॥ दृष्टान्नपानग्रहणे वा हिंसा नो येत्सुधिः ॥ १ ॥ अर्थ—मनकूं पापके काममें न प्रवृत्तवे, किंतु पापके काममें मनकूं हटा लेवे, इसका नाम मनोगुप्ति कहते हैं. जे कर पापके काममें मनकूं प्रवृत्तवे, अरु चाहो वाह्यवृत्ति करके हिंसा नहीनी करत तोनी प्रसन्नचंद्र राजपिकी तरें सातमी नरकके जानें योग्य कर्म, उन्न कर लेता है, इस वास्ते मुनिकु अथव्य मनोगुप्ति करनी चाहिये,

१म जावना. दूसरी जावना एणसासमिति. सो आहारादिक चार वस्तु  
 धाकर्मादिक बेतालीश दूषण रहित लेवे, बेतालीश दूषणका पूरा स्वरू  
 देखनां होवे, तो पिंमनिर्युक्ति शास्त्र (७०००) श्लोक प्रमाण है, सो  
 २ लेनी, ए दूसरी जावना तीसरी जावना आठाननिक्षेप नामा है, जो  
 ३ पात्रक. दंभ, फलक प्रमुख लेना पड़े, तथा चूमिकाके उपरि रखना प  
 तब प्रथम नेत्रोसे देख लेनां, पीठें रजोहरण करके पूंज लेवे, पीठे  
 लेना अरु रखना करे, क्योकि विबु सपर्पादिक अनेक जहेरी जीव,  
 कर उस उपकरणके उपर बैठे होवें, तब तो काट खावें, अरु दूसरा  
 व विचारा अनाथ कोइ बैठा होवे, तो हाथके स्पर्शसे मर जावे, तब  
 जीवहत्याका पाप लग जावे, इस वास्ते जो काम करनां, सो चलपूर्वक  
 नां, ए तीसरी जावना. चौथी जावना जब चलनेका काम पड़े, तब अ  
 आखासे चार हाथ प्रमाण धरती देख कर चले, जो कोइ नीचा दे  
 चलता है, उसकूं इस लोकमे कितनेक गुण प्राप्त हो जाते है, प्र  
 पगकूं गेकर नही लगती, दूसरा जिसके परिग्रहका त्याग न होवे,  
 पडा पैसा, रूपक, आदि मिल जावे, तीसरे लोकमें जला म  
 नी बहू वेटीकूं देखता नहीं, अैसा प्रसिद्ध हो जाता है, चो  
 पा करनेसे धर्मकी प्राप्ति होती है, ए चौथी जावना. पाचमी  
 पाणी, साधु लेवे, सो प्रकाशवाली जगासे लेवे, अंधकार  
 है, क्योकि अंधकारवाली जगामे एक तो जीव नही दीख  
 वे साप विबुके काटनेका मर रहेता है, तथा गृहस्थका  
 सं जाता रहै, तब उसके मनमें शंका उत्पन्न हो जा  
 अरेमेंसे साधुही ले गया होगा ? तथा अंधेरेमें सुंदर  
 धुहंतू कोइ उत्कट विकार वाली स्त्री लिपट जावे, अरु  
 स्त्री खता होवे, तो धर्मकी बड़ी निदा होवे, तथा सा  
 प्रति देख कर विगड जावे, साधु स्त्रीकूं पकड लेवे,  
 पांचमंघडी धर्मकी हानी, होवे तथा साधुओंकी अ  
 अंबरेकी जगासे साधु अज्ञादिक न लेवे, ए  
 नकी पात्र जावना है.

१ना लिखते है ॥ श्लोक ॥ हास्यलोचन



यक्रोधः, प्रत्याख्यानैर्निरंतरम् ॥ आलोच्य चापणमपि, जावयेत्सुनृतं ॥  
 अर्थः—प्रथम तो किसीकी हांसी न करे, हांसीका त्याग करे, क्योंकि  
 पुरुष किसीकी हांसी करेगा, वो अवश्य फूट बोलेगा, ए जो परकी  
 करणी है, सो बड़ा अनर्थका कारण हो जाती है. श्रीहेमचंद्र  
 रामायणमें लिखा है, कि रावणकी बहिन शूर्पनखाकी श्रीरामचंद्र  
 दृमणजीने हांसी करी थी, तब शूर्पनखा क्रुद्ध हो कर अपने जास  
 पास जा कर सीताका वर्णन करा, फेर रावण सीताकूं हर कर ले गया  
 बड़ा संग्राम हुआ, आज तांइ लोक नकल बनाते है, इस सारी रामायण  
 निमित्त शूर्पनखाकी हांसी है, इस वास्ते पर हास्यका त्यागरूप  
 जावना जाननी. दूसरी जावना लोचका त्याग करना, क्योंकि जो  
 होगा सो अवश्य अपने लोचके वास्ते फूट बोलेगा, क्योंकि यह वा  
 र्व लोकोमें प्रसिद्ध है, जो लोनी होगा, वो जरूर फूट बोलेगा, ए  
 जावना. तथा नय न करना, क्योंकि नयवत पुरुषजी फूट बोल देता  
 ए नय त्यागरूप तिसरी जावना. तथा क्रोध करनेका त्याग करे, क्योंकि  
 रूप क्रोधके वश होगा, वो दूसरायोके दूबे अणदूबे दूपण जरूर बोलेगा.  
 वास्ते क्रोध त्यागरूप चौथी जावना. तथा प्रथम मनमें विचार कर लेवे,  
 बोले क्यो कि जो विचार करे विना बोलेगा वो अवश्य फूट बोलेगा, इस  
 विचार पूर्वक बोलना. ए पाचमी जावना. ए दूसरे महाव्रतकी पांच जावनी

अथ तीसरे महाव्रतकी पांच जावना लिखते है ॥ श्लोक ॥ श्रव  
 वग्रहयाञ्चा, भीक्षणावग्रहयाचनं ॥ एतावनमात्रमेवैत, दिव्यव्याप्त  
 ॥ १ ॥ समानधार्मिकेन्यश्च, तथावग्रहयाचनं ॥ अनुज्ञापि तथग्रहव्र  
 नमस्तेपजावना ॥ ७ ॥ अर्थः—जिस मकानमें साधुने र पदं  
 तो प्रथम उस मकानके स्वामीकी आज्ञा लैणी, घरका स्वामीक ॥  
 सा जान कर आज्ञा लैणी, जे कर स्वामीकी आज्ञा विना रहे ॥ हिंसा  
 अरु रात्रिमें कदाचित् घरका स्वामी क्रोध करके साधुकू, कंतु पाप  
 देवे, तब साधु रात्रिमें कहां जावे ? इत्यादि अनेक क्लेश ॥ जे कर  
 है, इस वास्ते मकानके स्वामीकी आज्ञा ले कर उसके नदीनी  
 प्रथम जावना. दूसरी जावना उपाश्रयके स्वाम, योग्य कर्म  
 क्योंकि कदाचित् कोइ साधु रोगी हो जावे, तर्करा करनी

: जगा चाहियें, गृहस्वामीकी आज्ञाके विना जो उसके मकानमें मज करे, तो चोरी लगे. इस वास्ते गृहस्वामीकी आज्ञा बार बार लेनी, ए 1 जावना. तीसरी जावना उपाश्रयकी नूमिकाकी मर्यादा कर लेवे, कि 1 जगा तरु हमारेकूं तुमारी आज्ञा रही, जे कर मर्यादा न कर लेवे अधिक नूमिकाकूं काममें लानेसें चोरी लगती है, इस वास्ते प्रथमही वा कर लेवे, ए तीसरी जावना. तथा चौथी जो साधु समान धर्मी होवे, वो किस जगामें प्रथम उतर रहा है, पीछें दूसरे साधु जो उस मका उतरा चाहे, तो प्रथम साधुकी आज्ञा विना न रहना, जे कर प्रथम की आज्ञा न लेवे, तो स्वधर्मी अदत्त लागे, ए चौथी जावना. पांचमी ना साधु जो कुछ अन्न, पान, वस्त्र, पात्र, शिष्यादिक लेवे, सो सर्व ही आज्ञासें लेवे, जे कर गुरुकी आज्ञा विना कोइ वस्तु ले लेवे, तो अदत्त लागे. ए पांचमी जावना. ए तिसरे महाव्रतकी पांच जावना हैं. अब चौथे महाव्रतकी पांच जावना लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ स्त्रीपिंडपशु श्मा, सनकुम्भ्यांतरोज्जनात् ॥ सरागस्त्रीकथात्यागात्, प्राग्गतस्मृतिवत् ॥ १ ॥ स्त्रीरम्यांगेक्षणस्वांग, संस्कारपरिवर्जनात् ॥ प्रणीतात्य त्यागात्, ब्रह्मचर्यं तु जावयेत् ॥ २ ॥ अर्थः—जिस घरमें अथवा जनमें अथवा नीतके अंतरे देवी अथवा मनुष्यकी स्त्री वसे, ( रहे, ) वा देवांगनाकी वा स्त्रीकी लेप, चित्राम प्रमुखकी मूर्ति होवे, तथा पंड तक तीसरे वेद वाला जिस घरमें रहता होवे, तथा पशु, गाय, महि घोड़ी, बकरी, जेड प्रमुख तिर्यच स्त्री जिस मकानमें रहती होवे, 1 जिस मकानमें काम सेवन करती स्त्रीका शब्द तथा दूसरा कोइ मोह न्न करनेका शब्द, तथा आनूषणोंका शब्द, सुणाइ देवे, इन पूर्वोक्त 1पणों संयुक्त मकानमें तथा एक नीतके अंतरेमें साधु न रहे, ए प्रथम ना. तथा सराग ( प्रेम सहित ) स्त्रीके साथ वार्त्तालाप न करे, अथवा ग स्त्रीके साथ वार्त्ता न करे तथा स्त्रीके देश, जाति, कुल, वेप, जापा, ह, शूगार प्रमुखकी कथा सर्वथा न करे, क्योंकि सराग स्त्रीके साथ जो प स्नेह सहित कामशास्त्र प्रमुखकी कथा करेगा, सो अवश्य विकार कूं प्राप्त होगा, इस वास्ते सराग स्त्रीसे कथा न करे, ए दूसरी जावना. 1 दीहा लेनेसे पहिले गृहस्थावस्थामें जो स्त्रीके साथ कामक्रीडा, वद

नचुंवन, चौरासी कामासनसें विषयसेवन प्रमुख क्रीडा करी होवे, तो फेर मनमें कवेइ न स्मरण करणां, क्योंकि पूर्वे क्रीडास्मरणरूप ३५५ माग्नि फिर धुखने लग जाती है, ए तीसरी जावना. तथा अविबेकी देखने, अरु बाठने योग्य स्त्रीके अंग जो मुख, नयन, स्तन, जघन, मुख तिनोंकों सराग दृष्टिसें देखनां तथा अपूर्व विस्मय रसके पूरमें कर आख फाड देखना बर्जे, परंतु जो राग रहित दृष्टि करी कदाचित् में आ जावें, तो दोष नहीं. तथा अण्णे शरीरकूं संस्कार करणां, विलेपण, धूप करणी, नख, दात, केश, समा रचनां, कंगी सुरमासें विनूश रणी, इत्यादिक शरीरसंस्कार न करे, क्योंकि स्त्रीके रमणिक अंग जैसे दीप शिखामें पतगीया जल जाता है, जैसे कामी पुरुषनी मा जाता है, क्योंकि शरीर जो है, सो सर्व अणुचिका भूल है, इसका जो र करणा है, सो अज्ञानता है, जैसे मज्जिन वस्तुकी कोथलीके उपर जे चंदन घस कर लगा दिया, तो क्या वह कोथली सुगंधित हो जाती है? शरीर अतमे मशानकी एक मुछी राखकी बन जायेगी, फिर किस वास्ते स शरीरकी शोभा करणेमें व्यर्थ काल खोवें है? ए चौथी जावना. त प्रणीत, स्निग्ध, मधुरादि रस, इनका अधिक आहार करणां, तथा नोजननी कठ उदर पूर कर खाना, ए दोनोंही प्रकारके आहारका र करे, क्योंकि जो पुरुष, निरतर स्निग्ध, मधुर रसका आहार करेगा, अ जरूर शतुपुष्ट होवेगी, तब तो वेदोदय करी अवश्य कुशीज सेवेगा. अ रुद्ध निह्वात्तिका नोजननी प्रमाणसें अधिक नहीं करणां, क्योंकि नोजन अधिक करणेसे काम उत्पन्न हो जाता है, अरु अधिक, सान शरीरकूं पोडा उत्पन्न हो जाती है, विणुचिका प्रमुख रोग हो जाते हैं. स वास्ते प्रमाणमें अधिक नोजननी न करे. पूर्वे पुरुषोंने खानेकी अ मर्यादा लिखी है कि ॥यत ॥ अरुमतणस्स सव, जणस्स कुक्का दवम्म चागे ॥ वाउपविआरण्णा, उक्काय जणमं कुक्का ॥ १ ॥ अस्य ताण्ण ये.—बुद्धि करिकें अण्णे उदरके उ चाग करणे, तिनोमें तीन जाग तो अ में चरने, अरु दो जागमें पानी, एक जाग खाजी रखणां, जिस्सें सुते उ उमास नि.श्यास थाता रहे, ए पाचमी जावना. ए चौथे व्रतकी पांच जाग अथ पाचमे महाव्रतकी पाच जावना लिखते है ॥ श्लोक ॥ स्पग्ं रते.

च, रूपे शब्दे च हारिणि ॥ पंच सुहृदिद्यार्थेषु, गाढं गा-ध्वस्य वर्जनं  
 ॥ एतेष्वेवामनोहेषु, सर्वथा द्वेषवर्जनं ॥ अकिंचन्यव्रतस्यैवं, ना  
 पंच कीर्तिता ॥ १ ॥ युग्मं ॥ अस्वार्थः—स्पर्शादिक मनोहर पांच  
 योंमें जो अत्यंत गृहिपणा सो वर्जनां, अरु स्पर्शादिक अमनोह पां  
 वेषयोंमें द्वेष न करणां. ए पांचमे महाव्रतकी पांच जावना. एवं पू  
 ५ पांच महाव्रत, अरु पञ्चीश जावना जिसमें होवे, सो गुरु. तथा च  
 सित्तरी अरु करणसित्तरी करकें संयुक्त होवे, सो जैनमतमें गुरु है.

अथ चरण सित्तरीके सित्तर जेद लिखते है ॥ गाथा ॥ वय समण ध  
 संजम, वेयावच्चं च वंन गुत्तीठ ॥ नाणाइ तियं तव को, ह निग्गहाइ  
 रणमेयं ॥ १ ॥ अर्थः—व्रत पांच प्रकारका, श्रमणधर्म दश प्रकारका,  
 स सत्तर प्रकारका, वैयावृत्त्य दश प्रकारका, ब्रह्मचर्यं गुत्तिं नव प्रकारकी,  
 १, दर्शन, चारित्र, ए तीन प्रकारका, तप वार प्रकारका, निग्रह क्रोधादिक  
 प्रकारका, ए सर्व सित्तर दुये, तीनमेंसूं पांच व्रतका स्वरूप तो उपर  
 ना संयुक्त लिख थाये है, सो जानना.

या श्रमणधर्म दश प्रकारका लिखीयें है ॥ गाथा ॥ खंतिय मदव ऊव,  
 तव संजमे य बोधवा ॥ सच्चं सोयं आकिं, चणं च वंनं च जइधम्मो ॥ १ ॥  
 प्रार्थः—(१) क्हांतिः (कृमा) करणी, चाहो सामर्थ्य होवे, चाहो असामर्थ्य  
 १, परंतु दूसरेके डुर्वचन सहनेके जो परिणाम मनोवृत्ति है, तिसका नाम  
 ॥ कहते है, सर्वथा क्रोधका त्याग कृमा, (२) कोमल कहीये अहंकार र  
 १, तिसका जो जाव, वा कर्म सो कहियें मर्दव, नीचा हो कर अजिमान  
 त होणां, (३) ऋजु कहियें मन, वचन, काया करी सरल, तिसका जो  
 १, वा कर्म, सो आर्कव, मन वचन कायाकी कुटिलताइसैं रहित, (४)  
 वनं मुक्तिः बाहिर, अंदर, तृष्णाका त्याग लोभका त्याग, (५) रसादिक  
 ३ अथवा अष्ट प्रकार कर्म, जिस करकें तपे सो तप अनशनादि वारा  
 १, रका, (६) संयम, आश्रवकी त्यागवृत्ति, (७) सत्यं, मृपावाद विरति  
 का त्याग, ( ८ ) शौच, अपणी संयमवृत्तिमें कोऽ कलंक न लगावनां,  
 १ ) नहीं है किंचित् मात्र इच्च जिसके पास सो आकिंचन, ( १० ) नव  
 रचर्यकी गुत्ति, ए दश प्रकारका यतिधर्म, तथा मतांतरमें दश प्रकारका

यतिधर्मं त्रैसेनी कहते हैं ॥गाथा॥ खंची मुत्ती अङ्गव, महव तह .  
 तवे चैव ॥ संजम वियोग किंचण, बोधवे वंचनेरेय ॥१॥ अत्यार्थः पु

अथ सत्तर जेद संयमके लिखते है ॥ गाथा ॥ पंचासवाविरमणं  
 चिंदिय निग्गहो कसाय जउ ॥ दंमचयस्त विरई, सत्तरसहा संजमो  
 ॥ १ ॥ अथवा ॥ पुढवि दग अगणि मारुय, वणसइ वि ति चउ परि  
 अजीवा ॥ पदु प्पेहपमवण, परिववण मणो वई काए ॥२॥ इनोंका अ  
 उत्पन्न करीयें कर्म इनों करकें सो आश्रवाः सो आश्रव पांच प्रका  
 है, जो पांच महाव्रतोंमें त्यागने लिखे है. (१) हिंसा, (२) जूठ, (३)  
 चोरी, (४) अन्नह्न. (५) परिग्रह. ए पांच आश्रवका त्याग करे, त  
 स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु अरु श्रोत्र, ए पांचों इंद्रियका स्पर्शादिक प  
 विषयोंविषे लंपटपणा त्यागे, तथा क्रोध, मान, माया अरु लोभ,  
 चारों कपायका जीतनां. इन चारोंके उदय होयाकू नि फल करणा, अरु  
 नही उदय आये उनकू उत्पन्न न करणां तथा दंभीयें चारित्र धर्मरूप  
 दृमी जीव पासों इनों करकें सो खोटा मन, खोटा वचन. खोटो काया,  
 तीनों दंमकी विरति करणी. एव सत्तर जेद करिकें संयम है, अथवा प्र  
 तर करकें सत्तर जेदसैं संयम कहते है, (१) पृथिवी, (२) उदक, (३) अ  
 (४) पवन, (५) वनस्पति, (६) ईन्द्रियजीव, (७) त्रैन्द्रियजीव, (८)  
 रिन्द्रिय जीव, (९) पंचेंद्रिय जीव, इन पूर्वोक्त नवविध जीवोंकू मन,  
 न. अरु काया करी करणां, करावणां, अरु करणे वालेकू जज्ञा जाननां, त  
 समारंजाइरंज, इन नव विकल्पोंमें पूर्वोक्त नवविध जीवोंकी हिंसा त्याग  
 ए नव प्रकारका संयम. जो प्राणीके प्राणकू विनाशनेका संकल्प कर  
 इतका नाम तरंज है, जीवके प्राणकू जो परिताप करना, (पीडा वेनी)  
 सका नाम समारंज है, तथा जीवोंका प्राणका जो विध्वंस करनां, इत  
 नाम आरंज है, तथा (१०) अजीव संयम जिस अजीव वस्तुके स  
 एमें संयम कजंकित हो जावे, जैसे मास, मदिरा, सुवण प्रमुख स  
 धातु, मोति आदिक सब रत्न अंशुषा, शत्रु, शत्रु, इत्यादिक अजीव  
 रगनेमें संयममें कजंकित हो जावे, जो नरक तथा अजीव  
 रूप जो पुस्तक, अरु नरक तथा अजीव  
 बुकि नहीं, आशु जेवी

धि हैं, विद्या कंठ रहती नही, इस वास्ते इस कालमें जो पुस्तक रखणां, सो तिलेखणा, प्रमार्जनापूर्वक यतनसें राखणां, ए दसवा अजीव संयम. (११) प्रेक्षासंयम. सो नेत्रोंसें देख करकें बीज, हरि प्रमुख जीवों करी रहित स्थानमें सोनां, बैठणां, चलनां, इत्यादिकके करणसें प्रेक्षासंयम. तथा (१२) उपेक्षासंयम सो गृहस्थकूं पापका व्यापार करतेकूं उपेक्षाणां सो (उपदेश देणां) कि यह काम तुम जैसें करो, ऐसें जो गृहस्थकूं कहनां, सो उपेक्षा संयम, अथवा केइ साधु संयमसें चलायमान हो ग जा होवे, उसकूं हित करकें जो उपदेश करनां, सो प्रेक्षासंयम, तथा तार्थस्थादिक जो साधुकी समाचारीसें नृप हो गये है, अरु वो नृप साधु कोइ अनुचित काम कर रहा है, अरु साधुकी अपणे मनमें जा न जावे जो इसकूं उपदेश करुंगा, तो इसने माननां नही है, इस वास्ते सो औदासीन्य रहणां, उसका नाम उपेक्षासंयम, (१३) प्रमार्जन संयम, सो देखे दुये स्थानमें वस्त्र पात्रादिक जो लेने, वा रखने पडे, तब अथम रजोहरणादिकसें प्रमार्जन करकें पीठसें लेनां, रखनां, सोनां, बैठनां करे, तब प्रमार्जना संयम, तथा (१४) जात, पाणी, वस्त्र, पात्रादिक जि नमें जीव पड गये होवे, तब तिनकूं जीवों रहित शुद्ध जूमिकामे शास्त्रो क विधि कर जो परिष्ठापना करे, सो परिष्ठापनासंयम, तथा (१५) मनमे झोह, ईर्ष्या, अजिमान, तो न करणां, अरु धर्मध्यानादिकमें मन प्रवृ त्त करणा, सो मनःसंयम. तथा (१६) हिंसाकारी कठोर वचनकों त्यागनां, अरु अज्ञ वचनमें प्रवृत्त होनां, सो वचनसंयम, तथा (१७) गमनागमन करणमें अरु अवश्यकरणे योग्य कामोंमें उपयोग पूर्वक जो कायाकूं प्रवृत्तावे, सो कायासयम, ए सत्तरचेद संयमके जाननां.

अथ वैद्यावृत्तके दश चेद कहते हैं ॥ गाथा ॥ आयरिय उवधाए, तवस्ति सेहे गिलाण सादुसु ॥ समणोन्न संघ कुल गण, वेयावच्चं ह्वइ दसहा ॥१॥ अर्थ—(१) ज्ञानादिक पाच आचारकूं जो पाले, सो आचार्य, तथा सेवीये जो, सो आचार्य तथा (२) जिनके समीप आ कर पढीये, सो उपाध्याय. तथा (३) तप जो करे, सो तपस्वी, तथा (४) जिसने न वाही साधुपणा लीया है, सो शिष्य, तथा (५) ज्वरादि रोग वाला जो साधु सो ग्लान, तथा (६) जो धर्मसें भिगतेकूं स्थिर करे, सो स्थविर, साधु

तथा (७) जिस साधुकी छपणे समान एक समाचारी होवे, सो ११  
 तथा (८) साधु, साधवी, श्रावक श्ररु श्राविका इन चारोंको जो समुदा  
 संघ, तथा (९) बहुते एक सरिखे गहनोंका सजातियोंका जो समूह, त  
 चंडाडिक जाननां, तथा (१०) एक आचार्यकी वाचनावाले साधुवाँक  
 ह, सो गण गह्न कौटिकादिक. इन पूर्वोक्त आचार्यादिक दसोंका  
 पाणी, वस्त्र, पात्र, मकान, पीठ, फलक, संस्तारक प्रमुख धर्म  
 करके जो साहाय्य करणां, शुश्रूषा करणी, नेपज करणी, उजाड  
 में रोग उत्पन्न होनेसें. तथा नाना प्रकारके उपसर्गोंमें पालना कर  
 सका नाम वैद्यावृत्त है.

अथ जो शीजवान् साधु होवे, सो नव वाड सहित शीज पासे,  
 नवविध ब्रह्मचर्यकी गुप्ति कहते है. सो लिखते हैं ॥गाथा॥ वसहि व  
 सिचिंदिच, कुमुंतर पुवकीलिय पणीए ॥ अश्मायाहार विचू, सणाइ न  
 गुत्तीउ ॥१॥ अर्थ:—१ (वसहि के०) वस्ती सो जो ब्रह्मचारी साधु हो  
 स्त्री, पशु, पंमक इनों करी, संयुक्त जो वस्ती होवे, तहां ब्रह्मचारी न रहे,  
 सूं प्रथम तो स्त्री जो है, सो दो तरेंकी है, एक तो देवी, दूसरी  
 इन दोनोके दो दो चेद है, एक तो असज, और दूसरी इनकी मूर्ति  
 चित्रामकी मूर्ति, यह दोनो प्रकारकी स्त्री जहां न होवे, तिस वस्ति  
 तथा पशु जो तिर्यचिणी, गौ, महिषी, घोडी, बकरी, नेड प्रमुख जिस  
 में नहीं रहे, तहां रहे, तथा पंमक सो नपुंसक, तीसरे वेद वाजा, म  
 हवाजा काम करनेहारा, स्त्री श्ररु पुरुष, इन दोनोके साथ विषय से  
 जा, जिस वस्तिमें रहता होवे, तहां ब्रह्मचारी न रहे, क्योंकि इन तीन  
 संयुक्त वस्तिमें रहते थेके उनोंकी कामविकारकी चेष्टा देखनेसें,  
 रीके मनमे विकार उत्पन्न होनेसें ब्रह्मचर्यकूं बाधा होती है, जैसे मृष  
 चिल्ली दोनु एक जगे रहे, तो मृषेकूं सुख नहीं; तैसेही इन तीनों सं  
 स्तिमें रहणेसें शीजकूं उपष्य होवे, ए प्रथम ब्रह्मचर्य गुप्ति.

५ तथा (कह के०) कथा सो केवल स्त्रीयांहीकूं तथा एकली स्त्रीकूं थ  
 ना वचनका प्रबंधरूप कथा न कहे, तथा स्त्रीकी कथा न करे ॥ यथा ॥ क  
 गुरतोपचारचतुरा, लाठी जिदग्धा प्रिया ॥ इत्यादिक कथा न करे, क्योंकि  
 कथा जो है, सो राग उत्पन्न करनेकी हेतु है, जो स्त्रीके देग, १

न, वेप, ज्ञापा, गति, ( चलनां ) विघ्नम, इंगित, हास्य, लीला, कटाक्ष, ह, रति, कलह, शृंगार, इत्यादिक जो विषयरसकी पोखने वाली कामि की कथा है, सो कदेइ न करे. जे कर करे, तो अवश्य मुनिकाजी मन विरकूं प्राप्त हो जावे. ए दूसरी ब्रह्मचर्यकी गुति है.

२ तथा (निसिञ्ज के०) आसन सो स्त्रीयोंके साथ एक आसन उपर न बैठे, तथा जिस जगसें स्त्री उठी होवे, उस आसन वा स्थानमें दो घड़ी तक धु न बैठे, क्यों कि उस जगे तत्काल बैठनेसें स्त्रीकी स्मृति होती है, स्त्रीके बैठनेसें शय्या वा आसन, मैलसें मलिन होता, स्त्रीके स्पर्शवाले आसनादि स्पर्शसें विकार उत्पन्न हो जाता है, ए तीसरी ब्रह्मचर्यगुति.

४ तथा (इंद्रिय के०) इंद्रिय सो अविवेकी लोकोकूं देखने योग्य, स्त्रीयोंके गोपांग जो नाक, स्तन, जघन प्रमुख है, उसकूं ब्रह्मचारी साधु अपूर्व रसमें ग्रहो कर, नेत्र फाड कर, न देखे, कदाचित् दृष्टि पड जाय, तो पीठसें झैसी चिंतवनाजी न करे, जैसें कि बडे सुंदर लोचन है ! नासिका बहुत सीधी ! वांठने योग्य दोनो कुच है ! जे कर स्त्रीके पूर्वोक्त अंगोपांग एकाग्र रस ग्रहो कर चिंतवना करे, तो अवश्य मन मोहें, तथा विकारकूं प्राप्त होवे.

५ तथा (कुम्भंतर के०) कुम्भ्यांतर सो जिन जीतके, तट्टीके, कनातके, अंतर बीचमें होनेसें स्त्री पुरुष, मैघुन करते होवें, अरु उनका शब्द सुणाइ वे, तहां साधु ब्रह्मचारी न रहे. ए पांचमी गुति.

६ तथा (पुत्रकीलिय के०) पूर्वक्रीडा सो पूर्वगृहस्थ अवस्थामें स्त्रीके साथ जो विषय जोग क्रीडा करी होवे, तीसकूं स्मरण न करे; जे कर करे, तो कामाग्नि प्रज्ज्वलित हो जाता है, ए छठी गुति.

७ तथा (पणीय के०) प्रणीत सो अति चोक्रणा, मीठा, दूध, दधि प्रमुख अति धातुपुष्ट करनेवाला आहार निरंतर न करे; जे कर करे, तो शीर्षकी वृद्धि होनेसें अवश्य वेदोदय होगा, फेर जरूर विषय सेवेगा, क्योंकि जो बोदी कोथलीम बहुत रूपिये जरैगा, तो जरूर फाट जायगी.

८ तथा (अश्मायाहार के०) अतिमात्राहार, सो रूखी निहानी प्रमाणसे अधिक न खावे, क्यों कि अधिक खानेसें विकार हो जाता है, अरु शरीरकूं पीडा विशूचिकादिक होनेका कारण है, ए आठमी गुति.

९ तथा (विनूषणाइ के०) विनूषणादि शरीरकी विनूषा सो स्नान, चिले



पन, धूप, नख, दांत, केश, इनकी सुंदरताइके वास्ते समारणां, तिलक, सुरमा, कज्जल. विनूपाके वास्ते नेत्रोंमें गेरनां, तथा जवेंमें मांजने, साबु, तेल प्रमुख मसल कर गरम पाणीमें सुकोमलताइके धोनां, इत्यादिक शरीरकी विनूपा न करे, ए नवमी ब्रह्मचर्यगुति. ए प्रकारकी गुति सो ब्रह्मव्रतकी रक्षा रूप नव वाड है.

अथ ज्ञानादि तीन कहेते है, उसमें यथार्थ वस्तुका जो बोधक ज्ञान, सो ज्ञानावरणीय कर्मके दूय तथा दूयोपशमके होनेसँ जो दूया है बोध, तिसका हेतु जो द्वादशांग आ द्वादशोपांग, तथा उत्तराध्ययनादिक, सो सर्व ज्ञान कहिये. तथा दूसरा दर्शन सो १ जीव, २ अजीव, ३ पुण्य, ४ पाप. ५ आश्रव, ६ संवर, ७ निर्जरा. ८ बंध. ९ इन जीवादिक नव तत्त्वका जो स्वरूप, तिनमें श्रद्धा ( रुचि ) करनी सेकी ए नव तत्त्व तथ्य है, मिथ्या नहीं, ऐसी तत्त्वरुचि तिसका नाम न है, तथा तिसरा सर्व पापके व्यापारोंसँ ज्ञान, श्रद्धान पूर्वक जो होना. इसका नाम चारित्र है, इस चारित्रकेजी दो जेद है, एक दे- १, २, दूसरा सर्व विरतिचारित्र; उसमें देशविरति चारित्र तो जहां गृहाश्रम स्वरूप जिखेंगे, तहासे जान लेना, अरु जो सर्वविरति चारित्र है, स्वल्प, इसी गुरुतत्त्वमें जिखने लग रहे हैं, ए ज्ञानादिक तीन जान

अथ वारा प्रकारका तप जिखते है ॥ गाथा ॥ अणसणं भू ॥ १५ ॥  
 विचीतंखेवणरसञ्चाठ ॥ कायकलेसो संजी, एया च वज्जो तवो होइ ।  
 पायचित्तं विणउ, वेयावच्चं तहेव सयाठ ॥ ज्ञाणं उस्सग्गोविथ, ॥  
 रउं तवो होइ ॥ २ ॥ इनका अर्थ.—१ व्रत करणा, २ थोडा १५  
 ३ नाना प्रकारके अनियह करणे, ४ रस जो दूय, दही, घृत, तेल, ५

१४ एक आप दूसरायोंको पढाना, दूसरा संशय उत्पन्न हुआ गुरुकूं पू  
तीसरा अपने सीखे हूयेकूं चारंवार उच्चारन करना, चौथा जो कुछ  
है, उसके तात्पर्यकूं एकाग्रचित्त करके चिंतना, इसका नाम अनुप्रेक्षा  
पांचमी धर्मकथा करनी, ए पांच प्रकारका स्वाध्याय तप है, तथा ए  
आर्त्तध्यान, दूसरा रौडध्यान, तीसरा धर्मध्यान, चौथा शुक्लध्यान, इन  
मेंसे आर्त्तध्यान अरु रौडध्यान, ए तो दोनो त्यागने, औ धर्मध्यान  
शुक्लध्यान, ए दोनो अंगीकार करने, ए ध्यानतप तथा ६ सर्व उपा  
ओंको त्याग देना सो व्युत्सर्ग तप है, ए ४ प्रकारका अन्यंतर तप है,  
सर्व मिल कर बारा प्रकारका तप है.

क्रोध, मान, माया, अरु लोभ, इन चारोंका निग्रह करना: यह पांच  
दश श्रमणधर्म, सत्तर प्रकारका संयम, दश प्रकारका वैश्यावृत्त, नव  
प्रकारकी ब्रह्मचर्यशुक्ति, तीन ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, बारा प्रकारका तप,  
५ क्रोधादिक चारका निग्रह, ए सर्व मिल कर सत्तर जेठ चारित्र्यके है,  
वास्ते इनकूं चरणसिचरी कहते है.

अथ करणसिचरीके जेद लिखते है ॥ गाथा ॥ पिंनविसोही समिई, जा  
पडिमाय इंदिय निरोहो ॥ पडिलेहण गुत्तीउं, अणिग्गह चैव करणं  
॥ १ ॥ इसका अर्थ:-पिंनविशुद्धि सो एक आहार, दूसरा उपाश्रय,  
तीसरा वस्त्र, चौथा पात्र, ए चार वस्तुकूं साधु वैतालीश दूषण करके र  
न लेवे, तिसका नाम पिंनविशुद्धि है. वैतालीश दूषणका जो पूरा स्व  
देखना होवे, तब तो पिंननिर्युक्ति ग्रंथ नइवाहुस्वामिकृत उसकी  
अयगिरिस्ररि कृत टीका सात हजार श्लोक प्रमाण है, सो देखनी.  
॥ पिंनविशुद्धि ग्रंथ जिनवल्लनस्ररि कृत औ उसकी जिनपतिस्ररि कृत  
नासें जान लेना, तथा प्रवचनसारोद्धार श्रीनेमिचंडस्ररि कृतस्रत्र,  
॥ उसकी सिद्धसेनस्ररि कृत टीकासें जान लेना, तथा श्रीहेमचंड स्ररि  
योग शास्त्रसें जान लेना.

अथ समिई सो पाच समिति, उसका स्वरूप लिखते है. प्रथम ईर्या  
समिति, सो चलनेका नाम ईर्या कहते है, अरु समिति कहिये सम्यक्  
गमके अनुसार जो प्रवृत्ति चेष्टा करणी, सो समिति कहिये. तस स्या  
जीवोंकूं अनयदान दाता जो मुनि है, तिस मुनिकूं अवश्य प्रयोज

पन, धूप, नख, दांत, केश, इनकी सुंदरताइके वास्ते समारणां, तिलरु, सुरमा, कज्जल, विनूपाके वास्ते नेत्रोंमें गेरना, तथा जाम्बे मांजने, साबु, तेल प्रमुख मसज कर गरम पाणीसें सुकोमलताइके धोनां, इत्यादिक शरीरकी विनूषा न करे, ए नवमी ब्रह्मचर्यगुप्ति प्रकारकी गुप्ति सो ब्रह्मव्रतकी रक्षा रूप नव वाड है.

अथ ज्ञानादि तीन कहेते हैं, उसमें यथार्थ वस्तुका जो बोध ज्ञान, सो ज्ञानावरणीय कर्मके ह्य तथा ह्योपशमके होनेसें जो दूया है बोध, तिसका हेतु जो षादशांग औ षादशोपांग, तथा उत्तराध्ययनादिक, सो सर्व ज्ञान कहियें. तथा दूसरा दर्शन सो १ जो अजीव, २ पुण्य, ४ पाप, ७ आश्रव, ६ संवर, ७ निर्जारा, ८ बंध, ए इन जीवादिक नव तत्त्वका जो स्वरूप, तिनमें अक्षा (रुचि) सेकी ए नव तत्त्व तथ्य हैं, मिथ्या नहीं, अैसी तत्त्वरुचि तिसका नाम न है, तथा तिसरा सर्व पापके व्यापारोंसें ज्ञान, अक्षान पूर्वक जो होनां, इसका नाम चारित्र हे, इस चारित्रकेजी दो जेद है, एक देशविरत्र, दूसरा सर्व विरतिचारित्र; उसमें देशविरति चारित्र तो जहां धृत्तात्म स्वरूप लिखेंगे, तहांसें जान लेनां, अरु जो सर्वविरति चारित्र है, तिस स्वरूप, इसी गुरुतत्त्वमें लिखने लग रहे हैं, ए ज्ञानादिक तीन जा:

अथ वारा प्रकारका तप लिखते है ॥ गाथा ॥ अणसण मूणो विचीतंखेवणरसञ्जाठ ॥ कायकलेतो संली, एया य वज्जो तवो होइ पायच्चित्तं विणउ, वेयावच्चं तदेव सद्याठ ॥ ज्जाणं उस्सग्गोविय, रउ तवो होइ ॥ १ ॥ इनका अर्थ.—१ व्रत करणां, २ थोडा १५ ३ नाना प्रकारके अन्नग्रह करणे, ४ रस जो दूध, दही, घृत, तेल, पकान्न, इनोका त्याग करनां, ५ कायक्लेश, वीरासन, दंभासन आदिक अनेक तरेका कायक्लेश करनां, ६ पांचो इडियोंकूं अपणे अपणे थोंसें रोकनां, ए ठ प्रकारका बाहिर तप है, १ जो कुछ अयोग्य काम अरु पीठेसें गुरुके आगे आपणा पाप जैसे करा था, वैसेही प्रगट पणे ना, आगेकूं फेर वो पाप न करना, अरु पूर्वे जो करा है, उसकी चिके वास्ते गुरु पासों यथा योग्य दंभ लेना, इसका नाम प्रायश्चित्त त तथा २ अपनेसें गुणाधिककी विनय करनी, तथा ३ वैद्यावृत्त चक्ति क

४ एक आप दूसरायोंको पढाना, दूसरा संशय उत्पन्न हुआ गुरुकूं पू तीसरा अपने सीखे दूधेकूं वारंवार उच्चारन करना, चौथा जो कुठ है, उसके तात्पर्यकूं एकाग्रचित्त करके चिंतना, इसका नाम अनुप्रेक्षा संचमी धर्मकथा करनी, ए पांच प्रकारका स्वाध्याय तप है, तथा ५ आर्त्तध्यान, दूसरा रौडध्यान, तीसरा धर्मध्यान, चौथा शुक्लध्यान, इन मेंसूं आर्त्तध्यान अरु रौडध्यान, ए तो दोनो त्यागने, औ धर्मध्यान शुक्लध्यान, ए दोनो अंगीकार करने, ए ध्यानतप तथा ६ सर्व उपा किों त्याग देनां सो व्युत्सर्ग तप है, ए ठ प्रकारका अच्यंतर तप है, सर्व मिल कर बारा प्रकारका तप है.

तोष, मान, माया, अरु लोभ, इन चारोंका निग्रह करना. यह पांच दश श्रमणधर्म, सत्तर प्रकारका संयम, दश प्रकारका वैश्यावृत्त, नव रकी ब्रह्मचर्यशुक्ति, तीन ज्ञान, दशौन, चारित्र, वारां प्रकारका तप, क्रोधादिक चारका निग्रह, ए सर्व मिल करसत्तर नेद चारित्रके है, वास्ते इनकूं घरणसित्तरी कहते है.

अथ करणसित्तरीके नेद लिखते है ॥ गाथा ॥ पिंमविसोही समिई, जा पडिमाय इंदिय निरोहो ॥ पडिलेहण गुत्तीउ, अणिग्गह चेव करणं १ ॥ इसका अर्थः—पिंमविशुद्धि सो एक आहार, दूसरा उपाश्रय, रा वस्त्र, चौथा पात्र, ए चार वस्तुकूं साधु. वैतालीश दूपण करके र लेवे, तिसका नाम पिंमविशुद्धि है. वैतालीश दूपणका जो पूरा स्व देखनां होवे, तव तो पिंमनिर्युक्ति ग्रंथ जइवाहुस्वामिकृत उसकी परिस्वरि कृत टीका सात हजार श्लोक प्रमाण है, सो देखनी. पिंमविशुद्धि ग्रंथ जिनवत्तनस्वरिकृत औ उसकी जिनपतिस्वरिकृत से जान लेनां, तथा प्रवचनसारोदार श्रीनेमिचइस्वरिकृतसूत्र, उसकी सिद्धसेनस्वरिकृतटीकासे जान लेनां, तथा श्रीहेमचइ स्वरि योग शास्त्रसें जान लेनां.

अथ समिई सो पाच समिति, उसका स्वरूप लिखते हैं. प्रथम ईयां ति, सो चलनेका नाम ईयां कहते है, अरु समिति कहिये तम्यक् तामके अनुसार जो प्रवृत्ति चेष्टा करणी, सो समिति कहियें तस स्या जीवोंकूं अज्ञपदान दाता जो मुनि है, तिस मुनिकूं अवश्य प्रयोज

नके वास्ते चलनां पडे, तव किस रीतिसें चलनां? प्रथम तो प्रसिद्ध चलनां, जो रस्ता सूर्यकी किरणोंसें प्रतप्त होवे, प्रायुक्त जीव रहित जिसमें स्त्री पुरुषका-संघट्ट न होवे, जीवोंकी रक्षा निमित्त अथवा शरीरकी रक्षा निमित्त पगके अंगूठेसें ले कर चार हाथ प्रमाण नू आगेसें देख कर चलनां, इसका नाम ईर्यासमिति है इस रीतिसें साधु-चले. तथा दूसरा कोइ काम करे, तिस काममें कदाचित् कोइ मरनी जावे, तोनी साधुकूं पाप नही लंगता, क्योंकि उसका हुत गुन है, यह प्रथम ईर्यासमिति. तथा पाप सहित जापा, तथा जापा, जैसें केतूं धूर्त है, कामी है, राहस है, चार्वाक प्रमुखके कहे न कहे, जो शब्द, जगत्में निंदनिक होवे, सो न बोले, परकूं सुखदाइ में थोडा बहुत प्रयोजनोंका साधनेवाला संदेह रहित ऐसा बचन दूसरी जापासमिति. तथा बैतालीश दूषण रहित आहारादिक ग्रहण, सो तीसरी एषणासमिति, तथा आसन, संस्तारक, पीठ, फलग, वस्त्र, दंभादिककों नेत्रोंसें देख कर उपयोग पूर्वक लेनां, अरु रखनां, करनां चौथी आदाननिक्षेप समिति, तथा पुरीष, प्रश्रवण, शूक, नाकका शरीरमल वस्त्र, अन्न, पानी, जो शरीरका अनुपकारी होवे, इन सबकूं रहित नूमिकामें स्थापन करनां, सो पांचमी परिस्थापना समिति, पांच समिति कही.

अथ वार जावना लिखते हैं. प्रथम अनित्यजावना, दूसरी जावना, तीसरी संस्तारजावना, चौथी एकत्वजावना, पांचमी अना, बछी अशुचित्वजावना, सातमी आश्रवजावना, आठमी नवमी निज्जैराजावना, दशमी लोकस्वजावजावना, अग्यारमी वल्व जावना, बारमी धर्मका कथन करने वाला, अर्हन् है. यह वारना जिस तरेसे जावने योग्य रात दिनमें है, तैसें अन्यास करनां, वारां जावनायोंका कचित् स्वरूप लिखते हैं,

१ अनित्यजावना. सो जिनका वज्रकी तरे सार अरु कठिन शरीर, वोनी अनित्य रूप राहसेने नरुण कर लीये, तो फेर केलेके तरे नि सार जो जीवोंका शरीर है, सो यह अनित्य रूप कैसें बचेंगे? तथा लोक, बिह्वीकी तरे आनंदित हो कर, विषय सुख

की तरें स्वाद लेते है, परंतु लाठीकी मारकूं नही देखते हैं, जावार्थः—  
 पयसुख भोग कर आनंद तो मानते है, परंतु जन्मांतरमे नरकपतन  
 प सकटसैं नही मरते है, तथा जीवोंका शरीर तो पाणीके बुल बुजेकी  
 है, अरु जीवोंका जो जीवित है, सो ध्वजाकी तरें चंचल है, तथा  
 वण्य, स्त्री, परिवार, आंखकी पापण, (जांफण) की तरें चंचल है, अ  
 यौवन जो है, सो हाथीके कानकी तरे चंचल है, तथा स्वामीपणा  
 है, सो स्वप्रश्रेणीकी तरें है, अरु लक्ष्मी जो है सो चपला (बीजली)  
 की तरें चपल है, इसी तरें सर्व पदार्थोंकूं अनित्य पणा विचारता प्यारा  
 त्रादिकनी मर जाये, तोनी अरणे मनमें शोच न करे, तथा जो मूर्ख  
 जीव सर्व जावकूं नित्य माने है, वो जीर्ण पत्रोंकी जोंपडीके भंग होनेसैं  
 त दिन रुदन करता है; तिस वास्ते तृष्णाका नाश करकें ममत्व रहित  
 बुद्धि वाला जीव, अनित्य जावना जावे ॥ इति प्रथम जावना ॥ १ ॥  
 २ दूसरी अशरण जावनाका स्वरूप कहते हैं. पिता, माता, पुत्र, चार्यो,  
 सुखके आगें बहुत आधि व्याधिके समूह रूप शृंखलामें बंधा दुये रुदन  
 रते दुयेकूं कर्मरूप योक्षोंमें यमके (कालके) मुखमें प्रक्षेप करता थकां व  
 दुःख है, जो लोक शरण रहित अनाथ है, वे क्या करेंगे? तथा  
 नाना प्रकारके शास्त्र विषयोंकूं जो जानते है, तथा नाना प्रकारके मंत्र  
 त्रोंकी क्रिया जो जानते है. तथा जो ज्योतिषविद्याकूं जानते है, तथा  
 नाना प्रकारकी औषधि, रसायन प्रमुख वैद्यक क्रियाओंमें कुशल  
 है, ए सर्व विद्यावानोंकी क्रिया कालके आगें कुठनी करनेकूं समर्थ नही  
 है, तथा नाना प्रकारके शस्त्रों वाले उद्भटजोक्षोंकी सेना करकें परिवे  
 प्तनी है, नाना प्रकारके मटजर हाथियोंकी बाढनी है. ऐसे इंड, वासु  
 देव, चक्रवर्ती सरीखे बलवान्नी कालके घरमें खेंचे दुये चले जाते है.  
 बडा दुःख है कि जो प्राणियोंकूं कोइनी त्राण नही. तथा जो मेरुका दंभ  
 प्ररु पृथ्वीका ठत्र करनेकूं समर्थ थे, अरु थोडाजी जिनकूं क्लेश नही था,  
 ऐसे अनतबली तीर्थकरनी लोकोकूं कालसैं वचानेकूं समर्थ नही, तो फेर  
 दूसरा कौनसा समर्थ है? स्त्री, मित्र, पुत्रादिकोंके स्नेहरूप नूतके दूर कर  
 ए वास्ते शुद्धमति जीव अशरण जावना जावे. ए दूसरी अशरण जावना.  
 ३ तीसरी संसार जावना कहते है. बुद्धिमान् तथा बुद्धि रहित, सुखी,

दुःखी, रूपवान् तथा कुरूपवान्, स्वामी तथा दास, प्यारा तथा वैरी, तथा प्रजा, देवता, मनुष्य, तिर्यग्, नारक, इत्यादिक अनेक प्रकारके मोके वशसे सांग धार कर, इस संसार रूप अखाडेमें यह जीव नरता है, तथा अनेक पाप बांध करके महारंज, मांस नरुण, नदिक कारणों करके, महा अंधकार जहा कुछ नही दीखता, ऐसी मिकामें जा करके पडता है, तिहां अंग छेदन, अग्निमें बलनादि दुःख जो जीवकूं होते हैं, उन दुःखोंकूं केवलीजी कथन नही कर यह प्रथम नरकगति कही. तथा ठल, जूवादिक कारणोंसे प्राणी गतिमें सिंह, बाघ, हाथी, मृग, बैल, बकरे प्रमुखके शरीर धारण कर अरु तिस तिर्यच गतिमे कुधा, तृपा, वध, बंधन, ताडन, रोग, हल में वहनां. इत्यादिक दुःख सदा जो जीव सहता है वो दुःख कौन नेकूं समर्थ है ? यह दूसरी तिर्यगगति कही.

तथा खाद्य, अखाद्य, विवेकशून्य, मनमें लज्जा नहीं, माता, बेटी, न करनेमें एक समान निःशुक्ता वल्लन है, तहा जो अनार्य मनुष्य, वोतो निरतर जीवघात, मांस नरुण, चोरी, परस्त्रीगमन प्रमुख करके बडा जारी पापकर्म महा दुःखोंका देने वाला उत्पन्न करते है, आर्यदेशमेंनी कृत्रिय, ब्राह्मण प्रमुख जो है, वेनी अज्ञान, दरिद्र, दौर्भाग्य, रोगादिक करके पीडत है. दूसरोंका काम करणां, मानजंग, पमान प्रमुख अनेक दुःख निरंतर नोग रहे है, तथा अश्रिवत् रक्त है जिनका औसीयों सइयों एक एक रोममें एकेक सइ किसी जुवान पके एक कालमे चोनेसे जैसा उसकूं दुःख होवे तिस दुःखसे आव दुःख जीव स्त्रीके गर्भमें जब रहता है तव पाता है, इस दुःखमें गुणां दुःख जन्म समय होते है, तथा बाल अवस्थामें मूत्र, पुरीष, लिमे लोटनां, अज्ञानी पणा, जगत्की निंदा, यौवनमें धन अर्जन करना, इष्ट वस्तुका वियोग, अनिष्ट वस्तुका संयोग, अरु वृद्ध अवस्थामे शरीरक कंपना, नेत्रोंका बलहीन हो जानां, श्वास, खासी प्रमुख करके महा दुःख होनां तोयो कौनसी दशा है कि जिसमें प्राणी सुख पावे ? कोइनी नही यह मनुष्यगति कही. तथा सम्यग् दर्शनादिकके पालनेसे जो जीव देवता होता है, सोनी शोक, विपाद, मत्सर, जय, थोडी क्रुधि करके ईर्ष्या, काम, मद,

विधा प्रमुख करके पीड़ित हो कर, आपणां आयु दीनमन हो कर पूर्ण करते है। यह देवगति कही। इस तरेसें मोहान्जिजापी पुरुष तीसरी संसार जावना जावे।  
 ४ चोथी एकत्व जावना कहते हैं। एकजाही जीव उत्पन्न होता है, अरु एकजाही मृत होता है, एकजाही कर्म करता है, अरु एकजाही तिनका फल भोगता है, तथा जो जीवने बहुत कष्ट करके धन उपाज्या है, सो ज्ञान, स्त्री, मित्र, पुत्र, जाइ प्रमुख खा जावेंगे अरु जो पाप कर्म उपाज्या करे, उसका फल तो करने वाला जीव एकजाही नरक, तिर्थच गतिमें जाकर भोगता है, देखो यह कैसा आश्चर्य है! तथा यह जो जीव इस देहके वास्ते सात दिन फिरता है, अरु दीनपणा अवलंबन करता है, धर्मसें चष्ट होता है, अपने हितकूं उगाता है, न्यायसें दूर होता है, सो देह इस आत्माके साथ एक पग तकनी परजवमें न चलेगी, तो फेर यह देह क्या करेगी? क्या साहाय्य देगी? अरु स्वजन जो है, सो अपने स्वार्थमें तत्पर हैं, तेरा वास्तवमे कोइनी नहीं। इस वास्ते हे बुद्धिमान्! तूं अपने हितके वास्ते धर्म करनेमे प्रयत्न कर. इस तरेसें चोथी एकत्व जावना जावे.

५ पांचमी अन्यत्वजावना कहते है, जीव इस देहकूं ठोड कर परलो ककूं जाता है, इस वास्ते इस शरीरसें जीव निन्न है, तो फिर नाना प्रकारका सुगंध लेपन करनां अर्थ है, इस वास्ते इस शरीरकूं कोइ दंभादिक करके मारे तो समता रस पीना चाहिये क्रोध न करना, जो पुरुष अन्यत्वजावना जावे, तिसकूं शरीर, धन, पुत्रादिकके वियोग होनेसेनी शोक नहीं होता है यह पांचमी अन्यत्व जावना कही.

६ छठी अशुचि जावना लिखते हैं. जैसें लूणकी खानमें जो पदार्थ पडता है वो सर्व लूण हो जाता है, तैसेही इस कायामें जो कुछ आहार पडता है सो सर्व मलरूप हो जाता है, ऐसी यह काया अशुचि है, तथा यह काया लोहि, अरु शुक्र इन दोनोके मिलनेसें गर्भ उत्पन्न होता है, जरा करके वेष्टित होता है, जो कुछ माता खाती है, उसीके रससें वो गर्भ, वृद्धिकूं प्राप्त होता है, अरु स्थिल धातुयो करी पूर्ण है, ऐसी देहकूं कौन बुद्धिमान् शुचि मानता है? तथा जो सुखाद, शुन गध वाले मोदक, दही, दूध, इक्षुरस, गालि, उदन, झाकू, पापड, अमृता, घेउर, आंव प्रमुख खाता है, सो तत्काल मलरूप हो जाता है, ऐसी अशुचि कायाकूं



महा मोहांध पुरुष, शुचि माने हैं. तथा पानीके सौ (१००) स्नान करके सुगंधि, पुष्प, कस्तूरि प्रमुख द्रव्यों करके बाहिरली कितनेक कालतांइ सुगंधजीव शुचि सुगंधित करते हैं, परंतु विष्टेका मध्य जागमें कैसें शुचि होवे ? तथा बडे हर्ष वृद्धिवाले द्रव्य करके त है, दिशा, तथा चंदन, कस्तूरी, कर्पूर, अग्ररु, कुंकुम प्रमुख वस्तुकरके साथ जब संबंध होता है, तब ए पूर्वोक्त सर्व वस्तु दुर्गंध रूप मात्रमें हो जाती है, फेर इस कायाकूं कौन बुद्धिमान् शुचि मानता जैसे शरीरकी अशुचिरूपता विचार करके बुद्धिमान् पुरुष, इस ममत्व न करे. यह ठही अशुचि जावना कही.

७ सातमी आश्रवजावना कहते है. मन, वचन, औ क शुचाशुचन कर्म जो जीव ग्रहण करते है, तिसका नाम आश्रव, देव कहते हैं. सर्व जीवों विषे मैत्र जावना, गुणाधिक जीवमें वना, अविनीत शिष्यादिकमें मध्यस्थ जावना, दुःखी जीवमें कावना, इन चारो जावनाओं करके जिस पुरुषका अंतःकरण निरंतर त होवे, वो पुण्यवान् जीव, वैतालीश प्रकारका पुण्य उपाज्जन करता तथा रौडध्यान, आर्त्तध्यान, पांच प्रकारका मिष्यात्व, शोल प्रकारकी य, पांच प्रकारका विषय, इनो करके जिनोका मन वासित है, वे जीव, शी प्रकारका अशुचन कर्म उपाज्जन करते है, तथा सर्वज्ञ अर्हत गुरु, सिद्धांत द्वादशांग, चार प्रकारका संघ, इन सर्वका जो कीर्त्तन करता है, अरु सत्य वचन हितकारी बोलता है, वे जीव, उपाज्जन करते हैं. तथा श्रीसंघ, गुरु सर्वज्ञ, धर्म, अरु वर्म्मी इन सबके अर्पणवाद बोले, जूठे मतका, वा कपोल कटिपत मतका जो उपवेश वो जीव अशुचन कर्म उपाज्जन करता है तथा जो पुरुष वीतराग, की पुष्पादिके करी पूजा करे तथा साधुकी नक्ति, विश्रामण प्रमुख करे, पापसें काया गुप्त करे, वो जीव, शुचन कर्म उपाज्जन करता है. तथा जीव, मांसनहण, सुरापान, जीवघात, चोरी, जूआ, परस्त्रीगमनादिक वो अशुचन कर्म उपाज्जन करता है. ए अनुक्रमसें मन, वचन, काया के शुचाशुचन आश्रव उपाज्जन करता है, इस प्रकारसे यह आश्रव जाव जो जीव जावे है, सो अर्थ परपराकूं त्याग देता है, अरु महानंदस्व

, दुःख दावानलकूं मेघसमान ऐसी शर्मावलि मोहकी देने हारी  
 िकार करता है इस तरेसें सातमी आश्रवनावना जावे.

आठमी संवरनावना कहते है, सो आश्रवोंका जो निरोध करनां, तिसकूं  
 र कहते है, सो संवर दो प्रकारका होता है, एक देशसंवर, दूसरा सर्व  
 र. उसमें सर्व करिके संवर तो अयोगी केवलीमें होता है, अरु जो दे  
 ि संवर है, सो एक दो प्रमुख आश्रवके निरोध करने वालेमें होता है.

11 वली संवर दो प्रकारका है, एक इव्यसंवर, दूसरा जावसंवर उस  
 जो कर्मपुञ्ज आश्रव करके जीव ग्रहण करता है, तिनका जो देशसें  
 सर्वसें वेदन करनां, सो इव्यसंवर अरु जो नव हेतु क्रियाका त्याग,  
 जावसंवर. मिथ्यात्व कपाय प्रमुख आश्रवोंको जो बुद्धिमान् उपाय  
 के निरोध करे, अरु आर्त्त, रौड् ध्यान जो बुद्धिमान् वज्जे, धर्मध्यान  
 ध्यान ध्यावे, क्रोधकूं क्रमा करके जीते, मानकूं मृडुनाव करके जीते,  
 याकूं सरलता करके जीते, लोचकूं संतोप करके जीते, इंद्रियोंके विषय  
 निष्टकूं राग द्वेषके त्यागनेसें जीते, इस प्रकारसें जो बुद्धिमान् संवरना  
 ि जावे, तो स्वर्ग मोहकुरूप लक्ष्मी अवश्य उसके वशीभूत हो जाती है.

नवमी निर्जरा नावना लिखते है. संसारकी हेतुभूत जो कर्मकी संत  
 है, तिसकी अतिशय करके जो हानी करे, तिसका नाम निर्जरा है.

निर्जरा दो प्रकारकी है. एक सकाम निर्जरा, दूसरी अकाम निर्जरा,  
 दोनोमेंसूं जो सकाम निर्जरा है, सो उपशांति चित्तवाले साधुकूं हो  
 है, अरु अकामनिर्जरा, श्रेय जीवोकूं होती है. श्रेय जीवोकूं जो अ  
 म निर्जरा होती है, सो कर्मका पाक स्वयमेव होता है, अरु उपायसें  
 कर्मका पाक होता है, जैसें आंवका फल स्वयमेवही वृद्धकी मालीमें  
 ि हूवाही पक जाता है, अरु कोइवादिक पलाल गन्तद्विप करनेसेंनी  
 ि हो जाता है, ऐसेही निर्जरानी दो प्रकारकी है. हमारे कर्मकी निर्ज  
 होवे ऐसे आशय वाले पुरुष जो तप प्रमुख करते है, उनोके सकाम  
 र्जरा होती है, अरु एकेंद्रिय जो जीव है, तिनकूं विशेष ज्ञान तो नही  
 तु शीतोष्ण, वर्षा, दहन, वेदन, जेदनादिक करके सदा जो वो कष्ट जो  
 सें कर्म निर्जरा होती है, उसका नाम अकाम निर्जरा है, ऐसे तप  
 मुख करके जो निर्जराकी वृद्धि करे, सो नवमी निर्जरा नावना जाननी

१० दशमी लोकस्वभाव भावना कहते हैं. यह पृथिवी, चंद्र, सूर्य नक्षत्र, तारे अरु लोकाकाश, नरक, स्वर्ग प्रमुख सर्वकूं मिलाके एक लोक होनेमें आता है, तिस संपूर्ण लोकका आकार जैनमतके सिद्धांतमें लिखा है. जैसें कोई पुरुष जामा पहिरके कमरमें दोनो हाथ जगा डा होवे, जैसा उसका आकार है, ऐसाही लोकका आकार है, करके पूर्ण है, उत्पत्ति, स्थिति, अरु व्यय, इन तीनों स्वरूपों करी अनादि अनंत है, किसीका रचा हुआ नहीं है, ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, ह्यलोक, इन तीन स्वरूपोंमें बडा हुआ है जो जीवपुजल, सब दर है, बाहिर नहीं. लोकसें बाहिर तो केवल एक आकाशही है, वो काशनी अनंत है, इसी आकाशका नाम जैन शास्त्रोंमें अलोक नाम के लिखा है, अधोलोकमें न्यारी न्यारी देव उपरि सात पृथिवी है, नरकवासी जीव रहते है, अरु किसी जगे नवनपति व्यंतरनी हैं, तिरछे लोकमें मनुष्य अरु तिर्यंच और व्यंतर रहते है, ऊर्ध्व कमें देवता रहते है, विशेष करके जो लोकस्वरूप देखनां होवे, तो कनाडी धात्रिशक्तिसें तथा लोकप्रकाश ग्रंथसें जान लेनां. इसतरों के स्वरूपका जो चिंतन करनां है, सो दशमी लोकस्वभावभावना है.

११ अग्नीधारमी बोधिद्वर्जनल भावना कहते है, पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वनस्पति, इनमें अणु करे हूये क्लिष्ट कर्मों करके जीव त्रमण करता है, धानक संसारमें अनंतानंत पुजलपरावर्तन करता हुआ यह जीव अकाम, ऊँरा करके, अरु पुण्य उपार्जन करके, वैश्विय, त्रींशिय, चार, पांच रूप त्रस पणा पावे है, फेर आर्यक्षेत्र, सुजाति, जला कुज, रोग रहित रीर, संपदा, बडा राज्यसुख, हलके कर्म, तत्त्वातत्वके विवेचन करने वा- बोधबीजके बोने वाली, कर्मद्वय करके मोक्ष सुखोंकी जननी, ऐसी सर्वज्ञ अर्हतकी देशना मिलनी बहुत दुर्लभ है, जे कर जीव एक सम्यक्त्वरूप बोधि पावता, तो इतने काल तांइ कदापि संसारमें न करता, जो अतीत कालमें सिद्ध हूये, जो वर्तमानमें सिद्ध होते अरु जो अनागत कालमें सिद्ध होवेगे, वे सर्व बोधिहीके माहात्म्य है. इस वास्ते नव्य जीवकूं बोधिकी प्राप्तिमें यत्न करनां चाहिये, क्योंकि

एक जीवोंने अनंत वार इव्य चारित्र पाया है, परंतु बोधिके बिना  
 निष्फल हुआ. यह अगीआरमी जावना कही.  
 २ बारमी धर्म कथाके कथन करनेवाला अर्हन् है यह जावना लिखते  
 जो पुरुष परहित करनेमें उद्यत है, अरु बीतराग है. वो किसी ज  
 मेंनी जूठ न बोलेगा. इस वास्ते उसके कहे दूये धर्ममें सत्यता है,  
 सा तो लोकालोककूं केवलज्ञान करके प्रकाश करनहार, अर्हंतही हो  
 का है, दूसरा नहीं. झांत्यादि दश प्रकारका धर्मकूं जिनेश्वर कहते दूये  
 न धर्म करके जीव, संसार समुद्धमें मूबता नहीं, जो अर्हंतकी वाणी  
 सो पूर्वापर अविरोध है, अरु तिन वचनोंमें हिसाका उपदेश नहीं.  
 उन जो कहते है, सो निर्ज्जरा वास्ते. दूसरेका उपदेश बिना वि  
 त्र तरेंसें कह जाते है, तथा कुतीर्थीयोके जो वचन हे सो सर्व सज  
 के वैरी है, क्यों के यज्ञादिकोंमें पशुवध रूप हिसा करके क  
 कित है, पूर्वापरविरोधी है, निरर्थक वचननी बहुत है, इस वास्ते जो  
 तीर्थी धर्म कहते हैं, वोनी धर्मानास है, धर्म नहीं. इस हेतुसे तिनका  
 वचन किस तरें प्रमाण हो सका है? अरु जो जो कुतीर्थीयोके शास्त्रोंमें  
 ही कहीं दया सत्यादिकोंका कथन है, सोनी कहनेही मात्र है, परंतु  
 स्वमे वोनी कुठ नहीं है, क्यों के यथार्थ इनका स्वरूप वे जानते नहीं  
 , अरु यथार्थ पालते नहीं हैं, प्रथम तो उन शास्त्रोंके जो उपदेशक  
 , वेही सर्व कामाग्निमें प्रज्वलित थे, यह बात सर्व सुद्ध जनकों वि  
 तात है, इस वास्ते अर्हंत जगवंतही सत्यार्थके उपदेशक हैं, तथा बडे  
 गदजर हाथीयोकी घटा संयुक्त जो राज्यका पावनां, औ सर्व जनकों आ  
 द देने वाली संपदाका पावना, तथा जो चंडमाकी तरें निर्मल गुणका  
 समूह पावनां, अरु जो ऊत्कृष्ट सौजाग्यका विस्तार पावनां, यह सर्व धर्म  
 हीका प्रनाव है, तथा समुद्ध जो पृथिवीकूं अपणी कल्लोला करी वहाता  
 नहीं है, तथा मेघ जो सर्व पृथिवीकूं रेल पेल नहीं करता, अरु चंडमा,  
 र्थ, जो उदय होते हैं, सर्व अंधकारका विध्वंस करते है, सो सर्व जय  
 त धर्महीका प्रनाव है. जिसका नाई नहीं, जिसका मित्र नहीं, जिस  
 गीका कोई वैद्य नहीं, जिसके पास धन नहीं, जिसका कोई नाथ नहीं,  
 जिसमें गुण नहीं, इन सर्वका नाई, मित्र, वैद्य, धन, नाथ, गुणोका निधान.

नोगुप्ति शास्त्रानुसारी, परलोकके साधनेवाली परिणति करणी, ए दूसरी मनोगुप्ति. संपूर्ण शुचाशुचन मनोवृत्तिका अयोगी गुणस्थान अवस्थामें स्वात्मारामरूपता, ए तीसरी मनो वचनगुप्ति दो प्रकारकी है. उसमें मुख, नेत्र, ब्रूविकार, अंगुली उंचा होना, खांती करणी, हुंकारा करणां, पडर फैकणा, इन धूर्तोंसे अपणा सूचन कराणा वर्जनां, ए प्रथम वचनगुप्ति. कथा चेष्टाद्वारा सर्व कुठ सूचन करा दीया, तव मौन रहना व्यर्थ है. दूसरेके प्रश्नका उत्तर देना, सो लोकसें अरु आगमसें अविरोध होवे, बस्त्रादिकसें मुखका यत्न करके बोलनां, ए दूसरी वचनगुप्ति, इन जेदों करके वचनका निरोध अरु सम्यक् ज्ञापण रूप वचनगुप्ति

कायागुप्ति दो प्रकारसे है. एक चेष्टाका निःपेध, दूसरी चेष्टाका नियम करणां. तहां देवता मनुष्यादि उपसर्गमें कुधा-रीसहोंके संजव होयां, जो कायोत्सर्ग करणादि करके कायाकू-रणा, तथा अयोगी अवस्थामें जो सर्वथा कायाकी चेष्टाका निरोध ए प्रथम कायागुप्ति. तथा गुरु प्रह्वन्न शरीर संस्तारक, नृम्यादि प्रमार्जनादि, जैसें शास्त्रमें है, तिसी तरें क्रियाकलाप पूर्वक धुंके करणी, शयनासन लेनां, रखनां, इन सर्वकृत्योंमें स्वहृद चेष्टाका ग देनां, मर्यादा सहित कायाकी चेष्टा करणी. ए दूसरी कायागुप्ति.

अथ अग्निग्रह प्रतिज्ञा लिखते है. सो अग्निग्रह इव्य, क्षेत्र, काज जाव करि चार प्रकारके है, इसका विस्तार प्रवचनसाराद्वार वृत्तिमें है. करणसित्तरीकी गणती कहते है. यद्यपि आहारादिकके वैतालीत दूषण तथापि पित्त, शय्या, वस्त्र, पात्र, ए चारही वस्तु सदोष नहीं करणी. इत वास्ते संख्यामें ए चारही दूषण लिये है. तथा पांच सन्नि-वारा जावना, वारा प्रतिमा, पांच इन्द्रियनिरोध, पञ्चीश प्रतिजोगवना, ती-गुप्ति, चार अग्निग्रह, ए सर्व एकठे करेसे सित्तरे, करण सित्तरीके जेद है.

प्रश्न.—चरण सित्तरी औं करण सित्तरी, ए दोनोमें क्या विशेष है?

उत्तर:—जो नित्य करनां सो चरण, अरु जो प्रयोजन हुआ तो कर-नां, औं प्रयोजन नहीं होवे तदा न करणां, सो करण यह इनका जे-है. ए चरण सित्तरी औं करण सित्तरीके जेद समाप्ति हुये है.

इत्यादि जैनमतके गुरु तत्त्वके स्वरूप लिखनेमें लखों श्लोक लिखे गये. तोनी संपूर्ण जैनमतके गुरुका स्वरूप नहीं जाना जायगा, इस वा थोड़ाहीसा स्वरूप लिखा है. जेकर विशेष जाननेकी इच्छा होवे, तदा उचनिर्युक्ति, श्रीआचारांग, दशवैकालिक, बृहत्कल्पजाप्य वृत्ति, पंचकल्पगी, जितकल्पवृत्ति, महाकल्पसूत्र, कल्पसूत्र, निशीथजाप्यचूर्णी, महाशीयसूत्र, इत्यादि पदविनाग समाचारीके शास्त्र देख लेने

प्रश्न:—जैसा जैनमतके शास्त्रोंमें गुरुका स्वरूप लिखा है, वैसी वृत्तिवा कोइनी जैनका साधु देखनेमें नही आता है, तो फेर जैनमतके साधु कों इस कालमें गुरु क्युं कर मानना चाहिये ?

उत्तर:—तुमने किसी गीतार्थकी संगत नही करी होगी, क्योंकि जे कर जैनमतके चरण करणानुयोगके शास्त्र पढे होते, अथवा किसि गीतार्थके मुखारविदसें वचन रूप अमृत पान करा होता, तो पूर्वोक्त संशय व रोगकी कसमसी कदापि न उत्पन्न होती? क्योंकि जैनमतमे ठ प्रकाश निर्ग्रथ कहे है. इस कालमें जो जैनके साधु हैं, वे सर्व पूर्वोक्त ठ प्रारमेंसें दो प्रकारके है, क्योंकि श्रीनगवती सूत्रके पञ्चीशमें शतकके ठछे श्लोमे लिखा है, कि पंचम कालमे दो तरेंके निर्ग्रथ होंगे, उनोंसें तीर्थ जेगा. कषाय कुशील निर्ग्रथ तो किसिमे परिणामापेक्षा होगा, मुख्य दोही रहेंगे. अरु जो जैन शास्त्रोंमे गुरुकी वृत्ति लिखी है, सो प्रायः उत्सर्ग मार्गकी अपेक्षा है, और इस कालमें तो प्रायः अपवाद मार्गकी वृत्ति है, सो उत्सर्गवृत्तिवाले मुनि इस कालमें क्यौंकर हो जावे? कदात् होइ नही सके है. क्यौंकि न तो वो संहननवज्जरूपननाराच है, मनोबल वैसा है, न जीवोंके वैसी श्रद्धा है, न वैसा देश काल है, धैर्य है, तो फेर इस कालके जीव वैसी उत्सर्ग वृत्ति कैसें कर सके?

प्रश्न—जे कर वैसी वृत्ति इस कालमें नहीं तो उनकूं साधुनी काहेकूं पहना चाहिये ?

उत्तर:—यह तुमारा कहनां बहुत वे समझका है, क्यौं के व्यवहारसूत्र ॥प्यमे श्रैसें लिखा है ॥ गाथा ॥ पोकरिणी आगारे, आणयण ते गायीयते ॥ आयरिय उएए, आहरण हुंति नायवा ॥ १ ॥ सब परिष्ठाकाय, अहिगमो पिम उत्तरियाए ॥ रुके वसहे जूहे, जोहे सोहीय पु

स्करिणी ॥१॥ “दार गाहा दो” इन दोनो दार गाथाका व्याख्यान  
कारने पंदरा नाप्यगाथा करके कीया है, जे कर नाप्यगाथा  
इहा होवे, तो व्यवहारनाप्य देख लेनी, इहां तो उन पंदरा  
अर्थे नापामें लिख देता हूं, अर्थे:—जैसीयो पूर्वकालमे सुगंधित  
लियो पुस्करिणीयो बावडीयो थी, वैसे फूलो वालीयो अब है नही,  
पुस्करिणीयो बावडीयो तो है, लोक इन सामान्य बावडीयोसे  
कार्य करते है ॥ १ ॥ तथा संपूर्ण आचारप्रकल्प, नवमे पूर्वमें था,  
नवमे पूर्वसे उद्धार करके पूज्यपाद वैशाख गणिनें निशीथ रचा, तो  
उस निशीथकू आचारप्रकल्प न कहना चाहिये ? ॥ २ ॥ पूर्वकालमे  
द्व्याटिनी, अथवापिनी आदिक विद्याके धारक चोर थे, औ इस  
वो विद्या तो नही है, तो फिर क्या चोरी करने वालोंकू चोर न  
हिये ? ॥३॥ पूर्वकालमें तो चौदह पूर्वके पाठीकू गीतार्थे कहते थे,  
इस कालमें जघन्य आचार प्रकल्प, निशीथ औ मध्यम आचार  
वृहत्कल्पके पढे हूयेकू इस कालमे क्या गीतार्थे न कहना चाहिये ? ॥  
पूर्वकालमे श्रीआचारांगका शस्त्रप्रज्ञा अध्ययनके पढनेसे, उद्दोपस्थ  
चारित्रमे स्थापन करते थे, तो क्या अब दशवैकालिकके उ  
ध्ययनके पढनेसे न स्थापन करना चाहिये ? ॥ ५ ॥ दूसरे  
चमे उद्देशमे जो आमगंधी सूत्र है, उस सूत्रानुसार पूर्वे मुनि आहार  
हण करते थे, तो क्या अब पिंमेपणा अध्ययन अनुसारें न करना  
ये ? ॥ ६ ॥ पूर्वे आचारांगके पीठे उत्तराध्ययन पढते थे, तो क्या अब  
श्वैकालिकके पीठे न पढना चाहिये ? ॥ ७ ॥ पूर्वे मत्तंगादिक दश  
रके वृद्ध थे, तो क्या अब अंवादिक वृद्ध न कहने चाहिये ? ॥ ८  
पूर्वे बहुत गोवोंके समूहवाले नव गोपकू ग्वाल कहते थे, तो क्या  
थोडी गोवों वालेकू ग्वाल न कहना चाहिये ? ॥ ९ ॥ पूर्वे सहस्र  
योधे थे, तो अब क्या किसीकू योद्धा न कहना चाहिये ? ॥ १० ॥ पूर्वे  
ठ मास्ती तपका प्रायश्चित्त था, तो क्या उसके बदले निवी प्रमुख  
श्चित्त न लेना चाहिये ? ॥ ११ ॥ इसी तरे जो पूर्वकाल मुनियोकी  
नही, तो क्या आचार्य वा साधु न कहना चाहिये ? किंतु जरूरही  
मानना चाहिये. तथा जीवानुशासन सूत्रकी वृत्तिमेंनी लिखा है कि पां

कालमें साधु ऐसाही होवे, तोनी संयमी कहना चाहिये, तथा नि  
 ज्यमेही लिखा है ॥ ज्ञाप्य गाथा ॥ जा संजमया जीवे, सु ताव मूले गु  
 ण्तर गुणाय ॥ उत्तरियहेय संजम, नियंतवउ सा पडिसेवी ॥ १ ॥ इस  
 व्याकी चूर्णीकी जापा लिखते है, उकार्योंके जीवों विषे जब तांइ दयाके  
 रेणाम है, तव तांइ बकुश निर्ग्रथ औ प्रतिसेवना निर्ग्रथ रहेंगे,  
 वास्ते प्रवचन शून्य औ चारित्र रहित पंचमकाल कदापि न होवे  
 , तथा मूलोत्तरगुणोंमें दूषण लगनेसे तत्काल चारित्र नष्टनी नहीं  
 जाता, मूलगुणजंगमे दो दृष्टांत है, उत्तरगुण जंगमें मंगपका दृष्टांत  
 , निश्चयनयमें एक व्रत जंग दूया सर्व व्रत जंग हो जाता है, परंतु  
 आवहारनयके मतसे जो व्रत जंग होवे, सोइ जंग होवे. दूसरे नहीं. इस  
 वास्ते बहुत अतिचारके लगनेसे संयम नहीं जाता, परंतु जो कुशील सेवे,  
 धन रखे, औ कच्चा सचित्त पानी पीवे, प्रवचन अनपेक्ष, वो साधु  
 ही. जहां तांइ ठेठ प्रायश्चित्त लगे, तहां तांइ संयम सर्वथा नहीं जाता.  
 या जो इस कालमें साधु न माने, सो मिथ्यादृष्टि है, क्यों कि स्थानां  
 सूत्रमें लिखा है, जो अतिचार बहुत लगते देखके औ आलोचना प्रा  
 यश्चित्त यथार्थ कोइ लेता देता नहीं है, इस वास्ते साधु कोइ नहीं जो ऐसे  
 हे के वो चारित्र नेदिनी विकथाका करनेवाला है, तथा श्रीजगवती सू  
 के पञ्चीशमे शतकके ठेठ उद्देशकी संग्रहणीकार श्रीमदचयदेवसूरि, इन  
 दोनो निर्ग्रथोका जो स्वरूप है सो लिखते है, सो इहां जापामें प्रगट  
 लेखा जाता है ॥ गाथा ॥ बउसं सवलं कवर, मेगछंतमिह जस्स चारि  
 ॥ अइयार पंकजावा, सो बउसो होइ निगंथो ॥ १ ॥ व्याख्या—बकु  
 श, शवल, कर्बुर, ए तीनो एकार्थ है एकही वस्तुकों कहते है, ऐसा है  
 चारित्र जिसका, अतिचार रूपपंक होनेसे सो बकुशनामा निर्ग्रथ है,  
 इस चारत वर्षमे इसकालमे बकुश औ कुशील ए दोनो निर्ग्रथ है, जेप  
 तीनो तो व्यवहेद हो गये हैं ॥ तथा चोक्तं परम मुनिजिः ॥ “बकुश कुशी  
 ला दो पुण, जातिहं तावहो हंति इति ॥” इसका अर्थ बकुश कुशील ए  
 दोनो निर्ग्रथ जहां लग तीर्थ रहेगा तहां तक रहेंगे,

थव जो बकुश निर्ग्रथ है, तिसके दो जेद है, सो कहते हैं. तहां जो  
 वख पात्रादि उपकरणकी विनूपा करे सो उपकरण बकुश, ए प्रथम जेद



औ जो हाथ, पग, नख, मुखादिक देहके अचयवोंकी विनूषा शरीरबकुश, ए दूसरा जेद जाननां. ए दोनों जेदोंके पांच जेद हैं ॥ उवगरणशरीरैसु, सो इहा इविहोवि होइ पंचविहो ॥ अजोग जोग, अखंबुड खंबुडे सुहुमे ॥ १ ॥ अर्थः—इसमें दो पदोंका अर्थ र लिखा है, अगले दो पदोंका अर्थ लिखते हैं. साधुकूं यह करने नहीं, जैसे जानतानी है, तोनी उस कामकों जो करे, सो प्रथम ग बकुश, और जो अजाण पणोंसें करे सो दूसरा अनाजोग बकुश गुण, उत्तर गुणोंमें जो त्रिप कर ठाना दोष लगावे, सो तीसरा बकुश, जो मूलगुण उत्तरगुणोंमें प्रगट दूषण लगावे, सो चौथा बकुश. नेत्र, नासिका, मुखादिककी जो मल दूर करे, सो पांचवा बकुश जाननां.

अथ जो उपकरण बकुश है, तिसका स्वरूप लिखते हैं ॥ गाथा ॥ जो गरणे बउसो, सो धुवइअ पावसे विवडइ ॥ इडइय लएहयाइ, क नूसाइ जुंजइय ॥ १ ॥ व्याख्याः—जो उपकरण बकुश है, सो प्राण (वस) ऋतु विनाजी जल द्वारसें वख धोता है, पावस ऋतुमें तो इवासी साधुवोकूं धाड़ा है; जो एक वार वर्षासें पहिले धापणें सर्व उपकरण जल द्वारसें धो लेवे, नही तो वर्षाऋतुमें मलके ससर्गसें दिक जीवोंकी उत्पत्ति हो जावेगी, और यह जो बकुशनिर्णय है, सो वस ऋतु विना अन्य ऋतुवोंमेंनी जल द्वारसे वखादिक धो लेता है, बकुश निर्णय, सुंदर, सुकुमाल, वखनी वांठता है, और उपकरण शोनाके वास्तेनी कठुक पहिरता है ॥ गाथा ॥ तह पत्त दंभयाइ, मठं तिणेह कयतेय ॥ धारेइ विनूसाए, बहुं च वठेइ उवगरणं ॥ १ ॥ व्याख्या.—तथा पात्र, दंभ प्रमुख घोटसे घोटके सुकुमार करे, तथा घील प्रमुख करी चोपडके तंजवंत चमकदार करके रखे, अरु विनूपाके स्ते बहुत उपकरण रखने चाहे, एतावता रके

अथ शरीर बकुशका स्वरूप लिखते हैं ॥ गाथा ॥ देह वउसो अचय करचरण नहाइयं विनूसेइ ॥ इविहोवि इमो इच्छि, इडइ परिवार पनिईयं ॥ १ ॥ व्याख्या—देहबकुश जो है, सो विना कारण हाथ, पग, नखादिककी विनूपा करे, जलादिसें धोवे, जैसे उपकरण और शरीर ए दोनों प्रकारका

निर्ग्रथ परिवार प्रमुखकी रुद्धि वांछता है ॥ गाथा ॥ पंदिच्च तवाऽ क  
जसं च ऽहेऽ तंमि तुस्तऽय ॥ सुहसीजो नयवाढं. जयऽ अहोरत्त किरि  
दु ॥ १ ॥ व्याख्या.—पंदिपणो करी तथा तपादि करकें यशकी ऽह्वा  
तिस यशके हुवे थके बहुत खुशी माने, औ सुखशीलिया होवे, औ  
रात्रिकी क्रिया समाचारीमें बहुत उद्यमीनी नहीं होवे ॥ गाथा ॥ परि  
यो य असंजम, अविचितो होऽ किंचि एयस्त ॥ घंसिय पाव तिह्वाऽ,  
लणि कित्तरिय केसो ॥ १ ॥ व्याख्याः—इसका जो परिवार होवे, सो अ  
मी कहते असंयम वाला होवे, वस्त्र पात्रादिकके मोहसैं वस्त्र पात्रादि  
दूर न जावे. पग, जोजावे आदिकसे औ तैलादिक चोपडके सुकुमा  
ररे, औ शिर, दाढी, मूठके बाल, कतरणीसैं कापे, ( कतरे ) एतावता  
चकी जगें उस तरे, वा कतरणीसैं बाल दूर करे, परंतु लोच न करे  
गाथा ॥ तद् देस सबहेयारि, देहिं सबजेही संजुउ वउसो ॥ मोहकयत्त  
रु. छिउय सुत्तंमि नणियं च ॥ १ ॥ व्याख्या.—तथा देशभेद सर्वभेद योग्य  
गें करी जिसका चारित्र कर्बुर है, परंतु मनमें उसके मोहक्य करनेकी ऽ  
है, एतावता मनमें संयम पालनेमें उत्साह है, परंतु पूर्ण संयम पाल  
ने सक्ता, इन पूर्वोक्त कृत्यों करी संयुक्त होवे, उसकूं बकुशनिर्ग्रथ कहिये.  
सूत्रमेंनी कहा है, सो यह आगें लिखते है ॥ गाथा ॥ उवगरण देह चु  
रि, रिद्धि रसगारवासिया निच्च ॥ बहु सबल ठेय छुत्ता, निग्गंथा वउसा न  
या ॥ १ ॥ आनोगो जाणंतो, करेऽ दोसं अयाण मण नोगे ॥ मूलुत्तरेहि  
दुम, विवरिय असंबुमो होऽ ॥ २ ॥ अच्चि मुह मळमाणो, होऽ अहा सु  
उत्तं तहा वउसो ॥ सीजं चरणं जं जस्त, कुच्चियं सो इह कुसीजो ॥ ३ ॥  
डेसेवणा कसाए, इहा कुसीजो इहावि पंचविहो ॥ नाणे दंसण चरणे,  
ये अह सुहुमए चेव ॥ ४ ॥ इह नाणाऽ कुसीजो, उवजीवं होऽ नाण  
नेईए ॥ अह सुहुमो पुण तुस्तई, एस तवसत्ति संसए ॥ ५ ॥ इन पाचो  
थाओंकी व्याख्या.—उपकरण देह छु-रु रके, रुद्धि, रश, साता, ए तीनो  
रवमें नित्य आश्रित होवे, उपकरणोंसैं अविचित रहे, परिवार जिसका  
इ योग्य शबल चारित्र सयुक्त सो निर्ग्रथ बकुश कहते है ॥ १ ॥ साधुओंके  
ह करने योग्य नहीं, जैसे जानतानी है, तोनी उस कामकूं करता है, सो  
यम आनोग बकुश कहिये. अरु अनजानपणसे अरुत करे, तिसकूं अ

नानोग वक्रुश कहियें, ए दूसरा नेद. मूलोत्तर गुणों करी संयुक्त है, जैसे जानते हैं, परंतु ठाना ( गुप्त ) दोष लगावे है, तिसकूं संवृत कहियें. ए तीसरा नेद. अरु जो प्रगट मूलोत्तर गुणमें दोष लगावे अखंड वक्रुश कहियें. ए चौथा नेद ॥ ३ ॥ तथा जो आंख मांजे, मलादि दूर करे, सो यथा सूक्ष्मवक्रुश कहियें. ए पांचमा नेद.

अथ कुशील निर्यथका स्वरूप लिखते है, शील कहियें चारित्र तो त्र जिसका कुत्सित है, सो कुशील निर्यथ, इसके दो नेद है ॥३॥ एक सेवना कुशील, दूसरा कपायों करी कुशील, सो संज्वलनकी कपायों जो कुशील सो कपाय कुशील, ए दोनोही नेद पांच प्रकारसें हैं, सो हैं, जो १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र, ४ तप, ५ यथा सूक्ष्मतः ॥४॥ ज्ञानादि कुशील तो जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अरु तप, यह चारो विकाके वास्ते करे, सो इन चारोंका प्रतिसेवना कुशील तथा एहत्तु इत्यादि प्रशंसा सुणके बहुत खुशी होवे, सो पांचमा कुशील जाननां. तथा जो १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ तपांसि तप, संय कपायके उदय करके इनका व्यापार करे, सो ज्ञान, दर्शन, चारित्र कुशील जाननां जो कपाय कुशील है. सो कपायके वश हो कर के देता है, मन करके जो क्रोधादिकोंको सेवे, सो अथवा कपायों करके जो ज्ञानादिकोंको विराधे, सो ज्ञानादिक जाननां. कोइक आचार्य, तप कुशीलके स्थानमें लिंगकुशील कहते यह दो प्रकारके निर्यथ पांचमे आरेके पर्यंत तक रहेंगे. जो कोइ रेके साधुकूं साधु वा गुरु न माने, वो जीव, मिथ्यादृष्टि बहुल संत जिनमतका उछापक है, जैसे मिथ्यादृष्टिकी संगतनी करनी योग्य नहीं. इति श्री तपगङ्गीये मुनिश्री बुद्धिविजयशिष्य मुनिआनंदविजय आत्मारा विरचिते, जैनतत्त्वादर्शे गुरुतत्त्वस्वरूपनिर्णयनामा तृतीयः परिच्छेदः संपूर्णः ॥

॥ इति तृतीय परिच्छेदः संपूर्णः ॥ ३ ॥

॥ अथ चतुर्थपरिच्छेद प्रारंभः ॥

॥ यह चतुर्थ परिच्छेदमें कुगुरु तत्त्वका स्वरूप लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ सर्वा  
जलापिणः सर्वे, जोजिनः सपरिग्रहाः ॥ अब्रह्मचारिणो मिथ्या, पदेशागुर  
वोमताः ॥ १ ॥ अर्थः—(सर्वाजलापिणः) सर्वे जो, स्त्री, धन, धान्य,  
सुरण्य, (सोना) रूपादि सर्वे धातु तथा क्षेत्र, वास्तु क्षेत्र (खेत) हाट, हवे  
पी, चतुःपदादिक अनेक प्रकारके पशु, इन सर्वकी अनिलापा करनेका  
जो ज्ञ है जिसका, सो सर्वाजलापी, तथा (सर्वजो जिनः) सो सर्व मद्य,  
सांसादिक बावीस अन्नद्वय, तथा बत्तीस अन्नतकाय, तथा अपर जो अ  
चित्त आहारादिक है, इन सर्वका जोजन करनेका शीज है जिसका सो  
सर्वजो जिन. (सपरिग्रहाः) जो पुत्र, कलत्र, बेटा, बीटी प्रमुख करी स  
इत बर्ते, सो सपरिग्रह. इसी वास्ते अब्रह्मचारी है. जो अब्रह्मचारी होता  
है, तिसमें महा दोष होते है, इस वास्ते अब्रह्मचारी ऐसा न्यारा उप  
देश कल्या है, अथ अगुरुपणोंका असाधारण कारण कहिये है, (मि  
थ्योपदेशाः) मिथ्या (वितथ) आत्मके उपदेश विना धर्मका उपदेश है  
जनका सो अगुरु है, जे कर इहां कोइ ऐसी तर्क करे जो धर्मोपदेशका  
जाता है, सो गुरु है, तो फेर निःपरिग्रहादि गुणोंका काहेकूं अन्वेषण कर  
गां ? इस शंकाके दूर करणे वास्ते दूसरा श्लोक फेर कहते हैं.

॥ श्लोक ॥ परिग्रहारंजमग्रा, स्तारथेयुः कथं परान् ॥ स्वयं दरिद्रो न पर,  
श्रीश्वरीर्गुर्गुमीश्वरः ॥ १ ॥ अर्थः—परिग्रहः रूपादि आरंज जीवोंकी हिसा  
सर्वाजलापीपणा, औ सर्व जोजिपणां इन दोनो वस्तुओंमें जो मग्न है,  
औ नवसमुद्रमें मूवा दूआ है, वो किसतरसें दूसरे जीवोंकूं संसार सागरसें  
तार सका है ? इस बातमें दृष्टांत कहते है, कि जो पुरुष आपही दरिद्र है,  
सो दूसरोंको क्युं कर धनाढ्य कर सका है ? प्रथम श्लोकके चौथे पदमें “मि  
थ्योपदेशागुरवोमताः” इस पदका विस्तार लिखते हैं, कुगुरु जो है, उनका  
उपदेश इस प्रकारसें मिथ्या है इस मिथ्या उपदेशके स्वरूपहीमें प्रथम  
तीन सौ त्रेशठ मतका स्वरूप लिखते है, उनमें एक सौ अस्ती मत तो क्रिया  
वादीके है, औ चौरासी मत, अक्रियावादीके हैं, औ सदसठ मत, अज्ञानवा  
दीके है, अरु बत्तीस मत, विनयवादीके है, ए पूर्वोक्त सर्व मत एकत्र कर  
नेसे तीन सौ त्रेशठ होते है.

तीनमें जो क्रियावादी हैं सो ऐसे कहते हैं कि कर्त्तके विना एवंधादिलक्षण क्रिया नहीं होती है, तिस वास्ते क्रिया जो है, सो त्माके साथ समवाय संबधवाली है, ऐसे कहनेका शील स्वभाव है नका सो क्रियावादी हैं. यह जो क्रियावादी हैं, सो आत्मादिक नव योंकों एकांत अस्तित्वरूप पणे माने है, तिस क्रियावादीके एक ही स्त्री मत इस उपाय करके जान लेने, १ जीव, २ अजीव, ३ अज ४ बंध, ५ संवर, ६ निज्जरा, ७ पुण्य, ८ अपुण्य, ९ मोक्ष, यह नव अनुक्रम करके पट्टी पत्रादिकमें लिखने. फेर जीव पदार्थके हेतु स्वतः परत. यह दो चेद स्थापन करने. फेर इन स्वतः परतःके हेतु न्यारे न्यारे अरु अनित्य यह दो चेद स्थापन करने फेर नित्य अनित्यके इन दो हेतु न्यारे न्यारे १ काल, २ ईश्वर, ३ आत्मा, ४ नियति, ५ स्वभाव, यह स्थापन करने, पीठेसे विकल्प कर लेनें, सो आगे लिखते हैं. यंत्रस्थापना

## जीव.

स्वतः		परतः	
नित्य.	अनित्य.	नित्य.	अनित्य
१ काल.	१ काल.	१ काल.	१ काल
२ ईश्वर.	२ ईश्वर.	२ ईश्वर.	२ ईश्वर.
३ आत्मा	३ आत्मा	३ आत्मा.	३ आत्मा.
४ नियति.	४ नियति.	४ नियति.	४ नियति.
५ स्वभाव.	५ स्वभाव.	५ स्वभाव.	५ स्वभाव.

विकल्प करणेकी रीति कहते हैं. अस्ति जीवः स्वतोनित्य त्येकोविकल्प ॥ १ ॥ इस विकल्पका यह अर्थ है कि यह आत्मा नि अपणे रूप करके कालसे उत्पन्न हुआ है, कालवादीके मतमें यह विकल्प है, कालवादी उसकें कहते हैं कि जो कालहीसे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति अरु प्रलय मानते हैं, तैसेही कालवादी कहते हैं कि चपक, अशोक, सहकार, नीव, जंबू, कदवादि जो वनस्पति है, सो कालके विना फूलोंकी लगना, फलका बंधादिक नहीं हो सका है, तथा हिमकण सयुक्त जीव का पटणां, तथा नक्षत्र गनेका धारण, वर्षाका होणां, यह काल विना

होते हैं, तथा पट् ऋतुवर्षोंका विनाग, तथा बाल, कुमार, यौवन, औ तादिक अवस्था विशेष काल विना नहीं हो सकती हैं, जो जो प्रति त काल विनागादिक हैं, तिन सबका कालही नियंता है, जे कर का ि नियंता न मानीये, तो किसी वस्तुकीजी व्यवस्था नहीं होवेगी, क्यों ञसे कोइ पुरुष, मूंग रांधता है, सो जी काल विना नहीं रांधे जाते नही तो हामी इंधनादि सामग्रीके संयोगसे प्रथम समयेहीमें मूंग रं ाते ? तिस वास्ते जो करता है, सो कालही करता है, तथाचोक्तं ॥ ालव्यतिरेकेण, गर्नबाल शुचादिकं ॥ यत्किंचिज्जायते लोके, तदसौ का किल ॥ १ ॥ किंचित्कालाद्दते नैव, मुज्जपंक्तिरपीदृश्यते ॥ स्याद्यादि धानेऽपि, ततःकालादसौ मत ॥ २ ॥ कालजावे च गर्नादि, सर्वं स्याद् स्थया ॥ परेष्टहेतुसद्भाव, मात्रादेव तद्भववात् ॥ ३ ॥ इन श्लोकोंका िर्थ उपर लिख आये हैं तथा ॥ कालः पचति जूतानि, कालः संहर जा. ॥ कालः सुतेषु जागर्ति, कालोहि दुरतिक्रमः ॥ ४ ॥ इहां परे तुके सद्भाव मात्रादिकसे दूसरायोंने जो मान्या है, कि स्त्री पुरुषके सं मात्र हेतुसे गर्नकी उत्पत्ति, सो एक वर्षके स्त्री पुरुषके संयोगसे क्यों हो जाते है ? इत वास्ते कालही गर्नकी उत्पत्तिका हेतु है, तथा जब र्गर्न होनेमें ऋतुकाल है तिसके विना स्त्री पुरुषके संयोगसे क्यों न गर्न होता है ? तथा कालही पकाता है, औ कालही पृथिवी आदिक िकों परिणामांतरकों पढुंवाता है, तथा “कालः संहरते प्रजाः” कालही पर्यायसे पर्यायांतरमें लोकोंको स्थापन करता है तथा “कालः सुतेषु जा ” कालही सुते दूये जनोंकी रक्षा करता है. तिस वास्ते प्रगट है कि काल तेक्रम है, कालकों दूर करणेमें कोइनी समर्थ नहीं हे, यह कालवादी विकल्प है ॥ १ ॥

इसी तरे दूसरा विकल्पनी कह देतां परंतु कालकी जगे ईश्वर कह ि “यथा अस्ति जीव स्वतो नित्यः ईश्वरतः” जीव, अपणे स्वरूप करके प है परंतु ईश्वर उत्पन्न करता है, क्योंकि ईश्वरवादी सर्व जगत् रहीका करा दूया मानते है, ईश्वर उसकूं कहते है, कि जिसके १ न, २ वैराग्य, ३ धर्म, ४ ऐश्वर्य, ५ चारो स्वत सिद्ध होवे, अरु िकों स्वर्ग, मोक्ष, नरकादिकके जानेमें जो प्रेरक होवे ॥ तद्भक्तं ॥

ज्ञानमप्रतिघं यस्य, वैराग्यं च जगत्पतेः ॥ ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च, ११  
तुष्टयम् ॥ १ ॥ अज्ञोजंतुरनीशोय, मात्मनः सुखदुःखयोः ॥ ईश्वर  
गच्छे, त्स्वर्गं वा श्वन्नमेव च ॥ इत्यादि ॥ २ ॥

तीसरा विकल्प आत्म वादीयोका है, आत्मवादी उनको कहते  
जो " पुरुष एवेदं सर्वं मित्यादि " (जो कुछ दीखता) है, सो सर्व  
हैं. जैसे मानते है ॥ ३ ॥

चौथा विकल्प नियतवादीयोका है, वो नियतवादी जैसे कहते  
पदार्थोंमें एक जैसे सामर्थ्य है कि जिसकी सामर्थ्यसे सर्व पदार्थ  
अपणो स्वरूप नियमों करके जैसे जैसेही होते हैं, परंतु अन्यथा  
होते है, सोइ कहते है, जो पदार्थ जिसकालने जिस करिके होता है,  
दार्थ तिस कालने तिस करिके नियत रूप करकेही होता दीखता है,  
था नहीं, तो कार्य कारण जावकी व्यवस्था नियामकके अजावसे  
न होवेगी, तिस वास्ते जैसे कार्य नियततासे प्रतीत होती है जो  
तिसकों कौन पुरुष प्रमाणपंथका कुशल है जो बाध सक्ता है जो  
नियति बाधित हो जावेगी तो और जगेनी प्रमाण मिथ्या हो  
था चोक्त ॥ नियते नैव रूपेण, सर्वे जावा जवति यत् ॥ ततो  
ते, तत्स्वरूपानुबेधतः ॥ १ ॥ यद्यदेव यतो यावत्, तत्तदैव ततस्तथा ॥  
यत्तं जायते न्यायात्, क एनां बाधितुं क्षमः ॥ २ ॥ इन दोनो  
अर्थे उपर लिख दीया है ॥ ४ ॥

पांचमा विकल्प, स्वजाववादीयोका है, वो स्वजाववादी जैसे कहते  
कि इस संसारमें सर्व पदार्थ स्वजावहीसे उत्पन्न होते है, सो कहते हैं  
माटीसें घट होता है, परंतु वस्त्र नहीं होता है, अरु ततुओंसें वस्त्र होता  
है, परंतु घटादिक नहीं होता है, यह जो मर्यादा संयुक्त होना है  
स्वजाव बिना कदापि नहीं हो सक्ता है, तिस वास्ते यह जो कुछ होता  
है, सो सर्व स्वजावसेंही होता है, तथा अन्यकार्य तो दूर रहो, परंतु  
जो मूंगोका रंध जाणा है, सोनी स्वजाव बिना नहीं रंधते हैं, तथा  
हामी, इंधन, कालादि सामग्रीका संचवनी है तोनी कोकडु ( कविनमूंग  
नहीं रंधते है, तिस वास्ते जो जिसके होयां होवे, जिसके न होयां

वे, सो सो अन्वय व्यतिरेक करके तिसका कर्ता है, स्वभावहीसे मूंग र  
 है, इस वास्ते स्वभावही सर्व वस्तुका हेतु है, ए पांचमा विकल्प ॥ ५ ॥  
 यह पांच विकल्प स्वतः ईशपद करके होते हैं, जैसेही पांच परतः ईश  
 करके उपलब्ध होते हैं, परतः शब्दका अर्थ तो ऐसा है, कि पर पदा  
 न् व्यावर्त रूप करके यह आत्मा निश्चय करके है, जैसे नित्य शब्द करके  
 विकल्प दूये हैं, जैसेही अनित्य पद करकेनी दश विकल्प होते हैं, सर्व  
 ल्प एकठे करसे वीश होते है, यह वीश विकल्प जीव पदार्थ करके  
 है, जैसेही अजीवादिक पदार्थोंके साथ, न्यारे न्यारे वीश विकल्प  
 लेनें. तब वीशकों नवसूं गुणाकार कखां सब मिलिके एक शो अस्ती  
 क्रियावादीके होते है ॥ इति क्रियावादी ॥

अथ अक्रियावादीके चौरासी मत लिखते हैं. अक्रियावादी कहते  
 के क्रिया, पुण्य पाप रूपादि नहीं है, क्योंकि क्रिया, पुण्य पाप रूपादि स्थि  
 पदार्थोंको जगती है, अरु स्थिर पदार्थ तो जगत्में कोइ ची नहीं है, क्यों  
 उत्पत्त्यनंतरही पदार्थका विनाश हो जाता है. जैसे जो कहते है, सो  
 यावादी ॥ तथा चादुरेके ॥ श्लोक ॥ दृष्टिकाः सर्वसंस्कारा, अस्थिराणां  
 क्रिया ॥ नूतिर्येषां क्रिया सैव, कारकं सैव चोच्यते ॥ १ ॥ अस्वार्थः—  
 संस्कार पदार्थ दृष्टिक है, इस वास्ते अस्थिर पदार्थोंको पुण्य पापादि  
 या कहांसें होवे ? पदार्थोंका जो होणा है, सोइ क्रिया है, सोइ कारक है,  
 वास्ते पुण्यापुण्यादि क्रिया नहीं. यह जो अक्रियावादी हैं, सो आत्माको  
 मानते है, तिनके चौरासी मत जाननेका यह उपाय है कि १ जीव,  
 अजीव, २ आश्रय, ३ संवर, ५ निर्जरा, ६ बंध, ७ मोह, यह सात  
 पार्थ लिखने, पीछे यह जीवादि सातो पदार्थोंके हेतु न्यारे न्यारे स्व अरु  
 यह दो विकल्प लिखने फेर इन दोनोके हेतु न्यारे न्यारे १ काल, २  
 वर, ३ आत्मा, ४ नियति, ५ स्वभाव, ६ यदृष्टा, यह छे लिखने. इहां  
 त्यानित्य यह दो विकल्प इस वास्ते नहीं लिखे हैं कि जब आत्मादि  
 शर्थही नहीं है, तो फेर नित्य अनित्यका संभव कैसें होवे ? तथा जो  
 ह यदृष्टावादी हैं, सो सर्व नास्तिक अक्रियावादी हैं, इस वास्ते क्रिया  
 वादी यदृष्टावादी नहीं है, इस वास्ते क्रियावादीके मतमे यदृष्टा पद नहीं  
 हण कीया है, इस मतके चौरासी नेद इसी रीतिसें जानने सो कहते है.



“ नास्ति जीवः स्वतः कालतइत्येकोविकल्पः ” नहीं है जीव स्वरूप करके कालसे उत्पन्न हुआ, यह एक विकल्प, जैसेही कर यहवा पर्यंत सर्व है विकल्प दूये इनका अर्थ पीठजी तरं रतु इतना विशेष है जो यहा यहवावादी अधिक है.

प्रश्नः—यहवावादीयोंका क्या मत है ? उत्तर—जो पदार्थोंकी अपेक्षा नियत कार्य कारण नाव नहीं मानते, किंतु “ यहवा कुठ होता है, सो सर्व यहवासें होता है, एतावता कार्य कारण नहीं यहवाहीसे होता है, यहवावादी जैसे कहते है, कि नहीं है करके पदार्थोंको आपसमें कार्य कारण नाव, क्यों कि कार्य कारण प्रमाणसे ग्रहण नहीं कखा जाता है, तथाही मृतक मैमकसेनी उत्पन्न होता है अरु गोबरसेनी मैमक उत्पन्न होता है अग्निसेनी उत्पन्न होती है. अरणीके काष्ठसेनी अग्नि उत्पन्न होती है, म उत्पन्न होता है, अरु अग्निसेनी धूम उत्पन्न होता है, कदलीके सेनी केला उत्पन्न होता है, अरु केलेके बीजसेनी केला उत्पन्न बीजसेनी वटवृक्ष उत्पन्न होता है, अरु वटवृक्षकी शाखासेनी वृक्ष उत्पन्न होता है, इस वास्ते प्रति नियत कार्य कारण नाव सी जगेंनी नहीं देखणेमें आता है, इस वास्ते यहवा करके जगे कुठ होता है, जैसे मानना चाहियें, क्योंकि जब जान कि जो कुठ होता है, सो यहवासे होता है, तो फेर काहेकों बुद्धि कार्य कारण नावकों माने, औ आत्माकों क्लेश देवे यह जैसे साथ है विकल्प करे है, जैसेही नास्ति परत.के साथनी है विकल्प हैं, यह जब सर्व विकल्प मिलाइये तब वारा विकल्प होते हैं, रांके जीवादिक् सात पदार्थों करके सात गुणा कखा चौरासी जेद वादीके होते है ॥ इति अक्रियावादी ॥ ७ ॥

अथ तीसरा अज्ञानवादीका जेद कहते है, कि जूंमा ज्ञान है, जिनअ अज्ञानवादी जाननां, अथवा अज्ञान करके जो प्रवर्त्त, सो अज्ञानिका नवादी, जैसे कहते है कि ज्ञान अछी वस्तु नहीं है, क्योंकि ज्ञान जब गा, तब परस्पर विवाद होगा, जब विवाद होगा तब चित्त मजिन हांगा, व चित्त मजिन दूवा, तब संसारकी वृद्धि होवेगी, जैसे किसी पुरुषने

स्तु उलटी कही, तब जो ज्ञानीने सुण करके ज्ञानके अजिमानसे उ पुरुषके उपर बहुत मलिन चित्त करके उसके साथ विवाद करणे ज विवाद करते थेके अत्यंत तीव्रचित्त मलिन अरु अहंकार बढा, उ अहंकार औ चित्तकी मलिनतासे महा पाप कर्म उत्पन्न हूवा, तिस से दीर्घतर संसारकी वृद्धि हूइ, इस वास्ते ज्ञान अर्ही वस्तु नही. जब अज्ञानी अपनेको मानीये, तब तो अहंकारका संभव नही ता है, अरु दूसरोके उपर चित्तका मलिन पणानी नही होता है, तिसवास्ते कर्मका बंधनी नही होता है, तथा जो कार्य विचार करीये है, तमें महा कर्मका बंध होता है, उसका फलनी महा जयानक होता अरु जो काम, मनोव्यापार विना करीये है, तथा मनोव्यापार विना ही जीवका बंध करीये है, तिसका फल अवश्यमेव जोगनेमें नहीं आ है, अरु जो उस काममें किंचित् कर्मबंध होता है, सोनी चूने गजनी उपरि बालु ( रेतिकी ) मुष्टिके संबंधवत् स्पर्शमात्र है, परंतु बंध ही होता है. इस वास्ते अज्ञानही मोहगामीयो पुरुषोंको अंगीकार का श्रेय है, परंतु ज्ञान अंगीकार करणां श्रेय नहीं है यह अज्ञानवा कहते है की ज्ञान हम माननी लेवे, जे कर ज्ञानका निश्चय करणेमें समर्थ होवे ? क्योंकि प्रथम तो ज्ञान सिद्धही नही हो सकता है, तथाहि तने मत्तावलंबी पुरुष है, सो सर्व परस्पर निन्नही ज्ञान अंगीकार कर है, इस वास्ते क्यों कर निश्चय करणेमें समर्थ होवे ? जो इस मतका न सम्यग् है, अरु इस मतका ज्ञान सम्यग् नही है; जे कर कहोगे कि सकल वस्तुके समूहको साक्षात् कारी ऐसे ज्ञानवाला जो जगवान्, तिसके उपदेशसे जो ज्ञान होवे सो सम्यग् ज्ञान है, अरु जो इसके ना दूसरे मत है, उनका ज्ञान सम्यग् नही. क्योंकि उनके मतमें जो न है. सो सर्वज्ञका कथन कीया हुआ नही है.

अज्ञानवादी कहते है कि यह तुमारा कहना है, सो तो सत्य है, कि सकल वस्तु समूहका साक्षात् करणेवाला ज्ञानी सुगत, ईश्वर, विष्णु, ब्रह्मादिकों हम माने ? किंवा जगवान् वर्धमान महावीर स्वामीको सकल वस्तु समूहके साक्षात् करणे वाला माने ? फेरनी वोही संशय रहा, निश्च न हुआ, जो कौन सर्वज्ञ है ? जे कर कहोगे कि जिस जगवान्के पाठार

विदुः सुगल सर्व देवता, इन्द्र, परस्पर अहं पूर्वक विशिष्ट विशिष्टता  
 द्युति करके संयुक्त, सैकड़ों विमानोंमें बैठ करके सकल आकाश  
 आच्छादित करते दूये पृथिवीमें उतर करके पूजते नये है, सो  
 वर्धमान स्वामी सर्वज्ञ है. परंतु सुगत, शंकर, विष्णु, ब्रह्मादिक  
 क्योंकि सुगतादिक सर्व, अल्प बुद्धिवाले मनुष्य दूये है, इत  
 वो देव नहीं दूये है; जे कर सुगतादिकनी सर्वज्ञ होते, तो  
 ता, इन्द्र, पूजा करते, परंतु किसीनी देवता, इन्द्रने पूजा नहीं  
 वास्ते सुगतादिक सर्वज्ञ नहीं दूये है. हे जैन ! यह जो तुमने  
 है. सो अरण्ये मतके राग करके कही है, परंतु इत बातसे  
 ही है, क्योंकि वर्धमान स्वामीकी देवता, इन्द्र, देवलोकसे आ करके  
 करते थे, यह तुमारा कहनां हम क्योंकर सच्चा मान लेवे ? जगवान्  
 महावीरकों तो बहुत काल दूयाकों हो गया है, उनके सर्वज्ञ होनेमें  
 इन्ही साधक प्रमाण नहीं है ? जे कर कहोगे कि संप्रदायसे एतावता  
 वीरके शासनसे महावीर सर्वज्ञ सिद्ध होता है, तो इतमें यह तर्क  
 कि यह जो तुमारी संप्रदाय है, सो कौन जाने किसी धूर्तकी चलाइ  
 है ? वा किसी सत्पुरुषकी चलाइ हुई है, हम क्यों कर जान सके ?  
 तके सिद्ध करने वाला कोइनी प्रमाण नहीं है, अरु विना प्रमाणके  
 मान लेवे. तो हम प्रेक्षावान् काहे के ? तथा मायावान् पुरुष थाप  
 नी होते तोनी अरण्ये आपकूं जगतमें सर्वज्ञ होनां प्रगट कर देते है.  
 लके (२७) पीठ है, तिनमेंसूं कितनेक पीठोंके पाठक अरण्ये आपकों  
 करका रूप अरु इन्द्र, देवता, पूजा करते दूये बना सके है, तो फेर  
 आंका आगमन पूजा देखनेसे सर्वज्ञ पणा क्यों कर सिद्ध होवे. जो  
 श्रीमहावीरजीकूं सर्वज्ञ मान लेवे ? तुमारे मतका आचार्य समतजइ  
 कारनी कहता है ॥ श्लोक ॥ देवागमनचोयान, चामरादिविचूतय ॥  
 याविष्वपि दृश्यंते, ह्यतस्त्वमसि नो महान् ॥ १ ॥ इत श्लोकका  
 ताओका आगमन आकाशमें चलनां, उत्र चामरादिककी विचूति,  
 आगमन, इन्द्रजालीयमेंनी हो सकता है, इत हेतुसे तो हे जगवान् ! तु  
 ग महान् स्तुति करणे योग्य नहीं हो सकता है. तथा हे जैन ! तरे कहे  
 से महावीरही सर्वज्ञ होवे, तोनी यह जो आचारांगदिक शास्त्र है, तो

गिर सर्वज्ञहीके कथन करे दूये हैं, यह क्योंकर जाना जाये ? क्या ने किसी धूर्त्तने रच करके महावीरका नाम रख दीया होवेगा ? क्योंकि वात इंडिय ज्ञानका विषय नहीं है, अरु अतींद्रिय ज्ञानकी सिद्धिमें इनी प्रमाण नहीं है.

जला कदी यहनी होवे कि जो आचारांगादिक शास्त्र है सो महावीर ज्ञहीके कहे दूये है, तोनी श्रीमहावीरजीके कहे दूये शास्त्रका यही अर्थ गाय, यही अर्थ है, और अर्थ नहीं, यह क्योंकर जान्या जाय ? क्योंकि रोंके अनेक अर्थ है, सो इस जगत्में प्रगट सुननेमें आते हैं, क्या जाने ही अक्षरों करके श्रीमहावीर स्वामीजीने कोऽ अन्यही अर्थ कहा वे, अरु तुमारी समजमें उनही अक्षरों करके कठु और अर्थ नासन ता होवे, फेर निश्चय क्यों कर होवे जो इन अक्षरोंका यही र्थ जगवानने कहा है, जे कर तुमने यह मान रक्ता होवे कि जगवा के समयमें गौतमादिक मुनि थे, उनोने जगवानके मुखाराबिदसें द्वात् जो अर्थ सुना था, सोऽ अर्थ आज तांइ परंपरासें चला आता इस वास्ते आचारांगादिक शास्त्रोंका यही अर्थ है, अन्य नहीं. इनी तुमारा कहनां अयुक्त है, क्योंकि गौतमादिकनी उद्व्यस्थ थे, अरु उद्व्यकों दूसरेकी चित्तवृत्तिका ज्ञान नहीं होता है, दूसरेकी चित्तवृत्ति तो तींद्रिय ज्ञानका विषय है, उद्व्यस्थ तो इंडिय द्वारा जान सकता है, इ यज्ञानी सर्वज्ञके अज्ञिप्रायकों क्यों कर जान सके, जो सर्वज्ञका यही ज्ञिप्राय है ? इस अज्ञिप्रायसें सर्वज्ञनें यह शब्द कहा है ? इस वास्ते जग न्का अज्ञिप्राय तो गौतमादिक नहीं जान सक्ते हैं, केवल जो वरणा ती जगवान् कहते जये सोऽ वरणावली जगवानके पीठें लगे दूये गौत दिक उच्चारण करते आये, परंतु जगवान्का अज्ञिप्राय किसीने नहीं ाना, जैसें आर्य देशोत्पन्न पुरुषके शब्द उच्चारणसें म्लेच्चनी वैसा शब्द चार सकता है, परंतु तात्पर्य कुछ नहीं जानता, ऐसेही महावीरके शब्द अनुवादक गौतमादिक है, परंतु महावीरका अज्ञिप्राय नहीं जानते, त वास्ते सम्यग् ज्ञान किसी मतमेंनी सिद्ध नहीं होता है. एक तो ज्ञान णोसें पुरुष अज्ञिमानसें बहुत कर्म बांध कर दीर्घ संतारी हो जाता है, सरा सम्यग् ज्ञान किसी मतमें है नहीं, इस वास्ते अज्ञानही श्रेय है.

॥ इत्यज्ञानवादीका श्रद्धान ॥सो अज्ञानी सदसत् प्रकारके हैं, तिनो  
 नेका यह उपाय है कि जीवादिक नव पदार्थ किसी पट्टादिकमें  
 अरु दशमे स्थानमे उत्पत्ति लिखनी, तिन जीवादि नव पदार्थोंके हेतु  
 न्यारे सत्त्वादिक सात पद स्थापन करणे,सो यह है कि.—१ सत्त्वं,  
 सत्त्वं, २ सदसत्त्वं, ४ अवाच्यत्वं, ५ सदवाच्यत्व, ६ अवाच्यत्व  
 सदसदवाच्यत्वं, तहां १ सत्त्व, सो स्वरूप करके विद्यमान पणां, २  
 सो पररूप करके अविद्यमान पणां, ३ सदसत्त्वं, सो स्वरूप पररूप  
 विद्यमान पणां. तहां यद्यपि सर्व वस्तु स्वपररूपों करके सर्वदाही  
 सदसत् स्वभाव है, तोनी किसी जगे कदाचित् उद्भूत रूप  
 करिये है, तिस हेतुसें यह तीन विकल्प होते हैं, तथा ४ सोइ सत्त्व  
 त्व, जब युगपत् एक शब्द करके कहनेकी इच्छा करिये, तदा तिसका  
 चक कोइनी शब्द नहीं है, इस वास्ते अवाच्यत्वं. यह चारों विकल्प  
 लादेशा औसा नाम कहीये, क्यों के यह चारों सकल वस्तु  
 हण करते है, ५ अरु यदा एक जागमें सत्, दूसरे जागमे अवाच्य,  
 पत् विवक्षा करिये, तदा सदवाच्यत्वं, ६ यदा एक जागमें असत्,  
 जागमें अवाच्य, तदा असत् अवाच्यत्वं, ७ यदा एक जागमें सत्,  
 जागमें असत्, तीसरे जागमें अवाच्य युगपत् कल्पना करिये, तदा  
 वाच्यत्व. इन सातों विकल्पोंसें अन्य ( दूसरा ) विकल्प कोइनी नहीं  
 जे कर कोइ करनी लेवे, तो इन सातोहीके अंतरभाव हो जायेंगे,  
 तोंसें अधिक विकल्प कदापि न होवेंगे, यह जो सात विकल्प कहे हैं  
 सातोको नव गुणा करे, तब त्रेशठ होतेहैं, अरु उत्पत्तिके चार  
 आदिकेही होते हैं. १ सत्त्व. २ असत्त्व, ३ सदसत्त्वं, ४ अवाच्यत्वं,  
 चार विकल्प त्रेशठमें प्रक्षेप करीये, तब सदसत् मत अज्ञानवादीके  
 है. अब इन सातों विकल्पोंका अर्थ लिखते हैं, कि कौन जानता है  
 जीव सत्य है, यह एक विकल्प हुआ. कोइनी नहीं जानता है सत्त्व  
 इसका ग्रहण करनेवाला प्रमाण कोइनी नहीं है जे कर कोइ जाणनी  
 वेगा जो जीव सत् है तो कौनसे पुरुपार्थकी सिद्धि हो गइ क्यों कि,  
 हो जायेगा तब अग्निनिवेश, अग्निमान, चित्त मलिन लोकोंसें विवाद

जावेगा, तब तो ज्ञानवान् बहुत कर्म बंध करके दीर्घतर संसारी हो जा  
 जैसेही असत् आदिक ज्ञेय विकल्पोंका नी अर्थ जान लेनां ॥ इति ॥  
 विनय करके जो प्रवर्त्ते, सो वैनयिका. इन विनयवादीयोंके लिंग अरु  
 नही होता है, केवल विनयहीसे मोक्ष मानते है, तिन विनय वा  
 ङोंके वत्तीस मत है, सो इस तरेसे है, कि १ सुर, २ राजा, ३ जाति,  
 ४ जाति, ५ स्थविर, ६ अधम, ७ माता, ८ पिता, इन आठोंकी मन क  
 वचन करके, काया करके, अरु देशकाल उचित दान देने करके विनय  
 इन चारोंसे आठकों गुण्या वत्तीस हूये ॥ इति विनयवादी ॥ ४ ॥

ए सब मिल कर तीनसौ त्रेशठ मत हुये. ए सर्व मतधारी तथा इन म  
 के प्ररूपणे वाले सर्व कुगुरु हैं, क्योंकि यह सर्व मत मिथ्यादृष्टियोंके है,  
 सब एकांतवादी हैं, परतु स्या द्वादरूप अमृत स्वादसे रहित है, इनका  
 अजिमत तत्त्व है, सो प्रमाण करके बाधित है, इनके मतोंकों पूर्वाचा  
 ने अनेक युक्तियोंसे खंमन करा है, सो नव्य जीवोंके जानने वास्ते मैं  
 पूर्वाचार्योंकी युक्तियां इन नापाग्रथमें किंचित् मात्र नीचे लिखता हूं.  
 प्रथम जो कालवादी कहते हैकि सर्व वस्तुका कालही कर्त्ता है, तिस  
 खंमन लिखता हूं. हे कालवादी! यह जो काल है सो क्या १ एक  
 नाव नित्य व्यापी है? २ किंवा समयादिक रूप करके परिणामी  
 ? जे कर आदि पक्ष मानोमे सो तो अयुक्त है, क्योंकि जैसे कालकों  
 करने वाला कोइनी प्रमाण नही है, जैसा आद्य पक्षमें तूने काल  
 न्या है, तैसा काल, प्रत्यक्ष प्रमाणसे उपलब्ध नहीं होता है, अरु ऐ  
 कालका कोइ लिंगनी अविनाभावरूप नही दीखता, इस वास्ते अतु  
 नसेनी सिद्ध नही होता है

पूर्वपक्ष - क्योंकि अविनाभावलिङ्गका अभाव कहते हो? क्योंकि दि  
 ता हैकि नरत रामचन्द्रादिकों विषे पूर्वापर व्यवहार सो पूर्वापर व्यव  
 र वस्तुरूप मात्र निमित्त नहीं है? जे कर वस्तुरूप मात्र निमित्त होवे,  
 ३ वर्त्तमानकालमें वस्तु रूपके विद्यमान होणे करके तैसे व्यवहार हो  
 चाहिये, तिस वास्ते जिस करके यह नरत रामादिकोविषे पूर्वापर  
 व्यवहार है, सो काल है, तथाहि पूर्वकालयोगी, पूर्व नरतचक्रवर्त्ता, अ  
 रकालयोगी अपर रामादि.

उत्तर पक्षीकी तर्कः—जे कर जरत रामादिकोंविषे पूर्वापर सें पूर्वापर व्यवहार है, तो कालका पूर्वापर व्यवहार कैसें सिद्ध होवे ?  
पूर्वपक्षीका समाधान. कालका जो पूर्वापर व्यवहार है, सो अथरु कालके योगसें है.

उत्तरपक्षः—जे कर दूसरे कालके योगसें प्रथम कालका पूर्वापर है, तब तो दूसरे कालका पूर्वापर व्यवहार तीसरे कालके योगसें अैसेंही करते जाइयें, तब अथनवस्था दूषणका प्रसंग होता है.

पूर्वपक्षः—यह दूषण हमकूं नहीं लगता है, क्यों कि हम तो जहीके स्वयमेव पूर्वापर विनाग मानते हैं, किसी कालादिक योगसें मानते हैं, तथा चोक्तं ॥ पूर्वकालादि योगी य., पूर्वादिव्यपदेशजाक् ॥ परत्वं तस्यापि, स्वरूपादेव नान्यतः ॥ १ ॥ अथस्यार्थः—जो पूर्वापर के योगी जरत रामादि है, सो जरत रामादि पूर्वापर व्यपदेश जाने अथरु कालका जो पूर्वापर विनाग है, सो स्वतःही है, परंतु योगसें नहीं है.

उत्तरपक्षः—हे पूर्वपक्षीः—यह तुमारा कहनां अैसेा है कि जैसा कंठ मढिरा पीके मढिरा पानीका प्रलाप, तैसा है, क्योंकि तुमनें प्रथम काल एकांत एक नित्य व्यापी मान्या है, तो फेर कैसें तिस कालका पर व्यवहार होवे ?

पूर्वपक्षः—सहचारिके संगसें एक वस्तुकाजी पूर्वापर कल्पनामात्र हार हो सक्ता है, जैसें सहचारि जरतादिकोंका पूर्वापर व्यवहार है, ही जरतादि सहचारियोंके संगसें कालकाजी कल्पनामात्र पूर्वापर देश होता है, सहचारियो करकें व्यपदेश सर्व तार्किकोंके मतमें है, यथा “मंचा क्रोशंतीति” जैसें मंचा गालीयां देता है.

उत्तरपक्षः—यहजी सूखीहीका कहना, है क्योंकि इत कहनेमे अथरु दोषका प्रसंग है सोइ कहते हैकि सहचारि जरतादिकोंका कालके योगसें पूर्वापर व्यवहार दुअ्या अथरु कालकों पूर्वापर व्यवहार, सहचारि जरतादिकोंके योगसें दुअ्या, जब एक सिद्ध नहीं होवेगा तब दूसराजी सिद्ध नही होगा ॥ उक्तंच ॥ एकत्वव्यापितायां हि, पूर्वादित्वं कथं जवेत् ॥ सहचारिणां शास्त्रे, दन्योन्याश्रयतागमः ॥ १ ॥ सहचारिणां हि पूर्वत्व, पूर्वकाल

।मात् ॥ कालस्य पूर्वदित्वं च, सहचार्यवियोगतः ॥ १ ॥ प्रागसिद्धा  
 त्य, कथमन्यस्य सिद्धिरिति ॥ इस वास्ते प्रथम पक्ष श्रेय नही है  
 अथ दूसरा पक्ष मानोगे, सोनी अयुक्त है, क्योंकि समयादिक रूप  
 णामी काल विषे काल एकनी है, तोनी विचित्र पणा उपलब्ध होता  
 तथाहि एक कालमें मूंग रंधता कोइ रंधता है ? कोइ नहीं रंधता है  
 ।। समकालमें एक राजाकी नौकरी करते थके एक नौकरकूं थोडेही  
 नमें नौकरीका फल मिल जाता है, अरु दूसरेकूं बहु कालांतरमेनी वैसा  
 न नही मिलता है, तथा समकालमें खेती करता एक जाटके तो बहु  
 थ उत्पन्न हो जाते है, अरु दूसरेकूं थोडा फूटा हुआ खंभित उत्पन्न  
 ता है, तथा समकालमें कौडीयांकी मूठी नर कर नूमिकामें गेरीयें, तब  
 तनीक कौडीयां स्रधी पडती है, अरु कितनीक अंधी पडती है अथ  
 कर कालही एकजा कारण होवे, तब तो सर्व मूंग एकही कालमें रंध  
 ते, परंतु सर्व रंधते नही है, इस वास्ते निःकेवल कालही जगत्के वि  
 त्रताका कर्ता नहीं है, किंतु कालादि सामग्रीके मिलनेसें कर्म कारण  
 यह सिद्ध पक्ष है ॥ इति प्रथम कालवादीके मतका खंमन ॥ १ ॥

अथ दूसरा ईश्वरवादी अरु तीसरा अद्वैतवादी, एदोनो मतोंका खंमन  
 अरवाद्मे लिख आये है, तहांसें जान लेनां ॥ ३ ॥

अब चौथा मत नियतिवादीका है, तिसका खंमन लिखते हैं कि नियतिवा  
 जो कहते है, कि सर्व पदार्थोंका करता नियति है, नियति उसकूं कहते  
 जो तत्त्वांतर होवे, सोनी नियति, ताडयमान अति जीर्ण वस्त्रकी तरें  
 चार रूप ताडनाकूं असहमान सैकडे टुकडोंकों प्राप्ति होती है, सोइ क  
 ते है हे. नियतवादी ! तेरा जो नियतिनाम तत्त्वांतर है, सो जावरूप है,  
 वा अजाव रूप है ? जे कर कहोगे कि जावरूप है, तो फेर एकरूप है, वा  
 नैक रूप है ? जे कर कहोगे कि एक रूप है, तो फेर नित्य है, वा अनित्य  
 ? जे कर कहोगे नित्य है, तो किस तरे पदार्थोंकी उत्पत्त्यादिकमे हेतु है ?  
 योंकि नित्य जो होता है, सो किसीकानी कारण नही होता है, सोइ क  
 ते है कि नित्य जो होता है सो सर्व कालमें एकरूप होता है, नित्यका  
 ।क्षण “अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावतया नित्यत्वस्य व्यावर्णात्” नित्य  
 ।। लक्षणतो ऐसा है, जो हरे नही अरु उत्पन्ननी न होवे, स्थिर एक



स्वभाव करके रहे, सो नित्य. तब तो नियति तिस नित्य रूप करके कार्य उत्पन्न करे, तब तो सर्वदा तिसही रूप करके कार्य उत्पन्न क्योंकि तिसके रूपमे कोऽनी विशेष नहीं है, एकही रूप है, अरु तिसही रूप करके तो कार्य उत्पन्न नहीं करती है, क्योंकि कनी अरु कनी कैसा कार्य उत्पन्न होता देख पडता है, तथा एक त है कि, जो दूसरे तीसरे आदि कृणमें नियतिने कार्य करणे हैं, वही कार्य प्रथम समयहीमें उत्पन्न कर लेवे, क्योंकि तिस नित्य करण स्वभाव द्वितीयादि कृणमें है सो स्वभाव प्रथम विद्यमान है, जे कर प्रथम कृणमें द्वितीयादि कृणवर्ती कार्य शक्ति नहीं तो द्वितीयादि कृणमेंनी कार्य न होना चाहिये. क्यों द्वितीयादि कृणमें कुठनी विशेष नहीं, जे कर प्रथम द्वितीयादिके रूपमें परस्पर विशेष मानोगे तबतो जोरा जोरी नियतिके नित्यता आ गइ “अतादवस्थमनित्यतां ब्रूमः इतिवचन प्रामाण्यात्, जैसा है वो तैसा न रहे इस वचन प्रमाणसे उसको हम अनित्य

पूर्वपदः—नियति नित्य विशेष रहितनी है, तोनी तिस तिस रिकी अपेक्षा करके कार्य उत्पन्न करती है, अरु जो सहकारि है, सो नियति देश काल वाले है, तिस वास्ते सहकारियोंके योगसे कार्य रके होता है.

उत्तरपदः—यह नी तुमारा कहना असमीचीन है, क्योंकि हैं, सोनी नियति करकेही प्राप्त होते है, अरु नियति जो है, सो कृणमेंनी तिसके करणेवाले स्वभाव वाली है, जेकर द्वितीयादि दूसरे स्वभाववाली नियति मानोगे, तब तो नित्यपणेकी हानी हो तिस वास्ते प्रथम कृणमें सर्व सहकारियोंके संजव होणेसे प्रथम सर्व कार्य करणेका प्रसंग हो गया. तथा एक औरनी बात है. कि योके दोणेसे कार्य हुआ, अरु सहकारियोंके न होणेसे कार्य न हुआ, सहकारियांहीको अन्वय व्यतिरेक देखनेसे कारण कल्पना करनी परंतु नियति कारण नहीं दुइ, क्यों कि नियतिमें व्यतिरेकका असंभव है. च ॥ श्लोक ॥ हेतुनान्वयपूर्वेण, व्यतिरेकेण सिद्धयति ॥ कुतो हेतुत्वसंजव ॥ अथ जे कर इन पूर्वोक्त दूषणोंके नयसे अनित्य

योगे, तब तो तिस नियतिके प्रतिहण अन्य अन्य रूप होऐसैं नियति बहुत हो गइयां, तब तो जो तुमनें नियति एकरूप मानी थी, तिस ज्ञानका व्याघात होनेका प्रसंग हो गया, अरु जो पदार्थ हणह्यी जा है, वो किसीका कार्य कारण नहीं हो सकता है, तथा एक औरनी है कि जे कर नियति एकरूप होवे, तदा तिससैं जो कार्य उत्पन्न होवे सो सर्व एकरूपही होने चाहिये, क्योंकि विना कारणके जेद का कार्य जेद कदापि नहीं हो सकता है, जे कर हो जावे, तब तो जो कार्यजेद निर्हेतुकही होवेगा, अरु हेतुविना किसी कार्यका जेद नहीं है, जे कर अनेकरूप नियति मानोगे, तब तो तिस नियतिसैं अन्य नानारूपी विशेषण विना नियति नानारूप कदापि न होवेगी, जैसें मेघका नीला, काली, पीली, उखर जूमिके संबंध विना नानारूप नहीं हो सकता यद्युक्तं “विशेषणं विना यस्मात्तुल्यानां विशिष्टतेति वचनप्रामाण्यात्” तब वास्ते अवश्य तिस नियतिसे अन्य नानारूप विशेषण नियतिके जे मानने चाहिये. तिन नानारूप विशेषणोंका जो होणां है, सो क्या स नियतिसेही होता है अथवा किसी दूसरेसें होता है? जे कर कहोगे नियतिसे ही होता है, तब तो तिस नियतिकों स्वतः एकरूप होऐसे तिस नियतिसे हूये होये विशेषणोंको नानारूपता होवे?

अथ विचित्र कार्यकी अन्यथानुपपत्ति करके नियतिनी विचित्र रूपही मानते है, तब तो नियतिकी विचित्रता बहुत विशेषणों विना नहीं हो गी, तिस वास्ते तिस नियति विषे विशेष्य बहुत अंगीकार करणे चाहिये, व तिन विशेषणोंका जो जाव है, सो तिस नियतिहीसें होता है, अथवा किसी दूसरेसें? इत्यादि. सोइ फेर आ गया, इस वास्ते अनवस्था पण होता है.

अथ जे कर कहोगे अन्यसें होता है, तो यहनी पक्ष अयुक्त है, क्या नियति बिना और किसीको तुमने हेतु नहीं मान्या है, यह तुमारा हुना किसी कामका नहीं है, तथा अनेक रूप नियति है, जे कर तुम सैं मानोगे, तब तो तुमारे मतके वैरी दो विकल्प हम तुमकुं जेट कर है, तुमारी नियति अनेकरूप जो है, सो मूर्ति है? वा अमूर्ति है? जे कर कहोगे कि मूर्ति है, तब तो नामातर करके कर्मही तुमने माने, क्यों

कि कर्म जो है, सो पुज्जरूप होऐसे मूर्त्तिजी है, अरु अनेक रूपजी तो तुमारा हमारा एकही मत हो गया, क्योंकि हम जिनकूं उनही कर्मोंका नामांतर तुमने नियति मान लीया, परंतु वस्तु है. अथ जे कर नियतिकूं अमूर्त्ति मानोगे, तब तो नियति सुख हेतु नहिं है, पुज्जही मूर्त्ति होनेसे सुख दुःखका हेतु हो सका है, जैसे आकाश अमूर्त्ति है, परंतु सुख हेतु नहिं है, पुज्जही मूर्त्ति होनेसे सुख दुःखका हेतु हो सका है, तुम जैसे मानोगे कि आकाशजी देश जेद करके सुख दुःखका हेतु है, से मारवाड देशमें आकाश दुःखदायी है, शोप सजल देशोंमें सुखदायी यहजी तुमारा कहना असत् है, तिन मारवाडादि देशोंमेंनी रहे हूये जो पुज्ज हैं, उन पुज्जलौंही करी दुःख सुख होते है, तथाहि स्थली जो है, सो प्रायः जल करकेर हित है अरु वालु (रेति)जी बहुत अरु रस्तेमें चलतां पग वालुमें धस जाते है, तब तो पसीना बहुत जाता है, अरु उष्णकालमें सूर्यकी किरणोंसें वालु तप जाता है, तब हुत संताप होता है, अरु जलजी पीनेकों पूरा नहीं मिलता है, तिन खननेमें कोइ प्रयत्न करना पडता है, इस वास्ते उन देशोंमें बहुत दुःख है अरु सजल देशोंमें पूर्वोक्त कारण नहीं है, इस वास्ते पूर्वोक्त दुःख नहीं है, इस हेतुसें पुज्जही सुख दुःखका हेतु है, परंतु आकाश नहीं

अथ जे कर नियतिकूं अज्ञावरूप मानोगे, तो यहजी तुमारा पद युक्त है, क्योंकि अज्ञाव जो है सो तुञ्जरूप है, शक्ति रहित है, औ करणोंमें समर्थ नहीं, क्यों कि कटक कुंमलादिकोंका जो अज्ञाव है, कटक कुंमल उत्पन्न करनेकूं समर्थ नहीं, तैसेही देखनेमें आता है, अरु कटक कुंमलादिकोंका अज्ञाव कटक कुंमलादिक उत्पन्न करे, तब तो तमें कोइनी ढरिडी न रहे.

**पूर्वपक्षः**—घटाज्ञाव जो है सो मृत्पिण्ड है, तिस माटीके पिण्डसें उत्पन्न होता है, तो फेर हमारे कहनेमें क्या अयुक्तता है? अरु जो माटीका पिण्ड है सो तुञ्जरूप नहीं है क्योंकि वो अणु स्वरूप करके विद्यमान है, तो फेर अज्ञाव पदार्थकी उत्पत्तिमें हेतु क्यों नहीं हो सका?

**उत्तरपक्षः**—यहजी तुमारा पक्ष असमीचीन है, क्योंकि जो माटीके पिण्ड अज्ञाव स्वरूप है सो जावाजावका आपसमें विरोध होनेसें अज्ञाव रूप

भी सक्ता, क्योंकि जे कर जावरूप है तो अजाव कैसें हुआ? जे कर अजाव रूप है, तो जाव कैसें हुआ? जे कर कहोगे कि स्वरूप अपेक्षा जावरूप है, अरु परिरूपापेक्षा अजावरूप है, तिस वास्ते जावाजाव दोनोके न्यारे निमित्त हो जैसें कुठनी दूषण नहीं, इस कहनेसें तो माटीका पिंम जावाजावरूप अनेकांतात्मिकरूप तुमारेकूं प्राप्त हुआ, परंतु यह अनेकांतात्मपणा जैनोहीके मतमें शोचता है, क्योंकि जैनमतवालेही सर्व वस्तुकूं स्वपरजावादि स्वरूप करके अनेकांतात्मिक मानते है, परंतु तुमारे सरीखे एकांतग्रहयस्तमतवालोंको नहीं शोचता है, जे कर कहोगे कि मृत्पिंममें जो पररूपका अजाव है, सो तो कल्पित है, अरु जो जावरूप है, सो तात्विक है, इस वास्ते अनेकांतात्मिक वाद हमारे मतमें नहीं आता है, तब तो तिस मृत्पिंमसें कैसें घट होवेगा? क्यों कि तिस मृत्पिंममें परमार्थसें घटके प्राग्जावका अजाव है, जे कर प्राग् अजाव विनानी तिस मृत्पिंमसें घट हो जावे, तब तो सूत्र पिंमादिकसेंनी घट क्यों नहीं होजावे? जैसा मृत्पिंममें घट प्राग्जावका अजाव है, तैसाही सूत्रपिंमादिकमेंनी घट प्राग्जावका अजाव है, तथा तिस मृत्पिंमसें खरशृंग क्यों नहीं हो जाता है? इस वास्ते यह तुमारा कहना कुठ नहीं है, तथा जो तुमने कहा था कि जो वस्तु जिस अवसरमें जिससेति होवे है, सो कालांतरमेंनी सोई वस्तु तिस अवसरमें तिसतें नियतरूप करके होती हुई दीखती है, यह तो तुमारा कहना ठीक है, क्योंकि कारण सामग्रीके अनादि नियमोंसें कार्यनी तिस अवसरमें तिसतें नियतरूप करकेही होता है, जब कारण शक्तिके नियमसे कार्य हो गया, तब कौन ऐसा प्रेक्षावान् प्रमाणपंथका कुशल है जो प्रमाण वाधित नियतिकों अंगीकार करे? ॥इति नियति खंमनं॥

अथ पांचमा स्वजाववादीका खंमन लिखते है. स्वजाववादी ऐसे कहते हैं कि इस संसारमे सर्व जावपदार्थ स्वजावहीसे उत्पन्न होते हैं, यह स्वजाववादीयोका मत नियतिवादके खंमनसेंही खंमन हो गया, क्योंकि जो दूषण, नियतिवादीके मतमें कहे है, वे सर्व दूषण, प्राय यहाँनी समानही है, सोई कहते है, कि यह जो तुमारा स्वजाव है, सो जावरूप है? अथवा अजावरूप है? जे कर कहोगे कि जावरूप है, तो क्या एक रूप है? वा अनेक रूप है? इत्यादि सर्व दूषण नियतिकी तरे कह देने.

एक औरनी बात है, कि स्वभाव आत्माके जावकों कहते हैं, जाव कार्यगत हेतु है? वा कारण गत है? कार्य गत तो नहीं है, कि जब कार्य हो जावेगा तब कार्यगत स्वभाव होवेगा परंतु विना के दूये कार्य गत कैसे होवे? अरु जब कार्य हो गया, तब तिसका जाव कैसे होवे? जो जिसके अलब्ध लान संपादनमें सामर्थ्य होवे, तिसका हेतु है, अरु कार्य तो निष्पन्न होने करके लब्ध आत्मलान है, ही तो तिस स्वभावहीके अजावका प्रसंग हो जावेगा, तब तो वो स्वभाव कैसे कार्यका हेतु होवेगा? जे कर कहोगेकि कारणगत हेतु है, यह तो मकूनी संमत है, सो स्वभाव प्रति कारण निन्न है, तिस करके माटी घट होता है, परंतु माटीसे पटादि नहीं होता है, माटीके पिंममें पटादि होनेका स्वभाव नहीं है, अरु तंतुओंसे पटही होता है, घटादि नहीं होता है, क्योंकि तंतुओंमें घट होनेका स्वभाव नहीं है, तिस वास्ते जो तुमने कहा था कि माटीसे घटही होता है, पटादि नहीं होता, सोतो सर्व कारणगत स्वभाव माननेसे सिद्धहीकों साध्या है. यह पक्ष, हमारे मतके बाधक नहीं है, तथा जो तुमने कहा था कि मूंगोंमें रंधनेका स्वभाव है, को कडुमें नहीं? इत्यादि सोनी कारणगत स्वभाव अंगीकार कहां सर्वही मीचीन हो जाता है, जैसे एक कोकडु मूंग है, स्वकारण वशतें तैसे रूप वाले दूये है; हांमी, इंधन, कालादि सामग्रीका संयोगनी है, तोनी नहीं होते है, अरु स्वभाव जो है सो कारणसे अचेद है, इसतें सर्व वस्तु तकारणही है, यह सिद्ध पक्ष है ॥ यह क्रियावादीयोका मत तो खंमन हो चुका है

अथ अक्रियावादीयोमें जो पट्टवावादी है, तिनोंमें जो कहा था कि वस्तुओंका नियम करके कार्य कारणभाव नहीं है, इत्यादि, सोनी कहनेके कार्य कारणके विवेचने वाली बुद्धिसे रहित होनेका सूचक है, क्यों कि कार्य कारणकों प्रतिनियताका संभव होनेसे है, सोई कहते हैं कि जो शालूकसे शालूक उत्पन्न होता है, सो सदा शालूकहीसे उत्पन्न होता है, परंतु गोबरसे नहीं. अरु जो गोबरसे शालूक उत्पन्न होता है, सो सदा गोबरहीसे उत्पन्न होता है, परंतु शालूकसे नहीं, अरु इन दोनों शालूक्योंकों शक्तिवर्णादि वैचित्रतासें औ परस्पर जात्यतर होनेमें एकरूपनी नहीं है, अरु जो अग्निमें अग्नि उत्पन्न होता है, सोनी सदैव अग्निहीमें उत्प

होता है, परंतु अरणीके काष्ठसें नहीं होता, अरु जो अरणीके काष्ठसें  
 मि उत्पन्न होता है, सो सदा अरणीकाष्ठसेंही उत्पन्न होता है, परंतु  
 मिसें नहीं होता, अरु जो कहा था कि बीजसेंनी केजा उत्पन्न होता है,  
 यादिक सोनी परस्पर विनिन्न होनेसें सोइ उत्तर है कि जो उपर लिख  
 ाये हैं. एक औरनी बात है, कि जो केजा कंदसें उत्पन्न होता है, सो  
 । परमार्थसें बीजहीसें होता है, तातें परंपरा करकें बीजही कारण है,  
 सेही वटादिकनी शाखाके एक देशतें उत्पन्न होते दूये परमार्थसें बीज  
 ही उत्पन्न होते है, सोइ कहते है कि शाखासें शाखा होती है, परंतु उ  
 शाखाकी हेतु शाखा है, ऐसा लोकमें व्यवहार नहीं है, काहेतें कि वट  
 जहीकूं सकल शाखा प्रशाखा समुदाय रूप वटका हेतु होने करकें प्र  
 ष है, ऐसेंही शाखाके एक देशसेंनी उत्पन्न होता दूया वट परमार्थसें  
 न, वटशाखारूपही है, इसतें सोनी मूल बीजहीसें उत्पन्न दूया मान  
 चाहिये, तिस वास्ते किसी जगेसेंनी कार्य कारण नाव व्यनिचारी न  
 है ॥ इति यदृह्वावादि मतखंमनं ॥

अथ अज्ञानवादी मत खंमन लिखते हैं. अज्ञानवादी जो कहते  
 कि ज्ञान श्रेय नहीं है, क्योंकि जब ज्ञान होता है, तब परस्पर विवा  
 द योगसें चित्तमें कलुष पणसें दीर्घतर संसारकी वृद्धि होती है,  
 प्रादि. यह जो अज्ञान वादीयोनें कहा है, सो नी मूर्खताका सूचक  
 सोइ दिखाते है, कि और बात तो रही परंतु प्रथम हम तुमको दो  
 तें पूछते है सो यह बातें है कि ज्ञानका जो तुम निषेध करते हो,  
 । क्या ज्ञानसें करते हो ? वा अज्ञानसें करते हो ? जे कर कहोगे  
 । ज्ञानसें करते है, तो फेर कैसें कहते हो कि अज्ञान श्रेय है ? इस  
 हनेसें तो ज्ञानही श्रेय दूया, ज्ञानके बिना अज्ञानको कोई स्थापन  
 रने समर्थ नहीं है, जे कर उक्त कहनेको मानोगे, तो तुमारी प्रतिज्ञा  
 । व्याघात प्रसंग होगा, जे कर कहोगे कि अज्ञानसें निषेध करते है,  
 । नी अयुक्त है, सो अज्ञानको ज्ञान निषेधनेका सामर्थ्य नही है,  
 । प्रॉकि अज्ञान किसीकेनी साधने बाधनेमें समर्थ नही है, अज्ञान हो  
 से जब अज्ञान निषेधनेमें सामर्थ्य न दूया तब सिध दूया कि ज्ञानही  
 य है, अरु जो तुमने कहा था कि जब ज्ञान होगा, तब परस्पर विवादके

योगसें चित्त कालुष्यादि नावकूं प्राप्त होगा, इत्यादि. सोची विना कहना है, हम परमार्थसें ज्ञानी उसकों कहते हैं कि जिसकी विवेक करके पवित्र होवे, अरु जो ज्ञानका गर्व न करे, अरु जो ज्ञानी हो कर कंठ लग मद्य पी कर जैसें उन्मत्त बोलता है तैसें अरु सकल जगत्कों तृणोंकी तरें माने, सो परमार्थसें अज्ञानीही है, कि उनकों ज्ञानका फल नहीं है, ज्ञानका फल तो राग द्वेषादिस्यागनां है. जब यह नहीं हूवा, तब तो परमार्थसें ज्ञानही नहीं च ॥ तत् ज्ञानमेव न भवति, यस्मिन्नुदिते विजाति रागगणः ॥ तोस्ति शक्ति, र्दिनकरकिरणायतः स्यातुं ॥१॥” असा ज्ञानी विवेक वित्र आत्मा वाला परजीवोंके हित करणेमें एकांत रसीया होवे, जे वादनी करेगा, सोची परजीवोंके उपकार वास्ते करेगा, अरु राजा क परीक्षक निपुण बुद्धिवालोंकि परिपदामें करेगा, अन्यथा नहीं ऐसेंही तीर्थंकर गणधरोनें वाद करणेकी आज्ञा दीनी है. जब ऐसें हूवे तब कैसें चित्तकी मलिनता करके कर्मका बंध होनेसे दीर्घतर तत्त्व वृद्धि होवे ? केवल ज्ञानवान्का जो वाद है, सो वादी नरपति परीक्षकोंके अज्ञानके दूर करणेके वास्ते है, सम्यक् ज्ञानके प्रगट होनेमें बड़ा उपकार होता है, इस वास्ते ज्ञानही श्रेय है.

अरु जो अज्ञानवादी कहता है, कि तीव्राध्यवसाय करके जो कर्म उत्पन्न होते है, उनसे दारुण विपाक फल होता है, सो तो दम मानते हैं, परंतु जो अशुजाध्यवसाय है, तिनका हेतु ज्ञान नहीं है, क्योंकि अशुजाध्यवसायोंका अज्ञानही हेतु देखनेमें आता है, केवल इतनी बात तो है कि ज्ञानके दोते हूया जे कर कदाचित् कर्म दोषते अकार्यमें प्रवृत्ति होवेगी, तोनी ज्ञानके बलसें प्रतिक्षण संवेग जाचनासे तीव्र अशुचि पाप नहीं होते हैं, सोइ दिखाते हैं.

जैसें कोईक पुरुष राजादिकोंके छुट नियोगसें विपमिश्रित अन्न दे, असें जानता ठता नयनीत मन करके जीमेगा, तैसेंही सम्यक् ज्ञानीनी कर्म चित्कर्म दोषमे अकार्यनी आचरेगा, तोनी संसारके छुटो करके नयनीत मनवाला होवेगा, परंतु निःशंक नहीं होवेगा. अरु जो संसारमें नयनीत होता है, तिसहीका नाम संवेग कहते है, तबतो संवेगवान् तीव्र अशुचि

वसायवाला नहीं होता है, अरु जो तुमने कहा था कि अज्ञानही सत्पु  
 रोंको मोह जाने वास्ते श्रेय है, परंतु ज्ञान श्रेय नहीं, यह जो कहनां है,  
 मूढताका सूचक है, जिसका नामही अज्ञान है. वो श्रेय क्यों कर हो  
 ता है? अरु जो तुमने कहाथा कि हम ज्ञानकूं माननी छेवे, जो ज्ञानका  
 श्रेय करणेमें कोइ समर्थ होवे, सोनी मूर्खोंका कहनां है, क्योंकि  
 अपि सर्व मतो वाले परस्पर निन्नही ज्ञान अगीकार करते है, तोनी जि  
 ना वचन दृष्टेष्ट बाधित नहीं अरु पूर्वापर व्याहत नहीं है, सोइ सम्य  
 रूप जाननां तैसा वचन तो जगवान्हीका कह्या दूआ हो सकता है,  
 इ प्रमाण है, श्रेय नहीं. अरु जो कहा था कि बौधनी अपनें बुद्ध जग  
 नको सर्वज्ञ मानते है, इत्यादि सोनी असत् है, क्योंकि दृष्टेष्टकरके  
 नका वचन बाधित है, इस वास्ते सुगतादिक सर्वज्ञ नहीं है, तिनका व  
 र जैसें बाधित है, तैसें आगें लिखेंगे.

तथा जो तुमने कहाथा कि जो वर्धमान स्वामी सर्वज्ञ होवे, तोनी तिस  
 ईमान स्वामीहीका कह्या दूआ यह आचारांगादि शास्त्र है, सो क्योंकर प्रती  
 होवे? यहनी तुमारा कहनां दूर हो गया, क्योंकि और किसीका ऐसा  
 श्रेष्ठ वाधा रहित वचन है नहीं. अरु जो तुमने कहाथा कि यहनी तुमारा  
 हनां होवेकि आचारांगादि यह जो शास्त्र है, सो वर्धमान स्वामी सर्वज्ञके  
 हे दूये है तोनी वर्धमान स्वामीके उपदेशका यही अर्थ है अन्य नहीं है  
 यादि. सोनी अयुक्त है क्योंकि जगवान् जो है, सो वीतराग है, अरु जो  
 वीतराग होता है, सो किसीकूं कपट उपदेश देकर नूजाता नहीं है. क्योंकि  
 प्रतारणेका हेतु जो रागादि दोषोंका समूह सो जगवान्में नहीं है,  
 अरु जो सर्वज्ञ होता है, सो जानता है, जो इस शिष्यने विपरीत समजा  
 है, अरु इसने सम्यक् समजा है, तब तो जिसने विपरीत समजा है, ति  
 कूं मनाकर देते है, अरु जगवानने तो गौतमादिकोंकों मने नहीं करा,  
 सो वास्ते गौतमादिकोने सम्यग्ही जाना है, अरु जो कहाथा कि गौत  
 मादि उद्धस्य हैं, इत्यादि. सोनी असत् है, क्योंकि उद्धस्यनी उक्त रीति  
 रकें जगवानके उपदेशसेंही यथार्थ वक्ता निश्चय हो सकता है, तथा विधि  
 १ अर्थोंवाले शब्दनी जगवान्नेही कहे है, सो शब्द जैसें जैसें प्रकरण हो  
 ॥, तैसें तैसें ही अर्थका प्रतिपादक हो सकता है, इस वास्ते कोइनी दूषण



नहीं क्योंकि तिस तिस प्रकरणके अनुसारें तिस तिस अर्थका निश्चय जाता है, अरु गौतमादिकोंने जिस जिस जगे जिस जिस शब्दका जैसा अर्थ करा है, सो जगवानने निषेध नहीं करा, इस वास्तेजी जाना जाता है जो गौतमादिकने यथार्थही जाना है, अरु यथार्थही शब्दोंका अर्थ करा अरु जो कुठ गौतमादिकोंने कहा था, सोई आचार्योंकी अविधिन्न करके अब तांइ तैसेही अर्थका अवगम होता है, ऐसेंजी न कहना आचार्योंकी परंपरा हमकूं प्रमाण नहीं? क्यों कि अविपरीतार्थ कहने आचार्योंकी परंपराकों कोइजी जूठी करने समर्थ नहीं.

एक औरजी बात है, कि तुमारा जो मत है, सो आगम मूल है? अनागम मूल है? जे कर कहोगे कि आगम मूल है, तब तो परंपरा क्योंकर अप्रामाणिक हो सकति है? आचार्योंकी परंपरा बिना, अगमका अर्थही क्योंकर जाना जाये? जे कर कहोगे कि अनागममूल है, तब तो उन्मत्तके विरचित वचनवत् प्रामाणिक न होवेगा.

पूर्वपक्षः—यद्यपि हमारा मत अनागम मूल है, तोजी युक्ति संयुक्त है, इस वास्ते हम मानते हैं.

उत्तरपक्षः—अहो “ इरंतः स्वदर्शनानुरागः ” कैसा जारी अणो मतका राग है, क्योंकि यह पूर्वापर विरुद्ध जापण तो अज्ञान मतका नूपण है!

पूर्वपक्षः—किसी तरे हमारा पूर्वापर विरुद्ध बोलनाही हमारे मतका नूपण है?

उत्तरपक्षः—युक्तियां जो होतीयां है, सो ज्ञानमूलही होतीयां हैं; अरु तुम तो अज्ञानहीकूं श्रेय मानते हो, तो फेर तुमारे मतमें मत् युक्तियों का कैसे संभव होवे? इस वास्ते तुम पूर्वापर विरुद्धार्थके जापक हो, इस हेतुसें तुमारा मत किसीजी कामका नहीं है ॥ इति अज्ञानवादि मत खंमन

अथ विनयवादीके मतका खंमन लिखते है. अब जो विनयहीसें मोक्ष मानते हैं सोजी एकांत वादके मोक्षसें हैं, क्योंकि विनय मुक्तिका अंग है, जो मुक्ति मार्गमें चलते हैं, तिनकी विनय करे अरु मुक्तिमार्ग तो “सम्यक् दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गं. इति वचनात्” सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, अरु सम्यक् चारित्र रूप है, ऐसेता तत्त्वार्थ सूत्रका प्रमाण है, इस वास्ते ज्ञानादिकोंकी तथा ज्ञानादिकोंके आधार नूत सो बहुधुतादिक

य है, तिनकी जो विनय करे, बहुमान देवे, ज्ञानादिककी वृद्धि करे, परंपरा करके मुक्तिका अंग हो सकता है; परंतु जो सुर, नरपति आरुकी विनय है, सो संसारका हेतु है, क्योंकि जो जिसकी विनय कर है, वो उसके गुणोंको बहु मान देता है; अरु सुर, नरपति, प्रमुखोंमें विषय जोगनेका प्रधान गुण है, जब उनकी विनय करी, तब तो उन जोगोंको बहु मान दीया, जब जोगोंको बहु मान दीया, तब दीर्घ संसाधकी प्रवृत्ति कर लीनी. इस वास्ते एकांत विनयसे जो मोक्ष मानते सोनी असत् वादी है, क्योंकि ज्ञानादिकोंसे रहित विनय साक्षात् मुक्ता अंग नहीं है. ज्ञान, दर्शन, चारित्रसे रहित पुरुष, केवल पादपतलिक विनयसे मुक्ति नहीं पा सकता है. किंतु ज्ञानादिक सहितही पा स है, तब तो ज्ञानादिकही साक्षात् मुक्तिके अंग दूये विनय नहीं.

पूर्वपक्षः—कैसे हम जानीये जो ज्ञानादिकही मुक्तिके अंग है ?

उत्तरपक्षः—इस संसारमें मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति, इन तीनोंही कर कर्म वर्गणाका संबंध आत्माको होता है, अरु कर्मकालका जो क्षय ना है, सोइ मोक्ष है. “मुक्तिः कर्मक्षयादिष्टेति वचनप्रामाण्यात्” अ कर्मका क्षय तो तब होगा, जब कर्मबंधका कारण उच्छेद होगा, अरु नैका कारण तो मिथ्यात्वादि तीन है, इस वास्ते मिथ्यात्वका प्रतिपक्ष सम्यक् दर्शन है, अरु अज्ञानका प्रतिपक्ष सम्यक् ज्ञान है, अरु अविरति प्रतिपक्ष सम्यक् चारित्र है, जब इन तीनोंको सेवता हुआ, यह तीनों कर्म जावको प्राप्त होगे. तब सर्वथा कर्मोंका कारण दूर होवेगा. जब कारण उच्छेद होवेगा, तब निर्मूल कर्मोच्छेदके होनेसे मोक्ष होवेगी, इस स्ते ज्ञानादिकही मोक्षका अंग है, परंतु विनय मात्र नहीं. अरु जो ज्ञानादिकों विषे विनय करता हुआ परंपरा करके मुक्ति अंग है, अरु साक्षात् मोक्षका हेतु तो ज्ञानादिक है, अरु जो जैनशास्त्रोंमें केइ जगें लिखा कि “सर्वकल्याणजाजनं विनयः” सो ज्ञानादिकोंकी प्रवृत्ति वास्ते है, अरु जे कर विनयवादीनी इसी तरे मानता है, तब तो विनयवादीनी हमामतमेंही वृत्त है, तब तो विवादाकाही अज्ञाव है ॥ इति विनयवादी मत अंश ॥ यह समुच्चय ( ३६३ ) मतका किंचित् मात्र स्वरूप लिखा है. अथ नव्य जीवोंके शीघ्र बोध होने वास्ते पद दर्शनोंका किंचित् स्वरूप

प लिखते हैं. उसमें प्रथम बौद्ध दर्शनका स्वरूप है सो कहते हैं, मतमें गुरु जो होते हैं, तिनका लिंग ऐसा होता है. १ मस्तक दुवा, २ चामका टूकडा, ३ कमंमल्लु, ४ धातुरक्त वस्त्र, यह तो का वेष है. अरु शोचक्रिया बहुत है, कोमल शब्दोंमें सोनां, सर्वे र पेया पीनां, मध्यान्ह कालमें जात खानां, अपरान्हमें पानी पीनां, २ खंन, मिसरी. अर्द्धरात्रिमें मरणांतमें मोक्ष, यह बौद्धोंका चजन है, मनगमता नोजन करनां. मनगमती शब्दा. आसन, अरु मनगमता का स्थान, ऐसी अष्टी सामग्रीसे मुनि अष्टा ध्यान करता है, अरु पात्रमें जो कुठ पड जावे, सो सर्व बुद्ध, ऐसे मान करके मांतनी लेते है, अरु ब्रह्मचर्यादि अपणी क्रियामें बहुत दृढ होते है, यह आचार है, १ धर्म, २ बुद्ध, ३ संघ, यह तीनोंको रत्नत्रय ते हैं, अरु शासनके विघ्नोके नाश करने वाली तारा देवी मानते अरु विपश्चादिक सात बौद्धावतार जिनोकी मूर्तियोंके कंठमें तीन रेखाका चिन्ह होता है, तिसकूं जगवान् मानते है, तिसकूं सर्वज्ञ मानते अरु बुद्ध जगवान्को जितने नामों कर कहते है, सो लिखने १ बुद्ध, २ सुगत, ३ धर्मधातु, ४ त्रिकालवित्, ५ जिन, ६ बो सत्त्व, ७ महाबोधी, ८ आर्य, ९ शास्ता, १० तथागत, ११ पंचज्ञान. पडनिज्ञ, १३ दशार्ह, १४ दशनूमिग, १५ चतुस्त्रिंशद्भातकज्ञ, १६ दश रमिताधर, १७ षाडशाह, १८ दशवल, १९ त्रिकाय, २० श्रीधन, २१ अक्षय, २२ समंतजड, २३ संगुप्त, २४ दयाकूर्च, २५ विनावक, २६ रजित, २७ लोकजित, २८ मुखजित, २९ धर्मराज, ३० विज्ञानमात्र ३१ महामैत्र, ३२ मुनीड. यह वचील नाम, बुद्ध जगवान्के कहते अरु सात बुद्ध मानते है, १ विपशी, २ शिखी, ३ विश्वनू, ४ ककुब्ध ५ कांचन, ६ काश्यप, ७ शाक्यसिंह. पीठला जो शाक्यसिंह बुद्ध है, उसके नाम, १ शाकसिंह, २ अर्कवांधव, ३ राहुजमू, ४ सर्वार्थसिंह, गोतम, ५ मायासुत, ६ बुद्धोदनसुत, ७ देवदत्ताप्रज. तथा १ निष्ठ, सौगत, २ शाक्य, ३ शोकींदनी, ५ सुगत, ६ तथागत, यह अन्यवादी धर्मोंके नाम हैं. तथा १ शोकींदनी, २ धर्मोत्तर, ३ अर्षेट. ४ धर्मकीर्ति. प्रडाकर, ५ विद्याग, ७ रामट. इत्यादि ग्रंथोंके करने वाले गुरु हैं. त

तर्कज्ञापा, १ न्यायविद्, २ हेतुविद्, ४ अर्बट, ५ तर्ककर्मजशैत, ६ न्याय  
वेश, ७ ज्ञानपारं, इत्यादि नाम उनके तर्कशास्त्रोंके हैं. तथा बौद्धोंकी शा  
चार है, सो कहते हैं, १ वैज्ञापिक, २ सौतांत्रिक, ३ योगाचार, ४ माध्यमिक.  
अथ बौद्धमतं. बौद्ध चार वस्तु मानते हैं, सो लिखते हैं, १ दुःख, २  
दाय, ३ मार्ग, ४ निरोध. तहां जो दुःख है, सो पांच स्कंधरूप है,  
का नाम लिखते हैं, १ ज्ञानस्कंध, २ वेदनास्कंध, ३ संज्ञास्कंध, ४  
हारस्कंध, ५ रूपस्कंध. इन पांचो विना अरु कोइनी आत्मादिक  
थी नहीं है, यह पांच स्कंधका अर्थ लिखते हैं. १ रूपविज्ञानं, रस  
ज्ञानं, इत्यादिक निर्विकल्पक जो विज्ञान है, सो विज्ञान स्कंध, २ सुखा  
ज्ञा, अदुःख सुखा, यह वेदनास्कंध है, यह वेदना पूर्वकृत कर्मोंसे हो  
है, ३ सविकल्पक ज्ञान जो है, सो संज्ञास्कंध, ४ पुण्य अपु  
दिक धर्म समुदाय जो है, सो संस्कारस्कंध है, इसही संस्कारके प्र  
सें पूर्व अनुभवका स्मरणादिक होता है, ५ पृथिवी, धातु आ  
रु रूपादिक. यह रूपस्कंध है, इन पांचोंसे अतिरिक्त आत्मादि  
कोइ पदार्थ नहीं. अरु यह जो पांचों स्कंध है, वे सर्व एक कृणमा  
रहते हैं, नित्यनी नहीं है, अरु कितनेक काल तांइ रहनेवालेनी नहीं है,  
दुःख तत्त्वके पांच जेद कहें.

अथ दुःख तत्त्वका कारणभूत समुदाय तत्त्वका स्वरूप लिखते हैं,  
इस जगत्में राग द्वेषोंका समूह उत्पन्न होता है, वो राग द्वेषका स  
कैसा है? कि "आत्माआत्मीयतावाख्यः" मैं हूं, यह मेरा है, अ  
जो संबंध, तथा यह दूसरा है, यह दूसरेकी वस्तु है, ऐसा जो सं  
, सोइ है नाम जिसका इस करके जो राग द्वेषादिक उत्पन्न होते हैं,  
सका नाम समुदायतत्त्व है. अथ दुःख, अरु समुदाय, यह जो दोनों  
सो संसारकी प्रवृत्तिके हेतु है.

अथ इन दोनोंके जो विषयभूत १ मार्ग २ निरोध तत्त्व है, सो लिखते हैं.  
"परमनिःकृष्टं काल-कृणं" तिसमें जो होवे, सो कृणिक है, सर्व पदार्थ  
णमात्र रह कर नाश हो जाते हैं, आत्मा कोइ सर्वकाल स्थायी नहीं पू  
कृणके नाश होनेसे तत्सदृश उत्तर कृण उत्पन्न होता है, पूर्वज्ञान जनिता  
तना सो उत्तर ज्ञानमे शक्ति है, अरु कृणोंकी परपरा करके जो मान

सी प्रतीति होवे, तिसका नाम मार्ग है, सो निरोधका कारण अथ चौथा निरोध नामा तत्त्व लिखते है, निरोध नामा तत्त्व कहते हैं. चित्तकी जो निःक्लेश अवस्था तिसका नाम निरोध तत्त्व है मांतर करिकें मोह कहते है, यह दुःखादि चारकों आर्यतत्त्व कहते अरु यह जो चारों तत्त्व अनंतर कहे है, सो सौतांत्रिक बौद्धमतकी

अरु जेकर चेद रहित समुच्चय बौद्धमतकी विवक्षा करियें, तब बौद्धमतमें वारा पदार्थ होते हैं, उसमें १ श्रोत्र. २ चक्षु, ३ ए, ४ रसन, ५ स्पर्शन, यह पांच तो इंद्रिय, अरु इन पांचों इंद्रियोंके पांच विषय, तथा १ चित्त, २ शब्दायतन धर्म जो है, दुःखादि तिनका जो आयतन ( घर ) सो क्या है? कि शरीर है यह द्वादश तत्वोंका नाम आयतन कहते हैं, अरु यह वारा आयतन है, उक्त प्रकारसे. चार तत्त्व तो सौतांत्रिकके मतके, अरु सामान्य से बौद्धमतके वारा आयतन कह करके अथ बौद्धमतके प्रमाण लिखते हैं, बौद्धमतमें एक प्रत्यक्ष, दूसरा अनुमान, यह दो प्रमाण माने हैं ॥ इति संक्षेप मात्र बौद्धदर्शन ॥ १ ॥

अथ नैयायिक दर्शन लिखते हैं. नैयायिक मतका अपर नाम योगमत कहते हैं; इन नैयायिकोंके गुरु १ दंभ रखते है, २ बड़ी कौपीन पहने हैं, ३ कांबली उढते हैं, ४ जटा राखते है, ५ शरीरकों नरम लगाते हैं, ६ नीरस आहार करते हैं, ७ बांहके मूलमें तुंबी राखते हैं, ८ प्राण रकें वनोमें रहते है, ९ आतिथ्य कर्ममें तत्पर होते है, १० कंद, मूत्र फल, खाते हैं, ११ कितनेक स्त्री रखते हैं, औ कितनेक नहीं रखते हैं १२ जो स्त्री नहीं रखते हैं, सो तिनमें उत्तम गये जाते हैं, १३ पंचांग तापते हैं, १४ जटामें प्राणलिंग धरते है, १५ उत्तम संयम-अवस्था जब प्राप्त होते है, तब नग्न हो कर भ्रमण करते है, १६ सवेरे दंत धुवादि शौच करके शिवका ध्यान करते हैं, १७ नरम करके तीन तीन कर अंगकूं स्पर्श करते हैं, १८ जो उनका जक्त चंदना करता है, सो " नम. शिवाय " कहता है, अरु १९ गुरु जक्तके तांड " शिवाय नम " से कहता है. उनका कहना ऐसानी है, कि जो पुण्य शैवी दीक्षा करके वर्षपाल करके ठोड देवे, जेकर पीठे वो दास दासीनी होवे, तोनी निदांग

पाता है, अरु शंकर इनका देव है, सो शंकर कैसा हैकि:—सर्व सृष्टि संहारका कर्ता है.

तिस शंकरके अठारह अवतार मानते हैं, तिसका नाम लिखते हैं. नकुलीश, १ कौशिक, २ गार्ग्य, ४ मैत्र, ५ कौरुप, ६ ईशान, ७ अपगार्ग्य, ८ कपिलांन, ९ मनुष्यक, १० अपर कुशिक, ११ अत्रि, १२ पिपाह, १३ पुष्पक, १४ बृहदाचार्य, १५ अगस्ति, १६ संतान, १७ राशिकर, १८) विद्यागुरु, यह अष्टारह उनके तीर्थेश है, इनकी बहुत सेवा करते इनका पूजन, अरु प्रणिधान तिनके शास्त्रोंसें जान लेनां.

अरु इनका अरूपपाद मुनि अर्थात् गौतम मुनि गुरु है, तिनके मतमें षट् पूजनिक है, सो कहते है, देवताओंके सन्मुख हो कर नमस्कार करणी, जैसा नैयायिक मतमें लिंग, वेप, देवादि स्वरूप है, तैसाही वैशेषिक मतमेंजी जान लेनां, क्योंकि नैयायिक वैशेषिकोंके प्रमाण अरु दोनोंमें थोडासा जेद है, इस वास्ते यह दोनो मत तुल्य ही है, इन दोनोंकों तपस्वी कहते है, अरु तिनके शैवाडिक चार जेद है, एक शैव, दूरा पाशुपत, तीसरा महाव्रतधर, चौथा कालमुख इनके अवांतर जेद षट्, जक्तलैंगिक, तापसाडिक है, जरटादिकोंको व्रत ग्रहणमें ब्राह्मण वर्णोंका नियम नहीं, किंतु जिसकी शिव विषे जक्ति होवे, सो व्रती जटाडिक होता है, परंतु नैयायिक जो है, सो सर्व सटाशिवजक्त होनेसें इनका नाम शैव कहते है, अरु वैशेषिकोंको पाशुपत कहते है.

इन नैयायिकोंके मतमे १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ उपमान, ४ शास्त्र, यह चार प्रमाण मानते है, अरु १ प्रमाण, २ प्रमेय, ३ सशय, ४ योजन, ५ दृष्टांत, ६ सिद्धांत, ७ अवयव, ८ तर्क. ९ निर्णय, १० वाचस्पति, ११ जल्प, १२ वितर्क, १३ हेत्वानास, १४ ठल, १५ जातय, १६ ग्रहस्थान. यह सोला पदार्थ मानते हैं, इनका विस्तार बहुत है. इस वास्ते नहीं लिखा, अरु आत्यंतिक दुःखोंका जो वियोग तिसकू मोक्ष कहते. इनके १ न्यायसूत्र, अरूपपाद मुनि कर्ता, २ जाप्य, वात्स्याय मुनि कर्ता, ३ न्याय वार्तिक, उद्योतकर कर्ता, ४ तात्पर्य टीका, वाचस्पति कर्ता, ५ तात्पर्य परिशुद्धि, उदयन कर्ता, ६ न्यायलंकार वृत्ति, श्रीकंगनयतिलकोपाध्याय कर्ता, ७ नासर्वज्ञप्रणीत,

न्यायसार. तिसविषे अठारह टीका है, तिनमेंसे न्यायनूपण टीका प्रसिद्ध है, न्यायकलिका जयंत रचित, न्याय कुमुमांजलि यह इन नैयायिकोंके तर्क ग्रंथ है, यह नैयायिकदर्शन, संक्षेपसे ज्ञान.

अथ वैशेषिकनी यही लिख देते हैं. कि वैशेषिकोंका मत न के तुल्यही है, परंतु यह विशेष है कि, यह मतवाले प्रत्यक्ष अस्मान यह दो प्रमाण मानते हैं, अरु १ इन्द्र, २ गुण, ३ कर्म, ४ न्य, ५ विशेष, ६ समवाय, यह चाचरूप ठ तत्त्वों मानते हैं, इन विस्तार देखनां होवे, तदा वैशेषिक मतके ग्रंथोंमें देख लेना, तथा पागडाचार्य श्रीगुणरत्नसूरिविरचित पट्टदर्शन समुच्चय ग्रंथकी टीका लेनी. अरु यह वैशेषिकमतके जो तर्कग्रंथ है, सो कहते हैं, तो ६००० श्लोक प्रमाण, कंदली श्रीधर आचार्य कर्त्ता, वैशेषिकत्र, ३००० श्लोक प्रमाण, प्रशस्तरु नाप्य, ७०० श्लोक मान, व्योमशिवार्यकृत व्योममतीटीका, ९००० श्लोक मान, उदयनकी करी हूइ किरणाली ६००० श्लोकमान, श्रीवत्स आचार्यकृत लीलावती टीका ६००० श्लोकमान, अरु एक आग्नेय तत्र था, सो व्यवहृत हो गया है. यह वैशेषिक मतवाले कहते हैं की शिवजीने उलूकका रूप करके कणाद मुनि के आगे यह वैशेषिक मत प्रकाश करा था, इस वास्ते इस मतका नाम श्रीलूक्य मतनी कहते हैं ॥ इति वैशेषिक मत ॥

अथ सांख्यमत लिखते हैं. प्रथम तो सांख्यमतके साधुओंके जाननेवास्ते उनका लिंगादिक लिखते हैं. सो त्रिदंतीनी होते हैं, कौपीन पहनाते हैं, धातुरक्त वस्त्र रखते हैं, कोइ शिर उपर शिखा रखते हैं, अरु कोइ टा रखते हैं, कोइ मस्तक द्युरमुंरु कराते हैं, मृगचर्मका आसन रखते हैं, जके घरका अन्न खाते हैं, केइ पांचही ग्राम खाते हैं, अरु वाग अक्षर जाप करते हैं, तिनके जल, जब गुरुकृं वंदना करता है, तब "ॐ नमो नारायणाय" असे कहते हैं, तब गुरु उनकें "नमो नारायणाय" असे कहते हैं, अरु महाजारतमें जिसका नाम "वीटा" अस्ता जिखा है, यह काण्ड मुखवस्त्रिका मुखके निगंधके वास्ते रखते हैं, जिससं मुखभासे जीवहिंसा न तब ॥

श्लोक ॥ तेषां प्राणाद्युयातेन, आसनेन दिनः ॥ १ ॥ तेषां सांख्य गुरुः

के जीवोंकी दया वास्ते अपने पास पाणीके ठानने वास्ते गजनां राख  
है, अरु अपने नक्तोकूं पाणीके ठानने वास्ते तीस अंगुल प्रमाण लां  
। और वीस अंगुल प्रमाण चौड़ा, दृढ ठजना राखनेका उपदेश करते है, अरु  
। जीव पानीके ठाननेसे निकले, वो उसी पाणीमें पीठे प्रक्षेप करने,  
योंकि मीठे पाणी करके खारे पाणीके पूरे मर जाते है, अरु खारे पा  
। नीके मिलनेसे मीठे पाणीके पूरे मर जाते हैं, इस वास्ते परस्पर पानी  
। योंका मेल न करनां, बहुत सूक्ष्म पाणीके एक विडुमें इतने जीव है कि  
। कर त्रमर समान उस जीवोंकी काया बनाइ जावे, तो तीन लोकमें वे  
। जीव न समावे ॥ इति गजनक विचारो मीमांसाया ॥

यह सांख्यजी एक प्राचीन, अरु एक नवीन, ऐसे दो तरके हैं, नवीनोका  
। सरा नाम पांतांजलजी कहते है, इनमेंसूं प्राचीन सांख्य ईश्वरकों नही  
। मानते है, अरु नवीन सांख्य ईश्वरकों मानते है, जो निरीश्वर है वो ना  
। त्रयण पर है, अरु उनके जो आचार्य है, सो विष्णु प्रतिष्ठा कारका चैत  
। न्य प्रमुख शब्दों करके कहे जाते है, अरु सांख्य मत कहने वाले यह  
। प्राचार्य है सो लिखते है. कपिल, आसुरी, पंचशिख, जार्गव, उलूक, ईश्वर,  
। कृष्ण, यह शास्त्रोंके कर्ता है. सांख्यमत वालोंकों कापिलाजी कहते है, तथा  
। कपिलाका परमर्षि ऐसा दूसराजी नाम है, इस वास्ते तिनकों पारमर्षाजी  
। कहते है, वाणारसीमें सो बहुत होते है. मासोपवासजी करते है, अरु ब्रा  
। ह्मण जो है, सो अर्चिमागिसें विरुद्ध धूममार्गानुगामी है, अरु साख्य  
। जो है, सो अर्चिमागानुयायी है, तिस वास्ते ब्राह्मणोंको तो वेद  
। प्यारे है, अरु यज्ञमार्गानुयायी है, अरु सांख्य जो है सो हिंसा करके  
। पूर्ण, ऐसे जो वेद, तिनोसे निवर्त्ते हूये है, अध्यात्मवादी है सो साख्य  
। अपने मतकी महिमा ऐसी मानते है. मातर शास्त्रके प्रांतमे लिखा है  
। ॥श्लोक॥ हस पिव चखाढ मोदं, नित्यं जुद्धव च नोगान् यथाऽनिकामं ॥ यदि  
। विदित कपिलमतं, तत्प्राप्त्यसि मोक्षसौख्यमचिरेण ॥१॥ अथस्यार्थः.—जे कर  
। तुमने कपिल मत जाना है तो हसो, पीयो, खेलो, खाउं, सदा खुशी रहो,  
। जैसे रुचि होवे, तैसे नोगोंको सदा नोगो, तो तुमकों थोडेसे कालमें मुक्ति  
। सुख प्राप्त होवेगा. शास्त्रातरमेजी कहा है ॥ श्लोक ॥ पचविंशति तत्त्वज्ञो,  
। यत्र तत्राश्रमे रतः ॥ शिखी मुंढी जटी वापि, मुच्यते नात्र संशयः ॥ १ ॥



न्यायसार. तिसविषे अठारह टीका है, तिनमेंसे न्यायज्ञापण टीका प्रसिद्ध है, न्यायकलिका जयंत रचित, न्याय कुसुमांजलि यह इन नैयायिकोंके तर्क ग्रंथ है, यह नैयायिकदर्शन. संक्षेपसे लिखा.

अथ वैशेषिकनी यही लिख देते है. कि वैशेषिकोंका मत नैयायिकोंके तुल्यही है, परंतु यह विशेष है कि, यह मतवाले प्रत्यक्ष अस्मान यह दो प्रमाण मानते है, अरु १ इव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ न्य. ५ विशेष, ६ समवाय, यह नावरूप ठ तत्त्वों मानते हैं, इन विस्तार देखनां होवे, तदा वैशेषिक मतके ग्रंथोंमें देख लेनां, पागडाचार्य श्रीगुणरत्नसूरिविरचित षट्दर्शन समुच्चय ग्रंथकी टीका लेनी. अरु यह वैशेषिकमतके जो तर्कग्रंथ है, सो कहते है, तो ६००० श्लोक प्रमाण, कंदली श्रीधर आचार्य कर्ता, वैशेषिक तत्र, ३००० श्लोक प्रमाण, प्रशस्तकर ज्ञाप्य, ७०० श्लोक मान, व्योमशिवर्यरुत व्योममतीटीका, ९००० श्लोक मान, उदयनकी करी दूइ किरणली ६००० श्लोकमान, श्रीवत्स आचार्यरुत लीलावती टीका ६०० श्लोकमान, अरु एक आश्रय तत्र था, सो व्यवहृद् हो गया है. यह वैशेषिक मतवाले कहते है की शिवजीने उलूकका रूप करके कणादके आगे यह वैशेषिक मत प्रकाश करा था, इस वास्ते इस मतका औजूक्य मतनी कहते हैं ॥ इति वैशेषिक मत ॥

अथ सांख्यमत लिखते है प्रथम तो सांख्यमतके साधुओंके जानने स्ते उनका लिंगादिक लिखते है. सो त्रिदंतीनी होते है, कौपीन पदे हैं, धातुरक्त वस्त्र रखते है, कोइ शिर उपर शिखा रखते है, अरु कोइ टा रखते है, कोइ मस्तक द्युरमुंढ कराते है, मृगचर्मका आसन रखते हैं, जके घरका अन्न खाते है, केइ पांचही आस खाते है, अरु वारा अन्न जाप करते है, तिनके जक्त, जब गुरुकूं बंदना करता है, तब " उं नमो नारायणाय " ऐसे कहते है, तब गुरु उनकूं " नमो नारायणाय " ऐसे कहते है, अरु महानारतमे जिसका नाम "वीटा" ऐसा लिखा है, यह काष्ठकी मुखवस्त्रिका मुखके नि.श्वास निरोधके वास्ते रखते हैं, जिससे मुखश्वासें जीवहिंसा न होवे. यदाहुः " ॥ श्लोक ॥ तेप्राणादनुयातेन, श्वासेनैकेन च तवः ॥ हन्यंते शतशो ब्रह्म, त्रणुमात्राद्गुरवादिनः ॥ १ ॥ ते सांख्य गुरु, ब्र

के जीवोंकी दया वास्ते अपने पास पाणीके ठानने वास्ते गलनां राख हैं, अरु अपने जक्तोकूं पाणीके ठानने वास्ते तीस अंगुल प्रमाण लां । और वीश अंगुल प्रमाण चौडा, दृढ ठलना राखनेका उपदेश करते हैं, अरु ते जीव पानीके ठाननेसें निकले, वो उसी पाणीमें पीठे प्रक्षेप करने, योंकि मीठे पाणी करके खारे पाणीके पूरे मर जाते हैं, अरु खारे पाणीके मिलनेसें मीठे पाणीके पूरे मर जाते हैं, इस वास्ते परस्पर पानीोंका मेल न करनां, बहुत सूक्ष्म पाणीके एक बिडुमें इतने जीव हैं कि । कर भ्रमर समान उस जीवोंकी काया बनाइ जावे, तो तीन लोकमें वे जीव न समावे ॥ इति गलनक विचारो मीमांसायां ॥

यह सांख्यजी एक प्राचीन, अरु एक नवीन, ऐसे दो तरंके हैं, नवीनोका सरा नाम पांताजलजी कहते हैं, इनमेंसूं प्राचीन सांख्य ईश्वरकों नहीं मानते हैं, अरु नवीन सांख्य ईश्वरकों मानते हैं, जो निरीश्वर है वो नायण पर हैं, अरु उनके जो आचार्य हैं, सो विष्णु प्रतिष्ठा कारका चैतय प्रमुख शब्दों करके कहे जाते हैं, अरु सांख्य मत कहने वाले यह प्राचार्य हैं सो लिखते हैं. कपिल, आसुरी, पंचशिख, नार्गव, उलूक, ईश्वर, ऋण, यह शास्त्रोंके कर्ता हैं. सांख्यमत वालोंकों कापिलाजी कहते हैं, तथा कपिलाका परमार्थ ऐसा दूसराजी नाम है, इस वास्ते तिनकों पारमर्षाजी कहते हैं, वाणारसीमें सो बहुत होते हैं. मासोपवासजी करते हैं, अरु ब्राह्मण जो हैं, सो अर्चिमार्गसें विरुद्ध धूममार्गानुगामी हैं, अरु सांख्य जो हैं, सो अर्चिमार्गानुयायी हैं, तिस वास्ते ब्राह्मणोको तो वेद प्यारे हैं, अरु यज्ञमार्गानुयायी हैं, अरु सांख्य जो हैं सो हिंसा करके पूर्ण, ऐसे जो वेद, तिनोसें निवर्त्ते दूये हैं, अध्यात्मवादी हैं सो सांख्य अपने मतकी महिमा ऐसी मानते हैं. मातर शास्त्रके प्रांतमें लिखा है ॥श्लोक॥ हस पित्र चखाद मोदं, नित्यं जुद्धव च नोगान् यथाऽनिक्रामं ॥ यदि विदित कपिलमतं, तत्प्राप्स्यसि मोक्षसौख्यमचिरेण ॥१॥ अस्वार्थ —जे कर तुमने कपिल मत जाना है तो हसो, पीयो, खेजो, खाठ. सदा खुशी रहो, जैसे रुचि होवे, तैसे नोगोंको सदा नोगो, तो तुमकों थोडेसें कालमें मुक्ति सुख प्राप्त होवेगा. शास्त्रातरमेजी कहा है ॥ श्लोक ॥ पचविंशति तत्त्वज्ञो, यत्र तत्राश्रमे रत ॥ शिखी मुंभी जटी वापि, मुच्यते नात्र संशय ॥ १ ॥

अस्यार्थः—पञ्चीश तत्त्वोंका जो जानकार होवे, सो चाहो किसी अ  
 जिखावाला होवे, या मुंनित होवे, अथवा जटावाला होवे, वे सर्व  
 धिसें बूट जाते है, इसमें संशय नहीं.

अब साख्यमतमें सर्वसांख्य पञ्चीश तत्त्व मानते हैं, जब पुरुष  
 खोसैं अनिहत होता है, तब तिन दुःखोंके दूर करणे वास्ते  
 त्पन्न होती है, सो तीन दुःख यह हैं १ आध्यात्मिक, २  
 विक, ३ आधिजैतिक, यह तीन दुःख हैं, आध्यात्मिक जो आधिदे  
 दो प्रकारकी है, एक शारीरी, दूसरी मानसी, तहां जो वायु, पित्त,  
 इन तीनोंकी विपमतासैं देहमें जो अतिसारादिक होते है, सो  
 है. अरु काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, विषयोंके देखनेसैं जो होवे,  
 मानसी. यह दोनोही आंतर उपायसे दूर हो सकत है इस वास्ते  
 आध्यात्मिक दुःख कहते हैं, २ अरु जो बाह्य उपाय करकें साध्या जावे  
 दुःख दो प्रकारके हैं, एक आधिजैतिक, दूसरा आधिदेविक, तहां  
 दुःख मनुष्य, पशु, पक्षी, मृग, सर्प, स्थावर आदिके निमित्त करिकें हो  
 है ताकूं आधिजैतिक कहते हैं, ३ अरु यद्द, राक्षस, जूतादिकका प्र  
 हो जाना, तथा महामारी अनावृष्टि अतिवृष्टिका होना तिसका नाम  
 धिजैतिक है. इन तीनों दुःखों करकें रज परिणामके जेद करकें प्रा  
 योंकों दुःखोंके दूर करणे वास्ते तत्त्वोंके जाननेकी इज्ञा होती है, ता  
 त्व, पञ्चीश प्रकारके हैं.

अब प्रथम पञ्चीश तत्त्वोंका स्वरूप लिखते है. तिनमें प्रथम सत्त्वाधि  
 णोंका स्वरूप कहते है. १ प्रथम सत्त्वगुण सुखलक्षण, २ दूसरा रजो  
 दुःख लक्षण, ३ तीसरा तमोगुण मोहलक्षण, इन तीनों गुणोंके यह लि  
 है, १ सत्त्वगुणका चिन्ह प्रसन्नता, २ रजोगुणका चिन्ह संताप, ३ त  
 गुणका चिन्ह दीनपणा, अब १ प्रसाद, २ बुद्धिपाटव, ३ लाघव, ४ प्र  
 ५ अनजिप्सव, ६ अक्षेप, ७ प्रीत्यादय, यह सत्त्वगुणके कार्यलिंग  
 १ ताप, २ शोष, ३ जेद, ४ चञ्चलित्त, ५ स्तंभ, ६ उद्वेग, यह रजो  
 के कार्य लिंग है, १ दैन्य, २ मोह, ३ मरण, ४ असादन, ५ वीनत  
 ६ ज्ञानगौरवादि, यह तमोगुणके कार्यलिंग है. इन कार्यो करकें सत्त्व  
 गुण जाने जाते है ॥ तथाहि ॥ लोकमें जो कुठ सुख उपलब्ध होता

१ आर्जव, २ मार्दव, ३ सत्य, ४ शौच, ५ लज्जा, ६ बुद्धि, ७ दृढता, अनुकंपा, प्रसादादि, यह सर्व सत्त्व गुणके कार्य है. अरु जो कुठ ल उपलब्ध होता है, सो १ वैष, २ झोह, ३ मत्सर, ४ निंदावचन, ५ बंधन, पादि स्थान हैं, सो रजोगुणके कार्य है. अरु जो कुठ मोह, उपलब्ध ता है, सो १ अज्ञान, २ मद, ३ आलस्य, ४ जय, ५ दैन्य, ६ रूपण, ७ नास्तिकता, ८ विपाद, ९ उन्माद स्वप्नादि, यह तमोगुणके कार्य यह सत्त्वादिक परस्पररोपकारी तीन गुणों करके सर्व जगत् व्याप्त है, तु ऊर्ध्व लोकमें देवतायों विषे बाहुल्य करके सत्त्वगुण है, औ अ नीक तिर्यंच नरकों विषे बाहुल्य करके तमोगुण है, औ मनुष्यों बहुलता करके रजो गुण है, इन तीनों गुणों की जो सम अवस्था है, सका नाम प्रकृति है, तिस प्रकृतिकों प्रधान, अव्यक्त शब्दों करकेनी स्ते है, सो प्रकृति नित्य स्वरूप है, "अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावं स्थं नित्यं" यह नित्यका लक्षण है. अरु यह जो प्रकृति है सो अ य, वा असाधारणी, अशब्दा, अस्पर्शा, अरसा, अरूपा, अगंधा, अ या, कहते हैं. अरु जो मूल सांख्यमती है, वे एकैक आत्माके साथ रा न्यारा प्रधान मानते हैं, अरु जो नवीन सांख्य है, वे सर्वात्मा में एक, नित्य, प्रधान मानते हैं, प्रकृति अरु आत्माके संयोगसें सृष्टि ती है, इस वास्ते सृष्टि होनेका क्रम लिखते हैं

तिस प्रकृतिसेंती बुद्धि उत्पन्न होती है, गौ आदिकोंके आगें दीखने यह गौही है घोडा नही, यह स्थाणुही हैं, परंतु पुरुष नही, औसा जो अथरूप अध्यवसाय होता है, तिसका नाम बुद्धि कहते हैं, दूसरा ति हा नाम महत्जी कहते हैं. तिस बुद्धिके आठ रूप हैं. १ धर्म, २ ज्ञान, वैराग्य, ४ ऐश्वर्य, यह चार तो सात्विक बुद्धिके रूप है, १ अधर्म, २ ज्ञान, ३ अवैराग्य, ४ अनैश्वर्य, यह चारो तामसी बुद्धिके रूप है. ति बुद्धिसे अहंकार उत्पन्न होता है, तिस अहंकारसेंति सोला गुणका मूह उत्पन्न होता है, सो गुण यह है, १ स्पर्शनं (त्वक्) २ रसनं ष्वा, ३ घ्राणं नासिका, ४ चक्षुलोचनं, ५ श्रोत्र श्रवणं. इन पांचोको ईंद्रिय कहते हैं, क्योंकि यह पांचों अपने अपने विषयको जानती, अरु पांच कर्मेंद्रिय है. १ पायु गुदा, २ उपस्थ स्त्री पुरुषका चिन्ह, ३

कंठदि आठस्थानोंसे जो शब्द उच्चरिये है, सो वच, ४ हाथ, ५ पा, पांचोंसे पांच काम होते हैं. १ मजोत्सर्ग, २ संजोग, ३ वचन पकडना, ५ चलना, इस वास्ते इन पाचोंको कर्मेन्द्रिय कहते है. गीथारवा मन. यह मन जो है, सो बुद्धीन्द्रियोंसे मिलता है, तब यरूप हो जाता है, अरु जब कर्मेन्द्रियोंसे मिलता है, तब हो जाता है, अरु यह मन जो है, सो संकल्पवृत्ति है, तथा ५ पांच तन्मात्रा जिनकी सूक्ष्म संज्ञा है, सो उत्पन्न होते है, तहा १ तन्मात्रा सो शुक्ल कृष्णादिरूप विशेष, २ रस तन्मात्रा सो तिकादि विशेष, ३ गंध तन्मात्रा सो सुरन्यादि गंध विशेष, ४ शब्दतन्मात्रा, मधुरादि शब्द विशेष, ५ स्पर्शी तन्मात्रा, सो मृडु काठिन्यादि स्पर्शी प, यह षोडशका गण है. अथ पांच तन्मात्राओंसे पांच नूत उत्पन्न है, सो कहते हैं. १ रूप तन्मात्रा सूक्ष्म संज्ञासे अग्नि उत्पन्न होता २ रस तन्मात्रासे जल उत्पन्न होता है, ३ गंध तन्मात्रासे पृथिवी होती है, ४ औ शब्द तन्मात्रासे आकाश उत्पन्न होता है, तथा ५ तन्मात्रासे वायु उत्पन्न होता है अैसे पांच तन्मात्राओंसे पांच नूत होते हैं, अैसे यह सब मिल कर चोवीश तत्त्व रूप सांख्य मतमें निवेदन किया, “ औ अकर्ता विगुण जोक्ता ” अैसा पुरुष तत्त्व चिद्रूप मानते है, चोवीश तत्त्वरूप प्रधान अैसे हैं कि १ प्रकृति, २ अहंकार, ७ पांच ज्ञानेन्द्रिय, १३ पांच कर्मेन्द्रिय, १४ मन, १५ च तन्मात्रा, १४ पांच नूत, यह चोवीश तत्त्व हैं. तिनमेंसे प्रथम एक प्रकृति है, ऐसे अनुत्पन्न होनेसे बुद्धि आदिक सात अगलोंके तो कारण है, अरु पीठलोंके कार्य है, इस वास्ते इन सातोंको प्रकृति विकृति कहते हैं, अरु षोडशका गण सो कार्यरूप होणेसे विकृति रूप है, अरु पुरुष जो है, सो न प्रकृति है, न विकृति है, न किसीसे उत्पन्न हुआ है, न किसीको उत्पन्न करता है, इस हेतुसे ॥ तथाचेश्वर कृष्ण सारख्यसप्तौ ॥ “ मूलप्रकृतिरविकृति, महदाद्या. प्रकृतिविकृतय सप्त ॥ षोडशकअवि कारो, विकृतय न प्रकृतिर्न विकृति. पुरुष इति ॥ अर्थः—तथा ईश्वर कृष्ण सारख्यमतका आचार्य सांख्यसप्तति ग्रंथमे लिखता है, कि मूल प्रकृति अविकृति है, महत् आदिक सात प्रकृति विकृति है, षोडशक विकार

ते हैं. न प्रकृति है, न विकृति है, सो पुरुष है. तथा महदादिक, प्रकृति विकार है, सो व्यक्त हो कर फेर अव्यक्तनी हो जाते हैं, सो अनित्य से अपणो स्वरूपसें त्रंश हो जाते हैं, अरु प्रकृति जो है, सो अविकृत है, सो कदापि अपणो स्वरूपसें त्रंश नहीं होती है. तथा महत् इकोंका अरु प्रकृतिका स्वरूप सांख्यमतवाले जैसे मानते हैं ? हे १, २ अनित्य, ३ अव्यापक, ४ सक्रिय, ५ अनेक, ६ आश्रित, ७ लिङ्ग सावयव, ८ परतत्र, १० व्यक्त, इनसें विपरीत प्रकृति है. तहां १ हे २ कारण वाले हैं, महत् आदिक २ अनित्य, उत्पत्ति धर्मवाले हैं, ३ बुद्धि अद्वैत व्यापी है, सर्वगत नहीं, ४ अथ्यवसाय करके संयुक्त वर्तते हैं, ५ इतुसें सक्रिय सव्यापार चलने वाले हैं, ६ अनेक, तेवीस प्रकारके हैं वास्ते, ६ आश्रित, आत्माके उपकार वास्ते प्रधानकों अवलंब करके हैं, ७ लिङ्ग, जो जिससेते उत्पन्न होते हैं, सो तिसहीमें “लयं कृतं तीति लिङ्गं,” तहां पांच जूत, पांच तन्मात्राओंमें लय होते हैं, पांच तन्मात्रा, अरु दश इन्द्रिय, अरु मन, यह अहंकारमें लय में है, अरु अहंकार बुद्धिमें लय होता है, अरु बुद्धि प्रकृतिमें लय में है, औ प्रकृति किसीमेंनी लय नहीं होती हैं, ८ सावयव, शब्द, री. रूप, रस, गंधादिकों करके संयुक्त है, ९ परतत्र, कारणके अधीन नसें, १० जैसेही महत् आदिक व्यक्त है, प्रकृति इनसे विपरीत है, सुगम है, आपही समज लेनी यह थोडासा स्वरूप लिखा है, जे करतार देखना होवे तदा सांख्य सप्तति आदिक, तिनोंके शास्त्रोंसे जान लेनां. अथ पञ्चेशवा पुरुष तत्त्वका स्वरूप कहते हैं, पुरुषजो है सो “अक विगुणोचोक्ता नित्यचिदन्त्युपेतश्च” पुरुष तत्त्व आत्माकों कहते हैं, १ आत्माजो है, सो विषय सुखादिक तिनका कारण पुण्यादिक नहीं करता है, २ वास्ते “अकर्ता” है, क्योंकि आत्मा तृण मात्रनी तोडने समर्थ नहीं है, ३ कर्ता जो है, सो प्रकृति है, क्योंकि प्रकृतिमें प्रवृत्ति स्वभाव है, तथा २ वेगुण ” सत्त्वादि गुणरहित है, क्योंकि सत्त्वादिक जो है सो प्रकृतिके धर्म, तथा ३ “चोक्ता” आत्मा चोक्ता जोगने वाला है, चोक्तानी साक्षात् नहीं, ४ प्रकृतिका विकार जूत उच्चय मुख दर्पणाकार जो बुद्धि है, तिसमें संमण होय हुवे सुख दुःखोंको पुरुष स्वात्म निर्मलविषे प्रतिबिंबोदय मात्र

करके "नोक्ता" कहिये है, "बुद्ध्यवसितमर्थं पुरुषश्चेतत" इति वचनात्  
जैसें जाइके फूलोंके सन्निधानके वशासें स्फटिकमें रक्ततादि कहेनेमें  
है, तैसें प्रकृतिके निकट होनेसें पुरुषजी मुख दुःखोंका नोक्ता कइया  
है, सांख्यमतका वाद महाएवनी कहता है, उक्तंच "धु . . .  
समर्थप्रतिविबकं ॥ द्वितीयदुर्षणं कल्पे, पुंसिअध्वरोहति ॥ तदेव  
मस्य नत्वात्मनोविकारापत्तिरिति" ॥ इसका तात्पर्यार्थ उपर लिखा

तथा च कपिलका शिष्य आसुरिनी कहता है ॥ श्लोक ॥ विवके  
एतौ, बुद्धौ नोगोऽस्य कथ्यते ॥ प्रतिविबोदयः स्वप्ने, यथा  
तथा विंध्यवासी सांख्याचार्य आत्माकों जैसें नोक्ता कहता है कि  
जो है, सो अविक्तात्माही है, स्वनिर्जास अचेतनमन करता है, तिस  
नकी निकटतासें उपाधि स्फटिकवत् दिखलाइ देती है, तथा "  
या चिञ्चेतना तथाऽन्युपेतः" इस कहने करके पुरुषही चैतन्य स्वरूप  
"नतु ज्ञानस्य" ( परंतु ज्ञान को नहीं ) क्योंकि ज्ञानकों  
नेसें. तथा पतंजलीजी जैसेही कहता है. तथा "पुमान्" यह जो  
वचन है, सो जातिकी अपेक्षा है, परंतु आत्मा अनंत है, क्योंकि  
न्म मरण कारणोंके नियम देखनेसें, तथा धर्मादिक प्रवृत्ति नाना देख  
नेसें. सो सर्व अनंत आत्मा सर्वगत अरु नित्य है ॥ उक्तंच ॥ अमूर्तिश्चेतना  
जोगी, नित्यः सर्वगतोऽक्रियः ॥ अकर्त्ता निर्गुणः सूक्ष्म, आत्माकापिलदर्शनइति

सांख्यमतमें प्रमाण तीन मानते है, १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३-  
वाद, इस मतका नाम सांख्य वा शांख्य किस वास्ते कहते है ? तिसका  
हेतु कहिये हैं. संख्या प्रकृति तत्त्व पञ्चश रूप तिनकों जो जाने, वा पदे  
इति सांख्य. तथा जे कर तालवी शकारसे बोलिये तब शांख्य, तिनके मत  
में शांख ध्वनि है ऐसी वृद्धोंकी आम्नायसें यह नाम है, तथा शांख नामक  
कोइ आद्य पुरुष दूया है, "तस्यापत्यं पौत्रादिरिति गर्गादित्वादयस्त्रीप्रत्यय  
शांख्यास्तेषामिदं दर्शनें सांख्यं शांखं वा ॥ इति सांख्यमत संक्षेपत सपूर्ण ॥

अथ मीमांसक मत लिखते है. इसका दूसरा नाम जैमिनीयानी  
कहते हैं, इस मत वाले सांख्यमतकी तरें एकदंती, त्रिदंती होते हैं, या  
बु रक्त बस्त्र पहिरते हैं, मृगचर्मके आसन उपर बैठते हैं, कमंमल रख  
ते है, शिर मुंफित रखते है, संन्यासी प्रमुख द्विज इस मतमें होते हैं, ति

का वेदही गुरु है, परंतु और वक्ता गुरु कोई नहीं. सो आपणे आपको  
 त्वस्त सत्वस्त कहते हैं, यज्ञोपवीतको प्रह्लाज करके तीन बार जल पीते  
 ; सो मीमांसक दो प्रकारके हैं. एक याज्ञिकादि है, ते पूर्व मीमांसक  
 ; दूसरे उत्तर मीमांसावादी है, कुकर्मके वर्जक यजनादिक पट् कर्मके  
 रणहार, ब्रह्मसूत्रके धारक, गृहस्थाश्रममें स्थित, गूडका अन्नादिक वर्जते  
 ; तिनकेजी दो जेद हैं, एक नष्ट, दूसरे प्रजाकर, उसमें नष्ट ठे प्रमाण  
 मानते है, अरु प्रजाकर पांच प्रमाण मानते हैं, अरु जो उत्तरमीमांस  
 ; है, सो वैदांतिक है, ब्रह्माद्वैतही मानते है, “सर्वमेवेदं ब्रह्मेति जापंते”  
 संस पर प्रमाण देते हैं, कि एकही आत्मा सर्व शरीरोंमें उपलब्ध होता  
 ; ॥ श्लोक ॥ एकएव हि नूतात्मा, नूते नूते व्यवस्थितः ॥ एकधा बहुधा  
 ऽव, दृश्यते जलचंद्रवत् ॥ १ ॥ इतिवचनात् ॥ “पुरुषएवेदं सर्वं यज्ज्ञ  
 ञ्चनायमिति वचनात्” ॥ आत्माहोमें लय होना मुक्ति मानते है, और  
 गेइ मुक्ति नहीं मानते सो, मीमांसक द्विजही जगवत्जिनका नाम है,  
 ते चार प्रकारके हैं, १ कुटीचर, २ बहूदक, ३ हंस, ४ परमहंस. तिन  
 सूं १ त्रिदंभी, सशिखा, ब्रह्मसूत्री. गृहत्यागी, यजमान, परिग्रही, एक  
 ार पुत्रके घरमें नोजन करता हैं, कुटीमें वसता है, तिनकों कुटीचर क  
 हते है. २ तुल्य वेप, पूर्वोक्त विप्रके घरमें नीरस जिहानोजी, विष्णुजाप  
 ार नदीके तीरमें रहता है, तिसकों बहूदक कहते है, ३ ब्रह्मसूत्र शिखा  
 ळके रहित, कपाय वस्त्र, दंभधारी, ग्राममें एक रात्रि अरु नगरमें तीन  
 ात्रि रहता है, धूम रहित जब अग्नि हो जावे, तब ब्राह्मणके घरमें नो  
 जन करता है, अरु तप करके शोपित शरीर, देशोंमें फिरता रहता है,  
 तिसकूं हंस कहते है, हंसकूंही जब ज्ञान हो जाता है, तब चारो वर्णोंके  
 घरमें नोजन कर लेता है, अपनी इच्छासं दंभ रखता है, ईशानदिशाके स  
 न्मुख जाता है, जे कर शक्ति हीन हो जावे, तब अन्नशन ग्रहण करता  
 है, ४ वेदांतैकध्यायी तिसकूं परमहंस कहते है, इन चारोंमेंसूं परःपरो  
 ऽधिक यह चारोंही केवल ब्रह्माद्वैतवाद् साधनेमें व्यसनी हे, इत्यादिक  
 इत मतका स्वरूप है.

अथ पूर्वमीमांसा वादीयोंका मत विशेष करके लिखते हैं. जैमिनी  
 मत वाले कहते है, कि सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतराग, सृष्ट्यादिकका कर्ता, इन



पूर्वोक्त विशेषणों करी संयुक्त कोइनी देव नहीं है, जिस देवका वचन माणिक होवे, प्रथम तो देवही वक्ता कोइ नहीं, जिसका कथा हूआ प्रमाण होवे, अनुमानं पुरुष सर्वज्ञ नहीं, मनुष्य होनेसे, रथ्या ५

पूर्वपक्ष:- किंकर हो कर जिसकी असुर, सुर, सेवा करते है, जो लोकके ऐश्वर्यके सूचक, उत्र चामरादि जिसकी विनूति है, सो सर्वज्ञ ना क्यों कर हो सकती है ?

उत्तरपक्ष:- यह विनूति तो इंद्रजालीयानी बना सक्ता है, क्योंकि वातका साक्षी जैनमतका समंतनइ आचार्यनी है ॥श्लोक॥ देवा न, चामरादिविनूतयः ॥ मायाविष्वपि दृश्यंते, ह्यतस्त्वमसि नो महान् ॥

पूर्वपक्ष:- जैसे अनादि सुवर्णका मल, द्वार मृत्युटपाकादिकोंकी या विशेषसें शोध्यमान सुवर्णकों सर्वथा निर्मलता हो जाती है, ऐसे एमानी निरंतर ज्ञानादिकोंके अन्याससें निर्मल होनेसें सर्वज्ञ पणेका नव क्यों कर न होवे ? किंतु होही जावेगा

उत्तरपक्ष:- यह कहनांजी तुमारा ठीक नहीं है, क्योंकि अन्यास करनेसेंजी बुद्धिकी तारतम्यताही होती है, परंतु परम प्रकर्ष अवस्था नहीं होती है, क्योंकि जो पुरुष चलनेका अन्यास करे, एतावता कूदनेका, बलांक मारनेका, ठाल मारनेका अन्यास करेगा, वो दश हाथ कूद जावेगा, बीस हाथ कूद जावेगा, परंतु शत योजन कूदनेका अन्यास कदापि न होवेगा, सर्व लोककूं कूदके जानेका अन्यास कदापि न होवेगा, ऐसे आत्मा नी अन्यास द्वारा सर्वज्ञ नहीं हो सकती है.

पूर्वपक्ष:- मनुष्यकों सर्वज्ञता मत होवो, परंतु ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरदिकोंको तो सर्वज्ञता होवे, क्योंकि तिनको तो जगत् ईश्वर मानता है इस बातको कुमारिलनी कहता है. अथापि दिव्य देह होनेसें ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, इनकों सर्वज्ञता होवे, मनुष्यकों सर्वज्ञता क्यों कर होवे ?

उत्तरपक्ष:- जो राग, द्वेषमें मग्न है, और निग्रह अनुग्रहमें ग्रस्त है, काम सेवनमें तत्पर है, ऐसे लक्षण वाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, क्यों कर सर्वज्ञ हो सके है ? क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाणनी सर्वज्ञका साधक नहीं है, कारणके इंद्रियों वर्तमान वस्तुहीको ग्रहण करती है. अरु अनुमानसेंजी सर्वज्ञ सिद्ध नहीं होता है, क्योंकि अनुमान प्रत्यक्ष पूर्व

ही प्रवृत्त हो सक्ता है, अरु आगमनी सर्वज्ञकी सिद्धि करणेवाला कोइ ही। क्योंकि आगम सर्व विवादास्पद हैं, उपमाननी नहीं, क्योंकि सरा सर्वज्ञ कोइ होवे, तब उपमान बने, तैसेही अर्थापत्तिसंज्ञी सर्वज्ञ नई नहीं होता है, क्योंकि अन्यथा अनुपपद्यमान अैसा कोइ पदार्थ ही है, जिसके होनेसें सर्वज्ञ सिद्ध होवे। जब जावग्राहक पांच प्रमाणों सिद्ध न दूया, तब सर्वज्ञ अज्ञाव प्रमाणका विषय दूया, यह अनुमाननी सर्वज्ञकी नास्ति सिद्धकर्ता प्रयोग नहीं है, सर्वज्ञ प्रत्यक्षादि चरके अतिक्रान्त होनेसें शशशृंगवत् जब कोइ सर्वज्ञ देव नहीं, अरु उ सर्वज्ञ देवका कया दूया कोइ शास्त्र नहीं, तब अतीन्द्रिय अर्थका ज्ञान सें होवे ? अैसी मनमें आशंका करके जैमिनी कहता है कि “तस्मात्” इस कारणसें, “अतीन्द्रिय” इन्द्रियोंकी विषय रहित जो आत्मा, धर्माधर्म, जल, स्वर्ग, नरक, परमाणु प्रमुख जो पदार्थ है, तिनका साक्षात् करत आमलकवत् देखने वाला कोइ नहीं। इस हेतुसें नित्य जो वेद वाक्य हैं, तैनोंहीसें यथार्थ तत्त्वका निश्चय होता है, क्योंकि वेद जो है, सो अपोपेय है, एतावता किसीकेनी रचे दूये नहीं। अनादि नित्य है, तिन वेद चनोंसेंही अतीन्द्रिय पदार्थोंका ज्ञान होता है, परंतु किसी सर्वज्ञके कहे ये आगमसें नहीं होता है, क्योंकि सर्वज्ञ कोइनी न दूया है, न वर्तमान में है, न आगे कोइ होवेगा ॥ यथाद्भुस्ते ॥ अतीन्द्रियाणामर्थानां, साक्षात् ए न विद्यते ॥ वचनेनहि नित्येन, य पश्यति स पश्यति ॥१॥

पश्च.—अपौरुषेय वेदांतका अर्थ कैसें जाना जाये ?

उत्तर:—अव्यवच्छिन्न जो हमारी परंपरा तिससें जाना जाता है, इसी वास्ते जिज्ञासिकोंके अज्ञाव होनेसें प्रथम वेदोंहीका पाठ प्रयत्नसें करना चाहिये। वे चार हैं, १ ऋग्, २ यजुप्, ३ साम, ४ आथर्व, इन चारोंका पाठ करके तिसके पीछे धर्मकी जिज्ञासा करनी चाहिये, धर्म जो है, सो अतीन्द्रिय है, अरु जो धर्म है, सो कैसा है ? अरु किस प्रमाणसे हम जानेंगे ? अैसी जो जाननेकी इच्छा है, तिसका नाम जिज्ञासा है. सो करणी कैसी है ? वो जिज्ञासा धर्मसाधनी ( धर्मसाधनेका ) उपाय है, तब तिस नो ज्ञानके निमित्त दो ह, एक जनक, दूसरा ग्राहक, इहां ग्राहक निमित्त जाना. इसहीका विशेष स्वरूप कहते ह.

प्रेरीयें श्रेय साधक इत्यादिकों विषे जीवोंको, इस करके तो वेदवचनकी करी दूइ प्रेरणा है ॥ इत्यर्थः ॥ धर्मजो है, सो नोदना करके नीयें है. इस वास्ते नोदना लक्षणधर्म है, धर्मको अतीन्द्रिय होने नोदनाहीसें जानीयें है, और किसी प्रत्यक्षादिक प्रमाणोंसें नहीं जाता है, क्योंकि प्रत्यक्षादिक विद्यमानके उपलंभक है, अरु धर्म है, सो कर्त्तव्यतारूप है, अरु कर्त्तव्य जो है, सो त्रिकाल स्वभाव है, तिस कर्त्तव्यताका ज्ञान नोदनाही उत्पन्न कर सकती है, यह कोंका अन्युपगम है.

अथ नोदनाका व्याख्यान करिये हैं. अग्निहोत्र, सर्व जीवोंकी सा दानादिक क्रिया, इनोके करने वास्ते जो प्रवर्त्तक प्रेरक वेदोंके है, सोइ नोदना है. जैसे “ अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामः ” ऐसा जो तैक वेदवचन है, सो नोदना जाननी. “ यथा ॥ न हिंस्यात् तथा न वैहिंस्यो जवेत् ” इन वचनों करके प्रेखा दूआ इव्य, गुणक के जो हवनादिक विषे प्रवर्त्त होता है, सो धर्म है, अरु इन वेद करके प्रेखा दूआजी जो न प्रवर्त्त, वा विपरीत प्रवर्त्त, तिसकों अनिष्ट फल होता है. शावर जाप्यमेंनी ऐसेही कहता है.

यह जैमनी पट् प्रमाण मानता है. १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ उपमान, ५ अर्थापत्ति, ६ अज्ञाव, इनका विस्तार षट्दर्शन सङ्घर्ष की टीकासे जानना ॥ इति संक्षेपतो मीमांसमतं ॥ ५ ॥

यह पांच दर्शन आस्तिक कहे जाते है, अरु उष्ठा जैन दर्शन है तिसका स्वरूप अगले परिच्छेदमें लिखा जायगा, तथा नास्तिक जो है, सो दर्शनमे नहीं. “ नास्तिकं तु नदर्शनमिति राजशेखर स्मरिक्त षट्दर्शन सङ्घर्ष वचनात् ” तोनी नव्य जीवोंके जानने वास्ते कलुक स्वरूप निखते क कपाली, नरुम लगाने वाले, योगी, ब्राह्मणादि, अंत्य जातिके लोक, जिनको लोक वाममार्गी कहते है, तथा कौलिक, इत्यादिक नास्तिक हैं, तिनके मतका नाम नास्तिक चार्वाक कहते है, वो जीव पुण्य पापादिक कुठ नहीं मानते है, चार नैतिक वेद मानते है, तथा सर्व जगत्ही चार नैतिक मानते है.

अरु कोइ चार्वाकैकदेशीया आकाशको पांचमा नूत मानते हैं, पांच

आत्मक जगत् है, जैसे कहते हैं, तिनोके मतमें चूतोंसेंतीही मद्यशक्ति चैतन्य उत्पन्न होता है, पाणीके बुलबुलेंकी तरें जो शरीर है, सोही व है, इस मत वाले मद्य मांस खाते हैं, माता, बहिन, बेटी, आदिक अगम्य है, तिनकोंजी गमन कर लेते हैं, ते नास्तिक वामी, वर्ष वर्ष एक दिनमें सर्व एक जग एकठे होते हैं, स्त्रीको नंगी करके उसकी नेकी पूजा करते है, अरु विषय सेवनजी करते है, इत्यादि जैसे बु काम करते है, जो इस पुस्तकमें लिखते मुझकों लज्जा आती है, इस ते नहीं लिखा है, सो नास्तिक, कामसें अपर (दूसरा) कोइ धर्म नहीं मा है, कितु कामहीकूं धर्म मानते हैं.

इस मतकी उत्पत्ति जैनमतके शीलतरंगिणी नामक शास्त्रमें जैसे लिखी सो कहते है. एक बृहस्पतिनामा ब्राह्मण था, दूसरा उसका ना देवव्यासजी था, उसकी एक बहिन थी, वो उसकी बहिन बाल विध हो गइ थी, उसके सासरोमें ऐसा कोइ न था, जिनके आश्रयसें वो ना जीवितव्य संपूर्ण करती, ताते निराधार हो कर, अपने जाइके ध आ रही, वो अत्यंतरूप अरु यौवनवंत थी, अरु जो उसका ना तिसकी चार्या मृत्युकों प्राप्त हो गइ थी, तब तो बृहस्पतिकों का अत्यंत पीडा दीनी, तब उनकूं आपनी बहिनके साथ विषय सेवनकी नइ, अपनी बहिनसें प्रार्थना करी कि हे जगिनी! मेरे साथ तुं संजो तर, तब तिसकी बहिनने कहा कि हे जाई! यह बात उजय लोक वि है, सो में क्योकर करूं? क्यो कि प्रथम तो मै तेरी बहिन हूं, जे कर के साथ विषय जोग करूं तो अवश्यमेव नरकमें जाउंगी, अरु यह वा जो जगत्में प्रसिद्ध हो जावेगी, तब तो लोक मुझकों विहार देवेगे. ती बात सुन कर बृहस्पतिने अपने मनमें शोचा कि जब तक इसके म पाप अरु नरकादिकोंका जय दूर न होवेगा, तब तक यह मेरे साथ ती संजोग न करेगी? ऐसा विचार करके बृहस्पति सूत्र रचे, तिन सूत्रोंसे पाप, स्वर्ग, नरकका अभाव, सिद्ध करके अपनी बहिनकों गात्र सुना के प्रतिबोध करा. तब तो तिसकी बहिनने अपने मनमें विचार करा यह जो शरीर है, सोतो पांच नैतिक है, अरु इस शरीरसे अतिरिक्त आत्मा नामरु कोइ पदार्थ नहीं है, तब तो पुण्य, पाप, नरक, स्वर्ग, कु

उनी सिद्ध नहीं होता है, तो फेर में इन मूर्ख लोगोंकी लज्जा करके ना यौवन वृथा काहेको खोज? ऐसे विचार करके अपने जाइके विषयजोग करनेमें लुब्ध हो गई, जब लोकोंको यह बात जान पड़ी, लोक निंदा करने लगे, तब तो बृहस्पति निर्लज्ज हो कर लोकोंको स्तिक मतका उपदेश करने लगा, तब तो जो अत्यंत विषयी अरु जन थे, वे उसके शिष्य होते नये, कितनेक काल पीछे उनके अपने मतको बडा करनेके वास्ते कहते नये कि यह जो हमारा मत सो देवताओंका गुरु जो बृहस्पति नामक आकाशमें ग्रह है, माने करा है, अरु बृहस्पतिसेति अन्य कोई दूसरा बुद्धिमान नहीं है, इस स्ते हमारा मत सच्चा है, इस बृहस्पतिका होना हमारे चोवीशमें कर श्रीमहावीरसें पहिले सिद्ध है, क्योंकि श्रीमहावीरके कथन करे शास्त्रोंमें चार्वाकमतका निरूपण है, ऐसे चार्वाक मतकी उत्पत्ति है मतका नाम चार्वाक, लोकायितादि है, "चर्व अदने चर्वति, नक्ष्रयति ॥ तो न मन्यंते पुण्यपापादिकं परोक्षवस्तुजातमिति चार्वाकाः ॥ मयाकश्च माकेत्यादि सिद्ध है, मोणादि दंभकेनशब्दनिपातनं. लोका निर्विचारा सामान्या लोकास्तद्वाचरंति स्मेति लोकायिताः लोकायितकाइत्यपि ॥ बृहस्पतिप्रणीतमतत्त्वेन बार्हस्पत्याश्रेति " चर्व जो धातु है. सो नक्ष्रण अर्थ में है, चर्वण ( नक्ष्रण ) जो करे, तात्पर्यार्थसें जो पुण्य पापादिक परोक्ष वस्तु समूहको न माने, सो चार्वाक, मयाक ज्यामाक इत्यादि सिद्ध है, मव्या करणके कणाद्विदंभक करके निपातसे सिद्ध है, तथा लोक निर्विचार है, सामान्य लोकोंकी तरें जो आचरण करते नये है, ते लोकायिता लोकयितका ऐसें नी है. तथा बृहस्पतिके प्ररूपणसे इस मतका नाम बार्हस्पत्यनी कहते हैं.

अथ चार्वाकका मत लिखते हैं. नास्तिक ऐसें कहते हैं कि, जीव न तना नक्ष्रण परलोकमें जानेवाला नहीं, पांच महानूतसें जो चेतन उत्पन्न होता है, सोनी इहांही नूतोके नाश होनेसें नाश हो जाता है, जेका जीव परलोकसे आया होवे, तब परलोकका स्मरण होना चाहिये, परंतु सो तो होता नहीं, इस वास्ते जीव परलोकसे आया है, अरु न परलोकमें जाने वाला है, तथा जीव स्वयं देव आत्मा मानीये, त

सर्वज्ञादि विशेषण विशिष्ट कोइ देव नहीं, तथा मोक्षनी नहीं, धर्माध नहीं, पुण्य पाप नहीं, पुण्यपापका जो फल नरक, स्वर्ग, सोनी नहीं, याच तन्मत ॥श्लोक॥ एतावानेव लोकोपं, यावानिन्द्रियगोचरः ॥ नडे पदं पश्य, य इदं त्यवहुक्षुताः ॥१॥ अस्यार्थः—इतनाही मनुष्य लोक है, इना प्रत्यक्ष देखनेमें आता है. क्योंकि जो पदार्थ इंद्रियोंसें ग्रह्या जाता सोइ पदार्थ है, और दूसरा कोइनी पदार्थ नहीं है, यदा लोक शब्द जगें लोकमें जो रहे हूये पदार्थ है, सो ग्रहण करणे. अरु सो इस सें परे है, जीव, पुण्य, पाप, अरु तिनका फल जो स्वर्ग नरकादिक अप्रत्यक्ष होनेसें नहीं है. जे कर अप्रत्यक्षनी माने जावे तब तो शृंग वध्यापुत्रादिनी होने चाहियें, पंचविध प्रत्यक्ष करके यथाक्रम मृग कवोरादि वस्तु १ तिक्त, कटु, कपायादि इत्य, ३ सुरजि डुरजिरूप, ४ जू, जूधर, जुवन, जूरुह, स्तंज, कुंज, अंनोरुहादि, नर, पशु, श्वादि, स्थावर, जंगम प्रमुख पदार्थोका समूह, ५ विविध, वेणु वीणादि १ ध्वनि, इन पाचोके विना और कुठनी नहीं प्रतीत होता है, पांचोंसें व्यतिरिक्त नरक स्वर्गके जाने वाला जीव जब प्रत्यक्ष प्रमाणसें न व जया, तब तो जीवोंके सुखदुःखोंका कारण धर्माधर्म है, अरु तिन धर्मके उत्कृष्ट फल जोगनेकी जूमि स्वर्ग नरक है, अरु सर्वथा पुण्य के ह्य होनेसें मोक्ष सुख जो वर्णन करते है, यह सर्व पूर्वोक्त वर्णन न है, कि जैसा आकाशमें चित्राम करणां है. क्योंकि जीव नतो किसी स्पर्शा है, न किसीने खा कर स्वाद चस्का है, न किसीने सूंघा है, न नीने देखा है, न किसीने शब्दवत् सुना है, फेर मूढमति किसतरें जीव मान करके स्वर्गादि सुखोंकी इत्ता करके शिर, दाढी, मौठ, मुंमवा करके न प्रकारका दुःकर तप करके शीत, आतप सह करके वृथाही इत श की विडंबना करके इस मनुष्य जन्मकों खराब कर रहे है ? यह उनकी अजकी विडंबना है ॥ तदुक्तं ॥श्लोक॥ तपांसि यातनाधित्राः, संयमो जोग ना ॥ अग्निहोत्रादिकं कर्म, बालक्रीडेव लक्ष्यते ॥१॥ यावज्जीवेत् सुखं वेत्, तावद्वैपयिकं सुखं ॥ नस्मीज्जतस्य देहस्य, पुनरागमनं कृत. ॥ १ ॥ यादि. तिस वास्ते यह सिद्ध हूआकि जो इंद्रियगोचर है, सोइ तात्त्विक है. अथ जो परोक्ष प्रमाण, अनुमानागमादिकों करके जीव, अरु पुण्य

पापादिकोंकू व्यवस्थापन करते हैं, अरु कदाचित् स्थापन करतेसे नही है, तिनके प्रतिबोधने वास्ते दृष्टांत कहते हैं “ नडे त्रायं संप्रदायः ” कोइक पुरुष नास्तिक मत करके वा पणी नार्याकों आस्तिक मत विषे दृढ प्रतिज्ञा वाली जान करके एो शास्त्रोक्त युक्तियों करके “ प्रत्यहं ” प्रतिबोध करता है, जब वो बोध नहीं होती, तब उसने विचारा जो यह इस उपाय करके होवेगी, जैसे स्वचित्तमें चिंतन करके रात्रिके पीठले प्रहरमे तिस थ नगरसे निकल करके तिस आपणी नार्याकों कहता हुआ, हे ह जो इस नगरके बसने वाले लोक परोह पदार्थोंको करके लिख करते है, अरु लोकमें बहुत शास्त्रोंके पढे दूये अब तूं तिनको चातुर्य देख, जैसे कह कर नगरके दरवाजेसे ले कर क तक स्रद्धम धूलीमें अणुपणे हाथो करके नेडीयेके पंजोंका आकार दीया, तस पीठे प्रातःकालमें ते नेडीयेके पंजे देख कर बहुत लोक मार्गमें मिलते जये, तब तो बहुश्रुतनी तहां आ गये, सो बहुश्रुत लोको को कहने लगे कि जो लोको! नेडीयेके पंगोंकी अन्यथा अनुपपत्ति करके निश्चयही कोईक नेडीया रात्रिमें बनसेती इहां आया था, तब तो नास्तिक मती तिनको जैसे कहते हुआंको देख करके निज नार्याको कता हुआ कि हे नडे ? “ वृकपदं ” (नेडीयेका पंजा) तूं देख, जिस पंजे नेडीयेका पंजा अबहुश्रुत कहते है, लोक रूढीसे यह बहुश्रुत कहलाते है, परंतु परमार्थसे महा ठोठ है, क्योकि ये परमार्थ तो कुठ जानते नही है, केवल देखा देखी सौला करने लग रहे है, परमार्थसे इनका मन न मानने योग्य नहीं है, जैसेही बहुत मतोंवाले धार्मिक, ठग (धूर्त) दूसरोंके उगनेमे तत्पर सो कबुक अनुमान आगमादि करके दृढपणसे वादिकी अस्ति लिख करके वृथाही जोले लोकोंको स्वर्गादि सुखोंका लो दिखा कर नहानरु, गम्यागम्य, हेयोपादेयादि, संकटोमे गेरते हैं, व त मूर्खोंको धार्मिक पणोंका व्यामोह उत्पन्न करते हैं, इस वास्ते बुद्धि मानोंको उनका वचन मानना न चाहिये. तब तो तिसकी नार्या अणुपत्तिके सर्व वचन मानती नई, तिसके पीठे तिसका पति जो अणुपत्ती नार्याकू उपदेश देता जया, सो इहा लिखते हैं.

॥ श्लोक ॥ पिव खाद्य च चारुलोचने, यदतीतं वरगात्रि तन्न ते ॥ नहि  
 ॥ रु गत निवर्तते, समुदायमात्र मिदं कलेवरं ॥१॥ व्याख्या—हे चारुलो  
 ने ! शौचन ( सुंदर ) आंखवाली “ पिव ” पी, तूं पेयापेयकी व्यवस्था  
 ढ कर मदिरापान कर. न केवल मदिराही पी, “खाद्य च” नहानहकी  
 अपेक्षा करके मांसादिक खा, तथा गम्यागम्यका विनाग त्याग कर जोगों  
 ं जोग कर अपना यौवन सफल कर, जो कुछ यौवनादि अतिक्रान्त, (व्य  
 त) हो गया है! हे वरगात्रि ! हे प्रधानांगि ! फेर वो तुझकों न मिलेगा,  
 ति काम राग जनावनेके वास्ते बहुत संबोधन पद कहे हैं. इस वास्ते  
 नरुक्ति दोष नहीं है. किसीकी आशंका मनमें ला कर बृहस्पति मत वा  
 कहता है, कि अपनी इच्छा करके जो खान, पान, जोग, विलास  
 रेगा, उसकूं परलोकमें कष्ट परंपरा पावणी बहुत सुजन है, औ जो  
 रुत करेगे, उनकों नवांतरमें सुख यौवनादिक पावनां सुजन है, ऐसी  
 रकी आशंका दूर करने वास्ते बृहस्पति कहता है. नहीं हे जीरु ! प  
 के कहने मात्र करके नरकादि दुःखोंकी प्राप्ति, इस लोकके यौवनादिकों  
 ं निवर्त होनां, एतावता इस लोकमें विषयजोग करके यौवनका सुख  
 ो नहीं लेनां, अरु परलोकमें हमकों यौवनादिक फेर मिलेगा. ऐसे पर  
 लोकके सुखोकी इच्छा करके तपश्चरणादि कष्ट क्रिया करके जो इस लोक  
 ं सुखोंकी उपेक्षा करनी है, सो महा मूढताका चिन्ह है.

अथ शुचाशुच कर्मके वश करके इस जीवने अवश्य परलोकमेंजी स्व  
 र्गमें हेतुक सुख दुःखादि वेदना होवेगी, ऐसी आशंका मनमें ला करके बृह  
 पति कहता है कि “समुदायमात्रं” समुदायनूत चारोंका संयोग मात्रही  
 यह “ कलेवरं ” (शरीर है,) परंतु चारों नूतोंके संयोग मात्रसे अथर दूसरा  
 नवांतरमें जानेवाला, शुचाशुच कर्मविपाकका जोगने वाला, ऐसा जीव ना  
 र्क कोइनी पदार्थ नहीं, अरु चारों नूतका जो संयोग है, सो विजलीके  
 ग्द्योतकी तरें रूपमात्रमें नष्ट हो जाता है, इस वास्ते परलोकका जय  
 न्त कर. हे हरिणाक्षि ! जैसे मन माने, ऐसा खा, पी, जोग विलास कर.

अथ प्रमेय प्रमाण दोनो कहता है ॥ श्लोक ॥ पृथ्वी जल तथा ते  
 जो, वायुनूतचतुष्टयं ॥ आधारे नूमिरेतेपा, मानं लक्ष्जमेव हि ॥ १ ॥  
 अर्थः—१ पृथिवी, २ जल, ३ अग्नि, ४ वायु, यह चारनूत है, अरु इन



चारोंकी आधार पृथ्वी है, अरु किसी जगें ऐसा पाठ है कि "तेपां" इन चारोंको चैतन्यजूमि कहते हैं, यह चारों एकठे होके सैन्य उत्पन्न करते हैं. तथा इन चारोंकोके मतमें यह चारों जूत जूमिका प्रमाणका विषय तात्त्विक है, अरु इन चारोंकोके मतमें, तो एक प्रत्यक्षही है.

अथ जूतचतुष्टयसे देहको चेतनता क्यों कर हो जाती है? आगका करके कहता है ॥ श्लोक ॥ पृथ्व्यादिजूनतसंहत्या, तथा परीणते: ॥ मदशक्तिः सुरांगेभ्यो, यदक्षद्विदात्मनि ॥ १ ॥ अर्थ: "पृथ्व्यादीनि" पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, तिनकी जो "संहति." तिस करके जो देहकी परिणाम, तिसते जैसे मंदिराके अंगोंसे (गुह की आदिकोंसे) उन्माद शक्ति उत्पन्न होती है, असेही इस देहमें शक्ति उत्पन्न होती है, परंतु देहसे अन्य जीव पदार्थ नहीं होते, अदि शब्दसे पर्वतादि सर्व पदार्थ चार जूतोंसेही उत्पन्न है, इस वास्ते सुखोंका त्याग न करना अरु अदृष्ट सुखोंमें प्रवृत्त होना, यह तो लोकोंकी बड़ी मूर्खता है, अरु जो शांतिरसमे मग्न हो कर मोक्ष सुखका चरण करते हैं, वेजी महा मूठ है. क्योंकि काम (मैथुन) सेवनसे अधिक न को ५ धर्म है, अरु न कोइ मोक्ष है, न कोइ सुख है ॥ इति चारोंकोके संहैपतः संपूर्ण ॥

यह जो उपर मत लिखे है, इनके जो उपदेशक है, वे सर्व कुष्ठर हैं, क्योंकि जो इनोंके मत है, वे युक्तिप्रमाणसे खंडित हो जाते हैं. अरु पूर्वापर व्याहृत है, पूर्वापर विरोधी है.

पूर्वपक्ष.—अहो जैन! अरिहंतके कहे दूये तत्त्वका तुजको बड़ा ग है, इस करके तुम अपने मतको तो निर्दोष बहराते हो, अरु हमारे मतोंको पूर्वापर विरोधी कहते हो, परंतु हमारे मतोंमें कुत्तन पूर्वापर व्याहृतपणां नही है, क्योंकि हमारे जो मत हैं, सो निर्दोष हैं, उनको जो पूर्वापर व्याहृत (कलंक) देना है, सो ऐसा है कि जैसा अमृतके पुजमें मक्कीका विडु गेर देना.

उत्तरपक्ष:—हे वादीयो! तुम अपने अपने मतका पक्षपात मोड़ कर मध्यस्थपणेको अवलंबन करके अरु निरजिमान हो करके सुंदर युक्ति

करके सुनो. में तुमारे मतमें पूर्वापर व्याहृत पणा दिखलाता हूं.  
प्रथम बौद्धमें पूर्वापर विरोध उद्भावन करते हैं.

प्रथम तो बौद्ध मतमें सर्व पदार्थ कृष्णचक्र कह करके पीठेंसे ऐसे  
कहा है. "नाननुकृतान्वयव्यतिरेकं कारणं नाकारणं विषय इति" अस्याय  
अर्थः—ज्ञान अर्थके होते दूयाही उत्पन्न होता है, परंतु अर्थके बिना नहिं  
जाता है. ऐसे अनुकृत अन्यव्यतिरेक अर्थज्ञानका है अरु कारण जिस  
की अर्थज्ञान उत्पन्न होता है, तिस कारणहीकों विषय करता है.  
इस कहनेसे अर्थकों दो कृष्ण स्थिति वाला कहा ॥ तथा ॥ अर्थरूप  
कारणसे ज्ञान कार्य उत्पन्न होता है, अरु एकही समयमें कारण, कार्य,  
उत्पन्न नहीं होते है, तब तो ज्ञान अपने जनक अर्थहीकों ग्रहण  
करता है. "नापरं नाकारणं विषय इति वचनात्" ॥ जब ऐसे दूया  
तब तो अर्थकों दो समयकी स्थिति जोरा जोरी हो गइ. अरु बौद्ध मतमें  
दो समय स्थिति वाला कोइ पदार्थ नहीं, एक तो यह पूर्वापर विरोध है.

तथा "नाकारणं विषय इत्युक्तं" जो पदार्थ ज्ञानकी उत्पत्तिमें का  
रण नहीं है, उस पदार्थकों ज्ञान विषयजी नहीं करता है, ऐसे कह क  
र फेर योगी प्रत्यक्ष ज्ञानकों अतीत अनागत पदार्थोंका जानने वाला  
कहा है, अरु अतीत पदार्थ तो नष्ट हो गये है, तथा अनागत पदार्थ उ  
त्पन्न नहीं दूये हैं, इस वास्ते अतीत अनागत पदार्थ ज्ञानके कारण  
नहीं हो सके है, तब अकारणकों योगी प्रत्यक्षका विषय कहना. यह  
दूसरा पूर्वापर विरोध है.

ऐसेही साथ साधनोंकी व्याप्ति औ ग्राहक व्याप्ति ग्रहण करानें वा  
जेकूं कारण पणके अभावसे त्रिकालगत अर्थकों विषय कहने वालेकों  
क्यो नहीं पूर्वापर व्याघात होवेगा? क्योंकि कारणहीकों प्रमाणका विष  
य मान्या है. इस वास्ते तीसरा पूर्वापर विरोध है.

तथा कृष्ण कृत्य अंगीकार करणमें जिनका काल निन्न निन्न है, ऐसे  
जो अन्वयव्यतिरेक तिनकी प्रतिपत्ति नहीं संभव होती है, तब तो सा  
थ्य साधनोंके त्रिकाल विषय व्याप्ति ग्रहण मानने वालेकों पूर्वापर व्याह  
ति क्यो नहीं? यह चौथा पूर्वापर विरोध है.

तथा सर्वपदार्थोंको कृष्णकृत्य मान करके पीठेंसे बुद्धने ऐसे कहा

है ॥ श्लोक ॥ इतएकन्वते कल्पे, शक्त्या मे पुरुषोहतः ॥ तेन पाकेन, पादे विक्षोस्मि निद्रवः ॥ १ ॥ इस श्लोकमें जन्मान्तरविषेमें का प्रयोग कृण कृत्य विरुद्ध बोलता हुआ बुद्ध, क्यों कर पूर्वापर विरोध न कहना चाहिये ? यह पांचमा पूर्वापर विरोध है.

तथा “निरंश सर्व वस्तु है” जैसे प्रथम कह कर फेर “हिंसादान चित्तस्वसंवेदनं अरु स्वगतं सद्बुध्यचेतनत्व स्वर्गप्रापण शक्त्यादिकं क्लृदपि स्वर्गप्रापण शक्त्यादेरशस्येति सांशता पश्चाद्दतः सौगतस्य पूर्वापरविरुद्धं वचो न स्यात् ॥” यह उक्त विरोध है.

जैसेही निर्विकल्पक प्रत्यक्ष प्रमाण नीलादिक वस्तुओंको सर्व करके ग्रहण करता हुआ नीलादिक अंश विषे निर्णय उत्पन्न है, परंतु नीलादि अर्थगत कृणकृत्य अशविषय निर्णय नहीं उत्पन्नता है, जैसे सांशताको कहता हुआ सौगतको पूर्वापर वचन विरोध बोधही है. यह सातमा विरोध है.

तथा हेतुको तीन रूप वाला मानता है, अरु संशयको दो उद्देश्य बना मानता है, अरु कहता है फेर साश वस्तुको नहीं मानता है, यह अठवीं आठमा पूर्वापर विरोध है.

तथा परस्पर अनमिले दुये परमाणु निकटता संबंध वाले एकते हो कर घटादि रूपपणे प्रतिज्ञास होते हैं, परंतु आपसमें अंगगीनाव रूप करके कोइनी कार्य नहीं आरंज करते, यह बौद्धोंका मत है, तिसमें यह दूषण है कि आपसमें परमाणुओंके अनमिलनेसे घटका एक देश जब हम हाथसे पकड़ेंगे, तब संपूर्ण घटको नहीं रहना चाहिये, तथा घटके उठानेसेंनी एक देशही घटका उठना चाहिये, परंतु संपूर्ण घट नहीं उठना चाहिये, तथा जब घटको कांठा पकड़के हम खैचेंगे तबनी घटका एक देशही हमारे पास आना चाहिये, परंतु संपूर्ण घट नहीं, अरु जलादि धरण रूप घटका अर्थ क्रियालक्षण सत्व अंगीकार करणे करके सौगताने परमाणुओंका मिलना मान्या है, अरु तिनके मतमें परमाणुओंका मिलना है नहीं, तिस वास्ते यह नवमा पूर्वापर विरोध है. इत्यादि बौद्ध मतमें अनेक पूर्वापर विरोध है.

अथ बौद्धमतका खंमननी थोडासा लिखते हैं. इन बौद्धोंका यह

ज्ञात है कि सर्व पदार्थ नैरात्म्य है, एतावता आत्मस्वरूप आपणे स्वरूप  
करके सदा स्थिर रहनेवाले नहीं है, ऐसी जो जावना, तिसका नाम  
नैरात्म्य जावना है, यह जो नैरात्म्य जावना है, सो रागादि क्लेशोंके ना  
ग करने वाली है, तथाहि जब नैरात्म्य जावना होवेगी, तब अपणे आ  
विषे तथा पुत्र, नाइ, नार्थी, आदिकोंविषेनी आत्मीय अनिनिवेश  
नहीं होवेगा, एतावता 'यह मेरे हैं' ऐसा मोह न होवेगा, क्योंकि जो आ  
उपकारी है, सो आत्मीय है, अरु जो आपणा प्रतिवातक है, सो छे  
प है, जब आत्माही नहीं है, किंतु पूर्वापर कृण टूटे दूयाका अनुसंधान  
है, पूर्व पूर्व हेतु करके जो प्रतिबन्ध है ज्ञानकृण, सोइही तैसैं तैसैं उत्प  
न होते हैं, तब कौन किसीका उपकर्ता अरु उपघातक है ? क्योंकि कृ  
णोंको कृण मात्र रहने करके परमार्थसैं उपकार अनुपकार नहीं कर स  
के हैं, इस वास्ते तत्त्ववेदीयोंको अपने पुत्रादिकोंमें आत्मीय अनिनिवे  
श नहीं है. अरु वैरीयों विषे द्वेष नहीं है, अरु जो लोकोको अनात्मोय  
पदार्थोंमें आत्मीय अनिनिवेश है, सो अतत्त्व मूल होनेसे अनादि वास  
नाके परिपाकने करा है, अिसैं जाननां.

प्रश्न:—यदि परमार्थसैं उपकार्युपकारक जाव नहीं, तब तो अिसैं तुम  
कैसैं कहते हो कि नगवान् सुगत, करुणा करके सकल जीवोंके उपकार  
वास्ते देशना करता दूआ ? अरु कृणिक पणाजी जे कर एकातही है, त  
ब तो तत्त्ववेदी एक कृण पीठें नष्ट हो गया, अरु तत्त्ववेदी जान  
ता था जो मै पीठें नहीं था अरु आगेंको मैने होना नहीं, तो फेर काहें  
को मोह वास्ते यत्न करे ?

उत्तर:—जो तुमने कहा, सो हमारा अनिप्राय न जाननेसे अचुक्त है  
नगवान् जो है, सो प्राचीन अवस्था विषे अवस्थित है, अरु सकल जग  
तको राग द्वेषादि दुखों करके संकुल जानता थका कैसे यह सकल जग  
तका दुःख मेरेको दूर करणां योग्य है ? ऐसी दया उत्पन्न होनेमें नैरा  
त्म्य कृणिकत्वादिक जानता दूआजी तिन उपकार्य जीवोंके निःक्लेश कृण  
उत्पन्न करनेके वास्ते स्वप्रजा हित राजेकी तरे अपनी संतति बुद्धि विषे  
सकल जगत् साक्षात् करण समर्थ अपनी संततिगत विशिष्ट कृणकी  
व्यक्तिके वास्ते यत्न आरज करता है. क्योंकि सकल जगत् साक्षात्कार

करे विना सर्वकों अक्षुण विधान उपकार करणोंको अशक्य होनेसे वास्ते समुत्पन्न केवल ज्ञान पूर्वस्थापन कृपाके विशेष गवान् कृतार्थीनी है, तोनी देशना देवेमें प्रवृत्त होता है, तब तो न करके निर्मल बुद्धि नैरात्म्य तत्त्व विचारता हुआ जीवकों जावन विशेषसें वैराग्य उत्पन्न होता है, तिससेंती मुक्तिलाज होता है, जो आत्माकों मानता है, तिसकों मुक्तिका संभव नहीं, क्योंकि सेंती आत्माके होते हूयां तिस आत्मामें स्नेह वचेंगा, तिस स्नेहके सें तिस आत्माके सुखी होनेकी तृष्णा वाला होता है, अरु तृष्णासें सुखोंके साधना विषे प्रवृत्त होता है, जब गुण उत्पन्न हूये, गुणोंमें राग करता है, तिस रागसें यावत्काल आत्मानिनिवेश रहे तावत् काल संसार है ॥ आह च ॥ श्लोक ॥ ये पश्यंत्यात्मानं, तत्रास्याह ति शाश्वतः स्नेहः ॥ स्नेहात्सुखेषु तृप्यति, तृष्णा दोपास्तिरस्कुरुते ॥ १ ॥ एदर्शिपरितृप्यन्, ममेति तत्साधनान्युपादत्ते ॥ तेनात्मानिनिवेशो, यावत्संसारः ॥ २ ॥ इति बौद्धमत पूर्वपक्ष ॥

अथ जैनमतकी तरफसें उत्तरपक्षः—यह सर्व कहनां तुमारा अंत एमें वास करणेवाले महा मोहका मोटा विजास है, क्योंकि आत्माके जाव हूये बंध मोह्यादिकोंका एकाधिकरणत्व नहीं होवेगा, सोइ दिखाने हे बौद्धो ! तुम आत्मा नहीं मानते हो, किंतु पूर्वापर कृण दूर अनुसंधान ज्ञान कृणाहीको मानते हो, जब ऐसे माना, तब अन्यकों हूया, अरु अन्यकों मुक्ति हुई, और कृपा औरकों लगी, अरु तृप्ति हो हो गई, तैसेही अनुभवता और हुआ, अरु स्मर्त्ता और हो गया, छु औरने लीया, अरु राजीरोग रहित तो और हो गया, तपः क्लेश तो अ करा, अरु स्वर्गादिकका फल औरने जोगा, और पढनेका अन्यास और लगा, अरु और कोई पढ गया, यह बात अतिप्रसंग होनेसें कोई मुक्ति नहीं है, जे कर कहोगे कि संतानकी अपेक्षा करके बंध मोह्यादिकों एक अधिकरण हो सकता है, सोची ठीक नहीं, क्योंकि संतानकी तुमारे में नहीं हो सकता है, संतान जो है सो संतानीसें निन्न है ? वा अन्नित्त जे कर कहोगेकि निन्न है, तब तो फेर दो विकल्प तुमारी नेट करते हैं संतान नित्य है ? वा अनित्य है ? जे कर कहोगेकि नित्य है, तब तो ति

मोक्षमोक्षादिकका संभव नहीं है, क्योंकि सर्वकाल एक स्वभाव होने कर तिसके अविच्छिन्न विचित्र नही हो सकती है, अरु तुम तो नित्य मानते हो, “सर्वे कृणिकमिति वचनात्” अथ जे कर कहोगे कि कृणिक है, अथवा तो वोही प्राचीन बंध मोक्षादि वैयधिकरण रूपण प्राप्त हुआ, जे कर कहोगे कि अनिन्न है, तब तो तिससे अनिन्न होनेसे तिसके स्वरूपकी तरें संतानीही हुआ, संतान नही नई. जब ऐसे हुआ, तब तो तदवस्थाही पूर्वला रूपण है, जे कर कहोगे कि कृणासेति अन्य संतान कोइ नहीं. किंतु जो कार्य कारण नाव प्रबंध करके कृण नाव है, सोइ संतान है, तिस वास्ते कोइ कोइ नही दे, यहनी तुमारा कहनां अयुक्त है, क्योंकि तुमारे मतमें कार्य कारण नावनी नहीं घटता है, सोइ दिखाते है, कि प्रतीत्य समुत्पादमात्र कार्य कारण नाव है, तिसमें यथाविवक्षित घट कृणानंतर घट कृण है, तैसें पटादि कृणनी है, अरु जैसें घट कृणसें पहिजा अनंतर विवक्षित घटकृण है, तैसें पटादि कृणनी है, तब तो कैसें प्रतिनियत कार्य कारण नावका अवगम होवे ?

एक औरनी रूपण है, सो यह है कि.—कारणसेंती उत्पन्न होता हुआ जो कार्य, सो सत् उत्पन्न होता है ? वा असत् उत्पन्न होता है ? जे कर कहोगे कि सत् उत्पन्न होता है, तब तो कार्योत्पत्ति कालमेंनी कारण सत् हुआ, अरु तब कार्य कारणकों समकालताका प्रसंग हुआ, अरु एक कालमें दो पदार्थोंका कार्य कारण नाव मान्या नही है, अन्यथा माता पुत्रका व्यवहार न होवेगा, घट पटादिकोकाजी परस्पर कार्य कारण नावका प्रसंग हो जावेगा. जे कर असत् पक्ष मानोगे, तो सोनी अयुक्त है, क्योंकि जो असत् है, सो कार्य नही हो सकता है, अन्यथा खरशृंगसेंतीनी कार्य उत्पन्न दो ना चाहिये, अरु अत्यंतानाव, प्रध्वसानाव. दोनोंही जगे वस्तुसत्ताका संभव होनेसें इन दोनोका कोइनी विशेष न हुआ, जे कर कहोगे कि प्रध्वंता नावमें वस्तु थी, इस करके हेतु है, तब तो जब थी तब हेतु नहीं, अन्यथा हेतु हुआ; ऐसे तो बहुत अन्वी तत्त्वव्यवस्था नई.

एक औरनी बात है, कि तज्ञावे नाव ऐसे अवगममें कार्य कारण नावका अवगम है, सो जो तज्ञावे नाव है, सो क्या प्रत्यक्ष करके प्रतीत होता है ? वा अनुमान करके प्रतीत होता है ? प्रत्यक्ष करके तो

नहीं, क्योंकि पूर्व वस्तुगत प्रत्यक्ष करके पूर्ववस्तु परिष्ठित हुआ, अथ  
 वस्तुगत करके उत्तर वस्तु हुआ, अथ ये दोनों परस्पर स्वरूपका  
 नहीं, अथ इन दोनोंका अनुसंधान करने वाला ऐसा तीसरा एक  
 को मानते नहीं है, तिस वास्ते इसके अनंतर इसका जाव है, अथ  
 स तरे अवगम होवे? सो तो तिसकुंजी प्रत्यक्षपूर्वक होनेसे अनुमान  
 कुंजी नहीं होवे, अथ अनुमान जो है, सो लिंग लिंगो संबंध  
 प्रवृत्त होता है, अथ लिंग लिंगीका संबंध तो प्रत्यक्ष करके ग्राह्य है,  
 कर अनुमानसे संबंध ग्रहण करिये, तब अनवस्थादूपण आता है,  
 कार्य कारण जाव विषे प्रत्यक्ष प्रवृत्त होता नहीं, तिस वास्ते  
 की प्रवृत्ति नहीं. अथैही ज्ञानके दोनो कृष्णोंकी परस्पर कार्य  
 जावका अवगमकी निषेध हुआ जाननां तहांकी स्वसंवेदन करके  
 अपणे रूपके ग्रहणमें परस्पर स्वरूप अनवधारणसे तदनंतरमै उत्पन्न  
 आ हूं, अथ इसका मै जनक हू, अथै अवगतिके न होनेसे तुमारे  
 कार्यकारण जाव नहीं है. अथ तिसका अवगमकी नहीं है, तिससे मृ  
 ही यह तुमारा कहनां है कि एक सतति पतित होनेसे बंध मोक्षका एक  
 विकरण है, इस कहने करके जो कहते है कि उपादेयोपादान  
 परस्पर वास्यवासक जाव होनेसे, उत्तरोत्तर विशिष्ट विशिष्टतर कृष्ण  
 त्पत्तिसे मुक्तिका सचव है. सोकी उपादानोपादेय जावका उत्करीतिमें  
 अनुपपद्यमान होनेसे प्रतिक्षिप्त जानना, अथ जो वास्यवासक जाव  
 कथा है, सोकी तिल फूलोकी तरे एक कालमें दोनो होवे तब हो  
 सकता है, "उक्तं चान्यैरपि ॥ अवस्थिताहि वास्यते, जावानावैरवस्थिते"  
 तब कैसे उपादेयोपादान कृष्ण दोनोंको परस्पर असाहित्य होनेसे  
 वास्यवासरु जाव होवे? उक्तं च ॥ श्लोक ॥ वास्यवासकयोश्चैव, मताहि  
 त्यान्न वासता ॥ पूर्वकृष्णैरनुत्पन्नो, वास्यते नोत्तर कृष्ण ॥ १ ॥ उपा  
 ण विनष्टत्वान्न च पूर्वस्य वासना ॥ इति ॥

एक औरकी बात है, कि वासना वासकसे निन्न है? वा अनिन्न है?  
 जे कर कहोगे कि निन्न है, तब तो तिस वासना करके गून्व होनेसे अन्यको  
 वस्तुपतरवत् कदापि वासित न करेगी, जे कर कहोगे कि अनिन्न है, तब  
 तो वास्यकृष्णमें वासनाका संक्रम कदापि नहीं होवे, अथै तिसके स्वरूपकी

हैं तिससें अजिन्न होनेसें वासककीनी संक्रांति है, जे कर कहोगे कि संक्रांति है, तब अन्वयका प्रसंग होवेगा, इस वास्ते तुमारा कहनां किसी नामका नही है, अरु जो तुमनें कहा था कि सकलही जगत् राग देपा है, दुःख संकुल जानता हुआ सकल जगत्कों दुःखोंसें कैसें में उद्धार करे ? इत्यादि. सोची पूर्वापर असंबंध है, क्योंकि तुमारे मत कृष्णही पूर्वापर टूटे दूये परमार्थसें मत है, अरु कृष्णोंके रहनेका कालमान एक परमाणुके व्यतिक्रम मात्र है, इस वास्ते उत्पत्तिसें व्यतिरिक्त तिनकी कोइ कथा नहीं उपपद्यमान होती, “नूतिर्येषां क्रिया सैव, कारकं सैव बोध्यम् ॥ इति वचनात्” तिसतें ज्ञान कृष्णोंकों उत्पत्ति अनंतर न गमन है, अवस्थान है. न पूर्वापर कृष्णोंसेंती अनुगम है, तिस वास्ते तिनोंके परस्पर स्वरूपावधारण नही. अरु न कोइ उत्पत्ति अनंतर व्यापार है, तब कैसें मेरे सम्मुख यह अर्थ साक्षात् प्रतिजासता है ? इस प्रकारसें अनेके निश्चयमात्र कारणोंमेंनी अनेक कृष्णोंका संभव है, अनुस्यूत हो कर उत्पन्न होते है, अरु तिस अनुस्यूतके अज्ञावसें कहासें सकल जगत् राग देपादिक दुःख संकुलता करके विचारणां है ? अरु कहासें दीर्घतर कालके अनुसंधान करके शास्त्रार्थका चिंतन है ? जिसके प्रजावसें सम्यक् उपाय जान करके दया विशेषसें मोहके वास्ते घटना होवे ?

पूर्वपक्षः—यह जो सर्व व्यवहार है, सो ज्ञान कृष्णोंकी संततिकी अपेक्षा करके है, फेर तुम क्यों इस पक्षमें दूषण देते हो ?

उत्तरपक्षः—“सुकुमारप्रज्ञोदेवानां प्रियः सदैव सप्त घटिका मध्यमिष्ठान्नं नोजन मनोज्ञाशयनीय शयनान्यासेन सुखैधितो” परंतु वस्तुके यथार्थ तत्त्व विचारनेसें तेरी बुद्धि क्लेशित नहीं हुई है, तिस करके हमारा कहा तेरी समझमें नहीं आता है, क्योंकि ज्ञान कृष्ण संततिविषेनी वोही दूषण है, जो हमने उपर कहा है, सोइ दिखाते है, कि वैकल्पिक, अरु अवैकल्पिक, जो ज्ञान कृष्ण है, सो परस्पर अनुगमके अज्ञावसे परस्पर स्वरूप नहीं जानते, अरु कृष्णमात्रसे उपरांत रहते नहीं, तब तो कैसें पूर्वापर अनुसंधान रूप दीर्घकालिक सकल जगत् दुःखिताका विचार शास्त्र विचारण रूप यह व्यवहार होवे ? आखों मीच करके विचारो तो सही ? इत्यादि बौद्धमतका खंडन, नंदीसिद्धांत, तथा सम्मतितर्क, द्वादशा



र- नयचक्र, अनेकांत जयपताका, स्यादादरत्नाकर, स्यादादर  
तारिका प्रमुख अनेक शास्त्रोंमें अही तरे कीया है, तो देख  
इति बौद्ध मत खंमनं ॥ १ ॥

१ अथ द्वितीय नैयायिक मतमें पूर्वापर व्याहृतपणां लिखते हैं, कि  
योगसे सत्त्व है. ऐसे कह कर सामान्य विशेष समवाय इन पदार्थों  
के योगसे विनाही सत् कहतेकों क्यों नहीं पूर्वापर व्याहृत वचन

२ ज्ञान आपणे आपको नहीं जानता, आपणे आप विपे  
विरोध है, इस वास्ते ऐसे कह करके फेर कहते हैं कि ईश्वरका ज्ञान  
है, तो आपणे आपको जानता है, अरु स्वात्मविपे क्रियाका विरो  
नते नहीं है, तो फेर क्योंकर स्ववचन विरोध न हुआ ?

३ अरु दीपक जो है, तो अपणे आपको आपही प्रकाश करता है, अ  
जगे स्वात्म विपे क्रिया विरोध मानते नहीं, यह पूर्वापर वचन व्याहृत

४ दूसरोंके उगने वास्ते बल, जाति, निग्रह, स्थान, इनको त  
पणे करके उपदेश करते हुवा अक्षपाद रूपिका वैराग्य वर्णन  
ऐसा है कि जैसा अंधकारकों प्रकाशवाला कहना यह क्यों कर  
पर व्याहृत नहीं है ?

५ आकाशको निरवयवी स्वीकार करके फेर तिसका गुण शब्द  
तो एक देशमें सुणाइ देता है, सर्वत्र नहीं. तब तो आकाशको सांश  
गइ. यह पूर्वापर व्याहृत पणा है.

६ सत्तायोगसे सत्त्वं अरु योग जो है तो सर्व वस्तुओंके सांशता  
हीसे होता है, अरु सामान्यकों निरंश एक मानते है, तब कैसे  
व्याहृत वचन न होवे ?

७ समवाय, नित्य एकस्वभाव मानते हैं, अरु सर्व समवायीपद  
साथ संबंध नैयत्य करके होता हुआ समवाय, अनेक स्वभाव वा  
गया. तब तो पूर्वापर विरोध हो गया.

८ "अर्थवत्प्रमाणं" अर्थ सहकारी है, जिसका तो अर्थवत् प्रमा  
ह कह करके फेर योगी प्रत्यक्षकों अतीताद्यथे विषय कहतेकों क्यों  
पूर्वापर विरोध है ? क्योंकि अतीताधिक जो है, तो विनष्ट अनुत्पन्न  
से सहकारी नहीं हो सके है.

ए तथा स्मृतिगृहीतग्राही होने करके प्रमाण नहीं मानते है, “अनर्थ यत्वेन” विना अर्थके होने करके अरु गृहीतग्राही होनेसे प्रमाण नहीं, ६ धारावाही ज्ञानकी गृहीतग्राही है, तिनकोंकी अप्रमाणता होनी चायें, परंतु धारावाही ज्ञानकों नैयायिक औ वैज्ञानिक प्रमाण मानते हैं, ६ अनर्थजन्य होने करके स्मृतिकों जब अप्रमाण मान्या, तब अतीनागत अनुमानकी अनर्थजन्य होने करके प्रमाण न हुआ, अरु अनुमानों शब्दकी तरे त्रिकाल विषयक मानते हैं, क्योंकि धूम करके वर्तमान अग्नि अनुमेय है, अरु मेघोन्नति करके नविष्यत् वृष्टि, अरु नदीका पूर दे नेंसे अतीत वृष्टिका अनुमान, यह दोनोही अनर्थ जन्य हैं, तो फेर धारावाही ज्ञान, अरु अनर्थ जन्य अनुमान, इन दोनाको तो प्रमाण माननांरु स्मृतिकों अप्रमाण नहीं माननां. यह पूर्वापर विरोध है.

१० ईश्वरका सर्वार्थ विषय प्रत्यक्ष जो है, सो इंद्रियार्थ सन्निकर्ष निरर्थक मानते हो ? वा इंद्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्न मानते हो ? जे कर कहोगे ; इंद्रियार्थ सन्निकर्ष निरर्थक मानते हैं, तब तो “इंद्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्नानमव्यपदेश्यमित्यत्र सूत्रे” सन्निकर्षोपादान निरर्थक होवेगा, क्योंकि ईश्वर प्रत्यक्ष ज्ञान सन्निकर्षके विनाही हो सकता है, जे कर कहोगे कि ईश्वर प्रत्यक्ष इंद्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्न मानते हैं, तब तो ईश्वरके मनकों अणुत्पन्न प्रमाण होनेसे युगपत् सर्व पदार्थोंके साथ संयोग न होवेगा ? तब ईश्वर जब एक पदार्थकों जानेगा, तब दूसरे पदार्थ होते हूयांकोंकी न जानेगा तब तो हमारेकी तरे तिस ईश्वरकों कदापि सर्वज्ञता न होवेगी, क्योंकि सर्व पदार्थोंके साथ युगपत् सन्निकर्ष नहीं हो सकता है, जे कर कहोगे कि सर्व पदार्थोंको क्रम करके जाननेसे सर्वज्ञ है, तब तो बसुत काल करके सर्व पदार्थोंके देखने करके ईश्वरकी तरे हमकूंकी सर्वज्ञता चाहिये. एक औरकी बात है कि अतीत, अनागत जो पदार्थ है, सो विनष्ट अनुत्पन्न होनेसे मनके साथ सन्निकर्ष नहीं हो सकता है, दोनोही पदार्थोंका संयोग होनेसे, अरु अतीत अनागत तो तिस अवसरमें दोनो असत् है, तब किस तरे महेश्वरका ज्ञान अतीत अनागत अर्थका ग्राहक होवे ? अरु तुम तो ईश्वरका ज्ञान सर्वार्थका ग्राहक मानते होत.

व तो पूर्वापर विरोध सहजहीमें हो गया, अैसेही योगीयोंकींजी  
ग्राहक ज्ञानका दुर्धर विरोध जान लेना.

११ कार्य इव्यके प्रथम उत्पन्न होनेसें तिसका जो रूप हे, तो  
उत्पन्न होता है, विना आश्रयके गुण क्योंकर उत्पन्न होवे? यह  
करके पीठेसें यह कहते हैकि कार्य इव्यके विनाश दूये पीठे ति  
नष्ट होता है, यह पूर्वापर विरोध है, क्योंकि जब कार्यइव्य न  
या, तब रूप आश्रय विना पीठे क्यों कर रह सकेगा? ।

१२ नैयायिक औ वैशेषिक जगत्का कर्ता ईश्वरकों मानते हैं.  
तनी एक महामूढताका चिन्ह है, क्योंकि जगत्का कर्ता ईश्वर  
प्रमाणसें सिद्ध नही हो सकता है, यह जगत् कर्ताका खंभन दूसरे  
दमें अज्ञी तरें विस्तार पूर्वक लिख आये है, तोनी नव्य जीवोंके  
वास्ते घोडासा इहानी लिख देते है.

कोइक कहते है कि साधुवोंके उपकार वास्ते अरु दुष्टोंके संहार  
ईश्वर युग युगमें अवतार लेता है, अरु सुगतादिक कितनेक यह बात  
ते है कि मोहकों प्राप्त हो करके अपने तीर्थकों क्लेशमें देख कर  
वान् अवतार लेता है, "यदाहु रन्ये ॥ ज्ञानिनोधर्मतीर्थस्य, कर्त्तारः परमा  
गत्वा गच्छन्ति नृयोपि, नवंतीर्थनिकारत इति ॥ १ ॥" जो फिर सं  
अवतार लेता है, वो परमार्थसें मोहरूप नही हुआ है, क्योंकि  
सर्व कर्म कृत्य नही दूये है, जे कर मोहादिक कर्मकृत्य हो जाते, तो व  
हेकों अपने मतका तिरस्कार देखके पीडा पाता, अरु अवतार लेते  
कर साधुवोंके उपकारार्थ अरु दुष्टोंके संहार वास्ते अवतार लेता है  
तो असमर्थ हुआ, क्योंकि विनाही अवतारके लीयां वो यह काम  
कर सकता था, जे कर कर सकता था, तो फेर काहेकों गर्जावासमें पड  
स वास्ते सर्व कर्म कृत्य नही दूये, जे कर कृत्य हो जाते तो रुधीनी  
तार न लेता ॥ यदुक्तं ॥ दग्धे बीजे यथात्यंतं, प्राडुर्नवति नाकुर ॥ का  
जे तथा दग्धे, न रोहति नवांकुरः ॥ १ ॥ उक्तंच श्रीसिद्धसेन दिवाक  
देरपि ॥ नवानिगामुकानां, प्रवलमोहविकृन्तितं ॥ श्लोक ॥ उग्धेधत  
रुपेति नवं प्रमथ्य, निर्वाणमप्यनवधारितनीरनिष्टं ॥ मुक्तः स्वय एता  
परार्थेश्वर, स्वघासनप्रतिहतेष्विह मोहराज्य ॥ १ ॥ इत्यलविस्ते

पूर्वपक्षः—सुगतादिक ईश्वर मत होवो, परंतु सृष्टिका कर्ता तो महादेव ईश्वर है, सो क्यों नहीं मानते ?

उत्तरपक्षः—जगत् कर्ता ईश्वरकी सिद्धिमें प्रमाणका अभाव है, इस वादमें नहीं मानते.

पूर्वपक्षः—जगत् कर्ताकी सिद्धिमें प्रमाण है. पृथिव्यादिक किसी बुद्धिमानके करे दूये हैं घटादिवत् कार्यरूप होनेसे यह हेतु असिद्ध नहीं है, पृथिव्यादिकोंको सावयव होने करिके कार्यत्वकी प्रसिद्धि होनेसे तथाहि पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिक सर्व सावयव होनेसे घटवत् कार्यरूप है, अरु यह हेतु विरुद्धनी नहीं है, निश्चित कर्तक घटादिकों विषे कार्यत्व हेतुके अभावसे अरु जिनांका कर्ता नहीं है, उनसे व्यावृत्त होनेसे अनेकांतिकनी नहीं है, अरु प्रत्यक्ष आगम करके अबाधित विषय होनेसे कालात्यया सिद्धिनी नहीं है, इस निर्दोष हेतुसे जगत्कर्ता ईश्वर सिद्ध होता है.

उत्तरपक्षः—तहां प्रथम पृथिवीआदिक बुद्धिमानके बनाये दूये हैं, इस सिद्धिके वास्ते जो तुमने कार्यत्व हेतु कहा था, सो हेतु क्या सावयवत्व है ? वा प्राग्वत् स्वकारण सत्ता समवाय है ? वा 'कृत' जैसे प्रत्ययका विषयत्व है ? वा विकारित्व है ? इन चारों विकल्पोंमेंसू कार्यत्व हेतुका कौनसा स्वरूप है ? जे कर कहोगेकि सावयवत्व स्वरूप है, तो यह सावयवपणा अवयवों विषे वर्तमानत्व है ? वा अवयवों करके आरन्ध्रमाणत्व है ? वा प्रदेशत्व है ? वा सावयव ऐसी बुद्धिविषयत्व है ?

तहां आद्य पक्षविषे अवयव सामान्य करके यह हेतु अनेकांतिक है, तथा अवयवों विषे वर्तमाननी निरवयव अरु अकार्य कहते है, तथा दूसरे पक्षमें हेतु साध्यके समान है, जैसा पृथिव्यादिकोंको कार्यत्व साध्य है, जैसेही परमाणु आदिकोंको अवयव आरन्ध्रत्व पणा है, तथा तीसरे पक्षमें आकाशके साथ हेतु अनेकांतिक है, क्योंकि आकाश प्रदेश वाला तो है, परंतु कार्य नहीं है. तथा चउथे पक्षमेंनी आकाशके साथ हेतु व्यभिचारी है, क्योंकि जो व्यापक होता है, सो निरवयव नहीं होता है, अरु जो निरवयव होता है, सो परमाणुवत् व्यापक नहीं होता है.

तथा प्रागसतः स्वकारण सत्तासमवाय कार्यत्वनी नहीं, क्योंकि तिसको नित्य होने करके तिसके लक्षणके न होनेसे. जे कर तिसका लक्षण

होवेगा, तब तो पृथिव्यादिकोंके कार्यत्वकोंनी नित्यताका प्रसंग तब बुद्धिमत्का बनाया हुआ क्या सिद्ध करोगे ? एक औरनी दूषण कि योगीयोंके अज्ञेय कर्मके दूषण हुआं यकां पद्मांतपातिविषे होने करके यह हेतुनांगा अस्ति है, क्योंकि योगी प्रत्यक्षों नाव रूप होने करके सत्ता स्वकारण समवाय इन दोनोंके अभावसे.

तथा "कृतं" जैसे प्रत्ययका जो विषयत्व है सोना कार्यत्व नहीं सक्ता है, खनन उत्तेचनादिक करके कृतं आकाशं जैसे अकार्य नी वर्तमान होने करके अनेकांतिक है.

तथा विकारत्वकोंनी कार्यत्वका अनुपंग है, सत् वस्तुकों जो है, सो विकारित्व है. तब तो ईश्वरकोंनी विकारित्व पणा है, अपर मत् हेतुकत्व प्रसंग होनेसे अनवस्था हो जावेगी, जे कर कहोगेकि विकारी नहीं तब तो कार्यका कारित्व पणा डुर्घट है, जैसे कार्य कों विचारता यकां उपपद्यमान न होनेसे "कार्यत्वात्" यह हेतु है, एक औरनी दूषण है कि कदे होना कदे न होना, लोकमे उसका त्वकी प्रसिद्धि है. अरु यह जो जगत् है, सो तुमारे महेश्वरकी तरें सत्व होनेसे कैसे कार्यत्व होवे ?

पूर्वपक्षः—तिस जगत्के अंतर्गत तृणादिकोंको कार्यत्व होनेसे कोंनी कार्यत्व है.

उत्तरपक्षः—महेश्वर अंतर्गत बुद्धिआदिकोंको तथा परमाणु अंतर्गत पाकज रूपादिकोंको कार्यत्व रूप होनेसे महेश्वरको तथा आदिकोंको कार्यत्वका अनुपंग होवेगा, तब तो इस ईश्वरको अपर बुद्धि हेतुकत्व प्रसंगसे अनवस्था दूषण आता है. अरु अपसिद्धांतका पंग है, तथा हे ईश्वरवादि ! जैसे जैसे करके जगत्को कार्यत्वपणा होतोनी कार्यमात्र इहा हेतु तुमने माना है ? वा कार्य विशेष हेतु माना है.

जे कर आद्य पक्ष मानोगे, तब तो तिससेती बुद्धिमत्कट्टे विशेष सिद्धि नहीं. क्योंकि तिसके साथ व्याप्तिकी सिद्धि नहीं, किंतु कर्तृ सामान्यकी सिद्धि होती है. जे कर ऐसेही मानोगे, तब तो हेतु अकिंचित्कर है, साध्य विरुद्ध साधनेसे हेतु विरुद्ध है. तिस वास्ते कार्यत्वकृत बुद्धि उत्पन्न बुद्धिमत् कर्ताका गमक नहीं, अरु जे कर सर्व सारूप्य मात्र करके गमक

व होवे, तब तो वाप्यादिकोंकोंजी अग्नि प्रतिगमकत्वका प्रसंग होवे  
 I, अरु महेश्वर आत्मत्व करके सर्व जीवोंके सदृश होनेसें ? संसारिण  
 II, २ किंचित् इत्त्वपणा, ३ संपूर्ण जगत्का अकर्तृत्वपणोके अनुमापकका  
 अनुपंग है, क्योंकि तुल्य अक्षेप समाधान होनेसें. तिस वास्ते वाप्य अरु  
 I म इन दोनोंकों किसी अंश करके साम्यनी है, तोनी कोइक़ औसा वि  
 I प है, जिस करके धूम अग्निका गमक है, परंतु वाप्यादिक नहीं. तैसेही  
 अग्न्यादिकोंकों इतर कार्योसेंनी कबुक् विशेष अंगीकार करो.

जे कर दूसरा पक्ष मानोगे, तब हेतु असिद्ध है, कार्य विशेषके अज्ञा  
 सं. नावे वा जीण कूप प्रासादादिकोंकी तरें अक्रिया देखने वालेकोंनी  
 कृतबुद्धि उत्पादकका प्रसंग है, जे कर कहोगेकि समारोपसें प्रसंग नहि  
 होता है, सोनी दोनों जगें एक सरीखा होनेसें क्यों नहीं होता है? दो  
 नों जगें कर्त्ताकों अतीन्द्रियत्वके अविशेषसें. पूर्वपक्ष प्रामाणिककों है, य  
 I कृतबुद्धि. उत्तरपक्ष कैसें तहां तिसकों कृतत्वका अवगम होवे? २  
 I अनुमान करके अथवा अनुमानांतर करके आद्य पक्षमें परस्पर आश्र  
 I दूषण है, तथाहि सिद्ध विशेषण हेतुसें इत अनुमानका उद्धान है,  
 तेसके उद्धानके होयां हेतुके विशेषणकी सिद्धि है अरु दूसरे पक्षमें अ  
 नुमानांतरकोंनी सविशेषण हेतुसें उद्धान होवेगा, तहांनी अनुमानांतरसे  
 तेसकी सिद्धि. इसी तरें अनवस्था दूषण होता है, इत वास्ते कृत बुद्धि  
 उत्पादकत्व रूप विशेषण सिद्धि नहीं, तब तो विशेषण असिद्ध हेतु है.

अरु जो कहते हैं कि खातप्रतिपूरित पृथिवीके दृष्टांत करके कृतकों  
 को आत्मविषे कृतबुद्धि उत्पादकत्वका अज्ञाव है, सोनी असत् है, त  
 हां आरुति चूनागादि सारूप्यकों तिसके उत्पादकके अज्ञावसें, तिसके उ  
 त्पादककी उत्पत्तिसें.

अरु जैसेंनी न कहनांकि पृथिव्यादिकोंमेंनी अकृत्रिम संस्थान सारू  
 प्य है, जिस करके आरुतिमत्व बुद्धि उत्पन्न होती है, तिसहीके न मान  
 नेमें अपत्तिघांतकी प्रसक्ति होवेगी, जैसें कृतबुद्धि उत्पादकत्व रूप विशे  
 षण असिद्ध होनेसें हेतु विशेषण असिद्ध है, सो सिद्ध होवो, तोनी  
 यह हेतु घटादिकोंकी तरें शरीरादि विशिष्टकोंही बुद्धिमत् कर्त्ताका इहां  
 प्रसाधनसे हेतुविरुद्ध है.

प्रश्नः—अैसे दृष्टांत दाष्टांतिक साम्य अन्वेषणमें सर्व जगें अनुपपत्ति होवेगी.

उत्तरः—अैसें नहीं है धूमादि अनुमानमें महानत इतर अग्निकी प्रतिपत्तिसें, यहांनी अैसेही बुद्धिमत् सामान्य प्रसिद्धिसें हेतु रोध नहीं, अैसेंनी कहनां अयुक्त है, क्योंकि दृश्य विशेष तिस सामान्यकों कार्यत्व हेतुकी प्रसिद्धि है, परंतु अदृश्य नहीं, तिसकी स्वप्नेमेंनी प्रतिपत्ति नहीं है, तिस सामान्य वालेका आधार है, तिस वास्ते जैसे कारणसें जैसा कार्य उपलब्ध होता है, साही अनुमान करने योग्य है, यथावत् धर्मात्मक अग्निसें यावत् त्मकस्य धूमकी उत्पत्ति है, सुदृढ प्रमाणसें प्रतिपन्न है, तैसेही धूमसें सेंही अग्निका अनुमान है, अैसें कहने करकें साध्य साधन दोनोंका विपण करकें व्याप्तिविषे ग्रहण करतां हूया, सर्वानुमानकी उद्भेद है, इत्यादि जो कहनां है, सोनी खंमन हो गया.

तथा विना बीजके बोयां जो तृणादिक उत्पन्न होते हैं तिनके यह कार्यत्व हेतु व्यञ्जिचारी है, बहुतसें कार्य देखनेमें आते हैं, कितनेक तो बुद्धिमान्के करे हुये दीखते हैं, जैसें घटादिक.

अरु कितनेक उक्तसे विपरीत दिखाइ देते है, जैसें विना बोयां दिक. जे कर कहोगेकि हम सर्वकों पद्ममें कर लेवेगे तब तो “स श्यामत्पुत्रत्वादितरतत्पुत्रवत्” इत्यादिनी गमक होने चाहियें, तब तो कोइनी हेतु व्यञ्जिचारी न होवेगा. जहां जहां व्यञ्जिचार होवेगा, तहां तहां तिनकों पद्ममें कर लेनेसें तथा यह हेतु ईश्वर बुद्धि आदिकों करकेंनी व्यञ्जिचारी है, ईश्वर बुद्ध्यादिकोंको कार्यत्वके होयां हूयांनी समवायि कारणमें ईश्वरादिकोंसे निन्न बुद्धिमत्पूर्वकत्वके अनावसें, जे कर यहांनी इती तरे मानोगे, तब अनवस्थादूषण होवेगा, तथा यह कार्यत्व हेतु काजात्यका पद्विष्टनी है, विना बोया उत्पन्न हुये तृणादिको विषे बुद्धिमत् कर्ता अनाव प्रत्यक्ष प्रमाणसें अग्निके अनुष्णत्व साध्यविषे इध्यत्व हेतु वत् दीख पडता है.

प्रश्न—अंकुर तृणादिकोंकानी अदृश्य ईश्वर कर्ता है

उत्तर—यहनी ठीक नहीं, तहां अदृश्य ईश्वरका होनां इती प्रमाणमें

अथवा और किसी प्रमाणसें है ? प्रथम पक्षमें चक्रक दूषण है, इस प्रमाणसें तिसका सञ्जाव सिद्ध होवे, तब अदृश्य होने ईश्वरके अनुपलब्धि सिद्धि होवे, तिसकी सिद्धिके होयां कालालययापदिष्टका अज्ञाव सिद्धि होवे, तिसके पीछे इस प्रमाणकी सिद्धि होवे. दूसरा पक्षकी अयुक्त ईश्वरके नावावेदिक प्रमाणके अज्ञावसें होवे, तहां प्रमाणका सञ्जाव कौन ? ईश्वरके अदृश्य होनेमें क्या शरीरका न होनां कारण है ? १ वा विद्यादि प्रभाव हैं ? २ वा जाति विशेष है ? प्रथम पक्षमें अशरीरी होनेसें मुक्त आत्मावत् कर्त्तापणेकी अनुपपत्ति है.

प्रश्न:- शरीरके अज्ञाव करकेंजी ज्ञानेच्छा प्रयत्नाश्रयत्व करकें शरीर उत्पन्न करकें ईश्वर कर्त्ता हो सकता है.

उत्तर:-यहजी विना विचारहीका तुमारा कहनां है, क्योंकि शरीर संज्ञा करकेंही तिसकी प्रेरणा होनेसें शरीरके अज्ञाव दूयां मुक्त आत्मवत् प्रमाणका असंजव होनेसें अरु शरीरके अज्ञावसें ज्ञानादि आश्रयित्वकाजी असंजव है, तिसकी उत्पत्तिमें इसकों निमित्त होनेसें अन्यथा मुक्तात्मा उत्पत्तिमें तिसकी उत्पत्ति होवेगी. अरु विद्यादि प्रभावकों अदृश्यपणेमें हेतु होयां कदाचित् यह दीखना चाहिये, परंतु सर्वदा नहीं. क्योंकि विद्यावान् सदा अदृश्य नहीं रहते है, पिशाचादिकोंकी तरें जाति विशेषकी अदृश्यमें हेतु नहीं, क्योंकि ईश्वर एक है, एकमें जाति नहीं होती है, जाति जो होती है, सो अनेक व्यक्ति निष्ठ होती है. जलेही ईश्वर दृश्य अथवा अदृश्य होवे, तोजी ? क्या सत्ता मात्र करकें ? २ वा ज्ञानवत्त्व होने करकें ? ३ वा ज्ञानेच्छा प्रयत्नवत्त्व करकें ? ४ वा तत्पूर्वक व्यापार करके ? ५ वा ऐश्वर्य करकें पृथिव्यादिकोंका कारण है ?

तथा आद्य पक्षमें कुलालादिकोंकोंजी सत्त्वके अविशेष होनेसें जगत्कर्त्तृका अनुपपन्न होवेगा. दूसरे पक्षमें योगीयोकोंजी जगत् कर्त्ताकी आपत्ति होवेगी, तीसरा पक्षकी ठीक नहीं, क्योंकि अशरीरकों प्रथमही ज्ञानादि आश्रयित्वका प्रतिषेध करनेसें. चउथेकाजी संजव नहीं क्यों कि अशरीरकों काय वचनके व्यापारवत्त्वका असंजव होनेसें. अरु ऐश्वर्यकी ज्ञातपणा है ? अथवा कर्त्तापणा है ? अथवा और कुछ है ? जेकर कहोगे कि ज्ञातपणा है, तब क्या ज्ञातत्वमात्र है ? अथवा सर्वज्ञात् पणा है ? आद्यपक्षमें ज्ञाताही होवेगा,



परतु ईश्वर न होवेगा. अस्मदाद्यन्यज्ञातृयोकी तरें. दूसरे पक्षमें सर्वत्र इसको होवेगा परंतु सुगतादिवत् ईश्वरपणां न होवेगा.

अथ जे कर कहोगे कि कर्तृत्वपणा है तव तो नेक कार्य करने वालोंको ऐश्वर्यकी प्रसक्ति होवेगी, अरु इहा प्रयत्न ना और कोइनी वस्तु ईश्वरके ऐश्वर्यकी निबंधन नहा है.

एक औरनी बात है, कि ईश्वरके जगत् बनानेमें यथासुवि है? वा कर्मके वश हो करके है? वा दया करके है? वा क्रीडा है? वा निग्रहानुग्रह करने वास्ते है? वा स्वभावसे है? आद्य कदाचित् और तरेंकी सृष्टि हो जावेगी, दूसरे पक्षमें ईश्वरकी दानी होवेगी, तीतरे पक्षमें सर्व जगत् सुखीही करना था.

पूर्वपक्षः—ईश्वर क्या करे? जैसे जैसे जीवोंने कर्म करे हैं, तिन वशसे ईश्वर तैसा तैसा दुःख सुख देता है.

उत्तरपक्षः—तब तो तिसका क्या पुरुपाकार है? जब कर्महीही करके कर्ता है, तब तो ईश्वरकी कल्पना करके क्या करना है? वलसें सब कुठ हो जावेगा, तथा चउथे पाचमे विकल्पमें ईश्वर, रागी हो जावेगा, तब तो ईश्वर क्यों कर सिद्ध होवेगा? तथाहि क्रीडा वाजवत् रागवान् ईश्वर हे? तथा ईश्वर अनुग्रह निग्रह करनेसें तरें राग छेप वाला है?

जे कर कहोगे कि ईश्वरका स्वभावही जगत् करने (रचनेका) है, तो तो जगत् स्वभावसेंही दूआ है, जैसे मान लेवो फेर ईश्वरकी कल्पना करके करके है? इस वास्ते कार्यत्व हेतु बुद्धिमत् कर्ता ईश्वरको नही सिद्ध कर्ता है, इस वास्ते नैयायिक, वैशेषिक जो जगत्का कर्ता मानते है, सो सूर्खताका सूचक है, विज्ञेय करके जगत् कर्ताका संस्कार देखना होवे, तदा सम्मतितके ग्रंथ देखनां.

अरु जो नैयायिकोंने सोला पदार्थ माने है, सोनी वालकोंकी तैसा है, क्योंकि सोला पदार्थ घटते नहीं है, सोला पदार्थ यह है उत्तम नाम कहते है. १ प्रमाण, २ प्रमेय, ३ संशय, ४ प्रयोजन, ५ दृश्य, ६ सिद्धांत, ७ अचयव, ८ कर्ता, ९ निर्णय, १० वाद, ११ जल्प, १२

तमा, १३ हेत्वाजास, १४ बल, १५ जाति, १६ निग्रहस्थान, य सोला पदार्थ कहे है.

तहां, हेय उपादेय प्रवृत्तिरूप करके जिस करके पदार्थोंकी परिच्छित्ति क ये है, "तत्त्वमीयतेऽनेनेति प्रमाणं" सो प्रमाण, सो प्रमाण १ प्रत्यक्ष, अनुमान, २ उपमान, ४ शब्द चेदसें चार प्रकारका है, "तत्रेन्द्रियार्थे न्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यञ्जिचारिव्यवसायात्मकं प्रत्यक्षं इति तम सूत्रं ॥" इसका यह तात्पर्य है कि इंद्रिय अरु अर्थका जो संबंध ससेती जो उत्पन्न दूआ व्यपदेश रहित व्यञ्जिचार रहित निश्चयात्मक सको प्रत्यक्ष प्रमाण कहते है, परंतु प्रत्यक्ष प्रमाणका यह लक्षण नही, तथाहि जहां आत्मा अर्थ ग्रहण प्रति साक्षात् व्यापारिये, सोइ प्रत्य प्रमाण है, सो अवधि, मनःपर्यव, अरु केवल है, अरु यह जो प्रत्य नैयायिकोंने कहा है, सो उपाधि द्वारा प्रवृत्ति होनेसें अनुमानकी त परोक्ष है, जो उपचार प्रत्यक्ष माने, तव तो है, परंतु तत्त्वचित्तमे पचारका व्यापार नही होता है.

अरु अनुमान प्रमाण तीन चेद करिकें मानते हैं, १ पूर्ववत्, २ शेषवत्, सामान्यतोदृष्ट. तहां कारणसें कार्यका जो अनुमान, सो पूर्ववत्, तथा र्ग्यसे कारणका जो अनुमान, सो शेषवत्, तथा एक आंबका वृक्ष फूला ख कर आंब, जगत्में फूले है, जैसें जाननां; अथवा देवदत्तादिकोमें गति र्बक स्थानसें स्थानांतरकी प्राप्ति देख कर सूर्यमेंकी गतिका अनुमान क नां इसका नाम सामान्यतो दृष्ट है, तहांकी अन्यथानुपपत्तिही गमक है, तु कारणादिक. क्योंकि अन्यथानुपपत्तिके बिना कारणकों कार्य प्रति व्य नचार होनेसे. अरु जहां अन्यथानुपपत्ति है, तहां कार्य कारणादिको के बिनाकी गमकजाव देखीये है, सोइ दिखाते है. कृतिकाके देखने में रोहिणीका उदय होवेगा ॥ तदुक्तं ॥ श्लोक ॥ अन्यथानुपपन्नत्वं, यत्र तत्र त्रयेण कि ॥ नान्यथानुपपन्नत्वं, यत्र तत्र त्रयेण कि ॥ १ ॥ तथा एक औरकी बात है कि जब प्रत्यक्ष प्रमाणही नैयायिकका कहा प्रमाण न दूआ तब प्रत्यक्ष पूर्वक अनुमान जो है सो क्योंकर प्रमाण होवे? तथा "प्रतिष साधर्म्यात्" अर्थात् प्रतिष साधर्म्यसे जो साध्यका सा यन है, सो उपमान है, जैसा गौ है तैसा रोज है, यहांकी सज्ञा संज्ञी

संबंधकी प्रतिपत्ति उपमानका अर्थ है, इहांकी अन्यथानुपपत्तिके होनेसे उपमानकी अनुमानके अंतरभावही है, परंतु पृथग् प्रमाणों के कर कहोगे कि इहां अन्यथानुपपत्ति नहीं है, तब तो व्यक्तियों नेसें उपमान प्रमाणही नहीं है, शब्दकी सर्व प्रमाण नहीं है, किंतु आप्त प्रणीत आगम है, सोइ प्रमाण है, अरु अर्हत बिना दूसरा आप्त नहीं. इस बातका निर्णय देखनां होवे, तदा सम्मतितर्क, नंद, त, आप्तमीमांसादि शास्त्र देख लेने. तथा एक औरकी बात है, चारों प्रमाण आत्माका ज्ञान है, अरु ज्ञान वस्तुके गुणोंको पृथग् मानीयें, तब तो रूपरसादिकोंकी पृथग् पदार्थ माननां चाहिये. जे कर कि प्रमेयके ग्रहण करके, औ इंडियार्थ होने करके तेनी ग्रहण जाते हैं, यद्वनी तुमारां कहनां युक्ति युक्त नहीं है, क्योंकि इव्यसें गुणोंका अभाव है, इव्यके ग्रहण करनेसें गुणोंकाही ग्रहण सिद्ध है, स वास्ते पृथग् पदार्थ माननां ठीक नहीं.

१ तथा प्रमेयका जेद, १ आत्मा, २ शरीर, ३ इंडिय, ४ अर्थ, ५ बुद्धि, ६ मन, ७ प्रवृत्ति, ८ दोष, ९ प्रेत्यभाव, १० फल, ११ दुःख, १२ अतर्हानां १ आत्मा सर्वका देखने वाला अरु जोक्ता है, अरु इच्छा, वैष, प्रवृत्ति, सुख, दुःख, ज्ञान, इन करके अनुमेय है, सो तो हमने जीवतत्त्वमें ग्रहण कीया है, अरु २ शरीर जो है, सो आत्माका जोगायतन है, इंडिय गोंके साधन है, अरु ३-४ इंडियार्थ जोग्य है, येनी शरीरादिक जीवतत्त्वोंके ग्रहण करके हमने ग्रहण करे हैं, अरु ५ बुद्धि जो है, सो उपपत्ति रूप ज्ञान विशेष है, सो बुद्धि जीवके ग्रहणहीमें आ गइ, एतावता जीव तत्त्वमेंही ग्रहण हो गइ, अरु ६ सर्व विषय अंत-करण है, युगपत् ज्ञान का न होना यह मनका लिंग है, तहां इव्य मन तो पौत्रजिक है, सो अजीव तत्त्वमें ग्रहण कीया है, अरु नावमन जो है सो ज्ञानरूप आत्माका गुण है, सो जीव तत्त्वमें ग्रहण कीया है, अरु ७ आत्माकी इच्छाका नाम प्रवृत्ति है, सो सुख दुःखोंके होनेमें कारण है, सो ज्ञानरूप होनेसें जीवतत्त्वमें ग्रहण करी है, ८ आत्माके जो अध्ववनाय शरीर, वैष, मोहादि दोष हैं, यह दोषनी जीवके अन्निप्राय रूप होनेसें जीव तत्त्वमेंही ग्रहण कीया है, इस वास्ते पृथग् पदार्थ नहीं. ९ प्रेत्यभाव, १०

कका सद्भाव होना सोची जीवाजीवके बिना और कुछ नहीं है, तथा फल, जो सुख दुःखका चोगना है, सोची जीव गुणोंके अंतर्भाव है, इस वास्ते पृथक् पदार्थ कहना ठीक नहीं, तथा ११ दुःख, यहजी फलसे निवारा नहीं, और १२ जन्म मरण प्रबंध उल्लेखरूप करके सर्व दुःखोंको दूर करणां, ऐसा मोहका लक्षण है, सो हमने नवतत्त्वमें मान्याही है.

३ तथा यह क्या है ? ऐसा अनिश्चयरूप प्रत्ययको संशय कहते हैं, सोची निर्णय ज्ञानवत् आत्माहीका गुण है.

४ तथा जिस करके प्रयुक्त हुआ होयां प्रवर्त्त है, तिसका नाम प्रयोजन है, सोची इहा विशेष होनेसे आत्माका गुण है.

५ तथा अविप्रतिपत्ति विषयमें प्राप्त है, अर्थ सो दृष्टांत है, सोची जीवाजीवपदार्थोंसे न्यारा नहीं है, इस वास्ते पृथक् पदार्थ नहीं है. क्योंकि अवयवग्रहणेमेची आगे इसका ग्रहण हो जावेगा.

६ तथा सिद्धांत चार प्रकारका है, १ सर्वतत्राविरुद्धः सर्व शास्त्रों में अविरुद्ध जैसे स्पर्शनादि इन्द्रिय है, और स्पर्शादि इन्द्रियार्थ है, तथा प्रमाणों करके प्रमेयका ग्रहण होता है, २ समानतंत्रसिद्धः, परतंत्रा सिद्धः, प्रतितंत्रासिद्धांतः, जैसे सांख्य मत वालोके असत् आत्म लानको प्राप्त नहीं होता है, और सत्का सर्वथा विनाश नहीं है, तथा ३ जिस की सिद्धिके हूया औरची अर्थ अनुपंग करके सिद्ध हो जावे, सो अधिक रणसिद्धांत है तथा ४ “अपरीक्षितार्थान्युपगमत्वान्निद्रोपपरीक्षणमन्युपगमसिद्धातः” जैसे किसीने कहा शब्द क्या वस्तु है ? कोइक कहता है शब्द इव्य है, सो शब्द नित्य है ? वा अनित्य है ? इत्यादि विचार यह चार प्रकारका सिद्धांत ज्ञान विशेषसे अतिरिक्त नहीं है, और ज्ञानविशेष आत्माका गुण है गुणोंके ग्रहणसे ग्रहण किया है, इस वास्ते पृथक् पदार्थ नहीं.

७ अथावयवाः प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन, यह पांचो अवयवकों जे कर शब्दमात्र मानीये, तव तो पुञ्ज रूप होनेसे अजीव तत्त्वमें ग्रहण कीये है. जे कर ज्ञानरूप मानीये. तव तो जीव तत्त्वमें ग्रहण कीये है, इस वास्ते पृथक् पदार्थ कहना ठीक नहीं, जे

कर ज्ञान विशेषकों पृथक् पदार्थ मानीयें, तब तो पदार्थ बहुत हो  
क्योंकि ज्ञानविशेष अनेक प्रकारके हैं.

८ संग्रहसें उपरि नवितव्यता प्रत्ययरूप सदर्थपर्यालोचनात्मक  
तर्क कहते हैं, जैसे कि यह स्याणु अथवा पुरुष जरूर होवेगा,  
ज्ञान विशेषही है, ज्ञानविशेष जो है, सो ज्ञातासें अनिन्न है, इत  
पृथक् पदार्थ कल्पना ठीक नहीं.

ए संशय अरु तर्कसेंती उत्तर काल जावी निश्चयात्मक असा  
ज्ञान, तिसका नाम निर्णय है, यहनी ज्ञानविशेष है, अरु  
एसें प्रत्यक्षादि प्रमाणोंके अंतर्जावि होनेसें पृथक् पदार्थ कल्पना ठीक नहीं.

१०-११-१२ तथा वाद, जल्प, वितंभा, तहां प्रमाण तर्क साधन  
निर्वांत अविरोध पंचावयव करके संयुक्त पक्ष प्रतिपक्षका जो ग्रहण  
तिसका नाम वाद है. सो वादतत्त्व ज्ञानके वास्ते शिष्य अरु  
होता है, अरु सोइ वाद जिसकों जीतना होवे, तिसके साथ उल  
नियह स्थान करके साधनोपलंन, सो जल्प है, तथा सो वादही  
स्थापना करकेही वितंभा है, यह वाद, जल्प, वितंभा, इन तीनोंका  
ही नहीं हो सकता है, क्योंकि तत्त्वचिंताविषे तत्त्वके निर्णयार्थ वाद  
रनां चाहियें, परंतु उल जाति आदिक करके तत्त्वका निश्चय नहीं हो  
है, क्योंकि उलादिक जो है, सो परके वचने वास्ते करियें हैं, तिनसे  
त्व निर्णयकी प्राप्ति नहीं होती है, जे कर इनका नेटनी मानोगे, तो  
ये पदार्थ नहीं हो सके है, क्योंकि जो परमार्थसें वस्तु है, सोइ  
है. अरु वाद जो है, सो पुरुषकी इच्छाके अधीन है, नियतरूप  
वास्ते पदार्थ नहीं, तथा एक औरनी बात है, कि  
नके वादमेंनी पक्ष प्रतिपक्ष ग्रहण करते हैं, तिनसे  
होनी चाहियें, परंतु यह तुम नहीं मानते हो, इस

१३ तथा १ अतिश. २ अनेकांतिक, ३ विरु  
हैं. हेतु तो नहीं, परंतु हेतुकी तरें जासन होते  
कहते हैं. जब सम्यक् हेतुवोंकीही तत्त्वव्यवस्थिति  
का तो क्याही कहना है? क्योंकि जो नियत

, अरु हेतु तो किसी साध्यवस्तुमें हेतु है, दूसरे साध्यमें अहेतु है, इ  
वास्ते नियतस्वरूप वाला नहीं।

१४-१७-१६ तथा ठज, जाति, निग्रहस्थान, यह तीनों पदार्थ नहीं।  
क्योंकि यह तीनोंही वास्तवमें कपटरूप हैं, जिनोंने इनको तत्त्व करके क  
न करे है, उनके ज्ञान, वैराग्यका क्या कहना है? इस संसारमें जो चोरी,  
गो, हथफेरी प्रमुख सिखावे, तिसको जी तत्त्वज्ञानका उपदेशक मानना चा  
हें? यह नैयायिकमतके सोला पदार्थोंका खंमन किया. जे कर विशेष क  
के देखना होवे, तो न्यायकुमुदचंद् देख लेनां. यह खंमन, सूत्ररुतांग  
संज्ञांतसें लिखा है, जे कर विशेष देखनां होवे, तब वारदवा अध्ययन  
लेनां ॥ इति नैयायिक दर्शन खंमनं संपूर्णम् ॥

अथ वैशेषिक मत खंमन लिखते है वैशेषिकोंके कहे हूये तत्त्वची  
तत्त्व नही है, सोइ ढीखाते है. १ इव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामा  
न्य, ५ विशेष, ६ समवाय, इनोंने यह ठ तत्त्व माना है. तहां १ पृथि  
वी, २ अप्, ३ तेज, ४ वायु, ५ आकाश, ६ काल, ७ दिक्, ८ आत्मा,  
९ मन, यह नव इव्य हैं. तिनमें पृथिवी, अप्, तेज, अरु वायु, इन  
चारोंकों निन्न निन्न इव्य माननेसें ठीक नहीं. क्योंकि परमाणु जो हैं,  
सो प्रयोग विश्रसा करके पृथिवी आदिकोंके रूपपणे परिणमतेची है,  
तोनी अपणे इव्य पणेकों नहीं त्यागते है, अरु अति प्रसंग होनेसें अब  
स्था जेद करके इव्यका जेद माननां युक्त नहीं है, अरु आकाश, त  
था कालको तो हमनेची इव्य माना है, अरु दिशा जो है, सो आकाश  
का अवयवजुत है, इस वास्ते पृथग् इव्य नही. अरु आत्मा शरीर मात्र  
व्यापी उपयोग लक्षण तिसकों हमनी इव्य मानते है, अरु इव्य मन जो  
है, सो पुज्जइव्यके अंतर्भाव है, तथा जावमन जो है, सो जीवका गु  
ण होनेसें. आत्माके अंतर्भाव है, यद्यपि वैशेषिक कहते हैं, कि जैसे प  
थिवीत्वके योगसे पृथिवी है, यहनी उनका कहनां स्वप्रक्रिया मात्र है,  
क्योंकि पृथिवीसें अन्य दूसरा कोइ पृथिवीपणा नहीं है, जिसके योगसें प  
थिवी होवे, अपि तु सर्वही जो छुठ है, सो सामान्य विशेषात्मक है, न  
रसिंहाकारवत् उनयस्वजाव है.

तथा चोक्तं ॥ श्लोक ॥ नान्वयः सहि जेदत्वान्न, जेदोन्वयवृत्तितः ॥ मृ

कर ज्ञान विशेषकों पृथक् पदार्थ मानीयें, तब तो पदार्थ बहुत हो  
क्योंकि ज्ञानविशेष अनेक प्रकारके हैं.

८ संशयसें उपरि नवितव्यता प्रत्ययरूप सदर्थपर्यालोचनात्मक  
तर्क कहते हैं, जैसे कि यह स्थाणु अथवा पुरुष जरूर होवेगा,  
ज्ञान विशेषही है, ज्ञानविशेष जो है, सो ज्ञातासें अनिन्न है, इस  
पृथक् पदार्थ कल्पना ठीक नहीं.

ए संशय अरु तर्कसेंती उत्तर काल जावी निश्चयात्मक अस्त  
ज्ञान, तिसका नाम निर्णय है, यहनी ज्ञानविशेष है, अरु निश्चय  
एसें प्रत्यक्षादि प्रमाणोंके अंतर्जाव होनेसें पृथक् पदार्थ कल्पना ठीक

१०-११-१२ तथा वाद, जल्प, वितमा, तथा प्रमाण तर्क साधन  
सिद्धांत अविरोध पंचावयव करके संयुक्त पद्ध प्रतिपद्धका जो ग्रहण  
तिसका नाम वाद है. सो वादतत्त्व ज्ञानके वास्ते शिष्य अरु  
होता है, अरु सोइ वाद जिसको जीतना होवे, तिसके साथ ठल, जो  
निग्रह स्थान करके साधनोपलंन, सो जल्प है, तथा सो वादही प्रतिप  
स्थापना करकेही वितमा है, यह वाद, जल्प, वितमा, इन तीनोंका  
ही नहीं हो सक्ता है, क्योंकि तत्त्वचिंताविषे तत्त्वके निर्णयार्थ वाद  
रना चाहिये, परंतु ठल जाति आदिक करके तत्त्वका निश्चय नहीं हो  
है, क्योंकि ठलादिक जो है, सो परके वचने वास्ते करिये हैं, तिससें  
त्व निर्णयकी प्राप्ति नहीं होती है, जे कर इनका जेदनी मानोगे, तो  
ये पदार्थ नहीं हो सक्ते हैं, क्योंकि जो परमार्थसें वस्तु है, सोइ पदा  
है. अरु वाद जो है, सो पुरुषकी इच्छाके अधीन है, नियतरूप नहीं है,  
वास्ते पदार्थ नहीं, तथा एक औरनी बात है, कि कुक्कड, लाल, मीठे,  
नके वादमेंनी पद्ध प्रतिपद्ध ग्रहण करते हैं, तिनोकोनी तत्त्वज्ञानकी प्रा  
होनी चाहिये, परंतु यह ठुम नहीं मानते हो, इस वास्ते वाद पदार्थ नहीं

१३ तथा १ अस्ति, २ अनेकांतिक, ३ विरोध, यह तीनों हेत्वान  
हैं. हेतु तो नहीं, परंतु हेतुकी तरे भासन होते हैं, इस वास्ते हेत्वान  
कहते हैं. जब सम्यक् हेतुवांकीही तत्त्वव्यवस्थिति नहीं, तो हेत्वान  
का तो क्याही कहना है? क्योंकि जो नियत स्वरूप करके रहे, सो क

अरु हेतु तो किसी माध्यवस्तुमें हेतु है, दूसरे साध्यमें अहेतु है, इ  
वास्ते नियतस्वरूप वाला नहीं।

१४-१५-१६ तथा बल, जाति, निग्रहस्थान, यह तीनों पदार्थ नहीं।  
क्योंकि यह तीनोंही वास्तवमें कपटरूप हैं, जिनोंने इनको तत्त्व करके क  
न करे हैं, उनके ज्ञान, वैराग्यका क्या कहना है? इस संसारमें जो चोरी,  
गो, हथफेरी प्रमुख सिखावे, तिसको जी तत्त्वज्ञानका उपदेशक मानना चा  
हूयें? यह नैयायिकमतके सोला पदार्थोंका खंमन किया. जे कर विशेष क  
के देखना होवे, तो न्यायकुमुदचंइ देख लेनां. यह खंमन, सूत्ररुतांग  
संज्ञांतसें लिखा है, जे कर विशेष देखनां होवें, तब वारहवा अध्ययन  
लिख लेनां ॥ इति नैयायिक दर्शन खंमनं संपूर्णम् ॥

अथ वैशेषिक मत खंमन लिखते हैं वैशेषिकोंके कहे दूये तत्त्वनी  
तत्त्व नहीं है, सोइ दीखाते हैं. १ इव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामा  
य्य, ५ विशेष, ६ समवाय, इनोंने यह ठ तत्त्व माना है तहां १ पृथि  
वी, २ अणु, ३ तेज, ४ वायु, ५ आकाश, ६ काल, ७ दिक्, ८ आत्मा,  
९ मन, यह नव इव्य हैं. तिनमें पृथिवी, अणु, तेज, अरु वायु, इन  
चारोंकों निन्न निन्न इव्य माननेसें ठीक नहीं. क्योंकि परमाणु जो है,  
सो प्रयोग विश्रसा करके पृथिवी आदिकोंके रूपपणे परिणमतेजी हैं,  
तोनी अपणे इव्य पणेकों नहीं त्यागते है, अरु अति प्रसंग होनेसें अव  
स्था जेद करके इव्यका जेद मानना युक्त नहीं है, अरु आकाश, त  
था कालको तो हमनेजी इव्य माना है, अरु दिशा जो है, सो आकाश  
का अवयवजुत है, इस वास्ते पृथग् इव्य नहीं. अरु आत्मा शरीर मात्र  
व्यापी उपयोग लक्षण तिसकों हमनी इव्य मानते है, अरु इव्य मन जो  
है, सो पुञ्जइव्यके अंतर्भाव है, तथा ज्ञावमन जो है, सो जीवका गु  
ण होनेसें. आत्माके अंतर्भाव है, यद्यपि वैशेषिक कहते हैं, कि जैसें पृ  
थिवीत्वके योगसे पृथिवी है, वहनी उनका कहनां स्वप्रक्रिया मात्र है,  
क्योंकि पृथिवीसें अन्य दूसरा कोइ पृथिवीपणा नहीं है, जिसके योगसें पृ  
थिवी होवें, अपि तु सर्वही जो कुठ है, सो सामान्य विशेषात्मक है, न  
रसिद्धाकारवत् उनयस्वभाव है.

तथा चोक्त ॥ श्लोक ॥ नान्वयः सहि जेदत्वान्न, जेदोन्वयवृत्तितः ॥ मृ



त्रेदद्वयसंसर्ग, वृत्तिजात्यंतरं घटः ॥ १ ॥ इसका जावार्थः—घट  
 तिसमें मृत्तिकाका अन्वय नहीं है, पृथु बुध्र उदराकारादिकों  
 हेतुसें जेद है, अरु अन्वयवृत्ति होनेसें घटका मृत्तिकासें एकांत  
 हीं है, एतावता घट मृत्तिका रूपही है, अन्वय व्यतिरेक दोनोके  
 सें घडा जो है, सो जात्यंतर रूप है, एतावता मृत्तिकासें  
 जेद रूप है ॥ तथा ॥ श्लोक ॥ न नरः सिंहरूपत्वा, नसिंहो  
 ॥ शब्दविद्विज्ञानकार्याणां, जेदो जात्यंतरं हि सः ॥ १ ॥ जावार्थः  
 होनेसें नर नहीं है, अरु नररूप होनेसें सिंहजी नहीं है, तो क्या है,  
 शब्द, २ विज्ञान, ३ कार्य, इनके जेद होनेसें नरसिंह जो है सो तीसरी जा  
 २ अथ रूप, रस, गंध, स्पर्श, रूपी इव्यमें इनकी प्रवृत्ति है, अरु  
 गुण है, तथा १ संख्या, २ परिमाण, ३ पृथक्त्व, ४ संयोग, ५  
 ६ परत्व, ७ अपरत्व, ये सामान्य गुण हैं, इनकी सर्व इव्यमें वृत्ति है,  
 या १ बुद्धि, २ सुख, ३ दुःख, ४ इच्छा, ५ द्वेष, ६ प्रयत्न, ७ धर्म,  
 अधर्म, ८ संस्कार, ये आत्माके गुण हैं तथा गुरुत्व, पृथिवी  
 है, इव्यत्व पृथिवी, जल, अरु अग्निमें है, स्नेह जलमेंही है, वेग  
 संस्कार ये मूर्त्त इव्योंमें हैं, अरु शब्द आकाशका गुण है, तिनमें  
 द्विक सामान्य गुण रूपादिवत् इव्यस्वभाव होने करके, अरु परोपा  
 गुणही नहीं है, क्योंकि जब गुण, इव्यसें पृथक् हो जावेंगे, तब इव्य  
 स्वरूपकी हानी हो जावेगी, “गुणपर्यायवद्भूयं” इस कहने करके  
 जो है, सो इव्यसें न्यारे नहीं है, इव्यके ग्रहणहीसे गुणका ग्रहण  
 य है, परतु पृथक् पदार्थ माननां अयुक्त है, अरु शब्द जो है, सो आ  
 शका गुण नहीं है, क्योंकि यह तो पौञ्जलिक है, अरु आकाश तो  
 मूर्त्त है, अरु ज्ञेय जो वैज्ञेयिकने कहा है सो प्रक्रियामात्र है, साधन  
 णोंका अंग नहीं है.

३ अरु कर्मकी गुणवत् पृथक् पदार्थ माननां अयुक्त है.

४ अथ सामान्य दो प्रकारके है, एक पर, दूसरा अपर. तिनमें पर  
 मान्य महासत्ता नाम है, इव्यादि तीन पदार्थोंमें व्यापी है, अरु जो  
 पर है, सो इव्यत्व गुणत्व कर्मत्वादि है, तिनमें महासत्ताको पृथक् प  
 र्थ माननां अयुक्त है. क्योंकि सत्तामे जो सत् यह प्रत्यय है, सो अ

सी सत्ताके योगसें है ? वा स्वरूप करकें है ? जे कर कहोगे कि और सत्ताके योगसें है, तब तो तिस सत्तामें सत् प्रत्यय, और सत्ताके योगसें होनां चाहिये ? जैसें करतां अनवस्था दूषण आता है, अरु जे कर कहोगे कि स्वरूप करके सत् है, तब तो इव्यादिकनी स्वरूप करकें सत् हैं, तब तो अजाके गलेके स्तनोकी तरे निःफल सत्ताके कल्पनेसें क्या प्रयोजन है ? एक औरनी बात है कि इव्यादिक जो है, सो सत्ताके योग होनेसें सत् कहे जाते हैं ? अथवा सत्ताके संबन्ध विनाही सत् स्वरूप है ? जे कर कहोगे कि स्वतः ही सत् स्वरूप है, तब तो सत्ताकी कल्पना करनी व्यर्थ है, जे कर कहोगे कि सत्ताके योगसें सत् है, तब तो शशविपाणनी सत्ताके योगसें सत् होनां चाहिये ॥ तथा चोक्त ॥ श्लोक ॥ स्वतोऽर्थात्तु सत्तावत्सत्तया किं सदात्मनां ॥ असदात्मसु नैपास्या, त्सर्वथा तिसंगतः ॥ १ ॥ इत्यादि येही दूषण तुल्य योग क्लेम होनेसें अपर सामान्यमेंनी जोड़ लेने. तथा हमनी सामान्य विशेष रूप होनेसें वस्तुको अथचित् सामान्यरूप मानतेही हैं, इस वास्ते इव्यके ग्रहण करनेसें सामान्यकानी ग्रहण हो गया, इस हेतुसें सामान्य जो है, सो कुछ इव्यसें पृथक् पदार्थ नहीं.

५ अथ विशेष जो है, सो अत्यंत व्यावृत्ति बुद्धिके हेतु होने करकें विशेषियोंनें माने हैं, तहां यह विचार करते है कि तिन विशेषियोंनें जो विशेष बुद्धि है, सो अपर विशेषों करके है ? वा स्वतः ही स्वरूप करके है ? अपर विशेष हेतुक तो नहीं है, अनवस्था अरु विशेषमें विशेषका अगीकार नहीं है, जे कर कहोगे कि स्वतः ही विशेष बुद्धिके हेतु है, तब तो इव्यादिकनी स्वतः ही विशेष बुद्धिके हेतु है, तो फेर विशेषोंको इव्यसें अतिरिक्त पदार्थ कल्पने व्यर्थ है अरु इव्योंसें अव्यतिरिक्त विशेषोंको सत् वस्तुओंको सामान्य विशेषात्मक होनेसें हमनी मानते है.

६ अरु समवाय जो है, सो अयुत सिद्ध आधार आधेय नूतोंका जो इह प्रत्ययका हेतु है, सो समवाय कहते है, अरु समवाय जो है, सो नित्य अरु एक है, जैसें वैज्ञेयिक मानते है. तिस समवायके नित्य होनेने समवायीनी नित्य होने चाहिये. जे कर समवायी अनित्य है, तो समवायी अनित्य होना चाहिये ? क्योंकि समवायका आधार समवायी है, इस

जेद इयसंसर्ग, वृत्तिजात्यंतरं घटः ॥ १ ॥ इसका ज्ञावार्थ, तिसमें मृत्तिकाका अन्वय नहीं है, पृथु बुध्र उदराकारादिकों हेतुसे जेद है, अरु अन्वयवर्ति होनेसे घटका मृत्तिकासे एकांत ही है, एतावता घट मृत्तिका रूपही है, अन्वय व्यतिरेक दोनोंके से घटा जो है, सो जात्यंतर रूप है, एतावता मृत्तिकासे जेद रूप है ॥ तथा ॥ श्लोक ॥ न नरः सिंहरूपत्वा, त्रसिंहो

॥ शब्दविद्विज्ञानकार्याणां, जेदो जात्यंतरं हि सः ॥ १ ॥ ज्ञावार्थ होनेसे नर नहीं है, अरु नररूप होनेसे सिंहजी नहीं है, तो क्या शब्द, १ विज्ञान, २ कार्य, इनके जेद होनेसे नरसिंह जो है सो तीसरी जा

१ अथ रूप, रस, गंध, स्पर्शी, रूपी इव्यमें इनकी प्रवृत्ति है. अरु गुण है, तथा १ संख्या, २ परिमाण, ३ पृथक्त्व, ४ संयोग, ५ वि ६ परत्व, ७ अपरत्व, ये सामान्य गुण है, इनकी सर्व इव्यमें वृत्ति है या १ बुद्धि, २ सुख, ३ दुःख, ४ इन्द्रा, ५ द्वेष, ६ प्रयत्न, ७ धर्म, अधर्म, ८ संस्कार, ये आत्माके गुण हैं. तथा गुरुत्व, पृथिवी है, इव्यत्व पृथिवी, जल, अरु अग्निमें है, स्नेह जलमेंही है, वेग संस्कार ये मूर्त्त इव्योंमें है, अरु शब्द आकाशका गुण है, तिनमें दिक सामान्य गुण रूपादिवत् इव्यस्वभाव होने करके, अरु परी गुणही नहीं है, क्योंकि जब गुण, इव्यसे पृथक् हो जावेंगे, तब स्वरूपकी हानी हो जावेगी, "गुणपर्यायवद् इव्यं" इस कहने करके जो है, सो इव्यसे न्यारे नहीं हैं, इव्यके ग्रहणहीसे गुणका ग्रहण य है, परतु पृथक् पदार्थ माननां अयुक्त है, अरु शब्द जो है, सो आकाशका गुण नहीं है, क्योंकि यह तो पौञ्जलिक है, अरु आकाश तो मूर्त्त है, अरु गोप जो वैज्ञेयिकने कहा है सो प्रक्रियामात्र है, साधन रूपोंका अंग नहीं है.

३ अरु कर्मनी गुणवत् पृथक् पदार्थ माननां अयुक्त है.

४ अथ सामान्य दो प्रकारके है, एक पर, दूसरा अपर. तिनमें पर सामान्य महासत्ता नाम है, इव्यादि तीन पदार्थोंमें व्यापी हैं, अरु जो अपर है, सो इव्यत्व गुणत्व कर्मत्वादिक है, तिनमें महासत्ताको पृथक् पदार्थ मानना अयुक्त है. क्योंकि सत्तामें जो सत् यह प्रत्यय है, सो अरु



वास्ते. तथा समवायके एक होनेसें समवायीनी एकही होने या समवायीयोके अनेक होनेसें समवायनी अनेक रूप होना तथा यह जो समवाय पदार्थोका समवायी संबंध करता है, सो य उन पदार्थोके साथ अपणा संबंध अपर समवायके योगसें किंवा आपही अपणा संबंध करता है ? जे कर कहोगे कि अपर यसें करता है, तब तो अनवस्थादूषण है. अरु समवायनी नही, जे कर कहोगे कि आपही आपणा संबंध करता है, तब तो गुण यादिकनी इव्यसें स्वरूप करके तथा अविष्वंगजाव संबंध करके तब तो समवायनी कल्पना व्यर्थही है.

अैसें वैशेषिक मतमेंनी सम्यक् पदार्थोका कथन आप्तोक्त नहीं, नैयायिक वैशेषिक मतमें जो मोक्ष मानी है, सोनी प्रेक्षावानोंको योग्य नहीं है, क्योंकि जब आत्मा ज्ञानसें रहित होवे, एतावता हो जावे, तब आत्माको मोक्ष मानते है, ऐसी मोक्षको कौन बु उपादेय मानता है ? क्योंकि ऐसा कौन बुद्धिमान् है, जो सर्व सुख और नसें रहित पापाण तुल्य आपणी आत्माको करना चाहे ? इसी वास्तेकिसे वैशेषिकोका उपहास्यनी करा है, सो कहते है ॥ श्लोक ॥ वरं वृदा रम्ये, क्रोषूत्वमनिवांठति ॥ नतु वैशेषिकीं मुक्तिं, गौतमोगंतुमिच्छति ॥ अर्थ—स्वर्गके जो सुख है, सो सोपाधिक, सावधिक, परिमित अद रूप है, अरु मोक्ष जो है, सो नैरुपाधिक, नैरवधिक, अपरमित ज्ञानसुख स्वरूप, विचक्षण पुरुष कहते है, जब मोक्ष होना पापाण के तुल्य है, तब तो ऐसी मोक्षसें कुछ प्रयोजन नहीं. इस्सेतो संसार ही अज्ञा है कि जिस संसारमे दुःख करके कलुषित सुख जोगनमें आता है. जरा विचार तो करो, कि थोडे सुखका जोगनां अज्ञा है ? वा सर्व सुख का उल्लेख अज्ञा है ? इत्यादि विशेष चर्चा त्यादादमंजरीकी टीकासें जाननी. इस वास्ते नैयायिक मत, अरु वैशेषिक मत उपादेय नहीं है ॥ इति ॥

अथ सांख्य मतका खमन लिखते है. सांख्य मतका स्वरूप तो उपर लिखा है, सो जान लेना, सांख्यका मत ठीक नहीं है, क्योंकि परस्पर विरोधी तत्त्व रजो, तम, गुणोंका प्रकृति रूपोंका गुणीके विना एकत्र अवस्थान अर्थात् रहणां युक्त नहीं है, जैसे कृष्ण श्वेतादि गुण गुणी विना एकत्र नहीं रह

हैं, तथा महदादि विकारके होनेमें प्रकृतिमें विषमता उत्पन्न करनेमें कनी कारण नहीं है, क्योंकि प्रकृतिके विना और वस्तु, सांख्य कोइ मानते हैं, और आत्माकों अकर्त्ता अकिंचित् कर मानते हैं, जे कर स्वभावसे अन्य मानेगे, तब निर्हेतुकताकि आपत्ति होवेगी, क्योंकि जो कार्य कनी वे, और कनी न होवे, वो हेतुके विना नहीं हो सकता है, और जो खरशुं दि नित्य असत् है, तथा आकाशादिनित्य सत् है, सो हेतुसें नहीं होते ॥ उक्तंच ॥ श्लोक ॥ नित्यसत्त्वमसत्त्वं वा, हेतोरन्यानपेक्षणात् ॥ अपेक्षा हि जावानां, कदाचित्तत्त्वसंभवः ॥ १ ॥

तथा स्वभाव प्रकृतिसें निन्न है ? वा अनिन्न है ? निन्नतो नहीं. क्योंकि कृति विना सांख्योंने अपर कोइ वस्तु मानी नहीं है, जे कर कहोगे कि निन्न है, तब तो प्रकृति है “नतुस्वभाव” (स्वभाव नहीं है.)

तथा एक औरनी बात है कि महत् अरु अहंकार ज्ञानसें निन्न हम ही देखते हैं, सोइ दिखावते है, कि बुद्धि जो है सो अध्ववसायमात्र, अरु अहंकार जो है सो अहं सुखी, अहं दुःखी, जैसें स्वरूप वाला, इन दोनोकों चिडूप होनेसें आत्माका गुणत्व पणा है, परतु जडरूप कृतिका विकार नहीं.

तथा यह जो तन्मात्रोंसें जूतोंकी उत्पत्ति मानते है, कि जैसें १ गंध न्मात्रात् पृथिवी, २ रसतन्मात्रासें जल, ३ रूप तन्मात्रासें अग्नि, स्पर्श न्मात्रासें वायु, ५ शब्दतन्मात्रासें आकाश, यहनी माननां युक्ति न है, जे कर बाह्यजुतकी अपेक्षा करके कहते हो सो अयुक्त है, इन वा पाच जूतोंके सदाही होनेसें उत्पत्ति नहीं “न कदाचिदनीदृशं जगत् ति वचनात्” अर्थात् यह जगत् प्रवाह करके अनादि कालसें ऐसाही आता है.

जे कर कहोगेकि प्रति शरीरकी अपेक्षा हम कहते है, तिनमेंसू त्वचा, हाड, कवीन लक्षणा पृथिवी है. श्लेष्म, रुधिर इव लक्षण आप. (जल) है. कि लक्षण अग्नि है, पानापान लक्षण वायु है, गुपिर अर्थात् पोलाड लक्षण आकाश है, यहनी कहनां ठीक नहीं है, क्योंकि तिनमेंनी कितने शरीरोंकी उत्पत्ति पिताका शुक्र, अरु माताके रुधिरसें होती है, तहां तन्मात्राकी गंयनी नहीं है, अरु अदृष्ट वस्तुको कारण कल्पनेमें अति प्रसंग

दूषण है, अरु अंजन, उज्ज्वल, अंकुरादिकोंकी उत्पत्ति अथवा होती देख पड़ती है, इस वास्ते महदहंकारादिकोंकी उत्पत्ति जो सांख्य में अपनी प्रक्रिया करके मानी है, सो युक्ति रहित मानी है, केवल अमृतके रागसेही यह मानना है अरु आत्माको अकर्ता माने है, तब कृतनाश अकृतान्यागम दूषण है, अरु वध मोक्षका अभाव है. अरु गुण होनेसे आत्मा ज्ञानशून्य हो जावेगी, इस वास्ते यह सर्व पूर्वोक्तप्रलापमात्र है.

अथ सांख्यमतकी मोक्ष विचारिये हैं, “ प्रकृतिपुरुषांतरपरिज्ञानात् मुक्तिः ” अर्थात् प्रकृति पुरुषसे अन्य है, ऐसा जब ज्ञान होता है, तब मुक्ति होती है. सोइ दिखाते हैं ॥ १० लोक ॥ शुद्धचैतन्यरूपोऽयं, पुरुष पुरुषार्थतः ॥ प्रकृत्यंतरमज्ञात्वा, मोहात्संसारमाश्रितः ॥ १ ॥ जावार्थ पुरुष जो है, सो परमार्थसे शुद्ध चैतन्यरूप है, अपणें आपकों प्रकृतिसे एकमेक समजता है, इस मोहसे संसारको आश्रित हो रहा है, तब हेतुसे प्रकृतिसुखादि स्वभावसे जहां लजि विवेक करके न ग्रहण को तहां लजि मुक्ति नहीं. अरु केवल ज्ञानके उदय होनेसे मुक्ति है, यह असत् है, क्योंकि आत्मा एकांत नित्य है, अरु सुखादिक जो हैं, सो एषाद व्यय स्वभाव वाले हैं, तब तो विरुद्ध धर्म संसर्गसे, आत्मासे प्रकृतिका जेद प्रतीतही है, तो फेर मुक्ति क्यों नहीं ?

अथ यही तो संसारी विचार नहीं करता है, इस वास्ते मुक्ति नहीं जे कर ऐसे कहोगे तब तो तुमारे कहनेसे कदापि मुक्ति नहीं होवेगी. ऐसा विवेकाध्यवसाय संसारीको कदापि नहीं हो सक्ता है, सोइ दिखाते हैं. जहां लज संसारी है, तहां लज विवेक परिचावना करके संसारी एका दूर नहीं होता है, इस वास्ते विवेकाध्यवसायके अभावसे कदापि संसारसे वृटनां नहीं है.

एक औरजी बात है, कि इस सृष्टिके पहिजा केवल आत्मा है, अरे तुम मानते हो, तब फेर आत्माको संसार कहांसे लिपट गया ? जे कहोगे कि निर्मल आत्माको संसार लिपट जाता है, तब तो मोक्ष दूषण पीठें फेरजी संसार लिपट जायगा, तब तो मोक्षकी क्या दूइ, एक विना खमी हो गई.

पूर्वपक्षः—सृष्टिसं पहिलां आत्माकों दिदृक्षा नइ, तव तिस दिदृक्षाके व  
नं प्रधानके साथ आपणा एकरूप देखने लगा, तब संसारी हो गया,  
इ जब प्रकृतिका छुटपणा विचारमें आया, तब प्रकृतिसं वैराग्य हुआ,  
ए प्रकृतिविषे दिदृक्षा नहीं. तब संसारजी नहीं.

उत्तरपक्षः—यहजी तुमारा कहनां स्वकृतांत विरोध होनेसं अयुक्त है, सोई  
जाते है. दिदृक्षा सो देखनेकी अनिलापाका नाम है, सो अनिलापा  
देखे हूये पदार्थोंमें तथा स्मरणसं होता है, अरु प्रकृति तो पूर्वे कदापि  
वी नहीं है, तब कैसें तिस विषे स्मरण अनिलापा होवे ? जे कर कहो  
के अनादि वासनाके वशसं प्रकृतिमेही स्मरण अनिलापा है, सोजी अ  
है, क्योंकि वासनाजी प्रकृतिका विकार होने करके प्रकृतिके पहिलां  
थी, जे कर कहोगेकि वासना जो है, सो आत्माका स्वभावरूप है,  
तो आत्मस्वरूपवत् वासनाका कदापि अभाव नहीं होवेगा, अरु  
कदापि नहीं होवेगी, तब तो सांख्यका मतजी बालकोंका खेल जैसा  
गया ॥ इति सांख्यमत खंननं समाप्तम् ॥

अथ मीमांसक मतका खंनन लिख्यते ॥ इत मतका स्वरूप उपर लिख  
ये है, अरु वेदांतियोंके ब्रह्म ( अद्वैत )का खंनन ईश्वर वादमें अड्डी  
से कर चुके है. इत वास्ते यहां नहीं लिखा इति मीमांसक मत ॥

अथ जैमिनीयमतका खंनन लिखते है. जैमिनीया असं कहते है, कि  
“हिंसागाध्यात्” अर्थात् इंद्रियोंके रस वास्ते अथवा कुव्यसन करके  
रिये सोइ हिंसा अधर्मका हेतु है, प्रमादके उदय करनेसं गोनिक लु  
कादिकोंकी तरे. अरु वेदोंमें जो हिंसा कही है, सो हिंसा नहीं है,  
तु धर्मका हेतु है, देवता, अतिथि, पितरोंके प्रीतिसंपादक हो  
से तथाविध पूजा उपचारवत्. अरु यह प्रीति संपादकत्व असिइ नहीं  
, क्योके कारीरी प्रकृति यज्ञोंके स्वसाथ्य विषे वृष्ट्यादि फलोंका जो अ  
निचारी पणा है, सो यज्ञ करनेसं जो देवता तृप्त होते है, वो वृष्ट्या  
कोके हेतु है, अैसेही “त्रिपुरारणववर्णित ऋगल” अर्थात् वकरके मां  
का होम करनेसं परराष्ट्रका जो वश होनां है, सोजी उस मांसकी आहु  
तियोंसे तृप्त हूये होय देवताओंकाही अनुभाव है, अरु अतिथि प्रीतिजा  
मधुसर्पकंसकारादिसमास्वाइजा” प्रत्यक्षही दीख पडता है, अरु पित



दूषण है, अरु अंमज, उन्निज्ज, अंकुरादिकोंकीनी उत्पत्ति अपरही होती वीख पडती है, इस वास्ते महदहंकारादिकोंकी उत्पत्ति जो ने अपनी प्रक्रिया करके मानी है, सो युक्ति रहित मानी है, केवल मतके रागसेही यह माननां हे. अरु आत्माकों अकर्त्ता माने हे, कृतनाश अकृतान्यागम दूषण है, अरु बंध मोहका अज्ञाव है. अरु गुण होनेसे आत्मा ज्ञानशून्य हो जावेगी, इस वास्ते यह सर्व बालप्रलापमात्र है.

अथ सांख्यमतकी मोह विचारिये हैं, “ प्रकृतिपुरुषांतरपरिष्ठापन किः ” अर्थात् प्रकृति पुरुषसें अन्य है, ऐसा जब ज्ञान होता है, कि होती है. सोइ दिखाते हैं ॥ श्लोक ॥ शुद्धचैतन्यरूपोऽप्यपुरुषार्थतः ॥ प्रकृत्यंतरमज्ञात्वा, मोहात्संसारमाश्रितः ॥ १ ॥ पुरुष जो है, सो परमार्थसें शुद्ध चैतन्यरूप है, अपणें आपकों से एकमेक समजता है, इस मोहसें संसारकों आश्रित हो रहा है, हेतुसें प्रकृतिसुखादि स्वभावसें जहां जगि विवेक करके न ग्रहण तहां जगि मुक्ति नहीं. अरु केवल ज्ञानके उदय होनेसें मुक्ति है, असत् है, क्योंकि आत्मा एकांत नित्य है, अरु सुखादिक जो है, सत्त्वाद् व्यय स्वभाव वाले हैं, तब तो विरुद्ध धर्म संसर्गसें प्रकृतिका जेद प्रतीतही है, तो फेर मुक्ति क्यों नहीं ?

अथ यही तो संसारी विचार नहीं करता है, इस वास्ते मुक्ति न जे कर ऐसे कहोगे तब तो तुमारे कहनेसें कदापि मुक्ति नहीं होवे. ऐसा विवेकाध्यवसाय संसारीकों कदापि नहीं हो सका है, सोइ दिखाते जहां जग ससारी है, तहां जग विवेक परिचावना करके ससार एा दूर नहीं होता है, इस वास्ते विवेकाध्यवसायके अज्ञावसें कदापि सारसें टूटनां नहीं है.

एक औरनी बात है, कि इस सृष्टिके पहिला केवल आत्मा है, तुम मानते हो, तब फेर आत्माकों ससार कहासें लिपट गया ? जे कहोगे कि निर्मल आत्माको संसार लिपट जाता है, तब तो मोह ही पीछे फेरनी संसार लिपट जायगा, तब तो मोहनी क्या दूई, एक विना खमी हो गई.

पूर्वपक्षः—सृष्टिसं पहिजां आत्माकों दिदृक्षा नइ, तव तिस दिदृक्षाके व  
 प्रवानके साथ आपणा एकरूप देखने लगा, तव संसारो हो गया,  
 जब प्रकृतिका डुष्टपणा विचारमें आया, तव प्रकृतिसं वैराग्य हुआ,  
 प्रकृतिविषे दिदृक्षा नहीं. तव संसारजी नहीं.

उत्तरपक्षः—यहनी तुमारा कहनां स्वरुतात विरोध होनेसं अयुक्त है, सोई  
 वाते है. दिदृक्षा सो देखनेकी अजिजापाका नाम है, सो अजिजापा  
 देखे हूये पदार्थोंमें तथा स्मरणसं होता है, अरु प्रकृति तो पूर्व कदापि  
 नहीं है, तव कैसें तिस विषे स्मरण अजिजापा होवे ? जे कर कहो  
 अनादि वासनाके वशसं प्रकृतिमेंही स्मरण अजिजापा है, सोनी अ  
 है, क्योंकि वासनानी प्रकृतिका विकार होने करकें प्रकृतिके पहिजां  
 थी, जे कर कहोगेकि वासना जो है, सो आत्माका स्वनावरूप है,  
 तो आत्मस्वरूपवत् वासनाका कदापि अज्ञाव नहीं होवेगा, अरु  
 कदापि नहिं होवेगी, तव तो सांख्यका मतनी बालकोंका खेल जैसा  
 गया ॥ इति सांख्यमत खंमनं समाप्तम् ॥

अथ मीमांसक मतका खंमन लिख्यते ॥ इत मतका स्वरूप उपर लिख  
 ये हैं, अरु वेदांतियोंके ब्रह्म ( अद्वैत )का खंमन ईश्वर वादमें अही  
 सं कर चुके है. इस वास्ते यहां नहीं लिखा. इति मीमांसक मत ॥

अथ जैमिनीयमतका खंमन लिख्यते है. जैमिनीया जैसें कहते है, कि  
 “हिंसागार्ध्यात्” अर्थात् इंद्रियोंके रस वास्ते अथवा कुव्यसन करकें  
 से सोइ हिंसा अधर्मका हेतु है, प्रमादके उदय करनेसं शोनिक लु  
 कादिकोंकी तरें. अरु वेदोंमें जो हिंसा कही है, सो हिंसा नहीं है,  
 तु धर्मका हेतु है देवता, अतिथि, पितरोंके प्रीतिसंपादक हो  
 तथाविध पूजा उपचारवत्. अरु यह प्रीति संपादकत्व अलिख नहीं  
 क्योके कारीरी प्रनृति यज्ञोंके स्वाभाव्य विषे वृष्ट्यादि फलोंका जो अ  
 निचारी पणा है, सो यज्ञ करनेसं जो देवता तृप्त होते है, वो वृष्ट्या  
 कोके हेतु है, जैसेही “त्रिपुरार्णववर्णित ऋगज” अर्थात् वकरेके मा  
 हा होम करनेसं परराष्ट्रका जो वश होनां है, सोनी उस मांसकी आहु  
 योंसं तृप्त हूये होय देवताओंकाही अनुभाव है, अरु अतिथि प्रीतिना  
 मधुसंपर्कसकारादिसमाखादजा” प्रत्यक्षही दीख पडता है, अरु पित

रोंके तांड़ जो श्राद्ध करते हैं, उस करकें पितर तृप्त हुवे हों, नकी वृद्धि प्रत्यक्षही करते देखते है, अरु इस बातमें आगमनी देता है, आगममें देव प्रीत्यर्थ अश्वमेध, नरमेध, गोमेधादिक कहे है, अरु अतिथि विषय "महोक्तं वा महाजं वा, श्रोत्रियाय" ऐसा कहा है, अरु पितरोंकी प्रीति वास्ते यह श्लोक है ॥ श्लोक  
 द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन, त्रीन् मासान् हरिणेन तु ॥ औरत्रेणथ चतुर, कुनेनेह पंच तु ॥ १ ॥ पण्मास ज्वागमांसेन, पार्षतेनेह सप्त वै ॥ अण्यस्य मांसेन, रौरवेण नवैव तु ॥ २ ॥ दशमासांस्तु तृप्यंति, वराहमासामिवैः ॥ शशकूर्मयोर्ममांसेन, मासानेकादशैव तु ॥ ३ ॥ संवत्सरेण गव्येन, पयसा पायसेन तु ॥ वाध्रीणेशस्य मांसेन, तृप्तिर्द्वादशवापिकी ॥ ४ ॥ यह श्लोक स्मृतिके हैं, इनका अर्थ कहते है.

जे कर पितरोंकों मत्स्यका मांस देवे तो पितर दो मास लग तृप्त रहते हैं, जे कर हरिणका मांस पितरोंकों देवे, तो पितर तीन मास लग तृप्त रहते हैं, जे कर मूढिका मांस पितरोंको देवे, तब चार मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर जंगली कूकडका मांस पितरोंकों देवे, तो पितर पांच मास लग तृप्त रहते हैं ॥ १ ॥ जे कर बकरेका मांस देवे, तो पितर षण्मास लग तृप्त रहते हैं, जे कर घृतपतविंड करके युक्त जो हरिण होवे, उसकों पार्षत कहते हैं, तिसका मांस जो पितरोंकों देवे, तो पितर सात मास लग तृप्त रहते हैं, जे कर एण मृगका मांस देवे, तो आठ मास लग पितर, तृप्त रहते हैं, जे कर बड़े काले मृगका मांस देवे, तो नव मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर सूवर अरु महिषका मांस देवे, तो दश मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर शश अरु कबु, इन दोनोके मांस देवे, तो अग्यारह मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर गोकामांस दूध अथवा खीर देवे, तो बारह मास लग पितर तृप्त रहते हैं, तथा वाध्रीण कहते हैं जो अति बूढा बकरो होवे तिसका मांस देवे, तो बार वर्ष लग पितर तृप्त रहते हैं, यह मांसक मानते हैं.

अब इसका खंमन लिखते है. कि हे मीमांसक! वेदोंमें जो हिंसा है, सो धर्मका हेतु कदापि नहीं हो सकती है, इस तुमारे कहनेमें प्रसवचनविरोध है, तथाहि. जे कर धर्मका हेतु है, तब तो हिंसा क्यों

? अरु जे कर हिंसा है, तो धर्मका हेतु क्यों कर हो सकती है ? ॥२॥ लोक ॥  
यतां धर्मसर्वस्वं, श्रुत्वा चैवावधार्यतां ॥ आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न  
माचरेत् ॥१॥ इत्यादिक जे धर्म कहे है, तो हिंसा क्यों कर है ? क्यों  
माताजी है. अरु वंध्याजी है, ऐसा कनी नही होता है.

पूर्वपक्षः—हिंसा कारण है, अरु धर्म तिसका कार्य है.

उत्तरपक्षः—यहनी तुमारा कहनां असत् है, क्योंकि जो जिसके साथ  
नव्य व्यतिरेक वाजा होता है, सो तिसका कार्य होता है, जैसें मृ  
पंढादिकोंका घटादिक कार्य है, तो कुछ धर्म हिंसाही करनेसें नही होता  
, क्योंकि तप, दान, पढनादिकनी धर्मके कारण हैं.

पूर्वपक्षः—हम सामान्य हिंसाकों धर्म नहीं कहते हैं, किंतु विशिष्ट हिं  
कों धर्म कहते हैं, सो विशिष्ट हिंसा वोही है, जो वेदोंमें करनी कही है.

उत्तरपक्षः—जे कर वेदकी हिंसा धर्मका हेतु है, तो क्या जो जीव य  
दिकोंमें मारे जाते है, वो मरते नही है ? इस वास्ते धर्म है ? अथ  
? क्या उनके मरणमें उनको आर्त्तध्यानका अज्ञाव है, इस वास्ते धर्म  
? अथवा जो यज्ञादिकोंमें मारे जाते है, वो मरके स्वर्गकों जाते हैं ? इ  
? वास्ते धर्म है ? इसमें आद्य पक्ष तो ठीक नही, क्योंकि प्राण त्यागते  
ये तो वो जीव प्रत्यक्ष दीख पडते हैं. तथा दूसरा पक्षनी असत् है,  
योंकि दूसरेके मनका ध्यान डुर्जेह है, इस वास्ते आर्त्तध्यानका अज्ञाव  
हना, यहनी परमार्थ शून्य वचनमात्र है, आर्त्तध्यानका अज्ञाव तो  
या होना था ? वलिक हा दुःखी है ? है कोइ करुणारस जरा जो हमकूं  
डावे ? ऐसा अपनी नाषामें कहते दूये अरु अपनी नाषा करके विरस  
रराट करता दूया बदन दैन्य, नयन तरलादिक लिंग देखनेसें स्पष्ट उन  
वेचारोंके आर्त्तध्यान उपलब्ध होता है.

पूर्वपक्षः—जैसें लोहेका गोला पानीमें डूबने वालाजी है, तोनी तिस  
के सूक्ष्म पत्र कर दीये जाय तो जलके उपर तरेंगे, परंतु मूवेंगे नहीं, त  
या विष जो है सो मारणे वालाजी है, तोनी मंत्रो करके संस्कार करा दू  
या गुण करता है, तथा जैसे अग्नि दाहक स्वभाव वालाजी है, तोनी स  
अ शीलादिकके प्रभावसें दाह नहीं करता है. ऐसेंही वेद मंत्रादिको कर  
के संस्कार करी दुइ जो हिंसा सो दोषका कारण नहीं, अरु वैदिकी हिं

सा निदनीय कची नहीं है, क्योंकि तिस हिंसाके करने वाले यात्रिह्रणोंको जगत्में पूजनिक देखते है.

उत्तरपक्षः—यहनी तुमारा कदनां अस्त है, क्योंकि जितने दृष्टाने कहे है, सो सर्व वैपम्य है इस वास्ते सिद्धि कुठची नहीं कर सके जोहेका जो पिंम, पत्रादि रूप होनेसें जलके उपरि तरता है, सो रिणामांतर होनेसें तरता है, परंतु वेद मंत्रोंसें संस्कार करके जब मारते है, तब उसमें क्या परिणामांतर होता है ? क्या उस परसें उन पशुओंको मारते दुःख नहीं होता है ? दुःख करके तो वे राट शब्द करते हैं, तो फेर जोह पत्रका दृष्टान्त कैसें समीचीन हो सका.

पूर्वपक्षः—जो पशु यज्ञमें मारे जाते हैं, वो सर्व देवता हो जाते है, ह यज्ञ करनेमें परोपकार है.

उत्तरपक्षः—इस बातमें कौनसा प्रमाण है ? तिसमें प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष तो इंडिय संबंध वर्त्तमान वस्तुकाही आह है, “संबंधोवर्त्तमानं च, गृह्यते चक्षुरादिनेति वचनात्” अरु अनुमाननी नहीं है, क्योंकि तत्प्रतिबन्धलिग कोइची नहीं दीखता है, अरु आगम प्रमाणनी नहीं. क्योंकि आगम तो जगडेका घर है, इस वास्ते सिद्ध दूया नहीं है. तथा अर्थापत्ति अरु अनुमान यह दोनो अनुमानकेही अर्गत है, तो अनुमानके खंमनेसें यहनी दोनुं खंमन हो गये.

पूर्वपक्षः—जैसें तुम जिनमंदिर बनाते दूये पृथिवीकायादि जीवोंकी तिसाको परिणाम विशेष करके पुण्यके तांइ कल्पते हो, अैसे हमनी यज्ञ जो हिंसा करते है, सो पुण्यके वास्ते है, क्योंकि वेदोक्त विधि विधान पर परिणाम विशेष इहांनी निःसंदेह होनेसें पुण्य क्यों कर नहीं होता ?

उत्तरपक्षः—परिणाम विशेषनी वेही पुण्यका कारण होते है, जहां अर कोइ उपाय न होवे, अरु यत्नसे प्रवृत्त होवे, अैसी प्रवृत्ति जिनमंदिर हो सकी है, क्योंकि जिनमंदिरके बिना श्रीनगवानकी प्रतिमा रहती नहीं. जहां प्रतिमा रहेगी उसीका नाम जिनमंदिर है, जे कर कहोगेकि जिनम प्रतिमा पूजनेसें क्या जान है ? तो हम तुमकूं पूठते है कि जा पुस्तकमें ककारादि अक्षर लिखते हो, इनके लिखनेसें क्या जान है ? जे कर कहोगेकि ककारादि अक्षरोंकी स्थापना देखनेसें वस्तुका ज्ञान होता है, तो त

ही जिनप्रतिमा देखनेसेंजी श्रीजिनेश्वर देवके स्वरूपका ज्ञान होता है, जे कहोगेकि प्रतिमा तो कारीगरने पापाणकी बनाइ है, इससें क्या ज्ञान ता है ? तो हम पूछते है कि वेद, कुरान, इंजीज, प्रमुख पुस्तक लिखा पौने स्याही, और कागजोंके बनाये है, इनसें क्या ज्ञान होता है ? जे कहोगेकि ज्ञान तो हमारी समजसें होता है, अक्षरोंकी स्थापना तो नारे ज्ञानका निमित्त है, तैसेही जिनेश्वरदेवका ज्ञान तो हमारी समज होता है परंतु उस स्वरूपका निमित्त प्रतिमा है. क्योंकि जो बुद्धिमान् उप, किसी वस्तुका नकशा नहीं देखेगा, अर्थात् चित्र नहीं देखेगा, कनी उस वस्तुका स्वरूप नहीं जान सकेगा ? इस वास्ते जो बुद्धिमान्, वो अवश्य स्थापना मानता है.

जे कर कहोगेकि परमेश्वर तो निराकार, ज्योतिःस्वरूप, सर्व व्यापक है, सकी मूर्ति क्योंकर बन सकी है ?

उत्तर:—यह तुमारा कहनां बडे उपहास्यका कारण है, क्योंकि जब तु ने परमेश्वरका रूप आकार ( मूर्ति ) नहीं मानी, तब तो वेद, वा इंजी, वा कुरान, इनकों परमेश्वरका वचन माननां क्यों कर सत्य हो सके ? विना मुखके साक्षर शब्द कदापि नहीं हो सकता है.

जे कर कहोगेकि ईश्वर, विनाही मुखके शब्द कर सकता है, तो इस वा कहेनेमें कोइ प्रमाण नहीं इस वास्ते जो साक्षर शब्द है, सो विना खके नहीं, अरु शरीरके विना, मुख नहीं हो सकता है, इस वास्ते जो कोइ वादी किसी पुस्तककों ईश्वरका वचन मानेगा, वो जरुर ईश्वरका मुख और शरीरकी मानेगा, अरु जब शरीर माना, तब जगवान्की प्रतिमाकी जरुर माननी पडेगी, जब प्रतिमां लिख हो गइ, तब मंदिरकी जरुर बना पडेगा, इस वास्ते जिनमंदिरका बनानां जो हे, सो आवश्यक है, अ जो बनाने वाला है, सो यत्न पूर्वक बनाता है, अरु पृथिवी कायादिक जो जीव है, सो अस्पष्ट चैतन्य है. उनकी हिंसामें अल्प पाप अरु हुत निर्झरा है, अरु तुमारे पक्षमें तो श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास सुखोंमें यम नियमादिकों करकेनी स्वर्गकों होनां कहा है, तो फेर रूप, दीन, अनाथ, जैसे पंचेंद्रिय जीवोंका वध काहेको यज्ञमें करते हो ? से यही सिद्ध होता है कि जो तुम निरपराध, रूपण, दीन, अनाथ,

जीवोंको यज्ञादिकोंमें मारते हो. तिसमें संपूर्ण पुण्यका नाश करके अत्यंत दुर्गतिमें जाओगे, अन्नपरिणामका होना तुमको बहुत दुर्जन है.

जें कर कहोगेकि जिनमंदिर बनानेमेंनी हिंसा होती है, इस बातसे जिनमंदिर बनानेमेंनी पुण्य नहीं है.

उत्तर:—यह तुमारा कहनां अयुक्त है, क्योंकि जिनमंदिर. नातिम  
के देवनेसे उनके दर्शनसे जगवानके गुणानुराग करके कितनेक जन्मोंको बोधिलाज होता है, अरु पूजातिशय देखनेसे मनः प्रसाद होता है, तिस मनःप्रसादसे समाधि होती है, पीछे क्रम करके निःश्रेयस अर्थात् मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ तथा च जगवान् पंचलिंगीकार ॥ पुढवास्या ए जइविदु, होइ विणासो जिणालयाहिं तो ॥ तद्विसयावि सुदिच्छित्त, नि यमओ अडि अणुकंपा ॥ १ ॥ एआहिं तो बुद्धा, विरिया रक्कति जेण पु ढवाऽ ॥ इत्तो निवाण गया, अवाहया आनव मणंत ॥ २ ॥ रोगसिंतावे हो इव, सुविक्क किरियाव सुप्पउत्ताउ ॥ परिणाम सुंदरच्चिय, चिन्हासे वाद जोगेवित्ति ॥ ३ ॥ इनका जावार्थ लिखते है यद्यपि जिनमंदिर बनानेमें पृथिवीआदिक जीवोंकी हिंसा होती है, तोनी सम्यक् दृष्टिकी तिन जीवों उपर निश्चयही अनुकंपा है ॥ १ ॥ इनकी हिंसासे निवर्त्त हो कर ज्ञानी निर्वाणको प्राप्त होये हे. कैसें निर्वाणको ? अव्याहत, अनंत काल लागि ॥ २ ॥ जैसे रोगीकी नाडीको बड़े यत्नसे वैद्य बांधता है. उस वैद्यके अग्रे परिणाम अष्टे है कि कदाचिन वो रोगी मरनी जावे, तोनी वैद्यको पाप नहीं, तैसेही जिनमंदिरके बनानेमे यत्नपूर्वक प्रवर्त्तमान पुरुषोंको इन जीवोंके उपर अनुकंपाही है, अरु वेदके कहे सुजव बंध करनेमें किंचित् मात्रनी पुण्य हम नहीं देखते है

पूर्वपद:—ब्राह्मणोंके तांड, पुरोमाशादि प्रदान करनेसे पुण्यानुबंधी गुण होता है

उत्तरपद:—यहनी तुमारा कहनां ठीक नहीं. क्योंकि पवित्र सुवर्णादि प्रदान मात्रसेनी पुण्योपाङ्गनेका सजव होता है, अरु जो रूपण, दीन, अनाथ, पशु गणको मारणा, अरु तिनके मांसका दान करना, यह केवल तुमारी निर्दयता अरु मांस लोलुपताहीका चिन्ह है.

पूर्वपक्षः— हम निःकेवल प्रदान मात्रही पशुवध क्रियाका फल नहीं करते है, किंतु नृत्यादिकं अर्थात् लक्ष्मी आदिनी होती है, यदाह श्रुतिः “श्वेतवायव्यामजमालाचेत् नृतिरामइत्यादि” जावार्थः—श्वेतवर्णका जिन्का वायु देवता स्वामी है अैसें बकरेकों आलाचेत् हिंसेत् अर्थात् मारे. कौन मारे ? लक्ष्मीका कामी मारे.

उत्तरपक्षः—यहनी तुमारा कहनां व्यभिचार पिशाच करी ग्रस्त होनेसें अप्रामाणिक है, क्योंकि नृति जो है, सो अन्य उपाय करकेंनी साध्यमान है

पूर्वपक्षः— तहां यज्ञमें जो ढागादिक मारे जाते है वे मरके देवगतिको प्राप्त होते है, यह यज्ञ करनेमें उन जीवों उपरि उपकार है

उत्तरपक्षः—यहनी तुमारा कहनां प्रमाणके अज्ञावसें वचन मात्र है, क्योंकि यज्ञमें मारे गये पशुयोमेंसूं सज्जतिके लाज होनेसें मुदित मन हो करके कोइनी पशु पीठा आ करके अपणे स्वर्गके सुखोंका निरूपण नहीं करता है.

पूर्वपक्षः—इस कहनेमें आगम प्रमाण है ॥ यथा ॥ औपथ्य. पशवो वृक्षा, स्तिर्यच. पक्षिणस्तथा ॥ यज्ञार्थं निधनं प्राप्ताः, प्राप्नुवंत्युद्धित पुनरित्यादि ॥ जावार्थ—औपथियो, अजादिक पशु. किजल्कादि पक्षी. जो ये यज्ञमें मारे जाते है, वे फेर उद्धित अर्थात् उन्नतिकों प्राप्त होते है.

उत्तरपक्षः—यहनी तुमारा कहनां ठीक नहीं. तुमारा आगम पौरुषेय अपौरुषेय विकल्पो करके हम आगे खंमन करेंगे अरु श्रोत्रविधि करके पशुओंके मारनेसें जे कर स्वर्गप्राप्ति होती होवे, तव तो कसाइ ( खटीक) प्रमुख नी स्वर्गवासी हो जावेगे ॥ तथा च पठन्ति पारमर्षा. ॥ यूपं हित्वा पशून् हत्वा कृत्वा रुधिरकर्म ॥ यद्येवं गम्यते स्वर्गं, नरके केन गम्यते ॥ ? ॥ एक औरनी बात है, जे कर अपरिचित, अस्पष्ट चैतन्य, अनुपकारी पशुओंके मारनेसें त्रिदिव पदवी प्राप्त होवे, तदा परिचित, स्पष्ट चैतन्य, पारमोपकारी, माता पितादिकोंके मारनेसें याज्ञिकोंको अधिकतर पदवी प्राप्ति होवेगी? यहनी करनां चाहिये.

पूर्वपक्षः—“अचित्त्योहि मणिमंत्रौपथीना प्रजाव इति वचनात्” इस वास्ते वैदिक मंत्रोंकी अचित्त्य शक्ति होनेसें उन मंत्रों करके संस्कार करा हुआ पशुके मारनेसे अवश्य स्वर्ग प्राप्ति होती है.



उत्तरपक्षः—यहनी कहना व्यभिचारी है. क्योंकि इह लोकमें गन्तव्य, जातकर्मादिकोंके विषे तिन मंत्रोंका व्यभिचार देखनेमें है, तो अदृष्ट स्वर्गादिकोंमेंनी तिनोके व्यभिचारका अनुमान करते हैं कि वेदोक्त मंत्रो करिकें संस्कार करे दूये विवाहमेंनी अनंतरही स्त्री धवा, अत्पायुष्या, दारिद्र्यादि उपश्रव करकें विधुर होते दूये, देखनेमें है, अरु वेद मंत्रोंके संस्कार विनानी कितनेक विवाह करने वाले सुधनी, आदिक दीखते हैं.

पूर्वपक्षः—जिस विवाहादिकोंमें विधवादि हो जाती हैं तहां क्रिया वैगुण्यतासे विसंवाद होता है.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे कहनेमें यह संशय कनी दूर नहीं होवेगा, तहां क्रियाकी वैगुण्यता विसंवादका हेतु है? किंवा वेदमंत्रोंकी अर्थता विसंवादका हेतु है?

पूर्वपक्षः—जैसे तुमारे मतमें “आरोग्य बोहिलाजं समाहिवरमुत्तमं विदुः श्रुत्यादिक वचनोंका कालांतरमेंही फल चाहते (वांछते) है, जैसे हमारे निमत वेद वचनोंकानी इस लोकमें फल नहीं कल्पना करते है, किंतु कालांतरमें फल होता है. इस वास्ते विवाहादिकका उपासनावाकाश नहीं

उत्तरपक्षः—अहो वचन वैचित्री! जैसे वर्तमान जन्मविषे विवाहादिकोंमें प्रयुक्त मंत्र, संस्कारों करके आगम जन्ममें तिसका फल है, अहो ही द्वितीयादि जन्ममेंनी विवाहादिकोंके पुण्य हेतु माननेसे अनंत जन्मका अनुसंधान होवेगा, जैसे तो कदापि संसारकी समाप्ति नहीं होवेगी तब तो किसीकोनी मोक्षप्राप्ति नहीं. इससे यही सिद्ध हुआ जो वेद अर्थात् अर्थवत्तित संसार बहरीका मूल (कंद) है, अरु आरोग्यादि प्रार्थना जो है, सो असत्य अमृषा जापा है, परिणाम विद्युदिका कारण होतों दोषके वास्ते नहीं, क्योंकि तहां नाव आरोग्यादिककीही विवक्षा है, अतः जो आरोग्यपणा है, सो चातुर्गतिक संसार लक्षण नावरोग परिष्कार रूप होनेसे उत्तम फल है, तिस विषयक जो प्रार्थना है, वो कैसे विकृत वानोंको आदरणीय नहीं? जैसेनी मत कहना जो परिणाम शुद्धि तिस फलकी प्राप्ति नहीं, क्योंकि सर्व वादीयोके नावशुद्धिसे फल पानेमें विवाद नहीं. जैसेनी मत कहना जो वेदविहित हिंसा बुरी नहीं, क्य

के सम्यक् दर्शन ज्ञान संपन्न अर्चिमार्गप्रतिपन्न वेदांतवादीयोनंजी निं  
 है " तथा च तत्त्वदर्शिनः पवंति ॥ श्लोक ॥ देवोपहारव्याजेन, य  
 व्याजेन वायवा ॥ घ्नति जंतून् गतघृणा, घोरां ते यांति दुर्गतिं ॥ १ ॥  
 दातिका अप्याहुः ॥ अंधे तमसि मङ्गामः, पशुनिर्ये यजामहे ॥ हिंसा ना  
 नवेदस्मा, न चूतो न नविष्यति ॥१॥ " तथा अग्निर्मातेस्मात् हिंसाक  
 दादेनसोमुंचतु ठांदसत्वान्मोचयतु इत्यर्थः" व्यासेनाप्युक्तं ॥ ज्ञानपालिपरि  
 क्ते, ब्रह्मचर्यदयानसि ॥ स्नात्वातिविमले तीर्थे, पापपंकापहारिणि ॥ १ ॥  
 यानाग्नौ जीवकुंभस्थे, दममारुतदीपिते ॥ असत्कर्मसमिद्धेषु, रग्निहोत्रं  
 कुरुचम ॥१॥ कपायपशुनिर्दुष्टे, धर्मकामार्थनाशकैः ॥ शममंत्रद्रुतैर्यज्ञ, वि  
 वेहि विहित बुधैः ॥ ३ ॥ प्राणिघातात्तु यो धर्म, मीहते मूढमानसः ॥  
 न वांबति सुधावृष्टि, कृष्णाहिमुखकोटरात् ॥ ४ ॥ इत्यादि.

अरु जो यज्ञ करने वालोंको पूजनिक पणा तुम कहते हो, सोनी असा  
 है, क्योंकि अबुद जनही उनको पूजते है, नतु विविक्त बुद्धिमान.  
 अरु मूर्खोंका जो पूजना है, सो प्रामाणिक नहिं, क्योंकि मूर्ख तो कुत्ते औ  
 गधेकोनी पूजते हैं.

अरु जो तुमने कहा था कि देवता, अतिथि, पितृ प्रीति संपादक होने  
 से वेद विहिता हिंसा, दोषके तांड नहीं, यहनी जूव है, क्योंकि देवता  
 ओंके संकल्प मात्रसेही अनिमत आहारके रसका स्वाद, प्राप्त हो जाता है,  
 अरु देवताओंका शरीर वैक्रियरूप है, सो तुमारी जुगुप्सित पशुमांसा  
 दि आहुतिके लेनेको उनको इच्छाही नहीं हो सकती है, क्योंकि औदारिक  
 शरीर वालेही तिन मांसादिकोंके ग्राहक है, जे कर देवताओंकोनी कवल  
 आहारी मानोगे, तब तो देवताओंका शरीर तुमने मंत्रमय माना है, तिस  
 के साथ विरोध होवेगा, अरु अन्युपगमकी बाधा है, देवताओंका शरीर  
 मंत्रमय तुमारे मतमे अस्ति नहीं है, " चतुर्थत पदमेव देवता इति जैमि  
 नीय वचनप्रामाण्यात् ॥ तथा च ॥ मृगैः शब्देतरत्वे युगपन्नित्तेषु यद्गु  
 नता प्रयाति सानिध्यं मूर्त्तत्वाद्स्माद्विवदिति "

तथा जिस वस्तुकी आहुति देवताओंको देते है, वोतो नश्मीजावमा  
 हो जाती है, तो फेर देवता क्या उस नश्म अर्थात् राखको खाते  
 है? इस वास्ते तुमारा कहनां प्रलापमात्र है.

तथा एक औरनी बात है, यो यह त्रेताग्रि है, सो तेतीस कोटि मुख है, "अग्रिमुखा वै देवा इति श्रुतेः" तब तो उत्तम, मध्यम, सर्व देवता एकही मुख करके खाने वाले सिद्ध हूये. अरु सर्व आ... खाने वाले बन गये, तब तो तुरकोंसेंनी अधिक हो गये. क्यों कि एक पात्रमें एकठे खाते है, परंतु एक मुख करके सर्व नहीं खाते है.

एक औरनी दूषण है, एक शरीरमें मुख बहुत हैं, यह बात तो आर्गेनी सुनते थे, परंतु अनेक शरीरोंका एक मुख, यह तो बड़ा है. जब सर्व देवताओंका एक मुख माना, तब तो किसी पुरुषने एक देवताकी पूजादि करके आराध्या, अरु अन्य देवताओंकी निंदादि विराध्या, तब तो एक मुख करके युगपत् अनुग्रह, निग्रह, वाक्यके रणमें संकरका प्रसंग होवेगा.

तथा एक औरनी बात है कि, मुख जो है सो देहका नवमा तो जब उन देवताओंका मुखही दाहात्मक है, तब एक एक शरीर दाहात्मक होनेसें तीनों जवनही जस्मीनूत हो जाने चाहिये त्यलमतिचर्चया ॥

अरु जो कारीरी यज्ञादिकोमें वृष्ट्यादि फलका व्यवनिचार है, फलमें आहुति करके प्रीणीत देवताका अनुग्रह जो तुम कहते हो तो अनेकांतिक है. किसी जगे व्यनिचारनी देखनेमें आता है, अरु जहां निचार नहीं, तहांनी आहुतिके जोजन करनेसें अनुग्रह नहीं. किंतु देवता विशेष अतिशय ज्ञानी है, स्वउद्देश्य पूजापचारकों देख करके, एो स्थानमेंही स्थित हूये थके पूजा करने वाले प्रति प्रसन्न हो कर एो का कार्य, अपणी इच्छासें कर देता है, अनुपयोग करके अनजानता यवा जानता थकाजी पूजकके अज्ञान्य करके कार्य नहींनी करता क्योकि इव्य, क्षेत्र, काल, जावादि सहकारियो करके कार्यका होना दी पडता है, अरु वो जो पूजा उपचार है, सो नि.केवल पशुओंहीके मारने नहीं हो सकती, दूसरी तरसेंनी हो सकती है. तो फेर पाप एक फल शौनिकवृत्ति करनेसें क्या है ?

अरु जो उगल अर्थात् बकरेके मांस होमनेसें परराष्ट्र वश करने वा सिद्धादेवीके परितोप होनेका जो अनुमान है, तो इसमें क्या आश्चर्य है

क्योंकि कितनेक ह्रुद् देवताओं तैसेही प्रीति है, तहांकी वें डुष्ट देव सो अ  
नी पूजा देखके राजी होते हैं, परंतु मजिन (बीजत्स) मांसके खाने  
नहीं राजी होते. जे कर होम करी ह्रुद् वस्तुकों खाते है, तब तो निं  
पत्र, कडुवा तेल, धारनाज, धूमांशादिनी दूयमान इव्यनी तिनका  
गोजन हो जावेगा, वाह क्याही तुमारे देवता सुंदर नोजन करते हैं!

अरु अतिथिकी जो प्रीति है, सो संस्कार संपन्न पक्कान्नादिक करकेनी  
सकी है, तो फेर तिनके अर्थ महोक्त महाजादिकोंका कल्पनां सो  
केवल तुमारी निर्विवेकताकों कहता है.

अरु श्राद्धादिकोंके करनेसें पितरोंकी जो प्रीति है, सोनी अनेकां  
तेक है, क्योंकि कितनेक श्राद्ध नहींकी करते है, तोनी तिनकी संता  
वृद्धि देखते है, गर्तजूकरादिके जैसें वृद्धि है. तिस वास्ते श्राद्धादिकोंका  
जो करणां है, सो मुग्ध जनकों विप्रतारणमात्रही फल है. जो पितर  
जोकांतरमें प्राप्त दूये हैं, सो अपणे सुकृत दुःकृत कर्मोंके अनुसार  
सुर नारकादि गतियोंमें सुख दुःख नोग रहे है, तो फेर पुत्रादिकोंके दीये  
दूये पित्रोंकों क्योंकर नोगनेकी इच्छा कर सके हैं? " तथा च युष्मद्युधि  
न पवति ॥ श्लोक ॥ मृतानामपि जतूनां, श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणं ॥ त निर्वा  
णप्रदीपम्य, स्नेहः संवर्द्धयेद्विखामिति ॥

तथा श्राद्ध करनेसें पुण्य क्यों कर उस पितरोंके पास चला जाता है?  
क्योंकि वो पुण्य तो अौरने करा है, अरु पुण्य जो है, सो आप जडरूप  
है, औ पगोसें रहित है. जे कर कहोगेकि उदेशतो पितरोंहीका है, परंतु  
पुण्य, श्राद्ध करनेवाले पुत्रादिकोंकों होता है, यहनी कहनां ठीक नहीं  
पुत्रादिकोंकों पुण्य नहीं होता है, पुत्रादिकोंके मनमें यह वासना नहीं  
जो हम पुण्य करते है, इसका फल हमकों मिलेगा, तो बिना पुण्यकी  
चायनासें पुण्य फल नहीं होता है, इस हेतुसें नतो पितरोंकों, अरु न  
पुत्रादिकोंकों श्राद्ध करनेका फल है, किंतु विचमेंही त्रिशंकुके दृष्टांत करिकें  
विजोन हो गया.

अरु पापानुबंधी जो पुण्य है, वो तत्त्वसें पाप रूपही है, जे कर कहां  
गे कि ब्राह्मण जो कुठ खाते है, वो उनको मिलता है, तो इस कहनेकी  
तुमकोही सत्यता प्रतीत होती होवेगी, ब्राह्मणोहीका मोटा वदर दिखजा

इ देता है, परंतु उनके पेटमें प्रवेश करके पितर खाते दूधे कदापि  
द्विखते है, जोजनावसरमें ब्राह्मणोंके उदरमें प्रवेश करते दूधे  
कोऽनी लिंग हम नहीं देखते हैं,केवल ब्राह्मणोंहीको तृप्त होते दे

अरु जो तुमने कहाथाकि हमारे पास आगम प्रमाण है, सो  
आगम पौरुषेय है ? वा अपौरुषेय है ? जे कर कहोगेकि पौरुषेय है,  
क्या सर्वज्ञका करा हुआ है ? वा असर्वज्ञका करा हुआ है ? जे कर  
य पक्ष मानोगे, तब तो तुमारे मतकी व्याहति होवेगी, क्योंकि  
यह सिद्धांत है, “ अतीन्द्रियाणामर्थानां, साक्षाद्गृष्टा न विद्यते ॥  
वेदवाक्येभ्यो, यथार्थत्वविनिश्चयः ॥ १ ॥ दूसरे पक्षमें दूषण वाजे  
के करे दूधे शास्त्रका विश्वास नहीं होता है, जे कर कहोगेकि  
है, तब तो संभवही नहीं हो सकता है, स्वरूप निराकरणसें पुं  
पुरुषक्रियानुगत रूप इसका है. पुरुष क्रियाके विना यह क्योंकर  
है ? इस वास्ते जो साक्षर वचन है. सो पौरुषेयही है,  
वचनवत्. वचनात्मकही वेद है, “ तथा चाहुः ॥ तात्वादिजन्मा नतु  
वर्गा, वर्णात्मको वेद इति स्फुटं च ॥ पुंसश्च तात्वादिरतः कथं स्या, दूषण  
पेयोयमिति प्रतीतिः ॥१॥ इति श्रुतिकों अपौरुषेयत्व ” अंगीकार करके  
तुमने तदर्थव्याख्यान पौरुषेयही अंगीकार करी है, अन्यथा “ अग्रिहा  
जुह्यात् स्वर्गकामः’ इसका अर्थ “ श्वमासं नक्षयेत इति” नियामकके  
जावसें जैसें क्यों न हो जावे ? तिस वास्ते यही अज्ञा है जो शास्त्रको  
रुषेय मानना होवे. तुमारे हठसें अपौरुषेय वेद माने, तोनी तिसको प्रमा  
णता नहीं, क्योंकि प्रमाणता जो है, सो आप्त पुरुषाधीन है. जब वेद प्रमा  
ण न दूधे, तब तिन वेदोंका कहा हुआ तथा वेदानुसारी स्मृतिनी प्रमा  
ण नही. हिंसात्मक याग आधादिविधि प्रामाण्य विधुरही है.

पूर्वपक्षः—जो यह कहा है कि “न हिंस्यात् सर्वनृत्तानीत्यादि” करके जो  
हिंसाका निषेध करा है, सो औत्सर्गिक मार्ग है, अर्थात् सामान्य विधि  
है, अरु वेदविहिता जो हिंसा है, सो अपवाद विधि है, अर्थात् विशेष वि  
धि है, तब तो अपवाद करके उत्सर्गकी बाधा होनेसे वैदिकी हिंसा दोष  
का कारण नहीं “ उत्सर्गपवादयोरपवादविधिर्वलीयानिति न्यायात् ” तु  
मारे जैनोंके मतमेंनी एकात हिंसाका निषेध नहीं है, कितनेक कारणोंके

होनेसें पृथिव्यादिक जीवोंकी हिंसा करनेकी आज्ञा है, अरु जब माधु  
योग पीडित होता है, "असंस्तरे" अर्थात् असामर्थ्य होता है, तब आ  
माकमादि आहारके ग्रहणकीजी आज्ञा है, जैसेही हमारे मतमें याज्ञिकी  
हिंसा जो है, सो देवता अतिथिकी प्रीतिके वास्ते पुष्टालंबनरूप होनेसें  
अपवाद रूप है, इस वास्ते दोष नहीं।

उत्तरपक्षः—अन्यकार्यके वास्ते उत्सर्ग वाक्य, अरु अन्य कार्यके वास्ते  
अपवाद पद कहनां, यह उत्सर्ग, अपवाद, कदा ची नहीं हो सका है, किंतु  
जैसे अर्थके वास्ते शास्त्रमें उत्सर्ग कहा है, तिसी अर्थके वास्ते अपवा  
द होवे, तबही उत्सर्ग अपवाद हो सका है, तिन दोनोंहीकों उन्नत नि  
ष्ठादि व्यवहारवत् परस्पर सापेक्ष होनेसेंही एकार्थके साधक हो सके है,  
जैसे जैनोंके संयम पालनेके अर्थ नवकोटि विशुद्ध आहारकों ग्रहणां,  
सो उत्सर्ग है, तैसेंही इव्य, क्षेत्र, काल, नाव, आपत्में पडनेसें गत्यंतर  
के अज्ञावसें पंचकादि यज्ञा करके अनेपणीयादि आहारकों जो ग्रहण  
करनां, सो अपवाद है, सोची संयमहीके पालने वास्ते है, जैसेंजी मत  
कहनां कि जिस साधुकों मरणाही एक शरणा है, तिसकों गत्यंतर अज्ञाव  
की अतिदि है ॥ उक्तं चर्षिणि ॥ सव्वञ्ज सं जमं सं, जमाउ अप्पाणमेव र  
क्किञ्जा ॥ मुञ्चइ अस्वायाउ, पुणो विसोही नयाविरई ॥१॥ इत्यागमात् ॥  
इसका नावार्थः—सर्वत्र संयम करणां, जे कर संयमके दूषित होनेसें प्राण  
रहित होवे, तो संयममें दूषणनी जगा कर प्राणोंकी रक्षा करणी, प्राणों  
के रहणसे प्रायश्चित्त द्वारा उस पापसें बूट करके शुद्ध हो जावेगा, अरु  
अविरतिनी नहीं रहेगी, तथा आयुर्वेदमें जी जो वस्तु किसी रोगमें कि  
सी अवस्थामें अपथ्य है, सोइ वस्तु उसी रोगमें उसी अवस्थामे अव  
स्था, देश, काल, देख कर देवे, तो पथ्य है. देशादि अपेक्षा करके ज्वर वा  
जेकों दही खानेको देते है ॥ तथाच वैद्या. ॥ कालाविरोधिनिर्विष्टं. ज्वरादौ  
जपनं हित ॥ कृतेऽनिलश्रमक्रोध, शोककामरुतज्वरात् ॥ १ ॥ जैसें प्रथ  
म अपथ्यका परिहार करना, अरु जो तहांही अवस्थांतरमे तिसीकों नोग  
ना, सो दोनोंही जगे रोगके दूर करनेका प्रयोजन है. इस्सें यह सिद्ध  
हूया जो एकही वस्तुविषयक उत्सर्ग अपवाद है.

अरु तुमारे तो उत्सर्ग, और अर्थ वास्ते है, तथा अपवाद, और अर्थ

वास्ते है. क्योंकि तुमारे तो “न हिंस्यात् सर्वजूनतानि” यह जो सो दुर्गतिके निषेध वास्ते है, अरु जो तुमारी अथवाद हिंसा है, ता, अतिथि, पितरोंकी प्रीति संपादनेके अर्थ है, इस वास्ते परस्पर पेक्ष होनेसे उत्सर्ग अथवाद विधि नहीं हो सकती है. तब कैसे पवाद, उत्सर्ग विधिकों बाधा कर सका है?

असंज्ञी मत कहना कि वैदिक हिंसाकी जो विधि है, सो सर्गहेतु नसें दुर्गति निषेधार्थही है, वैदिकहिंसा स्वर्गका हेतु नहीं है, यह अही तरेसें लिख आये हैं, वैदिक हिंसाके विनानी स्वर्गकी प्राप्ति की है, गत्यंतरके अज्ञावर्मेही अथवाद हो सका है, कुछ हमही का करनेसें स्वर्गका निषेध करते हैं, किंतु तुमारा व्यासजीनी कहुता यदाह व्यासमहर्षिः ॥ पूजया विपुलं राज्य, मग्निकार्येण संपदः ॥ तपः, विद्युद्वयर्थे, ज्ञानं ध्यानं च मुक्तिदं ॥१॥ यहां अग्निकार्ये शब्दवाच्यस्य गादिविधि उपायांतर करके जो साध्य है सपदा, तिसहीका हेतु दूथा आचार्य तिस यागकों सुगतिका हेतु अर्थात् ही कदर्थन है, तथा सोइ व्यासजी नावाग्निहोत्र “ज्ञानपाली” इत्यादि श्लोकों स्थापन कर गया है ॥ इति मीमांसकमतखंडनम् ॥ ५ ॥

अथ चार्वाकमत खंडन लिखते है ॥ चार्वाक कहता है की नहीं है, तब किल वास्ते मतावलंबी पुरुष, वचनकल्हा करते है? आत्माही नास्ति है. तब जैन, बौद्ध, सांख्य, नैयायिक, वैशेषिक, अरु मिनीय, यह जो पट्ट दर्शन है, सो नि.केवल लोकोंको प्रममे माज जोग विलास बुडा देते है, वास्तवमें आत्मानामा कोइ वस्तु नहीं. वास्ते हमारा मत अज्ञा है, जे कर आत्मा है, तो कैसें तिसकी तिधि है?

उत्तरपक्षः—प्रतिप्राणी स्वसंवेदन प्रमाण चैतन्यकी अन्यथानुपपत्ति सिद्ध है, तथाहि यह जो चैतन्य है, सो जूतोंका धर्म नहीं है, जे कर तोंका धर्म होवे, तब तो पृथिवीकी कठोरताकी तरे सर्वत्र सर्वदा उपलब्ध होनें चाहिये, सो सर्वत्र सर्वदा उपलब्ध होता है नहीं, क्योंकि लोकादिकों में अरु मृत अवस्थामें चैतन्य उपलब्ध नहीं होता.

पूर्वपक्षः—लोकादिकोंमें अरु मृत अवस्थामें चैतन्य है, केवल रूप करिकें है, तिस वास्ते नहीं उपलब्ध होता है.

उत्तरपक्षः—दो विकल्पके न उल्लंघनेसें यह तुमारा कहनां अयुक्त है, किाहि वो शक्ति, चैतन्यसें विलक्षण है? अथवा चैतन्यही है? जे कर कहोगेकि विलक्षण है, तब तो शक्तिरूप करके चैतन्य है असा मत कहो, किाहि नही पटके विद्यमान हुआ पटरूप करके घट रहता है, “आह च प्रज्ञाकरगुप्तोपि ॥ श्लोक ॥ रूपांतरेण यदित, तदेवास्तीति मारटीः ॥ चैतन्यादन्यरूपस्य, जावे तद्विद्यते कथम् ॥१॥ जे कर दूसरा पक्ष मानोगे, तब चैतन्यही वो शक्ति है, तो फेर क्युं नही उपलंन होती? जे कर कहोगेकि आवृत्त होनेसें उपलंन नही होती, तो यहनी ठीक नही, क्योंकि आवृत्ति अनाम आवरणका है, सो आवरण क्या विवक्षित परिणामका अज्ञाव है? अथवा परिणामांतर है? अथवा नूतोंसें अतिरिक्त और वस्तु है? उसमें विवक्षित परिणामोंका अज्ञाव तो नही हैं, क्योंकि एकांत तुल्य होने कर तिस विवक्षित परिणाम अज्ञावकों आवरण शक्ति नही है, अन्यथा उसकों अतुल्य रूप होनेसें सोची जावरूप हो जावेगा. अरु जब जावरूप हुआ, तब तो पृथिवी आदिकोंमेंसूं अन्यतम हुआ, क्योंकि “पृथिव्यादी एव नूतानि तत्त्वमिति वचनात्” अरु पृथिवी आदिक जो नूत है, सो तन्यके व्यंजक हैं, परंतु आवरणक नहीं. तब कैसें आवरणकत्व सिद्ध होवे? अथ जे कर कहोगेकि परिणामांतर है, सोची अयुक्त है, क्योंकि परिणामांतरकों नूत स्वज्ञाव होने करके नूतोंकी तरें चैतन्यका व्यंजकही हो सका है, आवरणक नहीं.

अथ जे कर कहोगेकि नूतोंसें अतिरिक्त वस्तु है, यह कहनां बहुत ही असंगत है, क्योंकि नूतोंसे अतिरिक्त वस्तु माननेसे “वत्त्वार्येव पृथ्व्यादि नूतानि तत्त्वमिति” इस कहनेसें तत्त्वसंख्याका व्याघात हो जावेगा. एक औरनी बात हैकि यह जो चैतन्य है, सो एक एक नूतका धर्म है वा सर्व नूत समुदायका धर्म है? एक एक नूतका धर्म तो नहीं, क्योंकि एक एक नूतमें दीखता नहीं और एक एक परमाणुमें संवेदन उपलंन नहीं होता है जे कर प्रति परमाणुमें होवे, तब तो पुरुष, सहस्र चैतन्य वृंकी तरें परस्पर निन्न स्वज्ञाव होवेगा, परंतु एक रूप चैतन्य नहीं होवेगा, अरु देखनेमें एक रूप आता है. “अहं पश्यामि” अर्थात् मैं देखता हूं, मैं करता हूं, जैसें सकल शरीरका अधिष्ठाता एक उपलंन होता है.



जें कर समुदायका धर्म मानोगे सोची प्रत्येकमें अज्ञाव होनेसें है, क्योंकि जो प्रत्येक अवस्थामें अस्त है, वो समुदायमेंनी नहीं का है, जैसें रेणुकार्योंमें तैज.

जे कर कहोगेकि मद्यागोमें मद शक्ति नहीं है समुदायमें हो जाती जैसें चैतन्यनी हो जावे, तो क्या दोष है ? यहनी अयुक्त है, क्योंकि क मद अंगोंमें मद शक्त्यनुयायि माधुर्यादि गुण दीखते हैं, त दीखता है माधुर्यादि इन्द्रसमें धातकी फूलोंसें थोडीसी विकलता दक शक्ति, जैसें चैतन्य, सामान्य प्रकारसें जूतोमें नहीं उपलंन होता तव कैसें जूत समुदायमें चैतन्य हो सकता है ? जे कर प्रत्येक अस्त समुदायमें हो जावे, तब तो सर्व समुदायसें सर्व कुठ हो जाना हियें. यह अति प्रसंग होवेगा.

एक औरनी बात है, कि जे कर तुमने चैतन्य धर्म माना है, तब तो वश्य धर्मके अनुरूप धर्मीनी मानना चाहियें, जे कर अनुरूप न माने तब तो जल अरु कठिनता इन दोनोको धर्म धर्मी मानना चाहियें, सेंनी मत कहनां जो जूतही धर्मी हैं, क्योंकि जूत, चैतन्यसें विलग हैं, तथाहि चैतन्य बोध स्वरूप, अरु अमूर्त है, अरु जूत इससें कि ए हैं, तब कैसें परस्पर धर्म धर्मी जाव हो सकता है ? अरु यह चैतन्य तोंका कार्यनी नहीं है, अत्यंत वैलक्षण्य होनेसें कार्य कारण जाव पि नहीं होता है ॥ उक्तं च ॥ काठिन्याबोधरूपाणि, जूतान्यध्यक्षसिद्धित चेतना च न तद्रूपा, सा कथं तत्फलं जवेत् ॥ १ ॥

एक औरनी बात हैकि जे कर जूतकार्य चेतना होवे, तब तो सा जगत् प्राणीमय होवे, जे कर कहोगेकि परिणति विज्ञेप सद्भावके अ सें सकल जगत् प्राणिमय नहीं होता है, तो वो परिणति विज्ञेप स सर्वत्र किसी वास्ते नहीं होता है ? सोची परिणति जूनमात्र निमित्त है, तब कैसे तिसका किस जगे होनां न होनां सिद्ध होवे ? तथा वो णति विज्ञेप किस स्वरूपवाली है, जे कर कहोगेकि कठिनादि रूप है, इ दिखाते है कि घुणादि जंतु उत्पन्न होते हुये काष्ठादिकोमें दीखते तिस वास्ते जहां कठिनत्वादि विज्ञेप है, सो प्राणिमय हैं, जेप नहीं नी व्यञ्जिचार देखनेसें अस्त है तथाहि अविशिष्टनी कठिनत्वादि विज्ञे

कहीं होता है, और कहीं नहीं होता, अरु किसी जगे कठिनत्वादि विशेषके बिनाजी संस्वेदज घने आकाशमे सम्पूर्ण उत्पन्न होते है.

एक औरजी बात है कि कितनेक जीव समानयौनिकनी विचित्रवर्ण संस्थान वाले दीखते है, तथाहि गोबर आदि एक योनिवालेनी कितने क नीले शरीर वाले हैं, अपर पीत शरीर वाले है, अन्य विचित्र वर्ण वाले है, अरु संस्थाननी इनका परस्पर निन्न है, जे कर नूतमात्र निमित्त उत्पन्न होवे, तब तो एक योनिक सर्व एक वर्ण संस्थान वाले होने चाहियें, परंतु सोतो होते है नहिं, तिस वास्ते आत्माही तिस तिस कर्मके आश तैसैं उत्पन्न होती है, यही सिद्ध माननां चाहियें.

जे कर कहोगेकि आत्मा होवे. तब जाता आता क्यों नहीं उपलब्ध होता ? केवल देहके दुवांही संवेदन उपलब्ध होता है, अरु देहके अजात होयां जस्म अवस्थामें नही दीखता है, तिस वास्ते आत्मा नहीं. कि सु संवेदन मात्रही एक है, सो संवेदन देहका कार्य है, देहहीमे आश्रित है, नीतके चित्रवत् चित्र, नीतके बिना नही रह सका है, अरु दूसरी नीत उपर संक्रमणनी नही होता है, कितु नीत उपर उत्पन्न हुआ है, अरु नीतके साथही विनाश हो जाता है, संवेदननी जैसेही जान लेना. यहनी असत् है, क्योंकि आत्मा स्वरूप करके अमूर्त है, अरु आंतर शरीर अति सूक्ष्म है, इस वास्ते दृष्टिगोचर नही ॥ तद्धक्तं ॥ श्लोक ॥ अंतराजावदेहोपि, सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यते ॥ निःकामन् प्रविशन् वात्मानाजावोऽनीक्षणादपि ॥ १ ॥ तिस वास्ते आंतःशरीर युक्तनी आत्मा आता जाता हुआ नही दीखता है, परंतु जिगसे उपलब्ध होता है, तथाहि तत्काल उत्पन्न हुआनी कर्मो जीवकों अपने शरीर विषे ममत्व है, घातककों जान करके बौड जाता है, जिसका जिस विषे ममत्व है, सो पूर्वले ममत्वके अन्यास पूर्वक है, तैसेही देखनेसैं. अरु जितना चिर, किसी वस्तुके गुण दोष नहीं जानता, उतना चिर, उस वस्तुमे किसीकोंनी आग्रह नहीं होता है, तब तो जन्मकी आदिमें जो शरीरका आग्रह है, सो शरीर परिशीलन अन्या सपूर्वक संस्कार निबंधन है, इस वास्ते आत्माका जन्मांतरसे आग्रहनां सिद्ध हुआ ॥ उक्त च ॥ शरीरग्रहरूपस्य, चेतसः संज्ञवोयदा ॥ जन्माद्यौ देहिनां दृष्टः, किन्न जन्मांतरा गतिः ॥ १ ॥

अथ आगति प्रत्यक्षसें नहीं दीखती है, तब कैसें तिसका बोध होवे ? यह तुमारा कहनां कुठ दूषण नहीं, क्योंकि अनुमेय विषे प्रत्यक्षकी प्रवृत्ति नहीं हो सकी है, परस्पर विषयकों परिहार प्रत्यक्ष अनुमानका प्रवर्त्तनां बुद्धिमान् मानते है, तब कैसें यह पण है ? आह च ॥ अनुमेयेस्ति नाध्यक्ष, मिति कैवात्र उद्यता ॥ स्यानुमानस्य, विषयो विषयो नहि ॥ १ ॥

अरु जो चित्रका दृष्टात तुमने कहा था, सोनी विषम होनेसें है, तथाहि चित्र जो है सो अचेतन है अरु गमन स्वभाव रहित है आत्मा जो है सो चैतन्य है सो कर्मोंके वशसें गति आगति करता है, कैसें दृष्टांत अरु दार्ष्टांतकी साम्यता होवे ? जैसें देवदत्त किसी विवर्त्तित ग्राममे कितनेक दिन रह करके फेर ग्रामांतरमें जाता रहता है, तैसेही आत्मानि विवर्त्तित नवमें देहकों त्याग कर नवांतरमें देहांतर रच कर रहता

अरु जो तुमने कहा था कि संवेदन देहका कार्य है, सोनी ठीक न कि क्योंकि चक्षुषादि इन्द्रियद्वारे उत्पन्न होनेसें चाक्षुषादि संवेदन कर्षण देहसेंनी उत्पन्न होता है, परंतु जो मानस ज्ञान है, वो कैसे देहका हो सकता है ? तथाहि सो मानस ज्ञान देहसें उत्पद्यमान होता हुआ इन्द्रियरूपसें उत्पन्न होता है ? वा अनिन्द्रिय रूपसें उत्पन्न होता है ? केश नखादि लक्ष्णसें उत्पन्न होता है ? प्रथम पक्ष तो ठीक नहीं, कर इन्द्रियरूपसें उत्पन्न होवे, तब तो इन्द्रिय बुद्धिवत् वर्त्तमानार्थका ग्राहक होनां चाहिये, इन्द्रियज्ञान जो है, सो वर्त्तमान अर्थको ग्रहण सकता है, इस सामर्थ्यसे उपजायमान मानस ज्ञानकी इन्द्रियज्ञानवत् वर्त्तमान अर्थकाही ग्रहण कर सकेगा.

अथ जब चक्षुरूप विषय व्यापार करता है, तब रूप विज्ञान उत्पन्न होता है, शेष काल नहीं. तब वो रूपविज्ञान वर्त्तमानार्थ विषय है, कि वर्त्तमानार्थ विषयही चक्षुका व्यापार होनेसे. अरु रूप विषय अस्तिके अज्ञावमें मनोज्ञान है, तिस वास्ते नियत काल विषयक नहीं ऐसेही शेष इन्द्रियमेंनी जान लेना, तब कैसें मनोज्ञानको वर्त्तमान ग्रहण प्रसक्ति होवे ? उक्तं च ॥ अक्षुष्यापारमाश्रित्य, नवदक्षजमिष्यते तद्व्यापारो न तत्रेति, कथमक्षुषु नव नवेत् ॥ १ ॥

अथ अनिर्दिष्ट रूपसें है, सोनी तिसकों अचेतन होनेसें अयुक्त है, केश नखादिक तो मनोज्ञान करके स्फुरत चिद्रूप नहीं उपलब्ध होते तब कैसें तिनसेंती मनोज्ञान होवे ? आह च ॥ चेतयंतो न दृश्यन्ते, इमश्चुनखादयः ॥ ततस्तेन्यो मनोज्ञानं, नवतीत्यतिसाहसं ॥ १ ॥

जे कर केश, नखादिकों करके प्रतिबद्ध मनोज्ञान होवे, तब तो ति के उद्बेद हुआ मूलसेंही मनोज्ञान नहीं होवेगा ? अरु केश, नखादिकों उपघात हुआं ज्ञानकी उपहत होनां चाहिये, परंतु सोतो ही है नहीं, इस वास्ते यह तीसरा पक्षकी ठीक नहीं.

एक औरकी बात है, कि मनोज्ञानके सूक्ष्म अर्थ चेतृत्व अरु स्मृतिपाटवादि विशेष जो है, सो अन्वयव्यतिरेक करके अन्यासपूर्वक वे है, तथाहि वोही शास्त्र, इहा अपोहादि प्रकार करके जे कर बार बार चारियें, तब सूक्ष्म सूक्ष्मतर अर्थावबोध उल्लास होता है, अरु स्मृतिपाटव अपूर्व वृद्धि होती है, जैसें एक शास्त्रविषे अन्याससेंती सूक्ष्मार्थ चेतृत्व शक्तिके होयां, अरु स्मृतिपाटवके हूयां अन्य शास्त्रोंमेंनी सहजसेंही सूक्ष्मार्थावबोध, अरु स्मृतिपाटव उल्लास होती है, जैसें अन्यास हेतुक सूक्ष्मार्थ चेतृत्वादिक मनोज्ञानके विशेष देखे है, अरु कित्ती अर्थावबोधके विनाकी देखियें है, तिस वास्ते अवश्य परलोकका अन्यास हेतु है, सो काहेते ? कि कारणके साथ कार्यका अन्यथानुपपन्न पणा है, तिस प्रतिबंधसें अदृष्ट तिसके कारणकीनी सिद्धि है, तिस वास्ते जीवका परलोकमें जाना सिद्ध हुआ.

अरु देह, रूपोपशमका हेतु है, इस वास्ते देहकी कथंचित् ज्ञानकों उपकारी हम मानते है नहीं देहके दूर होनेसें सर्वथा ज्ञानकी निवृत्ति होती. जैसे अग्नि करके घटकों कुछ विशेषता है, परंतु अग्निकी निवृत्ति हुआ घट मूलसेंही उद्बेद नहीं हो जाता है, केवल कलुष विशेष दूर हो जाता है, जैसे सुवर्णकी स्वता, जैसें इहांनी देहकी निवृत्ति हुआ कोष्क ज्ञानविशेष तत्प्रतिबद्धही निवृत्त होता है, परंतु समूल ज्ञानका उद्बेद नहीं होता है, जे कर देहही ज्ञानका निमित्त मानेगे, अरु देहकी निवृत्तिसें ज्ञान निवृत्तिवाला मानेगे, तब तो स्मशानमें देहके जसम हूयां तो ज्ञान न होवे, परंतु देहके विद्यमान हुआ मृत अवस्थामे किस वास्ते नहीं होता ?

जे कर कहोगे कि प्राण, अपानकी ज्ञानके हेतु है, तिनके ज्ञान नहीं होता है, यहनी कहना ठीक नहीं, क्योंकि प्राणापान हेतु नहीं हो सके है, किंतु ज्ञानहीसें तिनकी प्रवृत्ति होनेसें. तथाहि प्राणापानका करने वाला मंद इच्छा करता है, तब मंद होता है, अरु ब दीर्घकी इच्छा करता है, तब दीर्घ होता है, जे कर देहमात्र प्राणापान होवे, अरु प्राणापान नैमित्तिक विज्ञान होवे, तब तो वशसें प्राणापानकी प्रवृत्ति न होवेगी, क्योंकि जिनका निमित्त देह ऐसी जो गौरता औ श्यामता, वो इच्छाके वशसें प्रवृत्त नहीं होती जे कर प्राणापान ज्ञानका निमित्त होवे, तब तो प्राणापानके बहुतेके होनेसें ज्ञानकी थोडा वा बहुत होना चाहिये, क्योंकि कारण हीन अथवा अधिक होवेगा, तब उसका कार्यकी हीन होवेगा. जैसें माटीका पिन बडा किवा ठोटा होवेगा, तब घटकी अरु ठोटा होवेगा, अन्यथा वो कारणकी नहीं. तुमारेकी तो नके न्यून अधिक होनेसें ज्ञान, न्यून अधिक नहीं होता है. किंतु होता तो दीखता है क्योंकि मरणावस्थामे प्राणापान अधिकनी तोनी विज्ञान घट जाते है.

जे कर कहोगे कि मरणावस्थामें वात पित्तादि दोषो करके देहके णी हो जानेसें प्राणापानकी वृद्धिसेंनी ज्ञानकी वृद्धि नहीं होती है, सेंही मृतावस्थामेंनी देहके विगुणीनूत होनेसें चेतनता नहीं है, यहनी असमीचीन है, जे कर ऐसें होवे, तब तो मरा दूआनी जिदा होना चाहिये ॥ तथाहि ॥ “मृतस्य दोषाः समीचवति” अर्थात् मरण पीछे वात पित्तादि दोष नहीं रहते हैं, औ ज्वरादि विकारके न देखनेसे दोषोका नरुहना प्रतीत होता है, अरु जो दोषोका समपणा है, सोइ आरोग्यता है. “तेषां समत्वमारोग्य, क्लृप्तवृद्धिविपर्यय. ॥ इति वचनात्” ॥ आरोग्य ज्ञान सें देहको फेर जिंटा होना चाहिये, अन्यथा देह कारणही नहीं, जिनके साथ देहका अन्वय व्यतिरेक नहीं. जे कर मारा दुवा जी उठे, तो हम देहको कारणकी मान लेवे.

पूर्वपक्ष—यह फेर जी उठनेका प्रसंग तुमारा अयुक्त है, क्योंकि वयसि दोष, देहको वैगुण्य करके निवृत्त हो गये है, तोनी तिनका वैगुण्य पणा

किंवा दुःखा नहीं निवृत्त होता है, जैसे अग्नि का करा दुःखा काष्ठमें विकार का अग्नि के निवृत्त होनेसेंजी नहीं निवृत्त होता है.

उत्तरपक्षः—यह तुमारा कहनां अयुक्त है, क्योंकि विकारजी दो प्रकारका है, एक निवृत्त होता है, एक नहीं निवृत्त होता है, अनिवृत्त विकार जैसें काष्ठमें अग्नि का करा दूःखा श्यामता मात्र अरु निवृत्त विकार जैसें अग्नि काष्ठ सुवर्णमें इवता. वायु आदिक जो दोष है, सो निवृत्त विकार है, चिकित्सा प्रयोग देखनेसें. जे कर वायु आदि दोषजी अनिवृत्त विकार होवे, तब तो चिकित्सा वैफल्य हो जावेगी, जैसेंजी मत कहना मरणसें पहिलां दोषनिवृत्त विकारारंजक है, अरु मरण कालमें अनिवृत्त विकारारंजक है, क्योंकि एकको एक जगें निवृत्त अनिवृत्त विकार दो रूप नहीं हो सके है,

पूर्वपक्षः—व्याधि दो प्रकारकी लोकमें प्रसिद्ध है. एक साध्य, दूसरी असाध्य, उसमें साध्य जो है, सो चिकित्सासें दूर हो सकी है, अरु दूसरी जो दूर नहीं होती है, तब दो प्रकारकी व्याधि क्यों नहीं सिद्ध हो सकी है?

उत्तरपक्षः—यहजी असत् है, क्योंकि तुमारे मतमें असाध्य व्याधिही नहीं हो सकी है तथाहि व्याधिका जो असाध्यपणा है, सो आयुके काल होनेसें होता है, क्योंकि तिसी व्याधिमें समान औषध वैद्यके योगसें जो कोइ मर जाता है, कोइ नहीं मरता है, अरु जो प्रतिकूल कर्मोंके उदय करके चित्रादि व्याधि है, वो हजार औषधसेंजी साधी नहीं जाती है, यह दोनों प्रकारकी व्याधि परमेश्वरके बचनोंके जानने वालोंके मतमेंही सिद्ध होती है, परंतु तुमारे नूतमात्र तत्त्ववादीयोके मतमें नहीं हो सकी है. कहीक असाध्य व्याधि इस वास्ते हो जाती है, दोषरुत विकारके दूर करणोंमें समर्थ औषधि, अरु वैद्यके अज्ञावसें जब औषधि अरु वैद्यके अज्ञावसें व्याधि वृद्धिमान हो कर सकल आयुको उपक्रम करती है, अर्थात् क्षय कर देती है. तथा कोइक दोषोंके उपशम होनेसें अकस्मात् मर जाता है. अरु कोइक अति दुष्ट दोषोंके होनेसेंजी नहीं मरता है. यह बात तुमारे मतमें नहीं हो सकी है ॥ आह च ॥ श्लोक ॥ दोषस्योपशमेऽप्यस्ति, मरणं कस्यचित्पुनः ॥ जीवनं दोषदुष्टत्वे. प्येतन्न स्यान्नवन्मते ॥ १ ॥ हमारे मतमें तो जहां लगि आयु है, तहां लगि दोषों करके पीडितजी जीता रहता है, अरु जब आयु क्षय हो जाता है, तब

दोषोंके विकार विनाची मर जाता है, इस वास्ते देह, ज्ञानका निमित्त एक औरची बात है कि देह जो तुम ज्ञानका कारण मानते हो सहकारी कारण मानते हो? वा उपादान कारण मानते हो? जे सहकारी कारण मानते हो, तब तो हमची देहकों रूपोपशमका हेतु ते है, कथचित् विज्ञानका हेतु मानते है, जे कर उपादान कारण ते तब तो अयुक्त है, उपादान वो होता है कि जिसके विकारी कार्यची विकारी होवे, जैसे मृत्तिका और घट. देहके विकार करके विकारी नहीं होता है, अरु देह विकारके विनाची जय शोकादिकों संवेदनकों विकारी देखते हैं, इस वास्ते देह, संवेदनका उपादान नहीं ॥ उक्तं च ॥ अधिकृत्य ह्यिदं स्तु, यः पदार्थो विकार्यते ॥ तत्तस्य, युक्तं गोगवयादिवत् ॥ १ ॥ इस कहने करके जो कहते है, ता पिताका चैतन्य, पुत्रके चैतन्यका उपादान कारण है, सोची संन गया. तहां माता पिताके विकारी होनेसे पुत्र विकारी नहीं होता है, जो जिसका उपादान होता है, सो अपने कार्यसे अज्ञेद होता है, माटी और घट. जब माता पिताका चैतन्य, पुत्रके चैतन्यके साथ दूआ, तब तो पुत्रका चैतन्य, माता पिताके चैतन्यसे अज्ञेद होना इसी वास्ते तुमारा कहनां किसी कामका नहीं है, इस हेतुसे नूतोंका वा नूतोंका कार्य चैतन्य नहीं है, इस वास्ते आत्मा सिद्ध है. विशेषतः चार्वाकमतका खंमन देखनां होवे, तदा सम्मतितर्क, स्याद्वाद रत्नाकरा शास्त्र देख लेनां ॥ इति चार्वाक मत खंमन ॥ इस परिच्छेदमें जो कुयुस्के लक्षण कहे है, वे लक्षण चाहो जैनके साधुमें होवे, चाहो अन्यमतके साधु होवे, उन सर्वकों कुयुरु कहनां चाहिये ॥ इति श्री तपगहोये मुनि श्रीशुभ्रि जयशिष्य मुनि आनंदविजयआत्मारामविरचिते जैनतत्त्वादर्श कुयुस्के परिणयनामां चतुर्थः परिच्छेद संपूर्ण. ॥ ४ ॥

॥ इति चतुर्थे परिच्छेद संपूर्ण. ॥ ४ ॥

॥ अथ पंचम परिच्छेद प्रारंभः ॥

यह पंचम परिच्छेदमें धर्मतत्त्वका स्वरूप लिखते हैं धर्म उसको कहते हैं, जो दुर्गति जाते हुये आत्माको धरी राखे, एतावता दुर्गतिमें न जावे, उसको धर्म कहते हैं. तिस धर्मके तीन जेद हैं १ सम्यक् ज्ञान, २ सम्यक् दर्शन, ३ सम्यक् चारित्र, इन तिनोमेंसूं प्रथम ज्ञानका स्वरूप संक्षेपसे लिखते हैं ॥श्लोक॥ यथावस्थिततत्त्वानां, संक्षेपादिस्तरेण वा ॥ योवदोत्तमत्राहुः, सम्यग्ज्ञानं मनीषिणः ॥ १ ॥ अर्थः— यथावस्थित नयमाणों करके प्रतिष्ठित है स्वरूप जिनका, जैसें जो जीव, अजीव, आश्रय, वर, निज्जरा, बंध, मोक्ष रूप सप्त तत्त्व, तथा प्रकारांतरें पुण्य पापके अधिक होनेसें नव तत्त्व होते हैं, इनका जो अवबोध, अर्थात् ज्ञान सो सम्यक् ज्ञान जाननां. अरु वह जो ज्ञान है, सो ह्योपशमके विशेषसें किसी जीवको संक्षेप करके अरु किसी जीवको विस्तार करके होता है. इन नव तत्वोंमें प्रथम जो जीवतत्त्व है तिसका स्वरूप ऐसा है कि जीव कहो अर्थात् आत्मा कहो यह दोनो एकही वस्तुके नाम है.

प्रश्नः— जैनमतमें आत्माका क्या लक्षण है ?

उत्तरः— चैतन्य लक्षण है,

प्रश्न.— जैनमतमें जीव प्राणी आत्मा किसको कहते हैं ?

उत्तर.— ॥ श्लोक ॥ यः कर्ता कर्मजदानां, चोक्ता कर्मफलस्य च ॥ संकर्ता परिनिर्वाता. सहात्मा नान्यलक्षण. ॥ १ ॥ इस श्लोकसे जान लेना. इसका जावार्थ कहते हैं, कि जो मिथ्यात्वादिकों करके कलुषित अर्थात् जेला हो करके वेदनीयादिक कर्मोंका कर्ता, (करनेवाला) अरु तिन अपने करे हुये कर्मोंका जो फल सुख दुःखादिक तिनोंका भोगनेवाला, अरु नारकादि तावों विषे कर्म विपाकके उदय करके जो भ्रमण करनेवाला अरु सम्यग्दर्शनादि तीन रत्नोंके उत्कृष्ट अन्यास करके संपूर्ण कर्मांशको दूर करके जो निर्वाण रूप होनेवाला, सोइ प्राणी है, सोइ जीव है, सोइ आत्मा है, यह नंदीसूत्रमे लिखा है. आत्माकी सिद्धि चार्वाकमतखंडनमे लिखी आये है. जेकर आत्माकी सिद्धि विशेष करके देखनी होवे, तदा शुद्धांशोनिधि, गणहस्ती महाजाप्य देख लेनी यह आत्मा सर्व व्यापीनी नहीं है, श्रौ एकांत नित्य, कूटस्थनी नहीं है. एकांत अनित्यहृणिकनी नहीं है, किंतु



शरीरमात्रव्यापी कथंचित् नित्यानित्य रूप है. इनका खंमन-मंमन वादरत्नाकर, स्याद्वादरत्नाकरावतारिका, अनेकांतजयपताका प्रमुख स्रोतों से देख लेना. इस वास्ते मैंने नहीं लिखा है. जो ग्रंथ बड़ा जारी जावेगा, अरु पढनेवाले आलस कर जायेंगे.

तहां जे जीव है सो दो प्रकारके हैं. एक मुक्त रूप, दूसरा संसारी दोनोही प्रकारके जीव अनादि अनंत है. अरु ज्ञान दर्शन इनका है, अरु जो मुक्त स्वरूप आत्मा है वो सर्व एक स्वभाव है-जन्मादि करके वर्जित है अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंतवीर्य, औ अनंत दमय स्वस्वरूपमे स्थित है, निर्विकार निरंजन ज्योतिस्वरूप है

अरु जो संसारी जीव है, सो दो प्रकारके हैं. एक स्थावर, दूसरा उसमें स्थावरके पांच जेद है, १ पृथिवीकाय, २ अप्काय, ३ त ४ वायुकाय, ५ वनस्पतिकाय. तथा त्रस जीवके चार जेद हैं. १ य. २ तीनइंडिय, ३ चारइंडिय, ४ पांचइंडिय. स्थावर जो है सो सर्व कही स्पर्शइंडिय वाले है. कृमी, गंमोला, जलोक, सुंमो, इत्यादि जीव एक दर्शन अर्थात् शरीर इंडिय, दूसरा रसनैइंडिय अर्थात् मुख, इन दो जेदें. कीडी, जू, सुरसलो, ढोरा, इत्यादि जीव, दो पूर्वोक्त अरु एक न सिका, यह तीन इंडियवाले है. माखी, च्रमर, सहेतकी माखी. मंनू, पांडी, विहू, इत्यादि जीव, तीन पूर्वोक्त, अरु चउथा नेत्र, इन चार इंडिय वाले हैं. नारक, तीर्थच, मनुष्य, अरु देवता, ये पंचेइंडिय जीव है. यह सर्व दर्शन, रसना, घ्राण, नेत्र, कान, इन पांच इंडिय वाले हैं. स्थावर जीवके दो तरेके है, एक सूद्धम नामकर्मके उदयवाले सूद्धम, दूसरा वादर नामकर्मके उदय वाले वादर, यह जो स्थावर अरु त्रस जीव है, सो समुच्चय पर्याप्ति वाले है. इन ठे पर्याप्तिका नाम लिखते हैं. १ आहारपर्याप्ति, २ शरीर पर्याप्ति, ३ इंडियपर्याप्ति, ४ श्वासोत्वासपर्याप्ति, ५ नापापर्याप्ति, ६ मन-पर्याप्ति अथ पर्याप्तिका स्वरूप लिखते है. आहार (नोजन) तिसके ग्रहणके जो शक्ति, तिसका नाम आहारपर्याप्ति कहते है. २ शरीर रचनेकी जो शक्ति, तिसका नाम शरीरपर्याप्ति कहते हैं ३ इंडिय रचनेकी शक्ति, सो इंडिय पर्याप्ति है. असेंही सर्वत्र जान लेना. जिस जीवके पूर्वोक्त ठे शक्ति, अरु शरीर हैं, उसकू अपर्याप्ति कहते है. स्थावर जीवोंमें आदिकी चार पर्याप्ति

है अरु दोइंद्रिय, तीनइंद्रिय, चौरिंद्रिय, इन जीवोंमें एक मन विना  
 पांच पर्याप्ति हैं. पंचेंद्रिय जीवोंमें ठही पर्याप्ति है. १ पृथिवीकाय, २ जल  
 काय, ३ तेजस्काय, ४ वायुकाय, ( पवन ) इन चारोंमें असंख्य जीव है.  
 आकाश वनस्पतिकायमें जो प्रत्येक वनस्पति है, उसमें तो असंख्यजीव है.  
 अरु साधारण वनस्पतिमें अनंत जीव है. इन स्थावर अरु त्रसोंके जग  
 त्तो चौदह जेद है. मध्यम ( ५६३ ) जेद है अरु उत्कृष्ट अनंत जेद है.  
 इनमें मध्यम चौदह जेद नरक वासीयोंके हैं. अडतालीश जेद तिर्यच  
 चित्वालोंके है, औ तीनसो तीन जेद मनुष्यगति वालोंके है ( १९७ )  
 जेद देवगति वालोंके हैं. यह सर्व मध्यम जेद ( ५६३ ) हैं. इनका विचार  
 आरा देखनां होवे, तदा प्रज्ञापन्न सिद्धांत, तथा जीव समाप्त प्रकरणादि  
 शास्त्रोंसँ देख लैनां.

प्रश्न:- हे जैन ! दो इंद्रियादिक जीव तो जीव लक्षण संयुक्त होनेसँ जि  
 न सिद्ध हो जाते है, परंतु पृथिवीआदि पांच स्थावरोमें जीव कैसें हम मा  
 न लेवे ? क्योंकि पृथिवी आदिकोंमें जीवका कोइनी चिन्ह उपलब्ध नहीं  
 होता है.

उत्तर:- यद्यपि पृथिवी आदिकमें प्रगट जीवके होनेका चिन्ह नहीं दीख  
 ता, तोजी अव्यक्तपणमें जीवके चिन्हसँ जीव सिद्ध होते है जैसें धत्तूरेके  
 तथा मदिरापानादिकके नशे करके मूर्च्छित हूये जीवोंके व्यक्तालिगके होने  
 सँजीवपणा है; तैसेंही पृथिवी आदिककोकोजी सजीव माननां चाहिये.

प्रश्न:- मदिरेकी मूर्छामें उच्चासादिकोंके देखनेसँ अव्यक्तमेजी चेतना  
 लिंग है परंतु पृथिवी आदिकोंमें तैसा चेतनताका लिंग कोइनी नहीं. ति  
 नकों कैसें चैतन्य माना जावे ?

उत्तरपद:- जैसें तुमने कहा है, सो जैसें है नहीं. क्योंकि पृथिवीकायमें  
 प्रथम स्व स्व आकारमे रहे हूये लवण, विडुम, पापाणादिकोंकों अर्श मास  
 अंकुरकी तरें समान जातीय अंकुरउत्पत्ति पणा है. वनस्पतिकी तरें चैत  
 न्यपणका चिन्ह है, इस वास्ते अव्यक्त उपयोगादि लक्षणके होनेसे पृथिवी  
 सचेतन है यह सिद्ध हुआ.

प्रश्न:- विडुम पापाणादि पृथिवी कठिन रूप है, तो फेर कठिन रूप हो  
 नेसँ कैसें पृथिवी सचेतन हो सकती है ?

उत्तर:-जैसे शरीरमें अस्थि अर्थात् हाड अनुगत है, सो तोनी सचेतन है, जैसे ही जीवानुगत पृथिवीका शरीरनी सचेतन है, वा पृथिवी, अणु, तेज, वायु, वनस्पति, इनके शरीर जीव सहित है, जेव, उत्क्षेप्य, जोग्य, प्रेय, रसनीय, स्पृश्य, इव्य होनेसे. सास्नाणादि संघातवत् पृथिवी आदिकोंको देखेत्वादि जो देखते हैं, तिनका इनी गोप नहीं सका है. अरु यहनी मत कहनां कि पृथिवी आदि जीव शरीरत्व जो साधनां है, सो अनिष्ट है, क्योंकि सर्व पुत्र हम इव्य शरीर मानते है, अरु जीव सहित तथा जीव रहित जो है सो जैसे है शस्त्र करके अनुपहत जो पृथिवी आदिक हैं सो पगके संघातवत्. संघात न होनेसे कदाचित् सचेतन है, जैसे ही कदा शस्त्रोपहत होनेसे हाथादिकोंकी तरे अचेतननी है, सो अचेतनही है.

प्रश्न:-प्रश्रवणवत् अर्थात् मूत्रकी तरें जीवके लक्षण न होनेसे जीव नहीं है.

उत्तर:-हेतु अस्ति-होणेसे यहनी कहनां ठीक नहीं है तथाहि थीका शरीर कलल अवस्थामे (अधुना उत्पन्न होयेको) इवपणा सचेतन पणा देखते है, जैसे ही जलमेंनी जाननां. तथा अंमेमें रस मी है परंतु अवयव कोइ उत्पन्न हुआ नहीं. औ व्यक्त (हाथ पगादि) नी नहीं. तोनी सचेतन है, इस उपमासे जलनी सचेतन है. यह प्रयोग है. शस्त्र करके अनुपहत हुआ इवरूप होनेसे हस्तिशरीरके पादानूत कजलवत् जल सचेतन है. इस हेतुमे विशेषणके उपादान अर्थात् ग्रहणेसे प्रश्रवण दूधादिकोंमें व्यञ्जित नही. तथा अनुपहत होनेसे अंमेमें रहे कजलवत् सात्मक जल है. तथा हिमादि कित्तीक अवस्थामें अणुकाय होनेसे इतर उदकवत् सचेतन है तथा कित्ती जल नूनि खननेसे स्वानाविक सजव होनेसे मैमकवत् सचेतन जल है. अथवा आकाशमें उत्पन्न हुआ जल वाटलादि विकाशके द्वारा स्वत ही अर्थात् पही उत्पन्न हो करके पडनेमे मत्स्यवत् सचेतन है तथा शीतकाशमें त शीतके पडते दूये नदी आदीकोंमें अल्पके दूयां अल्प अरु बहुत दूयां बहुत. उपमा देखते हैं, सो उपमा मजीव हेतुकही है. अल्पवदुत जित मनुष्योंके शरीरोंसे जैसे अल्प बहुत उपमा होता है. जलमे शीत

सही हैं, जैसे वैशेषिक कहते हैं, तथा शीतकालमें शीतके बहुत पडनेसे शीतकालमें तलावादिकोंके पश्चिम दिशामें खड़े हो कर जब तलावादि देखें, तदा तिस जलसेंती निकलता हुआ वाष्पका समूह दिखता है, सो ही जीवहेतुकही है, तिसका प्रयोग जैसे हैं कि शीतकालमें जो वाष्प है, सो उष्ण स्पर्शवाली वस्तुसें होता है. वाष्प होनेसे शीत कालें शीत जल करके सींचे हुए मनुष्य शरीर वाष्पवत् अरु जो उकुडिका कूड़े कचवरमें तदा धूँआ वाष्प निकलता है, तहांकी हम पृथिवीकायके जीव मानते हैं. इन हेतुओंसें जल सजीव सिद्ध होता है.

प्रश्न.—तेजस्कायमें जीव किस तरें सिद्ध होता है ?

उत्तर.—जैसे रात्रिमें खद्योतका शरीर जीव शक्तिसें बना हुआ, प्रकाश वाला है, जैसे अंगारादिककी प्रकाशमान होनेसें सचेतन है. तथा जैसे कचवरकी उष्मा जीवके प्रयोग विना नहीं होती, जैसेही अग्निमें जो गरमी तीव्रोंके विना नहीं है, क्योंकि मृतकके शरीरमें ज्वर कदापि नहीं होता है. जैसे अन्वय व्यतिरेक करके अग्नि सचित्त जाननी. यहां यह प्रयोग है कि आत्माके संयोगसें प्रगट जया है अंगारादिकोंको प्रकाश परिणाम शरीर स्थ होनेसें खद्योत देह परिणामवत्. तथा आत्मा संयोग पूर्वक शरीर स्थ होनेरो ज्वरोष्णवत् अंगारादिकोंमें उष्णता है जैसें नी मत कहना कि सूर्यके उष्मके साथ अनेकांतिक हेतु है, तो सूर्यादिकोंमें जो उष्मा है, सो ही आत्मसंयोग पूर्वकही हम मानते हैं, तथा अग्नि सचेतन है, क्योंकि प्यायोग्य आहारके करनेसे. वृद्धिआदि विकारके उपलंन होनेसें पुरुषके शरीरवत् इत्यादि लक्षणो करके अग्निं सचेतनता है.

प्रश्न.—वायुकायमें ( पवनमें ) सचेतनताकी सिद्धि कैसें करोगे ?

उत्तर.—जैसे देवताका शरीर शक्तिके प्रजाव करके, अरु मनुष्योंका शरीर अंजनादि विद्यामंत्रके प्रजाव करके अदृश्य हो जानेसें नेत्रोंसें नहीं दिखता, तोनी विद्यमान चेतना वाला है, जैसें सूक्ष्म परिणाम होनेसें परमाणुकी तरें वायुकाय जो नेत्रोंसें नहीं दिखता तोनी विद्यमान चेतना वाला है तथा अग्नि करके दग्ध पापाण खंभगत अग्निवत् प्रयोग यह है कि चेतनावान् वायु है, विना दूसरायोके प्रेरणसे, नियम करके तिर्यग्ग

ति होनेसें, गवाश्वादिचतुर्तिर्यग्गतिके नियम करनेसें, परमाणुके निचार नही. जैसे वायु शस्त्र करके अनुपहत सचेतन है.

५ अरु वनस्पतिमें तो प्रत्यक्ष प्रमाणसें जीव सिद्धही है. इन यहां विस्तारसें नहीं लिखा. आगमनी सर्वज्ञका कथन करा हुआ जल, अग्नि, पवन अरु वनस्पतिमें जीवका होना कहता है. जो कोइ दीडिय, त्रीडिय, चतुरिडिय अरु पंचेडियमें जीव नहीं तो तिन भूडोंके न माननेसें कुठ हानी नही. यह संक्षेपसें जीवोंका प लिखा है जब विस्तारसें देखनां होवे, तब जैनमतके सिद्धांत ने ॥ इति प्रथम जीवतत्त्वं संपूर्ण ॥

अथ दूसरा अजीव तत्त्व लिखते हैं. अजीव उसकों कहते है, कि जीवके लक्षणोंसें विपरीत होवे, जो ज्ञानसें रहित होवे, और जो गंध, अरु स्पर्शवाला होवे, नर अमरादि जवमें न जावे, अरु ज्ञान, दिक् कर्मका कर्त्ता न होवे, अरु तिनोके फलका जोगने वाला न होवे. उस्वरूप होवे, तिसकों अजीव कहते है, सो अजीव इव्य पांच है उसका नाम कहते है, १ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ शास्तिकाय, ४ पुञ्जनास्तिकाय, ५ काल.

१ तिनमें जो धर्मास्तिकाय है, सो लोकव्यापी है, और नित्य है, स्थित है, अरूपी है, अंसख्य प्रदेशी है, जीव अरु पुञ्जकी गतिमें चला नक है, यद्यपि जीव अरु पुञ्ज स्वशक्तिसे चलते है, तोनी चलनेमें धर्मास्तिकाय अपेक्षा कारण है. जैसे मछी जलमें तरती तो अपनी शक्तिसे है, परतु अपेक्षा कारण जल है. जैसेही जीव पुञ्जको गति साहायक धर्मास्तिकाया है जहां लगे यह धर्मास्तिकाया है, तहां लगे लोककी मर्यादा है. जे कर धर्मास्तिकाया न मानीये, तो लोकालोककी मर्यादा न रहेगी. अरु जहां लगे धर्मास्तिकाया है, तहां लगे जीव पुञ्ज गति करते है. इनका पूरा स्वरूप जैनमतके ग्रंथ पढेबिना नहीं जान सका है ॥ इति ॥

२ दूसरा अधर्मास्तिकाय इव्य है. इसका सर्व स्वरूप धर्मास्तिकायकी तो जानना. परतु इतना विशेष है, कि यह इव्य, जीव पुञ्जको स्थिति ताल चक है. जैसे पथिक जन जब चजता चलता थक जाता है, तब किसीव्यादिककी ठायामें बैठता है, सा बैठता तो वो थापही है, परतु आश्रयबिना

हीं बैठ सका है जैसेही जीव पुञ्ज स्थित तो आपही होते है, परंतु  
पेक्षा कारण अधर्मास्तिकाय है ॥ इति अधर्मास्तिकाय ॥

३ तीसरा आकाशास्तिकाय इव्य है, इसका स्वरूपजी धर्मास्तिकायवत्  
नाना, परंतु इतना विशेष है कि यह इव्य लोकालोक सर्वव्यापी है,  
रु अथवाह दान लक्षण है, जीवपुञ्जके रहनेमें अवकाश दाता है,  
ह तीनों इव्य आपसमें मिले दूये हैं. जहां जगि आकाशमें धर्मास्तिका  
, अधर्मास्तिकाय है, तहां जगि लोक है, अरु जहां केवल एकजा आकाशही  
, और कोइ वस्तु नहीं, तिसका नाम अलोक है. इति आकाश इव्यं.  
४ चतुथा पुञ्जास्तिकाय इव्य है, पुञ्ज नाम परमाणुओंकाजी है, अरु  
ो परमाणुओंका घट पटादि कार्य है, उसकोंजी पुञ्जही कहते हैं, ए  
परमाणुमें एक वर्ण है, एक रस है, एक गंध है, दो स्पर्श है, औ का  
ही जिनका लिंग है, वर्णसे वर्णांतर, रससे रसांतर, गंधसे गंधांतर, स्प  
से स्पर्शांतर हो जाते है. यह परमाणु इव्यरूप करके अनादि अनंत  
, पर्यायस्वरूप करके सादि सांत है, इन परमाणुओंका जो कार्य है,  
ो कोइक प्रवाहसे तो अनादि अनंत है, अरु कोइ सादि सांतजी है, जो  
ह जड दीखता है, सो सर्व इन परमाणुओंका कार्य है. सूकी दुइ व  
स्पति सर्व अरु अग्नि आदिक शस्त्रों करके परिणामांतरकों प्राप्त दूये  
धिव्यादिक सर्व पुञ्ज है, समुच्चय पुञ्ज इव्यमें पांच वर्ण, पांच रस, दो  
य, आठ स्पर्श. पांच संस्थान, उसमें काला, नीला, रक्त, पीत, शुक्ल, य  
पांच तो वर्ण है. तीक्ष्ण, कडुआ, कपाय, खाटा, मीठा, यह पांच रस  
सुगंध, दुर्गंध, यह दो प्रकारकी गंध है खरखरा अर्थात् कठोर, सु  
मेल, हलका, जारी, शीत, उष्ण, चीकणा, रूखा, यह आठ स्पर्श है.  
नसे अधिक जो वर्णादि है, सो सर्व इनहीके मिलनेसे हो जाते है. इन  
पुञ्जोमें अनंत शक्तिया अनंत स्वभाव है. १ इव्य, २ क्षेत्र, ३ काल,  
४ नाव, इत्यादि तिस तिस निमित्तोंके मिलनेसे विचित्र परिणाम हो जा  
ते है इति पुञ्जइव्यं ॥ ४ ॥

५ पाचमा कालइव्य है, सो प्रसिद्ध है. यह पांच इव्य अजीव है, सो  
नेमित्त जैन श्वेतांबराचार्य श्रीसिद्धसेनदिवाकरकृत सम्मतितर्क ग्रंथमें  
गच लिखे है. सो कहते हैं, १ काल, २ स्वभाव, ३ नियति, ४ पूर्वकृत

कर्म, ५ पुरुषाकार. इन पांचोंमेंसूं एककों माने, तो वो मिथ्याज्ञान मिथ्यादृष्ट है, अरु इन पांचोंके समवायकों माने, तो सम्यक्ज्ञान सम्यक्दृष्ट है, इन पांच निमित्तोंमेंसूं १ काल, २ स्वभाव, ३ नियति, ४ नों निमित्तोंका स्वरूप क्रियावादीके मतमें लिख आये हैं. अरु ५०० कृत कर्म. उनका स्वरूप आगें कर्मोंके स्वरूपमें लिखेंगे. अरु पाचमा अरु, सो जीवके उद्यमका नाम है. इन पांचो निमित्तोंसैं जगत्की निवृत्ति हो रही है, इन निमित्तोंहीसैं नरकादि गतियोंमें जीव जाते रु सुख दुःखका फल जोगते है, इन निमित्तोंके विना फलका गता रादिक कोइनी नहीं, जे कर कोइ वादी इन पांचो निमित्तोंके सम्य ईश्वर माने, तब तो हमची ईश्वर कर्त्ता मान लेवेंगें, क्योंकि जैनमत स्वगीतामें लिखा है, कि अनादि जो इव्यमें इव्यत्व शक्ति है, ताई दार्थिकों उत्पन्न करती है, औ लयनी करती है, सो जकि चैतन्य ही अनांत स्वभाव वाली है, तिसकों कर्त्ता ईश्वर माननेसैं जैनमतकी दानी नहीं है ॥ इति अजीवतत्त्व संपूर्ण ॥ २ ॥

३ अथ पुण्यतत्त्व लिखते है प्रथम तो पुण्य उपाजन करनेका नय कहत हैं, "उक्तं च स्थानांगसूत्रे ॥ अन्नपुण्ये पाणपुण्ये वडपुण्ये छेणपुण्ये सयणपुण्ये मणपुण्ये वयपुण्ये कायपुण्ये नमोक्कारपुण्ये इति सूत्रं ॥" व्याख्या.— पात्र ताई अन्नका दान करनेसे जो तीर्थकर नामादि पुण्य प्रकृतिका वध हो तिसका नाम अन्न पुण्य है. औसेही २ पीनेकों जल देवे, ३ वस्त्र देवे, ४ नेकों स्थान देवे, ५ सोने बैठनेको आसन देवे, ६ गुण्जिनको देख कर नमें तोष धरे, ७ वचन करके गुण्जिनोंकी प्रशंसा करे, ८ काया कर्म पर्युपासन अर्थात् सेवा करे, ९ गुण्जिनकों नमस्कार करे. यह बात पुण्यकी जो कही, सो कुछ जैनीयोकेहो देनेसे नहीं, किंतु किसी मत वादी कोइ क्यों न हो, कोइनी अनुकंपा करके जिसकों दान देवेगा, या उपाङ्गंगा, परंतु इतना विशेष है, कि पात्रकों जो दान देना है, तो अरु मोक्ष इन दोनोंकाही हेतु है. अरु जो अनुकंपा करके सर्वजनों देवेगा, तो केवल पुण्यही उपाङ्गंगा. जैनमतके किसी शास्त्रमें पुण्य निषेध नहीं. क्योंकि जैनमतके रूपनदेवादि चोवीश तीर्थकर नये हैं. नोंनची बीदा छेनेसे पहिजा एक कांड, आठ लाख, सोनडेवे दिन

एक वर्ष तांडु दीये हैं. इसी कारणसे जैनमतमें प्रथम दानधर्म है. जैनमतके शास्त्रमें औरनी केई तरेंसें पुण्यका उपाङ्कन लिखा है. अथ पुण्यका फल बैतालीस प्रकार करके जोगनेमें आता है, सो बैता देवत प्रकार लिखते हैं. १ जिसके उदयसे जीव शाता जोगता है, सो शातवेदनीय, २ जिसके उदयसे जीव कृत्रियादि उच्च कुजमे उत्पन्न होता है, सो उच्चगोत्र, ३ जिसके उदयसे जीव मनुष्य गतिमें उत्पन्न होता है, सो मनुष्यगति, ४ जिसके उदयसे जीव देवगतिमें उत्पन्न होता है, सो देवगति, ५ जिसके उदयसे जीव अथांतराल गतिमें नियतदेश अनुश्रेणी गमन करता है, अरु नियत मर्यादापूर्वक अंगोका विन्यास, अर्थात् स्थापन करनेवाली नामकर्मकी प्रकृतिकों आनुपूर्वी कहते हैं, उसमे जो मनुष्यगतिमें आने वाली जीवके उदयमें है, सो मनुष्यानुपूर्वी, जैसेही ६ आनुपूर्वी, ७ जिसके उदयसे जीव पंचेन्द्रिय पणा पाता है, सो पंचेन्द्रिय जाति. अथ पांच शरीर कहते है. ८ जिसके उदयसे जीव औदारिक शरीरके पुजुजोंको ग्रहण करके औदारिक शरीरकी रचना करता है, अर्थात् औदारिक शरीर पणो परिणाम करता है, सो औदारिक शरीर नाम कर्मकी प्रकृति है, जैसेही ९ वैक्रियक, १० आहारिक, ११ तैजस, १२ तर्मण, इन पांचो शरीरोंकी प्रकृतियोंका अर्थ कर लेनां. तथा अंगोपांग नाम है, उसमें अंग सो अंगिर प्रमुख, उपांग सो अंगुली प्रमुख है, शेष अंगोपांग है, यथा १ शिर, २ ठाली, ३ पेट, ४ पीठ, ५ दो बाहु, ६ दो सायलां, यह आठ अंग हैं, तथा अंगुल्यादि उपांग है, शेष नान्य आदि अंगोपांग है, जिसके उदयसे जीवको आदिके तीन शरीरोंमें अंगोपांगकी उत्पत्ति होवे, तिसका नाम तिन शरीरके अंगोपांग है सो त्रैविक है, १३ औदारिक अंगोपांग, १४ वैक्रिय अंगोपांग, १५ आहारक अंगोपांग. १६ जिसके उदयसे जीव आदिका संहनन जिसका नाम वज्र रूपननाराच है, तहा वज्र नाम कीलिका है, अरु रूपन नाम परिवेषन पट्ट अर्थात् उपर लपेटनेका हाड, तथा नाराच सो मर्मटबंध इन तीनों रूपों करके जो उपलक्षित है, तिसको वज्ररूपननाराच संहनन कहते है. हाडके संचय सामर्थ्यका नाम संहनन है, यह संहनन औदारिक शरीर वालोमेंही होता है, १७ जिसके उदयसे जी



वकों आदिके समचतुरस्र संस्थानकी प्राप्ति होवे, तहां सम हैं चारों  
 जिसके तुल्य शरीर लक्षण युक्त प्रमाण सहित, जैसे आद्य ...  
 राकार मनोहर होवे, सो समचतुरस्र संस्थान नाम कर्मकी प्राप्ति  
 नी. अब वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, यह चारों कहते हैं. तिनमें जिसके  
 सें १७ वर्ण कृष्णादिक, १८ रस तिक्तादिक, १९ गंध सुरन्यादिक,  
 स्पर्श मृदुआदिक, यह चारों शुभ होवे, सो वर्णादि चार प्रकृति  
 २२ जिस कर्मप्रकृतिके उदयसे जीवका शरीर न तो जारी होवे,  
 जीव उठा न सके, अरु नतो हलका होवे, जो पवन करके  
 जावे, तिसका नाम अशुरु लघु है, तिसकी प्राप्ति होवे, सो अशुरु  
 नामकर्म, २३ जिसके उदयसे प्राणी परकों हणे, अरु शरीरकी  
 ऐसी होवे जिसके देखनेसे दूसरोंको अजिनव होवे, सो शयात  
 कर्म, २४ जिसके उदयसे उन्नासन लब्धि अर्थात् उन्नास लेनेकी  
 आत्माको होती है, सो उन्नास नामकर्म, २५ जिसके उदयसे जीव  
 श अरु आतप शरीर पावे है, तिसका नाम आतप नामकर्म,  
 जिसके उदयसे जीव, उष्ण प्रकाशरूप उद्योत वाला शरीर पाता है,  
 उद्योत नामकर्म, २७ जिस कर्मके उदयसे जीव विहायनाम आकाश  
 है, तिसमें जो गति सो विहायोगति, सो राजहंस सरखी गति होवे,  
 सुविहायोगति नामकर्म, २८ जिसके उदयसे जीवके शरीरके अंगोप  
 दिकोंको नियतस्थानमें स्थापने वाला सूत्रधार ( कारीगर ) समान अ  
 त नसा. जाल, माथेकी खोपडीके हाम, आंख, कानके पट्टे, केश, ना  
 डि सर्व शरीरके अवयवोंको रचनेवाला निर्माण नामकर्मकी प्राप्ति  
 वे, सो निर्माण नामकर्म, २९ जिसके उदयसे जीवको त्रस पणेकी प्रा  
 प्ति होवे, उष्णादि करके तप्त हूआ विवक्षित स्थानसे तयादिकर्म  
 नां, औ दो इंद्रियादिक पर्यायका जो फल जोगनां पावे, सो त्रस  
 मकर्म, ३० जिसके उदयसे जीव वादर अर्थात् स्थूल शरीर वाजा, हा  
 है, सो वादर नामकर्म. ३१ जिस कर्मके उदयसे जीव त पर्याप्ति पीठे  
 है जो पूर्ण करता है, सो पर्यामिनामकर्म, ३२ जिसके उदयसे प्रत्ये  
 एक एक जीवके एक एक शरीर होता है. सो प्रत्येक नामकर्म,  
 जिसके उदयसे जीवको हाडादि अवयव स्थिर निश्चल होते हैं, सो

नामकर्म, ३४ जिसके उदयसें जीवके शिर प्रमुख अवयव शुन होते  
 सो शुननामकर्म, ३५ जिसके उदयसें जीव सौजाग्यवान् होता है,  
 सुनगनामकर्म, ३६ जिसके उदयसें जीवका स्वर कोकिलावत् रम  
 क होवे, सो सुस्वर नामकर्म, ३७ जिसके उदयसें जीवका उपादेय  
 वन होवे, जो कुञ्ज कहे, सो हो जावे, सो आदेय नामकर्म, ३८ जिस  
 उदयसें जीवकी विशिष्ट कीर्ति ( यश ) जगत्में विस्तरे, सो यशोनाम  
 र्म, ३९ जिसके उदयसें जीवकों चोशठ इंद्र पूजा करते हैं, अरु उपदे  
 धारा धर्म तीर्थका कर्ता होवे, सो तीर्थकर नामकर्म, ४० तिर्यचोंका  
 आयु, ४१ मनुष्यायु, ४२ देवायु. आयु उसकों कहते है कि जिसके उद  
 सें तिर्यचादि जन्ममें जीव जाता है, जिस्सें यह पूर्वोक्त तीन आयुकी जीव  
 १ प्राप्ति होती है, सो तीन आयुकी प्रकृति जाननी. यह बैतालीस प्रका  
 करकें पुण्य फल जोगनेमें आता है ॥ इति पुण्यतत्त्वं संपूर्ण ॥ ३ ॥

४ अथ चौथा पापतत्त्व लिखते है. पाप उसकों कहते है, कि जो  
 आत्माका आनन्द रस पीवे, यह पाप जो है, सो पुण्यसें विपरीत नरका  
 फलका प्रवर्तक होनेसें अशुन है, आत्माके साथ संबन्ध है, कर्मपुञ्ज  
 रूप है, यद्यपि बन्धतत्त्वके अंतर्गतही पुण्य पाप है, तोनी न्यारे जो  
 हे है, सो पुण्य पाप विषे नानाविध परमतत्त्वेद निरासार्थ है, सो परम  
 यह है, सो कहते है. कोइक मत वालोंका यह कहनां है, कि एक पु  
 षही है, परंतु पाप नहीं. तथा कोइक मतवाले कहते हैं, कि एक पाप  
 ही है, परंतु पुण्य नहीं. तथा कोइक कहते है कि पापपुण्य दोनों आपस  
 अनुविद् स्वरूप है, मेचक मणि सरीखे, सो मिश्र सुख दुःख फलके  
 तु है, इस वास्ते साधारण पुण्य पाप एक वस्तु है. कोइक अैसें कहते हैं  
 क मूलसेती कर्मही नहीं है, सर्व जगत्में स्वभावसेंही विचित्रता सिद्द है.  
 यह सर्व पूर्वोक्त मत मिथ्या है, क्योंकि सुख दुःख दोनों न्यारे न्यारे अ  
 जन्ममें आते है, तिस वास्ते तिनके कारणजूनत पुण्य पापनी स्वतंत्रही  
 रंगीकार करणे योग्य हैं, परंतु एकिला पाप वा एकिला पुण्य वा मिश्रित  
 मानने ठीक नहीं.

अथ कर्मानाववादी नास्तिक अरु वैदातिक कहते हे. कि पुण्य पाप जो

हैं. सो आकाशके फूल सदृश अरात् जानने; परंतु सत् नहीं, तो फल पापके फल जोगनेके स्थान, नरक स्वर्ग क्यों कर माने जावे?

उत्तर:-पुण्य पापके अभावसें सुख दुःख निर्देतुक होनेसे उत्पन्न चाहियें, सो प्रत्यक्ष विरोध है, सोइ दिखाते हैं, मनुष्यपणा सदृश नी कोइ स्वामी है, कोइ दास है, कोइ अपणाही उदर जर सके हैं, अपणाची उदर नहीं जर सके है, कोइ देवताकी तरें निरंतर सुख विलास करते हैं, कितनेक नारकीकी तरें दुःख जोग रहे हैं, इस वत्तु नुचूयमान सुख दुःखांके निबंधनजून पुण्य पाप जरूर मानने चाहियें व पुण्य पाप माने, तव तिनोंके उत्कृष्ट फल जोगनेके स्थान जो नरक है, सोची माने गये, जे कर न मानोगे, तव अर्थ जरतीय व्यापक संग होवेगा, आधा शरीर बूढा, आधा जुवान. इसमें वह प्रयोग नुमाननी है, सुख दुःख कारण पूर्वक हैं, अंकुरवत् कार्य होनेमें जे सुख दुःखके कारण हैं, सो मानने चाहिये. जैसे अंकुरका बीज.

पूर्वपक्ष:-नीलादिक जे मूर्त्त पदार्थ हैं, जैसे वे नीलादिक रसनीत अमूर्त्त ज्ञानके कारण हैं, ऐसेही अन्न, फूल माला, चदन, आदि मूर्त्त दृश्यमानही सुख अमूर्त्तोंके कारण होवेगे. सर्प विष, कंकण सुखोंके कारण है, तो फेर काहेकों अदृष्ट पुण्य पापोंकी कल्पना करते.

उत्तरपक्ष:-यह तुमारा कहनां अशुक्त है, क्योंकि इस कहनेमें अर्थ है, तथाहि ॥ दो पुरुषोंके पास तुल्य साधनची है, तोनी फलमें भेद दिखता है, तुल्य अन्नादिके जोगनेमेनी किसीकों आइदादि हर्ष दिखता है अरु दूसरेकों रोगोत्पत्ति देखते है, यह फलभेद अशुक्त कारण है, नहीं तो नित्य सत् नित्य असत् होना चाहियें, क्योंकि जो स्तु कार्य कठे होवे, कठे न होवे, सो कारणके बिना नहीं होता है. अथवा कारणानुमानसे कार्य पुण्य पाप जाने जाते है, तदा कारणानुमान है, कि दानादि अन्नक्रियाका अरु हिसादि अशुक्तक्रियाका कार्य कारण होनेसे है. रूपादि क्रियावत् जो इन क्रियायोंका फल है, सो पुण्य पाप जानने. जैसे खेती करनेवालेकी क्रियाका फल. गेहु, आदिक है.

पूर्वपक्ष-जैसे रूपादि क्रियाका दृष्ट फल, अशुक्त.

क पशु हिंसादिक क्रियाकाजी श्लाघा मांसनही निर्दय आदि दृष्ट फलही है, तो फेर काहेकों अदृष्ट धर्माधर्मका फल कल्पना करना? क्योंकि जोक जो है सो बाहुल्यता करके दृष्ट फलमेंही प्रवृत्त होने हैं, खेती व शिजादि हिंसादिक क्रियामें बहुत लोक प्रवृत्त होते हैं, अरु अदृष्ट दान श्लाघादि क्रियामें थोड़े लोक प्रवृत्त होते हैं इस वास्ते रुपि हिंसादि अशुच क्रियायोंका अदृष्टफल पापरूप हम नहीं मानते.

उत्तरपक्षः—जे कर तुमारा कहनां ठीक होवे, तब तो परजवमें फलके ज्ञानावसें मरणके अनंतरही सर्व जीव विना यत्नके मोक्ष हो जावेंगे, तब तो प्राय. संसार, शून्य हो जावेगा, तब संसारमें दुःखी कोइनी न होवेगा, दानादि शुचक्रियाके करने वाले तथा तिसका शुच फल नोगने वाले भी रहने चाहियें, परंतु संसारमें दुःखी बहुत देखते हैं, अरु सुखी थोड़े देखते है, तिस करके जाना जाता है कि जे कृपी, वाणिज्य, हिंसादिक्रिया निवधन अदृष्टपाप रूप फल, यह दुःखित जीवोंको है, अरु सुखी जीवोंको दानादि अदृष्ट धर्मका फल है.

वादी कहता है कि जो सुखी है, वो हिंसादि क्रियासें है, अरु जो दुःखी है, वो धर्म दानादिकके फलसें है. ऐसे क्यों न हो जावे?

उत्तरः—ऐसें नहीं होता है, क्योंकि अशुचक्रिया हिंसादिकके करने वालेही बहुत हैं, अरु शुचक्रिया दानादिकके करने वाले थोड़े है, यह कारणानुमान है. अथ कार्यानुमान कहते है कि जीवोंको आत्मत्वके अविशेषनी हूआ नर पश्वादिकोंकी देहोंमे कार्य होनेसें विचित्रताका कारण है, जैसे घटका दंभ, चक्र, चीवरादि सामग्री संयुक्त कुंजकार. तथा ऐसे नी मत कहनां कि देखते जो है माता, पिता, सोऽ इस देहके कारण है. परंतु पुण्य पाप, ऐसें नी मत कहनां क्योंकि माता, पिता, एक तरीखेची है, तोनी पुत्रोंके देहमे विचित्रता देखते है, सो विचित्रता अदृष्ट ( शुच शुच कर्मके ) विना नहीं हो सकती है, इस वास्ते जो शुच देह है, सो पुण्यका कार्य है, अरु जो अशुच देह है, सो पापका कार्य है, यह कार्यानुमान है. सर्वज्ञके वचन प्रमाणसें पुण्य पापकी सत्ता सिद्धही है, विशेषार्थ पुरुषने विशेषावश्यककी टीका देख लेनी.

पाप अठारह प्रकारसे बंधाता है, सो व्यासी प्रकारसें नोगनेमें आता

है, सो जेद यह है, कि पांच ज्ञानावरण, पांच अंतराय, नव मोहनीकी उबीश प्रकृति, नामकर्मकी चउत्तीस प्रकृति, एक दनी, एक नरकायु, एक नीचगोत्र, यह सब मिल कर व्याप्ती जेद नका विवरा लिखते हैं.

अथ ज्ञानावरण कर्मकी पांच प्रकृति. प्रथम ज्ञान पांच प्रकारका है समें मतिज्ञान, औ श्रुतज्ञान, ए दो अजिजाप झावितार्थ ग्रहणरूप ज्ञान तथा तीसरा इंद्रियोंकी अपेक्षा बिना आत्माको साक्षात् अर्थके ग्रहण ज्ञान, सो अवधिज्ञान, चउथा मनमें चिंतित अर्थका साक्षात् ज्ञान, सो मनःपर्यवज्ञान, पांचमा केवल संपूर्ण निःकजंक जो सो केवल ज्ञान. इन पांचों ज्ञानोंका जो आवरण सो ज्ञानावरण मतिज्ञानावरण, १ श्रुतज्ञानावरण, २ अवधिज्ञानावरण, ३ ज्ञानावरण, ४ केवलज्ञानावरण. उसमें १ जिसके उदयसें जीव निःप्रतिजा होता है, सो मतिज्ञानावरण, २ जिसके उदयसें पवन जीवकों कुठनी न आवे, सो श्रुतज्ञानावरण, ३ जिसके उदयसें अवधि ज्ञान न होवे, सो अवधिज्ञानावरण, ४ जिसके उदयसें मनःपर्यवज्ञान न होवे, सो मनःपर्यवज्ञानावरण, ५ जिसके उदयसें केवलज्ञान न होवे, सो केवल ज्ञानावरण यह पांच प्रकृति पापरूप है.

अथ अंतराय कर्मकी पांच प्रकृति कहते हैं. १ जिसके उदयसें देनेकी वस्तुनी है, गुणवान पात्रनी है, दानका फलनी जाना है, परतु दान नहीं दे सका है, सो दानांतराय, २ जिसके उदयसें देने योग्य वस्तुनी है, अरु दातानी बहुत प्रसिद्ध है, तथा मागने वालानी मांगनेमें बड़ा कुशल है, तोनी मांगने वालेको कुठनी न मिले, सो लाजांतराय, ३ जिसके उदयसें एक वार नोगने योग्य वस्तु जो आहारादिक, सो विद्यमाननी है, तोनी नोग नहीं सका, सो नोगांतराय, ४ जिसके उदयसें वारवार नोगने योग्य वस्तु जो शयन अंगनादि, सो विद्यमाननी है, तोनी नोग नहीं सका, सो उपनोगांतराय, ५ जिसके उदयसें अनुपहत पुष्टागवालानी शक्ति विकल हो जाता है, सो वीर्यांतराय यह पांच प्रकृति पापरूप है.

अथ दर्शनावरण कर्मकी नव प्रकृति लिखते हैं इहां जो सामान्य बोध है, तिसका नाम दर्शन है, अरु जो विशेष बोध है, सो ज्ञान है. तहां ज्ञानका

जो आवरण, सो ज्ञानावरण, सो तो पूर्वे लिख आये हैं. अरु जो दर्शन  
 का आवरण है, सो दर्शनावरण इनके नव जेद है, तिनमें जो आदिके  
 चार जेद है, सो मूलसँही दर्शन लब्धियोंके आवरण होनेसँ आवरण शब्द  
 करके कहे जाते हैं. जैसे १ चक्षुदर्शनावरण, २ अचक्षुदर्शनावरण, ३  
 अविधिदर्शनावरण, ४ केवलदर्शनावरण. अरु निडादि जे पांच है, सो द  
 र्शनावरण कृपोपशम करके लब्ध आत्मज्ञानका दर्शन लब्धियोंका आ  
 वरण है, इसका ज्ञावाच्य यह है कि चक्षु करके सामान्यग्राही जो बोध, सो  
 चक्षुदर्शन, सो जिसके उदय करके तिसकी लब्धिका विधात करे, सो  
 चक्षुदर्शनावरण. जैसेही अचक्षु करके चक्षु वर्जके शेष चार इंद्रिय तथा  
 पांचमा मन, इन करके जो दर्शन, सो अचक्षुदर्शन, तिसका जो आवर  
 ण, सो अचक्षुदर्शनावरण, तथा रूपी पदार्थका जो मर्यादापूर्वक देख  
 ना, सामान्यार्थका ग्रहण करना. सो अवधिदर्शन, तिसका जो आव  
 ण, सो अवधिदर्शनावरण. तथा वर, प्रधान, क्लायक होनेसँ केवल अ  
 नंत ज्ञेयके होनेसे जो अनंत दर्शन, सो केवलदर्शन, तिनका जो आवर  
 ण, सो केवलदर्शनावरण. अरु जो चैतन्यकों सर्व उरसँ अतिकुत्सित पणा  
 करे, सो निडा. दर्शन उपयोग सामान्य ग्रहण रूप, तिसका विघ्न कर  
 ने वाली, सो निडा जाननी. तिस निडाके पांच जेद हैं. १ निडा, २ निडा  
 प्रचला, ३ प्रचला, ४ प्रचलाप्रचला, ५ स्त्यानादि. तहां १ निडा उसकों  
 कहते हैं, कि जो चपटी बजानेसँ जाग उठे, सो सुखप्रतिबोधनिडा, जिसके  
 उदयसे ऐसी निडा आवे तिसका नाम निडा है. तथा २ अतिशय करके  
 सो निडा होवे, उसका नाम निडानिडा है, जैसेकि बहुत हलानेसँ डुःख  
 जागे, कपडे खैचनेसे जागे, जिसके उदयसे ऐसी निडा आवे, तिस कर्मप्र  
 क्रतिका नाम निडानिडा है. तथा ३ जो वैठेकों खडेकों जो निडा आवे, तिस  
 का नाम प्रचला है, जिस कर्मके उदयसँ ऐसी निडा आवे, तिस कर्मका  
 नाम प्रचला है, तथा ४ जो चलतेकों निडा आवे, तिसका नाम प्र  
 चलाप्रचला है, जिस कर्मके उदयसँ ऐसी निडा आवे, तिस क  
 र्मकी प्रकृतिका नामनी प्रचलाप्रचला है, तथा ५ स्त्याना नाम है पिं  
 पीनूतका सो पिंनूत है रुद्रि आत्माकी शक्ति जिस निडामे सो स्त्या  
 नादि, तिस निदमें वासुदेवके बलसे आधा बल होता है, जिस कर्म

कें उदयसें ऐसी निंद आवे, तिसका नाम सत्यानर्दिकर्म है, इसमें कितनेक कार्यकी कर लेता है, परंतु उसको कुठ खबर नहीं रहती है।

अथ मोहकर्मकी प्रकृति लिखतेहैं. मोहे तत्त्वार्थ श्रद्धानको रे, सो मोहनीय है. उसमें १ मिथ्यात्वही जो मोह, सो मिथ्यात्व नीय कहियें, मोह कर्मकी उत्तरप्रकृति मिथ्यात्व है, यद्यपि यह १ १ अजिग्रहिक, २ अजनिग्रहिक, ३ सांशयिक, ४ अजिनिवेशिक, नानोगादि अनेक प्रकारसें है, तोनी यथावस्थित वस्तुतत्त्वके अ सर्वज्ञेदोंका एकही मिथ्यात्वरूप गिना जाता है. यह प्रथम यह कर्मकी प्रकृति है, अरु सोजा जेद, कपाय मोहनीयके हे क्योंकि क्रोधादिकनी तत्त्वश्रद्धानसें प्रष्ट कर देते है, सो सोजा जेद जैसे है, नंतानुबंधी क्रोध, २ अनंतानुबंधी मान, ३ अनंतानुबंधी माया, ४ तानुबंधी लोच. जैसेही अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोच, सेही प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोच. जैसेही संज्वलन, क्रोध, माया, लोच. यह सर्व सोलह जेद कपायमोहनीयके हैं.

जे क्रोधादिक अनंत ससारके मूल कारण है, अरु नंतगवा जिनका शील है, उसमें जिसका स्वभाव ऐसा है, कि जैसी रेखा, जिसके साथ क्लेश हो जावे, फेर जहा लागि जीवे, तहां लागि न गडे, सो अनंतानु बंधि क्रोध है, तथा मान, पथरके स्थन सरिखा वापि नमे नही, तथा माया, बासकी जड समान, कदापि सरल न तथा लोच, कमीके रग समान, कदापि दूर न होवे, जैसे क्रोध, मान, या, अरु लोच करके संयुक्त जो परिणाम है. तिसका नाम अनंतानु बंधि क्रोधादिक कर्म प्रकृति है. तथा अप्रत्याख्यान यहा नञ् अत्पार्थ वास है, सो थोडानी प्रत्याख्यान जिसके उदय होनेसें नही होता है, उसको अप्रत्याख्यान कहते है. इसका स्वरूप कहते हैं क्रोध, पृथिवीकी रेखा समान, मान, हाडके स्थन समान, माया, मेपके सींग समान, लोच, कर्मके दाग समान, एक वर्ष तांइ रहता है. तथा जिसके उदयसें सर्व विरतिपणा जीवको न आवे, सो प्रत्याख्यानवरण कपाय है उसमें क्रोध, रेणुकी रेखा समान, मान, काष्ठके स्थन समान, माया, गौके मूतने समान, लोच, खजनके रग समान. चार मास जिसकी रहनेकी स्थिति है. त

संज्वलनका चार कपाय कहते है, क्रोध, पाणीकी लकीर समान, मा  
तिनिश्लताका स्थंन समान, माया, बांसकी ठिल्लक समान, लोच, हरि  
के रंग समान, यह चारों एक पद्मकी स्थिति वाले है, यह सोला कपा  
का स्वरूप लिखा अथ नवनो कपाय कहते है.

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, नय,  
श्रुप्ता. यह नव नोकपाय मोहनीयकी प्रकृति है. नोशब्द सहकारी अर्थ  
है. कपायोंके सहचारि जो होवे, उनकों नोकपाय कहते है. अब इन न  
प्रकृतिका स्वरूप लिखते हैं. १ जिसके उदयसें स्त्री, पुरुषकी अजिला  
करती है, जैसें पित्तके उदयसें मीठी वस्तुकी अजिलापा होती है, फुंफ  
अग्नि समान स्त्रीवेदक उदय है, जैसें फुंफक अग्नि फोलनेसें वृद्धिमा  
होती है, जैसेंही स्त्रीके स्तन कद्दाविके स्पर्शनेसें स्त्रीवेदका प्रवल उ  
य होता है, तथा जिसके उदयसें पुरुष, स्त्रीकी अजिलापा करता है,  
तो पुरुषवेद जाननां. जैसें कफके उदयसें खाटी वस्तुकी अजिलापा होती  
है, यह पुरुषवेदका विकार ऐसा है कि जैसी तृणकी अग्नि क्योंकि  
तृणकी अग्नि एक वारही प्रज्वलित होती है, अरु तत्काल शांतनी  
जाती है, जैसें पुरुषवेदकी एक वारही तत्काल उदय हो जाता  
है, फेर शांतनी तत्काल हो जाता है. तथा जिसके उदयसें स्त्री, अरु पु  
अप इनदोनोकी अजिलापा उत्पन्न होवे, सो नपुंसक वेद है, जैसें पित्त  
अरु कफके उदयसें खट मीठी वस्तुकी अजिलापा होती है. यह नपुंसक  
वेदका उदय ऐसा है कि जैसा मोटे नगरके दाहकी अग्नि, यह तीन वेद  
है. तथा जिसके उदयसें सनिमित्त निर्निमित्त हसनां आवे. सो हास्यनामा  
मोहकर्मकी प्रकृति है, तथा जिसके उदयसे रमणिक वस्तुओमें रमे, खुशी  
माने, सो रतिनामा मोहकर्मकी प्रकृति है. तथा इस्सें जो विपरीत होवे,  
तो अरतिनामा मोहकर्मकी प्रकृति है तथा जिसके उदय करके प्रियवि  
शयोगादिमे विकल मन, शोचन, कंठन, परिदेवनादि करता है, सो शोकना  
मा मोहकर्मकी प्रकृति है, तथा जिसके उदयसें सनिमित्त अथवा विना  
निमित्तके जयनीत होवे, सो जयनामा मोहकर्मकी प्रकृति है, तथा गं  
शादि मलिन वस्तुके देखनेसें जो नाक चढानां है, तिसका जो हेतु है,



सो जुगुप्सानामा मोहकर्मकी प्रकृति है. यह नव नोऋपाय मोह प्रकृति हैं, यह सर्व पैतालीस जेठ हुये.

अथ नामकर्मकी चउत्तिस प्रकृति पापरूप हैं, उसका नाम १ नरक गति, २ तिर्यंचगति, ३ नरकानुपूर्वी, ४ तिर्यंचानुपूर्वी, ५ एकेंद्रि जाति, ६ दीर्घियजाति, ७ त्रींघ्रियजाति, ८ चतुरिंघ्रियजाति, ११ हनन, १८ पांच संस्थान, १९ अग्रशस्त वर्ण, २० अग्रशस्तगंध, २१ अग्रशस्त रस, २२ अग्रशस्त स्पर्श, २३ उपघात, २४ कुविहायोगति. स्थावर, २६ सूक्ष्म, २७ अपर्याप्त, २८ साधारण, २९ अधिर, ३० ३१ असुजग, ३२ दुःस्वर, ३३ अनादेय, ३४ अयशःकीर्ति.

इनका स्वरूप ऐसे हैं. १ नरकगति उसको कहते हैं कि जिसके सें नारकी नाम पडे, अरु नरकगतिमें ले जावे, २ ऐसेही जान लेनी, तथा ३ जिसके उदयसें नरकगतिमें जाते दूये जीवको दो मयादि विग्रहगति करके अनुश्रेणीमें नियत गमन परिणति होवे, सो नरकगतिके सहचारी होनेसें नरकानुपूर्वी कहियें. ४ ऐसेही जान लेनी. तथा ५ जिसके उदयसें एकेंद्रिय जो पृथिवी, जल, पवन, वनस्पति इनमें जीव उत्पन्न होता है, सो एकेंद्रिय जाति. ६ दीर्घिय जाति, ७ त्रींघ्रियजाति, ८ चतुरिंघ्रिय जाति.

तथा आद्य संहनन वर्जके शेष रूपन नाराच, नाराच, अर्धनाराच, सेवार्च, यह पांचो, संहननोंके नाम है. इनका स्वरूप ऐसा है कि परिवेष्टनपट्टः नाराच उचयतो मर्कटबंध." दोनो हाडोंको दोनों पासें धन बांधके पट्टेकी आकृति समान हाडकी पट्टी उपर वेष्टन सो दूसरा रूपन नाराच संहनन है. तथा वज्र रूपन करके हीन दोनों सें मर्कटबंध युक्त, तीसरा नाराच नामक संहनन है, तथा एक पासें मर्कटबंध अरु दूसरे पासें कीलि करके वीध्या दूध्या हाड, यह चउथा अर्धनाराचनामा संहनन है, तथा रूपन अरु नाराच, इन करके वर्जित मात्र कीलि करके वीधे दूये दोनों हाड, ऐसा जो हाडका संचय, सो पाचमा किञ्चि नामा संहनन है, तथा दोनो हाडका स्पर्श पर्यंत लक्षण है जिसमें, अरु मूवी चांपी करानेमें आर्च (पीडित) सो सेवार्च नामा संहनन है.

तथा १८ आद्य संस्थान वर्जके १ न्यग्रोध परिमंजल, २ सादि, ३ वासन,

कुब्ज, ५ कुम्भक, यह पांच संस्थान इनका स्वरूप लिखते हैं. तहां १  
 प्रोथवत् बडवृद्धकी तरें परिमंजल, न्यग्रोधपरिमंजल. जैसे बडवृद्ध उप  
 संपूर्ण अवयववाला होता है, अरु हेतु तैसैं नही होता है, तैसैंही  
 संस्थान नाजिके उपरि तो विस्तार बाहुल्य संपूर्ण लक्षणवाला है,  
 नाजिके हेतु संपूर्ण लक्षण नही, सो न्यग्रोधपरिमंजल संस्थान दूस्त  
 है. २ तथा सादि आदि इहा उंचपणा नाजिसैं हेतुला देहका विभाग,  
 लक्षणों करके पूर्ण, अरु नाजिसैं उपरि लक्षण विसंवादी होवे, तिसका  
 नाम सादिसंस्थानहे तथा ३ हाथ, पग, शिर, ग्रीवा, यथोक्त लक्षणादि शु  
 अरु शेष उदरादिरूप कोष्ठ शरीरमध्य, लक्षणादि रहित, सो वामननामा  
 संस्थान है ४ तथा उर उदरादि, लक्षण युक्त होवे, अरु हाथ पगादि लक्ष  
 रहित होवे, सोकुब्जसंस्थान हैं, ५ तथा जिसके शरीरका एक अवय  
 नी सुंदर न होवे, सो कुम्भसंस्थान जान लेनां यहपांचसंस्थान.

२१ जिसके उदयसैं वर्णादि चार अप्रशस्त होवे, सो कहते हैं. कि जो  
 प्रति वीनत्स दर्शन, कृष्णादि वर्ण वाला प्राणी होता है, सो अप्रशस्त  
 वर्णनाम. सो वर्ण, कृष्णादि जेदों करके पांच प्रकारका है, तिनों करके  
 जो जीव युक्त होवे, सो अप्रशस्त वर्णनाम. जैसेही जिसके उदयसे कुपि  
 मृतमूशकादिवत् दुर्गंधता प्राणियोंके शरीरमें होवे, सो अप्रशस्तगंधनाम.  
 तथा जिसके उदयसैं प्राणियोंकी देहमें रसनेंद्रियकों दु.खदायी स्वभाववाला  
 मोडीतोरीकी तरें तिक्त कडुवादि ऐसा असार रस होवे, सो अप्रशस्तरस  
 नाम. तथा जिसके वशसे स्पर्शेंद्रियकों उपतापका हेतु ऐसा कर्कशादि स्पर्  
 विशेष, जीवोंके देहमें होवे, सो अप्रशस्तस्पर्शनाम यहवर्णादिचार.

२२ तथा जिसके उदयसैं अपणेही शरीरके अवयवो करके प्रतिजिह्वा,  
 जल, वृद्ध, जंवरु, चोर दांतादिक शरीरके अंदर वर्द्धमान हो करके शरीर  
 हीको पीडा देते हैं, तिसका नाम उपघातनाम. तथा २३ जिसके उदय  
 म जीवोंको खर उंटादिककी तरें चलनां, अप्रशस्त होवे, सो कुविहायोगति  
 नाम तथा २४ जिसके उदयसे पृथिवी आदिक एकेंद्रिय स्थावरकायमें  
 प्राणी उत्पन्न होता है, अरु स्थावरनामसैं कहे जाते है, सो स्थावरनाम.  
 २५ जिसके प्रभावसैं लोकव्यापि सूक्ष्म, पृथिवी आदि जीवोंमें जीव उ  
 त्पन्न होता है, सो सूक्ष्मनाम. २६ जिसके उदयसे आहार पर्याप्ति आ

दिक पूर्वोक्त पर्याप्ति पूरी न होवे, सो अपर्याप्तनाम. १७ जिसके यसें अनंत जीवोंका साधारण एक शरीर होवे, सो साधारण नाम जिसके उदयसें जिह्वादि अवयव, शरीरमें अस्थिर होवे, सो अस्थिर नाम. ३० जिसके उदयसें नानिके हेतले अवयव अशुचन होवे, सो अशुचन नाम. क्योंकि किसीकों हाथ लग जावे, तो रोष नहीं करता, जगनेसें क्रोध करता है, इस वास्ते अशुचननाम है. ३१ जिसके जीवकों जो जो देखे, तिस तिसकों वो जीव अतिष्ठ जगे, उद्वेगकारी वे, सो अशुचननाम ३२ जिसके उदयसें कठोर, निन्न, हीन, दीन, वाला जीव होवे, सो दुःस्वरनाम. ३३ जिसके उदयसें चाही युक्ति बोले, तोनी तिसका कहनां कोइ न माने, सो अनादेय नाम. ३४ के उदयसें जीव. ज्ञान विज्ञान दानादिक गुण युक्तनी है, तोनी उसकी यश (कीर्ति) नहीं होती बलके उलटी निदा जगत्में है, सो अयशःकीर्तिनाम ॥ इति नामकर्मकी चउत्तीस पापप्रकृति

जिसके उदयसें जात्यादि करके विकल जीव होता है, सो नीच जाननां. नीचगोत्र उसकों कहते है, कि जो अधम कैवर्त्त, चांदाजादि लं गूयते संशब्द्यतेऽनेन हीनोयमजातिरित्यादि शब्दैरिति गोत्रं कुत्र मिति विशेषणाऽन्यथानुपपत्त्या नीचैर्गोत्रमित्यर्थ. ”

प्रश्न— यह जो तुम नीच गोत्रके उदयसें नीच कुल कहते हो, कि के साथ खान, पान, नहीं करते हो, तिनोंकी वृत मानते हो, निंदा जुगुप्साजी करते हो, यह तुमारी बड़ी अज्ञानता है, क्योंकि त्व धर्म करके सर्व सरीखे है, एक सरीखे हाथ पगादि अवयव है, फेर एककों उच मानना, तथा एककों नीच मानना, यह केवल ब्राह्मण और जैनीयोंने बुरी रसम, नारतवर्षमें जारी कर रखी है, इस बातमें क्या सुक्तिका अंग है? क्योंकि नारत वर्षियोंकों वर्जके और सर्व वीप वीपांतमें तथा नारतवर्षमेंनी सर्व विलायतादिकमे कोइनी उच नीच नहीं गिनते हैं, सर्व निवाले प्यालेमें एक है, यह नि केवल तुमारी मूढता अर्थात् अंध रंपरा है, वास्तवमें उंच नीच कोइनी नहीं.

उत्तर— यह तुमारा कहना बहुत वे समझा है, क्योंकि तुम हमारे कहेका अनिप्राय नहीं जानते, हमारा अनिप्राय तो यह है, कि जो

तुममें होता है, सो निमित्तके बिना नहीं होता है, यह जो निम्न, को धांगड, धाणक, गधीले, चमाल, थोरी, वाधरी, सांसी, कंजर प्रमुख अथवा जातिके लोक है, सो जंगजोंमें गामोंके बाहिर रहते हैं, अनेक प्रकारके क्लेश सहते हैं, काले, दुर्गंधवाले, रूपमें बुरे शरीर पाते हैं, सुंदर स्त्रियों नहीं मिलता है, यह सब इनके निमित्त है ? अथवा निमित्त नहीं ? जे कहोगेकि बिनाही निमित्तके होते हैं, तब तो तुम नास्तिक मती हो, अथवा नारिकमतीका खंनन हम पूर्व जिन आये है, जे कर कहोगेकि सनि निमित्तक है तब तो ऐसे असन्य जातिके कुलमें उत्पन्न होनेका कारणनी जरूर चाहिये जिसके उदयसे ऐसे कुलमें उत्पन्न होता है, तिसकाही नाम नीचगोत्र है, इस नीचगोत्रके प्रभावसे औरनी बहुत पाप प्रकृतियों का उदय है, जिस्से वे डुखादि क्लेश पाते हैं. बुद्धिहीन, जालमस्वभाव, ईर्ष्या, कुत्सित आहार, पशुओंकी तरें जंगजोंमें वास, धर्मकर्मसे पराधीन, सत्संग रहित, गम्यागम्यके विवेक रहित, नह्याजह्य पेयापेया अचार शून्य, इन सबका मुख्य कारण नीचगोत्र है, जैसेही धनवान् और निर्धन ए दोनों एक सरीखे सर्वथा नहीं हो सके हैं, तैसे नीचगोत्र वाले उंचगोत्र वालोंके सदृश नहीं हो सके हैं.

जे कर कहोगे कि विजायतमे सर्व एक सरीखे है, तो इस बातमें क्या आश्चर्य है ? जहां उंच नीच पणा नहीं, तहां सर्व जीवोंने एक सरीखा गोत्रकर्मका बंध करा है, इस वास्तेही सर्व सरीखे हुये हैं, परंतु जहां उंच नीचपणा माना जायगा, तहां अवश्यमेव उंच नीच गोत्रका व्यवहार जरूर होवेगा, अरु जो हीन जातियोंको बुरे जानते हैं, सो बुद्धिमान् नहीं, क्योंकि बुरा तो खोटे कर्मोंके करनेसे होती है, जे कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, हो कर खोटे कर्म, जीवहिंसा, जूठ, चोरो, परस्त्रीगमन, परनिंदा, विश्वासघात, कृतघ्न, मासनहण, मदिरापान, इत्यादिक जो कुरम करेगा, हम उनको जरूर बुरा मानेगे, अरु नीच जातिवाला है, सोनी जे कर कुरम करेगा, दया, सत्य, चोरीका त्याग, परस्त्रीत्याग, इत्यादि करेगा, तो हम अवश्य उसको अच्छा कहेगे, तो फेर हमारी समझ फिती रीति से बुरी है. अरु जो उसके साथ खाते नहीं है, यह कुजरुदी है, अरु जो नीच जातिवालोंकी निंदा (जुगुप्सा) करते हैं, वे अज्ञानी हैं, निंदा जु

गुप्ता तो किसीकीनी करनी न चाहियें. अरु जो तिनकी तूत मानते वोनी कुलारूढी है, अरु जो मनुष्यत्व धर्म करके सरीखे है, तोनी जन्म ता, वहिन, वेटी, नार्या, यह सब स्त्रीत्व स्वरूप करके समान हैं, तोनी से अगम्य गम्यका विनाग है, तैसेंही उंच नीचकानी विनाग है, यह द्वार ब्राह्मण, अरु जैनोने नही बनाया है, किंतु अछे घुरे कर्मोंके से है, यह परस्पर जातिका आहार न खानेका व्यवहार . . . इस वास्ते उंच नीच गोत्रके प्रजावसेंही उंच नीच जाति होती है.

तथा आ्युः कर्ममेसूं नरकायुकी प्रकृति पापमें गिनी जाती है, व्दकी व्युत्पत्ति अैसें है, "नरान् प्रकृष्टपापफलजोगाय गुरुपापका प्राणिनोनरानित्युपलक्षणत्वात् कार्यति शब्दयंतीति न. का. . . प्रायोग्यसकलकर्मप्रकृतिविपाकानुभवकारणं प्राणधारणं यत्तत् तद्विपाकवेद्यकर्मप्रकृतिरपि नरकायुष्कमिति ॥ "

तथा वेदनीकर्मकी अशातावेदनी पाप प्रकृतिमें गनी जाती है, तो शाता नाम दुःखका है, जिसके उदयसें जीव दुःख जोगता है, नाम अशातावेदनी है.

यह ज्ञानावरणी पांच, अंतराय पांच, दर्शनावरणी नव, मोहनी नामकर्मकी चौत्तीस, नीचगोत्र एक, नरकायु एक, तथा अशातावेदनी सब मिल कर व्याप्ती नेदें पाप फल जोगनेमे आता है ॥ इति पाप तत्त्व

अथ आश्रवतत्त्व लिखते हैं. मिथ्यात्वादि आश्रवके हेतु है. १ देव, २ असत् गुरु, ३ असत् धर्म, इनों विषे सत् देव, सत् गुरु, अरु धर्म, ऐसी जो रुचि, तिसका नाम मिथ्यात्व है तथा हिसादिकसे जो न निवृत्तनां, तिसका नाम अश्रविति है, तथा प्रमाद मद्यादि, तथा कषाय क्रोधादय, अरु योग मन वचन कायाका आपार, ये मिथ्यात्व, अश्रविति. प्रमाद, कषाय, अरु योग, यह पाच पुनर्वंधक जीवके ज्ञानावरणीयादिक कर्मोंके बंधके हेतु है, इसकों जैन मतमे आश्रव कहते हैं. आश्रव कर्म जिनोसेंती सो आश्रव. तब तो मिथ्यात्वादि विषयादिक मन, वचन, कायाका व्यापारही शुभाशुभ कर्मबंधका हेतु होनेसे आश्रव होय. यह तात्पर्य है.

प्रश्न.—बंधके अज्ञाव होये कैसे आश्रवकी उत्पत्ति है ? जे कर कहा कि आश्रवसे पहिला बंध है, तबतो वो बंधनी आश्रवहेतु बिना नहीं

सक्ता है, क्योंकि जो जिसका हेतु है, सो तिसके अभाव हुआ नहीं सक्ता है, जे कर होवेगा, तब अतिप्रसंग दूषण होवेगा.

उत्तर:-यह कहनां असत् है, क्योंकि आश्रवकों पूर्वबंध अपेक्षया का पणा है, अरु उत्तरबंधापेक्षया कारणत्व है, जैसेही बंधकोंनी पूर्वोत्तर श्रवकी अपेक्षा करके कार्यत्व कारणत्व जाननां, बीजांकुरकी तरें. बंधा १ दोनोंका परस्पर, कार्य कारण जावका नियम है, यहां इतरेतर दूषण ही है, प्रवाहापेक्षा करके अनादि होनेसें.

यह आश्रव पुण्य पापका बंधहेतु होने करके दो प्रकारें हैं, यह दो जेदोंके मिथ्यात्वादि उत्तर जेदोंके उत्कर्षापकर्ष, अर्थात् अधिक न्यून नेसें अनेक प्रकार हैं इस शुजाशुज मन वचन कायके व्यापार रूप श्रवकी सिद्धि अर्पणी आत्मामें स्वसवेदनादि प्रत्यक्षसें है, अरु दूस में वचन काय व्यापारकी प्रत्यक्षसें सिद्धि है, औ शेषकी तिसके कार्य नव अनुमानसें जाननी तथा आप्तप्रणीत आगमसें जाननी.

अथ आश्रवके उत्तर जेद वैतालीस है, सो लिखते है पाच इंद्रि, चार कषाय, पांच अत्रत, पच्चीश क्रिया, तीन योग, यह वैतालीस जेद है.

जीवरूप तलावमें कर्मरूप पाणी जिस करके आवे, सो आश्रव है, तहां डिय पाच है, तिनका स्वरूप कहते हैं, १ स्पर्शीये स्वधिपय स्पर्शी लक्ष् १, जिस करके सो स्पर्शनेडिय, २ "रस्यते आस्वाद्यते रसोऽनयेति" आ ११डियें रस लीजीयें जिस करके सो रसना ( जिह्वा ) इंद्रिय, ३ सूधीये थ जिस करके सो घ्राणेडिय. ( नासिकेडिय, ) ४ चक्षु ( लोचन, ) ५सु ५ये शब्द जिस करके सो श्रोत्रेडिय. यह पांच इंद्रिय मूलजेदकी अपेक्षा १ पांच कारण आश्रवके है.

"क्रुध्यति कुप्यति" सचेतन अचेतन वस्तुमें क्रोध जो करे, सनिमित्त, नि र्निमित्त येन जिस करके प्राणी, सो क्रोधवेदनीय कर्म है, तिसका उदय नी उपचारसें क्रोध है. जैसेही मान, माया, अरु लोचनमेंनी कह देनां. इसमें गान आठ प्रकारका है, तिसका नाम कहते है १ जातिमद, २ कुजमद, ३ बलमद, ४ रूपमद, ५ ज्ञानमद, ६ लालमद, ७ तपोमद, ८ श्रेथ्वर्म १. १ जातिमद, उसको कहते है जो अर्पणी माताके पक्ष्मा अग्निमान १रेकि मेरी माता जैसे वडे घरकी वेटी है, इस तरें आपकों उंचा माने,

अरु दूसरोंको निंदे, इसका नाम जातिमद है, २ कुत्रमद सो है, अपने पिताके पक्षका अजिमान करे, जैसेकि मेरे पिताका बड़ा बड़ा है, इस तरे आपको बड़ा माने, ओरोंको निंदे, तिसका नाम ३ जो अपने बलका अजिमान करे, अरु दूसरोंके बलको निंदे, मद, ४ जो अपने रूपका अजिमान करे, दूसरोंके रूपको निंदे, सो ५ जो अपने आपको बड़ा ज्ञानी जाने, अरु दूसरोंको तुष्टमति सो ज्ञानमद, ६ जो अपने आपको बड़ा नसीबे वाजा समजे, अरु रोंको हीण पुण्यी समजे, सो लाजमद, ७ जो तप करके अजिमान मेरे समान तपस्वी कोइ नही, सो तपोमद, ८ जो अपनी अजिमान करे, दूसरोंको घासजू समजे, सो अश्वर्यमद. इस प्रकारके आठ चेद है तथा तीसरी माया, सो "मयति गह्वति" अर्थात् तिस तिस विकारोंको परवचनेके अर्थे जीव, उसको माया (कपट) है. तथा जिस करके परधनमें गृही होवे, तिसको लोन कहते हैं, चारोंको कपाय कहते हैं. यह चार कपाय हैं.

अथ पाच अत्रत कहते हैं, तथा पाच इन्द्रिय, ६ मनोबल, ७ नबल, ८ कायबल, ९ उद्वासनिःश्वास, १० आधु, यह दस प्राण हैं न दश प्राणोंके योगसे जीवको जी प्राण कहिये हैं तिन प्राणोंका ध (हनना) अर्थात् मारना सो प्रथम प्राणवध अत्रत जानना. तथा कुत्र बोलनेका नाम भृपावाद है तथा ३ दूसरोंकी वस्तु चुराय लेती. इसका नाम अदत्तादान है, तथा ४ स्त्री पुरुषका जो जोडा, तिसका नाम मिथुन है, इन दोनोंके मिलनेसे जो कर्म, सो मैथुन. (अब्रह्म सेवन) अथ ५ "परिगृह्यते" सर्व ओरसे अंगीकार करिये, चार गतिके निर्वर्तन कर्म जिस करके, सो परिग्रह, इन पाचोंके चार चार चेद है, सो कहते हैं १ एक इव्ये हिंसा है, परंतु जावे नही, २ एक इव्ये हिंसा नही, परंतु जावे है, ३ एक इव्ये जी हिंसा है, अरु जावे जी हिंसा है, ४ एक इव्ये हिंसा नही, अरु जावे जी हिंसा नही, यह प्रथम अत्रतके चार चेद कहते हैं. तिसमें प्रथम जंगला स्वरूप जैसे है कि साधुकी समाचारो प्रतिवेक्षण करनेसे, मार्गमें विहार करनेसे, नदी आदिकके लंघनेसे, नावमे वेत करती उतरनेसे, नदीमें साध्वी आदिकके काढनेसे, वर्षा वर्षतामे शोच जाते हैं.

जिन रोगीकी लघुशंकाओं में वर्षतामें गेरनेसें, गुरुके शरीरमें वायु का थकेवा दूर करके मूठी चांपी करनेसें, जो हिंसा होती है, सो सर्व अहिंसा है, तथा श्रावककों जिनमंदिर बनानेसें, जिनपूजा करनेसें, अभिषेक करनेसें, तीर्थयात्रा जानेसें, रथोत्सव, अष्टाशुक्ल उत्सव, प्रसादाद्युक्त अन्नभक्षण करना करनेसें, तथा जगवानके सन्मुख जानेसें, गुरुके सन्मुख जानेसें, इत्यादि कर्तव्यसें जो हिंसा होवे. सो सर्व इत्यहिंसा परंतु जावहिंसा नहीं. इसका फल अल्प पाप, अरु बहुत निर्झंरा है. यह जगवती सूत्रमें लिखा है, यह हिंसा साधु आदि करते है परंतु उन परित्याग उस अवसरमें खोटे नहीं है, इस वास्ते इत्यहिंसा है.

प्रश्नः—यज्ञादिमें जो गोमेव प्रमुख जीव मारे जाते हैं, यहजी इत्यहिंसा क्यों नहीं? इसका उत्तर, मीमांसक मत खंमनमें लिख आये है, सो यह लेना यह प्रथम जंग.

दूसरे जंगमें इत्यहिंसा नहीं परंतु जाव हिंसा है, तिसका स्वरूप कह है, कि जो पुरुष उपरसें तो शक्तिरूप बना हुआ है परंतु परिणाम अकारण जिसका खोटा है, वो ऐसा चाहता है कि मेरे शत्रुके घरमें आ जावे, मरी पड जावे, नदीमें डूब जावे, चोरी हो जावे, बंदीखाने में पड़े, तथा वेष बदलके जला मानस बनके उगवाजी करे, तथा अग का बुरा करनेके वास्ते अनेक प्रकारसे उसको विश्वास करावे, तथा फीरीका वेप करके लोकोसें धन एकठा करे, इत्यादि तथा साधुके गुण तो उसमें नहीं है, परंतु लोकोमें अपने आपको गुण प्रकट करे, इत्यादिक का नाम इत्यहिंसा तो नहीं करता, परंतु जावसें तो वो पुरुष, हिंसक है, इसका फल संसारमें भ्रमण करने सीवाय और कोई फल नहीं. यह दूसरा जंग.

तीसरे जंगमें प्रकट इंडियोकी विषयमें गृह हो कर जीवहिंसा कसाड, (खटिक) वायुरी अहेडी, ( शिकार मारनां ) विश्वासघात, इत्यादि करके जीवहिंसा करनी, अरु मनमें आनंद मानना, इसका फल डर्गति है, यह इत्येजी हिंसा है, अरु जावेंजी हिंसा है, यह तीसरा जंग.

चौथा जंगमें इत्येजी हिंसा नहीं, अरु जावेंजी हिंसा नहीं, उसको हिंसा कहना. यह जंग शून्य है, इस जंग वाला कोईजी जीव नहीं ॥ इति ॥



ऐसैही फूठकेनी चार जेद हैं तिसका स्वरूप कहते हैं । स्तेमें चला जाता है, तिसके आगे हो कर एक जंगली गौआंका गादि जानवरोंका टोला निकल जावे, तिसके पीछे शिकारी बंदूक शस्त्र लीयां चला आता है, उनके मारने वास्ते वो शिकारी साधुका तुमने अमुक जीव जाते देखे हैं ? तब साधु मौन कर जावे, जे करेनी पीठा न ठोडे, साधुकों मारे, तब साधु कह देवे, मैं नहीं । यद्यपि यह इव्ये फूठ है, परतु जावे फूठ नहीं, क्योकि जो कोइ इ विषय वास्ते तथा अपने लोच वास्ते फूठ बोले, तब जावतः फूठ होतु यह तो जीवोंकी दया वास्ते फूठ बोले है. वास्तवमें यह फूठ इसी तरे और जगेंजी समज लेनां. यह प्रथम जंग.

तथा दूसरा जंगमे कोइ पुरुष मुखसैं तो कुठ नहीं बोलता, नंग के उगने वास्ते मनमें अनेक विकल्प करता है, यह दूसरा जंग तथा रे जंगमें तो इव्येजी फूठ बोलता है, अरु जावेनी फूठ बोलता है, का अज्ञिप्रायजी महा ठल कपट करनेका है, क्योकि मुखसैंनी फूठ है, अरु चित्तमेंनी इष्टता संयुक्त है, यह तीसरा जंग. तथा चौथा जंग पूर्ववत् शून्य है इति फूठ स्वरूप.

अथ चोरीका यही चार जंग कहते हैं. तहां प्रथम जंगमें जैसे स्त्री शीजवान है, औ कोइ इष्ट राजा उसका शीजजंग करा चाहाता है व कोइ धर्मज्ञादि पुरुष रात्रिमें अथवा दिनमे उस स्त्रीके शीजकी स्ते उस राजसैं बाहिर ले जावे, तो व्यवहारमें उस राजाकी उसने जंगरूप चोरी करी है, परंतु वास्तवमें वो चोर नहीं. इसी तरे और जंग मेंनी जान लेनां यह प्रथम जंग. दूसरे जंगमें चोरी तो नहीं करता, परंतु चोरी करनेका मन उसका है, तथा जो जंगवान् वीतराग सर्वज्ञकी ज्ञा जंग करने वाला है, सोनी जावचोर है. यह दूसरा जंग. तथा तीसरे जंगमें चोरीनी करता है, अरु मनमेंनी चोरी करनेका जाव है, यह तीसरा जंग है. अरु चतथा जंग तो पूर्ववत् शून्य है. इति अदत्तादान जंग.

ऐसैही मैथुनके चार जंग कहते हैं. जो साधु, जलमे मूवती साधु वीको देख कर काढनेके वास्ते पकडे, तथा धर्मी, गृहस्थ उससैं गिरती अपनी वहिन बेटीकों पकडे, तथा वावरी होइ दौडतीकों पकडे, यह इ

मैथुन है, परंतु जावे नही. यह प्रथम जंग. तथा इव्ये तो मैथुन नहीं  
 जाता है, परंतु मैथुन सेवनेकी बड़ी अजिजापा करता है, सो जावे मैथुन  
 यह दूसरा जंग. तथा तीसरे जंगमें तो इव्ये अरु जावे मैथुन सेवता  
 अरु चौथा जंग पूर्ववत् अन्य है ॥ इति मैथुन स्वरूपं ॥

असैंही परिग्रहका चार जंग कहते है, १ जैसे कोइ मुनि कायोत्सर्ग  
 रहा है, उसके गलेमें कोइ हारादिक आनूपण गेर देवे, वो इव्ये तो  
 ग्रह दीखता है, परंतु जावे परिग्रह नहीं है, यह प्रथम जंग. तथा दू  
 ॥ इव्ये तो उसके पास कौडी एकजी नहीं है, परंतु मनमें धनकी बड़ी  
 जिजापा रखता है, सो जावपरिग्रह है. तथा तीसरेमें धनकी पास है,

सो दृष्टिकी क्रिया, १२ राग, द्वेष, मोह संयुक्त चित्तसें जो स्त्री शरीरका स्पर्श करना, सो स्पृष्टिकाक्रिया, १३ पूर्वे अंगीकार करे पोपादान कारण अधिकरणकी अपेक्षा जो क्रिया उत्पन्न होवे, त्यकी प्रत्ययक्रिया, यह तात्पर्यार्थः १४ “समंतात्” सर्वे ओरसें पात” आगमन आवणां, स्त्री आदिक जीवोंका जिस स्थानमें दिकमें, सो समंतोपनिपात, तहां जो क्रिया उत्पन्न होवे, सो तिका क्रिया, १५ जो परोपदेशित पापमें चिर काल प्रवृत्ते, उस पापकी जावसें अनुमोदना करे, सो नैसृष्टिकी क्रिया, १६ अपणे जैसें कोई पुरुष बड़े अजिमान करके क्रोधित चित्त हुआ थका जो काम के नौकर कर सके हैं, उस कामकों अपने हाथसें करे, सो स्वाहस्तिकी १७ जगवत् अर्हतकी आज्ञा उल्लंघन करके अपनी बुद्धिसें जीवाजी पदार्थोंके प्ररूपण द्वारा जो क्रिया, सो आज्ञापनिका क्रिया, १८ के अण होये खोटे आचरणका प्रकाश करणां, उनकी पूजाका नाश तिस करनेसें जो उत्पन्न होवे, सो वैदारणिका क्रिया, १९ आनोग नाम उपयोगका, तिससें जो विपरीत होवे, सो अनानोग है, तिस करके त जो क्रिया, सो अनानोग क्रिया. बिना देखे, बिना पूजे देश अर्थात् जूम्यादिकमें शरीरादिकका निक्षेप करणां, सो अनानोग क्रिया, २० अरु परकी जो अपेक्षा करणी, तिसका नाम अवकांक्षा है, इसे जो रीत तिसका नाम. अनवकांक्षा है, सोइ है कारण जिसका सो अनवकां प्रत्यय क्रिया. तात्पर्य यह है कि जिनोक्त कर्त्तव्य विधियोंमें किसी विधि में जो अपनेको अरु और जीवोंको हितकारी है, तिन विधियोंमें प्र दके वश हो कर आदर न करना, सो अनवकांक्षा प्रत्ययकी क्रिया, “प्रयोग” दौडना चलनादि कायाका व्यापार, अरु हिंसाकारी कठोर उ बोलनादि वचनव्यापार, परानिद्रा, ईर्ष्या अजिमानादि मनोव्यापार इन तीनोंका जो करणां, सो प्रयोगक्रिया, २१ जिस करके विषय अद करिये, सो समादान इंडिय हैं, तिसकी जो क्रिया देश सर्वे उपयातक व्यापार, सो समुदान क्रिया, २२ प्रेम नाम है माया अरु लोभका, ति करके जो होवे, सो प्रेमप्रत्यय क्रिया, २३ द्वेष नाम है क्रोध अरु

का, तिन करके जो होवे, सो द्वेषप्रत्ययिकी क्रिया, २५ चलनेसें जो क्रिया होवे, सो ईर्ष्याप्रत्ययिकी क्रिया. यह क्रिया बीतरागकों होती है.

अथ इन पञ्चीश क्रियाका व्याख्यान करते हैं १ प्रथम कायिकी क्रिया दो प्रकारकी है, एक अनुपरता कायिकी क्रिया, दूसरी अनुपयुक्त कायिकी क्रिया, उसमें प्रसुप्त मिथ्यादृष्टि जीवके मन वचनकी अपेक्षा रहित और जीवोंके पीडाकारी ऐसा जो कायाका उद्यम, सो प्रथम चेद है, तथा प्रमत्त संयतके बिना उपयोग अनेक कर्तव्यरूप कायाका व्यापार, सो दूसरा चेद, यह कायिकी क्रियाका स्वरूप कह्या. २ दूसरी अधिकरणकी क्रिया दो प्रकारे है. एक संयोजना, दूसरी निवर्तना, उसमें विष, गरल, फांसी, धनु, यंत्र, तलवार, आदि शस्त्रोंको जीवोंके मारणे वास्ते जो इनका "संयोजना" अर्थात् मिलाप करणां, जैसें धनुष्य अरु तीरका मिलाप करणां, सो तीरें सर्व जाननां. यह प्रथम चेद तथा तरवार, तोमर, शक्ति, तोप, कुंडक, इनका जो नवे सिरसें बनानां, यह दूसरा चेद यह दूसरी क्रियाका स्वरूप कह्या. ३ जिन निमित्तोंसें क्रोध उत्पन्न होवे, सो निमित्त जीव अजीव हैं, उसमें जीव तो प्राणी, अरु अजीव खूंटा, कांटा, पत्थर, कंकरादि, इनके उपर द्वेष करे, यह तीसरी प्रदोषक्रिया, ४ तथा अपणे हाथो करके अरु परके हाथों करके, जीवको ताडनां (पीडा देनी) सो परितापना, इस परितापनाके दो चेद है, एक तो "स्व" (अपणे आपकों) पीडा देनी, जैसें पुत्र कजत्रादिके वियोगसें दुःखी हो कर अपणे हाथों करी जाती गिरका कूटनां, यह प्रथम चेद. तथा पुत्र शिष्यादिकोंको ताडनां (पीटनां) यह दूसरा चेद, यह चौथी पारितापनिकी क्रिया. तथा ५ पाचमी प्राणातिपातकी क्रियाके दो चेद है, एक तो अपणे आपकी घात करणां, जैसेकि जान वृज कर पर्वतसें गिरके मर जाना, जर्ताके साथ सती होनेके वास्ते अग्निमें जल मरनां, पाणीमें मूत्रके मरना, विष खा के मरनां, शस्त्र से मरना, इत्यादि स्वप्राणातिपात यह महापाप रूप क्रिया, यह प्रथम चेद तथा दूसरी मोह, लोभ, क्रोधके वश हो कर पर जीवकों स्व अथ वा परहाथ करके मारणा. यह पाचमी क्रिया, ६ जीव, अजीवका आरज करणां, सो आरजकी क्रिया, ७ जीव अजीवका परिग्रह करणां, सो परिग्रहकी क्रिया, ८ माया करणां, सो माया प्रत्ययकी क्रिया, ९ वि

परीत वस्तुका श्रद्धान सोइ है, निमित्त जिसका सो मिथ्यात्व दर्शन  
 त्ययकी क्रिया, १० जीवके हननेका तथा अजीव मद्य मांसादि पीने  
 नेका जिसके त्याग नहीं, ऐसा जो असंयती जीव, तिसकों  
 नकी क्रिया, ११ घोडा, रथ, प्रमुख जीव तथा अजीवोंके देखने, व  
 नां, सो दृष्टिकी क्रिया, १२ जीव, अजीव, स्त्री, पूतली, आदिकका राग  
 स्पर्श करनां, सो स्पर्ष्टिका क्रिया, १३ जीव, अजीवकी अपेक्षा जो  
 बंध होवे, सो प्रातीत्यकी क्रिया, १४ जीव सो पुत्र, नाइ, शिष्यादिक,  
 रु अजीव सो जूपण, घर, हाटादि. इनकों लोक सर्व दिशोंसें देखने  
 देखके प्रशंसा करे, तब तिन वस्तुओंका स्वामी हर्षित होवे, सो सा  
 पनिपातिका क्रिया, १५ जीव मनुष्यादि अरु अजीव इंटका टुकडा  
 फेंके सो नैस्पर्ष्टिकी क्रिया, १६ अपने हाथों करी जीवको तथा  
 को ( प्रतिमादिको ) ताडे, वीधे, सो स्वहस्तकी क्रिया, १७ जीव  
 मिथ्या प्ररूपणा करणी, तथा जीव अजीवको मंत्रसे मगावा लेना,  
 आज्ञापनिका क्रिया, १८ जीव अजीवको विदारणा, सो वैदारणिका क्रिया  
 १९ विना उपयोगकुं जो वस्तु लेवे, तथा जूमिकादि उपर गोडे, सो  
 नाजोगक्रिया, २० इस लोकमे औ परलोकमे जो विरुद्ध ऐसा जो जो  
 परदारागमनादिक है, उनको सेवे, मनमें मरे नहीं, सो अनवकाहा प्र  
 य क्रिया, २१ मन, वचन, कायाका जो सावद्य ( सपाप ) व्यापार,  
 प्रयोग क्रिया, २२ अष्टविध कर्म परमाणुओंका जो ग्रहणा, सो समुद्र  
 क्रिया, २३ राग जनक वीणादिकका जो शब्दादि सो प्रेम प्रत्यय क्रिया,  
 अणो उपर तथा पर उपर द्वेष करनां, सो द्वेषप्रत्ययिकी क्रिया, २४ के  
 ल योगोसें जो क्रिया. सो केवलीकों ईर्ष्यापय क्रिया. यह पञ्चीत क्रिया  
 का स्वरूप संक्षेप मात्र लिखा है यद्यपि इन क्रियाओंमे कितनीक क्रिया  
 आपसमे एक सरखी दीखती है, तोजी एक सरखी नहीं है, इनका अ  
 तरे स्वरूप देखनां होवे, तो गंधहस्तीनाप्य देख लेना.

अथ योग तीन है, सो लिखते है. १ मनका व्यापार, सो मनोयोग,  
 वचनका व्यापार, सो वचनयोग, २ कायाका व्यापार, सो काययोग. यह  
 सर्व मिल कर वैतालीत जेद आश्रव तत्त्वके दूये हैं. इन वैतालीत जेद  
 से जीवको गुजागुज कर्मकी धामदनी होती है. इति आश्रवतत्त्व संपूर्ण

अथ संवरतत्त्व लिखेते है. पूर्वोक्त आश्रवका जो रोकने वाला सो वर है, तिस संवरके सत्तावन चेद है, सो कहते है पांच समिति, न गुप्ति, दश प्रकारका यतिधर्म, बारह जावना, बावीश परीपह, पांच चारित्र. यह सब मिल कर सत्तावन चेद हूये इनमेंसुं पांच समिति, न गुप्ति, दशविध यतिधर्म, बारह जावना, इनका स्वरूप गुरु तत्त्वमें लिखाये है. तहांसुं जान लेना. इहा नही लिखते.

अथ बावीश परीपहका स्वरूप लिखते है. १ क्रुधापरीपह, सो क्रुधा म नूखका है, शेष वेदनासुं अधिक नूखकी वेदना है, सो जब क्रुधा गे, तब अपनी प्रतिज्ञासे न चले, अरु आर्त्तध्याननी न करे. सम्यक् रिणामोंसुं क्रुधा सहे, सो क्रुत्परीपह, २ असुंही पिपासा जो तृपा तिस परीपहनी जान लेना, ३ शीतपरीपह, सो बडा चारी जब शीत पडे, वनी अकल्पनिक वस्त्रकी वांठा न करे, जैसे जीर्ण वस्त्र होवे, उनोंहीसुं त सहे, अरु अग्निसुंनी न तापे, इसी रीतीसुं सम्यक् शीत परीपह सहे. असुंही उष्णपरीपहनी सहे, ५ दंशमशकपरीपह, सो दंश मशक जब टे, तब उस स्थानसुं चले जानेकी इच्छा न करे, तथा दंश मशकके दू करने वास्ते धूमादि यत्ननी न करे, तथा तिनके दूर निवारण वास्ते पानी न करे, असुं पुरुष, दंश मशक परीपह सहे, ६ अचेलपरीपह, जो वैया वस्त्रोंका अनाव, तिसका नाम अचेल परीपह नही, किंतु आगम जो वस्त्रादिक रखनेका प्रमाण कहा है, तिस प्रमाण रखनां सो परिग्रह नही है, परिग्रह तो उसकों कहते है कि जो मूर्च्छा करकें रस्के ॥ उक्तं च ॥ पि वञ्चं च पायं च, कञ्चलं पाय पुञ्जणं ॥ सोपि संजम लज्जसा, धारिति रिहरति य ॥ १ ॥ न सो परिग्रहो बुत्तो, नाइ पुत्तेण ताइणा ॥ मुञ्जापरिहो बुत्तो, इइ बुत्त महेसणत्ति ॥ ३ ॥ चेल नाम वस्त्रका है, सो शीर्ण अर्थात् टे हूये अरु जीर्णनी होवे, तोनी अकल्पनिक न लेवे, सो अचेलपरीपह, अरतिपरीपह, सयम पालनेको जो अरति संयममे उत्पन्न होवे, तिसकों हे, इसके सहनेका उपाय दशवैकालिककी प्रथम चूडामे अवारह वस्तुके तिनरूप करनेसे अरतिदूर हो जाती है. ७ स्त्रीपरीपह, सो स्त्रीवोंके ग प्रत्यग सस्थान स्वरति, हसना, मनोहर पणां, विभ्रमादि चेष्टायोंको नमे चितवना न करे, मोक्ष मार्गमें अर्गलसमान स्त्रीवोंको जान करकें

तिनोमें कामकी बुद्धि करके, नेत्रोंसें देखे नहीं. ए चर्या नाम है का चलनां घर रहित ग्राम नगरादिमें अनियतवासे ममत्व रित्त स कल्पादि करणां, सो चर्यापरीपह है, १० निपद्यापरीपह, सो पद्या यह रहनेके स्थानका नाम है, सो स्थान, स्त्री, पंक्त विवा वे, तिस स्थानमें रहतेकों इष्टानिष्ट जो उपसर्ग होवे, तोनी अपणे चलायमान न होवे, सो निपद्यापरीपह, ११ 'शोरते' शयन करिये सो पे सा शय्या, संस्तारक, वसति. तहां संस्तारक सो सोनेका आर मल, कठिन, ऊंचा, नीचा, धूल, कूड़ा, कंठर वाली जगामें होवे, वो स्थान, शीत गर्मी वाला होवे, तोनी मनमें उद्वेग न करे. इ करे, सो शय्यापरीपह, १२ आक्रोश परीपह, सो अनिष्ट वचन को तब जैसे विचारे, जे कर यह पुरुष सच्ची बातके वास्ते अनिष्ट वचन है, तो मुझको कोप करनां ठीक नहीं, क्योंकि यह पुरुष मुझे है, फेर ऐसा काम न करुंगा, जे कर इस पुरुषका मेरे पर ऊठा तोनी मुझको कोप करनां युक्त नहीं, जैसे चितन सहे, १३ वय नाम है हाथादि करके ताडनां, (मारना,) तिसका सो इसी रीतीसें कि यह जो मेरा शरीर है, सो अवश्य विध्वंस इस शरीरके संबंधसें जो मेरेको दुःख होता है, सो मेरे करे दूये का फल है. इस बुद्धिसें वधपरीपह सहे. १४ याचना नाम मांगनेका सर्वही वस्त्र अन्नादिक साधुको मांगनेसेंही मिलता है, इस बुद्धिसें याच परीपह सहे, १५ साधुको किसी वस्तुकी इच्छा है, अरु वो वस्तु गृहस्थ के घरमेनी बहुत है, साधु मांगनेको गया, परंतु गृहस्थ देता नहीं, तब साधु मनमें विषाद न करे, अरु देने वालेका बुराजी नहीं चितवे, उ चनजी न बोले, समता करे, आज नहा मिला, तो कलको मिल जाव गा, इस तरे अज्ञानपरीपह सहे, १६ रोग (ज्वर अतिसारादि) जब हो जावे, तब गह्वके बाहिर जो साधु होवे, सो तो कोइनी औषधि न खाव. अरु जो गह्ववासी साधु होवे, सो गुरु लाघवता विचार करके रोग परीपह सहे, अरु जो रीति शास्त्रमे औषध करनेकी कही है, तिस रीतिसें सो रोगपरीपह सहे, १७ तृणस्पर्श परीपह, सो दर्जादिक कठोर तृण स्पर्श सहे, १८ मलपरीपह, सो साधुके शरीरमे पत्तीना आनेसे रजका

शरीरमें लगनेसें कठिन मेल लग जाता है, अरु उष्ण कालकी तप्तसें तट दूध्या है दुर्गंध तिस करकें उत्पन्न दूध्या है उद्वेग, तोनी स्नाना शरीरकी विनूपा साधु न करे, यह मलपरीपह है, १९ सत्कारपरीप सो नक्त लोकोंने वस्त्रान्न पानादिक करकें साधुकों बहुत सत्कारनी या, तोनी मनमें अजिमान न करणां, तथा और और साधुओंकी नक्त लोक जा नक्ति करते है, अरु जैनमतके साधुकी कोइ बातनी नही पूठता, नी मनमें विपाद न करे, यह सत्कारपरीपह है, २० प्रज्ञापरीपह, सो हुत बुद्धि पा कर अजिमान न करे तथा अल्पबुद्धि होवे तदा 'मै म मूर्ख हूं, सर्वके पराजयका स्थान हूं,' ऐसी ताप दीनता मनमें नही लावे, सो प्रज्ञापरीपह, २१ अज्ञानपरीपह, सो ज्ञान चौदहपूर्व पाठी, कादशांगपाठी, तथा उपांग, हेद, प्रकर्ण, शास्त्रोंका पाठी. ज्ञानका स इ मैं हूं असा गर्व न करे. अथवा मे आगम ज्ञान रहित हूं, धिक् है, के निरक्षर कुट्टिनरकों ? ऐसी दीनतानी न करे, असें विचारे कि नि.के ल ज्ञानावरणका ह्योपशमके उदयसें मेरा यह स्वरूप है, स्वकृतकर्म फल है, जांतां जोगनेसें दूर होवेगा, वा तपोतुष्टानसें दूर होवेगा ? असें विचारि अज्ञान परीपह सहे, २२ शास्त्रोंमें देवता अरु इंद्र सुनते है, रंतु सांनिध्य कोइनी नही करता, इस वास्ते क्या जाने देवता इंद्र है ? नही ? तथा मतांतरकी रुद्धि वृद्धि देख कर जिनोक्त तत्त्वमें संमोह रनां, ऐसी विकलता जो मनमें न लावे, सो दर्शनपरीपह. यह बावी परीपह जो साधु जीते, सो संवरी कहा जाता है, इन परीपहोंका वि तार देखनां होवे, तो श्रीशातिस्ररिक्त उत्तराध्ययन सूत्रकी बृह वृत्ति, त ॥ तत्त्वार्थ सूत्रकी वृत्ति देख लेनी.

अथ पांच प्रकारका चारित्र लिखते है १ सामायिक चारित्र, २ वेदोप यापनिका चारित्र, ३ परिहारविशुद्धि चारित्र, ४ सूद्धमसंपराय चारित्र, ५ यथाख्यात चारित्र, यह पांच प्रकारका चारित्र है. इन पांचोंके धारक साधु नी जैनमतमे पाच प्रकारके है, इस कालमे प्रथम दो चारित्रके धार साधु है, अरु तीन चारित्र व्यवहेद गये है, इन पांचोंका विस्तार पूर्वक खनां होवे तदा देवाचार्यकृत नवतत्त्व प्रकरणकी टीका, तथा न



गवती अरु पन्नवणासूत्रकी वृत्ति देख लेनी. यह सर्व मिन सत्तावन जेद आश्रवके रोकने वाले हैं. इति सवरतत्त्व संपूर्ण ॥

अथ निर्झरातत्त्व लिखते हैं. निर्झरा उसको कहते हैं, जो बांधे ये कर्मोंको खेरु करे, जिस करके निर्झरा होती है, तिसका नाम सो तप बारह प्रकारका है, उसका स्वरूप गुरुतत्त्वमे संक्षेप करके आये है, तहांसें जान लेना. अरु जे कर विस्तार देखनां होवे, तदा तत्त्वप्रकरणवृत्ति तथा श्रीवर्द्धमानसूरिकृत आचारदिनकर शास्त्र, श्रीरत्नशेखरसूरिकृत आचारप्रदीप, तथा जगवतीसूत्र, अरु उक्तांश देख लेनां ॥ इति निर्झरातत्त्व संपूर्ण ॥

अथ बंधतत्त्व लिखते हैं, बंध चार प्रकारका होता है, १ प्रकृत २ स्थितिवंध, ३ अनुजागबंध, ४ प्रदेशबंध बंध कहते हैं जीवके अरु कर्मपुजल, ये दोनों दूध अरु पाणीकी तरें परस्पर मिल जावे, बंध कहते हैं. अथवा बंध नाम बंदीवानका है, जैसें बंधुआ कैदमें त्र नहीं रहता, जैसें आत्माजी ज्ञानावरणीयाटिकर्मोंके वश होना स्वतंत्र नहीं रहता है, इस कर्मके बंधमें ठ विकल्प है, सो कहते हैं.

१ कोइक वादी कहता हैं, कि निर्मलजीव पुण्य पापके बंध रहित पीठेंसें पुण्य पापका बंध दूआ है, यह प्रथम विकल्प. यह विकल्पमि है, क्योंकि निर्मल जीव कर्मका बंध नहीं कर सकता है, अरु कर्मके वि संसारमें उत्पन्नजी नहीं हो सकता है, जे कर निर्मल जीव कर्मका करे, तब तो मोहस्थ जीवजी कर्मका बंध कर लेवेगा, जब मोहस्थ वकों कर्मबंध दूआ, तब मोहका अभाव हो जावेगा, जब मोह नहीं. तो मोहोपायके शास्त्र अरु शास्त्रोंके बनाने वाले मिथ्यावादी हो जाते तब तो नास्तिकमती बन जायेंगे, अरु निर्मल आत्मा संसारमें शरीरके जावसें कर्मकी काहेसें करेगा ? इस वास्ते यह प्रथमविकल्प मिथ्या

२ दूसरा विकल्प कर्म पहेले थे, अरु जीव पीठेंसें बना है, यहजी मिथ्य. क्योंकि जीवोंके बिना वो कर्म किसनें करे थे, कारणकि कर्ताके विन में हो नहीं सके है, अरु प्रथम कर्मोंका फल इस जीवको नहीं होवे क्योंकि वो कर्म जीवके करे दूए नहीं है, जे कर कर्मके करे बिनाजी कर्मका फल होवे, तब तो अतिप्रसंग दृपण होवेगा, अरु बिना कर्मके

ईश्वरजी कर्मफल जोगने वास्ते नरककुंडमें जा गिरेगा, अरु जीव पी में काहेसें बनेगा ? जीवका उपादान कारण कोइ नही. जे कर कहोगे : ईश्वर जीवका उपादान कारण है, तब तो कारणके समान कार्यजी नां चाहियें. जैसा ईश्वर निर्मल, निःपाप, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी है, तैसाही व होवे, परंतु तैसा है नही. अरु जो ईश्वर जीवोंका उपादान कारण वे, तब तो ईश्वरही जीव बन कर नाना क्लेश जन्म मरण गर्नावासादि खोंका जोगने वाला हुआ, तब ईश्वरने यह अपने पगमें आप कुहाडा में मारा ? जो पूर्णानंद पद ठोड कर संसारकी विटंबनामें फला ? फेर पने आपकों निःपाप करने वास्ते वेदादि शास्त्र द्वारा कैइ तरेंका तप पादिक क्लेश करनां वताया ? इस वास्ते यह सर्व कहनां महा भूर्खोंका, इस वास्ते यह दूसरा विकल्पनी मिथ्या है.

३ तीसरा विकल्प, जीव और कर्म यह दोनों एक साथ उत्पन्न हूये, यहनी मिथ्या है, क्योंकि जो वस्तु समकालमें उत्पन्न होती है, सो आपसमें कारण कार्य रूप नही होती है, जब कर्म, जीवके करे सिद्ध न हूये, तब कर्मफलजी जीव नहीं जोगेगा, यह प्रत्यक्ष विरोध है, क्योंकि जीव तो कर्म जोके देखते है, अरु कर्म तथा जीवका उपादान कारण कोइ नहीं. इस वास्ते यह तिसरा विकल्पनी मिथ्या है.

४ चौथा विकल्प, जीव तो है परंतु जीवके कर्म नही यहनी मिथ्या है, क्योंकि जब जीवके कर्म नहीं, तो जीव दुःख सुख क्यों जोका है ? कर्म ; बिना संसारकी विचित्रता कदापि न होवेगी ? इस वास्ते यह चौथा विकल्पनी मिथ्या है.

५ पांचमा विकल्प, जीव अरु कर्म, यह दोनोही नहीं, यहनी मिथ्या है, क्योंकि जब जीवही नहीं, तब यह कौन कहता है, जो जीव अरु कर्म नहीं है, ऐसा कहने वाला जीव है ? कि दूसरा कोइ है ? इस वास्ते यह अवचनविरोध है, तो यह पांचमा विकल्पनी मिथ्या है. यह पांच विकल्प मिथ्यात्वरूप है, अरु सत्य विकल्प ठछ है, सो यह है.

६ ठछ विकल्प, जीव अरु कर्म, यह दोनों अनादि अपश्चानुपूर्वी है. प्रश्न—जब जीव अरु कर्म यह दोनों अनादि है, तब तो जीवकी त कर्मका नाश कदापि न होना चाहियें ?

उत्तर:-कर्म जो अनादि कहे हैं, सो प्रवाह अनादि हैं, इस सका द्य हो जाता है.

प्रश्न:-यह जो तुम बंध कहते हो, सो निर्हेतुक है? अथवा है? जे कर कहोगे कि निर्हेतुक है, तब तो "नित्य सत्त्वं" होवेगा "नित्य असत्त्वं" होवे गा, क्योंकि जिस वस्तुका हेतु नहीं, वो शबत् नित्य सत्त्वं होती है, अथवा खरशृंगवत् नित्य असत्त्वं निर्हेतुक होनेसे मोहका अनाव हो जावेगा, जे कर कहोगे कि है, तो हमको कही कि इस बंधके क्या हेतु है?

उत्तरपक्ष:-इस बंधके मूल हेतु चार हैं, अरु उत्तर हेतु यहां प्रथम चार प्रकारका बंध कहते हैं, तिसमें प्रथम तो सो प्रकृति कौनसी है? अरु उसका बंध क्या है? तहां मूल प्रकृति ठ है, उसमें १ मत्यादि ज्ञानका जो आवरण आह्लादन, सो २ सामान्य बोध चक्रु आदिका जो आवरण सो दर्शनावरण, ३ ख वेदीयें ( जोगीयें ) सो वेदनीय, ४ मोहे जीवकों विचित्रताकों करे, सो मोह, ५ सर्वथा जो कर्म चला जावे "एति याति चेत्यायु." उदयसे जीव जीता है सो ध्यायु, ६ नमावे जो गुणागुण गत्यादि करके आत्माकों, सो नामकर्म, ७ गोत्र शब्दकी व्युत्पत्ति ऐसें है "गो चां त्रायतइति गोत्रं" जिसके उदयसे जीव उंच नीच कुलका कहाता सो गोत्र, ८ अंतर कहियें विचाले जानादिके जो हो जावे, एतावता न जानादिक जीवमें होताकों न होने देवे, सो अंतराय, यह ध्यात रूप कर्म जो जीवके साथ क्षीर नीरकी तरें मिथ्यात्वादि हेतुओंसे बंध जावे, तिसका नाम प्रकृतिबंध है. २ इनही ध्यात प्रकृतियोंकी अर्थात् काल मर्यादा, जैसी कि यह प्रकृति इतना काल तक आत्माके साथ रहेगी, पीछेसें न रहेगी, जिस करके ऐसी स्थिति होवे, सो स्थिति बंध. ३ इनही ध्यात प्रकृतियोंमें तीव्र, मंद, रसका जो करना, सो अनुनागबंध, ४ कर्मप्रदेशका जो प्रमाण यथा इतने परमाणु इस प्रकृतिमें है उन परमाणुओंका जो आत्माके साथ बंध सो प्रदेशबंध.

इसका बंध इस तरें चार प्रकारें है. सो नव्य जीवोंके सुबोधके वास्तव चार प्रकारके बंधमें लड्डुका दृष्टांत लिखते हैं, जैसे एक लड्डु है, तिसका

जानाव वात हरणोका वा पित्त हरणोका वा कफ हरणोका इत्यादि होता  
 जैसेंही प्रकृति स्वभाव कर्मोका, किसी प्रकृतिका ज्ञानावरण करनेका  
 जानाव, कोसी प्रकृतिका दर्शन आवरण करनेका स्वभाव होता है, सो प्रकृ  
 तिवंध, १ कोइ लड्डु एक दिन रहके बिगड जाता है, कोइ दू, तिन, चार,  
 पंच, ष, सात, आठ, नव, दश, इग्यारह, बारह, तेरह, चौदह दिन, कोइ  
 पंद्रह, मासादि रहता है, पीछे बिगड जाता है. जैसेंही कर्मस्थितिची कोइ  
 लड्डु, पहर, दिन, पक्ष, मास, यावत् सीतेर कोटाकोटी सागरोपम लग रह  
 र फल दे कर, चली जाती है, यह दूसरा स्थितिवंध. ३ जैसें लड्डुमें रस  
 किसीमें कडुवा, किसीमें कपायेला, किसीमें मीठा, जैसेंही कर्मोंमें रस है  
 कृतीमें दुःख रूप, किसीमें सुख रूप, जो जो अवस्था जीवकी संसारमें  
 होती है, सो सर्व कर्मके अनुचागसें होती है, यह तीसरा अनुचाग बंध.  
 तथा ४ जैसें लड्डुका तोल, मान, कोइ तोला, कोइ ष टांकादि होता है, जैसे  
 ही कर्मप्रदेशोंकी गिणती किसी कर्ममें थोड़ी, किसीमें अधिक, होती है,  
 यह चौथा प्रदेश बंध यह दृष्टांत कर्मबंधमें है.

अथ बंधके हेतु लिखते हैं. एक तो मिथ्यात्व सो तत्त्वार्थ श्रद्धान  
 रहित होनां, इसरा पापोसें निवर्त होनेके परिणाम रहित होनां, सो अ  
 विरतिपणां, तीसरा कष नाम संसारका है, तथा कर्मका है, तिसका  
 जो ध्याय नाम ज्ञान सो कपाय, क्रोध, मान, माया, लोभ रूप. चौथा  
 योग सो मन, वचन, कायाका व्यापार, यह चारों, बंधके मूलहेतु हैं.

अथ उत्तर हेतु सत्तावन लिखते है. उत्तरमें प्रथम तो मिथ्यात्व पां  
 च प्रकारका है १ अनिग्रह मिथ्यात्व, २ अननिग्रह मिथ्यात्व, ३ अन्नि  
 निवेश मिथ्यात्व, ४ संशयमिथ्यात्व, ५ अज्ञानोग मिथ्यात्व.

१ प्रथम अनिग्रह मिथ्यात्व है, सो जो जीव ऐसा जानता है. कि  
 जो कुछ मैंने समजा है, सो सत्य है. औरोंकी समज ठीक नहीं है, सब  
 फूटकी परीक्षा करनेका मनची नहीं है, सब फूटका विचारची नहीं कर  
 ता है, यह मिथ्यात्व दीक्षित शाक्यादि अन्यमत ममतत्व धारीयोंको हो  
 तो है, वो अपने मनमें जैसे जानते हैं, कि जो मत, हमने अंगीकार  
 कीया है, वो सत्य है, और मत सर्व फूट है, जैसें जिसके परिणाम हो  
 वे. सो अनिग्रह मिथ्यात्व.

२ दूसरा अननिग्रह मिथ्यात्व, सो सर्व मतोंको अज्ञा माने मोक्ष है, इस वास्ते किसीको बुरा न कहना, सर्वको नमस्कार मिथ्यात्व, जिनोंने कोइ दर्शन ग्रहण नहीं करा, जैसें जोगोपाल तिनको है, क्योंकि यह अमृत अरु विपकों एक तरिखे जानने

३ तीसरा अननिवेश मिथ्यात्व, सो जो पुरुष जान करके प्रथम तो अज्ञानसें किसी शास्त्रार्थको नूल गया, पीछे जब कोइ विद्वांस हे कि तुम इस बातमें नूलते हो, तब फूठे मतका कदाग्रह ग्रहण जाल्यादि अनिमानसें कहनां न माने, उलटी स्वकपोलकल्पित बना करके अपने मनमाने मतको सिद्ध करे, वादमें हार जावे, न माने, ऐसा जीव अतिपापी, अरु बहुज संतारी होता है. ऐसी मिथ्यात्व, प्रायः जो जैनी (जैनमतको) विपरीत कथन करता है. उतमें ती है, जैसें गोष्ठमाहिलादिक दूये है, इस वार्ताको नाप्यकार देवसूरि नवांगीवृत्तिकारक नवतत्त्वप्रकरणकी नाप्यमें कहता है, या च नाप्यकारः ॥ गोष्ठामाहिलमाई एं, जं अनिनिविति तु तयं ॥” दि शब्दसें वोटिक शिवनूतिकों अननिवेशिक मिथ्यात्व जाननां.

४ चौथा संशय मिथ्यात्व, सो जिनोक्त तत्त्वमे शंका करणी, क्या यह जीव असंख्य प्रदेशी है? वा नहीं है? इस तरें सर्व पदार्थोंमें शंकाणी, तिससेंति जो उत्पन्न होवे, सो सांशयिक मिथ्यात्व. “तदाह ॥ कृत् ॥ सांशयिकं मिथ्यात्वं तदशेषया शंका संदेहो जिनोक्ततत्त्वेष्विति ॥ संशय मिथ्यात्वके होनेके कारण श्रीजिननज्जगणिक्रमाश्रमण ध्यानशतकमें लिखते है, कि एक तो जैनमत स्याद्वादरूप अनंतनयात्मक है, इस वास्ते जनां कविन है, तथा सप्तजंगीके सकलादेशी, विकलादेशी जंगीका अपट्टक, सात सौ नय, चार निक्षेप, इध्य, क्षेत्र, काल, जाव, तथा उत्सर्ग, २ अपवाद, ३ उत्सर्गापवाद, ४ अपवादोत्सर्ग, ५ उत्सर्गोत्सर्ग, अपवादापवाद, यह पञ्चजंगी तथा १ विधिवाद, २ चारित्रानुवाद, ३ विधिवाद, ४ यथास्थितवाद, इत्यादि अनंतनयापेक्षा जैनमतके शास्त्र कथन कीये दूये हैं, जब तांइ जिस अपेक्षा शास्त्रोमे कथन है - वो अपेक्षा न समजे, तब तांइ जैनशास्त्रका यथार्थ अर्थ समजनां कविन है. इनके समजनेके वास्ते बड़ी निर्मल बुद्धि चाहिये. सो थोडे जीवोंको है, तथा

त्रिके अर्थ बताने वाला गुरु पूरा चाहियें, सो नहीं है. इत्यादि निमित्त संशयमिथ्यात्व होता है.

५ पांचमा अनाजोग मिथ्यात्व, सो जिन जीवोंको उपयोग नहीं कि, अधर्म, क्या वस्तु है? ऐसा जो विकलेंद्रियादि जीव, तिनको अनाजोगमिथ्यात्व होता है. यह मिथ्यात्वके पांच जेद हैं. यह पांच मिथ्या में औरजी मिथ्यात्वके अनेक जेद हैं सोची इन पांचोंके अंतर्गत हैं, जेद इस प्रकारसें हैं.

१ प्रथम प्ररूपणा मिथ्यात्व, सो जिनवाणी रूप जो सूत्र, निर्युक्ति, व्युत्पत्ति, चूर्णी, टीका, इनसें विपरीत प्ररूपणा करे.

२ दूसरी प्रवर्तना मिथ्यात्व, सो जो काम,मिथ्यादृष्टि जीवों धर्म जान के करते हैं,उनकी देखा देखीसें उनकी करणी करे, ३ तीसरी परिणाम मिथ्यात्व, सो मनमें परिणाम विपरीत कदाग्रह रहे, शुद्ध शास्त्रार्थ माने नहीं.

४ चौथा प्रदेशमिथ्यात्व, सो मिथ्यात्वके पुञ्ज जो सत्तामें है, उन नाम प्रदेश मिथ्यात्व है. इन चारों जेदोंके अनेक जेद है, उसमेंसें तनेक लिखते है.

१ धर्म जो बीतराग सर्वज्ञने कहा है, तिसको अधर्म माने, २ अरु जो सा प्रवृत्ति प्रमुख आश्रवमयी अशुद्ध अधर्म है, उसको धर्म माने, ३ सत्यमार्ग है, उसको मिथ्यात्व कहे, ४ जो विपयीयोंका मार्ग है, उ को सत् मार्ग कहे, ५ जो साधु सत्तावीश गुणों करी विराजमान है, उ को असाधु कहे, ६ जो आरंभ परिग्रह विषय कपाय करके जरा दूआ अरु उपदेश ऐसा देता है, कि जिसके सुननेसें लोकोंको कुवासना, क्षयणा, कुबुद्धि उत्पन्न होवे, ऐसा गुरु पत्नरकी नौका समान ऐसे जो न्यलिंगी कुलिंगी तिनको साधु कहे, ७ पट्कायोंके जीवोंको अजीव माने, ८ पृ, सोना, जो अजीव है, उनको जीव माने, ९ मूर्ति पदार्थोंको अमूर्ति माने, १० अमूर्ति पदार्थोंको मूर्ति माने, यह दश जेद मिथ्यात्वके है.

तथा दूसरे ठे जेद मिथ्यात्वके हैं, सो कहते हैं. १ लौकिक देव, २ लौकिक रु, ३ लौकिक पर्व, ४ लोकोत्तर देव. ५ लोकोत्तर गुरु, ६ लोकोत्तर पर्व.

१ प्रथम लौकिक देवगत मिथ्यात्व जो है, सो जो देव, राग द्वेष करके रा दूआ है, एक उपर महेरवान होता है, एकका बिनाश करता है, स्त्री

के जोगविलासमें मग्न है, अरु अनेक प्रकारके शस्त्र जितके हाथमें अपनी ठकुरासमें अजिमाती है, हाथमें माला जपता है, सावध चेंडियका वध चाहाता है, ऐसे देवकों जो पुरुष परमेश्वर माने, परमेश्वरका अंश अवतार माने, और पूजे, तिसके कहे दूये शास्त्रसे कारी यज्ञादि करे, अनेक तरेंके पाप, धर्मके नामसे प्रवृत्त करे, क देवके अनेक जेद हैं. सो मिथ्यात्व सित्तरी प्रमुख ग्रंथोंसे प्रथम लौकिक देवगत मिथ्यात्व है.

१ दूसरा लौकिक गुरुगत मिथ्यात्व, सो जो अठारह पाप सेवे प्रकारका परिग्रह राखे, गृहस्थाश्रम सेवे, स्त्री, पुत्र, पुत्रीके परिवार होवे, तथा कुलिंगी मनःकल्पित नवा नवा वेष बना कर स्वभाव चलावे, अरु आरुंभरी होवे, बाह्य परिग्रह तो त्याग दीया है, परंतु तर ग्रंथि ठोडी नहीं, गुरु नाम धरावे, मंझलीसे विचरे, जिसकी चूल मिठी नही, औ जिसको गुह साध्यकी पीठाण नहीं, तिसका माने, तिसका बहुमान करे, तिससे मोह जाणी दान देवे, उतको पात्र जाणे, सो लौकिक गुरुगत मिथ्यात्व है.

३ तीसरा लौकिक पर्वगत मिथ्यात्व, सो १ अजापडवा, २ गुरुतीज, ४ गणेशचौथ, ५ नागपंचमी, ६ जीलणाठछ, ७ तम, ८ बुद्धाष्टमी, ९ नोलीनवमी, १० विजयदशमी, ११ १२ वत्सदादशी, १३ धनतेरस, १४ अनंतचौदश, १५ अर्मावास्या, सोमवतीअर्मावास्या, १७ रक्षाबंध, १८ होली, १९ आहोइ, २० २१ सोमप्रदोष, २२ लोडी, २३ आदित्यवार, २४ उत्तरायण, २५ २६ ग्रहण, २७ नवरात्र, २८ आरु, २९ पीपलको पाणी देना, ३० को माताका घोडा मानके पूजणां, ३१ गोत्राटी, ३२ अन्न कूट, ३३ क समशान, कवरोका मेला. इत्यादि यह लौकिक पर्वगत मिथ्यात्व है.

४ चौथा लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व, सो देव श्रीअरिहंत, धर्मका आशु विश्वोपकार सागर, परमपूज्य, परमेश्वर, सकल दोष रहित, शुद्ध, निरालस तिनकी स्थापनारूप जो प्रतिमा, तिसके आगे इस लोकके पौजलिक सुख आशासे मनमे कल्पना करे, जे कर मेरा यह काम हो जावेगा, तो मेरी डी जारी पूजा करुंगा, ठत्र चढावंगा, दीपमालाकी रोशनी करुंगा, रात

करुंगा, जैसें नावोंसें बीतरागकों माने, इस वास्ते यह मिथ्यात्व है, पुरुष चितामणिका दातासेंती काचका टुकड़ा मागे, वो युक्त नहीं. जिसें अपणे कर्मोदयका स्वरूप मालुम नहीं, वोही जीव ऐसा होता है, लोकोत्तरदेवगत मिथ्यात्व है.

५ पांचमा लोकोत्तरगुरुगत मिथ्यात्व, सो जो साधुका वेप रके, अत्राप निर्गुणी होवे, जिनवाणीका उच्चापक होवे, अपणे मनःकल्पितका देश वेवे, सूत्रका सच्चा अर्थ तोडे, ऐसा लिंगी उत्सूत्रका प्ररूपक तिसरे गुरु जान कर मान, सन्मान करे. तथा जो साधु गुणी, तपस्वी, आभ्युक्त, बहुक्रियावंत, तिसकी इस लोक इच्छा करके सेवा करे, बहुमान करे, जैसें जाणे कि इनकी बहुत सेवा करुंगा, तब इनकी मेहरवानगीसें धरुण्डि, स्त्री, पुत्रादि मुजकों मिलेंगे, यह लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व है. ६ ठछा लोकोत्तरपर्वगत मिथ्यात्व, सो प्रभुके पांच कव्याणिककी तिथि दूसरे पर्वके दिन, तिन दिनोमें धनादिके वास्ते जप, तप, धर्मकरणी, सो लोकोत्तरपर्वगत मिथ्यात्व है. इत्यादि मिथ्यात्वके अनेक विधा हैं, परंतु वो सब पूर्वोक्त अग्रिग्रहादि मिथ्यात्वमेंही अंतर्भूत है.

पांच प्रकारका मिथ्यात्व कह्या, यह प्रथमबंध हेतु कह्या.

अब बारह प्रकारकी अविरति कहते हैं. पांच इंद्रिय, ठछा मन, अरु गय, यह बारह प्रकार हैं. तिसका स्वरूप इस तरेसें है, पांच इंद्रियोंको अपणे विषयमें प्रवृत्तावे, सो पांच अत्रत, अरु ठछा किती पापकी तिसें मनका निरोध न करनां सो अत्रत है, तथा पड्विध जीवनिकायकी तामें प्रवृत्त होवे, यह बारह प्रकारें अविरति है, यह दूसरा बंधहेतु कह्या. तीसरा कषायबंध हेतु है, उनके सोलां कषाय, अरु नव नोकषाय कर पञ्चीस जेद हैं. अनंतानुबंधि क्रोध, मान, माया, अरु लोन, जैसें अत्रप्रत्याख्यान क्रोधादि चार, तथा प्रत्याख्यान क्रोधादि चार, अरु संतान क्रोधादि चार, एवं सोलह कषाय, इनके सहचारी नव नोकषाय है, का नाम कहते हैं. १ हास्य, २ रति, ३ अरति, ४ शोक, ५ जय, ६ हता, ७ स्त्रीवेद, ८ पुरुषवेद, ९ नपुंसकवेद इन सर्वका व्याख्यान पीठें यथाये है, इनसें कर्मका बंध होता है, यही संसार स्थितिका मूल है. यह तीसरा बंध हेतु कह्या.



चौथा योगनामा बंधहेतु हैं. सो योग, मन, वचन, अरु काया, ये तीनों प्रकारका है. इन तीनोंके पंदरा जेद हैं. तहां प्रथम मनोयोग चार प्रकारका है, और वचन योग चार प्रकारका है, अरु काययोग सात प्रकारका है, ये सब मिलकर पंदरा जेद हैं.

० मन नाम अंतःकरणका है, सो चार प्रकारें है. १ सत्यमनोयोग, २ सत्यमनोयोग, ३ मिश्रमनोयोग, ४ व्यवहारमनोयोग. मन क्या वस्तु है, कायाके व्यापारसँ पुञ्जल ग्रहणा करके उन पुञ्जलोंको जब मनोयोग करके काढता है, तिसका नाम इव्यमन कहते हैं, अरु उन पुञ्जलोंके संयोगसँ जो ज्ञान उत्पन्न हो ता है, तिसका नाम ज्ञानमन है. उस ज्ञान करके जो व्यवहार सिद्ध होता है, तिस व्यवहार करके मनकी सत्यादि व्यपदेशकों प्राप्त हो ता है, अरु उपचार करके इव्यमनकी ज्ञायक है, मनमें जो सत्य व्यवहारका धारण करता, सो सत्यमन, सो व्यवहार यह है कि पापसँ निवृत्तनां वचनके उच्चारण बिना जो चिंतवन करनां कि मुनि है, जीवादि पदार्थ सत् है, इत्यादि मन शब्द करके इहां मनोयोग नोईंइयावरण कर्मके क्लयोपशमसँ उत्पन्न हुआ जो मनोज्ञान, उस करके परिणत आत्माको व जाधान करने वाला मनोवर्गणाके संबंधसँ उत्पन्न हुआ वीर्यविशेष, सो इहां मन जाननां. इसी मनके चार जेद है. जैसेही वचनयोग, सो वचनकी वर्गणा अर्थात् परमाणुका समूह, उस वचन वर्गणा करके उत्पन्न नईं सामर्थ्यविशेष, आत्माकी परिणति, सो वचनयोग जाननां.

मनके चार जेदमेंसू सत्यमनोयोगका स्वरूप उपर लिख आये हैं. सो प्रथम जेद. अरु दूसरा मृषामन, सो धर्म नहीं, पाप नहीं, नरक, स्वर्ग, कुठ नहीं. इत्यादिक जो वचन निरपेक्ष चित्तवना करनी, सो जाननां. तीसरा मिश्रमन, सो सच्च, अरु जूठ, इन दोनोंका चिंतन, जैसें गोवर्गकों देख कर मनमें चिंतन करना कि यह सर्व गीवां हैं, यह मिश्र इस वास्ते है कि उस गोवर्गमें बलदजी है, इत्यादि मिश्रवचन. चौथा " हे श्रामं गह्व " इत्यादि चिंतन करनां, सो व्यवहारमन, इसी तरें जब वचन योगसँ पूर्वोक्त चारोंका उच्चारण करे, तब वचन योगकी चार प्रकारका जान लेनां. यह चार मनके अरु चार वचनके एवं आठ जेद हूवें.

अब सत्यवचन दश प्रकारका है, १ जनपद सत्य, सो जिस देशमें जि

स वस्तुका जो नाम बोलते है, उस देशमें वो नाम सत्य है, जैसे कोंकण देशमें पाणीकों पिह्व कहते है, कोइ देशमें बडा पुरुपकों वेटा कहते है, वा वेटेको काका कहते है, किसी देशमें पिताकों चाइ, सासुकों आइ, इत्यादि कहते हैं, सो जनपदसत्य. २ दूसरा सम्मतसत्य, सो जैसे पंकसें उत्पन्न हुआ मैमक, सिवाल, कमल, तोनी पंकज शब्द करके कमलही पूर्व विद्या नोन सम्मत कीया है, परंतु मैमक, सिवाल नहीं. ३ तीसरा स्थापनासत्य, सो जिसीकी प्रतिमा होवे, तिसकों उसके नामसें कहनां, जैसे महावीर, पार्श्वनाथ जी अर्हतकी प्रतिमा होवे, उस प्रतिमाकों महावीर, पार्श्वनाथ कहे, तो सत्य है, परंतु उसकों पत्तर कहे, सो मृपावादी है, जैसे स्याही और कागज का नाम, स्थापना करनेसें रूग्, यजु, साम, अथर्व, कहे जाते हैं, आचार्यादि अंग कहे जाते है, तथा काष्ठके आकार विशेषकों किवाड कहे जाते है, ईंट, पत्तर, चूनेकों स्थंज कहना, पुस्तकमें त्रिकोणादि चित्र लिखके उसकों आर्यावर्त्त, चारतवर्ष, जंबूद्वीपादि कहनां. तथा ककार, खकार, स्याहीकी स्थापनाकों कहनां. इस स्थापनासें पुरुपकी कठुक सिद्धि जरूर होती है, नहीं तो नाना प्रकारकी स्थापना, पुरुप, किस वास्ते करते है ? इस वास्ते श्रीमहावीर तथा श्रीपार्श्वनाथजीकी स्थापनारूप प्रतिमाकों श्री महावीर पार्श्वनाथजी कहनां, यह स्थापना सत्य है इसमें इतना विशेष है, कि जो देव शुद्ध है, उसकी स्थापनाची शुद्ध है, अरु जो देव शुद्ध नहीं, उसकी स्थापनाची शुद्ध नहीं, परंतु उस स्थापनाकों उनका देव कहना, यह बात सत्य है. ४ चौथा नामसत्य, सो किसीने अपने पुत्रका नाम कुजवर्द्धन रक्का है, अरु जिस दिनसें वो पुत्र जन्मा है, उस दिनसें उस कुजका नाश होता चला जाता है, तोनी उस पुत्रकों कुजवर्द्धन नामसें पुकारे, तो सत्य है ५ पांचमा रूपसत्य, सो चाहे गुणोंसें ब्रह्मणी है, तोनी साधुके वेपवालेकों साधु कहे, तो सत्य है, ६ ठछा प्रतीतसत्य, अर्थात् अपेक्षासत्य, सो जैसे मध्यमाकी अपेक्षा अनानिकाकों ठोटी कहना. ७ सातमा व्यवहारसत्य, सो जैसे पर्वत जलता है, रसता चलता है. ८ आठमा जावसत्य, सो जैसे तोतेमें पांच रंग है, तोनी तोता हरे रंगका कहना. ९ नवमा योगसत्य, सो जैसे दंभके योगसें दंभी कहनां. १० दशमा उपमासत्य, सो जैसे मुख, चङ्कवत् कहनां यह दश प्रकारका सत्य है.

अब दश प्रकारके जूठ कहते हैं. १ क्रोधनिश्चित सो क्रोधके वश हो कर जो वचन बोले, सो असत्य, २ झैसैही मानके उदयसँ बोले, सो असत्य, ३ झैसँ मायाके उदयसँ बोले, सो असत्य, ४ लोचके, ५ रागके, ६ द्वेषके उदयसँ बोले, सो असत्य, ७ हास्यके वश बोले, ८ जपके वश बोले, ९ विकथा करे, सो असत्य. १० जिस बोलनेमें जीवकी हिंसा होवे, सो असत्य. यह दश प्रकारका असत्य वचन है.

अब दश प्रकारका मिश्रवचन कहते हैं १ उत्पन्न मिश्रित, सो बिना खबर कह देना कि इस नगरमें आज दश बालक जन्मे है, इत्यादि. २ विगत मिश्रित, सो जैसे बिना खबरके कहना कि इस नगरमें आज दश मनुष्य मरे है. ३ उत्पन्नविगतमिश्रित, सो जैसे बिना खबरके कहना कि इस नगरमें आज दश जन्मे हैं, अरु दशही मरे है ४ जीवमिश्रित, सो जीवा जीवकी राशिकों कहना कि यह जीव है. ५ अजीवमिश्रित, सो अन्नकी राशिकों कहना कि यह अजीव है ६ जीवाजीवमिश्रित, सो जीवाजीव दोनोंकी मिश्रजापा बोले. ७ अनंतमिश्रित, सो मूली आदिकोंके अवयवोंमें किसी जगे अनंत जीव हैं, किसी जगे प्रत्येक जीव है, उनकों प्रत्येक काय कहै. ८ प्रत्येकमिश्रित, सो प्रत्येक जीवोंको अनंतकाय कहै. ९ अर्धमिश्रित, सो दो घडीके तडकेमें कहे कि दिन उग्या है. १० अर्धधामिश्रित, सो घडी एक रात्रि गया, दिनका उदय कहै. यह दश प्रकारका मिश्रवचन है.

अब व्यवहार वचनके बारह जेद कहते हैं. १ आमंत्रण करना, कि हे जगवन् ! २ आज्ञापना, सो यह काम कर, तथा यह वस्तु लाव ३ याचना, सो यह वस्तु हमकों दीजिये. ४ पृष्ठना, सो अमुक गामका मार्ग कौन सा है ? ५ प्रज्ञापना, सो धर्म झैसँ होता है. ६ प्रत्याख्यानी, सो यह काम हम नहीं करेंगे. ७ इष्टानुज्ञोम, सो यथासुख ८ अनजिष्टहीता, सो मुझे खबर नहीं ९ अजिष्टहीता, सो मुझे खबर है. १० सशय, सो क्या कर खबर नहीं है ? ११ प्रगट अर्थ कहै. १२ अप्रगट अर्थ कहै. यह बारह प्रकारका व्यवहारवचन है.

और कायायोगके सात जेद हैं. प्रथम कायायोग उसकों कहते हैं, कि आत्माके निवासज्ञत. पुञ्जइव्य घटित बूढेको कुर्वलको अर्धघट चनत जैसे लाठी आदि है, तिसकी तरें विपम काममें जिसके योगसँ

जीवके वीर्यका परिणाम सामर्थ्य, सो कायायोग है, जैसें अग्निके संयोग से घटकी रक्तता होती है, तैसेंही आत्माको कायके करण संबंधसे वीर्य परिणाम है, इस काययोगके सात जेद हैं. १ श्रौदारिककाययोग, २ श्रौदारिकमिश्रकाययोग, ३ वैक्रियकाययोग, ४ वैक्रियमिश्रकाययोग, ५ आहारककाययोग, ६ आहारकमिश्रकाययोग, ७ कार्मणकाययोग. उसमेंलुं प्रथमके दो काययोग तो मनुष्य, अरु तिर्यचमें होते है, अगले दो स्वर्गवासी देवताओंमें होते हैं, अरु अगले दो चौदह पूर्वपाठी साधुमें होते है, अरु जीव जब काल करके परजवमें जाता है, तब रस्तेमें कार्मण शरीर होता है, तथा समुद्घात अवस्थामें केवलीमें होता है, अरु जो तैजस शरीर, आहार पाचन करनेमें समर्थ युक्त है, सो कार्मण योगके अंतर नूत होनेसें पृथग् ग्रहण नहीं कीया है यह सप्तविध काययोग हैं. यह सब मिल कर बंधतत्त्वके उत्तर जेद सत्तावन्न दूये है ॥ इति बंधतत्त्व संपूर्ण.

अथ मोक्षतत्त्व लिखते है. ॥ तहां प्रथम मोक्ष किसको कहते है ? ॥ यड क ॥ जीवस्य कृत्स्नकर्मद्वयेण यत्स्वरूपावस्थानं तन्मोक्ष उच्यते ॥ नावार्थ.— जीवके संपूर्ण ज्ञानावरणादि कर्मोंके क्षय होने करके जो स्वरूपमें रहना है, सो मोक्ष कहते है वो जो मोक्ष है, सो जीवका धर्म है. अरु धर्म धर्मीका कथचित् अजेद होनेसें धर्मी जो सिद्ध, तिनकी जो प्ररूपणा, सो नी मोक्ष प्ररूपणा है, क्योंकि मोक्ष जो है, सो जीवपर्याय है, सो जीव पर्याय कथचित् सिद्ध जीवसें अनिन्न है, सर्वथा जीवकी पर्याय जीवसे निन्न नहीं हो सकती है ॥ तडुक्तं ॥ श्लोक ॥ इव्यं पर्यायवियुतं, पर्यायाड्व्यवर्जिताः ॥ क्व कदा केन किं रूपा, दृष्टा मानेन केन वेति ॥ १ ॥ नावार्थ.— इव्य पर्यायों करके रहित अरु पर्यायों इव्य वर्जित अर्थात् रहित, किसी जगे, किसी अवसरमें, किसी प्रमाणसें, किसीने कोइ रूप देखा है ?

अब सिद्धोंका स्वरूप नव द्वारोंसें सूत्रकार अरु ज्ञाप्यकार कहते हैं. १ सत्पद प्ररूपणा, २ इव्यप्रमाण, ३ क्षेत्र, ४ स्पर्शना, ५ काल, ६ अंतर, ७ ज्ञाग, ८ ज्ञाव, ९ अद्वैतपवहुत्व. इन नव द्वारों करके सिद्धोंका स्वरूप लिखते हैं. १ प्रथम सत्पद प्ररूपणा द्वार, सो जो सत्ता विद्यमानता, तिसका कहने वाला पद, सो सत्पद सिद्ध है, वा नहीं सिद्ध है ? सो गति आदि चौद पदोंमें कहना. यथा “पंचविधा” १ पाच प्रकार गति है,

१ नरकगति, २ तिर्यग्गति, ३ मनुष्यगति, ४ देवगति, ५ सिद्धगति। तत्र सिद्धगति वर्जके शेष चार गतिमें सिद्ध नहीं। यद्यपि १ कर्मसिद्ध, २ ल्पसिद्ध, ३ विद्यासिद्ध, ४ मन्त्रसिद्ध, ५ योगसिद्ध, ६ आगमसिद्ध, ७ अर्थसिद्ध, ८ यात्रासिद्ध, ९ अग्निप्रायसिद्ध, १० तपःसिद्ध, ११ कर्मद्वयसिद्ध। जैसे अनेक तरेके सिद्ध आवश्यक्की नियुक्ति करने कहे हैं। तोनी इहां जो कर्मद्वय करके सिद्ध हुआ है, तिसका अधिकार है, उन हीकों मोक्षपर्याय है, औरोंकों नहीं। १ इन्द्रिय स्पर्शनादि पांच है, एक इन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पांच इन्द्रिय। इन पांच प्रकारोंमें सिद्ध पणां नहीं, क्योंकि सर्वथा शरीरके परित्यागनेसे सिद्ध होता है, जहां शरीर नहीं, तहां इन्द्रियनी कोइ नहीं इसी वास्ते सिद्ध अतीन्द्रिय है, २-१ पृथिवीकाय, २ अक्काय, ३ तेजकाय, ४ पवनकाय, ५ वनस्पतिकाय, ६ त्रसकाय। इन ठही कार्योंके जीवोंमें सिद्धपणां नहीं। क्योंकि सिद्ध जो है, सो अक्काय (काय रहित है) ४ काय, वचन, अरु मन जेद करके योग तीन है। उसमें केवल काययोग वाले एकेन्द्रिय जीव हैं, अरु काय वचन योग वाले द्वीन्द्रियादि असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यंत जीव है, अरु काय, वचन, मन योग वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव हैं, इन तीनों योगोंमें सिद्धपणेकी सत्ता नहीं, क्योंकि सिद्ध अयोगी है, अरु अयोगी पणां तो काय वचन अरु मनके अभावसे होता है। ५ स्त्री, पुरुष, नपुंसक, इन तीनों वेदोंमें सिद्ध पदकी सत्ताका अभाव है, क्योंकि सिद्ध जो है, सो पूर्वोक्त हेतुसे अवेदी है। ६ क्रोध, मान, माया, लोभ, इन चारों कषायोंमें सिद्ध पणां नहीं है, क्योंकि सिद्ध अकषायी है, सो अकषायिपणा कर्मके अभावसे होता है, ७ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अचधिज्ञान, मन पर्यायज्ञान, केवल ज्ञान। यह पांच प्रकारका ज्ञान है। अरु मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विचंगज्ञान, यह तीन अज्ञान है। उसमें आदिके चारों ज्ञानोंमें अरु तीनों अज्ञानोंमें सिद्धपणां नहीं है, एक केवलज्ञानमें सिद्धपणां है, सो केवलज्ञान, इहां सिद्धावस्थाका जानना, परंतु सयोगी अवस्थाका नहीं। ८ सामायिक, उदोपस्थापनीय, परिहारविद्युद्धि, सूक्ष्मसंपराय, अरु यथारख्यात। यह पांच चारित्र, तथा इनके विपक्षी देश समय, अरु अ संयम। तहां पांचविध चारित्रमें तथा दोनो विपक्षोंमें सिद्धपणां मोक्ष

णा नहीं, क्योंकि यह सर्व शरीरादिकके दूयें होते हैं, सो शरीरादिक सि  
 रोंकों है नहीं. ए चक्षु, श्रवण, श्रवण, श्रवण, श्रवण, इन चारों दर्शनमें  
 आदिके तीनों दर्शनमें सिद्धपणां नहीं, परंतु केवलदर्शनमें केवल ज्ञा  
 त्वत् जान लेनां. १० कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म, श्रु, यह  
 प्रकारकी लेश्यायोंमें सिद्धपणां नहीं, क्योंकि लेश्या जो है, सो नव  
 य जीवकी पर्याय है, सिद्ध तो अलेशी हैं ११ नव्य, अनव्य, इन दो  
 रोंमें सिद्धपणां नहीं, क्योंकि नव्यजीव उसकों कहते हैं, कि जिसकों सि  
 ष्टपदकी प्राप्ति होवेगी, श्रु सिद्धोंमें तो नवीन कोऽ सिद्ध पदवी पाव  
 णी नहीं है, इस वास्ते नव्य पणा सिद्धोंमें नहीं. श्रु अनव्यजीव उस  
 णों कहते हैं, कि जिसमें सिद्ध होनेकी योग्यता किसी कालमेंनी न होवे,  
 प्रैसा सिद्धका जीव नहीं है, क्योंकि उसमें अतीतकालमें सिद्ध होनेकी  
 योग्यता थी, इस वास्ते सिद्ध अनव्यनी नहीं. सिद्ध जो है, सो नोनव्य  
 श्रु अनव्य है, यह श्रात वचननी है १२ द्वायिक, द्वायोपशम, उपशम,  
 तासादन, श्रु वेदक यह सम्यक्त्व पांच प्रकारका है. इनका विपक्षी ए  
 ष मिथ्यात्व, दूसरा सम्यक्त्व मिथ्यात्व, सो मिश्र है, तिनमेंसु द्वायिक व  
 जत चार सम्यक्त्व श्रु मिथ्यात्व, तथा मिश्र, इनमें सिद्धपद नहीं, क्यों  
 के यह सर्व द्वायोपशमिकादि नाव वर्त्ती हैं, श्रु द्वायिक सम्यक्त्वमें सि  
 ष्ट पद है, द्वायिक सम्यक्त्वनी दो तरेंकी है एक श्रु, दूसरी अश्रु,  
 यहां श्रु अपाय, सत् इव्य रहित नवस्थ केवलीयोके है, श्रु सिद्धोंके  
 ष्ट जीव स्वभावरूप सम्यक् दृष्टि है, सादि अपर्यवसान है, श्रु अश्रु  
 ष्ट अपाय सहचारिणी श्रेणिकादिकोंकी तरे सम्यक् दृष्टि होना, यह द्वा  
 येरु सादि अपर्यवसाना है तदा अश्रु द्वायिकमें सिद्ध पद नहीं. क्यों  
 के उसके अपाय सहचारी है, श्रु श्रु द्वायिकमें तो सिद्ध सत्ताका वि  
 रोध नहीं, क्योंकि सिद्ध अवस्थामे श्रु द्वायिक जाती नहीं रहती है,  
 प्रपाय, मतिज्ञानाशका नाम है श्रु सत् इव्य श्रु सम्यक्त्वके दक्षिणों  
 णा नाम है, इन दोनोंका अभाव होनेसे द्वायिक सम्यक्त्व होता है. १३  
 ज्ञा यद्यपि तीन प्रकारकी है. १ हेतुवादीपदेगिनी, २ दृष्टिवादीपदेगि  
 णी, ३ दीर्घकालिकी. तोनी दीर्घकालिकी सज्ञा करके जो संज्ञा है, सोही  
 यवहारमें प्राय. ग्रहण कीये जाते हैं, संज्ञा हावे जिनके सो संज्ञा

जैसेकि यह करा है, यह करुंगा, यह में कर रहा हों, ऐसा जो विषय विषय मनोविज्ञानवाले जीव हैं, तिनकों सङ्गी कहते हैं. इनसे जो विर रीत होवे, सो असंङ्गी जानने यह संङ्गी तथा असंङ्गी, इन दोनोहीमें सिद्ध पद नहीं. क्योंकि सिद्ध तो नोसंङ्गी नोअसंङ्गी है, १४ अोज आहार, लोम आहार, प्रक्षेप आहार, अत्र आहार, तीन प्रकारका है. इन तिनके आहारोमें सिद्ध नहीं. यह प्रथम सत्पद प्ररूपण द्वार कहा.

दूसरा इव्य प्रमाण द्वार लिखते हैं गिणती करियें तो सिद्धोंके जीव अनंत हैं. तीसरा क्षेत्र द्वार, सो आकाशके एक देशमें सर्व सिद्ध रहते हैं, वो आकाशका देश कितना बडा है? सो कहते हैं, कि धर्मास्तिकायाविक्र पांच इव्य, जहां तक है, तहां तक लोक है, ऐसा जो लोक संबंधि आकाश, तिसके असख्यमे जागमें सिद्ध रहेते हैं. चौथा स्पर्शना द्वार, सो तने आकाशमें सिद्ध रहते हैं, स्पर्शना उससे किंचित् अधिक है. पाचमा काल द्वार, सो एक सिद्धके आश्री सादि अनतकाल है, अरु सर्व सिद्धाश्रित अनादि अनंतकाल जानना. षष्ठा अंतर द्वार, सो सिद्धोंके विचार अंतर नहीं, सर्व सिद्ध मिलके एकही रूपवत् रहने है. सातमा जाव द्वार, सो सिद्ध जे है ते सर्व जीवोंके अनतमे जागमें है आत्मा जाव द्वार, सो सिद्धोंको ह्याधिक पारिणामिक जाव है, शेष जाव नहीं. नवमा अल्प बहुत्व द्वार, सो सर्वसे थोडे अनंतर सिद्ध है, अनतर सिद्ध उनको कहते हैं कि जिनको सिद्ध हुआ, एक समय हुआ है, तिनसे परंपर सिद्ध अनंत गुणे हुए है, वै मास सिद्ध होनेमे उत्कृष्ट अंतर होता है. यह अल्प बहुत्व द्वार कहा, यह मोक्षतत्त्वका स्वरूप संक्षेपमात्र लिखा है, जे कर विशेष करके सिद्धोंका स्वरूप देखना होवे, तदा नदीसूत्र, प्रज्ञापत्रसूत्र, सिद्धप्राज्ञतसूत्र, सिद्धपंचाशिका, देवाचार्यकृत नवतत्त्व प्रकरणकी वृत्ति देख लेनी. तथा आगे चतुर्दश गुणस्थानमेंजी सिद्धोंका कतुक स्वरूप लिखेंगे ॥ इति श्री तपगह्वीयमुनिश्रीबुद्धिविजयशिष्य मुनि आ नदविजय आत्मारामविरचिते जैनतत्त्वादर्शे नवतत्त्व स्वरूपनिरूपणनामा पंचम. परिच्छेद. संपूर्ण. ॥ ५ ॥

॥ अथ पष्ठ परिच्छेद प्रारंभः ॥

यह पष्ठ परिच्छेदमें चौदह गुणस्थानका स्वरूप किंचित् मात्र लिखते हैं. जैन मतमें नव्य जीवोंको सिद्धिसौधके चढने वास्ते गुणोंकी जो श्रेणी है, सोही निसरणी है, तिस गुण निसरणोंमें पगधरणरूप गुणोंसे अंतरकी प्राप्तिरूप जो स्थान, अर्थात् जूमिका है, सो चौदह हैं, तिनका नाम कहते हैं. १ मिथ्यात्व गुणस्थानक, २ सास्वादन गुणस्थानक, ३ अश्रु गुणस्थानक, ४ अविरतिसम्यक्दृष्टि गुणस्थानक, ५ देशविरति गुणस्थानक, ६ प्रमत्तसंयत गुणस्थानक, ७ अप्रमत्तसंयत गुणस्थानक, ८ पूर्वकरण गुणस्थानक, ९ अनिवृत्तवादर गुणस्थानक, १० सूक्ष्मसपरा गुणस्थानक, ११ उपशांतमोह गुणस्थानक, १२ क्षीणमोह गुणस्थानक, १३ सयोगीकेवली गुणस्थानक, १४ अयोगीकेवली गुणस्थानक. यही चौदह गुणस्थानक अर्थात् गुणरूप जूमिकाके नाम हैं.

तहां प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानकका स्वरूप कहते हैं, उसमेंनी प्रथम व्यक्त, अव्यक्त, मिथ्यात्वका स्वरूप कहते हैं जो स्पष्टचैतन्यसंज्ञी चेदिय जीवोंकी अदेव, अगुरु औ अधर्म, इन तीनोंमें क्रम करके देव, गुरु, औ धर्मकी बुद्धि होवे, सो व्यक्तमिथ्यात्व है. अरु उपलक्षणसें जो यदि नव पदार्थोंमें जिसकी श्रद्धा नही, अरु जिनोक्त तत्त्वसें जो विपरीत रूपणा करणी, तथा जिनोक्त तत्त्वमें संशय करणां, तथा जिनोक्त तत्त्वमें दूषणोंका आरोप करणां, इत्यादि. तथा आनिग्राहिकादि जो पांच मिथ्यात्व है, तिनमें एकरु अनाजोगिकमिथ्यात्व तो अव्यक्त मिथ्यात्व है, शेष चार जेद, व्यक्त मिथ्यात्वके हैं तथा "अधर्मे धम्मसन्ना इत्यादि" इति प्रकारकी जो मिथ्यात्व है, सो सर्व व्यक्त मिथ्यात्व है. अरु अथरु जो अनादि कालसें मोहनीय प्रकृतिरूप मिथ्यात्व सत् दर्शनरूप आत्माके गुणका आच्छादक जीवके साथ सदा अविनाशवि है, सो अव्यक्तमिथ्यात्व है.

अथ मिथ्यात्वको गुण स्थानक कित्नी रीतीसें कहते हैं? सो लिखते हैं. अनादि अव्यक्त मिथ्यात्व अव्यवहार राशिवर्ती जीवमें सदा होती है, अरु व्यक्त मिथ्यात्वकी जो बुद्धि है, तिस बुद्धिकी जो प्राप्ति है, सो मिथ्यात्व गुणस्थानक है.



प्रश्न - मिथ्यात्व गुणस्थानमें सर्व जीवोंके स्थान मिलते हैं, जैनशास्त्रका कथन है, तो फेर कैसे व्यक्त मिथ्यात्वकी बुद्धिको गुणस्थान रूपता कहते हैं ?

उत्तर - सर्वज्ञाव सर्व जीवोंने पूर्वे अनंत वार पाया है, इस वचनके प्रमाणसे जो प्राप्तव्यक्त मिथ्यात्वबुद्धिवाले जीव, व्यवहार राशिवर्ती हैं, सोही प्रथम गुणस्थानवाले जीव कहे जाते हैं, नतु अव्यवहार राशिवर्ती जीव ? क्योंकि वो अव्यक्तमिथ्यात्व वाले हैं, इस वास्ते दोष नहीं.

अथ मिथ्यात्व रूप दूषणका स्वरूप कहते हैं जैसे जीव मनुष्य टिक प्राणी मदिरेके उन्मादसे हित, वा अहित, यह कुठनी नष्टत्व होनेसे नहीं जानता है, तैसेही मिथ्यात्व करके मोहित जीव धर्मात्मक सम्यक् नहीं जानता है ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ मिथ्यात्वेनालीढचिन्ता नितान्तं तत्त्वातत्त्व जानते नैव जीवा ॥ किं जात्यंधा कुत्रचिदस्तुजाते, रम्याभ्य व्यक्तमासादयेयुः ॥ १ ॥ इति ॥ अथ मिथ्यात्वकी स्थिति कहते हैं, अज्ञानव्य जीवोंकी अपेक्षा मिथ्यात्व जो है, अरु सामान्य प्रकारे अव्यक्त मिथ्यात्व, इनकी अनादि अनंत स्थिति है, सोइ स्थिति ज्ञानव्य जीवोंकी अपेक्षा अनादि सात है, यह स्थिति सामान्यप्रकार करके मिथ्यात्वकी अपेक्षा दिखलाइ है, जे कर मिथ्यात्व गुणस्थानककी स्थिति विचारिये, तदा ज्ञान जीवोंकी अपेक्षा अनादि सात हैं तथा सादि सातनी हैं, अरु अज्ञान जीवोंकी अपेक्षा अनादि अनंत है, जब मिथ्यात्व गुणस्थानकमें जीव वर्त्तता है तत्र एक सौ बीस बंध प्रायोग्य कर्मप्रकृतियोंमेंसे १ तीर्थंकर नाम कर्मकी प्रकृति, २ आहारकशरीर, ३ आहारकोपाग, यह तीन प्रकृति नहीं बांधता है जेप एक सौ सत्तरा प्रकृतिका बंध करता है, तथा एक सौ बावीस कर्म प्रकृति जो उदय प्रायोग्य है, तिनमेंसे १ मिश्रमोहनीय, २ सम्यक्त्वमोहनीय, ३ आहारक, ४ आहारकोपाग, ५ तीर्थंकर नाम, यह पांच कर्मप्रकृति वर्जके जेप एक सौ सत्तरा प्रकृतिका बंध है, अरु एक सौ अठतालीस कर्म प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति ॥ १ ॥

अथ दूसरा सास्वादन गुणस्थानकका स्वरूप कहते हैं उत्तम प्रथम तो यह गुणस्थानकका कारणभूत उपशम सम्यक्त्व है, तिनका स्वरूप कहते हैं, जीवमे अनादिकालसंभूत (उत्पन्न) मिथ्याकर्मकी उपशम

तेसे अनादिकाल उद्भव मिथ्याकर्मके उपशम होनेसे, ग्रंथिच्छेद करण कालसे पीछे औपशमिक सम्यक्त्व होता है, यह सामान्य स्वरूप है, अतः विशेषस्वरूप ऐसे हैं कि औपशमिक सम्यक्त्व दो प्रकारका है, एक तो अंतरकरणीय औपशमिक सम्यक्त्व, अरु दूसरा स्वश्रेणिगत, अर्थात् उपशमश्रेणिगत औपशमिक सम्यक्त्व है. तहां अपूर्व करण करके ही कहा है, ग्रंथिच्छेद जिसने, अरु मिथ्यात्व कर्म पुञ्जल राशिके तीन पुञ्ज करे जिसने, सो तीन पुञ्ज यह हैं, १ अशुद्ध, २ अर्द्धशुद्ध, ३ शुद्ध. इसमें प्रशुद्ध पुञ्ज जो है, सो मिथ्यात्वमोहनीय है, अरु अर्द्ध शुद्ध जो है, सो मध्यमोहनीय है, तथा शुद्धपुञ्ज जो है, सो सम्यक्त्व मोहनीय है. इसका स्वरूप पीछे लिख आये हैं, यह तीन पुञ्ज जिसने नहीं करे हैं, अरु उदय आया मिथ्यात्व दूय किया है, तथा जो मिथ्यात्व उदय नहीं आया, तिसको उपशमाया है, अंतर करणमें अंतर्मुहूर्त्तकाल जगें सर्वथा मिथ्यात्वके अवैदककों, अंतर करणमें औपशमिक सम्यक्त्व होता है, यह एक चैद. तथा औपशम श्रेणिप्रतिपन्नकों मिथ्यात्व अनंतानुबंधीके उपशम दूया स्वश्रेणिगत औपशमिक सम्यक्त्व होता है, सो दूसरा चैद. ये दोनो प्रकारकी जो उपशम सम्यक्त्व है, सो सास्वादन उत्पत्तिमें मूल कारण है.

अथ सास्वादनस्वरूप लिखते हैं. औपशमिक सम्यक्त्ववाला जीव शांति लूये अनंतानुबंधी चारों कपायोमें एकनी क्रोधादिकके उदय दूयां थका औपशमिकरूप गिरिशिखर तुल्यसे “परिच्युतो चट्टो” अर्थात् गिरा सो जहां जगि मिथ्यात्वरूप चूतलकों नहीं प्राप्त दूया, तहां जगि एक सम पसे ले कर पट्ट्यावलिकाप्रमाण सास्वादन गुणस्थानकवर्त्ती होता है,

प्रश्नः—व्यक्तबुद्धिप्राप्तिरूप प्रथम अरु मिश्रादि गुणस्थानोंको उत्तरोत्तर चढण रूपोंको तो गुणस्थानपणा युक्त है, परंतु सम्यक्त्वसे पडने वाले सास्वादनको गुणस्थानपणा कैसे संजवे ?

उत्तरः—मिथ्यात्व गुणस्थानककी अपेक्षा सास्वादनकी ऊर्ध्व आरोहणरूप होनेसे गुणस्थान है, क्योंकि मिथ्यात्व गुण अज्ञव्य जीवोंको ही होता है, अरु सास्वादन तो ज्ञव्य जीवोंहीको हो सका है, ज्ञव्य जीवोंमें ही जिसका अर्द्ध पुञ्जलपरावर्त्त श्रेण संसार है. तिनहीको होता है. इस वास्ते सास्वादनको ही मिथ्यात्व गुणस्थानसे आरोहणरूप गुणस्था

नत्व हो सक्ता है. तथा सास्वादन गुणमें वर्त्तता हुआ जीव, १ मिथ्यात्व, ४ नरकत्रिक ७ एकेंद्रियादि जाति चार, ९ आतपनाम, १० स्यादगनाम, ११ सूक्ष्मनाम, १२ अपर्याप्तनाम, १३ साधारणनाम, १४ हुंनकसंस्थान, १५ सेवार्त्तसंहनन, १६ नपुंसकवेद, यह सर्व सोलां प्रकृतिका वंश बद्ध छेद करता है, शेष एक सौ एक प्रकृतिका वंश करता है, तथा ३ सूक्ष्मत्रिक, ४ आतप, ५ मिथ्यात्वोदय, ६ नरकानुपूर्वी, यह छै प्रकृतिका उदय बद्ध छेद होनेसे १११ कर्मप्रकृति वेदता है, तथा तीर्थकरनामकी सत्ता विना १४७ प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति दूसरे सास्वादन गुणस्थानरूपा स्वरूप ॥३३॥

अथ तीसरे मिश्रगुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. दर्शनमोहनीय प्रकृतिरूप मिश्र मोहकर्मके उदयसे जीवविषये जो समकाल समरूपकर्म सम्यक्त्व मिथ्यात्वके मिलनेसे मिश्रितजाव अंतरमुहूर्त्त यावत् मिश्र गुणस्थान कहते है, जो जीव, सम्यक्त्वमिथ्यात्व दोनोंके एकत्र मिलनेसे मिश्रजावमें वर्त्त है. सो मिश्रगुणस्थानस्थ होता है, क्योंकि मिश्रणा जो है, सो दोनोंके मिलनेसे एक रूप जात्यंतर है. अथ दोनों जावोंके एकत्व जात्यंतर होनेमें दृष्टात लिखते है. कि जैसे घोडी और गधा इन दोनोंके संयोगसे जात्यंतर खच्चर उत्पन्न होता है, अथवा जैसे गुड़ और दहीके मिलनेसे जात्यंतर रस शिखरणी रूप उत्पन्न होता है, तैसे ही जिस जीवकों सर्वज्ञ असर्वज्ञके कहे दोनो धर्मोंमें समबुद्धिसे एक सरीखी श्रद्धा उत्पन्न होवे, सो जात्यंतर चेदात्मक होनेसे मिश्रगुणस्थानक होता है. जब यह मिश्रगुणस्थानस्थ जीव होता है, तब परन वका आयु नहीं बांधता है, अरु मिश्रगुणस्थानकमें वर्त्तता. हुआ जीव, मरतानी नहीं है, जातो सम्यक्दृष्टि हो कर चौथे सम्यक्दृष्टिगुणस्थानकमें आरोह कर मरता है, अथवा कुदृष्टि हो कर मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकमें पीठा आ कर मरता है, परंतु मिश्रगुणस्थानमें वर्त्तमान नहीं मरता है. यह मिश्रकी तरें बारहवा क्षीणमोह, अरु तेरहवा सयोगी. इन दोनो गुणस्थानोंमें जीव नहीं मरता है, शेष इग्यारह गुणस्थानोंमें काल कर जाता है, अरु मिथ्यात्व, सास्वादन, अविरति सम्यक्दृष्टि, यह तीन गुणस्थानरू जीवके साथ परजवमें जाते है. शेष इग्यारह गुणस्थानक नहीं जाते हैं. तथा जिन जीवोंने मिथ्यात्वादि गुणस्थानोंमें ५

अथ आयु बांधा है, अरु पीठें उनकों मिश्रगुण स्थानक दूआ है, वो जब मरे गा, तब जीस गुणस्थानकमें आयु बांधा है, तिसी गुणस्थानमें जा कर मरता है, औ गतिनी उसकी उसी मरण वाले गुणस्थानकके अनुसारे होती है, तथा मिश्रगुणस्थानक वाला जीव, १ नरकगति, २ नरकायु, ३ नरकानुपूर्वी, ४ स्त्यानर्द्धित्रिक, ७ दुर्नग, ८ दुःस्वर, ९ अनादेय, १३ अनतानुबंधी चार. १७ मध्यके चार संस्थान, २१ मध्यके चार संहनन, २२ नीचगोत्र, २३ उद्योतनाम, २४ अप्रशस्तविहायोगति, २५ स्त्रीवेद. यह पच्चीस प्रकृतिका बंधव्यवच्छेद करता है तथा मनुष्यायु, देवायु, यह दोनी नहीं बांधता है, यह सत्तावीस प्रकृति बिना शेष चोह नर प्रकृतिका बंध करता है ४ तथा अनंतानुबंधी चार, ५ स्थावरनाम, ६ एकेडिय, ७ विकलत्रिक, इनके उदयके व्यवच्छेद होनेसे अरु मनुष्यानुपूर्वी, तथा तिर्यगानुपूर्वी, इन दोनोके उदय न होनेसे एक सौ प्रकृतिका उदय वेदता है, अरु पूर्वोक्त १४७ प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति मिश्रगुणस्थानकं ॥२॥

अथ चौथा अविरतिसम्यग्दृष्टि गुणस्थानकका स्वरूप लिखते है. तहां प्रथम सम्यक्त्व प्राप्तिका स्वरूप कहते है, कि नव्य संज्ञी पंचेंडिय जीव कां यथोक्ततत्त्व यथावत् सर्ववित् प्रणीत तत्त्वोंमे जीवादि पदार्थोंमें नि सर्गसे अर्थात् पूर्वजव अन्यासविशेष करके उत्पन्न नऽ अत्यंतनिर्मल गुणत्मक रूप स्वभाव, इन स्वभावसे अथवा गुरुके उपदेश श्रवण करणोंसे रुचि नावना प्रगट उत्पन्न होती है, सो सम्यक्त्व, सम्यक्श्रदान लक्षण कहते है ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ रुचिर्जिनोक्ततत्त्वेषु, सम्यक् श्रदानमुच्यते ॥ जायते तन्निसर्गण, गुरोरधिगमेन वा ॥ १ ॥ अथ अविरति सम्यग्दृष्टिपणा जैसे होता है, तैसें कहते है. दूसरी कपाय अप्रत्याख्यान, जिस का नाम है, जैसे जे क्रोध, मान, माया, लोभ, तिनके उदय करके, वर्जित दुआ विरतिपणा इसी वास्ते केवल सम्यक्त्व मात्र जहां होवे, सो चौथे गुणस्थान वालोंको अविरति सम्यग्दृष्टिनामक गुणस्थानक होता है. इस का तात्पर्य यह है, कि जैसे सोऽ पुरुष, न्यायोपपन्न धन जोग विलास सौंदर्यशालिकुलमे उत्पन्ननी दूआ है, परंतु इतंत जूआ आदि व्यसन सेवन करने लगा, इत्यादि अनेक अन्याय करे है, सो अपराध करनेसे उसको रजदंभ मिला है, सो खंभित करा है जिने अचिमान, जैसे जो दंभ

पाशिक कोटवाल तिनों करके विडंब्यमान अपने व्यसन जनित कुत्सित कर्मकं विरूप जानता हुआ अपने कुजके सुंदर सुख तंपदाकी अज्ञानता पा करतानी है, परंतु कोटवालोंने तूटके सुखका उच्चासनी नहीं कर सका है, तैसेही यह जीवनी अविरतिपरणोंको खोटे कर्मका फल जानता है, विरतिके सुंदर सुखकी अज्ञानता करतानी करता है, परंतु कोटवाल मनुष्य न दूसरी कपायके पाशों तूटनेका उत्साहनी नहीं कर सका है, अतः अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकका अनुभव करता है.

अथ चौथे गुणस्थानककी स्थिति कहते हैं, इस अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानककी स्थिति उत्कृष्टी तो तेत्तोस सागरोपम प्रमाण कलुष अज्ञानक है, सो सर्वार्थ सिद्धादि विमानवासीयोंकी स्थिति मनुष्यायु अधिक है, तथा यह सम्यक्त्व, जब जीवका अर्द्ध पुञ्जपरावर्त्त शेष संसार रहता है, तब जीवकों आता है, दूसरोंको नहीं आता है.

अथ सम्यग्दृष्टिका लक्षण कहते हैं, १ दुःखी जीवके दुःख दूर करनेकी जो चिंता, तिसका नाम रुपा है, २ किसी कारणसे क्रोध उत्पन्ननी हो गया है, तोनी तीव्र अनुशय अर्थात् तीव्र वैर नहीं रखता है, तिसका नाम प्रशम है, ३ सिद्धिसौधके चढने वास्ते सोपानसमान सम्यग् ज्ञानादि साधनोमे उत्साह लक्षण मोक्षानिलाप, तिसका नाम संवेद है, ४ अत्यंत कुत्सिततर अर्थात् अत्यंत बुरा संसाररूप बंदीत्वानेसे निकलने वास्ते परम वैराग्य रूप दरवाजेमें जो आ जाना है, तिसका नाम निर्वेद है, ५ श्रीसर्वज्ञ प्रणीत समस्त ज्ञानोंकी अस्तित्वका चिंतन तिसका नाम आस्तिक्य है, यह पांच लक्षण जिस जीवमे हों, वं जैव्यजीव सम्यग् दर्शन करके अलंकृत होता है.

अथ सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकवर्ती जीवोंको कौनसी गति है? तो कहते हैं. इहां जीवपरिणामविज्ञेयरूपको करण कहते हैं, सो करण तीन प्रकारका होता है, १ यथाप्रवृत्तिकरण, २ अपूर्वकरण, ३ अतिवृत्तिकरण. तहां पर्वतकी नदीके जल करके आजोड्यमान पापाणकी तट घंचना ( घोजना ) न्याय करके जीव आयु, कर्मोंकी स्थिति किंचित् ऊनी एक कोटाकोटी सागर प्रमाण हुआ जिन अथवसाय विज्ञेय करके आता है.

ते है, १ तथा जिन अप्राप्त पूर्वे अध्यवसाय विशेष करके तिस ग्रंथिकों  
 ग्रंथि घन निविड राग द्वेष परिणतिरूपकों कहते हैं. तिस ग्रंथिके जेदनेका जो  
 आरन, तिसकों अपूर्वकरण कहते हैं, २ तथा जिन अध्यवसायविशेष करके  
 अनिवृत्त, ग्रंथिजेद करके अति परम आनंद जनक सम्यक्त्व पाता है,  
 तिसका नाम अनिवृत्ति करण है, यह तीनों करणका स्वरूप श्रीजिन ज  
 ङ्गणिक्रमाश्रमण आचार्य, आवश्यककी शुद्धांजोनिधि गंधहस्ती महा  
 नायकमें लिखते हैं. तीन पथिकके दृष्टांतसें तीनों करणका स्वरूप दिखाते  
 है. जैसें तीन पथिक उजाडके रस्ते चले जाते थे, तहां चजते चलते वि  
 काल बेला हो गइ, औ सूर्य अस्त हो गया, वे पंथी, मनमे बहुत मरने  
 लगे, इतनेमें उस वखत तहां तत्काल दो चोर आ पहुंचे, तिन चोरोकों  
 देख कर तिनमेंसूं एक पथिक तो मरता हुआ पीठेको दौड गया, अरु ए  
 क पथिककों चोरोने पकड लीया, अरु एरु पथिक तिन चोरोसें लड निड  
 मार पीट करके अगले नगरमें पहुंच गया, यह तो दृष्टांत है. इसका दा  
 र्ष्टांत ऐसें है, कि उजाड जो है, सो मनुष्य नव है, तिसमें कर्मोंकी जो  
 स्थिति है, सो दीर्घ रस्ता है, औ जो गांव है, सो नयका स्थानक है, अरु  
 राग द्वेष यह दोनो चोर है अब जो पुरुष पीठेको दौडा है, तिसको तो  
 स्थिति संसारमें रहणेकी अधिक हो जाती है, अरु जो पुरुष, पकडा गया,  
 वो गावके पास जा कर खडा हो गया, सो रागद्वेष, चोरोने पकड ली  
 या, वोनी दुःखी है, अरु जिसने सम्यक्त्व पा लिया, सो गाममें पहुंच  
 गया, ताते सुखी नया. यह दृष्टांत तीनो करणके साथ जोड लेना.

अथ कीडीयोंके दृष्टांत करके तीनों करणोंका स्वरूप लिखते है, जैसें  
 कीडीयों विलमेंसूं निकलके एक खूटेके तले च्रमण करती है, एकैके की  
 डीयां उस खूटेके उपरि चढती हैं, अरु कितनिक खूटेके उपर चड कर पं  
 ख लग जानेंसें उम गइ है. यह तीनों करणजो इती तरें जान लेने. तव तो  
 जीव यथाप्रवृत्ति करण करके ग्रंथिदेशकों प्राप्त होता है, अरु अपूर्व क  
 रण करके ग्रंथिका जेद करता है, ग्रंथिजेद करके कोइक जीव मिथ्यात्व  
 के पुञ्ज राशिको विनज्य ( वांट ) करके ? मिथ्यात्व मोह, १ मिश्रमो  
 ह, २ सम्यक्त्व मोह रूप तीन पुंज करता है, जब अनिवृत्तिकरण कर  
 के विगुह मानके उदय हूये अरु मिथ्यात्वके हय हूये ? उदय नहीं हूये

के उपजांत हूये, ह्यायोपशमिक सम्यक्त्वकों प्राप्ति होता है जब नोको  
कों ह्यायोपशमिक सम्यग् दर्शन उत्पन्न होता है, तब जीवोंके मनुष्य  
ति देवगतिकी संपत् होती है. तथा अपूर्व करण करकेही कृत तीन पुं  
वाले जीवकों चौथे गुणस्थानसेही रूपकपणोको जब आरज करता है,  
तब अनंतानुबंधी चार, मिथ्यामोह, मिश्रमोह, अरु सम्यक्त्व मोह  
तीनों पुंजोंके रूप हूये, ह्यायिक सम्यक्त्व होता है, तब वो ह्यायिक सम्य  
गृहृष्टि जे कर अबधायु है, तब तो तिसरी जवमें मोह रूप होवेगा. अरु  
जे कर आयु बांध कर पीठें ह्यायिकसम्यक्त्ववान् हूया है, तब तो ती  
सरे जवमें मोह होता है. अरु जे कर असंख्यात वर्ष जीवने वाले मनु  
ष्य, तिर्यचका आयु बांध कर पीठेसे ह्यायिकसम्यक्त्व पावे, तब ती  
जवमें मोह होता है.

अथ अविरति गुणस्थानकवर्ती जीवका कृत्य लिखते है. व्रत नियम  
तो उसके कोइनी नहीं होता है, परंतु देवमें अर्थात् जगवान् श्रीवीतराम  
में, अरु उकलरूप गुरुमें, तथा श्रीसंधमे, क्रम करके जक्ति, पूजा, नम  
स्कार, वात्सल्यादि कृत्य करता है. तथा प्रजावक श्रावक होनेसे शासनकी  
उन्नति, शासनकी प्रजावना करता है. तथा अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थान  
क वाला जीव, १ तीर्थंकर नामकर्म, २ मनुष्यायु, ३ देवायु. यह तीन प्र  
कृति तीसरे गुणस्थानसे अधिक बांधता है. इत वास्ते सत्तत्तर प्रकृतिका  
बंध करता है, तथा मिश्र मोहके व्यवधेद होनेसे अरु आनुपूर्वी चार, अरु  
सम्यक्त्वमोहके उदय होनेसे एक सौ चार कर्म प्रकृतिकों वेदता है. अरु  
ह्यायिक सम्यक्त्व वालेकों १३७ प्रकृतिकी सत्ता होती है, अरु उपजम  
सम्यक्त्व वालेकों चौथे गुणस्थानकसे ले कर अग्यारहमें गुणस्थानक पर्यंत  
१४७ कर्मप्रकृतिकी सत्ता है. अरु ह्यायिकसम्यक्त्व वालेकों जित जित  
गुण स्थानमें जितनी जितनी कर्मप्रकृतिकी सत्ता है, सो आगे चज ब  
लिख देवेगे ॥ इति अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकका स्वरूप ॥ ४ ॥

अथ पंचम गुणस्थानकका स्वरूप लिखते है. जीवको सम्यग् तत्त्वा  
वबोध करके उत्पन्न हूया वैराग्य, तिस वैराग्यसे सर्वविरतिकी बांधा करता  
नी है, तोनी सर्वविरतिवातक प्रत्याख्यान नाम कपायके उदयमें सर्व वि  
रति अंगीकार करणोंको सामर्थ्य नहीं, किंतु जघन्य, मध्यम, उत्कृष्टरूप

देशविरति हो सक्ता है, तिनमें जघन्य देशविरति आकुंष्टि स्थूलहिंसादि  
त्याग. मद्य मांसादि परिहार, अरु परमेष्टि नमस्कारका स्मरण करणां॥य  
दाह ॥श्लोक॥ आउष्टि थूल हिंसाऽ, मद्य मंसाश्चायतं ॥ जहन्तो सावतं होऽ,  
जो नमुक्त्वा धारतं ॥ १॥ तथा मध्यम देशविरति “अक्षुडादि न्याय सं  
मन्न विज्व इत्यादि” धर्म योग्यता गुणों करि आकीर्ण गृहस्थ उचित पट्क  
र्म धर्ममें तत्पर, द्वादश व्रतका पालक, सदाचारवान्, ऐसा होवे, तो म  
ध्यम श्रावक जाननां तथा उत्कृष्टदेशविरति, सचित आहारका वर्जक,  
प्रतिदिन एकाशन करे, ब्रह्मचारी होवे, महाव्रत अंगीकार करनेकी इच्छावा  
ला होवे, गृहस्थका धंदा जिसने त्यागा है, ऐसा जो होवे, सो उत्कृष्ट  
देशविरति. यह तीन प्रकारकी विरति जिसको होवे. उसको श्राद्ध, अर्थात्  
श्रावक कहते हैं. देशविरतिकी उत्कृष्टी स्थिति देशोन कोटिपूर्वकी है

अथ देशविरति गुणस्थानकर्में ध्यानका संज्ञव कहते हैं. यह गुणस्थान  
में १ अनिष्टयोगार्त्त, २ इष्टविद्योगार्त्त, ३ रोगार्त्त, ४ निदानार्त्त. यह चार  
पाद रूप ध्यानार्त्त. तथा १ हिसानंदरौऽ, २ मृपानंदरौऽ, ३ चौर्धानंद  
रौऽ, ४ सररूपानंदरौऽ. यह चार पादवाला रौऽ ध्यान है वे देशविरतिके  
ध्यानार्त्त मंद होता है, जैसे जैसे देशविरति अधिक अधिकतर होती  
है, तैसे तैसे ध्यान रौऽ ध्यान, मंद मंदतर होता जाता है, अरु धर्म ध्या  
न तो जैसे जैसे देशविरति अधिक होती है, तैसे तैसे अधिक अधिक हो  
ता है, मध्यमरूपही रहता है, परंतु उत्कृष्ट धर्मध्यान नहीं होता है जे  
कर उत्कृष्ट धर्मध्यान हो जावे, तब सर्व विरति हो जायगा, वो पांचमे  
गुणस्थान संबंधी धर्मध्यान कैसा है? जिसमें पट् कर्म, एकादश प्रतिमा,  
अरु श्रावक व्रत पालनेका संज्ञव है.

उक्त पट् कर्मका नाम कहते हैं. १ तीर्थकर अर्हंत जगवत वीतराग  
सर्वज्ञकी प्रतिमा द्वारा पूजा करे, २ गुरुकी सेवा करे, ३ स्वाध्याय, ४ संय  
म, ५ तप, ६ दान, यह पट्कर्म हैं ॥यडुक्तं॥ देवपूजा गुरुपास्तिः, स्वाध्याय-  
सयमस्तपः ॥ दानं चेति गृहस्थानां, पट् कर्माणि दिने दिने ॥ १ ॥

प्रतिमा जो है, सो अग्निग्रहविज्ञोपको कहते हैं, सो नाममात्र यह है ॥गाथा॥  
दंसण वय सामाऽथ, पोसह पडिमा अवंज सचिते ॥ आरज पेस उदिठ, वळ्ळए  
समणजूए य ॥ १ ॥ इनका विस्तार देखनां होवे, तदा पंचाशकनामा शास्त्रके



प्रतिमा पंचाशकर्म देख लेनां. अरु श्रावकके व्रत वारह हैं, सो ध्याने कर लिखेंगे. यह पद् कर्म, एकादश प्रतिमा, वारह व्रत. इनके पातनमें ध्यमधर्म ध्यान होता है, तथा देशविरति गुणस्थानस्थ जीव, अप्रत्यक्षान चार कपाय, नरकगति, नरकायु, नरकानुपूर्वी, यह नरक त्रिक अंध संहनन तथा औदारिक शरीर, औदारिक अगोपांग, यह औदारिक द्विक. यह सब मिल कर दश कर्मप्रकृतिका बंध, व्यवहृद होनेसें तत्तत्कर्म प्रकृतिका बंध करता है. तथा अप्रत्यक्षान चार, मनुष्यानुपूर्वी, त्रिपञ्चपूर्वी, नरकत्रिक, देवत्रिक, वैक्रियद्विक, दुर्नेग, अनादेय, अयशःकीर्ति, यह तत्कर्म प्रकृतिका उदय व्यवहृद करनेसें सत्तासी कर्म प्रकृतिका फल नोका है. अरु एक सौ अडचीस प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति देशविरतिगुणस्थान ॥

अथ पांचमे गुणस्थानक उपरांत जो गुणस्थान है, तिनमेंसूं तेरहवा गुणस्थान वर्जके शेष सर्वगुणस्थानोंमें पृथक् पृथक् अंतर मुहूर्त्तमात्र स्थिति है.

अथ षष्ठा प्रमत्तसंयत गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. सर्व किति साधु, यह षष्ठे प्रमत्त गुणस्थानकमें होता है, वो साधु कैसा है? अहिंसादि पांच महाव्रतका धारक है, वो साधु किस करके प्रमत्त होता है? कि प्रमादके होनेसें प्रमत्त होता है, सो प्रमाद पांच प्रकारका है ॥

॥ यदाह ॥ गाथा ॥ मङ्गल विसय कताया, निद्रा विगहा य पंचमी तणिया ॥ ए ए पंच पमाया, जीव पाडंति संतारे ॥ १ ॥ जावार्थ-मद्य, विषय, कपाय, निद्रा, अरु विकथा, यह पांच प्रमाद हैं, सो जीवकों संतारमें गेरते हैं, जो साधु, इन पांचो प्रमादों करके संयुक्त होवे, अरु अज्वलनकी चौथी कपायका उदय होवे, तब महामुनि महाव्रती साधु अत्यंत अंतर मुहूर्त्त काल लागि सप्रमाद होनेसे प्रमादी होता है, जे अंतरमुहूर्त्तसें उपरांतजी सप्रमादी होवे, तवा प्रमत्त गुणस्थानसें नीचे गिर पडता है. अरु जे कर अंतर मुहूर्त्तसें उपरांतजी प्रमाद गदित होवे तदा फेर अप्रमत्त गुणस्थानमें चढता ( आरौहता ) है.

अथ प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें ध्यानका संनव कहते हैं. यद्य गुणस्थानमें मुख्य तो आर्त्तध्यान, उपलक्षणसें रौडध्यानकाजी संनव है. अथ कि नोकपाय, हास्यादि पट्टकके होनेसे. तथा आज्ञादि आलंबन उक्त कर्मध्यानकी गौणता है, १ आज्ञा, २ अथाय, ३ विपाक, ४ संस्थान. ५

रोंके चिंतनलक्षण आलंबनों करके संयुक्त धर्मध्यान होता है. इहां ध्यानके चार पाद हैं ॥ उक्तं च ॥ आज्ञापायविपाकानां, संस्थानस्य चित्नात् ॥ इच्छं वा ध्येयजेदेन, धर्मध्यानं चतुर्विधं ॥ १ ॥ आज्ञा उस कहते हैं, कि जो कुछ सर्वज्ञ अर्हत जगवंतने कहा है, सो सर्व सत्य अरु जो बात, मेरी समझमें नहीं आती है, वो मेरी बुद्धिकी मंदता तथा दुपम कालके प्रजावसें, संशय मिटाने वाले गुरुके अज्ञावसें, इति निमित्तोंसे मेरी समझमें नहीं आता है, परंतु अर्हत जगवंतके कहे वाक्य सत्य है, क्योंकि उनके मृपा बोलनेका कोईनी निमित्त नहीं, ऐसा जो चिंतन करना, सो आज्ञा विचयनामा प्रथम जेद है. तथा राग, प, कपायादिकों करके जो अपाय (कष्ट) उत्पन्न होते है, तिनका जो चिंतन करना, सो अपायविचयनामा दूसरा जेद है. तथा कृण कृण प्रज्ञा जो कर्मफलोदय विचित्ररूप उत्पन्न होता है, सो विपाकविचयनामा तिसरा जेद है, तथा यह लोक अनादि अनंत है, अरु उत्पाद, व्यय, ध्रुव प सर्व पदार्थ है, तथा पुरुपाकार लोकका संस्थान है, ऐसा जो चितन रना, सो संस्थानविचयनामा चौथा जेद है. इत्यादि आलंबना युक्त धर्मध्या की गौणता, प्रमत्त गुणस्थानमें है, परंतु सप्रमाद होनेसें मुख्यता नहीं.

अथ जे कर कोइ प्रमत्त गुणस्थानमें निरालंबन धर्मध्यान कहे, तिसका विषय करते है. जिननास्कर (जिनस्वर्य) ऐसें कह गये है, कि जो साधु जहा लागि प्रमाद संयुक्त होवे, तहां लागि तिस साधुकों निरालंबन ध्यान नहीं होता है, क्योंकि इहां प्रमत्त गुणस्थानमे मध्यमधर्मध्यानकी गौणताही कही है, परंतु मुख्यता नहीं. तिस वास्ते प्रमत्तगुणस्था में अस्कृष्ट निरालंब धर्मध्यानका संज्ञव नहीं.

अथ जो यह अर्थ न माने, तिसकों कहते हैं, जो साधु, प्रमाद युक्तनी आवश्यक सामायिकादि पडावश्यकसाधक अनुष्ठानका परिहार करके निरालंबन ध्यानाश्रित होवे, वो साधु. मिथ्यात्वमोहित मिथ्याजावके मूढ दुष्टा अका जैनागम श्रीतर्वज्ञप्रणीत शास्त्र नहीं जानता, क्यों वो साधु व्यवहार तो ठोड वैठा है, अरु निश्चयकों प्राप्त नहीं दुष्टा अरु जो जिनागमके जानने वाले है, सो तो व्यवहारपूर्वक निश्चयकों साथते है ॥ यदाह ॥ जइ जिणमयं पवज्जह, ता मा विवहार निव्वए सु

यह ॥ विवहारनउं वेए, तिबुवेउं जउं नणिओ ॥ १ ॥ अर्थः-त्रे  
 जिनमतकों अंगीकार करते हो, और जैनमतमें साधु होते हो, तो अ  
 र निश्चयका त्याग मत करो, क्योंकि कि व्यवहार नयके उद्देश होनेमें ती  
 उद्देश हो जायगा, इस बात उपर यह दृष्टांत है, कि जैसे कोऊ पुरुष  
 ने घरमें सदा बाजरेकी रोटी खाता है, किसीने उसको निमंत्रण  
 कें अथर्व मिष्टान्नाहार कराया, तब तो वो उस स्वादका लोलुपी हो  
 अथर्वे घरकी बाजरेकी रोटी निःस्वाद जान कर खाता नहीं, उस इ  
 मिष्टान्नकी अनिलाषा करता है, तब तो वो अथर्वे घरका कवच  
 खाता नहीं, अरु मिष्टान्नची मिलता नहीं, तब वो उनयत्रट हो  
 है. तैसें यह जीवनी कदाग्रहरूप नूतके लगनेसें प्रमत्तगुणस्थान  
 अस्थूलमात्र पुण्यपुष्टिका कारण पडावश्यकादि कष्टक्रिया नहीं करता,  
 अरु कदाचित् प्रमत्तगुणस्थानमें जिसका लान है, ऐसा जो निर्विकल्प  
 नोजनित समाधिरूप निरालंबन, ध्यानांशरूप, अमृत आहारतुल्य प्रा  
 है. तब तो तिस करिकें उत्पन्न हुआ जो परमानंद सुखस्वाद, तिस का  
 प्रमत्त गुणस्थानगत पडावश्यकादि कष्टक्रिया कर्म, कदन्न समान कर सम्ब  
 राधन न करे, अरु मिष्टान्न तुल्य निरालंबन ध्यानांश तो तो प्रथम संहनन  
 अनावसें प्राप्त नहीं होता है, तब तो पडावश्यकके न करनेसें उनयत्रट हो  
 जाता है, क्योंकि निरालंबन ध्यानका मनोरथही पंचम कालके महासुनि  
 योने करा है ॥ तथाच पूर्वमहर्षयः ॥ चेतोवृत्तिनिरोधनेन करण, ग्रामं वि  
 यो दर्शं ॥ तत्संहृत्य गतागतं च मरुतो. धैर्यं समाश्रित्य च ॥ पयकेन मया  
 शिवाय विधिवत् स्थित्वैकनूनृदारीमध्यस्थेन कटाचिर्वापितदृशा, स्थात  
 व्यमंतर्मुखं ॥ १ ॥ चित्ते निश्चलतां गते प्रशमिते, रागादिनिष्पामदे ॥ विज्ञा  
 क्कदंबके विघटिते, ध्वांते भ्रमारंजके ॥ आनंदे प्रविज्जंजिते पुरपते, इ  
 समुन्मीजते ॥ मा रक्षति कदा वनस्थमजितो. इष्टाशया श्वापदा. ॥ २ ॥  
 तथा श्रीसूरप्रजाचार्या ॥ चित्तावदातेनवदागमानां, वा नैपजैरंगरुजं नि  
 वर्त्य ॥ मया कदा प्रौढसमाधिजङ्गी इत्यादि ॥ तथाश्री हेमचंद्र सूरय ॥  
 वनपद्मासनासीनं, क्रोडस्थितमृगार्जक ॥ कदा ग्रास्थंति वक्त्रे मा, चाल  
 मृगयुथपाः ॥ १ ॥ शत्रौ मित्रे तृणे स्वैणे, सुवर्णेऽश्मनि मर्णा मृदि ॥ मोहि  
 नवे नविष्यामि, निर्विशेषमनि. कदा ॥ १॥ ५ न श्लोकोंका घोडाता अर्थनी

जब देते हैं, चित्तकी वृत्ति निरोध करके, इन्द्रिय समूह औ इन्द्रियोंके वषयोंको दूर करके, तिस पीछे पवनकी अर्थात् श्वासोच्छ्वासकी गतागति तों रोक करके, अरु धैर्यको अवलंबके, पद्मासनसे बैठ करके, शिवके वा जे विधि संयुक्त किली पर्वतकी गुफामें बैठ करके, एक वस्तु उपरि दृष्टि रख कर, मुञ्जको अंतर्मुख रहना योग्य है ॥१॥ चित्तके निश्चल हूयां उतां राग, द्वेष, कषाय, निद्रा, मदके शांति हूयां, अरु इन्द्रिय समूहके दूर हूयां, अरु त्रमारंजक अंधकारके दूर होयां, अरु आनंदके प्रगट वृद्धिमान नये, ज्ञानके प्रकाश नये, ऐसी जीवको अवस्थामें मेरेको वनमें रहेको इ प्राणवाले सिंह कब रह्या करेंगे? ॥ २ ॥ तथा श्रीसूरप्रजाचार्यजी कहते हैं, कि हे जगवन्! तुमारा आगमरूप जेपज करके, राग रूप रोग निवर्त करके, निर्मल चित्त करके कब वो दिन आवेगा कि जिस दिन मैं समाधि रूपी लक्ष्मीकूं देखुंगा? इत्यादि. तथा श्रीहेमचंद्रसरिजी कहते है, कि वनमें पद्मासन बैठे हुवे मेरी गोदमें मृगका बच्चा बैठे, अरु हिरणोंका स्वामी बडा हरण मेरे भूखको सूंघे, अरु मैं अपणी समाधिमें स्थित रहूं ॥१॥ तथा शत्रुमें मित्रमें, तृण अरु स्त्रीमें, सुवर्ण अरु पापाणमें, मणि अरु मट्टिमें, मोक्ष अरु संसारमें, निर्विज्ञेपमति, मैं कब होवूंगा? ॥ ४ ॥ ऐसैंही मंत्री वसुपालने तथा परमतमें जर्तुहरिनेजी मनोरथही करा है. ऐसैं स्वसमय परस मयमें प्रसिद्ध जो पुरुष हूये हैं, तिनोंने परमात्मतत्त्वसंवित्तिमें मनोरथही करा है, अरु मनोरथ जो लोकमें करते हैं, सो दुःप्राप्य वस्तुकाही करते हैं, परंतु जो वस्तु, सुखेन मिल जावे, तिसका मनोरथ कोइनी नहीं करता है, जो सदा मिष्टान्न खाता है, अरु बडा जारी राज्य जोगता है, वो कनी मिष्टान्न खानेका अरु राज्य जोगनेका मनोरथ नहीं करता है, तिस वास्ते सर्व प्रकारसे प्रमत्त गुणस्थानस्थ विवेकी जनोंने परम सवेग आरूढ अप्रमत्त गुणस्थानकका स्पर्श करानी है, तोनी परम शुद्ध परमात्मतत्त्वसंवित्तिका मनोरथ करणां, परंतु पट्कर्म पडावश्यकादि व्यवहार क्रिया जो हे, उसका परिहार न करनां. अरु जो मूढ, योगग्रह करके प्रसन्न है, अरु सदाचार व्यवहारसे पराङ्मुख है, तिनका योगनी कि सी कामका नहीं है, अरु उनका यह लोकनी नहीं अरु परलोकनी नहीं. क्योकि वो जीव जडात्मा है ॥ यतः ॥ योगिनः सम्मतामेतां,

प्राप्य कल्पलतामिव ॥ सदाचारमयीमस्या, वृत्तिमातत्त्वतां बहिः ॥  
 ये तु योगग्रहग्रस्ताः, सदाचारपराद्मुखाः ॥ एष तेषां च योगोपि, न  
 कोपि जडात्मनां ॥ २ ॥ तिस्र वास्ते साधुकों जो दूषण दिन  
 लगता है, तिसके उदने वास्ते अवश्यमेव पडावश्यकादि क्रिया  
 जहां लगे उपरिले गुणस्थानों करि साध्य जो निराजंवन  
 तिसकों न प्राप्ति होवे, तहां लगे करे. तथा प्रमत्त गुणस्थानस्थ जीव  
 चार प्रत्याख्यानके बंध, व्यवहृद होनेसें त्रेशठ प्रकृतिका बंध करता है  
 तथा तिर्यग्गति, तिर्यगानुपूर्वी, नीचगोत्र, उद्योत, अरु प्रत्याख्यान  
 यह आठ प्रकृतिके उदय उद्वेद होनेसें अरु आहारक तथा आहारको  
 ग, यह दो प्रकृतिके उदय होनेसें एकासी प्रकृति वेदता है, अरु एक  
 अडत्तील प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति प्रमत्तगुणस्थानकं पद्यं ॥ ६ ॥

अथ सप्तम अग्रमत्त गुणस्थानकका स्वरूप जित्वते हैं. पांच महा  
 धारी साधु, पांच प्रमाद रहित, अग्रमत्त गुणस्थानस्थ होता है, अरु  
 ज्वलनकी चारों कपायोंका उदय मंद होवे, तथा नोकपायोंका उदय  
 मंद होवे. तात्पर्य यह है कि संज्वलन कपाय तथा नोकपायोंका उदय  
 जैसा मंदोदय होता है, तैसें तैसें साधु अग्रमत्त होता है ॥ यदाह ॥ श्रोत्रं  
 यथा यथा न रोचंते, विषया सुजनाअपि ॥ तथा तथा समायाति,  
 विचौतत्त्वमुत्तमं ॥ १ ॥ यथा यथा समायाति, संविचौतत्त्वमुत्तमं ॥ तथा  
 तथा न रोचंते, विषयाः सुजनाअपि ॥ २ ॥ अर्थ—जैसें जैसें अग्रमत्तगुण  
 स्थान वाला जीव मोहनीय कर्मके उपशम करणमें तथा ह्य करणमें  
 निपुण होता है, तथा जैसें सद्ग्यानका आरंज करता है, सोइ सरूप कहते हैं  
 दूर करे है, सर्व प्रमाद जिसने जैसें जो जीव, तथा पांच महा  
 व्रतका धारक, अरु अष्टादश सहस्र जो शीजांगलक्षण, तिनो करके संपु  
 सदागमका अन्यासी, ज्ञानवान्, ध्यान एकाग्रता रूप, जैसें ज्ञान ध्यानरूप वि  
 सके पास धन है, इत्ती वास्ते "मौनी" मौनवान् है. क्योंकि मौनवान्ही ध्यान  
 रूप धनवान् हो सका है, निस पीठे ज्ञान ध्यान मौनवान्, उपशम कर  
 णोंके अर्थ अथवा ह्य करणोंके अर्थ सन्मुख हूया यथा येना पवित्र मुनि  
 समोत्तर मोहकों पूर्वोक्त सन्त्यक्त्व मोह, मिश्रमोह, मिथ्यात्वमोह, अरु  
 अन्तानुबंधी चार. यह सात प्रकृतिके विना जेप इकील प्रकृतिके

नीय कर्मके उपशम करणेके सन्मुख तथा ह्य करणेके सन्मुख जब होता  
तब सालंबन ध्यान त्यागके निरालंबन ध्यानमें प्रवेश करनेका आरंभ करता  
। यह निरालंबन ध्यानमें प्रवेश करने वाले योगी, तीन तरंगके होते है. १  
आप्रारंभकाः, २ तन्निष्ठाः, ३ निष्पन्नयोगाः ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ सम्यग् नैसर्गि  
ति वा, विरतिपरिणतिं, प्राप्य सांसारिगीं वा ॥ काप्येकांते निविष्टाः, कपि च  
लचल, न्मानसस्तंजनाय ॥ शश्वन्नासाग्रपाली, धनघटितदृशो, धीरवीरासन  
यो ॥ ये निःपापाः समाधे, विदधति विधिना, रंजमारंजकास्ते ॥ १ ॥ कुर्वाणो  
रुतासनेद्दिग्मनः, कुत्तर्पनिज्ञाजयं ॥ योंतं जल्पति रूपणानिरसक, तत्त्वं  
मन्यस्यति ॥ सत्त्वानामुपरि प्रमोदकरुणा, मैत्रिर्नृशं मन्यते ॥ ध्यानाविष्टि  
चेष्टयाऽन्युदयते, तस्येह तन्निष्ठता ॥ २ ॥ उपरतवहिरंतर्चल्पकल्लोलमा  
त, लसदविकलविद्यापद्मिनीपूर्णमध्ये ॥ सततममृतमंतं मानसे यस्य हंसः,  
वति निरुपलेपः सोऽत्र निष्पन्नयोगी ॥ ३ ॥

अथ अप्रमत्त गुणस्थानमें ध्यानका संनव कहते है. सर्वज्ञका कथा  
आ धर्म ध्यान मैत्र्यादि अनेक जेदरूप है ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ मैत्र्यादि  
नेश्वतुर्नेदं, यद्वाज्ञादि चतुर्विधं ॥ रूपस्थादि चतुर्धा वा, धर्मध्यानं प्रकीर्त्ति  
म् ॥ १ ॥ तत्र ॥ मैत्रीप्रमोदकारुण्य, माध्यस्थानि नियोजयेत् ॥ धर्म  
यानमुपस्कृत्वा, तद्दि तस्य रसायनं ॥ २ ॥ आज्ञापायविपाकाना, संस्थानस्य  
वेचितनात् ॥ इहं वा ध्येयजेदेन, धर्मध्यानं प्रकीर्त्तितं ॥ ३ ॥ तथा १ पि  
स्थध्यान अपणे अंग अंगीका स्वरूप, २ वाणीव्यापाररूप पदस्थध्यान,  
३ संकल्पित आत्मरूप रूपस्थ ध्यान, ४ कल्पनासे रहित रूपातीत ध्या  
न, ५ ऐता जो जिनेश्वरका कथा हूआ धर्मध्यान, सो अप्रमत्त गुणस्थान  
में मुख्यवृत्ति करके प्रधानपणे होता है तथा रूपातीतपणे करके शुक्लध्या  
नी अंशमात्र करके गौणपणे है. इहां अप्रमत्त गुणस्थानमें आवश्य  
क क्रियाका जो अज्ञाव है, तोनी शुद्ध है, यह वार्त्ता कहते है

इस पूर्वोक्त अप्रमत्त गुणस्थानकमें सामायिकादि पद आवश्यक, सोनी  
नहीं है. "कोर्थः" सामायिकादि वै आवश्यक व्यवहार कियारूप, इस गुण  
स्थानमें नहीं, परंतु निश्चय सामायिकादि सर्व कुठ है; क्योंकि सामायिकादि  
सर्व आत्माके गुण है, "आया सामाऽए, आया सामाऽयस्त अने" अ

र्थात् आत्माही सामायिक है, अरु आत्माही सामायिकका अर्थ है, आगमके वचनसें है.

प्रश्न:- किस वास्ते अप्रमत्त गुणस्थानमें व्यवहार कियारूप पर वश्यक नहीं?

उत्तर:- अप्रमत्त गुणस्थानमें निरंतर ध्यानके सत् योगसें निरंतर नहींमें प्रवृत्त होता है, इस वास्ते स्वाभाविकी सहज नित्य संकल्प विरक्त मालाके अनावसें एक स्वभावरूप निर्मल आत्मा होती है, इस गुणस्थानमें वर्तमान जो जीव है, वो जावतीर्थ स्नान करके परम शुद्धिको प्राप्त होता है ॥ यदाह ॥ दाहोवसमं तएहाइ, तेयणं मलप्पवाहणं चैव ॥ त्तिं अवेहिं निउत्त, तम्हा तं दव्वं तिउ ॥ १ ॥ कोहंमि उ निग्गहिए, दाहमं वसणं हवइ तिउ ॥ लोहंमि उ निग्गहिए, तएहाइ तेयणं जाण ॥ २ ॥ उ चवियं कम्मरयं, बहुएहिं जवेहिं संचियं जम्हा ॥ तव संयमेण धोपइ, तम्हा तं जावउं तिउ ॥ ३ ॥ अर्थ:- दाह उपशांत करे, तृपाका ठेद करे, शरीरके मलकों दूर करे, इन पूर्वोक्त तीनों अर्थों करके जो नियुक्त होवे, ऐसे जो गंगा मागधादि, तिसकों इस वास्ते इव्यतीर्थ कहते हैं ॥ १ ॥ तथा जो धके नियह करणसें दाह उपशम होती है, अरु लोचके नियह करणसे तृपा ठेद होती है, ऐसें जाननां. अरु आठ प्रकारकी कर्मरज बहुत नवीं करके जो संची है, सो तप संयम करके जो धोवे, तिस वास्ते तिसकों जाव तीर्थ कहते है ॥ अन्यच्च ॥ श्लोक ॥ रुद्धप्राणप्रचारे, वपुषि नियमिते, संवृतेऽरुप्रपचे ॥ नेत्रस्पंदे निरस्ते, प्रलयमुपगतं, तविकटपेंडजाजे ॥ जिन्ने मोहांधकारे, प्रसरति महति, कापि विश्वप्रदीपे ॥ धन्यो ध्यानावलंबी, कलयति परमानंदसिंधौ प्रवेशं ॥ १ ॥ अर्थ:- प्राण, आतोनात का प्रचार आना जाना जिसने रोका है, औ जिसने शरीरकों वश किय है, औ जिसने नेत्रका टपकारना बंद कियो है, औ पाच इन्द्रियों अपणे अपणे विषयमे रोका है, तथा अंतर विकटपरुप इंद्रजाजेके लप इये, मोदरुप अंधकारके नष्ट हूयां, अरु त्रिभुवन प्रकाशरु ज्ञान प्रदीपके, प्रगट इये धन्य वो ध्यानावलंबी पुरुष है, सो परमानंदरुप समुद्रमें प्रवेश करता है यह अप्रमत्त गुणस्थानस्य जीव. १ शोक, २ रति, ३ प्ररति, ४ अस्थिर, ५ अस्थिर, ६ अयश, ७ अशातावेदनी. इन सातों प्रकृतियोंका वंश

अवबोध करता है, अरु १ आहारक, २ आहारकोपांग, यह दो प्रकृतिका बंध करता है. इस वास्ते ऊणसठ प्रकृतिका बंध करता है. अरु जे कर दे प्रायु न बांधे, तब अछावन प्रकृतिका बंध करता है, तथा स्त्यानर्द्धित्रिक, अरु आहारक द्विकोदयका व्यवबोध करे, तब विहत्तर प्रकृतिका फल वेद ता है, अरु १३७ प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति अप्रमत्त गुणस्थानकं सप्तमं ॥ ७ ॥

अथ आठवा अपूर्वकरण, नवमा अनिवृत्तिवादर, दसवा सूक्ष्मसंपराय, श्यारवा उपशांत मोह, बारहवा क्षीणमोह. यह पांच गुणस्थानों का नामार्थ सामान्य प्रकारसें लिखते हैं.

जो अप्रमत्तसंयत सातमे गुणस्थान वर्त्ती दिखलाया है, सोइ संज्वलन कपाय चार, नो कषाय है, इनके मंड उदय दूये प्राप्त अप्राप्तपूर्व अत्यंत परमात्मादरूप अपूर्व पारिणामिक आठवा गुणस्थान है; इसका नाम अपूर्वकरण इस वास्ते कहते है कि इस गुणस्थानकमें अपूर्व आत्मगुण की प्राप्ति होती है.

तथा देखा, सुना, औ अनुभव्या, जो नोग, तिनकी कांडारूप संकल्प विकल्प रहित निश्चल परमात्मैकतत्त्वरूप प्रधानपरिणतिरूप जावों की निवृत्ति नहीं, इस वास्ते इसका नाम अनिवृत्ति गुणस्थान कहते है. अरु इसका नाम जो अनिवृत्तिवादर कहते हैं, सो इहां अप्रत्याख्या नादि जो षादश वादर कपाय है, तिनका, अरु नव नोकपायोंका शमक, उपशम करने वास्ते अरु रूपक, कृत्य करणेके वास्ते उद्यमी होता है, इस कारणसें इसका नाम अनिवृत्तिवादर कहते हैं. यह नवमा गुणस्थान है:

तथा सूक्ष्म परमात्मतत्त्वजावनावल करके सत्तावीश प्रकृतिरूप मोहके उपशांत दूये, तथा कृत्य दूये, एक सूक्ष्म खंभीजुत लोचकी अस्तित्व जहा है, सो सूक्ष्मसंपराय नामक गुणस्थानक है, संपराय नाम कपायका है, इस वास्ते सूक्ष्मसंपराय दशमा गुणस्थानकका नाम कहा.

तथा उपशामकही उपशाम मूर्तिरूप सहजस्वभाव बल करके सकल मोह कर्मके उपशांत करनेसें उपशांत मोहनामक एकादशम गुणस्थान होता है.

तथा रूपककोही रूपकश्रेणि मार्ग करके दशमे गुणस्थानसेंही निःकषाय शुद्धात्मजावना बल करके सकल मोहके कृत्य करणेसे क्षीणमोह



नामक बारहवा गुणस्थान होता है. यह पांचों गुणस्थानोंका सामान्य प्रकारें नामार्थ कहा.

अथ अपूर्वकरणदि अंशसेही दोनो श्रेणिका आरोह कहते हैं. तब अपूर्वकरणस्थानमें आरोह समयमें अपूर्वकरणके प्रथम अंशसेही उपशमक, उपशमश्रेणिकमें चढता है, अरु रूपक, रूपकश्रेणिकमें चढता है.

अथ प्रथम उपशमश्रेणिकके चढनेकी योग्यता कहते हैं. इहां उपशमक मुनि, शृङ्खलध्यानका प्रथम पाया, जिसका आगें स्वरूप जिनके उगम व्याता हुआ उपशमश्रेणिकों अंगीकार करता है. कैसा वो मुनि हो? पूर्वगत श्रुतका धारक, निरतिचार, चारित्रवान, आदिके तीन संहनन क, ऐसा मुनि उपशमश्रेणिक करता है.

उपशमश्रेणिकवाला मुनि जे कर अल्प आयुवाला होवे, तब काल के "अहमिं" अर्थात् पांच अनुत्तर विमानमें उत्पन्न होता है, परंतु जिसके प्रथम संहनन होवे, वो अनुत्तर विमानमें उत्पन्न होता है, क्योंकि अरु उपर संहनन वाला अनुत्तर विमानमें उत्पन्न नहीं होता है, सेवानुसंहननवाला चौथे महेन्द्र स्वर्ग तक जा सका है, अरु कीजिकादि संहनन वालोंके दो दो देवलोककी वृद्धि कर लेनी, अरु प्रथम संहनन वाला तो मोक्ष तक जाता है, अरु जिसकी आयु जे कर सात लक्ष अधिक होती, तो मोक्ष जाता, सोई सर्वाधीसिद्ध विमानमें उत्पन्न होता है. ॥ वेदाह ॥ गाथा ॥ सत्त लव जइ आउं, पदुष्यमाणं तउं दु सिञ्जता ॥ तिसि यमिचं न दुयं, ततो लव सत्तमा जाया ॥ १ ॥ सवठ सिद्धनामे, उक्कोसिद्धि विजयमाईसु ॥ एगावसेस गप्पा, हवति लव सत्तमा देवा ॥ २ ॥

प्रश्न—उपशमश्रेणिकवाला मोक्षके योग्य कैसे हो सका है?

उत्तर—सात जो लव है, सो एक मुहूर्तका इग्यारवा हिस्ता है. तब तो लवसत्तमावशेष आयुवालाही खंभित उपशमश्रेणिक करने वाला पराईसु ख सातमें गुणस्थानमें आ करके फेर रूपकश्रेणिकमें चढ कर सात लव विचहीमें शीणमोह गुणस्थानमें हो कर अंत उत केवली हो कर मोक्ष हो जाता है, उन वास्ते रूपक नहीं. तथा जो पुष्टायु उपशमश्रेणिक करता है, सो अखंभित श्रेणिक करके, चारित्र मोहनीयका उपशम करके इग्यारवा गुणस्थानमें पदुच कर उपशमश्रेणिक समाप्ति करके गिर पडता है.

अथ औपशमकही अपूर्वादि गुणस्थानोमें जो करता है, सो कह  
हैं. संज्वलनका लोच वर्कके शेष वीश प्रकृति मोहनीय कर्मकी.  
अपूर्वकरण, अरु अनिवृत्तिवादर. इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशम करता  
. तिसके पीछे क्रम करके सूक्ष्म संपराय गुणस्थानमें संज्वलनके लोचकों  
सूक्ष्म करता है. तिस पीछे क्रम करके उपशांतमोह गुणस्थानमें ति  
स सूक्ष्म लोचका सर्वथा उपशम करता है, तथा इहां उपशांतमोह गुण  
स्थानमें जीव, एक प्रकृति, शातावेदनीय रूप बांधता है. अरु उणसठ  
प्रकृति वेदता है, तथा १४७ प्रकृतिकी उत्कृष्टी सत्ता है.

अथ उपशांतमोह गुणस्थानकमें, जैसा सम्यक्त्व चारित्र नाव लक्ष  
ण तीन हे, सो कहते है. यह गुणस्थानमें उपशम सम्यक्त्व अरु उप  
शम चारित्र होता है, अरु इहां नावनी उपशमही होता है, परतु क्षा  
यिक नाव तथा क्षायोपशमिक नाव नहीं होता है.

अथ उपशांतमोह गुणस्थानसें जैसें पड जाता है, तैसें कहते है. उ  
पशमी मुनि तीव्र मोहोदय अर्थात् चारित्र मोहनीयका उदय पा करके  
उपशांतमोह गुणस्थानसें पड जाता है, फेर मोहजनित प्रमादसें पतित  
होता है. जैसें पानीमें मल हेठ बैठ जाते है, तिस करके उपरसें निर्म  
ल हो जाता है, फेर कोइ निमित्त पा कर मलीन हो जाता है ॥ यदाह ॥  
सुय केवलि आहारग, उज्जुमइ उवसंतगावि दु पमाय ॥ हिंमंति नवमणं  
तं, तं अणंतरमेव च उ गइया ॥ १ ॥ अर्थः—१ श्रुतकेवली, २ आहार  
क शरीरी, ३ रुज्जुमति, ४ उपशांतमोह वाला. यह सर्व प्रमादके वशसें  
अनंत नव करते है, प्रमादके वशसें चार गतिमें वास करते है.

अथ उपशमक जीवोंको गुणस्थानोमें चढना, अरु पडनां जिस तरे  
होता है, सो कहते है. अपूर्वकरण गुणस्थानसें अनिवृत्तिवादर गु  
णस्थानमें जाता है, अरु अनिवृत्तिवादरगुणस्थानसें सूक्ष्मसंपराय गुण  
स्थानमें जाता है, अरु सूक्ष्मसंपराय वाला उपशांतमोह गुणस्थानमें  
जाता है. तथा अपूर्वकरणादि चारो गुणस्थानसे उपशम श्रेणिवाला पडा  
हुआ, प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानमे आ जाता है, अरु जे कर चरमगरीरी  
होवे, तब सातमे गुणस्थान तक आ करके फेर सातमे गुणस्थानसें रूपकश्रे  
णि मांफता है, परतु एक वार जिसने उपशमश्रेणि करी होवे, सो रूपक

श्रेणि कर सका है, अरु जिसने एक नवमें दो बार उपशमश्रेणि करी  
सो कृपकश्रेणि तिस नवमें नहीं कर सका है ॥ यदाह ॥ गाथा ॥ जीवो  
जम्ममि, इकसिं उवसामगो ॥ खयति कुक्का नो कुक्का, दोवारे उवसामगो ॥

अथ उपशमश्रेणि वालेके नवोंकी संख्या कहते हैं. इस संसारमें  
त नवोंमें चार बार उपशमश्रेणि होती है, अरु एक नवमें दो बार  
है ॥ यदाह ॥ उवसमसेणि चउक्कं, जायइ जीवस्स आनवं नूणं ॥  
पुण दो एगजवे. खवगे स्सेणी पुणो एगा ॥ १ ॥ उपशमश्रेणिकी स्  
पना इत अगळे यंत्रसें जान लेनी. इत यंत्रकी संवादक यह गाथा  
॥ गाथा ॥ अणदंसण पुंसिणी, वेयठकं च पुरिसवेय च ॥ दो दो एगतरि  
सरिसे सरिसं उवसमेइ ॥ १ ॥ अर्थः—प्रथम अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया  
अरु लोच. इन चारोंको उपशम करता है, पीठें मिथ्यात्व मोह, मिश्रमोह  
अरु सम्यक्त्व मोह, यह तीनोंका उपशम करता है, पीठें नपुंसकवेद, रं  
सें स्त्रीवेद, फेर हास्य, रति, अरति, जय, शोक, जुगुप्सा, यह ठे प्रकृतिक  
उपशम करता है. फेर पुरुषवेद, फेर अप्रत्याख्यानी क्रोध अरु प्रत्याख  
नी क्रोध, फेर संज्वलनका क्रोध, फेर अप्रत्याख्यानी अरु प्रत्याख्यानी मान  
फेर संज्वलनका मान. फेर अप्रत्याख्यानी अरु प्रत्याख्यानी माया, फेर  
ज्वलनकी माया, फेर अप्रत्याख्यानी अरु प्रत्याख्यानी लोच, फेर सं  
नका लोच, उपशांत करता है ॥ इति उपशमश्रेणि स्वरूपं ॥

अथ कृपकश्रेणिका स्वरूप लिखते हैं. जिस कृपकश्रेणिमें चढ़ कर  
गी (कृपक मुनि) कर्म कृत्य करणोंमें प्रवृत्त होता है. अथ अप्रम गुणस्थान  
कसें पहिलें जो कर्मप्रकृति कृपक मुनि कृत्य करता है, सो लिखते हैं.  
रमशरीरी, अवसायु, अल्पकर्मी, कृपकके चौथे गुणस्थानमें नरकायु  
य हो जाता है, नरक योग्य आशुका बंध नहीं करता है. तथा पांचम  
णस्थानमें तिरंगायु कृत्य होता है, अरु सातमे  
हो जाता है, तथा इहां सातमे  
जाता है, तिस पीठें कृपक सा  
रदती है, तब आठमे गुणस्थान  
ध्यान रूपातीत लक्षण विपे  
न करना उसको अ

ती हैं ॥ यदाह ॥ अच्युसेन जिताहारो, अच्युसेनैव जितासनः ॥ अच्युसेन  
जितश्वासोऽच्युसेनैवानितत्रुटिः ॥ १ ॥ अच्युसेन स्थिरं चित्त, मच्युसेन  
जितेंद्रिय ॥ अच्युसेन परानंदोऽच्युसेनैवात्मदर्शनं ॥ २ ॥ अच्युसवर्द्धि  
तैर्धानैः, शास्त्रस्थैः फलमस्ति न ॥ जवेन्नहि फलैस्तृप्तिः, पानीयप्रतिर्विवितैः  
॥३॥ तिस वास्ते अच्युससेंही विद्युद् ( निर्मल ) तत्त्वानुयायि बुद्धि होती है.

अथ अष्टम गुणस्थानमें शुक्लध्यानका आरंभ कहते हैं. रूपक साधु  
पह आठमे गुणस्थानमें " शुक्लसंस्थान " शुक्ल नामक प्रधान ध्यानका प्र  
थम पाठ पृथक्त्व चित्तर्क सप्रविचार नाम है, तिसका स्वरूप आगे लिखें  
गे. ऐसा ध्यान ध्याता है, सो कैसा साधु है? " आद्यसंहननसमन्वित "  
वज्ररूपजनाराचनामा प्रथम संहननयुक्त है.

अथ ध्यान करने वालेका स्वरूप लिखते हैं. योगींश्च रूपक मुनींश्च, व्य  
वहारपेक्ष्य, ध्यान करने योग्य होता है, क्या करके? निविड दृढ पर्यकास  
र करके, कथंनूतं? निश्चल आसन करके, क्योंकि आसनजयही ध्यानका  
प्रथम प्राण है ॥ यदाह ॥ आहारासणनिदा, जयं च काञ्चण जिणवरम  
॥ जाइऊ नियं अण्णा, उवइठं जिणवरिंवेण ॥ १ ॥ तत्र पर्यकासन, जंघा  
त अधोनागमें पग उपर करनेसें होता है, तथा कैईक सिद्धासन कहते  
हैं, तिसका स्वरूप ऐसा है कि ॥ श्लोका ॥ योनिं वामपदाऽपरेण निविडं, संपी  
ठ्य शिश्रं हनुं ॥ न्यस्योरस्यचर्लेन्द्रियः स्थिरमना, लोलां च ताड्वांतरे ॥ वंश  
धैर्यतया सुनिश्चलतया, पश्यन् भ्रुवोरंतर ॥ योगी योगविधिप्रसाधनरुते, सि  
दासनं साधयेत् ॥ १ ॥ अथवा आसनका कोइ नियम नहीं, चाहो कोइ  
आसन होवे, जिस आसनमें चित्त स्थिर हो जावे, सोइ आसन ठीक है,  
सो कैसा योगी है कि नासिकाके अग्रमें दीनी है सत् नेत्रकी दृष्टि, अ  
रे प्रसन्न नेत्र है जिसके, क्योंकि नासाग्रन्यस्तलोचनवालाही ध्यानका  
साधक होता है ॥ यदाह ॥ ध्यानदंढकस्तुतौ ॥ नासावंशाग्रनाग, स्थित  
पयनयुगो, मुक्तताराप्रचारः ॥ श्लोपाद्गृहीणवृत्ति, स्त्रिचुवनविवरो, द्वांतयोगै  
रचहु. ॥ पर्यकात्तकशून्यः, परिगलितघनोद्वासनिःश्वासवातः ॥ संध्यानारंभमू  
र्त्त, शिरजवतु जिनो, जन्मसंभूतिनीतैः ॥ १ ॥ फेर कैसा हं योगी? किं  
चेत् उन्मीलित अर्धविकसित है नेत्र जिसके, क्योंकि योगीयोके समाधि  
समयमें अर्धविकसित नेत्र होते हैं ॥ यदाह ॥ गंभीरस्तनमूर्त्ति, व्यपगतक

रणं, व्याप्तिसमं ॥ प्राणायामोल्लास, स्थलनिहितमना, इन्द्रिय  
 ग्रहणः ॥ नाऽत्युन्मीलन्निमील, न्नयनमतितरां, बद्धपर्यकबंधो ॥ ध्या  
 ध्याय शुक्लं, सकलविद्वन्वयः स पायाङ्गिनो वः ॥ १ ॥ फेर कैसा योगी  
 है? "मानस" (मन) चित्त अंतःकरण विकल्परूप वावरके बंधनमे  
 करा है, क्योंकि विकल्पही दृढ कर्मबंधनका हेतु है ॥ यदाह ॥ शुना  
 शुना वापि, विकल्पा यस्य चेतसि ॥ स स्वं वध्नात्ययः स्वर्ण, बंधना तेन  
 र्मणा ॥ १ ॥ वरं निज्ञा वरं मूर्च्छा, वरं विकलतापि वा, नत्वारतरोऽङ्गु  
 विकल्पाकुलितं मनः ॥ २ ॥ फेर कैसा है योगी? संसारके उद्घेद करने  
 स्ते उद्यम है जिसके क्योंकि नवघेदक ध्यानार्थ उत्साह वालोंकेही  
 सिद्धि होती है ॥ यदाह ॥ उत्साहान्निश्चयाधैर्या, त्संतोपात्तत्त्वदर्शनात्  
 मुनेर्जनपदत्यागा, त्पद्निर्योगः प्रसिद्धयेदिति ॥ १ ॥ तथा मुनि योगी  
 निज (पवनकों) ऊर्ध्व प्रचारासि दशम द्वार गोचरकों प्राप्त करता है, क्या  
 कें प्राप्त करता है? कि अपान द्वार मार्ग करके गुदाके रस्ते पवन  
 श्वासें निकलतेकों निरुद्ध (संकोच) करके, मूलबंध युक्ति करके करता  
 सो मूलबंध यह है, कि ॥ श्लोक ॥ पार्ष्णिजागेन संपीडय, योनिमा  
 येजुर्दं ॥ अपानमूर्धमारुप्य, मूलबंधो निगद्यते ॥ १ ॥ यह आकुंचन  
 मही प्राणायामका मूल है ॥ यदुक्तं ॥ ध्यानदंमस्तुतौ ॥ संकोच्यापानार्थं  
 दुतवहसदृशं, तंतुवत्स्वरूपं ॥ धृत्वा हृत्पद्मकोशं, तदनु च गलके, तद्व  
 नि प्राणशक्तिं ॥ नीत्वा शून्यानिशून्यां, पुनरपि खगतिं, दीप्यमानं समं  
 एकांकांकावलोकां, कलयति स कजां, यस्य तुष्टो जिनेशः ॥ १ ॥

अथ पूरक प्राणायाम कहते हैं. योगी पूरक ध्यानके योगसे अतिप्रयत्न  
 करके (कोष्ठ) सकल वेहगत नाडीसमूहकों पवन करके पूरता है, क्या करके?  
 षादशांगुल पर्यंत पवनकों आरुपण करके, वारां अंगुल प्रमाण बाहिर  
 सर्व औरसे खेंच करके पूरता है. इहां यह तात्पर्यार्थ है कि पवन आका  
 श तत्त्वके बहते दूये नासिकाके अंदरही पवन होता है, अरु अग्रिम  
 के बहते दूये चार अंगुल प्रमाण बाहिर ऊर्ध्वगति स्फुरत होता है, अरु  
 वायु तत्त्वके बहते दूये वै अंगुल प्रमाण बाहिर तिर्यग् फिरता है, अरु  
 पृथिवी तत्त्वके बहते दूये आठ अंगुल प्रमाण बाहिर मध्यम प्रागमे रह  
 ता है, अरु जल तत्त्वके बहते दूये बाह्य अंगुल प्रमाण नीचेकी बहता

तब द्वादश अंगुल पर्यंत वारुणमंमल प्रचार अमृतमय पवन आक  
ण करके इसका नाम पूरक ध्यानकर्म कहते हैं.

अथ रेचक प्राणायाम कहते हैं. तब पूरक ध्यानके अनंतर साधक योगी  
योगसामर्थ्यसे अरु प्राणायाम अन्यासके बलसे रेचकनामा पवन नाजिकम  
मोदरसें हलुवे हलुवे बाहिर काढता है, तिसका नाम रेचकध्यान कहते हैं

यदाह ॥ वज्रासनः स्थिरवपुः स्थिरधीःसचित्त,मारोप्य रेचक समीरणजन्म  
॥ स्वातेन रेचयति नाडिगतं समीरं,तत्कर्म रेचकमिति प्रतिपत्तिमेति ॥ १ ॥

अथ कुंजकध्यान कहते हैं. योगी कुंजकनामा पवन नाजिपंकजकुंजक  
ध्यान अर्थात् कुंजककर्म प्रयोग करके कुंजवत् (घटाकार) करके अतिशय क  
रके स्थिर करता है ॥ यदाह ॥ चेतसि श्रयति कुंजकचक्रं,नाडिकासु निवि

डिकृतवातः ॥ कुंजवत्तरति यज्जलमध्ये, तददंति किल कुंजककर्म ॥ १ ॥  
अथ पवनके जितनेसें मन जीत्या जाता है, यह बात कहते हैं. क्यों

कि जहां मन है, तहां पवन है,अरु जहां पवन है, तहां मन वर्तता है ॥  
यदाह ॥ इग्धांबुवत्संमिलितौ सदैव, तुल्यक्रियौ मानसमारुतौ हि ॥ याव

न्मनस्तत्र मरुत्प्रवृत्ति, र्वावन्मरुत्तत्र मन प्रवृत्तिः ॥ १ ॥ तत्रैकनाशादपरस्य  
नाश, एकप्रवृत्तेरपरप्रवृत्तिः ॥ विध्वस्तघोरैर्द्वियवर्गशुद्धि, स्तद्धंसनान्मोक्षप

दस्य सिद्धिः ॥ १ ॥ इस प्रकार करके पूरक, रेचक, कुंजकके क्रम करके प  
वनोंका आकुंचन निर्गमन, साध्य करके वायुका संग्रह, अरु चित्तका एका

ग्रपणां चिंतन करके समाधिविषे निश्चलपणको धारण करता है, क्योंकि  
पवनके जीतनेसेंही मन निश्चल होता है ॥ यदाह ॥ प्रचलति यदि, क्षोणी

चक्रं, चलन्त्यचला अपि ॥ प्रलयपवन, प्रेखालोला, श्रलंति पयोधय ॥ प  
वनजयिनः, स्वावष्टेन, प्रकाशितशक्तयः ॥ स्थिरपरिणते, रात्म ध्याना,

चलंति न योगिनः ॥ १ ॥  
अथ नावकीही प्रधानता कहते हैं. इहां रूपकश्रेणि आरोहविषे जो

प्राणायामका क्रम प्रौढि पवनका अन्यासक्रम कहा है, सो प्रागल्भता अ  
र्थात् रूढि करके जो प्रसिद्ध है, सो दिखलाया है, परंतु जो प्राणायाम

ही करे, तो रूपकश्रेणि चढे,ऐसा कुछ नियम नहीं, क्योंकि रूपकका ना  
वही केवल रूपकश्रेणिका कारण है, परंतु प्राणायामादि आमंवर नहीं.  
चपटिनापि ॥ नासाकंदं नाडीवृद्धं, वायोश्चारः प्रत्याहारः ॥ प्राणायामो वी

जयामो, ध्यानाभ्यासोमंत्रन्यासः ॥ १ ॥ हृत्पद्मस्थं त्रुमध्यस्थं, क  
 स्थं थासांतःस्थं ॥ तेजः शुद्धं ध्यानं बुद्धः, उँ काराख्यं सूर्यप्रनाख्यं  
 ब्रह्माकाशं शून्यान्यासं, मिथ्याजल्पं चिंताकल्पं ॥ कायाक्रांतं चित्तत्रां,  
 क्त्वा सर्वं मिथ्यागवे ॥ ३ ॥ शुर्वादिष्टं चिंत तमिष्टं ॥ देहातीतं नावोमं  
 त्यक्त्वा हं हं नित्यानंदं, शुद्धं तत्त्व जानीहित्वं ॥४॥ अन्यच्च ॥ उँ कारा  
 नं विचित्रकरणैः, प्राणस्य वायोर्ऊथा, तेजश्चित्तनमात्मकायकमज्ञे, शु  
 रालंबनं ॥ त्यक्त्वा सर्वमिदं कलेचरगतं, चितामनोविभ्रमं ॥ तत्त्वं पश्यत  
 ल्पकल्पनकला, तीतं स्वजावस्थितं ॥ १ ॥ यह सर्वं रुडि करकं रूपक  
 के धामंवर है, परंतु तत्त्वमें मरुदेवादिवत् नावही प्रधान है.

अथ आद्य शुक्लध्यानका नाम कहते हैं. मन. वचन, अरु कायाके पो  
 वाले मुनिके प्रथम शुक्ल ध्यानका पाद होता है, सो कैसा है ? कि वितर्क  
 कें सहित जो वचें, सो सवितर्क. अरु सहविचार करकें जो प्रवर्ते, सो सवि  
 र. तथा सह पृथक्त्वेन वर्तते इति सपृथक्त्व. इन तीनों विशेषणों करकें  
 क होनेसे सपृथक्त्व, सवितर्क, सप्रविचार नामक प्रथम शुक्लध्यानका नाम है.

अथ विशेषण तीनोंका स्वरूप कहते हैं, यह पूर्वोक्त प्रथम शुक्ल  
 त्रयात्मक क्रमोत्क्रम करके गृहीत विशेष तीन रूप है, तहां श्रुतचिंता  
 वितर्क है, तथा अर्थ शब्द योगांतरमें जो संक्रमण करना है, सो वि  
 है, अरु इव्य गुण पर्यायादि करकें जो अन्यपणा है, सो पृथक्त्व है.

अथ इन तीनोंका प्रगट अर्थ कहते हैं, उसमें प्रथम वितर्क  
 स्वरूप कहते हैं, जिस ध्यानमें अंतरंग ध्वनिरूप वितर्कविचार रूप हो  
 सो सवितर्कध्यान है, क्योंकि स्वकीय निर्मल परमात्मतत्त्व अनुभव  
 अंतरंगजावगत ध्यागमके अवलंबनसे. यह सवितर्क ध्यान है.

अथ सविचार कहते हैं, जिस ध्यानमें सपूर्वोक्त वितर्क विचार  
 अर्थमें अर्थांतरमें संक्रमण होवे, शब्दसे शब्दांतरमें संक्रमण होवे, योगमें  
 योगांतरमें संक्रमण होवे, सो ध्यान, सविचारससंक्रमण कहते हैं.

अथ पृथक्त्वका स्वरूप कहते हैं. जिस ध्यानमें वो पूर्वोक्त वितर्क सवि  
 चार अर्थ व्यंजन योगांतर संक्रमणरूपनी शुद्धात्मकी तरें इव्यमे इव्यमे  
 रमे जाता है, अथवा गुणोंसे गुणांतरमें जाता है, अथवा पर्यायोंसे पर्या  
 यांतरमें जाता है, तहां जो सहजात है, सो गुण है, जसें सुवर्णमें सिन्धु

का पातता है. अरु जो क्रमचूत है, सो पर्याय है, जैसें सुवर्णमें मुद्रा कुं  
कुंलादिक. तिन इव्य गुण पर्यायांतरोंमें जिस ध्यानमें अन्यत्र पृथक्त्व है,  
सो तो सपृथक्त्व है.

अथ आद्य शुक्लध्यान करकें जो शुद्धि होती है, सो कहते हैं. योगी  
माधिवान् ऐसा पूर्वोक्त त्रयात्मक पृथक्त्व वितर्क सप्रविचाररूप जो प्र  
थम शुक्लध्यान है, उसका ध्याता हुआ परम प्रकृत शुद्धिकों प्राप्त होता  
है, सो कैसी शुद्धिकों प्राप्त होता है? कि जो शुद्धि मुक्तिरूप लक्ष्मीके मु  
खके दिखलाने वाली है, तिस शुद्धिकों प्राप्त होता है.

अथ इसहीका विशेष स्वरूप कहते हैं. यद्यपि यह शुक्लध्यान प्रतिपा  
ति (पतनशाल) उत्पन्न होता है, तोर्नी अतिविशुद्ध होनेसें औ अति निर्म  
ल होनेसें अगले गुणस्थानमें चढना चाहता है, एतावता अगले गुण  
स्थानको ढौडता है, तथा अपूर्वकरण गुणस्थानस्थ जीव निडादिक, देव  
दिक, पंचेंद्रिय जाति, प्रशस्त विहायोगति, त्रसनवक, वैक्रिय, आहारक, तै  
जस, कामेण, वैक्रियोपांग, आहारकोपांग, आद्य संस्थान, निर्माण, तीर्थ  
करनाम, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उद्धास. यह वत्सीस  
कर्म प्रकृतिका व्यवहेद होनेसें ढवीश कर्मप्रकृतिका बंध करता है. तथा  
अतिम तीन संहनन अरु सम्यक्त्व मोह, इन चारके उदय व्यवहेद होने  
सें बहत्तरी कर्मप्रकृति वेदता है. अरु १३७ कर्मप्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति  
रूपक श्रेणिवालेका आठमा गुणस्थानका स्वरूप ॥

अथ रूपक अनिवृत्तिनामक नवमे गुणस्थानकमें आरोहण करता  
हुआ जौनसी कर्मप्रकृति जहां जैसें कृय करता है. सो कहते है. पूर्वोक्त  
आठमे गुणस्थानसें अनंतर रूपक मुनि अनिवृत्तिनामक नवमे गुणस्था  
नमें चढता है, तब तिस नवमे गुणस्थानके नव जाग करता है, तिहा प्र  
थम जागमें सोलां कर्म प्रकृति कृय करता है, सो यह है. १ नरकगति, २  
नरकानुपूर्वी, ३ तिर्यग्गति, ४ तिर्यचानुपूर्वी, ५ साधारणनाम, ६ उद्यो  
तनाम, ७ सूक्ष्म, ८ द्वीन्द्रिय जाति, ९ त्रीन्द्रिय जाति, १० चतुरिन्द्रिय जा  
ति. ११ एकेंद्रियजाति, १२ आतप नाम, १३ स्वानार्द्ध त्रिक, अर्थात् निडा  
निडा, प्रचलाप्रचला, स्वानार्द्ध, यह त्रिक. १४ स्थावर नाम. यह  
सोलां कर्म प्रकृतिको नवमे गुणस्थानके प्रथम जागमें कृय करता है,



जग्रामो, ध्यानाभ्यासोमंत्रन्यासः ॥ १ ॥ हृत्पद्मस्थं ब्रूमध्यस्थं, नास  
स्थं ध्यासांतःस्थं ॥ तेजः शुद्धं ध्यानं बुद्धः, उकारास्थं सूर्यप्रनास्थं  
ब्रह्माकाशं शून्याभ्यासं, मिथ्याजल्पं चिंताकल्पं ॥ कायाक्रांतं चित्तव्रतं,  
क्त्वा सर्वे मिथ्यागर्व ॥ ३ ॥ गुर्वादिष्टं चित्तमिष्टं ॥ देहातीतं जावो  
त्यक्त्वा दंष्टं नित्यानंदं, शुद्धं तत्त्व जानीहित्वं ॥ ४ ॥ अन्यच्च ॥ उकारा  
नं विचित्रकरणैः, प्राणस्य वायोर्ज्ञया, तेजश्चित्तनमात्मकायकमले, शु  
राजंवनं ॥ त्यक्त्वा सर्वमिष्टं कलेवरगतं, चिंतामनोविभ्रमं ॥ तत्त्वं पश्यन्  
ल्पकल्पनकला, तीतं स्वभावस्थितं ॥ १ ॥ यह सर्व रूढि करके हृत्पद्म  
के आसंवर है, परंतु तत्त्वमें मरुदेवादिवत् जावही प्रधान है.

अथ आद्य शुक्लध्यानका नाम कहते हैं. मन, वचन, अरु कायाके  
वाले मुनिके प्रथम शुक्ल ध्यानका पाद होता है, सो कैसा है? कि वितर्क  
के सहित जो वर्त्ते, सो सवितर्क. अरु सहविचार करके जो प्रवर्त्ते, सो सवि  
र. तथा सह पृथक्त्वेन वर्त्ते इति सपृथक्त्व. इन तीनों विशेषणों करके सं  
क्त होनेसे सपृथक्त्व, सवितर्क, सप्रविचार नामक प्रथम शुक्लध्यानका नाम है.

अथ विशेषण तीनोंका स्वरूप कहते हैं, यह पूर्वोक्त प्रथम शुक्लध्यान  
त्रयात्मक क्रमोत्क्रम करके गृहीत विशेष तीन रूप हैं, तहां श्रुतचिंता  
वितर्क है, तथा अर्थ शब्द योगांतरमें जो संक्रमण करना है, सो वितर्क  
है, अरु इव्य गुण पर्यायादि करके जो अन्यपणा है, सो पृथक्त्व है.

अथ इन तीनोंका प्रगट अर्थ कहते हैं, उसमें प्रथम वितर्क  
स्वरूप कहते हैं, जिस ध्यानमें अंतरंग ध्वनिरूप वितर्कविचार रूप होते,  
सो सवितर्कध्यान है, क्योंकि स्वकीय निर्मल परमात्मतत्त्व अनुभवमें  
अंतरगनावगत आगमके अवजंवनसे. यह सवितर्क ध्यान है.

अथ सविचार कहते हैं. जिस ध्यानमें सपूर्वोक्त वितर्क विचारण  
अर्थसे अर्थांतरमें संक्रम होवे, शब्दसे शब्दांतरमें संक्रम होवे, योगसे  
योगांतरमें संक्रम होवे, सो ध्यान, सविचारसंक्रमण कहते हैं.

अथ पृथक्त्वका स्वरूप कहते हैं. जिस ध्यानमें वो पूर्वोक्त वितर्क सवि  
चार अर्थ व्यंजन योगांतर संक्रमणरूपकी शुद्धात्मकी तरें इव्यसे इव्य  
रमें जाता है, अथवा गुणोंसे गुणांतरमें जाता है, अथवा पर्यायोंमें पर्या  
यांतरमें जाता है, तहा जो सहजात है, सो गुण है, जैसे सुवर्णमें स्निग्ध

का पातता है. अरु जो कमजुत है, सो पर्याय है, जैसें सुवर्णमें मुझ कुं  
लादिक. तिन इव्य गुण पर्यायांतरोंमें जिस ध्यानमें अन्यत्र पृथक्त्व है,  
सो सपृथक्त्व है.

अथ आद्य शुक्लध्यान करकें जो शुद्धि होती है, सो कहते हैं. योगी  
माधिवान् ऐसा पूर्वोक्त त्रयात्मक पृथक्त्व वितर्क सप्रविचाररूप जो प्र  
म शुक्लध्यान है. उसका ध्याता दूध्या परम प्रकृष्ट शुद्धिकों प्राप्त होता  
है, सो कैसी शुद्धिकों प्राप्त होता है? कि जो शुद्धि मुक्तिरूप लक्ष्मीके मु  
वके दिखलाने वाली है, तिस शुद्धिकों प्राप्त होता है.

अथ इसहीका विशेष स्वरूप कहते हैं. यद्यपि यह शुक्लध्यान प्रतिपा  
ति (पतनशाल) उत्पन्न होता है, तोनी अतिविशुद्ध होनेसें औ अति निर्म  
होनेसें अगले गुणस्थानमें चढना चाहता है. एतावता अगले गुण  
स्थानकों दौडता है, तथा अपूर्वकरण गुणस्थानस्थ जीव निडादिक, देव  
दिक, पंचेंद्रिय जाति, प्रशस्त विहायोगति, त्रसनवक, वैक्रिय, आहारक, तै  
जस, कामेण, वैक्रियोपांग, आहारकोपांग, आद्य संस्थान, निर्माण, तीर्थ  
करनाम, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उद्वास. यह वनीस  
कर्म प्रकृतिका व्यवहेद होनेसें षड्वीश कर्मप्रकृतिका बंध करता है. तथा  
अतिम तीन संहनन अरु सम्यक्त्व मोह, इन चारके उदय व्यवहेद होने  
से बहत्तरी कर्मप्रकृति वेदता है. अरु १३० कर्मप्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति  
रूपक श्रेणिवालेका आठमा गुणस्थानका स्वरूप ॥

अथ रूपक अनिवृत्तिनामक नवमे गुणस्थानकमें आरोहण करता  
दूध्या जौनसी कर्मप्रकृति जहां जैसें कृय करता है. सो कहते है. पूर्वोक्त  
आठमे गुणस्थानसें अनंतर रूपक मुनि अनिवृत्तिनामक नवमे गुणस्था  
नमें चढता है, तब तिस नवमे गुणस्थानके नव जाग करता है, तिहां प्र  
थम जागमे सोलां कर्म प्रकृति कृय करता है, सो यह है. १ नरकगति, २  
नरकानुपूर्वी, ३ तिर्यग्गति, ४ तिर्येचानुपूर्वी, ५ साधारणनाम. ६ उद्यो  
तनाम, ७ सूक्ष्म, ८ वीन्द्रिय जाति, ९ त्रीन्द्रिय जाति, १० चतुरिन्द्रिय जा  
ति. ११ एकेंद्रियजाति, १२ आतप नाम, १५ स्त्यानार्द्ध त्रिक, अर्थात् निडा  
निडा, प्रचलाप्रचला. स्त्यानार्द्ध, यह त्रिक. १६ स्थावर नाम. यह  
सोलां कर्म प्रकृतिको नवमे गुणस्थानकके प्रथम जागमें कृय करता है,

तथा अप्रत्याख्यानकी चौकड़ी, अरु प्रत्याख्यानकी चौकड़ी, यह आठ पंधकी कपायकों दूसरे जागमें कृत्य करता है, तीसरे जागमें नपुंसकवेद, अरु चौथे जागमें स्त्रीवेद कृत्य करता है, तथा पांचमे जागमें हास्य, रति, रति, जय, शोक, अरु जुगुप्सा, यह ठे प्रकृतिका कृत्य करता है. शेष जागमें ले कर नवमे जाग तांइ चारों जागमें क्रमसें शुद्ध हुआ थाका कृती अति निर्मलतासें क्रम करके ठे जागमें पुरुषवेद, सातमे जागमें संज्वलनका क्रोध, आठमे जागमें संज्वलन मान, नवमे जागमें संज्वलनकी कृयाकों कृत्य करता है, तथा यह गुणस्थानमें वर्चता दुआ मुनि, हास्य, रति, जय, जुगुप्सा. इन चारोंके व्यवच्छेद होनेसें बावीस प्रकृतिका बंध करता है. अरु हास्य षट्कके उदय व्यवच्छेद होनेसें सातठ प्रकृतिका वेदता है, तथा नवमे अंशमें माया पर्यंत प्रकृतियोंके कृत्य करणेसें पैचीस प्रकृतिके व्यवच्छेद होनेसें एक सौ तीन प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति कृपकके नवमे गुणस्थानकका स्वरूप.

अथ कृपकके दशमे गुणस्थानका स्वरूप लिखते हैं. पूर्वोक्त नवमे गुणस्थानकसें अनंतर कृपकमुनि सूद्धमसंपरायनामक दशमे गुणस्थानमें चढता है. क्या करता हुआ चढता है? कि कृणमात्रसें संज्वलनके संज्वलन लोचकों सूद्धम करता हुआ चढता है, तथा सूद्धम संपराय गुणस्थानस्थ जीव, पुरुषवेद तथा संज्वलन चतुष्कके बंध व्यवच्छेद होनेसें सत्ता प्रकृतिका बंध करता है, अरु तीन वेद, तथा तीन संज्वलन कपायके उदय व्यवच्छेद होनेसें साठ प्रकृति वेदता है, मायाकी सत्ता व्यवच्छेद होनेसें एक सौ दो प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति कृपकस्य दशमं गुणस्थानं ॥

अथ कृपककों इग्यारहवा गुणस्थानक नहीं होता है, किंतु दशमे गुणस्थानसें कृपक, सूक्ष्मलोनांशोंको सूक्ष्मकृत लोचखंनोंको कृत्य करता हुआ धारहमे कृणमोह गुणस्थानमें जाता है. इहां कृपकश्रेणि समाप्त करता है. उसका क्रम यह है, कि प्रथम अनंतानुबंधी चार कृत्य करता है, फेर मिश्रित्व मोहनीय, फेर मिश्रमोहनीय, फेर सम्यक्त्व मोहनीय, फेर अप्रत्याख्यान चार कपाय, तथा प्रत्याख्यान चार कपाय. एव आठ कृत्य करता है. फेर नपुंसकवेद, फेर हास्यषट्क, फेर पुरुष वेद, फेर संज्वलन क्रोध, फेर संज्वलन मान, फेर संज्वलन माया, फेर संज्वलन लोच कृत्य करता है.

अथ तहां वारहमे गुणस्थानमें शुक्लध्यानके दूसरे अंशकों आश्रित करता है, यह बात कहते हैं. अथानंतर सो रूपकहीणमोहरूप हो करके हीणमोह गुणस्थानके मार्गमें परिणतिमान् हो करके, प्रथम शुक्लध्यानकी रीति करके दूसरे शुक्लध्यानको आश्रित होता है, कथंनू रूपक ? बीतरागः विशेष करके "इतो ( गतो ) रागो यस्मात् स बीत रागः." फेर कैसा है रूपकमुनि ? महायति, यथाख्यातचारित्री. फेर कैसा मुनि ? कि शुद्धतर जाव करके संयुक्त ऐसा रूपक, दूसरे शुक्ल ध्यानको आश्रित होता है.

अथ सोइ शुक्लध्यान सनाम विशेषण कहते हैं, सो रूपक हीणमोह गुणस्थानवर्ती, दूसरा शुक्लध्यान एक योग करके ध्याता है ॥ यदाह ॥ एकं त्रियोगजाजा, माद्यं स्यादपरमेकयोगवतां ॥ तनुयोगिनां तृतीयं, नि योगानां चतुर्थं हि ॥ १ ॥ कैसा ध्यान है ? कि "अष्टयक्त्वं षष्ठयक्त्वं च तं अविचारं विचार रहितं सवितर्कं गुणान्वितं वितर्कं मात्र गुण संयुक्तं" दूसरा शुक्लध्यान ध्याता है.

अथ अष्टयक्त्वका स्वरूप कहते हैं. तत्त्वज्ञाता एकत्व अर्थात् अष्टयक्त्वज्ञानको धारण करता है, सो एकत्वपणा क्या है ? जो निजात्मइव्य एक केवल अपणा इव्य विद्युद्ध परमात्मइव्य है, अथवा तिसही परमात्म इव्यका एक केवल पर्याय, अथवा एक केवल गुण, इस प्रकारसे एक इव्य, एक गुण, एक पर्याय, निश्चल, चलन वर्जित जहां ध्यावे, सो एकत्व है.

अथ अविचारपणा कहते हैं. इस कालमें सध्यानकोविद अर्थात् शुक्लध्यानका जो जननहारा है. सो पूर्वमुनिप्रणीत शास्त्रान्नायविशेष से है, परंतु शुक्लध्यानका अनुनवी इस कालमें कोई नहीं ॥ यदाहु ॥ श्रीहे मचइ सूरिपादा. ॥ श्लोक ॥ अनविद्वित्याम्नायः, समागतोऽस्येति कीर्त्यतेऽस्मानिः ॥ दुष्करमप्याधुनिकैः, शुक्लध्यानं यथाशास्त्रं ॥ १ ॥ जिनसध्यानकोविदोंने शास्त्रान्नायसे शुक्ल ध्यानका रहस्य जान्या है, तिनोनें अविचार विशेषण संयुक्त दूसरे शुक्लध्यानका स्वरूप कहा है, सो क्या है ? जो पूर्वोक्त स्वरूपमें व्यंजन अर्थयोगोमें एतावता शब्दार्थ योग रूपोमें परावर्तन विवर्जित शब्दसे शब्दांतर, इत्यादि क्रमसे रहित चिंतन श्रुतानुसारेही करिये है, सो अविचार है.

अथ सवितर्क कहते हैं, सवितर्क एक गुणसंयुक्त दूसरा शुद्ध किससेंति होता है ? तहां कहै हैं, कि जावश्रुतके आलंबनसें होता है। सूक्ष्म अंतर्जडपरूप जावगत अवलंबनमात्र चिंतनसें होता है।

अथ शुक्लध्यानजनित समरसी जाव कहते हैं. इस पूर्वोक्त प्रश्न करके एकत्वविचार सवितर्करूप तीन विशेषण संयुक्त दूसरा शुक्लध्यान कहे, तिस दूसरे शुक्लध्यानमें वर्तता हुआ ध्यानी समरसी जावको धारण करता है, सो यह समरसी जाव जो है, सो तदेकशरण मान्या है, कारण आत्मा जो अप्रत्यक्षत्व करके परमात्मामें लीन करीयें, सोइ समरस जाव धारण करणां है, समरस किससेंति करे ? कि आत्माके अनुभवसें कि

अथ क्षीणमोहगुणस्थानके ठेहडे क्या करता है ? सो कहते हैं. पूर्वोक्त ध्यानके योगसें औ दूसरे शुक्लध्यानके योगसें प्लुष्यत कर्मोंपर त्कर दह्यमान है, कर्मरूप इंधनका समूह, ऐसा योगीइ अंतके प्रथम समय अर्थात् बारहवे गुणस्थानके दूसरे चरम समयमें निजा अरु प्रजा, इन दो प्रकृतिका क्षय करता है.

अथ अंत समयमें जो करता है, सो कहते हैं. क्षीणमोह गुणस्थानके अंत समयमें १ चक्रुदर्शन, २ अचक्रुदर्शन, ३ अचधिदर्शन, केवलदर्शन. यह चार दर्शनावरणीय तथा पंचविध ज्ञानावरण, तथा चविध अंतराय, यह चौदह प्रकृतिका क्षय करके क्षीणमोहांश हो का केवल स्वरूप होता है. तथा क्षीणमोह गुणस्थानस्थ जीव, दर्शनचक्रु अरु ज्ञानांतरायदशक, उच्चैर्गोत्र, यशनाम. यह सोजां प्रकृतिका व्यवहृद होनेसे एक शातावेदनीका बंध करता है, तथा १ संज्वलन लोच, २ रूपनाराचसंघयण, इनके उदय विहृद होनेसे सत्तावन प्रकृ वेदता है. तथा संज्वलनके लोचकी सत्ता दूर होनेसे एक सौ एक प्रकृ की सत्ता है. इति रूपकस्य षादश गुणस्थानकस्वरूप ॥ १२ ॥

अथ क्षीणमोहांत प्रकृतियोंकी संख्या कहते हैं. चौथे गुणस्थानसें कर क्षय होती हुई त्रैसठ प्रकृति, क्षीणमोहमें संपूर्ण नई है, सो कहें हैं एक प्रकृति चौथे गुणस्थानमें क्षय हुई, एक पांचमें, आठ तमें, ठनीत नवमें, सत्तरे बारहमें. यह सर्व त्रैसठ नई. तथा शेष पचा

कृति पुराणे वस्त्रकी तरें ( अत्यंत जीर्णवस्त्रसमान ) तेरहवें सयो  
केवली गुणस्थानमें रहती है.

अथ सयोगी केवलीके जो नाव होता है, अरु जो सम्यक्त्व चारि  
होता है, सो कहते हैं. तिस केवल आत्मा जगवतको इहां सयो  
गुणस्थानमें जाव तो ह्याधिक शुद्ध ( निर्मल ) होता है, औ स  
यक्त्व परम प्रकृष्ट ह्याधिक होता है, तथा चारित्र ह्याधिक यथाख्या  
नामक होता है, इसका तात्पर्य यह है, कि उपशम अरु ह्यायोपश  
मक यह दो नाव नही होते हैं.

अथ तिस केवलात्मकों केवल कहते है. तिस केवल रूप सूर्यके प्रकाश  
करके चराचर जगत् हस्तामलक उपमावत् ( हस्त तलेमें ग्रहण करा आम  
तो अज्ञेकी तरें ) प्रत्यक्ष ( साक्षात्कार ) करके जासन करते है. इहां प्रकाशमान  
सूर्यकी उपमा जो कही है, सो व्यवहार मात्र कही है, नतु निश्चयसेंति  
कही है, कारण कि निश्चय करके तो केवलज्ञानका अरु सूर्यका बड़ा अंतर है.  
अथ जिसने तीर्थकरनाम उपाज्या है, तिसका विशेष कहते हैं. विशेष  
करके अर्हतु नक्ति प्रमुख वीश पुण्यके स्थानक जो जीव, आराधन कर  
ता है, सो तीर्थकरनामकर्म उपाजिन करता है. सो वीश स्थानक यह है ॥

गाथा ॥ अरिहंत सिद्ध पवण, गुरु थेर बहुस्तुए तवस्तीसु ॥ बहजयाइ  
एसु, अनिरुणं एो वउग्गेय ॥ १ ॥ दंसण विणए आव, स्सए सीजवए  
निरइयारे ॥ खणजवच्चियाए, वेयावच्चे समाहीयं ॥ २ ॥ अपुव नाण ग्गह  
ण, सुयज्जती पवण पजावणया ॥ एएहिं कारणेहिं, तिच्चयरत्तं लहइ जी  
वो ॥ ३ ॥ इनका अर्थ आगें लिखेंगे, तिस वास्ते इहां सयोगी गुणस्था  
नमें तीर्थकर कर्मोदयसें वो केवली ( त्रिजगत्पति ) त्रिचुवनपति जिनेंइ  
होता है जिन, सामान्य केवलीयोकों कहते है, तिनमें जो इंडकी तरें हो  
वे, सो जिनेंइ जाननां.

अथ तीर्थकरकी महिमा कहते है, सो जगवान् तीर्थकर पूर्वोक्त च  
उत्तीस अतिशय करके संयुक्त होता है, औ सर्व देवता जिसको नमस्का  
र करते है, तथा सकल देव मानवोंने जिसको नमस्कार करा है, सो स  
र्वोत्तम, औ सकल शासनोमें प्रधान, ऐसा तीर्थप्रवर्चन प्रगट करता हू  
आ वरुष्ट देशोन पूर्वकोटि लग विद्यमान रहता है.

अथ सो तीर्थकर नामकर्म जैसे वेदनेमें आता है, तैसें कहनेमें तिस तीर्थकरनें सो तीर्थकर नामकर्म जोगीयें है, क्या करनेसें ? सो कर्मा है. पृथ्वीमन्डलमे जव्यजीवोंके प्रतिबोधनेसें, देशविरति औ सर्विकरनेसें, तीर्थकर नामकर्म वेदनेमें आता है. जे कर तीर्थकर नामकर्म का उदय न होवे, तब कृतकृत्य होनेसें जगवान्को उपदेश देनेका प्रयोजन है ? इस वास्ते जे वादी जगवान्को निःशरीरी नैरुपाधिक रहित सर्वव्यापी मानते हैं, सो देहादिकके अभावसें धर्मका उपदेश ही हो सकता है, जे कर उपाधि रहित सर्वव्यापी परमेश्वरजी होवे, तब तो अब इस कालमें अस्मदादिकोंको क्यों नहीं उपदेश है ? क्योंकि पूर्वकालमें अग्नि आदिक रूपियोंको उसने प्रेरित, तथा ब्रह्मदि द्वारा चार वेदका उपदेश करा, तथा भूसा, ईसा द्वारा जगत्को उपदेश करा, तो फेर अब क्यों नहीं उपदेश करता ? परोपकारीके क्या उपाधि है ? जे कर कहोगेकि इस कालमें सर्व जीव उपदेश मानने योग्य नहीं है, इस वास्ते उपदेश नहीं देता, तब तो पूर्वकालमेंनी सर्व जीवोंने परमेश्वरका उपदेश नहीं माना है. प्रथम तो कालासुर प्रमुख अनेक जीवोंने उपदेश ही माना, दूसरा अजाजीलने नहीं माना, औ यहूदाने, तथा कितने इसराइलियोने नहीं माना, इस वास्ते पूर्वकालमेंनी परमेश्वरको उपदेश देना योग्य नहीं था. जे कर कहोगेकि उसकी छोड़ी जाने क्यों कर उपदेश दीया अरु अब किस वास्ते उपदेश नहीं देता. तो फेर तुम क्यों कहते हो कि परमेश्वरके मुख नहीं ? इस वास्ते यही सत्य है, कि तीर्थकर नामकर्मके वेदने वास्ते जगवान् उपदेश करते हैं, अरु निरवखत उपदेश करते है उस वखत देहधारी होते है. इत्यलं प्रसंगेन ॥ १ ॥ वली केवलज्ञानवान् पृथ्वीमन्डलमें उत्कृष्ट आठ वर्ष ऊणा पूर्वकोटिमाण विचरता है, औ देवताओंके करे हुए कंचनकमलोके उपरि पग ख कर चलता है, अरु आठ प्रत्याहार करके संयुक्त अनेक सुरासुरको संसेवित विचरता है. यह स्थिति सामान्य प्रकारे केवलीयोंकी कही है. अरु जिनेइ तो मध्यस्थिति वाला होता है.

अथ केवलि समुद्घातकरण कहते है. " अस्तौ " वो केवली जब केनीय कर्मसेती आयु.कर्मकी स्थिति थोड़ी जानता है, तब तिसके उप

रने वास्ते केवली, समुद्धात करता है, तिस समुद्धातका स्वरूप कहते हैं, तहां प्रथम समुद्धात पदका अर्थ कहते हैं. यथास्वभावस्थित आत्मप्रदेशोंको वेदनादि सात कारणों करके समंतात् उद्धातनं स्वभावसे अन्यज्ञापणे परिणमन करनां, तिसका नाम समुद्धात है. सो समुद्धात सात प्रकारें है. १ वेदनास०, २ कपायस०, ३ मरणस०, ४ क्रियस०, ५ तेजःस०, ६ आहारकस०, ७ केवलिस०, इन सातों समुद्धातोंमेंसे केवलिसमुद्धात इहां ग्रहण करणी. तिस केवलिसमुद्धातके अर्थ केवली जगवान् आद्यु अरु वेदनी कर्मके सम करने वास्ते प्रथम समयमें आत्मप्रदेशों करके ऊर्ध्वलोकांत लागि दंमत्व (दंमाकार) जावे आत्मप्रदेश करता है. दूसरे समयमें पूर्व, पश्चिम, दिशामें आत्मप्रदेशों करके कपाटाकार करता है, तीसरे समयमें उत्तर, दक्षिण, आत्मप्रदेशों का मथानाकार करता है, चौथे समयमें अंतर पूर्ण करनेसें सर्व लोक व्यापी होता है. इस तरें केवली, चौथे समय विश्वव्यापी होता है.

अथ इहांसें निवृत्ति कहते हैं. इस प्रकार करके केवली आत्मप्रदेशोंको विस्तार करनेके प्रयोगसें कर्मलेशकों सम करता है. सम करके पीछें तिस समुद्धातसें उलटा निवर्त्तता है, सो जैसें है, कि केवली चार समयमे जगत् पूर्ण करके पांचमे समय पूर्णसें निवर्त्तता है. ठठे समयमे मथानपणा दूर करता है, सातमे समयमें कपाट दूर करता है, आठमे समयमें दंमत्व उपसंहार करता हुआ स्वभावस्थ होता है ॥ य दाहुर्वाचकमुख्या. ॥ दंमं प्रथमे समये, कपाटमथ चोचरे तथा समये ॥ मथानमथ तृतीये, लोकव्यापी चतुर्थे तु ॥ १ ॥ सहरति पंचमे त्व, तराणि मथानमथ पुनः षष्ठे ॥ सप्तमेके तु कपाटं, संहरति तथाऽष्टमे दंमं ॥१॥

अथ केवली समुद्धात करता हुआ जैसा योगवान्, अरु अनाहारक होता है, सो कहते हैं. केवली समुद्धात करता हुआ प्रथम अरु अंत समयमें औदारिककाय योगवाला होता है, दूसरे, अरु ठठे समयमें मिश्रौदारिककाय योगी होता है, मिश्रपणा इहां कार्मण करके औदारिक है, तथा तीसरे, चौथे, अरु पांचमे समयोंमें केवल कार्मणकाय योगवाला होता है, जिन समयोंमें केवली केवल कार्मण काययोग वाला होता है, तिनही समयोंमें अनाहारक होता है.



अथ जौनसा केवली समुद्घात करता है, अरु जौनसा नहीं करता है, सो कहते हैं. जिसकी ठै महिनेसें अधिक आयुं श्रेय है, जे उसकों केवल ज्ञान होवे, वोतो निश्चय समुद्घात करे, अरु जिसकी ठै हीनेके नीतर आयुं होवे, उसकों जो केवल ज्ञान होवे, तो नजना है. केवल समुद्घात करेनी, अरु नहीं नी करे ॥ यदाह ॥ ठमासाक सेसा, पन्नं जेसिं केवलं नाणं ॥ ते नियमा समुग्घाडय, सेसा समुग्घाय नडय ॥

अथ समुद्घातसें निवृत्त हो करके जो कुछ करता है, सो कहते वो मन, वचन, अरु काययोगवान् केवली, केवल समुद्घातसें निवृत्त कर योग निरोधनके वास्ते शुक्लध्यानका तीसरा पाद ध्याता है. सोइ तीसरा शुक्लध्यान कहते हैं. तिस अवसरमें तिस केवलीकों तीसरा सूक्ष्मनिवृत्तिक नाम शुक्लध्यान होता है. सो कंपनरूप जो क्रिया है, तिस सूक्ष्म करता है.

अथ मन, वचन, कायाके योगोंको जैसें सूक्ष्म करता है, सो कहते हैं. सो केवली, सूक्ष्मक्रियानिवृत्तिनामक तीसरा शुक्लध्यान ध्याता, अस्मिन्मन्वीर्यकी शक्ति करके वादरकाययोग स्वभावमें स्थित करके वादर का योग, वादर मनोयोग, यह युगजकों सूक्ष्म करता है, तिस पीठें वादरका योगकों सूक्ष्म करता है, फेर सूक्ष्मकाययोगमें कृण मात्र रह करके तिस ल सूक्ष्म वचन, मनोयोग, यह युगजका अपचय करता है. तिस पीठें सूक्ष्म काययोगमें कृण मात्र रह कर प्रगट सो केवली निजात्मानुनव सूक्ष्म क्रिया चिद्रूपकों स्वयमेवही अणो स्वरूपका अनुनव करता है. (जानता है)

अथ जो सूक्ष्मक्रियावाले शरीरकी स्थिति है, सोइ केवलीयोंका ध्यान होता है, ऐसी बात कहते हैं. जिस प्रकार करके ठग्रस्थ योगीयोंके मनके स्थिरताकों ध्यान कहते हैं, तैसेंही शरीरकी निश्चलताकों केवलीयोंके ध्यान होता है. अथ शैलेशीकरणका आरंभ करने वाला सूक्ष्मकाययोगी जो कुछ करता है, सो कहते हैं. केवलीके ह्रस्वाक्षर पांचके आचारण करण मात्र काल जितना आयुं श्रेय रहता है, तब शैलेशीकरण काययोगी चौथा ध्यानाऽपरिपातरूप शैलेशीकरण होता है. तिस पीठें केवली शैलेशीकरणारंभी सूक्ष्मरूप काय योगमेर हता दुध्या शीघ्र अयोगी गुणस्थानमे जाणोकी इच्छा करता है.

अथ सो जगवान् केवली सयोगी गुणस्थानके अंत्य समयमें औदारि  
दिक, अस्थिरदिक, विहायोगतिदिक, प्रत्येक त्रिक, संस्थान पट्क, अगु  
रुलघुचतुष्क, वर्णादिचतुष्क, निर्माण, तैजस, कर्मण, प्रथम संहनन,  
स्वरदिक, एकतर वेदनीय. यह तीस प्रकृतिका उदय विच्छेद होता है. त  
तो इहां अंगोपांगके उदय व्यवच्छेद होनेसें अंल्यांग संस्थानावगाहनासें  
तीसरे नाग ऊणी अवगाहना करता है, किस कारणसें ? अपने प्रदेशोंको  
धनरूप करनेसें चरम शरीरके अंगोपांगमें जो नासिकादि छिड़ हैं, तिनको  
पूर्ण करता है, तब स्वात्मप्रदेशोंका धनरूप हो जाता है, तिस वास्ते स्व  
प्रदेशोंका धनरूप होनेसें तीसरा नाग कना होता है. सयोगी गुणस्थान  
स्थ जीव, एकविध बंधक उपान्त्य समय तां० अरु ज्ञानांतराय, दर्शन च  
तुष्कोदय व्यवच्छेद होनेसें वैतालीस प्रकृति वेदता है, तथा १ निद्रा, २ प्र  
चला, १२ ज्ञानांतराय दशक, १६ दर्शनचतुष्क रूप सोलां प्रकृतियोंकी सत्ता  
व्यवच्छेद होनेसें पंचासी प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति सयोगी गुणस्थानं ॥ ३ ॥

अथ अयोगी गुणस्थानककी स्थिति कहते हैं. तेरहवे गुणस्थानके अ  
नंतर चौदहवे अयोगी गुणस्थानमें रहते हुए जिनेंडकी लघु पंचाक्षर उ  
च्चारणमात्र "अ इ उ ऋ लृ" ये पांच वर्ण उच्चारण करतां जितना  
काल लगता है, तितनी स्थिति है. यह अयोगी गुणस्थानमें ध्यानका सं  
भव कहते हैं. इहां अनावृत्ति नामक चौथा ध्यान होता है, इस चौथे ध्या  
नका स्वरूप कहते हैं. जिस ध्यानमें सूक्ष्मकाययोग रूप क्रियाजी "समुच्चि  
न्ना" सर्वथा निवृत्त हूइ है, सो समुच्चिन्नक्रियं नाम "चतुर्थे" चौथा ध्यान  
कहते हैं, कैसा वो ध्यान है ? कि मुक्ति महिलका द्वार (दरवाजे) समान है.

अथ शिष्यके करे दो प्रश्न कहते हैं, शिष्य पूछता है कि हे प्रभु ! देह  
के हीतें हूआं अयोगी क्यो कर हो सका है ? यह प्रथम प्रश्न, तथा जे  
कर सर्वथा काय योगका अभाव हो गया है, तब देहके अभावसें ध्यान  
क्यो कर घटेगा ? यह दूसरा प्रश्न है.

अथ आचार्य इन दोनों प्रश्नोंका उत्तर देते हैं, आचार्य कहता है, कि  
नो शिष्य ! अत्र अयोगी गुणस्थानमे सूक्ष्म काययोगके हीतेंनी अयोगी क  
हते हैं, किस वास्ते ? कि १ काययोगके अति सूक्ष्म होनेसें सूक्ष्मक्रिया रू  
प होनेसें अरु वो काययोग शीघ्रही ह्य होनेवाला है, तथा कायके

कार्य करणेमें असमर्थ होनेसें कायके होतेजी अयोगी है, तथा शरीर य होनेसें ध्यानजी है, इस वास्ते विरोध नही. किसके? कि अयोगी स्थानवर्ती जगवत् परमेष्ठिके. कैसे परमेष्ठी जगवत्के? कि निज शुद्ध चिडूप तन्मयपणे उत्पन्न, निर्जर, परमानन्द विराजमानके. विरोध न अथ ध्यानका निश्चय व्यवहारपणा कहते है. तत्त्वसें निश्चय न मतसें आत्माही ध्याता, आत्माही करणरूप है, आत्माही कर्मरूप ज्ञको ध्याता है, तिससेंती अन्य जो कुठ उपचाररूप अष्टांग योग तिलक्षण, सो सर्वही व्यवहार नयके मतसें जाननां.

अथ अयोगी गुणस्थान वर्तीका उपात्य समयका कृत्य कहते है. वल चिडूपमय आत्मस्वरूपका धारक योगी, अयोगी, गुणस्थानवर्त स्फुट प्रगट उपात्य समयमें शीघ्र युगपत् समकाल वहत्तरि कर्मप्र कृत्य करता है, सो यह है, कि देह पांच, अर्थात् शरीर पांच, बंधन प संघात पांच. अंगोपांग तीन, संस्थान छै, वर्णपंचक, रसपंचक, संह पट्टक, अधिर पट्टक, स्पर्शाष्टक, गंध दो, नीचगोत्र, अगुरुलघुचतु देवगति, देवानुपूर्वी, खगतिद्विक, प्रत्येकत्रिक, सुस्वर, अपर्याप्तन निर्माणनाम, दोनोमेंसूं कोइजी एक वेदनी. यह सर्व वहत्तर कर्म प्रक मुक्तिपुरीके द्वारमें अर्गलजूनत है, सो उपात्यसमय द्विचरम सम कृत्य करता है.

अथ अयोगी अंत समयमें जौनती प्रकृति कृत्य करके जो कुठ क है, सो कहते है. सो अयोगी अंत समयमें एकतर वेदनी, आदेयत्व र्याप्तत्व, त्रसत्व, बादरत्व, मनुष्यायु, यशनाम, मनुष्यगति, मनुष्यायु सौभाग्य, उच्चगोत्र, पंचेंद्रियत्व. तीर्थकरनाम. यह तेरां प्रकृति कृत्य व उसी समयमें सिद्धपर्यायको प्राप्त होता है. सो सिद्ध परमेष्ठी, सना जगवान् शाश्वत लोकांतके पर्यंतको जाता है. तथा अयोगी गुणस्थ जीव अवंधक है, तथा एकतर वेदनी, आदेय, यश, सुनग, त्र क, पंचेंद्रियत्व, मनुष्यगति, मनुष्यायु, उच्चगोत्र, तीर्थकरनाम, यह ह प्रकृति वेदता है. अंतके दो समयसें पहिलां पंचासीकी सत्ता है, उपात्य समयमें तेरह प्रकृतिकी सत्ता रहती है, अरु अंत सम सत्ता रहित होता है ॥ इति अयोगी चतुर्दश गुणस्थान स्वरूप ॥१४॥

आशंकाः—“ नि.कर्म ” ( कर्म रहित ) आत्मा, तिस समयमें लोकांत कैसे जाता है ? इत्याशंक्याह.

समाधानः—सिद्ध, कर्म रहितकी ऊर्ध्वगति होती है, “कस्मात् ” किस हेतुसें होती है ? तत्राह ॥ पूर्व प्रयोगसें अचित्य आत्मवीर्य करके उपाय दो समयमें पंचासी कर्म प्रकृतिके क्षय करने वास्ते पूर्वे जो व्यापार प्राण कीया था, तिससेंती ऊर्ध्वगति होती है, यह प्रथम हेतु है. तथा कर्मकी संगति रहित होनेसें ऊर्ध्वगति होती है, यह दूसरा हेतु है. तथा गाढतर बंधनों करके रहित होनेसें ऊर्ध्वगति होती है, यह तीसरा हेतु है. तथा कर्म रहित जीवका ऊर्ध्वगमन स्वभाव है, यह चौथा हेतु है. यह चार हेतु, चार दृष्टांत करके सहित कहते हैं ? जैसे कुंनकारका चक्र पूर्व प्रयोगसे फिरता है, तैसें आत्माकी पूर्वप्रयोगसें ऊर्ध्वगति होती है, १ तथा जैसे माटीके लेपसें रहित होने करके तूवेकी जलमें ऊर्ध्वगति होती है, तैसेंही अष्टकर्मरूप लेपकी संगतिसे रहित धर्मास्तिकाय रूप जल करके आत्माकी ऊर्ध्वगति होती है, २ तथा जैसे एरुफल बीजादि बंधनोंसें बुटा हुआ ऊर्ध्वगतिगामी होता है, तैसेंही कर्मबंधके विच्छेद होनेसे तिद्धकीनी ऊर्ध्वगति होती है ४ तथा जैसे अग्निका ऊर्ध्व ज्वलन स्वभाव है. तैसेंही आत्माकानी ऊर्ध्वगमन स्वभाव है.

अथ अथो अरु तिर्हीगति कर्म रहितकों नहीं होती है, यह बात कहते हैं सिद्धकी आत्मा, कर्म गौरवके अभावसे नीचेकों नहीं जाती, तथा प्रेरक कर्मके अभावसें आत्मा, तिर्हीनी नहीं जाती है, तथा कर्म रहित सिद्ध, लोकके उपरनी धर्मास्तिकायके न होनेसे नहीं जाता, क्योंकि ? लोकमेंनी जीव, पुज्जके चलनेमें धर्मास्तिकाय गतिका हेतु है. मत्स्यादिकोंकों जैसे जल है. तो धर्मास्तिकाय अलोकमें नहीं इस वास्ते अलोकमें सिद्ध नहीं जाते.

॥ अथ तिद्धोंकी स्थिति ॥ यथा सिद्ध शिलासें उपरि लोकांतमें सिद्ध रहते हैं, तां कहते हैं. इयत् प्राग्नारानामा सिद्धशिला चौद रज्जुलोकके मत्सरुके उपरि व्यवस्थित है, उसको सिद्धोंके निकट होने करके सिद्ध शिला कहते हैं, परंतु सिद्ध कुछ उस शिलाके उपर वैठे हुए नहीं हैं, सिद्ध तो उस शिलासे उचे लोकांतमें विराजमान है. वो शिला कैसी है ? कि मनोज्ञा मनोहारिणी है, फेर वो शिला कैसी है ? सुरभि कर्पूरसेनी अ

धिक सुगंधिवाली है, अरु कोमल है, सूक्ष्म है अथवा जितके, वो शिला कैसी है? पुण्या, पवित्र, परमनासुरा, प्रकृष्ट तेजवाली, मनुष्यक्षेत्र प्रमाण लंबी चौड़ी है, श्वेत रत्नके आकार है, उत्तान नरक है, उसका बड़ा शुभ रूप है, वो ईषत् प्राग्जारा नामा पृथ्वीसर्वांगी ५ विमानसें वारा योजन उपरि है, अरु वो पृथ्वी, मध्य जागमें आठ योजनकी मोटी है, तथा प्रांतमें घटती घटती मञ्जीके पांखसेंजी पतती तिस शिलाके उपरि एक योजन लोकात है, उस योजनका जो चौथा भाग है, उस कोसके ठठे जागमें सिद्धोंकी अथवागहना है, सोइ दो हजार धनुष प्रमाण कोसके ठठे जागमें तीन सौ तेत्तीस धनुष अरु बचीस ल होता है, उतनी सिद्धोंके आत्मप्रदेशोंकी अथवागहना है

अथ सिद्धोंके आत्मप्रदेशोंकी अथवागहनाका आकार लिखते हैं जैसें कुवाली (मूपा) तिसमें मोम नरके गाजिये, तिसके गलनेसे जो काशका आकार है, तैसा सिद्धोंका आकार है.

अथ सिद्धोंके ज्ञान दर्शनका विषय लिखते हैं त्रैलोक्योदरवर्ती उदह रज्ज्वात्मक लोकमें जो गुणपर्याय करके संयुक्त वस्तु है, तिन जितनी लीय पदार्थोंको सिद्धमुक्त जानते हैं, सामान्य रूप करके देखते हैं, विशेष रूप करके जानते हैं, क्योंकि वस्तु जो है, सो सर्व सामान्य विशेषात्मक है.

अथ सिद्धोंके आठ गुण कहते हैं. १ जिस हेतुसे सिद्धोंके ज्ञानावरण कर्मके क्षय होनेसे केवलज्ञान प्रगट हुआ है, तथा २ सिद्धोंको दर्शनावरण कर्मके क्षय होनेसे दर्शन अनन्ता हुआ है, तथा ३ सिद्धोंको शुद्ध, सम्यक्त्व चारित्र ज्ञापिकरूप दूये हैं, किस हेतुमें ये हैं? कि दर्शन मोहनीय औ चारित्र मोहनीयके क्षय होनेसे दूये हैं, तथा ४ सिद्धोंको अनंत अक्षयसुख अरु ५ अनंत वीर्य शक्ति दूये हैं, किस हेतुसे दूये हैं? कि वेदनी कर्मक्षय होनेसे अनंत सुख दूये है, अंतरा कर्मके क्षय होनेसे अनंत वीर्य प्रगट हुआ है. तथा ६ सिद्धोंकी अक्षयगति दुःख है, किस हेतुसे? कि आसु-कर्मके क्षय होनेसे दुःख है, तथा ७ नामकर्मके क्षय होनेसे अमूर्त्तपणा सिद्धको प्रगट नया है, तथा ८ गोत्रकर्मके क्षय होनेसे सिद्धोंकी अनन्तावगाहना है.

अथ सिद्धोंका सुख कहते हैं, जो सुख, चक्रवर्तीकी पदवीका, अरु ल

इन्द्रादि पदवीका है, तिनसेंजी सिद्धोंका सुख अनंत गुण है, कैसा सुख है ? कि क्लेश रहित है “अविद्यास्मिता” राग, द्वेष, अग्निनिवेश, ए क्लेश है, सो जिनमें नहीं है, फेर कैसा है सुख ? “अव्ययं न व्येति स्वस्वजावसेंती इति अव्ययं.”

अथ तिन सिद्ध जगवतोंने जो पाया है, तिसका सार कहते है सिद्ध जगवतोंने परम पद पाया है, सो कैसा परम पद पाया है ? जो आराधकों को आराध्य है, सो पद पाया है, तथा जो पद, साधकोंने सम्यग् दर्शनज्ञान आरित्रादि करके साधीये है, तथा जो पद, ध्यायकोंको ध्येय है, तथा जो पद, सदाही नानाविध ध्यानोपाय करके ध्याइये है, तथा जो पद, अनव्य जीवोंको सदा डुर्लभ है, अरु कितनेक नव्य जीवोंकोनी डुर्लभ है, अरु डुर्लभियोंको कष्टसे प्राप्त होता है, ऐसा डुर्लभ पद, तिन सिद्ध जगवतोंने पाया है. सो पद कैसा है ? कि तत्परम पद है, चिदानंदमय चिद्रूप परमानंद रूप है.

अथ मुक्तिका स्वरूप कहते है. कोइक वादी अत्यंताऽज्ञावरूप मोक्ष मानते हैं, सो वौद्धोंकी मोक्ष है. अरु कोइ वादी जडमयी, ज्ञान अज्ञावमयी मोक्ष मानते है, सो नैयायिक वैशेषिक मत वाले हैं. अरु कोइक वादी मोक्ष हो कर फेर संसारमे अवतार लेनां, फेर मोक्षरूप हो जानां, ऐसी मोक्ष मानते है, सो आजीवका मतवाले है ? अरु कोइ तो क्लिष्ट कर्म करके विषय सुखमय मोक्ष मानते हैं. वे कहते है, कि मोक्षमें जोग करने वास्ते बहुत अप्परा मिलती हैं, औ खाने पीनेको बहुत वस्तु मिलती है, तथा पान करनेको बहुत अच्छी मदिरा मिलती है, औ रहनेको सुंदर वाग मिलता है, इत्यादि. तथा कोइक वादी कहते है कि मोक्ष, जीवकी कदापि नहीं होती है, यह जैमिनी मुनिका मत है. तथा कोइ खरड ज्ञानी जैसे कहते है कि जो वेदोक अनुष्ठान करता है, वो सर्वथा उपाधि रहित तो नहीं होता. परंतु छुन पुण्यफलसे सुंदर देह पा कर ईश्वर के साथ मिल कर कितनेक कल्पों लगे सुख जोग करता है. जहा इच्छा होवे, तहां उड कर चला जाता है फेर संसारमें जन्म लेता है, फेर पूर्ववत् सुखजोग करता है, इसी तरें अनादि अनंतकाल लगे करता रहेगा, परंतु एक जगे स्थित न रहेगा, ऐसी मोक्ष कहता है. अरु सर्वज्ञ अर्हं त परमेश्वरनें तो सत्वरूप, ज्ञानदर्शनरूप, तथा असाररूप जो यह संसार

है, तिसमें सारभूत, निस्सीम आत्यंतिक सुखरूप, अनंत, अतींद्रियानंदजनकस्थान, अप्रतिपाति स्वस्वरूपावस्थानरूप, मोक्ष कही है ॥ यह वृक्ष श्रीवज्रसेनसूरिके शिष्य श्रीहेमतिजकसूरिपट्टप्रतिष्ठित श्रीरत्नजोत्तरका चौदह गुणस्थानकका स्वरूप लिखा है, तिसके अनुसार जापामय किं गुणस्थानकस्वरूप, मैंने लिखा है.

प्रश्न—हे जैन ! तुमने सर्ववादीयोकी कही दुः मोक्षकों तो अनुपादय मजी, अरु अर्हंतकी कही दुः मोक्ष, उपावेय समजी, इनमें क्या हेतु

उत्तर—हे जय्य ! इन सर्व वादीयोकी मोक्ष, पीठें पट्ट दर्शनके निरूपण लिख थाये है, सो जान लेनी. क्यों कि इन वादीयोकी कही मोक्ष नहीं, कारण कि जब अत्यंताऽज्ञावरूप मोक्ष होवे, तब तो आत्माही अज्ञाव हो गया, तो फेर मोक्षफल किसको होवेगा ? ऐसा कौन है आत्माके अत्यंताज्ञाव होनेमें यत्न करे ? तथा जो ज्ञानाज्ञावकों में मानते हैं, सोनी ठीक नहीं क्यों कि जब ज्ञानही न रहा, तब तो पापनी मोक्षरूप हो गया, तो ऐसा कौन प्रेक्षावान् है, जो अपनी आत्माको जड पापाण तुल्य बनाना चाहे ? तथा जो सर्व व्यापी आत्माकों में मानते है, अर्थात् जब आत्माकी मोक्ष होती है, तब अत्मा सर्व व्यापी मोक्षरूप होती है, यह नी कहना प्रमाणान्जिज्ञ पुरुषोंका है, क्यों आत्मा किसी प्रमाणसेनी सर्वलोकव्यापी सिद्ध नहीं हो सकती है, की विशेष चर्चा देखनी होवे, तदा स्यादादरत्नाकरावतारिका देस ले तथा जो मोक्ष हो कर फेर संसारमें जन्म लेना, फेर मोक्ष होना, यह मोक्षनी काहेकी ? यह तो जामोका साग दूआ, इत वास्ते बहनी नहीं. अरु जो मोक्षमें स्त्रीयोके जोग मानते है, सो विषयके लोभुपी तथा जो खरडज्ञानीने मोक्ष कही है, सो अप्रामाणिक है. किसी प्रमाण सिद्ध नहीं है. इत वास्ते जो अर्हंत सर्वज्ञाने मोक्ष कही है, सो निश्चय है. इति नन्देपसे ज्ञानस्वरूप कथा ॥ इति श्रीतपगच्छीये मुनिश्री ६ गण्डविजय तत्रिप्य मुनि श्रीबुद्धिविजय तत्रिप्य मुनि आत्माराम थाण्ड विजयविरचिते जैनतत्त्वादर्श धर्मतत्त्वनिरूपणाधिकारे चतुर्दश गुणस्थान ज्ञाननिर्णयनामा पट्ट परिच्छेदः संपूर्णः ॥ ६ ॥

॥ अथ सप्तम परिच्छेद प्रारंभः ॥

यह परिच्छेदमें सम्यग्दर्शनका स्वरूप लिखते हैं. इन सम्यग् दर्शनका स्वरूप कठुक उपर लिखनी आये है, तोनी नव्य जीवोंके जानने वास्ते कठुक सम्यक्त्वका स्वरूप लिखते हैं यह सम्यक्त्वके दो नेद है. एक व्यहारसम्यक्त्व, अरु दूसरा निश्चयसम्यक्त्व, जो यथार्थतत्त्वरूप विज्ञा पूर्वक रुचि है, तिसका नाम सम्यक्त्व कहते है. सो सम्यक्त्व, तीन तत्त्वकी यथार्थ रुचि होनेसें होता है, सो तीन तत्त्व यह है, कि एक देवतत्त्व, दूसरा गुरुतत्त्व, तीसरा धर्मतत्त्व. इनकेविषे श्रद्धा (प्रतीति) जो पुरुष करे, सो सम्यक्त्ववान् होता है तिस श्रद्धाके दो नेद है. एक व्यवहार, दूसरा निश्चय. इन दोनों श्रद्धायोंमें प्रथम व्यवहार श्रद्धाका स्वरूप लिखते हैं.

व्यवहारश्रद्धामें देव तो श्री अरिहंत जिसका स्वरूप, प्रथम परिच्छेदमें लिख आये है, सो सर्व इहां जान लेनां तथा तिस अरिहंतके चार निक्षेप अर्थात् स्वरूप है, सो कहते है. १ नामनिक्षेप, २ स्थापनानिक्षेप, ३ ध्वनिक्षेप, ४ नावनिक्षेप इन चारोंका स्वरूप विस्तार पूर्वक देखनां होवे. तदा विशेषावश्यक देख लेना तिनमें प्रथम, नाम अर्हंत, सो "नमो अरिहंताणं" अैसा कहनां, इस पदका जाप करके अनेक जीव संसार स मुझको तर गये हैं तथा दूसरा स्थापनानिक्षेप, सो अरिहंतकी प्रतिमा समस्त दोपके चिन्होंसें रहित, सहज, सुनग, समचतुरस्रसंस्थानवाली, पद्मासन, तथा कायोत्सर्गमुझारूप जो जिनविव, तिसकों देख कर, तिसकी सेवा, पूजा करके अनंत जीव मोक्षकों प्राप्त हूये हैं.

प्रश्न—अरिहंतकी प्रतिमाकों पूजणी, तथा उसकों नमस्कार करणी, अथै स्थापना, निक्षेप, मान कर मुक्तिकी दाता समजणी, यह नि.केवल सूखिताइके चिन्ह है, क्यो कि प्रतिमा जडरूप क्या दे सकती है ?

उत्तर.—हे नव्य ? तूं किसी शास्त्रको परमेश्वरका रचा दूथा मानता है, या नहीं ? जे कर तूं शास्त्रकों परमेश्वरका वचन मानता है, अरु उस शास्त्रको सच्चा संसार समुझसें पार उतारने वाजा मानता है, तब जि नप्रतिमाके माननेमे क्या लज्जा करता है ? क्योकि जैसा शास्त्र जडरूप है, उसमे स्याही अरु कागज रूप वर्जके और कुवनी नहीं है, तैसी जि



नप्रतिमाकी है, जे कर कहोगे कि कागजों पर स्याहीके अक्षर नसंयुक्त लिखे जाते हैं, उनके वाचनेसे परमेश्वरका कहनां मालुम जाता है, तब इसी तरे परमेश्वरकी मूर्ति देखनेसेनी परमेश्वर स्वरूप मालुम होता है.

प्रश्न.—प्रतिमाके देखनेसे अर्हत स्वरूप तो स्मरण होता है, प्रतिमाकी जक्ति करनेसे क्या लाभ है?

उत्तर.—शास्त्रके श्रवण करनेसे परमेश्वरके वचन तो मालुम हो गये, नी जक्त जन जैसे शास्त्रकों उच्चस्थानमें रखते हैं, कोइ शिर ऊपर झे फिरते हैं, कितनेक गलेमें लटका रखते है, औ कितनेक मंजी उपर, कित्त चौकी आदि उपर शास्त्रोंको सुंदर सुंदर रुमालोमें लपेटके रखते हैं, नमस्कारादि करते हैं, ऐसेही जिनप्रतिमाकी जक्ति, पूजाकी जान के

प्रश्न.—जैसे पञ्जरकी गायसे दूधकी गरज पूरी नहीं होती है, ऐसे प्रतिमासेनी कोइ गरज पूरी नहीं होती, तो फेर प्रतिमाको क को माननां चाहिये ?

उत्तर.—जैसे कोइ पुरुष मुखसे गौ, गौ, सञ्जी गौ कहता है, उस क से उसका बरतन क्या दूधसे नर जाता है? अर्थात् नहीं नरता है. परमेश्वरके नाम लेने और जाप करनेसेनी कुठ नहीं मिलता. इस तरे परमेश्वरका नामनी न लेनां चाहिये.

प्रश्न.—परमेश्वरका नाम लेनेसे तो हमारा अंतःकरण शुद्ध होता

उत्तर.—ऐसेही श्रीजिनप्रतिमाके देखनेसेनी परमेश्वरके स्वरूपका ध होता है, ताते अंतःकरणकी शुद्धि इहांनी तुल्यही है

प्रश्न.—परमेश्वरके नाम लेनेसे पुण्य है, तो फेर प्रतिमा काहेको पूज

उत्तर.—नामसे ऐसे शुद्धपरिणाम नहीं होते, जैसे स्यापना बेल होते है, क्यों कि? जैसे किसी सुंदर यौवनवती स्त्रीका नाम लेनेसे राग गता है, अरु जब उस सुंदर यौवनवती स्त्रीकी मूर्ति प्रगट सर्वाकार ली सन्मुख देखीये, तब अधिकतर विषयराग उत्पन्न होता है, इसी स्ते श्रीदशवैकाजिकसूत्रमें लिखा है "चित्तजित्ती न निङ्गए नारी वासुः यं" अर्थात् स्त्रीके चित्रामकी नीत देखेसेनी विकार उत्पन्न होवेगा. वात तो प्रगट (प्रसिद्ध) है, कि रागीकी मूर्ति देखनेसे राग उत्पन्न

है, तथा कोक शास्त्रोक्त स्त्री पुरुषके विषय सेवनके चौरासी चिन्ह दे  
नेसे तत्काल विकार उत्पन्न होता है, जैसेही निर्विकार स्थापनारूप  
मत्मुद्रा, श्रीबीतरागकी देखनेसे निर्विकार शांतिभाव उत्पन्न होता है, औ  
र नाम लेनेसे नहीं होता है

प्रश्न:-जैसे किसी स्त्रीके चरतारका नाम देवदत्त है. सो जब देवदत्त मर  
या, तब तिसकी स्त्रीने अपने चरतार देवदत्तकी मूर्ति बनाइ है, उस मू  
र्तिसे उस स्त्रीका सुहाग तथा संतानोत्पत्ति तथा काम इत्या नहीं होती  
इसी तरे जगवान्की मूर्तिसेनी कुछ जान नहीं है.

उत्तर:-देवदत्तकी स्त्री देवदत्तके मरे पीछे आसन विठाय कर देवदत्त  
के नामकी माला फेरे, तब उस स्त्रीका सुहाग नहीं रहता, तथा चरतार  
का नाम लेनेसे संतानोत्पत्तिनी नहीं होती? तथा कामेष्टानो पूरी नहीं  
होती? इसी तरे जो कहेंगे तब तो जगवान्के नाम लेनेसेनी कुछ सिद्धि  
नहीं होगी. इस दृष्टांतसे तो जगवान्का नामनी न लेना चाहिये.

प्रश्न -प्रतिमा तो कारीगर बनाता है, उस कारीगरकोनी पूजना चाहिये?  
उत्तर:-वेदादि शास्त्रकोनी लिखारी लिखते है, उनकोनी पूजना चाहि  
ये? तथा साधुके मात पिताकोनी साधुसे अधिक पूजना चाहिये.

प्रश्न:-स्थापना कोइनी इस कालमे बुद्धिमान् नहीं मानता है.

उत्तर:-बुद्धिमान् तो सर्व मानते है, परतु मूर्ख नहीं मानते है

प्रश्न -कौनसे बुद्धिमान् स्थापना मानते है? तिनोका नाम लेना चाहिये.

उत्तर.-प्रथम तो सांसारिक विद्यावाले सर्व बुद्धिमान्, जूगोल, खगोल,  
दीप, अर्थात् युरोपखंममें विजायत प्रमुखका चित्र सर्व, स्थापनारूप मान  
ते हैं, और बनाते है, तथा जो ककार आदि अक्षर है, वे सर्व पुरुषके (ई  
श्वरके) शब्दकी स्थापना करते है, तथा जैनीयोके मतमे एक सौ आठ म  
णिये, मालामें रखते है, परतु अधिक न्यून नहीं रखते है, इसका हेतु य  
ह है, कि जैन, चारह गुण तो अरिहत पदके मानते है, अरु आठ गुण, सिद्ध  
पदके मानते है, तथा ठत्तीस गुण, आचार्यपदके मानते है, तथा पच्चीस  
गुण, उपाध्याय पदके मानते है, तथा सत्ताइस गुण, मुनि साधु पदके  
मानते है. यह सर्व मिल कर एक सौ आठ गुण होते है. इस वा  
स्ते जैनीयोके मतमें मालामें जो मणिये हैं, सो एकेक मणिया एकै

क गुणकी स्थापना है. यह मालानी स्थापना है, इसी तरं इसी तोमेंनी जो माला तसवी है, सो सर्व किसीनकिसी वस्तुकी पना है. नहीं तो एक सौ आठ तथा एक सौ एकठा नियम न चाहे तथा पादरी लोकोंकीनी ठापी हूइ पुस्तकोंके उपर ईशामसीहकी मूर्ति स बखतकी ठापी हूइ है, जिस अवसरमें मसीहकों अली उपर देने जाते थे, उस मूर्तिके देखनेसें ईशामसीहकी अवस्था सर्व मालुम होती वस, स्थापनाका यही तो प्रयोजन है, कि जो उसके देखनेसें अस्तनी का स्वरूप याद (स्मरण) हो जाता है आश्चर्य तो यह है कि अब (स कालमें) कितनेक तुडुदुदुवाले अपनी बनाई पुस्तकमें यज्ञशाला तथा यज्ञोपकरणकी स्थापना अपने हाथोंमें करके अपने शिष्योंको जनते हैं, जो यज्ञोपकरण इस आकृतिके चाहिये, फेर कहते हैं कि हम स्वयं नाकों नहीं मानते हैं अब विचार करना चाहिये कि इनसेनी कोइ अधिक मूर्ख जगतमें है? जो आप तो स्थापना करते हैं अरु फेर कहते हैं कि हम स्थापनाकों नहीं मानते हैं, इस वास्ते जो पुरुष अपने शास्त्रके अवदेशकों देहधारी मानेगा. वो अवश्य उसकी मूर्तिकूनी मानेगा, अरु अपने अपने शास्त्रके उपदेष्टाको देह रहित मानते हैं, वेनी थोड़ी बुद्धि वाले हैं. क्योंकि जिसके देह नहीं, वो शास्त्रका उपदेष्टा कदापि नहीं हो सका है, कारण कि देह रहित होना अरु शास्त्रका उपदेश देने वालानी होना, इस बातमें कोइनी प्रमाण नहीं है. अरु निराकार सर्वव्यापी परमेश्वर का ध्यानकी कोइ नहीं कर सका है. जैसे आकाशका ध्यान नहीं हो सका है इस वास्ते अक्षरह रूपणसे रहित जो परमेश्वर है, तिसको मूर्ति स्थापना माननी पूजनी चाहिये सो ऐसा देव तो अर्हतही है, इस वास्ते अर्हत्की प्रतिमा माननी चाहिये. परंतु किसी डुबुदुके कुहेवुओंसें गंडनी न चाहिये ॥ इति स्थापना निक्षेप दूसरा

अब तीसरा डुबुदुनिक्षेप, सो जिम जीवने तीर्थकर नामकर्मका निमित्त बंध कीना है, तिम जीवमें नावि गुणोंका आरोप अर्थात् ऐसा अर्गोंको तीर्थकर जगवान् होवेगा? ऐसा वत्तमानमें आरोप करके बंदन (नस्कार) पूजन करके, अनेक जीव, मोहको प्राप्ति दूये है.

चौथा नाविनिक्षेप, सो जो वत्तमान कालमें सीमंवर प्रमुख तीर्थकर

वज्रज्ञानसंयुक्त समवसरणमें विराजमान नव्यजीवोंके प्रतिबोधक चतु  
 र्थ संघके स्थापक. सो नाव अर्हंत इनके चरण कमलकी सेवा करके अ  
 क जीव मोक्ष होते है, यह नावनिक्षेप है. यह चार निक्षेप करके सं  
 क, असा जो अरिहंत देवाधिदेव, महा गोप, महा माहण, महा निर्याम  
 महा सार्थवाह, महा वैद्य, महा परोपकारी, करुणासमुद्, इत्यादि अने  
 उपमा लायक सो नव्य जीवोंके अज्ञानांधकार दूर करणोंको सूर्य समा  
 प्रमाण करके अविरोधि जिसके बचन है, औ मुनिमनमोहन, योगी  
 धर, विदानद धनरूप, अैसें अरिहंतकों मे देव, अर्थात् परमेश्वर करिके  
 मानता हूं, तिसकी सेवा करूं, तिसकी आज्ञा शिर धरूं, असा जो माने,  
 प्रथम व्यवहारशुद्ध देवतत्त्व है.

दूसरा निश्चयशुद्ध देवतत्त्व कहते है. जो शुद्धात्मस्वरूपको अनुभव क  
 नां. सो शुद्धात्मस्वरूपही निश्चयदेवतत्त्व है, कैसा है वो आत्मस्वरूप?  
 कि पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस, आठ स्पर्श, शब्द, क्रिया, इनसें रहित,  
 तथा योगसें रहित, अतींद्रिय, अविनाशी, अनुपाधि, अवंधी, अक्के  
 शी, अमूर्ति, शुद्धचैतन्य, ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि अनंत गुणोंका ना  
 जन, सच्चिदानंदस्वरूपी असी मेरी आत्मा है, सोइ निश्चयदेव है.

अथ दूसरा गुरुतत्त्व कहते है तिसकेनी दो जेद है, एक शुद्धव्यव  
 हारगुरु, दूसरा शुद्ध निश्चयगुरु उसमे शुद्धव्यवहारगुरुका स्वरूप तो गुरु  
 तत्त्वनिरूपण परिच्छेदमें लिख आये है, तहासें जान लेनां, अैसें साधु  
 को गुरु करके माने अैसें गुरुकी आज्ञासे प्रवर्ते, अैसें मुनिकों पात्र बु  
 दि करके शुद्ध अन्नादिक देवे. इति व्यवहार शुद्धगुरुतत्त्व । तथा निश्चय गुरु  
 तत्त्व तो शुद्धात्म विज्ञानपूर्वक है, जो हेयोपादेय उपयोगयुक्त परिहार प्र  
 वृत्तिज्ञान, सो निश्चयगुरुतत्त्व है.

अथ तीसरा धर्मतत्त्व कहते है धर्मतत्त्वकेनी दो जेद हैं, एक व्य  
 वहारधर्मतत्त्व, दूसरा निश्चयधर्मतत्त्व. तिनमे जो व्यवहाररूप धर्म है, सो  
 दयामुख्य है क्यों कि जो सत्यादि व्रत है, सो सर्व दयाकी रक्षा वास्ते  
 है, इस वास्ते दयाका स्वरूप लिखते है. यह दयाके आठ जेद है, सो क  
 हते है. १ इव्यदया, २ नावदया, ३ स्वदया, ४ परदया, ५ स्वरूपदया,  
 ६ अनुबंधदया, ७ व्यवहारदया, ८ निश्चयदया.

१ तहां इव्यदया उसकों कहते है, कि जो यत्न पूर्वक सर्व काम एणां, यह तो जैनमतवालेके कुलका धर्म है, सर्व जैन लोक, पाए नके पीते हैं, औ अन्न शोधके खाते है; जे कर कोइ जैनी तत्र (क करता है, फूठ बोलता है, औ विश्वासघात करता है, वो पापी जी सो जैनमतकों कलंकित करता है, वो सर्व उस जीवरहाही दोष है. उसमें जैनधर्मका कुठ दोष नहीं है, जैनधर्म तो ऐसा पवित्र है, कि समे कोइनी अनुचित उपदेश नहीं है, यह बात सर्व सुश्रु जनोको त है, इस वास्ते जो काम करणां, सो यत्नपूर्वक जीवरहा कामके एणां, सो इव्यदया है

२ दूसरी जावदया है, सो दूसरे जीवोंके गुणप्राप्ति वास्ते तथा ति पडतेकों रक्षण वास्ते, अंतकरणमे अनुकंपा बुद्धि संयुक्त जो वकों हितोपदेश करनां, सो जावदया है

३ तीसरी स्वदया है, सो अण्णी आत्मा अनादि कालसे मिश्रित शुद्ध उपयोग, अशुद्ध श्रद्धानपूर्वक अशुद्ध प्रवृत्ति, कपापादि जाग करी समय समयमें आत्माके ज्ञानादि गुणोंकी घातरूप जावप्राप्ति हिंसा होती है, ऐसे जिनवचन सुननेसे पूर्वोक्त जाव शत्रोका त्याग के स्वसत्तामें प्रवृत्ति करके शुद्धोपयोग धारकें विषय कपायोसे दूर रह अरु शुद्ध, अशुद्ध कर्मफलके उदयमें अव्यापक रहनां, अर्थात् मुक्त में हर्ष विषाद न करणा, प्रतिक्षण अशुद्ध कर्मके निदान दूर कर जो चिता, तिसका नाम स्वदया है इस स्वदयाकी रुचि वाला जीव पनी परिणति शुद्ध करने वास्ते जिनपूजा, तीर्थयात्रा, रथयात्रा प्र शुद्ध प्रवृत्ति करे, जिन गुण गावे, बहुमान करके. अस्तत् प्रवृत्तिसें विहटा करके तत्त्वालंबी करे, पुत्रजावजवीषणा हटावे, इस शुभाश्रवमे यदि देखनेमें कितनेक जीवोंकी हिंसा देख पडती है, तोनी आत्म अशुद्ध परिणति भिटनेसे आत्मा गुणग्राही हो जाती है, जब गुणग्र नः. तत्र ज्ञानवान् हो गः. इस वास्ते सर्व साधक जीवोंमें यह मन् परम साधन है. इस स्वदयाके वास्ते साधुनी नवकलरी विद्वार करते औ उपदेश देते है, चर्चा करते हैं, तथा पूजन, प्रतिक्षणन करते है, यद्यपि दी नाले उतरने पडत है, तहां योगोंकी चपलतामें आश्रय होता है, तोनी

स्वरूपानुयायी रहता है, जिनाज्ञा पालता है, औ कषायस्थान मंद करता है, स्वच्छता दूर करता है, तथा धर्मप्रवृत्तिकी वृद्धि करता है, यह स्वदयाके वा ते शुभाश्रव साधुजी अपणे कल्प प्रमाणे आचरण करता है, परंतु यह आश्रव साधकदशामें बाधक नहीं है ॥ इति स्वदया ॥

४ चोषी परदया, सो जो ठे कायके जीवोंकी रक्षा करणी, जहां स्वदया है, तहां परदया तो नियम करके है, अरु जहां परदया है, तहां स्वदया की नजना है, अर्थात् होवेनी, नहींनी होवे.

५ पांचमी स्वरूपदया, सो जो इहलोक परलोकके विषयसुख वास्ते तथा लोकोंकी देखा देखी करके जीवरक्षा करे, यह स्वरूप दया है. इस दयासे विषय सुख तो मिल जाते है, परंतु मैरुरु चर्षवत् संसारकी वृद्धि हो जाती है, यह देखनेमें तो दया है, परंतु जावे हिंसाही है.

६ ठी अनुबंधदया, सो श्रावक बडे आरंभसे सुनिकों बंदना करने को जावे, तथा उपकार बुद्धिसे दूसरे जीवोंको सन्मार्गमें लाने वास्ते आक्रोश (ताडनादि) करे, कोइको शिक्षा देवे. यहां देखनेमे तो हिंसा है, परंतु अंतमें स्वपरको लानका कारण है, इस वास्ते ये दया है. जैसे साधु, आचार्य, अपणे शिष्य शिष्यणीयोंको शिक्षा देता है, किसीको नूल याद कराता है, तथा किसीको अनुचित कामसे मना करता है, किसीको एक वार कहता है, अरु किसीको वारंवार शिक्षा देता है, किसी उपर क्रोध नी करता है, शासनके प्रत्यनीकों अपनी लब्धिसे दंड देता है, इत्यादि कामोंमें यद्यपि हिंसा दीखती है, तोनी फल दयाका है. इति अनुबंधदया.

७ सातमी व्यवहारदया, सो विधिमागानुयायी जीवदया पाले, सर्व क्रिया कलाप उपयोग पूर्वक करे, सो व्यवहार दया है.

८ आठमी निश्चयदया, सो शुद्ध साध्य उपयोगमे एकत्व जाव, अनेदोपयोग साध्यनावमे एकताज्ञान, सो जावदया. इस दयासेती उपरिले गुण स्थानोंमें जीव चढता है. तिस वास्ते उत्कृष्ट है इत्यादि अनेक प्रकारसे दयाके स्वरूप, विज्ञानपूर्वक सूत्र, निर्युक्ति, जाप्य, चूर्णा, वृत्ति, इस पंचांगीतम्मत प्रत्यक्षादि प्रमाणपूर्वक नैगमादिनय, नामादि निक्षेप, सक्षन्गी. ज्ञाननय, क्रियानय, तथा निश्चयव्यवहारनय, तथा इव्याधिक, पर्याधिक, इत्यादि उनय जावमे यथावसरें अर्पित, अनर्पित नयनिधु

एतासं मुख्य गौण चावें उचयनयसम्मत, शुद्धस्यादावशेजी विज्ञानार्थक, श्रीसिद्धांतोक्त दान, शील, तप, चावनारूप शुन प्रवृत्ति, तिमिरनाम शुद्ध व्यवहारधर्म कहियें हैं.

तथा दूसरा निश्चयधर्म, सो अथपणी आत्माकी आत्मताकों जाणे, वस्तुके स्वभावकों जाणे कि जो मेरी आत्मा है, सो शुद्ध चैतन्यरूप, संख्यातप्रवेशी, अमूर्ति, स्वदेहमात्रव्यापी, सर्व पुञ्जोंसं निन्न, अल्प अलिप्त, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख, वीर्य, अव्यावाध, सत्त्विदानंदादि अल्प त गुणमयी, अविनाशी, अनुपाधि, अविकारी, ऐसी मेरी आत्मा है, सो ५ उपादेय है. इससं विलक्षण जो परपुञ्जादिक सो मेरे नहीं. तित पुञ्जके पांच विकार है, १ शब्द, २ रूप, ३ रस, ४ गंध, ५ स्पर्श. इन पांचोंके उत्तर जेद अनेक है इस लोकाकाशमें जो उद्योत, तथा अंधकार तथा जो शब्द है, तथा सर्व रूपी वस्तुकी जो ठाया, रत्नकी कानि, धूल, धूप, नानाप्रकारके रूप, रंग, संस्थान, औ नाना प्रकारके सुगंध, धूल, नाना प्रकारके रस, तथा सर्व संसारी जीवोकी देह, जापा, औ मनके विकल्प, दश प्राण, त्रै पर्याप्ति, हास्य, रति, अरति, जय, शोक, उद्वेग, अज्ञान, औ खुशी, उदासी, कदाग्रह, हठ, लडाइ, क्रोधादि चार कषाय, तथा शाता, अशाता, उंच, नीच, निडा, विकथा, तथा सर्व पुण्यप्रकृति, सर्व पापप्रकृति, तथा रीज, मोज, खीजना, खेद, तथा त्रै लेश्या. लानाज्ञान, यश, अयश, मूर्ख, चतुरता, स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेद, कामचेष्टा, गति, जाति, कुज इत्यादि आठ कर्मका विपाक फल, यह सर्व बातों जीवके अनुभवसे सिद्ध है, अरु सूक्ष्मपुञ्ज, इन्द्रिय अगोचर है, सो परमाणु आदि जेके अनेक तरेंका है, इस पूर्वोक्त पुञ्जके संयोगसं जीव चारों गतिमें नटकता है यह पुञ्ज, मेरी जाति नहीं, इस पुञ्जका मेरे साथ बांड तात्त्व संबंध नहीं, औ यह पुञ्ज सर्व न्यागने योग्य है, जो इस पुञ्जका ससर्ग है, सोइ सत्तार है, तथा इस पुञ्जकी संगतिसं ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि गुण विगड जाते हैं, जो यह पुञ्ज. इव्यकी रचना है, सो मेरी आत्माका स्वभाव नहीं, तथा धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशान्निकाय, काल, यह चारों इव्य होय रूप हैं, इनसंजी मेरा स्वरूप अन्य है. अरु और जो संसारी जीव है, सो सर्व अथपणी अथपणी स्वभाव तत्ताके हामी

तो मेरे ज्ञानमें ज्ञेय रूप है. परंतु मैं इन सर्वसें अन्य हूं, ये मेरे न  
 हैं, मैं इनका नहीं, मैं इनका सार्थीनी नहीं, और मैं अपने स्वरूपका  
 वामी हू, मेरा स्वभाव सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप है, वर्णरहित, त  
 गंध रहित, रस रहित, चैतन्य गुण, अनंत, अव्याबाध, अनंत दान, जा  
 हरेता, जोग, उपजोग वीर्यादिक अनंत गुण स्वरूप है. तिनकी अक्षा चासन  
 के विवेक गुणस्वादिक रूप चिदानंद धन मेरा स्वभाव है, ऐसा जो मेरा पू  
 र्णानंद स्वभाव, तिसके प्रगट करणे वास्ते सर्वशुद्ध व्यवहारनय निमित्तमात्र  
 है, परंतु मुख्य तो मेरा स्वभाव जो है, तिसहीमें जो रमणता करणी, सोइ शुद्ध  
 साधन है. सोइ धर्म है, यह निश्चय धर्म स्वरूप जानना॥ इति धर्मतत्त्व तीसरा॥

इस तीनों तत्त्वोंकी जो अक्षा, निश्चल परिणतिरूप, तिसकों सम्यक्त्व  
 कहते हैं. अरु जिस जीवकों इतना बोध न होवे, वो जीव जे कर ऐसे  
 मनमे धारे, पक्षपात न करे, "तं सत्त्वं निस्तंके, जं जिणेहिं पवेइयं इत्यादि"  
 जो जिनेश्वर देवोने कहा है अर्थ, सो सर्व निःशंकित सत्य है, ऐसी त  
 त्वार्थी अक्षाकोंनी सम्यक्दर्शन सम्यक्त्व कहते हैं, इससें जो विपरीत हो  
 वे, तिसकों मिथ्यात्व कहते हैं, इन मिथ्यात्वका स्वरूप नव तत्त्वमें लिख  
 थाये है, तहासें जान लेना, इस मिथ्यात्वकों त्यागे, तिसकों सम्यक्त्व क  
 हते है इति व्यवहारसम्यक्त्व स्वरूपं संपूर्ण ॥

अथ निश्चय सम्यक्त्वका स्वरूप लिखते है. जो पूर्वे निश्चय देव, गुरु,  
 और धर्मका स्वरूप कहा है, सोइ निश्चयसम्यक्त्व है. चार अनंतानुबंधी,  
 सम्यक्त्व मोह, मिश्रमोह, अरु मिथ्यात्व मोह, इन सातों प्रकृतिका उप  
 शम करे, तथा क्षयोपशम करे, तथा क्षय करे, तिस जीवको निश्चय स  
 म्यक्त्व होती है परंतु निश्चय सम्यक्त्व परोक्ष ज्ञानविषय नहीं. केवली  
 जान सका है, जो इसके निश्चय सम्यक्त्व है, इस सम्यक्त्वके प्रगट नये  
 जीव नरक अरु तीर्थच इन दोनों गतिका आयु नहीं बाधता है ॥ इति नि  
 श्चय सम्यक्त्वं संपूर्ण ॥

अथ सम्यक्त्वकी करणी लिखते है, नित्य योगवाइके मिले, अरु श  
 रीरमें कोइ विघ्न न होवे, तव जिनप्रतिमाका दर्शन करिके पीठसें नोजन  
 करे, जे कर जिनप्रतिमाका योग न मिले, तो पूर्वदिशि तरफ मुख करके व  
 सेमान तीर्थकरोंका चैत्यवदन करे, अरु जे कर रोगादि कोइ विघ्नसे दर्शन



न होवे, तो जिसका आगार है, उनका नियम नहीं टूटता है, खरवानके मंदिरमें मोटी दश आशातना न करे, यह दश आशातना कहते हैं ? तंबोल पान, फल, प्रमुख सर्व खानेकी वस्तु जगवानके मंदिरमें न खावे, १ पाणी, दूध, ठास, अर्क प्रमुख पीये नहीं, २ जिनमंदिरमें वैठके जोजन न करे, ४ जूती प्रमुख मंदिरके अंदर न टयावे, ५ ख्यात धुन सेवे नहीं, ६ जिनमंदिरमें शयन न करे, ७ जिनमंदिरमें धुके नर, जिनमंदिरमें लघुशंका न करे, ८ जिनमंदिरमें दिशा न जावे, ९ जिनमंदिरमें जूआ, चोपट, सतरंज प्रमुख न खेले, ये दश आशातना टाके या उल्हट्टी चौरासी आशातना वर्जे, तथा एक मासमें इतना फूल सेरादि चढावे, एक मासमें इतना आदि घृत वेऊ, (चढाऊ) एक वर्षमें इतना चढावे, वर्षमें इतना केशर, इतना चदन, इतना जीमसेनी वरास, कर्पूर मुख जगवानकी पूजा वास्ते खरच करूं, अपने धनके अनुसारं वर्षमें धूप अग्रवृत्ती, कर्पूर, चढाऊं. वर्षमें अष्ट प्रकारी सत्तरे प्रकारी इतनी जा कराऊं तथा करूं, और वर्षमें इतना रूपैया साधारण इध्यमें सत्तरे वर्षप्रति पूजावास्ते इतना इध्य खरखूं, दिन दिन प्रति एक नर खाली, अर्थात् माला, पंच परमेष्ठिमंत्रकी मोरुनिमित्त जाप करूं, कर कोइ दिन न जपणा हो जावे, तो अगले दिन दूणा जाप करूं परंतु रोगादि कारणे आगार है, दिन प्रति समर्थ होते नमस्कार इहित, अर्थात् दो घडी दिन चढे तरु चार आहारका प्रत्याख्यान करूं रात्रिमें सुविहार प्रत्याख्यान करूं, और रस्ते चजते रोगादि कारणमें न होवे, तो आगार. वर्ष प्रति इतना सार्धमिवास्तव्य करूं, (सार्धमि जिमावु) इन रीतीसैं सम्यक्त्व पावुं, अरु सम्यक्त्वकं पांच अतिचार टावुं, सो पांच अतिचार कहते है

१ प्रथम गऊ अतिचार, सो जिनवचनमें शंका करणी, क्यों कि जिन वचन बहुत गंजीर हैं, अरु तिनका यथार्थ अर्थ कहने वाला इन काजमें कोइ गुरु नहीं, अरु शास्त्र जो है, सो अनतनयात्मक है, तिनकी निपटी तथा सजा, विचित्र तरेकी है, कहीरु जगें तो कोडी शब्द कोडका मानक है, अरु किसी जगें रुढी वस्तुका वाचक है, क्योंकि श्रीजिनजगणिके माश्रमण सर्वसंघका सम्मत आचार्य, संघयण नामा पुस्तकमें तथा तिन

एषवती ग्रंथमें लिखने है, कि कोऽक आचार्य कोडी शब्दको एक कोड का वाचक नहीं मानते है, कितु संज्ञांतर मानते है, क्यों कि अथ वर्त्तमान कालमेंनी वीशकों कोडी कहते है, तथा सौराष्ट्र देश अर्थात् सोरठ देशमें अथ वर्त्तमान कालमेंनी पाच आनेको एक कोडी कहते है, यह जैसे कोडी शब्दमें मतांतर है, जैसेही शत सहस्र शब्दकी किसी संज्ञाका वाचक होवे तो कुछ दोष नहीं तथा शत्रुंजय तीर्थमें जहा मुनि मोह गये है, तहांनी पांच कोडी आदि शब्दोंकी कोऽ संज्ञा विशेष है जैसेही ठप्पन कुछ कोडी यादव कहते है, तहांनी यादवोंके ठप्पन कुलोंकी कोडी कोऽ संज्ञा विशेष है, इसी तरें सर्व जगें शास्त्रोंमें चक्रवर्त्तोंकी सेना तथा कोणिक चेटक राजाओंकी सेनामें जो कोडी, अरु शत सहस्र शब्द है, सो संज्ञाविशेषके वाचक सचव होते है, इस वास्ते सर्व शब्दोंका सर्व जगें एक सरीखा अर्थ मानना युक्त नहीं, इस कथनमें पूज्यश्री जिननङ्गणिक्रमाश्रमण पूरे साक्षी देने वाले है

तथा कितनेक नव्य जीवोंने सामान्य प्रकारे ऐसा सुण रक्का है, जो पांचमे आरामे उत्कृष्ट एक सौ वीश वर्षका आयु है, जब वो जीव कीसी अयेज के मुखसें सुनते है, तथा और किसीके मुखसें सुनते है, कि डैठ सौ तथा दो सौ, तथा अढाइ सौ वर्षकी आयुवालेनी जोटानादि किसी देशमें मनुष्य होते हैं, तब दृढ श्रद्धावाले नोले जीव तो कदापि किसीका कहनां नहीं मानते हैं, चाहो बडी आयु वाला मनुष्य उनके सन्मुखनी खडा कर दो, तोनी वे फूठही मानेंगे, क्योंकि वे जानते है, कि जो हमारे जिनेंद्र देवका कथन है, सो कदापि फूठा नहीं है, परंतु जिनको जैनमतकी दृढ श्रद्धा नहीं है, वे कुछ सासारिक विद्यामें निपुण हे, चाहो जैनमत वालेही है, उनके मनमें अवश्य शंका पड जायगी, क्यों कि उनोंनेनी सर्प जैन मतके शास्त्र सुने नहीं है, शास्त्रमें जो कथन है, सो सापेक्षिक है, बाहुल्यता करके कह्या दूआ है, सो कथंचित् जो अन्यथा हावे, तो आश्चर्य नहीं, क्यों कि बहुत शास्त्रोंमें लिखा है, कि ज्योतिषचक्र, अर्थात् तारा मण्डल है, सो सर्व तारे मेरु पर्वतको प्रदक्षिणा देते हैं, ये बात सर्व जैनी मानते है, परंतु ध्रुवका तारा कहांनी नहीं जाता है, अरु ध्रुवके पास जो तारे सप्त रूपि रूढिमें प्रसिद्ध है, जिनको बालक मंजी पहरेदार

कुत्ता, और चोर कहते हैं, तथा औरजी, कितनेक तारे ध्रुवके पार्श्वोंमें वे सर्व ध्रुवकी प्रदक्षिणा देते हैं, परंतु मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा नहीं है, यह बात हमने आंखोंसें देखी है, अरु औरोंको दिखा सकते हैं। फेर प्रथम जो शास्त्रकारने कहा था कि सर्व तारे मेरुकी प्रदक्षिणा देते हैं यह कहना जैनी, क्यों कर सत्य मानते हैं ?

इसका समाधान ऐसा है, कि प्रथम जो कथन है, सो अपेक्षा है, क्योंकि बहुत तारा मंजल ऐसा है, जो मेरु पर्वतकी देता है, अरु कितनेक ऐसे हैं जो ध्रुवकेही आस पास चक्र देते हैं। समाधान, पूज्यश्री जिनजडगणि कृमाश्रमणजीनें संघषण, तथा एवती ग्रंथमें लिखा है, कि मेरु पर्वतके चारों ओर चार ध्रुव हैं, अरु न चारों ध्रुवोंके पास ऐसे ऐसे तारे हैं, जो सदा उन चारों आस पास चक्र देते हैं, इससे यह सिद्ध हुआ कि जो शास्त्रका कहना है वाहुल्यतासें अरु किसी अपेक्षा करके सयुक्त है, अरु किसी जगह स्थूल व्यवहार नयके मतसें कथन है, परंतु सूक्ष्म, अधिक न्यूनताकी विचार नहीं करी है, इसी तरे सौ वर्षसें अधिक आयु जो पंचम काशमें ही है, सो वाहुल्यताकी अपेक्षा तथा आर्यखंड अर्थात् मध्यखंडकी अपेक्षा है, जे कर किसी पुरुषकी १५०, २००, २५०, इत्यादि वयस आयु हो जावे, तो मनमें जिनवचनकी शक्यता न करणी कि क्या जिनवचन सत्य है कि जूठ हैं ? ऐसा विकल्प मनमें नहीं करनी, कि शास्त्रका आगम अतिगंभीर है, अरु ऐसा गीतार्थ कोइ गुरु नहीं है, जो यथार्थ बतला देवे.

इस आयुके कहनेका यह समाधान है, कि जगवान् श्रीमहाजीके निर्गमिणी ( ५८५ ) वर्षके लग जैनमतका आचार्य श्रीआर्यरक्षित जी साठे नव पूर्वका पाठक जिनोके पास शकइइ, निगोद जीगोदा रूप सुनने आया था, तब शकइइने प्रथम वृद्धत्राहणका रूप में श्रीआर्यरक्षित सूरिजी पूठा, कि हे जगवन् ! मैं वृद्ध हो गया हों, जे मेरी आयु थोड़ी होवे, तो मुझे बतला दीजिये, जो मैं अन्नशन करूं, तो श्रीआर्यरक्षित सूरिजीने दगमे पूर्वके यवका व्यवचनमें उपयोग दे देखा, तो तिसकी आयु सौ वर्षसें अधिक जानी, फेर उपयोग दे

खा, तो दोसैं वर्षसैं अधिक आयु जानी, फेर उपयोग दीया, तो तीन वर्षसैं अधिक आयु जानी, तब आचार्य श्रीआर्यरक्षितसूरिजीने विचार कीया, जो यह चारत वर्षका मनुष्य नहीं है. ये कथानक, आवयकसूत्रकी सामायिकअध्ययनकी उपोद्घात निर्युक्तिमें है, इस कथानकसैं प्रेसा निकलता है, जो चारत वर्षके मनुष्यकी आयु तीन सौ वर्षकी होवे, तो आश्चर्य नहीं, क्यों कि श्रीआर्यरक्षितसूरिजीने जो तीन सौ वर्षसैं जब अधिक आयु देखी, तब कहा, ये चारत वर्षका मनुष्य नहीं. इसी कहनेसैं अर्थचिन्त तीन सौ वर्षकी आयु चारत वर्षकी होवे, तो क्या आश्चर्य है ?

तथा कितनेक जीवोंके मनमें ऐसीनी शंका होवे, तो उसका क्या समाधान है ? चरत खंम जैनमतवाले कहां तक मानते है ? जो कुछ इस कालमें लोकोंके देखने वा सुननेमें आता है, कि अमेरिकादि देश वे सर्व जैनलोक चारत वर्ष मानते हैं, रूप, वा चीनादि देश इन सर्वकों चारत वर्ष कहते है. अरु अमेरिकादि विजायतादि सर्व मुलकोंके बीचमें जो समुद्र पडा है, सो रूपन देव अरु चरत चक्रवर्तीके समयमें नहीं था, किंतु जगती बाहिर जो महासमुद्र है, सोइ था, इस कारणसैं अर्थात् समुद्रके अंदर आ जानेसैं असली चरत क्षेत्रका स्वरूप विगड गया, कही समुद्र हो गया, और कही द्वीप बन गये.

इस विषे जैनमतका शत्रुंजय महात्म्यनामा जो ग्रंथ है, तिसमें लिखा है कि दूसरा सगरनामा चक्रवर्ती हुआ है, वो इस समुद्रको चारतवर्षमें जब द्वीपके दक्षिणदिशि के विजयंत नामक दरवाजेके रस्तेसे ल्याया है, तिसके जानेसैं वर्षरादि अनेक हजारो देश तो जलमें डूब कर समुद्रकी चूमिका बन गये, अरु जो उच्चस्थल थे, वे द्वीप और विजायतादि देशो बन गये, पीछे सैं असली देशोका नाम नष्ट होनेसैं बहुत देशोंके नाम कल्पित रके गये, अरु चरतखंम कुछ औरका और बन गया, कितनेक देशोंके चारों और समुद्र फिर गया, अरु कितनेक देशोंके उत्तर खंमोंमें वर्षके पड जानेसे, और समयके बदलनेसैं, सर्वथा पानी जम गया, अरु समुद्रके साथ मिल गया, तब तो चारों ओर समुद्रही दीखने लगा है, तिस लिये थाना जाना बंद हो गया, अरु हमारे शास्त्रकार तो प्रथम धारेमें तथा रूपन देव अरु चरतचक्रवर्तीके समयमें जो इस चारत वर्षका हाल था, सोइ सदासैं लि

खते चले आये, परंतु जरत क्षेत्रके विगड तिगडके औरका और वन  
नेसें कितीने विस्तार पूर्वक वृत्तांत ठीक ठीक नहीं लिखा; अरु जे क  
खाजी होवेगा, तोजी जैनमतके उपर बड़ी बड़ी विपत्तियों पढीयों  
नसें लाखों क्या, बलकि कोडों ग्रंथ नष्ट हो गये हैं, इस वास्ते हम  
ठीक सर्व वृत्तांत बता नहीं सकते हैं, परंतु जितनेक जैन मतके ग्रंथ  
नेमें आये हैं, उनमेसू जो मुझे ठीक पडी है, सो मै इस ग्रंथमें

इस वास्ते सर्वक्षेत्र अटल बदल हो गये हैं, गंगा सिंधु  
बहनेमे रह गइ, क्योंकि अगला प्रवाह तो, समुद्रने रोक लीया. अरु  
सें पाणी आना बंद हो गया, फेर जिस पर्वतसे अधिक नदीकी प्रवृत्ति  
इ, वो नदी, उसी पर्वतसे निकलती लोकोनें मान लीनी, इस वास्ते  
अरु सिंधुमें कुल्लक हेमवत पर्वतसें जल आना बंद हो गया, नाममात्र  
गंगा सिंधु रह गइ, औ नगरीयोंमें वनिता नगरीकी कल्पना पर अयोध्या  
बनाइ गइ, अरु काबलके परे तहिजा अर्थात् बाहुबलकी नगरीकी कल्पना  
ना करी गइ, इस समयमें वो तहिजाजी नहीं रही. उसका नाम गजनी  
प्रसिद्ध है. क्योंकि जैनीयोंकी श्रद्धा अनुसार प्रथम आरेको अरु का  
देव तथा जरत राजाके समयके व्यतीत होनेमें अत्यंत वर्ष व्यतीत  
गये हैं. तो फेर नदी, पर्वत, देश, नगरोंके उलट पलट हो जाने  
क्या आश्चर्य है ?

औ समुद्रका देशों उपर फिर जानां, तो तौरेत ग्रंथसेंजी ठीक ठीक  
सिद्ध होता है, अरु पुराणादि ग्रंथोंमेंजी लिखा है, जो कोइ श्रेया स  
यनी था कि समुद्रमें पाणी नहीं था, पीनेसें आया है, इस वास्ते शत्रु  
य माहात्म्यमें जो लिखा है कि जरत क्षेत्रमें समुद्रका पाणी सगर चक्रवर्ती  
टयाया है, सो कहनां ठीक है.

तथा विजयसेन सूरि श्रीतपगुहका आचार्य, अपने प्रश्नोत्तरोंमें लिख  
ते हैं, कि भागव. वग्दाम, अरु प्रजासक नामक तीन जो तीर्थ हैं, सो व  
गतीके बाहिरले समुद्रमें है, इस्सेंजी यही सिद्ध होता है, कि जरतप  
र्षी जब पट्ट खंम भावने, अरु भागधादि तीर्थोंको साधनेकों गये थे, तब  
यह समुद्रका पानी रस्तेमें नहीं था, अरु शास्त्रकारोंने तो सर्व शास्त्रोंकी

श्रीपञ्चदेवके कथानुसार ररकी है, इस वास्ते चक्रवर्त्यादिकोंका क  
नरतचक्रवर्तीके सरीखा कह दीया है,

तथा इस कालमें कितनेक विद्वानोंने जूगोलके हिसाबसें जो कुतब व  
थे हैं, अरु उनके अनुसारें शरद् तथा गरम देशोंका विभाग कीया है,  
उनके देखने सुनने मूजब तथा उनके अनुमानके अनुसारें वर्त  
मान समयमें ऐसाही होवेगा, परंतु सदा ऐसाही था, यह कहनां ठीक  
हीं. क्योंकि जूगोलहस्तामलक पुस्तकमें लिखा है, कि रूपदेशकी उत्तर  
रूपासं जहां बरफके सिवाय और कुठनी नहीं है, तहां गरमीके दिनोमें  
बर्फके गलनेसें तथा किसी जगे बर्फके करार गिर पडनेसें उसके हेतसें एक कि  
समके हाथी निकलते है, सोनी सेंकडो हजारों निकलते है, जिनका नाम उस  
देशवाले मेंमाथ कहते है, अब बडा आश्चर्य तो इन मेंमाथोंके देख  
नेसें ये आता है, कि ये जानवर गरम मुलकोंके रहनेवाले है, अरु यह  
शरद् मुलकमें कहांसें आये? अरु इनके खाने वास्तेनी कुठ नहीं, इस  
कालमें जो एकनी हाथी उस मुलकमें जा कर बांधीये, तो थोडेसे काल  
में मर जायगा, नहीं तो ये लाखों मेंमाथ इस मुलकमें क्यों कर जाते  
होयंगे? और क्या खाते होयंगे? इसमें यही कहनां पडेगा कि किसी  
समयमें ये मुलक गरम होवेगा, पीठें पवनकी तसीर बढलनेसे शरद् मु  
लक हो गया, इस वृत्तांतसें यह सिद्ध होता है, कि जो शरद् मुलक है,  
वे गरम हो सके हैं, अरु जो गरम मुलक है, वे किसी कालमें शरद् हो  
जाते है, इस वास्ते जूगोलके अनुसारें जो शरदी गरमीकी व्यवस्था क  
रपना करनी है, वे हमेशाके वास्ते डरस्त नहीं, क्या जाने देशोंकी क्या  
क्या व्यवस्था बढल चुकी है? और क्या क्या बढलेगी? इसका पूरा  
स्वरूप तो सर्वज्ञ जान सक्ता है.

तथा इस पृथ्वीकों जूगोल कहते है. अरु यहनी कहते है कि स  
र्य नहीं फिरता, किंतु पृथ्वी, सूर्यके ईर्द गिर्द घूमती है, यह बात कुठ  
इंजेलोहीने नहीं निकाली है, किंतु इंजेलोसे पहिलेनी इस बातके मा  
नने वाले भारत वर्षमें थे, क्यों कि जैनमतका शीलंगाचार्य जो विक्र  
मके ७०० वर्षमें हुआ है, वे आचार्य आचारांगसूत्रकी वृत्तिमें लि  
खते है, कि कितनेक ऐसानी मानते है, जो जूगोल फिरता है, अरु स

यं स्थिर रहता है, परंतु यह मत जैनीयोंका नहीं है, उनके मत में जो प्रगट लिखा है कि सूर्य चलता है, अरु पृथ्वी स्थिर रहती है और सूर्यके भ्रमण करनेके एक सौ चौरासी मंजल आकाशमें ममलोंमें प्रवेश करना, अरु दिनमानका रात्रिमानका घटना, वयता मौसमोंका बदलना, ग्रहणका जगना, सूर्यके अस्त उदय होनेमें तोंका विवाद, इत्यादि बात सर्व सूर्यप्रज्ञप्ति वा चंद्रप्रज्ञप्ति पढ़नेसे अच्ची तरेसें मालुम पड जाती है.

अरु जो पृथ्वीके गोल होनेमें समुद्रके जहाजकी ध्वजा प्रथम दिखती है, इत्यादि कहते हैं, सो कहनेवालोंकी समजमें ऐसी आती होगी, परंतु हमारी समजमें तो नहीं आती है, हम तो ऐसे समजते हैं, कि हमारे नेत्रोंमें ऐसी ही योग्यता है, कि जिस्से वस्तु गोलादि दीख पडती है, क्योंकि जब हम सूधी सड़क पर खडे होते हैं, तब हमारे पगोंकी गे सड़क चौड़ी मालुम पडती है, अरु जब दूर नजरसे देखते हैं, तब ही सड़क संकुचित मालुम पडती है, अरु आकाशमें पक्षीको जग ऊपर उडता देखते हैं, तब हमको उंचा दूर दीख पडता है, अरु उसी जानवरको थोडीसी दूर जातेको देखते हैं तब धरतीसे बहुत दूर देखते हैं, इतनी दूरमें पृथ्वीकी इतनी गोलाइ नही हो सकती है, तब आकाशको जब देखते हैं तब तबूला दिखजाइ देता है, इतमें जो यह बात कहे कि धरतीकी गोलाइके सबवसें आकाशनी गोल दीखती है, यह कहनां ठीक नहीं, क्योंकि पृथ्वीकी इतनी दूर इतनी गोलाइ नही हो सकि है, इत वास्ते नेत्रोमें जिस वस्तुके जाननेकी जैसी योग्यता वैसी वस्तु दीखती है, यह कहनां ठीक मालुम होता है.

तथा यह पृथ्वी, नरतरखंमादिककी बहुत जगें उंची, नीची, मालुम रहती है, क्योंकि श्रीहेमचंद्ररि प्रमुख आचार्य पद्मप्रज्ञचरित्रादि प्रमाण लिखते हैं, कि लंकासेति इतने योजन पश्चिम दिशिकों जाइयें, तब आ योजन नीचे पातालजंका है, जे कर ये प्रमाण योजन होवे, तब तो क जाने अमेरिकाही पतालजंका होवे? अरु नीची जग होनेसे बुद्धिमान को पृथ्वी गोल मालुम पडती हावेगी, इती पाताल लंकाकी तरे औ गेंनी धरती उंची नीची होवे, तो क्या आश्चर्य है? क्योंकि पश्चिम महा

हकी धरती एक हजार योजन उंची लिखी है, इसी तरें और जगेंची  
 नीची धरतीके सबबसैं कुछ औरका और दीख पडे, तो जैनमती  
 श्रीअर्हत जगवंतके कहनेमें शंका न करनी चाहिये.

तथा कितनेक पुस्तकोमें लिखा देखा और सुनाजी है, जो अमेरिका  
 मुलकोमें ऐसी विद्या निकाली है, कि जिस करकें वो दो हजारदि व  
 पहिलें जो मनुष्य मर गये थे, उनको बुलाते हैं, अरु उनसैं उस व  
 तका सर्व हाल पूठते हैं, अरु वे सर्व अपनी व्यवस्था बतलाते हैं, प  
 रंतु परोक्ष शब्द उनका सुणाइ देता है, वे प्रत्यक्ष नहीं दीखते हैं, तथा  
 अनेक तरेंके तमासे दीखाते हैं, कि जिनके देखनेसैं अल्पबुद्धियोंकी बुद्धि  
 व्यस्त हो जाती है, तब उनके मनमें अनेक शंका कंखा उत्पन्न हो  
 जाती है. जिसके सबबसैं अर्हतकथित धर्ममें अनादर हो जाता है,  
 क्योंकि उन जीवोंने नतो पूरे जैनमतके शास्त्र पढे है, औ न सुने  
 है, इस वास्ते उनके मनको जलद अधीरज हो जाती है, परंतु  
 अपने घरकी सर्व पुस्तकों विना वांचे, विना सुने, तुष्ट बातके वास्ते एक  
 बारगी जिनधर्ममें शंका न जानी चाहियें, क्योंकि यह पूर्वोक्त सर्ववृत्तांत  
 इंजालकी पूर्णविद्या जिसको आती होवे, वो दिखा सकता है, मैने  
 किसी ग्रंथमें ऐसा लिखा देखा है, जो कुमारपाल राजाके समयमें  
 एक बोधिदेव नामक ब्राह्मण था, उसने राजा कुमारपालकी भ्रष्टा जैन  
 मतसैं हटानेके वास्ते कुमारपालसैं जो प्रथम उनके वशके मूलरा  
 ज आदि सात राजाथो हो गये थे, उसको नरककुंभमें पडे हुए, विलाप  
 करते हुए, अरु अिसैं कहते हुए, दिखपडे, कि हे पुत्र ! जिस दिनसैं तूने  
 जैनधर्म अंगीकार कीया है, उस दिनसैं हम तेरे सात पुरुषों नरक कुंभमें  
 जा पडे है, जे कर तू हमारा नला चाहे, तो जैनधर्म ठोड दे, ऐसी बात  
 देख कर राजा कुमारपाल चित्तमें घबराया, तब जा कर अपने गुरु श्रीहेम  
 चंद्राचार्यको पूठा, कि महाराज ! यह क्या वृत्तांत है ? तब श्रीहेमचंद्र आचा  
 र्यजीने कहा कि हे राजे ! ये सर्व इंजालकी विद्या है, आउ मैनी तुमको  
 कुछ तमासा दिखाक ? तब राजा कुमारपालको मकानके अंदर ले मकानमें  
 ले जा कर चउवीस तीर्थंकर समवसरणमें जूदे जूदे बैठे है, अरु कुमारपा  
 लके वेही सात पुरुषों तीर्थंकरोंकी सेवा करते है, अरु राजा कुमारपा



लकों कहते हैं, कि हे पुत्र ! तू बड़ा पुण्यात्मा है, कि जिसने जैनधर्म  
 गीकार कीया है, जिस दिनसे तूने जैनधर्म अंगीकार कीया है, उस  
 से हम नरककुंडसे निकल कर स्वर्गवासी हुए हैं, इस वास्ते तू धर्म  
 ठ रहियो. तद् पीछे श्री हेमचंद्रस्वरि, राजा कुमारपालकों बाहिर जाये,  
 राजाने पूछी कि महाराज ! यह क्या तमासा आश्चर्यकारी है ? तत्र श्री  
 चंद्रस्वरि कहते जये कि हे राजा ! ये इंद्रजालकी विद्या जिसको थाती  
 वो कर सका है, क्योंकि इंद्रजाल विद्याके सचाईस पीठ, है, जिनमें  
 रे पीठ संसारमें प्रचलित है, परंतु सचाईस पीठ में जानता हूं. और  
 नी चारत वर्षमें नहीं जानता है, धरु जिन गुरुवोने हमको ये  
 नी थी, उनोने ऐसी आज्ञानी करी है, कि आगेको तुमने किसीको  
 विद्या न देनी, क्योंकि इस विद्यासे बड़े अनर्थ उत्पन्न हो जायगे. क्योंकि  
 इस कालमें जीव तुष्टबुद्धिवाले है, इस लिये उनको ये विद्या  
 नहीं, इसी वास्ते हमारे आचार्याने योनिप्रानृत शास्त्र विवेक कर दीया  
 उसी योनिप्रानृतके अनुसार यह इंद्रजाल रचा हुआ है, इस योनि  
 नृतका कथन व्यवहारनाप्यचूर्णमें लिखा है, कि उस योनिप्र  
 तमें तत्रविद्या है, जिसे सर्प, घोडे, हाथी, वगैरे जिंदा जानवर  
 वोंके मिलानसे बन जाते है, तथा सुवर्ण, मणि, रत्नप्रमुखा  
 जाते है, उन मसालोंमें ऐसी मिलन शक्ति है, कि चाह सो बना  
 इस वास्ते कोइ आल नवी वस्तु देख कर जैनधर्मसे चलायमान  
 होना चाहिये. तत्त्वार्थकी महाजाप्यमें सामंतनद्र आचार्यनी निर  
 है, कि इंद्रजाजिया तीर्थकरके समान बाह्य सिद्धि सर्व बना सका है.  
 स वास्ते कोइ बातका चमत्कार देखके जिन वचनोमें शंका कदापि न करे

तथा कितनेक जैनमत वालोंको यहनी आश्चर्य है, कि जदा आर्या  
 नेमें दो प्रहर दिन होता है, तदा अमेरीकामें अर्द्धरात्रि होती है अरु  
 वा अमेरीकामें दो प्रहर दिन होता है, तदा आर्यावर्तमें अर्द्धरात्रि हो  
 है, कितनेक लोकाने घडीयोके हिसाबसे तथा तारकी सवरोमें इन वा  
 का निश्चय अष्टी तरेसे करा वतजाते है, इन बातका उत्तर में प  
 नहीं दे सका हूं, मेरी श्रद्धा ऐसी नहीं है कि पूरे आचार्योंके अनुमा  
 विना समाधान कर सकूं ? क्योंकि मेरी कल्पनासे कुछ जैनमत सत्य न

सक्ता है, जैनमत तो अपने स्वरूपसे ही सत्य बनेगा, जे कर मेरी क  
 इनाही सत्यका कारण होवे, तब तो किसी पूर्वाचार्योंकी अपेक्षा न रहे  
 तब तो जिसके मनमें जो अर्थ अज्ञा लगे, सो अर्थ कर लेवेगा. जैसे  
 मानमें किसी पाखंडी मस्करीने ऋग्वेदादि वेदों उपर स्वकपोलकल्पित  
 अर्थ बनाये है, सो हमने वांचनी लीये है, उनोंने वेद मंत्रादिकोंके उपर  
 जो नाप्य बनाया है, उसमें मंत्रोंके अर्थोंमें ऐसा लिखा है कि "अग्निबोट"  
 अर्थात् धूयेकी कलसे चलनेवाले ऊहाज तथा रेलगाडीके चलनेकी विधि,  
 तथा पृथ्वी गोल है, अरु सूर्यके चारों ओर घूमती है, अरु सूर्य स्थिर है,  
 इत्यादि जो अग्नेजोने अपनी बुद्धिके बलसे विद्या उत्पन्न करी है, इन स  
 विद्यायोंका वेदोंमें जो कथन है, अपने शिष्योंको वेदका महत्त्व ज  
 नानेके वास्ते स्वकपोलकल्पित अर्थ बना लीये हैं. अरु पूर्वे जो म  
 हीपरादि पंडितोंने वेदोंके उपर दीपिका तथा नाप्य रचे हैं, उनकी निं  
 अर्थात् मूर्खता प्रगट करी है, वे मूर्ख थे, उनको वेदका अर्थ न  
 ही थाता था.

प्रश्न:—पिठले अर्थ ढोड कर जो नवीन अर्थ बनाये गये, इनका  
 क्या कारण है ?

उत्तर:—प्रथम तो वेदोंके प्राचीन नाप्य और दीपिका माननेसे वेदोंकी  
 सत्यता, अरु इश्वरोक्तता, तथा प्राचीनता सिद्ध नहीं होती. इसी वास्ते  
 शावास्य उपनिषद् वर्जके सर्व उपनिषदों, और सर्व ब्राह्मण नाग, त  
 या सर्व स्मृति, पुराणादि शास्त्र, नाप्य, दीपिकादि, मानने ढोड दीये, उनो  
 ने यह विचार कीया है कि इन सर्व पूर्वोक्त ग्रंथोंके माननेसे हमारा मत  
 दूसरे मतवाले खंडित कर देवेंगे, क्योंकि ये पूर्वोक्त सर्व त्रय युक्ति प्रमा  
 णसे विकल है, अरु प्राचीनोंने जो अर्थ करे है, उनमें बहुत अर्थ ऐसे  
 हैं, कि जिनोंके सुननेसे श्रोता जनकोंनी लज्जा उत्पन्न होती है. क्योंकि  
 महीरकृत दीपिका जो वेदकी टीका है उसमें मंत्रादिकोंके जो अर्थ  
 लिखे है, उनमें लिखा है कि यज्ञपत्नी घोडेका लिंग पकडके अपनी  
 योनिमें प्रक्षेप करे इत्यादि अर्थ है, सो मैं आगे लिखुंगा इत्यादि अर्थोंके  
 ढोडने वास्ते अरु वेदोंके खंडन न होने वास्ते स्वकपोलकल्पित नाप्य  
 बना कर मानु अग्नेजोके चाल चलन, और इंजिलके मतानुसार अर्थ बना

वे गये हैं, परंतु उसको बुद्धिमान् तो कोइनी मानता नहीं है, अरु  
 मानते हैं, वो कुछ जानते नहीं है, क्योंकि जब पूर्वजें कृषि, मुनि, जूठे  
 हैं, अरु उनके बनाये दूये अर्थ असत्य है, तो अर्थके बनाये दूये  
 दापि सत्य नहीं हो सकेंगे ? जो जडमेंही जूठ है, वे नवीन रचनामें  
 दापि सत्य न होवेंगे, इस वास्ते अपनी बुद्धिका विचार सत्य मान  
 अरु प्राचीन उन वेदोंके मानने वालोंका संप्रदाय अर्थको जूठा मान  
 इस्से अधिक निर्विवेकी और अन्यायशिरोमणि कौन है ? क्योंकि जब  
 चीनोंके बनाये अर्थ जूठे उहरेंगे, तब तिनके बनाये नये वेदनी जूठ  
 उहरेंगे, इस वास्ते जो मतधारी है, यातो उनको अपने प्राचीनोंके  
 न करे दूये अर्थ मानने चाहिये, नहीं तो उस मतको अरु उस  
 शास्त्रोंको तोड़ देना चाहिये. इसी वास्ते मेरी ऐसी अक्षा है, कि जो  
 मतमें प्रामाणिक अरु पंचांगीकारक आचार्य लिख गये हैं, उनके अरु  
 रही हमको कथन करना चाहिये, परंतु स्वकपोलकल्पित नहीं. जो  
 कोइ स्वकपोलकल्पित मानेगा, वो जैनमती कदापि नहीं बन सकेगा,  
 अरु उसकी कल्पनानी सर्वथा सत्य नहीं होवेगी ? क्योंकि जब सर्व  
 के पूर्वाचार्य जूठे उहरेंगे, तब नवी कल्पना करने वाले क्यों कर  
 बन वेठेगे ? इस वास्ते पूर्वोक्त प्रश्नका उत्तर पंचांगीके प्रमाणसे नहीं  
 का हूं, क्यों कि १ शास्त्र बहुत विवेद हो गये हैं, तथा २ आर्यरहित  
 के समयमें चारों अनुयोग तोड़के पृथक्त्वानुयोग रचा गया है, तथा  
 स्कंदिल आचार्यके समयमें बारह वर्ष काल पडा था, उसमें शास्त्र  
 वसें नूल गये थे, फेर सर्व साधुओंका दक्षिण मधुरामें समाज करके  
 स जिस आचार्य, साधुके जिस जिस शास्त्रका जो जो स्थल, कंत रह  
 या, सो सो स्थल एकत्र करके लिखा गया, ४ पीठें देवर्षि गण कल्प  
 ए प्रकृति आचार्योंने पत्रोंके उपरि एक कोठ ग्रंथ लिखा, जो पठ  
 ये, ५ प्रजावक्र चरित्रमें लिखा है, कि सर्व शास्त्रोंकी टीका लिखी थी,  
 सर्व विवेद हो गइ. ६ तथा पीठसे ब्राह्मणोंने तथा बौद्धोंने ग्रंथोंका  
 किया, ७ तथा मुत्तलमानोंने तो सर्वमतोंके शास्त्र मट्टीमें मिजाप  
 तिनमेंसुं जो रह गये, वे जंझारोंमें गुप्त रहनेमें गज गये, तथा जो  
 जंझारोंमें है, वे सर्व दमने वांचे नहीं हैं, तो फेर इतने उपइच जैन

जो मैं वीतनेसें हम क्योंकर सर्व शंकायोंका समाधान कर सके? इस बात जिनमतमें शंका न करनी चाहिये. हमनें सर्वमतोंके शास्त्र देखे हैं, परंतु जैनमत समान अति उत्तम मत कोइ नहीं देखा है, इस वास्ते इस मतमें दृढ़ रहना चाहिये, १ शंका अतिचार उसको कहते हैं, कि जो जिन्वचनोंमें शंका करे, जैसें कि ए वार्त्ता जिनेश्वर देवकी कही सत्य है, वा नहीं? यह प्रथम अतिचार है.

२ दूसरा आकांक्षा अतिचार, सो अन्यमत वालोंका अज्ञान कष्ट देख कर तथा किसी पाखंडीके पास किसी विद्यामंत्रका चमत्कार देख कर तथा पूर्व जन्मके अज्ञान कष्टके फल करके अन्यमत वालोंको सुखी अरु धनवान् देख कर मनमें विचारें जो अन्यमत वालोंका धर्म अरु ज्ञान अष्टा है, जिसके प्रभावसें वे धनी, अरु पुत्र आदि परिवार वाले होते हैं, इस वास्ते मैंनी इनहीका धर्म करूं, कि जिस कर के मैंनी धनी, अरु पुत्रादि परिवार वाला हो जाऊंगा, यह आकांक्षा अतिचार, उन जीवोंको होता है, कि जिनको जिनधर्मका अष्टी तरेसें बोध नहीं है, क्योंकि जैनधर्मवालेनी सर्व दरिडी अरु पुत्रादि परिवारसें रहित नहीं है, तैसें ही अन्यमत वालेनी सर्व धनी अरु परिवारवाले नहीं है, इस वास्ते सर्व अपने अपने पूर्व जन्म जन्मांतरके करे हुए पुण्य पापके फल हैं, क्योंकि जे जीव, मनुष्य जन्ममें सात कुव्यसनी है, अरु कसाइ, वागुरी (बुड्ड) प्रमुख कितनेक धनी (धनवाले) अरु पुत्रादि परिवारवाले है, अरु कितनेक इस अवस्थासें विपरीत हैं, इस वास्ते यही सत्य है कि पूर्व जन्ममें करे हुए सुकृत डुकृतका फल है, प्रायः इस जन्मके कृत्योंका फल नहीं है, सर्व मतोंवाले राजा हो चुके हैं, अरु रंकनी बहुत हैं, इस वास्ते अन्यमतकी आकांक्षा न करे, जे कर करे, तो दूसरा अतिचार.

३ तीसरा वितिगिञ्जा नामक अतिचार है, सो कोइ जीव अपने पूर्व जन्मके करे हुये पापोंके उदयसें दुःख पाता है, तब अैसा विचार करे, जो मैं धर्म करता हूं, तिसका फल मुझे कब मिलेगा? अर्थात् मिलेगा कि नहीं? अरु जो धर्म नहीं करते ह, वो सुखी है, अरु हम तो धर्म करते हैं, तांची दुःखी है, इस वास्ते कौन जाने धर्मका फल होवेगा कि नहीं होवेगा? तथा साधुके मज्जिन वस्त्र तथा मज्जिन शरीर रखत देख कर मनमें



अप्ये कि जिनोके किसी बातका नियम नहीं, हाथी, घोड़े, रेल प्रमुख  
 अतवारी करनी, तथा जो फल हैं, सो सर्वे नष्ट करने, धन रख  
 मकान बांधणे, खेती करणी, गौ, बैस, हाथी, घोड़े, रथ, शस्त्र रख  
 बज बलसें लोकों पासों धन ले लेनां, स्त्रीयोंसें विषय सेवन करनां,  
 मांसनष्टण करनां, मदरा पीनां, नांगके रगडे, चरसकी  
 उडानां, पगोंको तथा शरीरकों वैश्याकी तरें मांजनां, चित्तमें बडा  
 इत्यादि अनेक साधुओंके  
 प्रवृत्त काम करने, फेर श्रीश्री स्वामीजी महाराज बन वैठनां, हम म  
 हम गद्दीपर हैं, हम नष्टारक हैं, हम श्रीपूज्य हैं, हम जगत्का  
 हम बड़े अद्वैत ब्रह्मके वेत्ता है, हम शुद्ध ईश्वरकी उपा  
 मूर्त्तिपूजन पाखंडका नाग करते है.

अब नव्य जीवोंको विचार करनां चाहिये कि यह पूर्वोक्त कुगुरु क्या  
 स्नान करनेसें संतारसमुद्रसें तर जायेंगे ? अरु जो जीवहिंसा, फू  
 चोरी, स्त्री, अरु परीग्रह, इन पाचोंके त्यागी, शरीरमें ममत्व रहित, प्र  
 काम क्रोधके त्यागी, महातपस्वी, मधुकर वृत्तिसें निष्ठा  
 इत्यादि अनेक गुण सुशोभित है, वे क्या जलमें स्नान न कर  
 पातकी हो जावेंगे ? कदापि न होवेंगे. इस वास्ते साधुको देख के छ  
 न करे, तो तीसरा अतिचार लागे ॥

चौथा मिथ्यादृष्टिकी प्रशंसारूप अतिचार है, मिथ्यादृष्टि उसको कहते  
 जो जिनप्रणीत आज्ञासें बाहिर है, क्यों कि सर्वज्ञके कहे हुए वचन  
 तो वो मानता नहीं, अरु अ सर्वज्ञके कहे हुए शास्त्रोंको सच्चा मान  
 उन शास्त्रोंमें जो अयोग्य बातें कही हैं, उनके ठिपाने वास्ते  
 नाप्य, टीका, अर्थ, बना करके मूर्खलोकोंको बहका  
 अरु जिनके नियमधर्म कोइ नहीं, रूपण पशु  
 मूर्खोंको मार जानते है, धूर्तपणेंते सच्चा बन कर मूर्खोंको मिथ्यात्व जा  
 फसाते है, ऐसे मिथ्यादृष्टि होते हैं, उनकी प्रशंसा करनी, तथा जो  
 जिनाज्ञासे बाहिर है, उनको कहनां कि ये बड़े तपस्वी हैं ? महा  
 पंडित है ? बड़े पंडित हैं ? इनके बराबर कौन है ? इनोने धर्मकी वृद्धि  
 वास्ते अचतार लीया है ? तथा मिथ्यादृष्टि कोइ व्रत बड़ाडिकरे, तब ति

सकी प्रशंसा करे कि तुम बड़ा अच्छा काम करते हो, तुमारा जन्म स  
है, इत्यादि प्रशंसा करे, सो चौथा अतिचार है.

५ पांचमा मिथ्यादृष्टिकी परिचयकरनी सो अतिचार है, सो मि  
दृष्टिके साथ बहुत मेल (मिलाप) ररक, एक जगें जोजन संवात क  
त्यादि है, क्योंकि बहुत मिथ्यादृष्टिके साथ मेल रखनेसें मिथ्याह  
वासना लग जानेंसें धर्मसें भ्रष्ट हो जाता है, इस वास्ते मिथ्याह  
बहुत परिचय करनां ठीक नहीं यह पांचमा अतिचार है.

अब जब गृहस्थको सम्यक्त्व देते है, तब उसकों गुरु ठै आगार  
जाते है. जे कर ये ठै कारणोसे तुमकों कोइ अनुचित कामनी कर  
हे, तो तुमकों ये ठै आगार रखाये जाते हैं, जिनसें तुमारा सम्यक्  
लंकित न होवेगा, सो ठै आगार कहते हैं.

१ प्रथम “रायानिउगेणं” सो राजा उस नगरका स्वामी जे क  
राजा कोइ अनुचित काम जोरावरीसें करावे, तो सम्यक्त्वमें दूषण

२ दूसरा “गणानिउगेणं” गणनाम ज्ञाति तथा पंचायत, वे कहे,  
यह काम तुम जरूर करो, नहीं तो ज्ञाति, तथा पंचायत तुमकों बड़ा  
देवेंगी, उस वखत जे कर वो काम करना पड़े, तो सम्यक्त्वमें अतिचार

३ तीसरा “बलानिउगेणं” सो बलवत चोर म्लेष्ठादि तिनोंके वश  
नेतें वो कोइ अपनी जोरावरीसें अनुचित काम करवावे, तोनी दूषण

४ चउथा “देवानिउगेणं” सो कोइ छुट देवता क्षेत्रपालादि व्यंत  
रीरमें आवेश करके अनुचित काम करावे, तो जंग नहीं. तथा को  
तो मरणांत छु स देवे. तब मनमें धैर्य न रहे, तब मरणांत कष्ट ल  
कोइ विरुद्ध काम करनां पड़े, तो सम्यक्त्वमें अतिचारजंग नहीं.

५ पांचमा “गुरुनिग्गहेणं” गुरु सो माता, पितादि उनके आग्रह  
ठ अनुचित करणां पड़े, तथा गुरु कहिये, धर्माचार्यादि, तथा जिनम  
सो कोइ अनार्य गुरुकों संकट देता होवे, तथा जिनमंदिरकों तोड़त  
वे, जिनप्रतिमाकों खसन फरता होवे, सो गुरु निग्रह है. तिनोंकी  
वास्ते कोइ अनुचित काम करणां पड़े, तो सम्यक्त्वमें दूषण नहीं.

६ छठा “बिज्जिकंतारेणं” वृत्ति जे दुष्काजादि आपदा-आ पड़े.  
आजीविकाके वास्ते कित्ती मिथ्यादृष्टिके अनुसार चजनां पड़े, तथा

विकारों वास्ते कोइ विरुद्ध आचरण करनां पड़े, तो दूषण नहीं. एक यह वै वस्तुके आगारोंकों वै ठंढी कहते हैं. तथा चार आगार और है, सो कहते हैं.

१ "अन्नध्ययानोगेण" अस्यार्थः कोइ कार्य अजाण पणे उपयोग गियां विना औरका और हो जावे, अरु जब याद आ जावे, तब वो का फेर न करे, यह प्रथम आगार.

२ "सहस्तागारेणं" सो अकस्मात् कोइ काम करे, अपणे मनमें जा जाता है, यह काम मैंनें नहीं करणां, परंतु योगोंकी चपलतासें तथा निमित्त बहुत अन्याससेंती जानता दूआनी विरुद्ध कार्य हो जावे, तो सम्यक्त्वमें जंग नहीं यह दूसरा आगार.

३ "महत्तरागारेणं" सो कोइ मोटा ज्ञान होता है, परंतु सम्यक्त्वमें दूषण जगता है. तथा कोइ मोटा ज्ञानीकी आज्ञासें कमवेशी करनां पड़े, तो यहनी आगार है यह तीसरा आगार

४ चौथा "सर्वसमाह्वित्तियागारेणं" सो सर्व समाधिव्यत्ययसें कोइ बड़ा सन्निपात्तादि रोगोंके विकृतसेंती बावरा हो जावे, तथा अतिवृद्ध हो जानसें स्मृतिजंग हो जावे, तथा रोगादिक आये मनमें आर्त्तध्यान हो जा नेसें, तथा सर्पादिके मंक्र मारणेसें, इत्यादि असमाधिमें यह आगार है. इसें सम्यक्त्व तथा व्रत जंग नहीं होता है, परंतु किसी मूर्खके कहे सुनें से आर्त्तध्यानमें प्राण त्यागने योग्य नहीं, कितनेक जिनमतके अनजिज्ञों का यह जो कहनां है, कि चाहो कुछ हो जावे, तोनी जो नियम लीया है, उसकों कनी तोडनां न चाहिये, परंतु यह कहना सर्वथा ठीक नहीं. क्यों कि जब पहिलांदि आगार रक्के गये, तो फेर व्रतजंग क्यों कर हू आ ? अरु जो आर्त्तध्यानमें मरजाते हैं, अरु आगार नहीं रखते हैं, वे जिनमार्गकी झैलीके अज्ञान है, इस वास्ते वै ठंढी, अरु चार आगार, सर्वे बारोही व्रतोमें जाननें, अरु साधुके सर्वप्रत्याख्यानोंमें अनशन पर्यंत य ही चार आगार जानने ॥ इति श्री तपगहोये गणेश्रीमणिविजय तद्विष्य मुनिश्री बुद्धिविजय तद्विष्य मुनि आत्माराम अनंदविजयविरचिते जैनतत्त्वादर्शो सम्यग्दर्शननिर्णयनामा सप्तमपरिच्छेद. संपूर्ण ॥ ७ ॥



॥ अथ अष्टम परिच्छेद प्रारंभः ॥

इस परिच्छेदमें चारित्रिका स्वरूप लिखते हैं. चारित्र धर्मके दो जो एक सर्वचारित्र, एक देशचारित्र, उसमें सर्वचारित्र धर्म तो सब होता है, तिसका स्वरूप गुरुतत्त्व परिच्छेदमें लिख आये है. तहाँमें जो जेनां अरु देश चारित्रके बारह जेद हैं, सो गृहस्थका धर्म है, सो व्रतोंका किंचित् स्वरूप लिखते हैं. तिनमें प्रथम स्थूलप्राणानि व्रतका स्वरूप लिखते है.

१ प्रथम प्राणातिपातविरमणव्रतके दो जेद है. एक इव्यप्राणानि दूसरा नावप्राणातिपात व्रत, तिनमें इव्य प्राणातिपात व्रत ऐमें है, कि जीवोंको अपणी आत्मा समान जान करके तिनके दश इव्यप्राणोंकी र करे, सो इव्यप्राणातिपात विरमणव्रत कहियें. ये व्यवहार द्यारूप है. त दूसरा नावप्राणातिपात. सो अपणा जीव कर्मके वज पडा दूआ इर पा है, अपणे जे नाव, प्राण, ज्ञान, दर्शन, चारित्रादिक, तिनका मिथ्यात्व क यादिक अशुद्ध प्रवर्तनसे प्रतिक्षण घात हो रही है, सो अपणे जीवों र्मगत्रुसँ बुडाने वास्ते उपाय करणा, सो उपाय यह है, क आत्मरम ता करे, परनाव रमणता त्यागे, शुद्धोपयोगमें प्रवर्त्त, कर्मके उदयमें व्यापक रहे, एक स्वभावमग्रता, यही समस्त कर्मगत्रुके उधेद करने। अमोघ शस्त्र है. एतावता सकज परनाव इष्टता दूर करी, स्वरूप सन्तु उपयोग ररके, तिसका नाम नावप्राणातिपात विरमणव्रत कहियें, इसी नाम नाव दयाहै. इहा स्थूल नाम मोटा दृष्टिगोचर हाले, चाले, अंसा व व्रत जीव तिसको संकल्प करके न हणुंगा.

इहां हिमा चार प्रकारकी है एक आकुटी, सो निषेध वस्तुको ठस दसँ करे, जसँ सपूर्ण फजका नडथा करना, आवककों निषेध है, क जितने जितने फज खानेमें ररके है, उन फजोंमेंसुंजी कित्ती फजका न था नहीं करना, अरु जो मनमें उस्ताद् धरके नडथा करे, तो आकुटी हिता होवे; दूसरी दण्डहिता, सो चित्तके उधरंगसे (उन्मत्तपणसे) मत गवे धरके दौड करे. जैसे गाडी घोडा प्रमुख होतते हैं. चन् आकुटी व

हिंसा है. तीसरी प्रमादहिंसा, सो आकुट्टी अर्थात् जानके काम जोगमें  
 अजिनापासं कामका जोस चढाने वास्ते त्रस जीवकी हिंसा करे,  
 हसी जीवकों मारके गोली माजुम प्रमुख बना करके खावे, सो आकुट्टी  
 प्रमादहिंसा है चौथी कल्पहिंसा, सो अपणा घरका काम काज, रंधण,  
 तिसणदि करते त्रस जीवकी हिंसा हो जावे, सो प्रमादहिंसा है. इन  
 आरो हिंसायोमें प्रथम हिंसा तो बिलकुल नहीं करणी, तिस वास्ते यहां  
 संकल्प करके आकुट्टी, तथा दर्ष्य करके त्रस जीव हणनेका त्याग करे,  
 जैसे यह कीडी जाती है, इसकों मै मारुं? जैसे संकल्प करके हणै, हणा  
 वे, तिसकों आकुट्टीसंकल्प कहते है. जैसे संकल्प कर के निरपराधो जी  
 वोंको विना कारणके न हणुं न हणावें, अरु सांसारिक आरंन रचनादि  
 करते, तथा पुत्रादिकके शरीरमें कीडे आदिक जीव उत्पन्न होवे, तदा औ  
 पधादि करते यत्नसं करे. तथा घोडा, बजद, प्रमुखको चावकादि मार  
 णां पडे उसका आगार रस्के, तथा पेटमें कमी, गंमोला, तथा पगमें नह  
 रवा, अर्थात् वाला, तथा हरस. चम, जू, प्रमुख अपणे शरीरमें उपजे,  
 तथा मित्रादिक स्वजनादिकके शरीरमें उपजे, तिसके उपचार करणेकी  
 जयणा रस्के, क्योंकि साधुकों तो त्रस, अरु स्यावर, सूक्ष्म, अरु वादर,  
 सर्व जीवोंकी हिंसा नवकोटी विशुद्ध प्रमादके योगोंसं सर्व हिंसाका त्या  
 ग हे, इस वास्ते साधुकों तो वीस विश्वा दया है, अरु गृहस्थसं तो स  
 वा विश्वा दया पल सकती है, तिसको स्वरूप लिखते है.

॥ गाथा छंद ॥ जीवा सुदुमा थूला, संकष्या आरंजा नवे डविहा ॥ सवरा  
 ह निरवराहा, साविस्का चव निरविस्का ॥ १ ॥ अर्थः—जगतमें जीव दो प्र  
 कारके है. एक थावर, दूसरा त्रस, तिनमें थावरोके दो जेद है. एक सू  
 क्ष्म, दूसरा वादर, तिनमें सूक्ष्मजीवोंकी तो हिंसा होतीही नहीं है, क्यों  
 की अति सूक्ष्म जीवोंके शरीरकां बाह्य शस्त्रका घाव नहीं लगता है, पर  
 तु इहां तो सूक्ष्म शब्द, थावर जीव, पृथ्वी, पाणी, अग्नि, पवन, वनस्प  
 तिरूप जो वादर पाच थावर है, तिनका वाचक है, अरु स्थूलजीव सो  
 क्षिप्रिय तीक्ष्णिय, चतुरिंक्षिय, पंचिक्षिय, जानना, इन दोनो जेदोंमें सर्व जीव  
 आ गये, तिन सर्वकी त्रिकरणगुणसे साधु, रक्षा करता है, तिस वास्ते  
 साधुके वीस विश्वा दया है, अरु श्रावकसं तो पाच थावरकी दया पलती

नहीं है, सचिन्त आहारादि करणसें अवश्य हिंसा होती है. इन  
 दश विश्वा वया दूर हो गई, शेष दश विश्वा रह गई, एतावता  
 जीवकी दया रहे, उस त्रस जीवकेजी दो जेठ हैं, एक संकल्पमें  
 दूसरा आरंजसें हननां, तिनमें आरंज हिंसाका श्रावकको त्याग नहीं  
 किंतु संकल्प हिंसाका त्याग है, अरु आरंज हिंसामें तो यत्न है,  
 त्याग नहीं है, क्योंकि आरंज हिंसा तो श्रावकसें होती है. इन  
 दश विश्वामेंमूं पांच विश्वा फेर जाता रह्या. एतावता संकल्प करके  
 जीवकी हिंसाका त्याग है, फेर इसकेजी दो जेठ हैं, एक सापराधी  
 सरा निरपराधी है, तिनमें जो निरपराधी जीव है, उसको नहीं हनना,  
 अरु सापराधी जीवकूं हननेकी जयणा है, जिस वास्ते सापराधी जीवकी  
 दया सदा सर्वथा श्रावकसें नहीं पलती है, क्योंकि घरमेंसें चोर चोरी  
 रके वस्तु लीये जाता है, तो बिना मारे कूटे ठोडता नहीं, तथा  
 की स्त्रीसें कोइ अन्य पुरुष अनाचार सेवता देखनेमें आवे, तिसको  
 णां पडे, तथा कोइ श्रावक, राजा है, तथा राजाका आदेशसेंती पुत्र  
 नेकों जावे, तव प्रथम तो श्रावक शस्त्र चलावे नहीं, परंतु जब शत्रु  
 चलावे मारणेकों आवे, तव तिसकों मारणां पडे, तथा सिद्धादि जनक  
 खानेकों आवे, तव उसकों मारणां पडे, तव संकल्पसेंजी हिंसाका त्याग  
 नहीं. इन वास्ते पांच विश्वामेंसेंजी अर्ध जाते रहे, पीठे थटाइ विश्वा दश  
 रह गई, मात्र निरपराधी त्रस जीव दृष्टिगोचर आवे, तिसकों न मारें? यह  
 नियम रहा, इसकेजी दो जेठ है. एक सापेह, दूसरा निरपेह, इनमेंती  
 पेह निरपराधी जीवकी श्रावकसें दया नहीं पलती है, क्योंकि श्रावक जब  
 थाप घोडा, घोडी, बैल, रथ, गाडी प्रमुखकी अस्वारी करके घोडादि  
 कों हांकता है, तव घोडे आदिककों चावकादि मारता है, वहा घोडे तथा  
 बैलादिकोंने कुछ इसका अपराध नहीं करा है, उसकी पीठ कपर तो यह  
 रहा है, अरु यह जानता नहीं कि इस विचारे जीवकी चलनेकी शक्ति है,  
 नहीं है? जब वे जीव हलवे चलते हैं, तथा नहीं चलते हैं, तब आदिकोंने  
 उदयसें उनकों गालीयां देता है, मारताजी है, यह निरपराधीकोंती  
 देता है, तथा अपणे शरीरमें, तथा थापणा पुत्र, पुत्री, न्याती, मोत  
 लकमें तथा कर्णादि अवयवमें तथा थपणे मुखके दांतमें कौडा पडे,

जोके दूर करणे वास्ते कीड़ाओंकी जगामें औपधि लगानी पडती है, अरु  
 जीवोंने श्रावकका कुछ अपराधनी नहीं करा है, क्योंकि वो विचारे  
 अपने कर्मोंके वशसें ऐसी योनिमें उत्पन्न हूये है, कुछ श्रावकका बुरा  
 करनेकी जावनासें उत्पन्न नहीं हूवे है, तो उनकी हिसानी श्रावकसें ल्या  
 नहीं जाती है, इस वास्ते फेर अर्ध जाता रहा. शेष सवा विश्वाकी द  
 या रह गइ, यह सवा विश्वा दयानी शुद्ध श्रावक होवे, सो पाल सकता  
 है, एतावता संकल्पसें निरपराध त्रस जीवोंको कारण विना हणुं नहीं,  
 यह प्रतिज्ञा जहां लगी अपनी शक्ति रहे, तहां लगी पावे, निर्ध्वसपणा न  
 करे, सदा मनमें यह जावना रखे, कि मत मेरेसें कोई जीव मर जाय ?  
 तथा घरमें आरंज करतेनी यत्न करे, तथा लकड़ी जलाने वास्ते लेवे,  
 तब सड़ी हुई न लेवे, परंतु आगेंको जिसमें जीव न पडे, ऐसी पक्री, स  
 की लकड़ी लेवे, और रसोईकी बखत लकड़ीको जटका कर जीव रहित  
 करके जलावे, तथा घी, तेल, मीठा प्रमुख रस नरी वस्तुके वासणका मुख  
 बांध कर यत्नसें राखे, उघाडा न रखे, तथा चूलेके उपर अरु पाणीके  
 स्थान उपर चड्वा अर्थात् ठत, उपर कपडा ताणे, तथा खानेको जो अ  
 न्न ल्यावे, सो नीजा हूया न ल्यावे, शुद्ध नवा अन्न खानेको ल्यावे, कदापि  
 एक वर्षके उपरांतका अन्न ल्यावे, तो जिसमें जीव न पडे होवे, सो ल्यावे,  
 तथा पाणीके ठानने वास्ते बहुत गाढा दृढ बखर रखे, एक प्रहर पीठें पाणी  
 को फेर ठान लेवे, जो जीव निकले, सो जीव जिस कूवेका पाणी होवे, उसी  
 में माल देवे, तथा वर्षा ऋतुमें बहुत जीवोंकी उत्पत्ति हो जाती है, तिस  
 वास्ते गाढी, रथकी अस्वारी न करे, क्योंकि जहा चक्र फिरता है, तहा  
 अक्षय्य जीवोंका विध्वंस होता है, हरिकाय. बहुबीजा फल, त्रस सं  
 युक्त फल, न खावे, तथा खाटमें माकड प्रमुख जीव पड जाते है, इस  
 वास्ते धूपमें न रखे, दूसरी खाट बंदल लेवे, तथा सड्या हूवा अन्न धू  
 पमें न रखे, जूठा पाणी, अन्नके संसर्गवाला मोरीमें न गरे, क्योंकि  
 मोरीमें बहुत जीव उत्पन्न हो जाते है, अरु मोरीके सड जानेसें घरमें  
 विमारी हो जाती है, तथा चैत्रवदि एकमसे ले कर पंचोवाला शाक,  
 आठ मास तक न खावे, क्योंकि पत्रशाकमें बहुत त्रस जीव उत्पन्न हो  
 जाते है, एक तो त्रस जीवोंकी हिसा होती है, अरु दूसरा उन त्रस जी

वोंके खानेसें अनेक रोग (विमारीयां) उत्पन्न हो जातीयां हैं; अथवा कालमें एक मास तथा उष्णकालमें बीस दिन, तथा वर्षा ऋतुमें पंद्रह दिनके उपरांतकी बनी हुई मिठाई (पकान्न) न खावे, क्योंकि उसमें स्थायर जीव उत्पन्न होते हैं, अरु खानेवालेको रोगोत्पत्तिनी हो जाती है, तथा बानी अन्न, रोटी प्रमुख न खावे, क्योंकि इनमें जीवोत्पत्ति होती है. अरु रोगनी हो जाता है, बुद्धि मंद हो जाती है, तथा घरमें बरणी अर्थात् चुहारी, कोमल शण प्रमुखकी रक्के, जिससें जीव न पैदा होता तथा स्नान, बहुत जलसें न करे, अरु रेतली जूमिकामें स्नान करे, तब मोटी परातमें बैठके स्नान करे, अरु स्नानका पाणी मैदानमें थोड़ा करकें गेर ढेवे, मोरी उपर बैठके स्नान न करे, तथा जहां पृथक् थोड़े पापवाला व्यापार मिले. तहां लग महापापकारी व्यापार ना आधिक न करे. तथा किसीका हक तोड़े नहीं, घरमें जूठे अन्नका पा दो घड़ी उपरात न रक्के, क्योंकि उसमें जीव उत्पन्न हो जाते हैं, जो वस्तु उठावे, तथा रक्के, तब पहिलां उस जगहको नेत्रोंसें देखके पूंज लेवे. पीठसे वस्तु रक्के, मोटी मोरीमें जल गेरे नहीं, तथा वत्ती जलावे, तो फानसादि यत्नसें जीवरक्षा करे, तथा जिस पाणी पीवे, वो पात्र, फेर जलमें जूठा न भयोवे, क्योंकि मुखकी लज्जनेसें जीव उत्पन्न होते हैं, अरु बहुतांकी जूठ खाने पीनेसें बुद्धि कमण हो जाती है, अरु केइरु रोग असें है कि जिस रोगीका जूठा खाने पीवे, उस रोगीका रोग, खाने पीनेवालेकों लग जाता है, सो रोग है कि कूट, हृय, रेजस, शीतला वगरे. इस वास्ते वस्तु जूठी न करे अरु बहुतांके साथ एकठा खावे नहीं, अरु मटकेसे पाणी काइते वा दंभीद्वार काठका चट्ट रक्के. इत्यादि शुद्ध व्यवहारमें प्रवृत्त, तो आवा दवा,सवा विश्वा होवे. इसी रीतीमें प्रथम व्रत आचरके शुद्ध है, इस व्रतके पांच अतिचार हैं, अर्थात् पांच कजंरु हैं, तिनकों बजं, सो त्रिसवत १ प्रथम वधअतिचार. सो कोंधके उदयमें, अरु वजके अस्तमयमें निर्देय हो कर गाय.बोढा,प्रमुखकों कूट.मारके चलावे,सो प्रथम अतिचार २ दूसरा वधअतिचार. सो गाय, वजद, वठया प्रसुरा जीवोंको न जवरा बंधनसें बांधे, वो जीव कठिन बंधनमें अति दुख पावे

रु कदापि अत्रिका नय दूआ तो जलदि बूट नहीं सकते हैं, तब मर जाते है, इस वास्ते कठिन बंधननी अतिचार है, इस हेतुसें जनावर को डीले बंधनसें बांधना चाहिये. अरु कोइ गुनेगार मनुष्य होवे, उस कोनी निर्दय हो कर गाढा बंध न बांधना चाहिये, यह दूसरा अतिचार है.

३ तीसरा उविच्छेद अतिचार है. सो वैज प्रमुखका कान, नाक, बिदा होवे, नय गेरे, खस्ती करे, यह तीसरा अतिचार है.

४ चउथा अतिचारारोपण अतिचार है, सो वैज प्रमुखके उपर जितना चार लादनेकी रीती है, तिस्सें अधिक चार लादे, तब अतिचारा आरोपण अतिचार होता है, श्रावकको तो सदा जिस वैज, रासज, गाडी प्रमुखमें चार लादते होवे, उससेंनी पांच सेर, दश सेर. चार कम लादना चाहिये, तो व्रत शुद्ध रहे. तिसमेनी जे कर कोइ जानवरकी चलनेकी शक्ति कम होवे, तब विवेकी होवे, सो तिस चारकोनी थोडा कर देवे, अरु जानवर डुर्बल होवे, तो तिसकी घास दाणेकी खबर लेवे, परंतु मनमें ऐसा विचार न करे कि, सर्व लोक जितना चार लादते है, तिन के बराबर मैनी लादता हूं, यह तो व्यवहार शुद्ध है. ऐसा न विचारे, अधिक बोज होवे, तो और जाडा कर लेवे, श्रावककोका यह व्यवहार है.

५ पांचमा अतिचार जात पाणीका व्यवच्छेद करना, सो जो बलद घोडेके खाने योग्य होवे, सो बंद कर देवे, अथवा उसमेंसूं कलुक काढ लेवे, अरु खानेका समय लंघा कर पीठे खानेको देवे, तो अतिचार लगे. तथा किसीकी आजीविका नौकरी बंद करे, वीनी इती अतिचारमे है. श्रावक तो दासी, दास, कुटुंब, चौपाये, बैलादि, इन सर्वके खाने पीनेकी खबर ले के पीठे आप नोजन करे अरु उपलक्षणसें हिंसाकारी मंत्र, तत्रादि किसीको करे, वेनी अतिचार जानने. यह पांच अतिचार, श्रावक जान तो लेवे, परंतु करे नही. यहा बारह व्रतोंके सर्व अतिचार जंग होने के संन्यासंनवकी विशेष चर्चा देखनी होवे, तब धर्मरत्न प्रकरणकी टीका श्रीदेवेन्द्रसरिक्त है, सो देख लेनी, इहां तो नि.केवल अतिचारही मै लिखूं गा ॥ इति श्रावक प्रथम व्रत संपूर्ण ॥

अथ दूसरा स्थूलमृपावाद विरमणव्रतका स्वरूप लिखते है. स्थूल नाम है, मोटेका उस मोटे जूतका विरमण (त्याग) करना, क्योंकि जूत

वोंके खानेसें अनेक रोग (विमारीयां) उत्पन्न हो जातीयां है, अरु कालमें एक मास तथा उष्णकालमें बीस दिन, तथा वर्षा ऋतुमें पंद्रह दिनके उपरांतकी बनी हुई मिठाई ( पक्वान्न ) न खावे, क्योंकि उसमें स्थायर जीव उत्पन्न होते हैं, अरु खानेवालेको रोगोत्पत्तिही हो जाती है, तथा वासी अन्न, रोटी प्रमुख न खावे, क्योंकि इनमें जीवोत्पत्ति होती है अरु रोगही हो जाता है, बुद्धि मंद हो जाती है, तथा घरमें बरणी अर्थात् बुहारी, कोमल शण प्रमुखकी रक्के, जिस्सें जीव नष्ट तथा स्नान, बहुत जलसें न करे, अरु रेंटली नूमिकामें स्नान करे, त मोटी परातमें बैठके स्नान करे, अरु स्नानका पाणी मैदानमें थोड़ा करकें गेर देवे, मोरी उपर बैठके स्नान न करे, तथा जहा पर्यं थोड़े पापवाला व्यापार मिले, तहां लग महापापकारी व्यापार नोकरे आदिक न करे. तथा किसीका हक तोड़े नहीं, घरमें जूते अन्नका पा दो घड़ी उपरात न रक्के, क्योंकि उसमें जीव उत्पन्न हो जाते हैं, त जो वस्तु उठावे, तथा रक्के, तब पहिलां उस जगकों नेत्रोंसें देख ले पूंज लेवे, पीठसें वस्तु रक्के, मोटी मोरीमें जल गेरे नहीं, तथा बी बत्ती जलावे, तो फानसादि यत्नसें जीवरक्षा करे, तथा जिस पात्र पाणी पीवे, वो पात्र, फेर जलमें जूठा न मवावे, क्योंकि मुखकी जा लगनेसें जीव उत्पन्न होते हैं, अरु बहुतांकी जूठ खाने पीनेसें बुद्धि क्रमण हो जाती है, अरु केइक रोग अैसें है कि जिस रोगीका जूठा खा पीवे, उस रोगीका रोग, खाने पीनेवालेकों लग जाता है, सो रोग है कि कुष्ठ, क्षय, रेजस. शीतला वगरे. इस वास्ते वस्तु जूठी न करे अरु बहुतांके साथ एकठा खावे नहीं, अरु मटकेसें पाणी काढने वा दंभीदार काठका चट्टू रक्के. इत्यादि शुद्ध व्यवहारमें प्रवर्त्ते, तो श्रावक दया, सवा विश्वा होवे, इसी रीतीसें प्रथम व्रत श्रावकके शुद्ध है, इन तके पाच अतिचार हैं, अर्थात् पाच कलंक है, तिनकों वर्जे, सो लिखते :

- १ प्रथम बंधअतिचार. सो क्रोधके उदयसें, अरु बलके अग्निमानो निर्दय हो कर गाय, घोडा, प्रमुखकों कूटे, मारके चलावे, सो प्रथम अतिचार
- २ दूसरा बंधअतिचार. सो गाय, बलट, वठडा प्रमुख जीवोंकों न न जवरा बंधनसें बाधे, वो जीव कठिन बंधनसें अति दुःख पाते।

कदापि अग्रिका जय हुआ तो जलदि बूट नहीं सकते हैं, तब मर जाते हैं, इस वास्ते कठिन बंधननी अतिचार है, इस हेतुसे जनावरों को ढीले बंधनसे बांधना चाहिये. अरु कोइ गुनेगार मनुष्य होवे, उसको निर्वय हो कर गाढा बंध न बांधना चाहिये, यह दूसरा अतिचार है.

३ तीसरा उविच्छेद अतिचार है. सो बैल प्रमुखका कान, नाक, निदा, नथ गेरे, खस्ती करे, यह तीसरा अतिचार है.

४ चउथा अतिचारारोपण अतिचार है, सो बैल प्रमुखके उपर जितना चार लादनेकी रीती है, तिससे अधिक चार लादे, तब अतिचारारोपण अतिचार होता है, श्रावकों तो सदा जिस बैल, रासन, गाडी प्रमुखमें चार लादते होवे, उससेनी पांच सेर, दश सेर. चार कम लादना चाहिये, तो ब्रत शुद्ध रहे. तिसमेंनी जे कर कोइ जानवरकी चलनेकी शक्ति कम होवे, तब विवेकी होवे, सो तिस चारकोंनी थोडा करेवे, अरु जानवर दुर्बल होवे, तो तिसकी घास दाणेकी खबर लेवे, परंतु मनमें ऐसा विचार न करे कि, सर्व लोक जितना चार लादते हैं, तिनके बराबर मैनी लादता हूं, यह तो व्यवहार शुद्ध है. ऐसा न विचारे, अधिक बोज होवे, तो और जाडा कर लेवे, श्रावकोंका यह व्यवहार है.

५ पांचमा अतिचार जात पाणीका व्यवच्छेद करना, सो जो बलद घोड़ेके खाने योग्य होवे, सो बंद कर देवे, अथवा उसमेंसूं कबुक काढ लेवे, अरु खानेका समय लंघा कर पीठे खानेको देवे, तो अतिचार लगे. तथा किसीकी आजीविका नौकरी बंद करे, बोजी इती अतिचारमें है. श्रावक तो दासी, दास, कुटुंब, चौपाये, बैलादि, इन सर्वके खाने पीनेकी खबर ले के पीठे आप नोजन करे अरु उपलक्षणसे हिसाकारी मंत्र, तंत्रादि किसीको करे, वेनी अतिचार जानने यह पांच अतिचार, श्रावक जान तो लेवे, परंतु करे नहीं. यहा बारह ब्रतोंके सर्व अतिचार जंग होनेके सजवासनवकी विशेष चर्चा देखनी होवे, तब धर्मरत्न प्रकरणकी टीका श्रीदेवेन्द्रसरिक्त है, सो देख लेनी, इहां तो नि.केवल अतिचारही मै लिखूंगा ॥ इति श्रावक प्रथम ब्रत संपूर्ण ॥

अथ दूसरा स्थूलमृपावाद विरमणब्रतका स्वरूप लिखते हैं. स्थूल नाम है. मोटेका उस मोटे फूतका विरमण (त्याग) करना, क्योंकि फूट



बोलनेसें जगत्में उसकी अप्रतीति हो जाती हैं, अपयश होता है, धर्मकी निंदा होती है, तथा अपने मतलब वास्ते जो कम वेश करके इसका जो त्याग, सो मृषावादविरमणव्रत कहते हैं, तिस मृषावादके दो चेट हैं, एक इव्यमृषावाद, दूसरा जावमृषावाद, तिनमें जो जानने तथा अज्ञान पणसें ऊँच बोले, सो इव्यमृषावाद है, तथा सर्व परनाक वस्तुकों अर्थात् पुजलादि जड वस्तुकों आत्मत्व बुद्धि करके अपना करके तथा राग, द्वेष, कृष्णादि लेख्यासें आगमविरुद्ध बोले, शास्त्रका सारा अर्थ कुयुक्तिसे नष्ट करे, उत्सूत्र बोले, उसको जावमृषावाद कहते हैं।

यह व्रत सर्वव्रतोंमें मोटा है, इसके पालनेमें बहुत श्रद्धाउपयोग और दुस्वारी चाहिये, क्यों कि प्रथमव्रतमें तो जीव मात्रके जाननेसें क्या पल सकती है, अरु दूसरोंकी वस्तुकों बिना दीये न लेनेसें अदत्तविरमण तीसरा व्रत पल जाता है, तथा स्त्री मात्रका संग त्यागनेसें चौथा व्रत पलता है, तथा नवविध परिग्रहके त्यागनेसें परिग्रहव्रतची पलजाता है, इसी तरें एकेक इव्यके जाननेसे यह चारो व्रत पाले जाते हैं, अरु मृषावाद विरमणव्रत तो जहां जगि पट्टइव्यकी गुणपर्यायसें तथा इव्य, द्वेष, काल, जावकी अन्धी तरसें पिठाण न होवे, सम्मति प्रमुख इव्याए योगके शास्त्र न पढे, बहुत निपुन ज्ञानवान् न होवे, तहां तलक पालने कठिन है, क्योंकि एक पर्यायमात्रची विरुद्ध जापण करनेसें यह व्रत चंग हो जाता है, इसी वास्तेही साधुओंको बहुत बोलणां शास्त्रमें निषेध कर है, अरु जे पूर्वोक्त चारों महाव्रतोंमेंसूं एक महाव्रत जेकर चंग हो जावे तब तो चारित्र चंग होवे, अरु नहीनी चंग होवे, क्योंकि जे कर एकद कुशील सेवे, तो सर्वथा चारित्र चंग होवे, शेष व्रतों खंमनसें देशचंग होवे परंतु सर्वथा चंग नहीं होवे, यह व्यवहार जाप्यमें कहा है परंतु जे का ज्ञान, दर्शन, चंग नहीं होवे, अरु जब मृषावादविरमणव्रत चंग होवे, तब तो ज्ञान, दर्शन, अरु चारित्र, यह तीनोंही जडा मूलम जाते रहते हैं, अरु मर करके उर्गतिमें जाता है, अनत संतारी उर्गन बोधी हो जाता है, इस वास्ते जे कर यह व्रत पालनां होवे, तो पट्टइव्य के गुण पर्याय जाननेमें अति उद्यम करे, जे कर बुद्धिकी मंदता होवे तब गीतार्थके कहने प्रमाण श्रद्धा प्ररूपणा करे, क्योंकि इव्यमृषावाद

त्यागी जीव तो पट् दर्शनमें ही हो सके है, परंतु जावमृपावादका भागी तो एक श्रीजिनैन्द्रदेवके मतमें ही मिलेगा, जो जीव श्रद्धारुचि हो धारेगा, सोइ होवेगा. अब इस मृपावादके पांच मोटे-नेट्ट हैं, सो आवककों अवश्य बर्जने चाहियें, सो कहते हैं.

१ प्रथम कन्यालीकजूर, सो अपणे मिलापीकी कन्या है, उसकी स काइ होने लगी होवे, तब कन्याके लेने वाले पूछे कि यह कन्या कैसी है ? तब वो मिलापीकी प्रीतिसें उस कन्यामें जो दूषण होवे, सो ठिपावे. गुण होवे, तोनी अधिक गुणवाली कह देवे, कि यह कन्या निर्दोष है, औ नी कुलवान्, लक्षणवान्, साक्षात् देवांगना समान तुमको मिलनी मुशकि न है, ऐसा कह देवे, अरु जे कर मिलापीके साथ वेष होवे, तदा वो कन्या जो निर्दोष लक्षणवती होवे, तोनी कहे कि इस कन्यामें अत्रे लक्ष्ण नहीं है, विडालनेत्री है, इसके साथ जो संबंध करेगा, वो पश्चात्ताप करेगा, ऐसे अणहोये दूषण बोल देवे, यह कन्यालीक जूर है प्रथम तो व्रतधारी आवक किसीकी सगाइ जगडेमें पडे नहीं, अरु जे कर आपणा संबंधी मित्रादिक होवे वो पूछे, तब यथार्थ कहे, कि नाइ! तुम आपणा निश्चय कर लो, क्योंकि जन्मपर्यंतका संबंध है, ऐसे कहे, परंतु जूर न बोले. यह कन्यालीकमें उपलक्षणसेंती सर्व दोषवालेका जूर न बोले.

२ दूसरा गवालीक जूर. सो सर्व चौपद जो हाथी, घोडा, बजद, गाय, बैस, प्रमुख संबंधी जूर न बोले.

३ तीसरा नूम्यालीक जूर. सो दूसरेकी धरतीको अपनी कहे, तथा औरकी नूमिकां औरकी कहे, तथा घर, हवेली, वाडी, बाग, (बगीचा) वृद्धादिक, संबंधी तथा सर्व परीग्रह संबंधीनी जूर न बोले.

४ चौथा आपणमोसाका जूर है. कोइ पुरुष आवकको प्रतीत वाला जान कर, उसके पास विना साक्षी तथा लिखत करे विना कोइ वस्तु रख गया है, फिर वो मांगने आवे, तब नामुकर जावे, कहे कि मैं तुम को जानताही नहीं, तुम कौन हो ? ऐसा जूर बोजके उसकी वस्तु रख लेवे, यहनी आवकनें नहीं करनां

५ पांचमा जूरी साक्षी चरनी. सो दो जणे आपसमें जगडते हैं, तिस में जूते पासों धन ले कर अथवा उसके मुहजाह जैसें जूरी गवाही देनी,

यहनी काम श्रावकने नहीं करनां, इस व्रतके पांच अतिचार श्रावक

१ प्रथम सहस्राचारव्यान अतिचार. सो विना विचारे किसीको देनां कि तूं व्यभिचारी है, फूग है, चोर है, इत्यादि कहनां, जे कर क तो किसीका प्रगट कोइ अवगुण देखे, तोनी अपणे मुखसँ न तो फेर कलंक देणां, वो तो महापाप है, सो कैसें करे ?

२ दूसरा सहस्राचारव्यान अतिचार है. सो केइ पुरुष एकांत कुठ मता करते है, उनकां देखकें कहे, कि तुम राजविरुद्ध मता हो, जैसें कह कर उनकी नंदा करे, राजदंड दिलावे, ए

३ तीसरा स्वदार मंत्रचेद अतिचार है, सो अपणी स्त्रीने कोइ बात अपणे पतिसँ कही है, वो बात लोकोमें प्रगट करे, उपलक्षणसँ प्रमुखकी कही बात प्रगट करे, क्योकि लज्जनीय बातके प्रगट होनेसँ, आदिक कूपा दिकमें मूब मरती है.

४ चौथा मृपाउपदेश अतिचार है. सो दूरालयोकां जूठी वस्तुके काने उपदेश करे, तथा विषय सेवनेके चौरास्ती आसन सिखावे, तथा दूतयोको ड खमें पडनेका उपदेश करे, तथा वीर्यपुष्ट होनेकी औषधि लावे, जिस्सें वो बहुत विषय सेवे, जिस्में विषय कषाय उत्पन्न होवे, उपदेश करे. यह सर्व मृपाउपदेशनामा चौथा अतिचार है.

५ पांचमा कूटलेखकरण अतिचार है. सो किसीके नामका जूठा पत्र वही बना लेनां, अगले अंकको तोडके और बना देनां, तथा अरु खुरच गेरना, जूठी मोहर ढाप बना लेनी, इत्यादिक कूट लेख अतिचार है, यह पांच अतिचार अरु पांच प्रकारका पूर्वोक्त जूठ, सो नरकादि गति के कारण जान कर श्रावक वर्जे ॥ इति दूसरा व्रत.

३ अथ तीसरा स्थूल अदत्तादानविरमणव्रत लिखते है प्रथम मोटी चोरी नीत फोडी कुंजल देकर अथवा एकलेकां, रस्तेमें ठल बल करके वग लेनां, जबर दस्तिसें किसीकी वस्तु खोस लेनी, नजर बचाके किसीकी वस्तु उठा लेनी, अरु कोइ वस्तु धर गया है, जब वो मांगने आवे तब नामुकर जावे, तथा हीरा, मोती, पन्ना प्रमुख जूठे सञ्जेका अटल बदन कर देवे, इत्यादि अदत्तादान अर्थात् चोरीका स्वरूप है. इसके करनेमें परलोकमें खोटी नरकादि गति प्राप्त होती है. अरु इस लोकमेंनी प्रगट

जावे, तो राजदंभ, अपयश, अप्रतीति होवे, इस वास्ते श्रावक अदत्तादानका त्याग करे, इस अदत्तादान व्रतके दो जेद है सो कहते है.

प्रथम इव्य अदत्तादानविरमण व्रत. सो पूर्वोक्त प्रकारसे दूसरांयोंकी वस्तु पढी विसरी लेवे नही, सो इव्य अदत्तादान विरमणव्रत जानना

दूसरा जावअदत्तादानविरमण व्रत. सो पर जो पुज्ज इव्य, तिसकी सो रचना. वर्ष, गंध, रस, स्पर्शादि रूप, तेवीस विषय, तथा आठ कर्म की वर्गीणा, यह सर्व पराइ वस्तु है, सो वस्तु तत्त्वज्ञानमें जीवकों अग्राह्य है, तिसकी जो उदय जाव करके बांठा करणी, सो जाव चोरी है. तिसकों जिनागमके सुननेसे त्यागनां, पुज्जानंदी पणा मिटानां, सो जाव अदत्तादानविरमणव्रत कहीये जो जो कर्मप्रकृतिका बंध मिटा है, सो जाव अदत्तविरमणव्रत कहिये. सामान्य प्रकारसे अदत्तके चार जेद है.

प्रथम किसीकी वस्तु, विना दीये ले लेनी, इसका नाम स्वामीअदत्त है. दूसरा सचित्त वस्तु अर्थात् जीववाली वस्तु फूल, फल, बीज, गुग्गा, त्र, कंद, मूलादिक, तथा बकरा, गाय, सुअरादिक, इनकों तोडे, ठेडे, नेडे, काटे, सो जीवअदत्त कहिये. क्योंकि फूलादि जीवोंने अपने शरीरके वेदने वेदनेकी आज्ञा नहिं दीनी है, जो तुम हमकों ठेदो, जेदो, इस वास्ते इसका नाम जीव अदत्त है. तीसरा जो वस्तु, तीर्थकर अर्हत्तने निषेध करी है, तिसका जो ग्रहण करणां, जैसे साधुकों अशुद्ध आहार लेनेका निषेध है, अरु श्रावककों अन्नदय वस्तु ग्रहण करणेका निषेध है, सो इन पूर्वोक्तकों ग्रहण करे, तो इसका नाम तीर्थकर अदत्त है. चौथा गुरु अदत्त. सो जैसे कोइ साधु शास्त्रोक्त निर्दोष आहार व्यवहार शुद्ध व्यावे, पीने उस आहारकों जो गुरुकी आज्ञा विना खावे, सो गुरु अदत्त है.

यह चारो अदत्त, संपूर्ण तो जैनका यतिही त्याग सकता है, गृहस्थसे तो एक स्वामी अदत्तही त्यागा जाता है, इस वास्ते इसीकी यहां मुख्यता है, तिस वास्ते पराइ वस्तु पूर्वोक्त प्रकारसे लेनी नही, जे कर ले लेवे, तो चोर नाम पडे, राजदंभ होवे, अपयश, अप्रतीति होवे, इस वास्ते न लेनी चाहिये. अरु जिस वस्तुकी बहुत मनाइ नही है, लेनेसे चोर नाम नही पडता है, तिसकी जयणा करे, अरु किसीकी गिरी पढी वस्तु मिल जावे, पीने जे कर जान जावे कि यह वस्तु अशुद्धकी है, तब तो उसकों

दे देवे, जे कर उस वस्तुके स्वामीकों न जाने, अरु अपना मन हृ  
तो लेवे नहीं, अरु कदाचित् बहुमोली वस्तु होवे, अरु मनदृढ न रहे  
उस वस्तुकों ले कर अपने पास कितनेक दिन रक्के, जे कर  
मालक कोइ जान पड़े, तो उसको दे देवे, जे कर उसका स्वामी  
मालम न पड़े, तो धर्मखातेमें उस धनकों लगा देवे, जेकर लोन अधिक हो  
तो अर्ध धर्ममें लगा देवे. तथा अपनी जमीनकूं खोदतां तिसमेंसूं  
निकल आवे, तो रखनेका आगार है, परंतु इसमेंनी अर्धा जाग  
चौथा हिस्सा धर्ममें लगावे, तथा दूसरेकी जगा मोलसे लीनी होवे,  
समेंसूं खोदतां जे कर धन निकल आवे, जे कर मनमें संतोष हो  
तब तो उस मकान वालेको वो धन दे देवे, जे कर लोन होवे, तब  
धर्ममें लगावे, अरु आधा अपने पास रक्के, तथा कोइ पुरुष अपने  
धन रक्क कर, पीठेंसें मर गया होवे, अरु उसका कोइ वारस न होवे  
तब श्रावक उस धनको जले पंचके आगें जाहर करे, जो कुछ पंच  
सो करे, कदापि देश कालकी विपमतासें उस धनकों जाहेर करते  
राजसंबंधी क्लेष उठता मालुम पड़े, कोइ दुष्ट राजा लोनके वगसें करे  
कि तेरे घरमें औरनी ऐसा धन है. इत्यादि होवे, तब तो मौन करके  
धनकों धर्मस्थानमें लगा देवे.

तथा घरकी चोरी सो यह है कि:- घरकी सर्व वस्तुओंका मालक मा  
पिता है, तिनके पूठे विना धन वस्त्रादि लेनेकी जयणा रक्के, अथवा जि  
के साथ प्रेम होवे, तथा जो संबंधी होवे, जिसके घरमें जाने आनेका  
खाने पीनेका व्यवहार होवे, उसके विना पूठे कोइ फलादि वस्तु खाने  
आवे, उसका आगार रक्के, परंतु जे कर उस वस्तुके खानेसे. मालकको  
मन दुःखे, तो न लेवे. इसी रीतीसें तीसरा अदत्तव्रत पावे. यह व्यवहा  
शुद्ध अदत्तादान विरमणव्रत है.

अरु निश्चयसेती तो जितना अबंधपरिणाम हुआ है, गुणस्थान  
की वृद्धि होनेसें बंध व्यवहैद हुआ, सो निश्चय अदत्तविरमणव्रत क  
हिये है. इस व्रतके पाच अतिचार है, उसकों वर्जे सो कहते है.

१ प्रथम तेनाहड अतिचार है, सो चोरकी चोराइ वस्तु तिसको तेनाहड  
कहते है. सो वस्तु न लेवे, एतावता चोरीकी वस्तु जाण कर के न लेवे,

कि जो चोरीकी वस्तु जानके लेता है, वो लेने वालाचो चोर है, जे जैनमतके शास्त्रोमें सात प्रकारके चोर लिखे है ॥ यदाह ॥ चौरश्चो पको मंत्री, नेदङ्गः क्राणकक्रयी ॥ अन्नदः स्थानदश्चैव, चौरः सप्तविधः वृत ॥ १ ॥ यह प्रथम अतिचार है.

२ दूसरा प्रयोगअतिचार. सो चोरी करने वलोको प्रेरणा करणी कि- रे! तुम चुप चाप निर्व्यापार आज कल क्यों वेठ रहे हो? जे कर तुमा पास खरची नही होवे, तो मै देता हूं, अरु तुमारी व्याइ दुइ वस्तु मै च देऊगा, तुम चोरी करणे वास्ते जाउ. इत्यादि वचनों करके चोरोंको प्रेरणा करणी, यह दूसरा अतिचार है.

३ तीसरा तत्प्रतिरूपकव्यवहार अतिचार. सो सरस वस्तुमें नीरस वस्तु मिला करके वेचे, जैसे केशरमें कशुंजादिमिला करके वेचे, घीमें ठा ग्रादि, हिंगमें गुंदादि, खोटी कस्तूरी खरी करके वेचे, अफयूनमें खोट मि लाने, पुराणा वस्त्र रंगा कर नवेके जाव वेचे, रूइको पाणीसें चिंजो कर वेचे, दूधमें पाणी मिलायके वेचे, इत्यादि करे, तो तीसरा अतिचार लगे.

४ चौथा राजविरुद्धगमन अतिचार है. सो अपने गामके वा देशके राजाने आज्ञा दीनी है, जो फलाणे गाममें जाणां नही. इत्यादि जो राजाकी आज्ञा है, उसका उल्लंघन करना, वैरी राजाके देशमें अपने रा जाके डुकुम बिना जानां, सो चौथा अतिचार है.

५ पाचमा खोटा तोला, मापा, करणका अतिचार है. सो कूट तोजां, मापा, करणा, कमती तोजसें तो देणां, अरु अधिक तोजसे ले लेणा, यह पांचमा अतिचार है यह पाचो अतिचारको वजे ॥ इति तृतीयव्रत संपूर्ण ॥

६ चौथा मैथुनसेवनेका त्याग करनां. तिसका नाम मैथुनत्याग व्रत कहते है. तिस मैथुनके दो जेद है, एक इव्यमैथुनत्याग, दूसरा जाव मैथु नत्याग, उसमें इव्यमैथुन तो परस्त्री तथा परपुरुषके साथ सगम करनां. सो पुरुष स्त्रीका त्याग करे. अरु स्त्री पुरुषका त्याग करे, रतिक्रीडा काम सेवनका त्याग करे तिसको इव्यव्रह्मचारी तथा व्यवहारव्रह्मचारी कहियें. दूसरा जाव मैथुन है. सो एक चेतन पुरुषके विषयविलास परपरिण तिरूप, तथा तृष्णा समता रूप, इत्यादि कुवासना, सो निश्चय परस्त्रीको मिजनां तिसके साथ लाल पाल कामविलास करना, सो जावमैथुन जान

नां तिसकों जिनवाणीके उपदेशसें, तथा गुरुकी हितशिद्दासें ज्ञान तब जातिहीन जान करकें अनागत कालमें महा दुःखदायी जान पूर्वकालमें इसकी संगतसें अनंत जन्म मरणका दुःख पाया, इस वल्ले इस विजातीय स्त्रीकों तजनां ठीक हे, अरु मेरी जो स्वजाति स्त्री पक्क जक्त, उत्तम, सुकुलिनी, समतारूप सुंदरी, तिसका संग करनां ठीक हे, अरु विजाव परिणतिरूप परस्त्रीनें मेरी सर्वविनूति हर लीनी हे, तो अरु सजुरुकी सहायसेंती ए इष्ट परिणामरूप जो स्त्री, संग लगी हुई थी, तिसका थोडा थोडा निग्रह करूं, त्यागनेका नाव आदरूं, जिस्सें व घटरूप घरमें आ जावे, तथा स्वरूप तेजकी वृद्धि होवे, ऐसी मज पा करकें परपरिणतिमें मग्नता ल्यागे, औ कर्मके उदयमें होवे, शुद्ध चेतनाका संगी होवे, सो नाव मैथुनका त्यागी कहीये. इव्यमैथुनके त्यागी तो पट् दर्शनमें मिल सक्ते है, परतु नावमैथुनका त्यागी तो श्रीजिनवाणी सुननेसे जेदज्ञान जब घटमे प्रगट होता है तब नवपरिणतिसें सहज उदासीन रूप नाव मैथुनका त्यागी जैनमत मेंही होता है इहां स्थूल परस्त्रीगमन व्रत. सो परस्त्रीका त्याग करना, परपुरुषकी विवाहिता स्त्री, तथा परकी रस्की हुई स्त्री, तिसके साथ अनाचार न सेवनां, ऐसा जो प्रत्याख्यान करनां, सो परदारगमन विरमणव्रत है. अरु जो अपणी स्त्री है, तिसमें संतोष करु, ऐसा जो व्रत धारण करे, तिसकों स्वदारसंतोष व्रत कहिये.

देवागना तथा तिर्यंचणी इनके साथ तो कायासें मैथुन सेवनका निषेध है, तथा वर्त्तमान स्त्री वर्जके और स्त्रीसे विवाह न करे, तथा दिनमें अपणी स्त्रीतेजी संजोग न करे, क्योंकि दिनसंजोगसें जो संतान उत्पन्न होता है, सो निर्वल होता है, जे कर कामाधिक होवे, तो दिनकीजी मर्यादा कर लेवे, इसी तरे स्त्रीजी पर पुरुषका त्याग करे, इसी रीतिसें अथा व्रत पाले, इस व्रतके पांच अतिचार है, उसकों वर्जे, सो जिखते है

१ प्रथम अपरिगृहीतागमन अतिचार. सो विना विवाही स्त्री (कुमारी) तथा विधवा इनको अपरिगृहीता कहते है, क्योंकि इनका कोइ जतन नहीं है, जे कर कोइ अल्पमति विपयानिजापी मनमें विचारे, कि मैनें तो परस्त्रीका त्याग करा है, अरु एतो किसीकीजी स्त्रीयां नहीं है, इनके

साथ विषय सेवनेसें मेरा व्रतचंग नहीं होवेगा ? ऐसा विचार करके कुमा  
री तथा विधवा स्त्रीके साथ नोग विज्ञास करे, तो प्रथम अतिचार लग  
जावे, तथा स्त्रीनी व्रत धारक हो कर कुमारे पुरुषसें तथा रंभे पुरुषसें व्य  
तिचार सेवे, तब तिस स्त्रीकोंनी अतिचार लगे.

२ दूसरा इत्तरपरिगृहीतागमन अतिचार है. तिसका स्वरूप कहते  
है. इत्तर नाम थोडे कालका है, सो थोडेसे काल वास्ते किसी पुरुषने  
धन स्वरच के वेश्यादिकोंको अपनी करके रक्की है, इहां कोइ अज्ञानके  
उदयसें मनमें ऐसा विचार करे कि मेरे तो परस्त्रीका त्याग है, अरु  
इस वेश्यादिकों तो मैने अपनी स्त्री बना करके थोडेसे काल वास्ते  
रक्की है, तो इसके साथ विषय सेवनेसें मेरा व्रतचंग नहीं होवेगा ? ऐसे  
अज्ञानके विचारसें उसके साथ संगम (विषय सेवन) करे, तो दूसरा अ  
तिचार लगे. अरु स्त्रीकोंनी जब अपनी सौकणकी वारीके दिनमें अप  
ने नतीरसें विषय सेवे, वो अपनी मनमें ऐसा विचार करे, कि अपनी  
पतिके साथ विषय सेवनेसें, मेरा व्रतचंग नहीं होवेगा, क्यों कि मैने तो  
परपुरुषका त्याग करा है ? यह दूसरा अतिचार. इन पूर्वोक्त दोनों अति  
चारोंको जो श्रावक जानता है, कि ये श्रावकों करने योग्य नहीं अरु  
फेर जे कर करे, तो व्रतचंग होवे, परंतु अतिचार नहीं.

३ तीसरा अनंगक्रीडा अतिचार है. सो अनंग नाम कामका है, तिस  
काम कंदर्पको जागृत करना, श्यालिंगन, चुंबन प्रमुख करना, नेत्रोंका हा  
व, नाव, कटाह, हास्य, उष्ण, मस्करी प्रमुख परस्त्रीसे करे, सो दिलमें  
शोचता है कि मैने तो परस्पर एक शय्या उपरि विषय सेवनेका त्याग क  
रा है, परंतु पूर्वोक्त अनंगक्रीडा तो नहीं त्यागी है, परंतु वो मूढमति च  
ह नहीं जानता है, कि ऐसा काम करने वालेका व्रत कदापि न रहेगा,  
अरु मनसें उस जीवने माहापाप उपार्जन कर लीया, निश्चय नयके मत  
से उसका व्रतचंगनी हो गया, तथा अपनी स्त्रीसे चौरासी आसनोसें नो  
ग करे, तथा पंद्रा तिथिके हिसावसे स्त्रीके अंगमर्दनादि कर के काम जगा  
वे, तथा परम कामानिलापी होनेसें जब अपनी स्त्रीका नोग न मिले, तब  
हस्तकर्म करे, स्त्रीनी काम व्याप्त हो कर गुह्यस्थानमें कोइ वस्तु सचार  
करके हस्तकर्म करे, तब स्त्रीकोंनी अतिचार है, तिस वास्ते श्रावकों जे



सैं तैसैं करकें कामेडा घटानी चाहियें. क्यों कि विषयके घटानेसैं अरु  
 र्यके रखनेसैं बुद्धि, आरोग्य, दीर्घायु, बल प्रमुखकी वृद्धि होती है, अरु  
 अधिक काम सेवनेसैं मन मलिन, पापवृद्धि, राजयक्षा, (कृप) घम, मूढा,  
 म, स्वेदादि रोग उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते श्रावककों अत्यंत विषय  
 होनां न चाहियें. केवल जिस्सैं वेदविकार शांत हो जावें, तितनांही  
 करनां चाहियें. अरु जब काम उत्पन्न होवे, तब स्त्री संबंधि काम  
 की जगाकों जाजरू समान मलमूत्रसैं नरी हुई विचारे, मलीन वस्तु है,  
 खमें डुर्गंध नरी है, नाकमें सिंघाणकी डुर्गंध है, कानोंमें मैल है, पेटमें  
 घा, मूत्र, नरा है, नसायोंमें खाये पीयेका रस, रुधिर, हाड, चाम, चर्म,  
 वाय, पित्त, कफ. नरा है, महा अशुचिका पूतला है, जिस अंगमें  
 लेवेगा, उहां महा डुर्गंध उठलती है, अनित्य अशाश्वत है, सडन, पतन,  
 विध्वंसन हो जाना, यह इसका स्वभाव है, तो फेर हे मूढ जीव! स्त्री  
 देखकर क्यों कामाकुल होता है? अिसैं विचारसे कामको शांत करे,  
 तीसरा अतिचार है.

४ चौथा परविवाह करण अतिचार है. सो अपणी पुत्र पुत्री विना  
 के वास्ते, पुण्यके वास्ते, और लोकोंके विवाह करावे, सो चौथा अतिचार

५ पांचमा तीव्रानुराग अतिचार है. सो जे पुरुष स्त्री कपर तीव्र अति  
 लाष धरे, पराइ स्त्रीकों देख कर मनमें बहुत चाहना धरे, उस स्त्रीके दसे  
 विना कृणमात्र रहि न सके, चलता, फिरतां, उस स्त्रीहीमें चित रहै, अथवा  
 वा देहमें कामकी वृद्धि वास्ते अफयून, माजूम, नांग, हरताल, पारा  
 मुख खावे, तीव्रकामसैं प्रीति करे, तब पांचमा अतिचार लगे, अथवा  
 स्त्रीकी कामकी वृद्धि करने वास्ते अनेक उपाय करे, बहुत हाव नाव वि  
 पय लाजसा करे, तब पांचमा अतिचार लगे, यह पांच अतिचार श्रावक  
 जाने, परंतु आदरे नहीं, इन पांचो अतिचारोंका विशेष स्वरूप धर्माल  
 प्रकरणकी टीकासैं जानना ॥ इति चतुर्थव्रत समाप्तं ॥

५ अथ पांचमा स्थूलपरिग्रहपरिमाण व्रत लिखते है, परिग्रहके दो  
 नेट है, एक तो बाह्यपरिग्रह अधिकरण रूप, सो इव्यपरिग्रह नय प्रस  
 रका है. दूसरा नाव परिग्रह, सो चौदह अन्तराग्रहिरूप जो परजावस  
 ग्रहण समस्त प्रदेश सहित सरुपाई पणे बंध, सो नावपरिग्रह है, अरु

शास्त्रमें मूर्खाकों मुख्य वृत्ति करके जावपरिग्रह कहा है, तिनमेंसूँ चौदह प्रकारका जो अन्त्यंतर परिग्रह है, सो लिखते हैं. १ हास्य, २ रति, ३ अरति, ४ जंय, ५ शोक, ६ जुगुप्सा, ७ क्रोध, ८ मान, ९ माया, १० लोभ, ११ स्त्रीवेद, १२ पुरुषवेद, १३ नपुंसकवेद, १४ मिथ्यात्व. यह चौदह प्रकारकी अभ्यंतर ग्रंथि है, इहां संसारमें इस जीवकों केवल अविरतिके बलसें इहा, आकाश समान अन्नंती है. कदापि नरणमें आती नहीं, अविरतिके उदयसें इहा अरु इहासेंती कर्मबंधनमें पडा दूआ चार गतिमें प्रमाण करता है. सो कोई पुण्यके उदयसें मनुष्य नवादि सकल सामग्रीका योग पा कर, सद्गुरुकी संगतिसें श्रीजिनवाणी सुणी, तव चेतना जाग्रत नई, तव विचार करा कि अहो में समस्त परजावसें अन्य हूं! अबंधि, अवेद्य, अज्ञेय, अदृश्यधर्मी हूं! परंतु इहाके वश हो कर समस्त वेदन, जे मन परिभ्रमणादि दुःखोंको नोगने वाला परधर्मी बन रह्या हूं! ईस वास्ते समस्त परजावका मूल जो इहा है. तिसको दूर करे. तव समस्त परजाव यागरूप चारित्र आदरे, साधुवृत्ति अंगी कार करे. अरु जिस जीवके इहा सबल होनेसें एक साथ सर्व परिग्रह त्यागनेका सामर्थ्य न होवे, अरु दो सें मरे, तव गृहस्थ, धर्मइहा परिमाण रूप व्रत आदरे, सो इहा परिमाण व्रत नव प्रकारका है, सो कहते हैं:-

१ प्रथम धन इहा परिमाण व्रत है. सो धन चार प्रकारका है. प्रथम अणिम धन, सो नालिकेर प्रमुख, जो गिणतीसें वेचनेमें आवे. दूसरा धरि र धन, सो गुड प्रमुख जो तोलके वेचनेमें आवे. तीसरा परिच्छेद्य धन, सो तोना, रूपा, जवाहिर प्रमुख जो परिक्षासें वेचनेमें आवे. चौथा मेयधन, सो रूपादि वस्तु जो मापके वेचनेमें आवे, यह चार प्रकारका धन है. इसका जो परिमाण करे, सो धनपरिमाण व्रत है

२ दूसरा धान्य परिमाण व्रत सो धान्य चौबीस प्रकारका है १ शालि, २ गेहूं, ३ जुवार, ४ बाजरी, ५ जव, ६ मूंग, ७ मुठ, ८ उडद, ९ तूंट, १० गोडा, ११ मटर, १२ तूअर, १३ किसारी, १४ कोइवा, १५ कंगणी, १६ चणा, १७ चाल, १८ मेथी, १९ कुलथ, २० मखूर. २१ तिल. २२ मूंदवा, २३ कूरी, २४ वरटी. यह खाने वास्ते तथा व्यवहार वास्ते उपयो गी है. तथा १ धनीया, २ जीमी, ३ सोवा, ४ अजवयन, ५ जीरा. यह

नी धान्यकी जातिमें है, परंतु ये औषध्यादिकमें काम आते हैं, तथा सामक, २ मणकी, ३ चुरट, ४ चेकरीया, ये मारवाड देशमें प्रतिष्ठ औरनी जो अडक धान्य, विना बोयां जगता है, जिसको लोक काल में खाते है, यह सर्व जातिका अन्न, तिसका परिमाण करे.

३ तीसरा क्षेत्रपरिग्रह व्रत है. सो बोनका खेत, तथा बाग (बगीचा) जाननां, इस क्षेत्रके तीन चेद है, उसमें एक क्षेत्र तो ऐसा कि जो वर्षाके पाणीसें होता है, दूसरा कूपादिकके जल सींचनेसें होता तीसरा तो यह पूर्वोक्त दोनो प्रकारमें होता है, इनका परिमाण करे.

४ चौथा वास्तुक परिमाण व्रत है. सो घर, हाट, हवेली प्रमुख केनी तीन चेद है. एक तो चूंहरा प्रमुख, दूसरा उच्चित सो उची हवेली क मजली, दो मजली, तीन मजली, यावत् सातचूमि तक, तीसरी चूंहरा प्रमुख, उपर एक दो आदि मजल, तिसका परिमाण करे.

५ पांचमारूपपरिग्रहपरिमाण व्रत है. सो सिके विनाका काचा तिसका तोलका परिमाण करे.

६ षष्ठा सुवर्णपरिग्रह परिमाण व्रत है. सो विना सिकेका सोना, सके तोलका परिमाण करे.

७ सातमा कूपद परिग्रह परिमाण व्रत है. सो त्रांवा, पीतल, रांग, कांसीसा, चरत, लोहाप्रमुख सर्व धातुके वर्तनोंके तोलका परिमाण करे.

८ आठमा छुपद परिग्रहपरिमाण व्रत है. सो दासी, दास, अथ पगारदार गुमास्ता प्रमुख रखणां, तिनकी गणतीका परिमाण करे.

९ नवमा चौपदपरिग्रह परिमाण व्रत है. सो गाय, महीषी, घोडा, लड, बकरी, चैम प्रमुख, तिनकी गणतीका परिमाण करे.

अथ अपनी षष्ठा परिमाणसें परिग्रह किस तरें ररके? सो कहते रूपा घडा दूआ अरु अनघडा तथा नगद रूपक इतना ररकुं, तथा सोना घडा अनघडा असर्फी तथा जवाहीर इतना ररकुं, इस रीतिसें परिमाण करे, उपरात पुण्योदयसे धन बधे, तो धर्मस्थानमें लगावे. तथा वर्ष दि मे इतने इस जातके वस्त्र पहिरूं, तथा एक वर्षमें इतना अन्न में घर च वास्ते ररकुं, अरु इतना वणिज वास्ते ररकुं, तिसका स्वरूप सातमें तमे लिखेंगे. तथा क्षेत्रपरिमाणमे क्षेत्र, वाडी, बगीचा प्रमुख सर्व मित्र

इतने विगवे धरती रखुंगा, तथा घर, खिडकी बंध, अरु खुली डकान, बेला, बखारी, तथा परदेश संबंधी डकानकी जयणा, तथा इतना चाडे ए वास्ते घरकी रखनेकी जयणा. तथा चाडे लीये दूये घरकों समराव की जयणा, तथा कुटुंब संबंधि घर बनानेमें उपदेशकी जयणा, तथा पण संबंधी अरु गुमास्ता परदेश गया होवे, पीठेसैं तिसके घर प्रमुख मरावणेकी जयणा, तथा आजीविकाके वास्ते किसीकी चाकरी करनी प, तब उसके घर प्रमुखके समरावणेकी जयणा, तथा कुपदपरिमाणमें गांवा, पीतल, राग, लोहखंम, कांसी, जरत, सर्व मिलीके धातुके वर्त्तन, त या और घाट, तथा बूटा, इतने मण रखणेकी जयणा, तथा डुपद परिमा णमें श्रावकने दासी, दासकों मोल दे कर नहीं लेनां, परंतु पगारवाले (नौकर) गिणतीमें इतने रखने चाहियें, तथा गुमास्ता रखनेकी जयणा, तथा चौपद परिमाणमें गाय, जैस, बकरी प्रमुख रखनेका परिमाण करे. अब यह इहा परिमाण व्रतके पांच अतिचार है, सो लिखते है.

१ प्रथम तो धनपरिमाण अतिक्रम अतिचार. इस रीतिसैं होता है. सो तब इहा परिमाणसैं धन अधिक हो जावे, तब लोचसंज्ञासैं दिलमें ऐ सा मनसुवा करे कि जो मेरा पुत्र बडा हो गया है, तिसकोंनी धन चा हयें है, अरु मैंनेनी पुत्रकों धन देनाही है? ऐसा कुविकल्प करकें पुत्रके नामके पांच हजारदि रूपक जूदे रखे, तथा अन्न प्रमुख अणो नियम परिमाण घरमें पडा है, तब अधिक रखनेकी इहासैं दूसरायोके घरमें रख गोडे, जब चाहियें तब ले आवे, अरु अज्ञानसे ऐसा विचारे कि मैंने सो इहा परिमाणसैं अधिक अपने घरमें रखनेका नियम करा है, अरु य ह तो दूसराके घरमें रक्का है, इस वास्ते मेरे नियममें दूपण नहीं, तथा त लेनेके वखतमें कच्चे मणके हिसाबसैं अन्न रक्का है, अरु जब परदे गांतरमें गया, तब पके मणका उहा तोल जान कर अन्ननी पके मणके हेसाबसे रक्के, ऐसे विचार वालेकों प्रथम अतिचार लगता है

२ दूसरा क्षेत्रपरिमाण अतिक्रम अतिचार है. सो जब इहा परिमाणसैंती प्रथिक घर दाटादिक हो जावे, तब विचली नित तोडके दो तिनादि घरा देकोंका एक घरादि बनावे, तथा दो तीनादि खेतोंकी विचली मौली तोडकें एक बना लेवे, अरु मनमें यह विचारे कि मैंने तो गिणती रक्की है, सो तो

मेरा नियम अखंडित है, बड़ा कर लेनेमें क्या दूषण है? ऐसे तो दूसरा अतिचार लगे.

३ तीसरा रूपसुवर्णप्रमाण अतिक्रम अतिचार है. सो जब माणसेंती अधिक होवे, तब अपनी स्त्रीके घेणे नारी तोलके तथा अपने आनरण तोलमें नारी बनवावे, यह तीसरा अतिचार

४ चौथा कुपदपरिमाण अतिक्रम अतिचार है. सो त्रांवा, कांसी प्रमुखके वर्त्तन राठ वगैरें जो गिणतीमें ररके है, सो जब पदा होवे, तब गिणतीमे तो उतनेही ररके, परंतु तोलमें वजनदार तिगुणे बनवावे, अरु मनमें ऐसा विचारे जो मेरा व्रत तो अखंडित क्योंकि वर्त्तनोकी गिणती तो मेरे तितनीही है? तथा कचे तोल ररके थे, फेर पके तोल परिमाण ररके लेवे, सो चौथा अतिचार है

५ पांचमा द्विपदचतुष्पद प्रमाणातिक्रम अतिचार है. सो दात, घोडा, गाय, बलद प्रमुख अपने परिमाणसें जब अधिक हो जावे, वेच गेरे, अथवा गर्न ग्रहण अवेरी करावे, जितने गिणतीमें हैं, प्रथम वेचके फेर गर्न ग्रहण करावे, अथवा जाइ पुत्रके नामके तो पांचमा अतिचार लगता है. इति पंचमव्रत संपूर्ण ॥

६-७-८ अथ उष्ण, सांतमा, अरु आठमा, इन तीनों व्रतोंको कहते है. तिनमे उष्ण व्रतमें दिशांका विचार है, इस वास्ते इसका द्विकपरिमाण व्रत कहते हैं. तिसका स्वरूप लिखते है.

पूर्व जो पांच अणुव्रत कहे है. तिनको इन तीनों व्रतों करके गुणवृद्धि होती है, इस वास्ते इनका नाम गुणव्रत है, क्योंकि जब दिशि परिमाणव्रत कीया, तब तिस क्षेत्रसें बाहिरले सर्व जीवोंको अनयदा दीया, यह पहिले प्राणातिपात व्रतको गुण पुष्टि नइ, तथा बाहिर जीवोंके साथ ऊठ बोलना मिट गया, यह मृपावाद व्रतको पुष्टि नइ तथा बाहिरले क्षेत्रकी वस्तुकी चोरीका त्याग हुआ, यह तीसरे व्रतको पुष्टि नइ, तथा बाहिरले क्षेत्रकी स्त्रियोंके साथ मैथुन सेचनेका त्याग हुआ यह चौथे व्रतकी पुष्टि नइ, तथा नियम बाहिरके क्षेत्रमे क्रय विक्रय निषेध नया, यह पांचमे व्रतकी पुष्टि नइ, इस वास्ते पांचो अणुव्रतोंके यह तीन व्रत गुणकारी है.

तहां दिशिप्रमाण व्रत. सो चारों दिशि, तथा चारों विदिशि, तथा ऊर्ध्व, अरु अधो, इन दश दिशिका परिमाण करे, तिसके दो जेद हैं. एक व्यवहारसें, सो अपनी कायासें दशों दिशिमें जानेका, तथा मनुष्य जानेका, तथा व्यापार करनेका परिमाण करे, उसको व्यवहार दिशि परिमाण व्रत कहियें.

दूसरा निश्चयसें. सो जो कुछ नरकादि गतिमें गमन है, सो सर्व कर्मका प्रम है. जिसके वश पडके यह जीव चारों गतिमें नटकता है, परानुयायी चेतना हो रही है, इसी वास्ते जीव परजगवानुसारी गतित्रमण करता है, परंतु जीव तो शुद्ध चैतन्य, अगतिस्वभाव, तथा निश्चल स्वभाव है, असा श्री जिनवाणीके उपदेशसें समझके चेतना शुद्धस्वरूपानुयायी होवे, तब अपना अगति स्वभाव जानिके सर्व क्षेत्रसें उदास रहे, समस्त क्षेत्रसें अप्रतिबंधक जावसें वने, सो निश्चयसे दिक्परिमाण व्रत कहियें. यह दशों दिशिका परिमाण करे, तिसके दो जेद है.

प्रथम जलमार्ग. सो ऊहाज नावों करके इतने योजन अमुक दिशिमें अमुक बंदर, तथा अमुक द्वीप तक जाके, जे कर पवन, तथा वर्षातके वशसें और दूर किसी बंदरमें ले जावे तो आगार, अर्थात् व्रतजंग न होवे, प्रथवा अजाण पणे कर के नून चूकसें किसी बंदरमे चला जाके, उसकानी आगार है.

दूसरा स्थलका मार्ग. सो जिस जिस दिशिमें जितने जितने योजन तक जानेका परिमाण करा है, तहां तक जाणेकी जयणा, जे कर चोर, च्छेड, कडके नियम क्षेत्रसें बाहिर ले जावे, तिसका आगार है, तथा ऊर्ध्व दिशिमें बारा कोश तक जाणेकी जयणा रक्के, तथा अधोदिशिमें आठ कोश तक जाणेकी जयणा, परंतु जो उंचा चढके फेर नीचा उतरे, वो अधोदिशिमें नहीं, तथा जितने क्षेत्रका परिमाण करा है, तिस्सें बाहिरका कोश गण वाले पुरुषका पत्र आवे. सो बाच कर उत्तका उत्तर जिननां पडे. तिसका आगार है, परंतु मै अपनी तरफसे बिना कारण पत्र सुख नहीं लिखुंगा, तथा परदेशकी विकथा सुननेका आगार, इत व्रतके विच थतिचार है सो कहते हैं.

१ प्रथम ऊर्ध्वदिशापरिमाणातिक्रम अतिचार है, सो अवा वे सुरतिसें अधिक चला जावे, तो प्रथम अतिचार।

२ दूसरा अधोदिशिपरिमाणातिक्रम अतिचार, पूर्ववत्।

३ तीसरा तिर्थादिशिपरिमाणातिक्रम अतिचार उपर वत्, जे म जंगके नयसैं गुमास्ता नेजे, तोनी अतिचार लगे।

४ चौथा एक दिशिमें सौ योजन रक्के हैं, अरु एक दिशिमें योजन रक्के हैं, पीठें जब एकही दिशिमें मोड़सौ योजन जाना पड़े, दूसरी तरफके पञ्चास योजननी उसी तरफ जोड़ लेवे, अरु ऐसा विचारे कि मेरे नियमकेही पञ्चास योजन हैं, इस मेरे व्रतका जंग नहीं।

५ पांचमा स्मृतिअंतर्धान अतिचार, सो अपने नियमके पांच नूल जावे, क्या जाने पूर्वदिशिके सौ योजन रक्के हैं? कि पञ्चास रक्के है? इत्यादि ऐसा संशयके दूए फेर पञ्चास योजनसैं अधिक तो पांचमा अतिचार लग जावे, यह पांच अतिचार वज्रें ॥ ५४५ ॥

७ अथ सातमा नोगोपनोग व्रतका स्वरूप लिखते है, यह दूसरा व्रत है, इस व्रतके अगीकार करणसैं सचित वस्तु खानेका त्याग करे, तथा परिमाण करे, तथा जिसमे बहुत हिसा होवे, ऐसा व्यापार करे, तथा जिस काममें अवश्य हिसा बहुत करनी पड़े, तिसका करे, अचक्षय त्यागे, अरु चौदह नियमनी इस व्रतमें गिणे जाते हैं, वास्ते यह व्रत पूर्वोक्त पाचही अणुव्रतोंको गुणकारी है, इस दो नेद है, सो कहते हैं।

१ प्रथम व्यवहार सो चक्षयानक्षयका ज्ञान करी त्यागे, दूसरा आश्रय संवरका ज्ञान कर के खान पानादिक जो इच्छि सुखका कारण है, उसमें अपनी शक्ति प्रमाण बहुत आरज मोड़के अल्पारंजी होना, सो व्यवहार नोगोपनोगविरमण व्रत है।

२ दूसरा निश्चयसे, तां श्रीजिनवाणी गुण कर, वस्तु तत्त्वस्वरूप जग कर विचारे कि जां जगत्में परवस्तु है, सो सर्व-हेय है, इस वास्ते तत्त्व वेत्ता पुरुष परवस्तुको न खावे, न अपने पास रक्के, तत्र गुण व्रत न जावे धारके परम शक्तिरूप हो कर जो वस्तु सड़े, पड़े, गिरे, जाती रहे

परवस्तु जान कर ऐसा विचार करे कि यह पुञ्जकी पर्याय है, वि जगत्की जूठ है, ऐसी वस्तुका नोगोपनोग करणां, सो तत्त्ववेत्ताकों चित नहीं, ऐसे ज्ञानसें परजावकों त्यागे, स्वशुणकी वृद्धि करे, ऐसा ज्ञान पा कर आत्माकों स्वस्वरूपानंदी करे, विद्विलासका अनुभव होवे, सो निश्चय नोगोपनोगविरमण व्रत कहिये.

अथ नोगोपनोग शब्दका अर्थ कहते हैं जो आहार, पुष्प, विलेप, गन्धि, एक वार नोगनेमें आवे, सो नोग कहियें. अरु जो चुवन, वस्त्र, शीयादि वार वार नोगनेमें आवे, सो उपनोग कहियें. अरु कर्माश्रयी इस व्रतके अनेक जेद है, सो आगें लिखुंगा.

तथा श्रावककों उत्सर्ग मार्गमें तो निरवद्य आहार लेनां लिखा है, जे कर शक्ति न होवे, तब सचित्तका त्यागी होवे, जेकर यहजी न कर सके, तो वाईस अजह्य अरु वत्तीस अनंतकाय इनका तो जरूर त्याग करे, तिनमें प्रथम वाईस अजह्य वस्तुका नाम लिखते है.

१ बडके फल, २ पीपलके फल, ३ पिलखणके फल, ४ कठंवरके फल, ५ गुलरके फल, यह पांचतो फल अजह्य है, क्योंकि इन पांचो फलोंमें बहुत सूक्ष्म कीडे त्रस जीव चरे दूये होते हैं, जिनोंकी गिणती नहीं हो सकी है, इस वास्ते धर्मात्मा जीव, इन पांचों फलोंकों न खावे, जे कर बौद्धिमें अन्न न मिले, तोजी विवेकी पूर्वोक्त पांच फल नहण न करे.

६ मदिरा, ७ मास, ८ मधु, ९ माखण, इन चारोंमें तदर्थ अक्षय्य जीव उत्पन्न होते हैं, अरु यह चारों विगय, महाविगय है. सो महाविकारकी करनेवाली है, तिनमें प्रथम मदिरा त्यागने योग्य है, क्योंकि मदिराके पीनेमें जो दूषण है, सो हेमचन्द्ररिक्त योगशास्त्रके दश श्लोकोके अर्थसें लिखते है.

१ मदिरा पीनेसें चतुर पुरुषकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, जैसे दुर्गागी पुरुषको सुंदर स्त्री गूढ जाती है, तैसें इस पुरुषकों बुद्धि गूढ जाती है, २ मदिरापानी पुरुष, अपनी माता, बहिन, बेटाओं अपनी चार्याकी तर समझ के जोरा जोरीसे विषयनी सेवन कर लेता है, अरु अपनी चार्याकों अपनी माता समझता है, मदिरा पीनेवाला ऐसा निर्जङ्ग और महापापके करने वाला होता है, ३ मदिरापानी, अपनेको अरु परकोजी नहीं



जानता, ४ मदिरापानी, अण्डो स्वामीको अण्डो किकर  
 अण्डो अण्डोको स्वामी जानता है, एसी निर्लेक बुद्धिवाला होता  
 मदिरा पीने वाले पुरुषको चौकमे लेटा हुआ देख कर मुदरि, जान  
 कुत्ते उसके मुहमें भूत जाते है, ६ मदिराके रसमें मद्य पुरुष  
 मादर जात, निर्लेक हो कर, सो जाता है. ७ मदिरा पीने  
 अगम्य गम्य, चोरी, यारी, खून प्रमुख कुकर्म करे है. वो सर्व  
 ग प्रकाश देता है. ८ मदिरा पीनेसे शरीरका तेज, कीर्ति, यश, ता.  
 बुद्धि, यह सब नष्ट हो जाते है. ९ मदिरापानी नूत लगेकी तरें  
 है, १० मदिरा पीने वाला कीचड और गंदकीमें लोटता है, ११  
 नेसे अंग शिथिल हो जाते है, १२ मदिरा पीनेसे इंद्रियोंकी तेजी  
 है, १३ मदिरा पीनेसे बडी भ्रष्टा आजाती है, १४ मदिरा पीनेवालेका  
 नष्ट हो जाता है, १५ संयम नष्ट हो जाता है, १६ ज्ञान नष्ट हो  
 १७ सत्य नष्ट हो जाता है, १८ शौच नष्ट हो जाता है, १९ व्या नष्ट  
 जाती है, २० क्रमा नष्ट हो जाती है, जैसे अग्निसे तृण जस्म हो जाते  
 तैसे पूर्वोक्त गुणनी उसका नष्ट हो जाते है, २१ मदिरा है, सो  
 रु परस्त्रीगमनादिकोंका कारण है, क्योंकि मदिरा पीनेवाला  
 कर्म नहीं कर सकता है? २२ मदिरा, आपदा तथा वध, वधना  
 कारण है, २३ मदिराके रसमें बहुत जीव उत्पन्न होते है. इस वास्ते  
 धर्मिकों मदिरा न पीनी चाहिये. २४ मद्य पीने वाला  
 कहता है, २५ लीयेको नहीं लीया कहता है, २६ करेको न करा  
 है, २७ मद्यपी, घरमे तथा बाहिर, पराये धनको निर्जय हो कर लूट  
 है, २८ मदिराके उन्मादसे बालिका, यौवनवती, वृद्धा, ब्राह्मणी, चाणक्य  
 नी प्रमुख स्त्रीयोसे जोग कर लेता है, २९ मद्यप अरराट शब्द करता  
 ३० गीत गाता है, ३१ लोटता है, ३२ दौडता है, ३३ क्रोध करता  
 ३४ रोता है, ३५ हस्ता है, ३६ स्तंभवत् हो जाता है, ३७ नमस्कार  
 रता है, ३८ भ्रमता है, ३९ खडा रहता है, ४० नटकी तरे अनेक नाटक  
 करता है, ४१ ऐसी यो कौनसी दुर्वशा है. जो मदिरा पीने वालेको नहीं  
 होती है? शास्त्रोमें सुणते हैं कि सांब कुमारने मदिरा पी कर विपायन  
 पिकों संताया, तब विपायनने धारकाको दग्ध कीया, ४२ मदिरा पीने

वि पापोंका मूल है, ४३ मदिरा पीने वाला निश्चय नरक गतिमें जावेगा, ४४ मदिरा सर्व आपदाका स्थान है ४५ मदिरा अकीर्तिका कारण है, ४५ मदिरा नीच श्लेष्ठ लोक पीते है, ४६ गुणीजन लोक जो है, सो मदिरा पीनेवालोंकी निंदा करते हैं, ४७ मदिरा पक्षमें लग जानेंसें तत्काल मरजाता है, ४८ मदिरा पीने वालेके मुखसें महाडुर्गंध आती है, ५० मदिरा सर्व शास्त्रोंमें निन्दित है, ५१ मदिरा पीनेवाला ईश्वरका जक्त नहीं. इत्यादि मदिरा पीनेमें प्रनेक दोष है, इस वास्ते श्रावक मदिरा न पीवे, यह उक्त अचन्द्रय

सातमा अचन्द्रय मांस है. यह मांस जहण करनेमें जो दूषण है, सो लेखते है. जो पुरुष मांस खानेकी इच्छा करता है, वो पुरुष, दयाधर्मरूि वृद्धकी जड काटता है, क्योंकि जीवके मारे बिना मांस कदापि नहि हो सक्ता है, जे कर कोइ कहेगा कि हम मांसजी खा लेवेगा, अरु प्राणी तोंकि दयानी करेंगा, ऐसे कहने वालेको हम उत्तर देते हैं, कि सदा सर्वदा जो मांसके खानेवाले हैं, अरु वो अपने मनमें दयाधर्मी बना चाहता है, वो पुरुष अग्रिमें कमल लगाना चाहता है, क्योंकि जब उसने मांस खाया, तब प्राणीयोंकी दया उसके मनमें कदापि नहीं हो सक्ती है, जे मांसका खानेवाला आम्रफल देखता है, तब उसकी मनसा आव खावहीकों दौडती है, तैसें मांसाहारी किसी गौ, जेडी, बकरी, प्रमुखकों देखा जाता है, तब उन जीवोंका मांस खानेकी तर्फ उसकी सुरती दौडती है, जैसे पुरुषकों दयाधर्म, क्यों कर संजवे ? जे कर कोइ कहेगा कि जीवके मारने वाला सौकरिक अर्थात् कसाइ है, तिस पासों बना बनाया मांस खाया कर खावे, तो क्या दोष है ? जैसे मूढमतिकों उत्तर देते है, कि जो मांस खानेवाला है, वोजी जीवका हिसक है, क्यों कि जगवंतने शास्त्रोंमें सात जनोंकों घातक (हिसक) अर्थात् कसाइही कहा है, उसका नाम कहते है. एक जीवके मारने वाला, दूसरा मांस बेचने वाला, तीसरा मांस खाने वाला, चौथा मांस जहण करने वाला, पांचमा मांस खरीदने वाला, उक्त मांसकी अनुमोदना करने वाला, सातमा पितरोंके, देवताओंकों, अतिथिकों, मांस देने वाला, यह सात साहात् परपरा करकें घातक अर्थात् जीववधके करने वाले है, मनुजीजी मनुस्मृतिमें कहते है ॥श्लोका॥ अनुमता विशसिता, निहंता क्रयविक्रयी ॥ संस्कृता चोपहर्ता च, खाइकश्चेति

घातकाः ॥ १ ॥ अर्थः— १ अनुमोदक, केतां अनुमोदन करने विशसिता केतां मारे हुये जीवके अंगका विनाग करने वाला, ३ केतां मारने वाला, ४ मांसका वेचनेवाला, ५ मांसका रांधने मांसका परोसने वाला, ७ मांसका खाने वाला. यह सातों घातकी र्थात् जीवके वध करने वाले हैं, दूसरा श्लोकजी मनुस्मृतिका ॥श्लोक ॥ अरुत्वा प्राणिनां हिंसां, मांसं नोत्पद्यते क्वचित् ॥ न च स्वर्ग, स्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥ १ ॥ अर्थः— जितना चिर न मारे, तहां तक मांस नहीं होता है, अरु जीववधसें स्वर्ग नहीं, नरक गति होती है, इस वास्ते मांस खानां वर्जे ॥ १ ॥

अब मांस खाने वालेकोही वधकपणा है, यह बात कहते जीवोंका मांस जो अपने मांसकी पुष्टाईके वास्ते खाते हैं, वास्तवमें कसाइ हैं, क्यों कि जे कर खानेवाले न होवे, तो काहेको कोइ जी मारे ? जो पर प्राणीयोंको मार करके अपणों सप्राण करते हैं, वे थोड़ीसी जिंदगीके वास्ते अपणा नाश करते हैं, एक अपणे वास्ते क्रोड़ों जीवोंको जो दुःख देता है, तो वो क्या सदा काल रहेगा ? जिस शरीरमें सुंदर मिष्टान्न, विष्टा हो जाता है, अरु दूध अमृत वस्तुओ मूत्र हो जातीयां हैं, तिस शरीरके वास्ते कौन दु न जीववध अरु मांस नक्षण करे ?

जे केइ महामूढ, निर्विवेकी, जिख गये हैं, कि मांसनक्षण दूषण नहीं वेची श्लेष्ठ थे, क्यों कि वे जिखते हैं ॥ श्लोक ॥ न क्षणे दोषो, न मद्ये न च मैथुने ॥ प्रवृत्तिरेषा नूताना, निवृत्तिस्तु ॥ १ ॥ इस श्लोकके कहने वालोंने व्याध, शृध्र, जेडीये, श्वान, व्याघ्र, गोडड, काग प्रमुख हिंसक जीवोंको अपना धर्मोपदेश गुरु मां है, क्योंकि जे कर ये पूर्वोक्त गुरु न होते तो इनको मांस खाने सिखाता ? विना गुरुके उपदेशके पूज्यजन उपदेश नहीं देते हैं ॥ श्लोक बनाने वालोंकी अज्ञानता देखिये, वे कहते हैं कि मारा खाने मदिग पीनेमें, अरु मैथुन सेवनेमें पाप नहीं, परंतु निवृत्तिस्तु महाफल इनमें जो निवृत्ति करे तो महाफल है, यह स्वयं चन विरोध है, क्योंकि जिसके करनेमें पाप नहीं, उसके त्यागनेमें धर्मफल कदापि नहीं हो सका है

अथ निरुक्त बल करकेँची मांस त्यागने योग्य है, सो कहते हैं  
 श्लोक ॥ मांसनक्षयितामुत्र, यस्य मांसमिहाद्वयहं ॥ एतन्मांसम्य  
 ष्त्वे, निरुक्तं मनुरब्रवीत् ॥ १ ॥ अर्थः— जिसका मांस में खाता  
 है, वो जीव मुझको परजवमें नक्षय करेगा, यह निरुक्तसें मनुजी मांस  
 ॥ अर्थ कहते हैं, मांसनक्षय वालेको महा पाप लगता है, जो पुरुष  
 मांस नक्षयमें लंपट है, वो पुरुष जिस जिस जीवको जलचर मत्स्यादि  
 गें, स्थलचर मृग, स्रथर प्रमुखको, खेचर तित्तर जाल वटेरे प्रमुखको  
 खता है, तिस तिसको मारकेँ खानेकी बुद्धि करता है, माकनकी तरें  
 र्वको खाया चाहता है, मांस खानेवाला उत्तम पदार्थोका परिहार क  
 के नीच पदार्थके लेनेमें उद्यत होता है, जैसें काग, पंचामृत ठोड कर  
 वेष्टेमें चांच देता है, तिसी तरें जान लेनां. इसका नाम तो निर्विवेकता है,  
 श्लोक ॥ ये नक्षयंति पिशित, दिव्यनोज्येषु सत्स्वपि ॥ सुधारसं परि  
 ष्य, जुंजते ते हलाहलं ॥ १ ॥ अर्थः— सकल धातुओंके वृद्धि करने  
 ाला दिव्य नोजन विद्यमान द्रव्यों, सर्व इंद्रियोंके आढहादजनक दूध,  
 शीर, किलाट, कूर्चिका, रसाल, दधि आदिक, मोदक, मंदक, मंमिका, खा  
 र्, पापड, घेउर, इमरिका, खंमवडे, पूरणवडे, गुडपापडी, इक्षुरस, गुड,  
 मसरी, झाडू, आंव, केले, अनार, नालियर, नारगी, संतरे, खजूर, अक्षौ  
 र, राजादनखिरणी, फनस, अलूचे, बदाम, पिस्तां. इत्यदि अनेक दिव्य  
 नोजनोंको ठोड के मूढमति, विस्त्रगंधि, सूगवाला, वमनका करनेवाला,  
 ष्ता विनस्त्य मांसको नक्षय करता है, वो जीव, जीवितव्यकी वृद्धि  
 ष्ते अमृत रस ठोड कर जीवितान्तकारी, हलाहल विष नक्षय करता  
 है, बालक जे होता है, सोनी पत्थरको ठोड कर सुवर्णको ग्रहण करता  
 है, अरु जे मांसाहारी पुरुष है, वो जे मांससेँची अधिक पुष्टताके करने  
 ाला ऐसे दिव्य नोजन है, तिनको ठोड के मांस खाता है, तो वो बाल  
 कसेँची अज्ञानी है.

और तरेंसें मांसनक्षयमें दूषण लिखते हैं. जे निर्दय पुरुष है, उसको  
 र्म नहीं, क्योंकि धर्मका मूल दया है, ये बात सर्व संत जन मानते हैं,  
 प्ररु मांसाहारीको दया तो है नहीं, मांस खाने वालेको पूर्वे कस्ताइ कत्या  
 है. इस वास्ते मांसाहारीके धर्म नहीं.

प्रश्न:-मांसाहारी आपने आपको अधर्मी क्यों बनाता है?

उत्तर:- मांसके स्वादमें लुब्ध हुआ वो धर्म, दया, कुठ नहीं जें कर कदाचित् जाननी जाता है, तोनी आप मांसलुब्ध है, इस्से त्याग करनेकूं समर्थ नहीं, इस वास्ते वो मनमें विचार करता है, कि समानही सर्व हो जावे, जैसे जान कर औरोंकोनी मांसनक्षण न नेका उपदेश नहीं करता है.

अब मांस नक्षण करनेवाले महामूढ हैं, यह बात कहते हैं. क मूढमति आप तो मांस नहीं खाते है, परतु देवता, पितर, इनको मांस चढा देते है, क्यों कि उनके शास्त्रकारक कहते है ॥  
 क्रीत्वा स्वयं वा उत्पाद्य, परोपहतमेव वा ॥ देवान् पितॄन् समन्यर्च्य,  
 मांसं न जुष्यति ॥ १ ॥ यह श्लोक मृगपक्षीयोके विषयमें है, इस्का कहते है. कसाईकी दुकान विना व्याध, शकुनिकादिकोंसे अर्थात् और जानवरोंके मारने वालोंसे मांस मोलसे ले कर देवता, अतिथि तरोंको देना चाहिये. क्यों कि वे लिखते हैं कि कसाईकी देवता पितरोंकी पूजा नहीं होती है, तातें आप मांस उत्पन्न करके आदिकोंकूं देवे तो पितृआदि प्रसन्न होते है, सो इस प्रकारसूं मांस न्न करे, कि ब्राह्मण तो मांग कर मांस ल्यावे, औ हृत्रिय शिकार रके मांस ल्यावे, अथवा किसीने मांस जेट करा होवे, उस मांससे पितरोंकी पूजा करके फेर मांस खावे, तो दूषण नहीं, यह सर्व और मिथ्यादृष्टियोंका कहना है, क्योंकि दयाधर्मी आस्तिकमत वाजों को तो मांस दृष्टिसेनी देखना योग्य नहीं, तो फेर देवता पितरोंकी पूजा मांससे करनी, यह तो धर्मीको स्वप्नेमेंनी न होवेगी, इस वास्ते देवताओं को मांस चढाना यह बुद्धिमानोका काम नहीं, कारण के देवता तो दे पुण्यवान् है, कवल आहार करते नहीं है, तो फेर जुगुप्सनीय मांस क्यों कर खावे? जो कहते है कि देवता मांस खाते हैं, वे महा अज्ञानी है, अरु पितर जो हैं, वेतो अणु अणु पुण्य पापके प्रभावसे अज्ञानी गतिकों प्राप्त हो गये है, अणु अणु करे हूये कर्मोंका फल जोगते है, त्रके करे हुए कर्मका उनको कुठनी फल नहीं लगता है, तब मांस के रूप पापका तो क्या कहना है? पुत्रादिकोंका सुरुत कराना तिनको नहीं

गलता है, क्योंकि ध्यांवके सींचनेसें, केलेमें फल नहीं फलता है, अरु अतिधिकी जक्ति वास्ते जो मांस देना है, सोतो नरकपातका हेतु अरु म अथर्मका कारण है, यहां कोई जैसे कहे कि जो वात श्रुति स्मृतिमें वो माननी चाहियें.

उत्तर—यह कहनां ठीक नहीं है, जो वात श्रुतिमें अप्रामाणिक है, वो विमान् कदापि नहीं मानेंगे, क्योंकि श्रुतिमें हम जैसे सुनते हैं, “ व वासि न्यूांसि यथा पापघ्नो गोस्पृशी. द्रुमाणां च पूजागादीनां च पूजागा गीनां च वधः स्वर्ग्यः ब्राह्मणजोजनं पितृप्रीणनं मायावीन्यधिदेवतानि व ह्यौ हुतं देवप्रीतिप्रदं” ऐसा कथन जो श्रुतियोंमें है, तिसकों युक्ति कुश त पुरुष कदापि नहीं मानेंगे, तिस वास्ते यही महा अज्ञान है, कि जो मांस करके देवताओंकी पूजा करणी. कितनेक कहते हैं कि जैसे मंत्रों क कि संस्कृत अग्नि, दाह नहीं करती है, तैसेही मंत्रों करके मांसनी संस्कार करा हुआ दोषके वास्ते नहीं होता है, यह कथन मनुजीका है ॥२॥ लोका॥ असंस्कृतान् पशून्मंत्रै, नाद्यादिप्र कथंचन ॥ मंत्रैश्चसंस्कृतानद्या, ताथेत विधिना स्थित. ॥ १ ॥ अर्थः—मंत्रों करके असंस्कृत पशुओंका मांसको ब्राह्मण न खावे, अरु जो मंत्रों करके संस्कृत पशु है, तिनका मांस खावे, तो शाश्वतोनित्यो वैदिक जाननां.

उत्तर—मंत्र करके जो मांस पवित्र कीया है, वो मांसको धर्मी पुरुष कदापि नष्टण न करे, क्योंकि मंत्र जैसे अग्निका दाह शक्तिकों रोकता है, तैसें नरकादि प्राणण शक्ति जो मांसकी है, उसको नहीं दूर कर सके, जेकर दूर कर देवे तब तो सर्व पाप करके पीठें पापका हनने वाला मंत्रके स्मरण मात्रसेंही सर्व पाप दूर हो जाने चाहियें, तब तो जो वेदोंमें पाप का निषेध करा है, सो सर्व निरर्थक हुआ, क्यों कि सर्व पापोंका मंत्रके स्मरणसेंही नाश हो गया, इस वास्ते यहनी अज्ञोंहीका कहनां है,

तथा कोइ कहते है कि जैसे थोडासा मद्य पीनेसे नशा नहीं चढता है, तैसें थोडासा मांस खानेमेंनी पाप नहीं लगता है

उत्तर—बुद्धिमान् यवमात्रकी मांस न खावे, क्यों कि थोडानी विप डःखदायी होता है, तैसे थोडानी मांस खाना सोनी दोषके तांइ है.

अब मांस खानेमें अनुत्तर दूषण कहते हैं, तत्काल इस मांसमें समूह विभिन्न जीव उत्पन्न होते हैं, अरु अत्यन्त निगोद रूप जीव तिनका संतान वारं वार होना तिस करके दूषित हैं, यदाहु आमासु अपक्कासु, अविप च्छमाणासु मंसपेत्सीसु ॥ सयय चिय उववाउ, नणितं निगोय जीवाण ॥ १ ॥ अर्थः—कच्ची तथा अपक्क ऐसी जो मांसकी पेत्सी वोटी रहती है, तिसमें निरंतर निगोदके जीव उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते मांसका खाना जो है, सो नरकमें जाने वालोंको पूरी खरची है, इस कारण के लीये बुद्धिमान पुरुष जो है सो मांस कदापि न खावे.

अथ यह मांस खाना किन्होने कथन करा है, तिनोका नाम लिखने हैं, १ मांस खानेके लोचीयोने, २ मर्यादा रहितोने, ३ नास्तिको ने, ४ थोड़ी बुद्धि वालोंने, ५ खोटे शास्त्रोके बनाने वालोंने, ६ वैरीयोने, मांस खाना कहा है. तथा मासाहारीसे अधिक कोइ निर्दयी नहीं. तथा मासाहारीसे अधिक कोइ नरककी अग्निका इंधन नहीं. गंदगी खा कर जो सुअन्न अपणे शरीरको पुष्ट करता है, सो अन्न है, परंतु जीवोंको मारके जो निर्दयी हो कर मांस खाता है, सो अन्न नहीं है.

प्रश्नः—सर्व जीवोंका मांस खाना तो सर्व कुशास्त्रोंमें लिख दीया है, परंतु मनुष्यका मांस खाना तो कहीं किसी शास्त्रमें नहीं लिखा है, इसका क्या हेतु होगा ?

उत्तरः—अपने मांसकी रक्षा वास्ते मनुष्यका मांस खाना नहीं लिखा, क्यों कि वे कुशास्त्रोंके बनाने वाले जानते थे कि जो मनुष्यका मांस खाना लिखेंगे, तो मनुष्य कबी हमकोंही न खा लेवे ? इस गंकासे नहीं लिखा, तो जो पुरुषमांसमें अरु पशुमांसमें विशेष नहीं मानता है, तिस समान कोइ धर्म नहीं, अरु तिसमें जो जिन मानके मांस खाते है इस समान कोइ पापीनी नहीं, तथा मांस जो है, तिसकी रुधिरसेंती उत्पत्ति होती है, अरु विष्टके रससें वृद्धि होती है, तथा जहु जिसमें नरा रहता है, अरु कसि जिसमें उत्पन्न होते है, ऐसे मांसको कौन बुद्धिमान खाता है ? आश्चर्य तो यह है कि ब्राह्मण लोक शुचिभूज तो धर्म कहते हैं, अरु सप्त धातुसे जो मांस दांड बनते हैं, तिस मांस दांडको मुखमें दांतोंसें चवाते हैं, अब उनको कुर्गों के समान समझीये कि शुचिधर्मवाले मानीये ? यह आश्चर्य है, जिन

की ऐसी समझ है, कि अन्न और मांस यह दोनो एक तरीके है, ति  
। बुद्धिमें जीवित अरु मृत्युके देनेवाले अमृत और विपत्ती तुल्यही हैं,  
अरु जो जडबुद्धि ऐसा अनुमान करते हैं, कि मांस खाने योग्य है, इति  
गीका अंग होनेसे यह हेतु उदनादिवत् यह दृष्टांतसे यह मांसकी प्राणी  
अंग है, इस वास्ते मांसकी खाने योग्य है, तब तो गौका मूत तथा माता,  
गा, जार्या, वेटी, इनका मूत, पुरिषकी क्यों नहीं पीते खाते है ? क्योंकि  
अनी प्राणीका अंग है, तथा अपनी जार्याकी तरें अपनी माता, वहिन,  
गीकों क्यों नहीं गमन करते है ? स्त्रीत्व अरु प्राणी अंगत्व सर्व जगे व  
र है, तथा जैसे गौका दूध पीते है, तैसें गौका रुधिर तथा माता पिता  
कोंका रुधिरकी क्यों नहीं पीते है ? क्योंकि प्राणी अंग हेतु तो सर्व जगे  
हय है, इस वास्ते जो अन्न और मांस इन दोनोको तुल्य जानते हैं, वेनी  
हा पापीयोके सिरदार है,

तथा शंखकों शुचि मानते हैं, परंतु पशुके हाडकों कोइ शुचि नहीं मा  
ता, इस वास्ते अन्न और मांस यद्यपि प्राणी अंग हैं, तोनी अन्न नश्य  
है, अरु मांस अन्नहय है, एक पंचेंद्रिय जीवका वध करके जो मांस खाता  
है, जैसी तिसकों नरकगति होती है, तैसी खोटी गति, अन्न खानेवालेकों  
नहीं होती है, क्योंकि अन्न मांस नहीं हो सकता है, मांसकी तसीरोसे अ  
न्नकी तसीरें और तरेकी है, मांस महाविकारका करने वाला है, तैसा अ  
न्न नहीं. इत्यादि विजहण स्वभाव है, इस वास्ते मांस खाने वालोंकी न  
रकगति जान कर संत पुरुष अन्नके जोजनसें तृप्ति मानते है, अरु सरस प  
दकों प्राप्त होते है, यह तो मांसके दूषण श्रीहेमचंद्र सूक्तित योगशास्त्रके  
अनुसार लिखे है. अरु इस कालमेंनी युरूपियन लोक जो बुद्धिमान् है,  
उनोनेनी मांस खानेमें चौबीस दूषण प्रगट करे है, अरु मदिरा पीनेसे जो  
सरावीयां होती है, तिनको तो गिणतीनी नहीं है, इस वास्ते मदिरा अरु  
मांस यह दोनों अन्नहयको आवश्यक त्यागे यह सातवा अन्नहय कथा.

७ आठमा अन्नहय माखण है, क्योंकि जैन मतके शास्त्रानुसारे ठाठसे  
बाहिर काटे माखणकों जब अंतर मुहूर्त्त अर्थात् दो घडीके लगनग काल  
अतीत हो जाता है, तब उस माखणमें सूक्ष्म जीव तद्वर्णके उत्पन्न हो  
जाते है, इस वास्ते माखण खाना वर्जित है. जैन लोकोको ठाठसें बाहिरं



माखण निकालके तत्काल अग्रिके संयोगसे घी बनाके ठानके देखके पीठे खाना चाहिये, क्यों कि एक तो इस रीतिसे शास्त्रोक्त जीव उत्पन्न नहीं होते है, तिनकी हिसानी नहीं होती है, अरु मकड़ी, कंसारी, महरादि, जानवरों के अवयव टांग प्रमुखजी घी ठाणणोंसे निकल जाते हैं, अरु माखण काम कीनी वृद्धि करता है, तब मनमें खोटे विकल्प उत्पन्न होते हैं, इस वास्तेजी श्रावककों माखण न खाना चाहिये, तथा एक जीवके वध करनेसेनी जब पाप होता है, तब तो पूर्वोक्त रीतिसे माखन तो जीवोंकाही पिक हो जाता है, तब माखनके खानेमें पापकी क्या गिनती है ?

प्रश्नः—माखनमे तो दो घड़ी पीठे कोई नी जीव उत्पन्न हुआ हम नहीं देखते है, तो फेर माखनमें दो घड़ी पीठे हम क्योंकर जीव मान लेंवें ?

उत्तरः—जो जैनमतके शास्त्रोंको सत्य मानेगा वो तो शास्त्रकारका कथन सत्यही मानेगा, अरु जो जैनके शास्त्रोंको सत्य नहीं मानता, वो चाहो सत्य माने, चाहो न माने परंतु हम आगम प्रमाणके बिना इस बातमें और प्रमाण नहीं दे सकते है. क्योंकि वस्तु दो तरकी होती है, एक हे तुगम्य, दूसरी आगमगम्य, तो माखनदिदलादिमे जो जीव उत्पन्न होते है, वे हेतुगम्य नहीं किंतु आगम गम्य हैं, इस वास्ते जो आगम सर्वज्ञ जिन अर्हत वीतरागका कहा हुआ है, उसीका कहा मानना चाहिये, जे कर कोई पुरुष किलीनी शास्त्रको न मानेगा, आखोसे देखी वस्तुही मानेगा, तब तो नरक स्वर्गादि जो अदृष्ट है, उनकोंनी न मानना चाहिये, तथा परमेश्वर चौदवे तथा सातवे असमान उपरि रहता है, तथा स्वर्ग अरु नरकमें पुण्य पाप करनेसे जीव जाता है, यहनी न मानना पडेगा, इस वास्ते आगम प्रमाणजी मानना चाहिये. क्योंकि सर्ववस्तु हमारी दृष्टिमे नहीं आती है. एनवमा अजह्य मधु, अर्थात् सहत है, उसका स्वरूप ज्ञित है, यह सहत जो है, सो अनेक जीवोंकी घात होनेमे उत्पन्न होता है, यह तो परलोक विरोध दोष है, अरु मधु (सहत) लुगुप्तनीय (निंदने योग्य) है, मुखकी लालवत् यह इहलोक विरुद्ध दोष है; इस वास्ते श्रावकधर्मकों मधु न खाना चाहिये.

अथ मधु अर्थात् सहत खानेवालेकों पापी पणा दिखाते हैं, ॥श्लोका॥  
जह्यन्मादिकं कृद्, जंतुलहृदयोऽथ ॥ स्तोत्रजंतु निहतृत्यः, सौनिकेभ्याः

निरिच्यते ॥१॥ अर्थः—कुडजंतु जो ठोटे जीव अथवा हाड रहित जीव, तिनके लाखोंका नाश उपलक्षणसे बहुत जीवोंका जब विनाश होता है, तब मधु उत्पन्न होता है, जब मधु नष्ट करेता है, तब थोड़े पशु मारने वाले कसाइसैनी उसको अधिक पाप लगता है, क्यों कि जो नष्टक है, सो नी घातक है, यह बात उपर लिख आये हैं. तथा लोकमें यह व्यवहार है, जो जूता नोजन नहीं खानां, अरु यह जो मधु है, सो तो महा जूत है, क्योंकि एकेक फूलसे रस (मकरंद) पी करके मन्त्रीयोंको वमन करतीयां हैं. सो सहत है मधु है इस वास्ते धर्मी पुरुषको जूत न खानी चाहिये. यह लौकिक व्यवहारमें प्रसिद्ध है.

कोइ कहेगा कि मधु तो त्रिदोषका दूर करने वाला है, इस लिये रोग दूर करने वास्ते औषधिमें नष्ट करे तो क्या दोष है? इत्याह

उत्तरः—अप्यौषधकृतेजग्धं, मधुभ्रन्ननिबंधनं ॥ नक्षितप्राणनाशाय, कालकूटोक्तोऽपि हि ॥ १ ॥ अर्थः—जो कोइ रसको लंपटतासे मधु खावे, उसकी बात तो दूर रही, परंतु जो औषधिके वास्तेनी मधु खावे, सो यद्यपि रोगादि अपहारक है, तोनी नरकका कारण है, हि यस्मात् प्रमादके उदयसे जीवनेका अर्थी हो कर के जो कोइ कालकूट विषका एक कणनी खाया, सो जरूर प्राण नाशके तांइ होवेगा.

प्रश्नः—मधु तो खजूर झाडादि रसकी तरें मीठा है, सर्व इंद्रियोंको सुखकारी है, तो फेर इसको त्यागने योग्य क्यों कहते हो?

उत्तरः—सत्य है. जो मधु मीठा है, यह व्यवहारसे हैं, परंतु परमार्थसे तो नरककी वेदनाका हेतु होनेसे अत्यंत कड़ूआ है,

अब जो मधुको पवित्र मान कर मंदबुधि जीवों मधुको देवस्नानमें उपयोगी समजते हैं, तिनका उपहास्य शास्त्रकार करते हैं ॥श्लोका॥ मद्धि कामुखनिष्टयूत, जंतुघातोद्भवं मधुः ॥ अहो पवित्रं मन्वाना, देवस्नाने प्रयुजते ॥१॥ अर्थः—माखीयोंके मुखकी जूत, अरु जीवघातमे अर्थात् हजारो बच्चे अरु अंगोंके मारनेसे, उत्पन्न होता है वो बच्चे, अंगे जब मरते हैं, तब तिनके शरीरका लड्डु पाणीनी मधु (सहत) के विच मिल जाते हैं, तब तो मधु महा अशुचिरूप है, अहो यह शब्द उपत्यार्थमें है, क्यों कि जैसे वे देवता है, तैसी तिनको पवित्र वस्तुनी चढाई जाती है. यह उपहास्य है,

सद्म जीवोंकी रक्षा वास्ते अरु अशुभ व्यवहार दूर करने वास्ते रात्रि कों नहीं खाते है यद्यपि दीवके चादणोंसें कीडी प्रमुख दीव जाती है तोनी मूलगुणकी विराधना टालने वास्ते रात्रि नोजन अनाचीण है

अब-लौकीक मतवालोंकि सम्मति देकर रात्रिनोजनका निषेध करते है श्लोक ॥ धर्मविन्नेवचुंजीत्, कदाचनदिनात्यये ॥ बाह्याद्यपि निन्नी नोज्यं, यदन्नोज्यंप्रचक्षते ॥ १ ॥ अर्थः- श्रुतधर्मका जानने वाला कदाचित् रात्रिनोजन न करे क्योंकि जो जिनशासनसें बाहिरले मतवाले है वेनी रात्रिनोजनको अनहय कहते हैं तिनका शास्त्रही लिखते हैं श्लोक ॥ त्रयीतेजोमयोजानु, रितिवेदविदोविदुः ॥ तत्करैःपूतमखिलं, शुचंकर्मसमाचोत् ॥ १ ॥ अर्थः- ऋग यजुः साम लक्ष्ण तीनों वेद तिनका जो तेज है सो सूर्य है आदित्यः त्रयीतनुः ऐसा सूर्यका नाम है-ऐसावेदोंके जानने वाले जानते हैं तिस सूर्यकी किरणाकरके पिः- पूत (पवित्र) संपूर्ण शुचिकर्म अंगीकार करे जब सूर्योदय न होवे तब शुचिकर्म न करे तिन शुचिकर्मोंका नाम लिखते हैं श्लोक ॥ नैवाद्दुर्तिर्नचस्नानं, नश्चादेतत्तार्चनं ॥ दानंवाविहतरात्रौ, नोजनंच विशेषतः ॥ २ ॥ अर्थः-आहुति सो अग्निमें घृतादि प्रक्षेप करना स्नानसो अंग प्रत्यंग प्रक्षाल करना आदि पितृकर्म देवपूजा दानवेना नोजन तो विशेष करकेही नज करना इतना काम रात्रिमें न करने.

तथा परमतके यहनी दो श्लोक हैं ॥ देवैस्तुशुक्तंपूर्वान्दे, मध्यान्देश्विनीस्तथा ॥ अपरान्हेतुपितृनिः, सायान्हेदैत्यदानवैः ॥ १ ॥ सध्यायां यद्भ्ररहोनिः, सदानुक्तकुलोद्दहः ॥ सर्ववेला व्यतिक्रम्य; रात्रौशुक्तमनोजनं ॥ २ ॥ अर्थः- सवेरेतो देवता नोजन करते है मध्यान्ह अर्थात् दोपहर दिन चढे ऋषि नोजन करते है अपरान्ह अर्थात् दिनके पीछे जागमें पितर नोजन करते है अरु सायान्हे विकाल वेलामें दैत्य दानव नोजन करते हैं संध्यामें रातदिनकी संधिमें यह शुद्ध राक्षस खाते है ॥ कुलवहै त्रियुषिष्टरस्यामंत्रण ॥ सर्वदेवताओंका वखत अंतर्धके रात्रिकों जो खाना है सो अनह है यह पुराणोंके श्लोकों करके रात्रि नोजनके निषेधका संवाद कया

अब वैद्यक शास्त्रकात्री रात्रिनोजनके निषेधका संवाद कहते हैं श्लो

॥ आयुर्वेदेषु ॥ हृत्तान्नि पद्मसंकोच, श्रंमरो चिरपायतः ॥ अतो नक्तं नोक्तव्यं, सूक्ष्मजीवादनादपि ॥ १ ॥ अर्थः— इस शरीरमें दो पद्म अर्थात् कमल हैं एक तो रुदय पद्म सो अधोमुख है दूसरा नाभिपद्म सो उर्ध्वमुख है यह दोनो कमल सो सूर्यके अस्त होनेसे रात्रिमें संकोच हो जाते हैं किस कारणसे संकोच होजाते है ? सूर्यके अस्त होजानेसे संकोच हो जाते है इस वास्ते रात्रिकों न खाना चाहिये तथा रात्रिकों सूक्ष्म जीव खाये जाते हैं इस्से अनेक रोगोत्पन्न होते है यह पर पद्मका संवाद कहा.

अब फेर स्वमतसे रात्रिनोजनकानिषेध कहते है श्लोक ॥ संसङ्ग जीवसंघात. जुंजानानिशिनोजनं, राक्षसेन्योविशिष्यंते, मूढात्मानः कथंनु ते ॥ १ ॥ अर्थ—जब रात्रिमें खाता है तब जीवोंका समूह नोजनमें पड जाता है जैसे अंधरूप रात्रिके नोजनके खानेवालोंको राक्षसोंसेभी क्योंकर विशेष नहीं कहना ? जब पुरुष जिनधर्मसे रहित होकर विरति नहीं करता है तब श्रृंग पुच्छसे रहित पशु रूपही है यदुक्तं ॥ वासरेचरज न्याच, यः खादन्नेवतिष्ठति ॥ श्रृंगपुच्छपरिच्रष्टः ॥ सस्पष्टपशुरेवहि ॥ १ ॥

अब रात्रिनोजन निवृत्तिके वास्ते पुण्यवर्तोंको अन्यास विशेष दिखाते है श्लोक ॥ अन्होमुखेवसानेच, यो देघटिकेत्यजेत् ॥ निशानोजनदोषज्ञो, श्वात्पसौपुण्यनाजनं ॥ १ ॥ अर्थः—दिन उदयमें श्रु अस्त समयमें दो दो घडी वर्जनी चाहिये क्योंकि रात्रि निकट होनेसे वर्जनी चाहिये इसी वास्ते आगममें सर्व जघन्य प्रत्याख्यान मुहूर्त प्रमाण नमस्कार सहित क हते हैं रात्रिनोजनके दूषणोंका जानकार श्रावक दो घटी जब शेष दिन रहे तब नोजन करे जेकर दो घडीसे थोडादिन रहे नोजन करे तो रात्रि नोजनके प्रत्याख्यानका उसको फल नहीं होता है जेकर कोइ रात्रिकों नहीं खावे परंतु जो उसने रात्रिनोजनका प्रत्याख्यान न करा है तो उसकोभी कुछ फल नहीं मिलता है क्योंकि उसने प्रतिज्ञा नहीं करी है जैसे रूपश्ये जमा करावे श्रु व्याजका करार न करे उसको व्याज नहीं मिलता है इस वास्ते नियम जरूर करना चाहिये

अब रात्रिनोजन खानेका फल परलोकमें कहते है श्लोक ॥ उजूक ताकमाजारि, गृध्रशंवरश्रुकरा ॥ अहिवृश्चिक गोधाश्व, जायंते रात्रिनोज नात् ॥ १ ॥ अर्थः—उजू, काग, बिह्ली, गृध्रचोत्र, वारांसगा. स्यधर, सप्य.

विह्व, गोह, इत्यादि तिर्यच योनीमें रात्रिजो जन खानेवाले मरके  
 अरु जो रात्रिजो जन न करे उनको एक वर्षमें ठै महीनेका तपका  
 होता है ॥ इति रात्रिजो जन अनह्य संपूर्ण ॥ १४ ॥

१५ बहुबीजा फलनी अनह्य है जिसमें गिर थोडा अरु बीज बहुत  
 होवे सो बड़गण, पटोल, खसखस. पंपोटा प्रमुख फल, जिसमें  
 बीज है उसमें उतने पर्याप्त जीव है जेकर खानेमे तो थोडा धाता है अरु  
 जीवघात बहुत होती है तथा बहुबीजा फल खानेसे पित प्रमुख रोग  
 का हेतु होता है अरु जिनाड़ा विरुद्ध है इति बहु बीजा अनह्य ॥ १५ ॥

१६ सधान अथाणा (आचार) तीन दिनसे उपरातका अनह्य है सो अ  
 थाणा (आचार) अंबका, निबुका, पत्रका, कर्मदाका, आदेका, जिमीर  
 का, गिरमिरका इत्यादिक अनेक वस्तुका अथाणा (आचार) बनता है  
 चाहो धीका होवे वा तेलका होवे वा पाणीका होवे सर्व तीन दिन उपरांत  
 अनह्य है परंतु इतना विशेष है कि:- जो फल आप खट्टे हैं अथवा  
 सरी वस्तुमें खट्टा अंबादिकजो मेल देवे वेतो तीन दिन उपरांत अनह्य  
 है अरु जिस वस्तुमे खट्टाई नहीं है उसका अथाणा (आचार) एक  
 रात्रिसे उपरांत अनह्य है क्यो कि - इस आचार (अथाणामें) अस  
 जीव उत्पन्न होते है अरु विह्व प्रमुखतो प्रथमही अनह्य है तो फेर  
 उनके अथाणे (आचारका) तो क्याही कहना है? आचारमें चौबे दिन  
 निश्चय दोइंजीवजीव उत्पन्न होते है तथा जूठा हाथ लग जावेतो पंच  
 डी, जीव उत्पन्न हो जाते है दूसरे मतवालोंके शास्त्रोंमेंजी अथाणा  
 (आचार) नरकका हेतु लिखा है. इति अथाणा अनह्य समाप्त ॥ १६ ॥

१७ दिवल जिसकी दो दाल होजावे अरु घाणीमे पीले जिसमेंसु तेल  
 न निकले ऐसे सर्व अन्नको दिवल कहते है तिस दिवलके साथ जो  
 गोरस अग्नि उपर नहीं चढा है ऐसा कच्चा दही कच्चा दूध गाठ इनके  
 साथ नहीं जीमणा अरु जेकर दही दूध गाठ गरम करी होवे फेर पीने  
 चाहो ठंढा हो जावे उसमें जो दिवल मिलाकर खावे तो दोष नहीं है

१८ सर्व जातके वैंगण एकतो बहु बीजे हैं इस वास्ते अनह्य है तिसके  
 बीटमे सूक्ष्म अस जीव रहते है तथा वैंगण कामकी बुद्धि करते हैं नींद  
 अधिक करते हैं कुठक बुद्धिकांजी ठीठ करते है इनका नामजी घुस है इन

आकारनी अन्ना नहीं है तथा कफ रोगके करता हैं इनके अधिक खा  
 चौरुइयातप खइ रोगादि होजाते हैं और सब जातका फलतो सूकेनी  
 खानेमें आता है परंतु यहतो सूकेनी खाने योग्य नहीं हैं क्योंकि सूके पीडे  
 होते हो जाते हैं कि मानों चूहोंकी खलडी है ताते यह इव्य अशुद्ध है  
 इस वास्ते अनह्य है. इति वैगण अनह्य ॥१८॥

१९ तुल्ल फल जो ढीनु पीलुं पैनु तथा अत्यंत कोमल फल सोनी  
 अनह्य है क्योंकि ऐसी वस्तु बहुतनी खावे तोनी तृप्ति नहीं होती है  
 अरु खानेमें थोडा आता है और गेरना बहुत पडता है तथा फल  
 खाया पीते तिनकी गुठली जो मुखमें चबोलके गेरते है उसमें असंख्य  
 पंचेडीय संभूर्द्धिम जीव उत्पन्न होते हैं तथा जो पुरुष बहुत तुल्लफल  
 खाता है तिसकों तत्काल रोग होजाता है. इति तुल्लफल अनह्य ॥१९॥

२० अजाणा फल सो जिसका नाम कोइ न जानता होवे तथा न  
 किसीने खाया होवे सो फलनी अनह्य है क्योंकि क्या जाने कनी जह  
 र फल खाया जावे तो मरण हो जावे तथा बावला होजावे ॥ २० ॥

२१ चलित रस सो जिस वस्तुका काल पूरा होगया होवे अरु स्वाद  
 बल गया होवे सो जब स्वाद बदल जाताहै तत्र तिसका कालनी पूरा  
 होजाता है जिसमेंसें दुर्गंध आने लगे, तार पड जावें, सो चलितरस व  
 स्तु है यहनी अनह्य है रोटी, तरकारी, खोचडी, बडा, नरमपूरी, सोरा,  
 हजवा इत्यादि रसोइकी अनेक वस्तु जिनमें पाणीकी सरसाइ है ऐसी  
 वस्तु एक रात उपरांत अनह्य है तथा विदल (दाल,) बडे, गुजगले, छु  
 जोये जिनमें पाणीकी सरसाइ है वे चार पहर उपरात अनह्य है जूग  
 लोकी राव (पेंस) जो विना विदलके और उठन ठाठमें राया है सो  
 आठ पहर उपरांत अनह्य है तथा वर्षाकालमें अठोरोतोसैं जो मिठाइ  
 बनी होवे तो पंद्र दिन उपरांत अनह्य है जेकर पंद्र दिनसैं पहिले  
 विगड जावे तो पहिजाही अनह्य है ऐसी तरे सर्वत्र जान लेना तथा  
 उष्णकालमें मिठाइकी स्थिति बीस दिनकी है अरु शीतकालमें मिठाइ की  
 स्थिति एक मासकी है उपरात अनह्य है तथा वही शोला पहर उपरात  
 अनह्य है ठाठनी दहीपत् जानलेनी इस चलित रसमें वे इडिय जोय  
 उत्पन्न होवे है इस वास्ते यह अनह्य है ॥ २१ ॥

२२ वनीस अनंत काय सर्व अनक्षय है क्योंकि सूक्ष्मअयनाग जितना टुकड़ा अनंतकायका आता है उस टुकड़ेमेंजी अनंत जीव वास्ते अनक्षय है. तिसका नाम लिखते हैं. १ चूमिके छंदर जितका कंद उत्पन्न होता है, सो सर्व अनंतकाय है, २ सूरणकंद, ३ वज्रकंद, ४ हरिहलदी, ५ अष्क, ६ हरिया कचूर, ७ सौफकी जडा, कानाम विराली कंद है, ८ सत्तावरवेल औपवि, ९ कुंआर, १० थोढ़क द. ११ गजो, १२ जसण, १३ वांसका करेला, १४ गाजर, १५ लाण जिसकी सक्की बनती है, १६ लोढी पद्मनी सो लोढाकद, १७ गिरमि (गिरिकरनी) कव्व देशमें प्रसिद्ध है, १८ किसलयपत्र (कोमल पत्र) जो नवी अंकुर उगता है, सर्व वनस्पतिका उगती घखतके अंकुर, सो सर्व प्रथम अनंतकाय होते है, पीछे जब बढते है, तब प्रत्येकजी हो जाते हैं, अरु अनंतकायनी रहते है, १९ खरसूयाकंद. (कसेरु) अनंतकाय, २० थेग कंद विशेष है तथा थेग नामक जाजी, २१ हरे मोय, २२ लवण वृद्धकी ठाल, २३ खिलोडी, २४ अमृतवेल, २५ मूजी, २६ चूमिरुद्धा सो चूमिफोडा ठत्राकार, जिनको वालक पदवदेडे कहते हैं, तथा खुंवां कहते है, २७ वधुवेकी प्रथम उगतेकी जाजी, २८ कदु हार, २९ सूरवल्ली जो जंगलमें बडी वेलडी हो जाती है, ३० पलककी जाजी, ३१ कोमल आंबली, जहांतक उसमें बीज नहीं पढा है, तहांतक अनंतकाय है, ३२ आलुख, रतालु, पिमालु, यह वनीस अनंत कायका नाम सामान्य प्रकारसें कहा है, अरु विशेष नाम तो अनेक हैं, क्योंकि कोईक वनस्पति तो पंचांग अनंतकाय है, कोईका मूल अनंतकाय है, कोईका पत्र, कोईका फूल, कोईकी ठाल, कोईका फाए, अमें कोईके एकअंग, कोईके दोअंग, कोईके तीन अंग, कोईके चार अंग, कोईके पांच अंग, अनंत काय है. यह वनीस अनंतकाय अनक्षय है ॥ २७ ॥

अथ यह अनंतकायके जानने वास्ते लक्षण लिखते हैं. जिसके पत्ते, फूल, फल प्रमुखकी नसां गूढ होवें, दीखे नहीं, तथा जिसकी सपि होवें, जो तोड़नेसें वरावर टूटे, अरु जो जड़में काटी हुई हो जावे. जिसके पत्ते मोटे दलदार चीरपों होवें, जिसके पत्ते बहुत कोमल शोंवें, ये सर्व अनंतकाय जाननी.

इन अजह्नोंमें-अफीम नांग प्रमुखका जिसकों पहिला अमल लगा होवे, तब तिसके रखनेकी जयणा करे, तथा रात्रिनोजनमें चउविहार, ति विहार, डुविहार एक मासमें इतने करुं ऐसा नियम करे, तथा रोगादिकके कारण किसी औपधिमें कोइ अजह्नु खाना पड़े, तिसकी जयणा रखै, तथा बत्तीस अन्नतकाय तो सर्वथा निषेध हैं, तोनी रोगादि कारणसें औपधिमें खानी पड़े, तिसकी जयणा रखै, तथा थजाण पणें किसी वस्तुमें मिली हुइ खानेमें आ जावे, तो तिसकी जयणा इति बावोश अजह्नुय स्वरूपं.

अथ चौदह नियमका विवरण लिखते है. गाथा ॥ सचित्तदवविगइ, वाणेह तंजोल वड कुसुमेसु ॥ वाहण सयण विलेवण, वंजदिसि न्हाण जनेसु ॥१॥ अस्थार्थः—श्रावकके जावजीव पांचअणुव्रतमें इच्छा परिमाण सो कोइ आमेंकी अनेक तरेंकी कर्म परिणतिका संनव करकें अपणे निर्वाह सामर्थ्यका उदय अतिदुस्तर विचारके इच्छा परिमाणमें वहुत वस्तु खुली रस्की है, तिनमेंसें फेर नित्यका आश्रव निवारनेके वास्ते संक्षेप करणार्थे चौदह नियमका धारण दिन प्रत्ये रखनां चाहियें, तिसका स्वरूप कहते है.

१ प्रथम सचित्त परिमाण. सो मुख्यवृत्ती करके तो श्रावककों सचित्तकों त्याग करणां चाहियें, क्योंकि अचित्त वस्तुके खानेमें चार गुण हैं, प्रथम तो अप्राणुक जलादिकका पीना वर्द्धनेसें, सर्व सचित्त वस्तुका त्याग हो जाता है, जहां तक अचित्त वस्तु न होवे, तहां तक मुखमें प्रक्षेप न करे, दूसरा जीवहा इंडिय जीती जाती है, क्योंकि कितनीक वस्तु बिना राधे स्वादवाली होती है, तिनका त्याग हुआ तीसरा अचित्त जलादि पीनेसें काम चेष्टा मंद हो जाती है, अरु चित्तमें ऐसा खटका हरहमेश रहता है, कि मेरेकुं मतकनी सचित्त वस्तु खानेमें आ जावे ? चौथा जलादिक इव्य अचेतन करनेमें जीवहिसा हुइ है, सोतो कर्मबंधनका कारण बन चुकी, परतु जो ह्रण ह्रणमें असंख्य (अन्नंत) जीवोंकी उत्पत्ति होती थी, सो मिट गइ तिनकी हिसा न होवेगी, अरु जो कोइ मूढमति अपनी मनकल्पनासे ऐसा विचार करे कि अचित्त करनेमें पट् कायके जीवोंकी हिसा होती हैं. अरु सचित्त जलादिक पीनेमें तो एक जलादिककी हिसा है, इत वास्ते सचित्तका त्याग न करनां चाहियें ऐसा विचारके सचित्त त्यागे नहीं, सो मूर्ख जिनमतके ग्हस्यकों नहीं



२२ वत्सीस अनंत काय सर्व अनहृद्य है क्योंकि सूईके अग्रभाग जग  
जितना टुकड़ा अनंतकायका आता है उस टुकड़ेमेंनी अनंत जीव है  
वास्ते अनहृद्य है, तिसका नाम लिखते हैं, १ जूमिके अंदर जितना  
कंद उत्पन्न होता है, सो सर्व अनंतकाय है, २ सरणकंद, ३ वज्रकंद  
४ हरिहजदी, ५ अडक, ६ हरिया कचूर, ७ सौफकी जडा,  
कानाम विराली कंद है, ८ सतावरवेल औपवि, ९ कुंआर, १० थोहरक  
द, ११ गजो, १२ जसण, १३ वांसका करेला, १४ गाजर, १५ लाणा,  
जिसकी सझी बनती है, १६ लोढी पद्यनी सो लोढाकंद, १७ गिरमि  
(गिरिकरनी) कन्न देशमें प्रसिद्ध है, १८ किसलयपत्र (कोमल पत्र) जो नवा  
अंकूर उगता है, सर्व वनस्पतिका उगती चखतके अंकूर, सो सर्व प्रथम  
अनंतकाय होते है, पीछे जब बढते है, तब प्रत्येकनी हो जाते है, अरु  
अनंतकायनी रहते हैं, १९ खरसूयाकंद. (कसेरु) अनंतकाय, २०  
थेग कंद विशेष है तथा थेग नामक नाजी, २१ हरे मोथ, २२  
लवण वृक्षकी ठाल, २३ खिलोडी, २४ अमृतवेल, २५ मूली, २६  
जूमिरुहा सो जूमिफोडा ठत्राकार, जिनको वालक पद्मबदेडे कहते  
है, तथा खुंवां कहते हैं, २७ वधुवेकी प्रथम उगतेकी नाजी, २८ कर  
हार, २९ सूरवल्ली जो जंगलमें बडी बेलडी हो जाती है, ३० पल  
ककी नाजी, ३१ कोमल आंबली, जहांतक उसमें बीज नहीं पडा है,  
तहांतक अनंतकाय है, ३२ आलुख, रतालु, पिमालु, यह वत्सीस अनंत  
कायका नाम सामान्य प्रकारसें कहा है, अरु विशेष नाम तो अनेक है,  
क्योंकि कोईक वनस्पति तो पंचांग अनंतकाय है, कोईका मूल अनंतका  
य है, कोईका पत्र, कोईका फूल, - कोईकी ठाल, - कोईका काष्ठ, ऐसें को  
ईके एकअंग, कोईके दोअंग, कोईके तीन अंग, कोईके चार अंग, - कोईके  
पांच अंग, अनंत काय है. यह वत्तीस अनंतकाय अनहृद्य है ॥ २५ ॥

अब यह अनंतकायके जानने वास्ते लक्षण लिखते हैं. जिसके पत्ते,  
फूल, फल प्रमुखकी नसां गूढ होवें, दीखे नहीं, तथा जिसकी सधि गुप्त  
होवे, जो तोड़नेसें बराबर टूटे, अरु जो जड़सें काटी हुई फेर दारि  
हो जावे, जिसके पत्ते मोटे दलदार चीकणें होवें, जिसके पत्ते अरु फल  
बहुत कोमल होवें, यें सर्व अनंतकाय जाननी.

इन अजह्नोंमें अफीम नांग प्रमुखका जिसको पहिला अमल लगा होवे, तब तिसके रखनेकी जयणा करे, तथा रात्रिनोजनमें चउविहार, ति विहार, डुविहार एक मासमें इतने करुं ऐसा नियम करे, तथा रोगादिकके कारण किसी औपधिमें कोइ अजह्नु खाना पडे, तिसकी जयणा रखे, तथा बत्तीस अनंतकाय तो सर्वथा निपेध हैं, तोनी रोगादि कारणसे औपधिमें खानी पडे, तिसकी जयणा रखे, तथा अजाण पणें किसी वस्तुमें मिली दुइ खानेमें आ जावे, तो तिसकी जयणा इति बावीश अनद्य स्वरूपं.

अथ चौदह नियमका विवरण लिखते है. गाथा ॥ सचित्तद्वविगइ, वाणेह तंबोल वञ्च कुसुमेसु ॥ वाहण सयण विलेवण, वंनदिसि न्हाण नत्तेसु ॥१॥ अस्यार्थः—श्रावकके जावजीव पांचअणुव्रतमें इच्छा परिमाण सो कोइ आर्गकी अनेक तरेंकी कर्म परिणतिका संनव करकें अपणे निर्वाह सामर्थ्यका उदय अतिदुस्तर विचारके इच्छा परिमाणमें बहुत वस्तु खुल्ली रखी है, तिनमेंसें फेर नित्यका आश्रव निवारनेके वास्ते संक्षेप करणार्थे चौदह नियमका धारण दिन प्रत्ये रखनां चाहियें, तिसका स्वरूप कहते है.

१ प्रथम सचित्त परिमाण. सो मुख्यवृत्ती करकें तो श्रावकको सचित्तको त्याग करणां चाहियें, क्योंकि अचित्त वस्तुके खानेमें चार गुण है, प्रथम तो अश्रावक जलादिकका पीना वर्ज्जनेसें, सर्व सचित्त वस्तुका त्याग हो जाता है, जहां तक अचित्त वस्तु न होवे, तहां तक मुखमें प्रक्षेप न करे, दूसरा जोब्हा ईडिय जीती जाती है, क्योंकि कितनीक वस्तु विना रांधे स्वादवाली होती है, तिनका त्याग दूध्या तीसरा अचित्त जलादि पीनेसें काम चेष्टा मंद हो जाती है, अरु चित्तमें ऐसा खटका हरहमेश रहता है, कि मेरेकूं मतकजी सचित्त वस्तु खानेमें आ जावे ? चौथा जलादिक इव्य अचेतन करनेमें जीवहिंसा दूइ है, सोतो कर्मबंधनका कारण बन चुकी, परतु जो कृण कृणमें असंख्य (अनंत) जीवोंकी उत्पत्ति होती थी, सो मिट गइ तिनकी हिंसा न होवेगी, अरु जो कोइ मूढमति अपनी मनकल्पनासें ऐसा विचार करे कि अचित्त करनेमें पट् कायके जीवोंकी हिंसा होती है, अरु सचित्त जलादिक पीनेमें तो एक जलादिककी हिंसा है, इस वास्ते सचित्तका त्याग न करनां चाहियें. ऐसा विचारके सचित्त त्यागे नहीं, सो मूर्ख जिनमतके रहस्यको नहीं

जानता, क्योंकि सचित्तके त्यागनेसे आत्मदमनता, औत्सुक्य निवारण ता, विषय कषायकी मंदता होती है, अरु जिसमें स्वदयागुण बहुत है सोनी वो नहीं जानते इस वास्ते सचित्त त्यागनेमें बहुत लान है.

२ दूसरा इव्य नियम सो धातुका वा शिला, काष्ठ, मट्टीका पात्र प्रमुख तथा अपणी अंगुली प्रमुख विना जो मुखमें खावे सो इव्य कहते हैं, "परिणामांतरापन्न इव्यमुच्यते" तिनमें खीचडी तो मोदक, पापड, वडा, प्रमुख बहुत इव्यसें बनते हैं, तोनी परिणामांतरसें ? एकही इव्य है, तथा एकही गेहूंको वनी रोटी, पोली, गूगरी, बाटी प्रमुख है, तोनी यह सर्व निन्न इव्य ह, क्योंकि नामांतर स्वादांतर रूपांतर परिणामांतरसें इव्यांतर हो जाते है, तथा कोइक आचार्य और तरेनी इव्यका स्वरूप कहते है, परंतु जो उपर लिखा है, सो बहुत वृद्ध आचार्योंको यही सम्मत है. इस वास्ते इव्योंका परिमाण करे कि आजमें इतने इव्य खाऊंगा ?

३ तीसरा विगय नियम सो विगय दश प्रकारका है, तिनमें १ मधु, २ मांस, ३ माखन, ४ मदिरा, यह चार तो महाविगय है, इन चारोंका त्याग तो बावीश अन्नहमें लिख आये है, शेष ठै विगय रही, तिसका नाम कहते हैं. १ दूध, २ दही, ३ घृत, ४ तैल, ५ गुल, ६ सर्वजातका एकवा न्न, इस ठै विगयमेंसें नित्य एक, दो, तीनादि विंगयका त्याग करे, अरु एकेक विगयके पांच पांच निवीतानी विगयके साथ त्यागना चाहिये, जे कर निवीता त्यागनेकी मनमें न होवे, तव प्रत्याख्यान करनेके व्यवसर में मनमें धारे कि मेरे विगयका त्याग है, परंतु निवीताका त्याग नहीं.

४ चौथा उपानह. सो जूता पहिरनेका नियम करे, पगरखी, खडावा. मोजा, बूट, प्रमुख तर्बका नियम करे, क्योंकि यह सर्व जीवहिंसाके अधिकरण हैं, तिनमें आवकने जिनपूजादि कारण विना खडावा तो कदापि नहीं पहरनी, क्योंकि इनके हेठ जो जीव आ जाता है, वो जीता नहीं रहता है, अरु गृहस्थ लोकोंको जूते विना सरता नहीं इस वास्ते मर्यादा कर लेवे, फेर दूसरेके जूतेमें पग न देवे जूल चूक हो जावेतो आगार.

५ पांचमां तत्रोल. सो चौथा स्वादिम नामा आहार है, उसका नियम करे, उसमें पान, सोपारी, लवग, एलायची, तज. दारचीनी, जातिफज, जावंत्री, पीपजामूल, पीपर, प्रमुख करियाणोकी चीज, जिस्में मुख शुद्ध हो

थावे, परंतु उदर नरण न होवे, तिसकों तंबोल कहते हैं. तिसका परिमाण करे.

६ ठावस्त्र नियम है. सो पुरुषके पांचो अंगोके वस्त्रोंका वेप पहरने का तिसकी संख्या करे, कि आजके दिनमें मेरेकों इतने ? वेप रखने है, तथा इतने खुल्ले वस्त्र उठने है, तथा रात्रिकों पहरेनेका वस्त्र तथा स्नान समय पहरनेका वस्त्रकी वेपमे गिणती नहीं तथा समुच्चय वस्त्रकी संख्या रख लेवे, अजाण पणो जेल संजेल हो जावे तो आगार.

७ सातमा फूलोंके नोगका नियम करे, सो मस्तकमें रखनेवाले, अरु गलेमें पहरने वाले, तथा फूलोंकी शय्या, फूलोका तकिया, फूलोंका पंखा, फूलोका चंडवा, जाली प्रमुख जो जो वस्तु नोगमें थावे, फूलकी ठडी सेहरा, कलंगी, अरु फूल जो सूंघनेमें थावे, तिनका तोल परिमाण रखनां

८ आठमा वाहन नियम करे, सो रथ, गाडी, घोडा, पालखी, उंट, बलद, नाव, प्रमुख जिसके उपर बैठके जहां जाना होवे, तहां जावे, सो वाहन सर्व तीन तरेका है, १ तरता, २ फिरता, ३ उडता, तिनकी संख्याका नियम करे कि इततरेकी अस्वारीमें आज चढनां.

९ नवमां शयन शय्याका नियम करे. सो खाट, चौकी, पाट, तखत, कुर्सी, पालकी, सुखासन प्रमुख जितने रखने होवे सो मनमें धार लेवे.

१० दशमां विलेपनका नियम करे. सो नोगके अर्थे केसर, चदन, घोवा, अतर, फूलेल, गुलाबादिक जो वस्तु अंगके लगानी होवे, तिसका नाम मनमें धार लेवे, तथा अंगलूहणानी इसीमे रक्क लेना इसमें इतना विशेष है कि देवपूजा, देवदर्शन, इत्यादि धर्म करणी करतां हाथमे धूप, अगारवती लेनी पडे, तथा अर्पणें मस्तकमें तिलक करना पडे, तथा नगवानकी प्रतिमाकों तिलक करना पडे, तिसका श्रावककों नियम नहीं है.

११ इग्यारवां ब्रह्मचर्यका नियम करे, सो दिनमे अरु रात्रिमें इतनी बार स्वस्त्रीसैं मैथुन सेवनां, उपरात स्वस्त्रीसैंनी नहीं सेवनां, अरु हास्य विनोठ आलिंगन चुबनादिक करनेका जांगा राखे.

१२ बारहवां दिशिका नियम करे, सो अमुक दिशिमे आज मैने इतने कोस उपरांत नहीं जानां, इसमे आदेश, उपदेश, माणस जेजना, चिठी लिखनी, ये सर्व नियम आ गये, जैसे पाल सके, तैसे नियम करे.

१३ तेरहवां स्नानका नियम करे, सो आजके दिनमें तैलमर्दनपूर्वक तथा

बिनमर्दनपूर्वक कितनी वखत स्नान करना, सो धार लेवे, इसमें देव जाके वास्ते नियमसे अधिक स्नान करना पड़े, तो व्रतचंग नहीं।

१४ चौदहवां नात पाणीका नियम सो चार आहारमेंसुं स्वादिमत्त तो तबोजके नियममें परिमाण रख्या है, शेष तीन आहार है, तिनमें प्रथम अशन, सो नात, रोटी, कचौरी, सीरा प्रमुख, तिसका परिमाण करे, बि आजके दिनमें इतना सेर मैरेकों खाना है उपरांत त्याग है यहां घरमें बहुत परिवार होवे तिसके वास्ते बहुत अशनादि कराने पड़े, तिसकी जयण रस्के, तथा औरोंके घरमें पंचायत जीमें तहां जाना पड़े, उहां बहुत अदमीउंकी रसोई बना रस्की है, उसका दूषण नियम धारीको नहीं, क्योंकि नियम धारीने तो अपणेही खानेकी मर्यादा करी है, परंतु न्यातिके खानेक मर्यादा नहीं करी है, इस वास्ते अपणे खानेका परिमाण करे कि इतने से उपरात मैं आज नहीं खाउंगा, तथा दूसरा पाणीतिसके पीनेका परिमाण करे कि इतने कलसो उपरांत पाणी मैंने आज नहीं पीना, तथा तीसरा खास, सो मिठाई अथवा मिष्ठान्न मोदकादिक तिनका परिमाण करे, यह चौदह नियम है, इहां अधिक चाव वाला आवक होवे, सो सचिनादि परिमाणमें इव्यका परिमाण जूदा जूदा नाम ले कर रस्के, तो बहुत निर्जेरा होवे ॥ इति चौदह नियमका स्वरूप संपूर्ण ॥

अथ पंदरा कर्मादानका स्वरूप लिखते है यह पंदरह व्यापार आवकक निषेध है, सो करणां नहीं, क्यों कि इनके कारणसे बहुत पाप लगता है जे कर आवककी आजीविका न चलती होवे तो परिमाण कर लेवे त पंदराकर्मादानका नाम कहते है.

१ प्रथम इंगालकर्म, सो कोयले बना कर वेचने इंट बनाकर वेचने चाडे खिलोने बनापका करके वेचे, लोहारका कर्म, सोनारका कर्म, बंगह कार, सीतकार, कजाल, जठीयारा, जडचूंजा, हलवाइ, धातुगालक. इत्यादि जो व्यापार अग्नि करके होवे, सो सर्व इंगालकर्म है. इसमें पाप बहुत लगता है, अरु जान थोडा होता है, इस वास्ते यहकर्म आवक न करे.

२ दूसरा वनकर्म. सो ठेया अनठेया वन वेचे, बगीचेके फल पत्र वेचे फल, फूल, कंदमूल, तृण, काष्ठ, लकडी, वशादिक वेचे, तथा जो हार वनस्पति वेचे, यह सर्व वनकर्म है.

३ तीसरा साडीकर्म सो गाडी, वहिन तथा अस्वारीकारथ, नावाँ, जहाज, या हल, दंताल, चरखा, घाणीका अंग, तथा धूसरा, चक्री, उखली, शाल, प्रमुख बना करके वेचे, यह सर्व शकटकर्म हैं।

४ चौथा जाडीकर्म. सो गाडा, वलद, अंट, नैस, गक्षा, खच्चर, घोडा, आव, रथ प्रमुखसे दूसरोंका बोज वहे जाडे करी आजीविका करे.

५ पांचमा फोडीकर्म. सो आजीविका वास्ते कूप, चावडी, तलाव, बोदावे, हल चलावे, पडर फोडावे, खान खोदावे, इत्यादिक स्फोटिक कर्म है. इन पांचो कर्मोंमें बहुत जीवोंकी हिंसा होती है. इस वास्ते इन तीनोंको कुरुर्म कहते है. अब पांच कुवाणिय्य लिखते हैं.

१ प्रथम दंतकुवाणिय्य, सो हाथीका दांत, उल्लूके नख, जीन, कलें ता, पक्षियोंका रोम, तथा गायका चमर, हरणके सींग, बारासिंगेके सींग, कृम जिस्में रसम रंगते है, इत्यादिक जो त्रस जीवका अंगोपांग वेचना है, सो सर्व दंतकुवाणिय्य है. जब इन वस्तुओंके लेने वास्ते प्रागरमें जावे, तब निह्नादिक लोक तत्काल हाथी, गैमा, प्रमुख जीवोंकी हिंसामें प्रवर्त होते है, महा पाप अनर्थ करे, तहां जानेंसे अण्डा परिणामनी मलिन हो जाते है, कदाचित् लोनपीडित हो कर मल्ल व्याधियोंको कहना पडेकि, हमको मोटा नारी दांत चाहीता है, अब वो लोक तत्काल हाथीको मारके वैसा दांत ब्यावैगे, इस वास्ते जे र वस्तु लेनी पडे, तब व्यापारीके पाससे लेवे, परंतु आगरमें जाकर लेवे, क्योंकि आगरमें जा कर एक चमर लेवे, तो एक गाय मरे इस वास्ते विचार करके वाणिय्य करे. यह प्रथम दंत कुवाणिय्य है.

२ दूसरा लाखकुवाणिय्य. सो लोहा, धावडी, नील, सज्जीखार, साल, मनसिल, सोहागा, इत्यादि. तथा लाख, ये सर्व लाख कुवाणिय्य है. प्रथम तो त्रस जीवोंका समूहहीसे लाख बनती है, अरु पीछे जब ग काढते हैं, तब तिसको अन्नसे सडाते है, तब त्रस जीवकी उत्पत्ति होती है, अरु महा दुर्गंध रुधिर सरीखा वर्ण दीखता है, तथा धावडीमें इस जीव उपजते है, कुंभुयेनी बहुत होते हैं, अरु यह मदिरेके अंग है, तथा नीजको जब प्रथम सडाते है, तब त्रस जीव उत्पन्न होते है, पीछेनी नीजके कुंभमें त्रसजीव बहुत उत्पन्न होते है, अरु नीजा वस्त्र पहि

रनेसें उसमें जू लीखादि त्रसजीव उत्पन्न होते हैं, तथा हरताल मनसिलकी पीसती वख्त जो यत्न न करे, तो मक्की प्रमुख अनेक जीव मर जाते हैं.

३ तीसरा रस कुवाणिज्य. सो मदिरा, मांस, इत्यादि वस्तुका व्यापार महा पापरूप है, तथा दूध, दही, घृत, तेल, गुड, खान प्रमुख जो ढीली वस्तु है, इसका जो व्यापार करना सो रसकुवाणिज्य है. इसमें अनेक जीवोंकी घात होती है. वास्ते यह व्यापार श्रावक न करे.

४ चौथा केशकुवाणिज्य है. सो विपद जो मनुष्य, दास, दासी प्रमुख खरीद कर बेचनें; तथा चौपद जो गाय, घोडा, जैस प्रमुख खरीदके बेचनें तथा पंखीयोंमें तीतर, मोर, तोता, मैनां, बटेरा प्रमुख बेचे इस वाणिज्यमें पाप बहुत है. इस वास्ते यह व्यापार श्रावक न करे.

५ पांचमा विष कुवाणिज्य. सो शंखीया (सोमल) वडनाग, अफीम, मनसिल, हरताल, चरस, गांजा प्रमुख तथा शस्त्र जो धनुष, तलवार, कटारी, तुरी, बरती, फरसी, कुहाडी, कुशी, कुदाल, पसकबज, बंदूक, ढाल, गोली, दारू, वक्कर, पाखर, जिलम, तोप प्रमुख जिन करकें समाप्त करते है, तथा हल, मूशल, उखल, दंताली, कर्वत, दात्री, गोला, हवाइ, पटाका, कुहक, शतत्री प्रमुख सर्व हिंसाहीका अधिकरण है इनको जो व्यापार करना, सो सब विषवाणिज्य है. इसमें बहुत हिंसा होती है, ये पांच कुवाणिज्य हैं. अब पांच सामान्य कर्म कहते है.

१ प्रथम यंत्रपीलन कर्म. सो तिल सरसों, इहुआदि पीलाय करकें बेचना, यह सर्व जीवहिंसाके निमित्तरूप यंत्रपीलन कर्म है.

२ दूसरा निर्लांठन कर्म. सो बैल घोडाकों खस्ती करणां, घोडे, बलद, ऊंट प्रमुखकों दाग देनां, कोतवालकी नौकरी, जेलखानेका दरोगा वेका लेनां, मसल इजारे लेनां, चोरोंके गाममें वास करनां, इत्यादि जो निर्दयपणका काम है, सो सर्व निर्लांठन कर्म है.

३ तीसरा दावाग्रिदान कर्म सो कितनेक मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जीव धर्म मानके बनमें आग लगा देते है, वो अपने मनमें जानते है कि नवा घास उत्पन्न होवेगा तब गौ चरेगी, जिह्वादिक लोक सुखसे रहेंगे, अन्न उपजेगा, इत्यादि कार्य अज्ञानपणसे धर्म जाणके करे, आग लगा नसें लाखो जीव मरजाते है, उस वास्ते आग न लगानी चाहिये.

४ चौथा शोषणकर्म. सो वावडी, तलाव, सरोवर, इनका जल अप  
खेतमें देवे, जब पाणीकों बहार काढे, तब लाखों जीव जल रहित त  
उखेडके मर जाते हैं, इस वास्ते सर्वपाणी शोषण न करना.

५ पांचमा असतीपोषण कर्म. सो कुतूहलके वास्ते कुत्ते, विछे, हिसक  
जीवोंको पोषे, तथा डुष्ट नायाँ, अरु डुराचारी पुत्रकों मोहसँ पोषण करे,  
साचा कुत्ता जाणे नहीं, जो मनमें आवे सो करे, तिनकों राजी रखे,  
तथा बेचणे वास्ते डुराचारी दास दासीकों पोषे, सो असती कर्म कहिये.  
तथा माठी, कसाई, वागुरी, चमार प्रमुख बहु आरंजी जीवोंके साथ व्या  
पार करे, तिनकों इव्य तथा खरची प्रमुख देवे, यहनी डुष्ट जीवोंका  
पोषण है, जे कर अनुकंपा करके श्वान (कुत्ते) प्रमुख किसी जीवों  
पुण्य जान कर देवे, तो उसका निषेध नहीं, तथा अपणे महेन्द्रमें जो  
जीव होय तिनकी खबर लेनी पड़े, तथा अपणे कुटुंबका पोषण करना  
पड़े, इसमें पूर्वोक्त दोष नहीं. क्योंकि यह लोकनीति राजनीतिका रस्ता है,  
यह पांच सामान्य कर्म कहा. इति पंदरा कर्मादान संपूर्ण.

अब यह सातमें जोगोपजोग व्रतका पांच अतिचार लिखते हैं.

१ प्रथम सचित्त आहार अतिचार, सो भूलजागेमें तो आवक सर्व स  
चित्तका त्याग करे, जेकर नहीं करे, तो परिमाण कर लेवे, तहां सर्व स  
चित्तके त्यागी तथा सचित्तके परिमाणवाले जो अनाजोगादिकसँ सचि  
त आहार करे, तथा जल, तीन उकाली आजानेसँ शुद्ध प्राण्यक होता  
है, तिनमें एक उकाला, दो उकालाका पाणीतो मिश्र उदक कहा जाता  
है, तिस पाणीकों अचित्त जाणके पीवे तथा सचित्त वस्तु अचित्त होनेमें  
वेर है, उस वस्तुकों अचित्त जान कर खावे, तो प्रथम अतिचार लागे.

२ दूसरा सचित्त प्रतिवधाहार अतिचार. सो जिसके सचित्त वस्तुका  
नियम है, सो तत्काल खैरकी गांठसँ गूंद उखेडके खावे, गूंद तो अचित्त  
है परंतु सचित्तके साथ मिला दूआ या सो दूषण लगता है, तथा पक्का  
दूआ अंभ खिरणी वेर प्रमुखकों मुखसँ खावे, अरु मनमें जानता है कि मैं  
तो अचित्त खाता हूँ, सचित्त गुठलीकों तो गेर देवंगा, इसमें क्या दोष है ?  
ऐसा विचार करके खावे. तब दूसरा अतिचार लागे.

३ तीसरा अपकौपवि नक्षण अतिचार. सो विना ठाप्या आटा, अ



श्रमिका संस्कार जिसको करा नहीं, ऐसा कच्चा आटा खावे, क्योंकि श्रमि-  
 त्ति-श्रांतमें आटा पीसना पीछे विना ढाणों कितनेही दिन मिश्र रहता है,  
 सो कहते हैं. श्रावण, जाइव मासमें अनठान्या आटा पीसना पीछे पांच  
 दिन मिश्र रहता है, आश्विन और कार्तिक मासमें चारदिन मिश्र  
 रहता है, मगसिर और पौष मासमें तीन दिन मिश्र रहता है, साध अथ  
 फागुण मासमें पांच प्रहर मिश्र रहता है, चैत्र अथ वैशाख मासमें चार  
 प्रहर मिश्र रहता है, ज्येष्ठ अथ आषाढ मासमें तीन प्रहर मिश्र रहता  
 है, पीछे अचित्त हो जाता है, सो मिश्र खावे, तो तीसरा अतिचार लागे.

४ चौथा दुपकौषधि नक्षत्र अतिचार. सो कबुक कच्चा, कबुक पका  
 जैसें सर्व जातके पौक अर्थात् सिद्धे जो मक्की, जवार, बाजरे, गेहूँ प्र  
 मुखके बीजोंसें नरे हुए होते है, इनको अग्निका संस्कार कर्ना, कबुक कच्चा  
 पके हो जावे तिनको अचित्त जान कर खावे, तो चौथा अतिचार लागे.

५ पांचमा तुड्डौपधि नक्षत्र अतिचार. सो तुड्ड नाम इहां असारका  
 है, जिसके खानेसें तृप्ति न होवे, तिसके खानेमें पाप बहुत है, जैसें च  
 णाका फूल खावे, तथा वेरकी गुठलीमेंसें गिर निकालके खावे, तथा  
 वाल, समा, मूंग, चवलाकी फली खावे, इसके खानेसें प्रसंग दूषणजी  
 लग जाते हैं, क्योंकि कोइ बनस्पति अतिकोमल अवस्थामें अनंतकाय  
 नी होती है, तिसके खानेसें अनंतकायका व्रतचंग हो जाता है, यह पां  
 चमा अतिचार कर्ना ॥ इति सप्तम नोगोपनोग व्रत संपूर्ण ॥ ७ ॥

अथ आत्मा अनर्थदंम विरमणव्रतका स्वरूप लिखते है. प्रथम अर्थ  
 दंम उसको कहते है, कि जो अपणे प्रयोजनके वास्ते करे, सो धन, धान्य,  
 केंद्रादि नवविध परिग्रहमें हानी वृद्धि होवे, तब करे, क्योंकि धनवृद्धिके  
 निमित्त संसारी जीवको बहुत पापके कारन सेवने पडते हैं, तब सत्य ज्ञ  
 बोले विना रक्षा नहीं जाता है, पापके उपकरणजी मेलने पडते है, जब  
 कोई मनसूवा करना पडता है, तब अनेक विकल्प रूप आर्त्तध्यान करना  
 पडता है, क्योंकि धनादिक परिग्रह आजीविकाके अर्थ है, तिस वास्ते  
 धनकी वृद्धि वास्ते जो जो पाप करता है, सो सो सर्व अर्थ दंम है. दूसरा  
 जब धनकी हानि होती है, तब धनहानि दूर करणे वास्ते अनेक विकल्प  
 रूप पाप करता है, सोची अर्थ दंम है, क्योंकि सत्तारके, सुखका कारण

पुन व्यवहार है, तिस व्यवहारके वास्ते जो पाप करना पड़े, सो अर्थदंम है। तीसरा अपणा स्वजन कुटुंब परिवारादिकके वास्ते अवश्य हो जो पाप सेवनां पड़े, सो सो सब अर्थदंम है, चौथा पांच प्रकारकी इंधोंके जोग वास्ते जो पाप करे, सोनी अर्थ दंम है, इन पूर्वोक्त चारों योजनो बिना जो पाप करे, सो अनर्थदंम जाननां। तिसके चार जेद हैं, तो कहते हैं। प्रथम अपध्यान अनर्थदंम, दूसरा पापोपदेश अनर्थदंम, तीसरा हिंसप्रदान अनर्थदंम, चौथा प्रमादाचरित अनर्थदंम है। इनमेंसुं प्रथम तो अपध्यान अनर्थदंम है, उसके फेर दो जेद है, एक आर्त्तध्यान दूसरा इध्यान, तिनमें फेर आर्त्तध्यानके चार जेद है, सो षष्क् षष्क् कहते हैं। प्रथम अनिष्टार्थ संयोगार्त्तध्यान। सो इंडिय सुखका विघ्नकारी जैसे अनिष्ट आदिकके संयोग होनेकी चिंता करे कि मत मेरेको अनिष्ट शब्द मिले। दूसरा इष्टवियोगार्त्तध्यान। सो हमको नवविध परिग्रह अरु परिवार तो मिला है, इसका वियोग मत होवे, ऐसी चिंता करे, अथवा इष्ट जो माता, पिता, स्त्री, पुत्र, मित्र प्रमुख हैं, इनके विदेश गमनसें तथा मरण होनेसें बहुत चिंता करे, खाए पीए नहीं, वियोगके दुःखसें आत्मघात करनेका विचार करे, अथवा सर्वदिन क्रोधहीमें रहे, तथा घरमें यह कुपूत है, यह नाई बेदिल है, मेरे पिताका मेरे उपर मोह नहीं है, यह स्त्री मुझे बहुत खराब मिली है, सो मेरे उपर दिल नहीं देती है, इसका कोई उपाय होवे तो अज्ञा है, अरु स्त्री मनमें विचारे कि मुझे शौकिन खराब करती है, मेरे पतिकों जूलाती है, क्या जाने किसी दिन पतिसें मुझे दूर लेगी? इस वास्ते इस रांमका कुछ उपाय करना चाहिये, तथा सेवक प्रेता विचार करे कि:-मेरे स्वामीके आगे फलाना मेरा इशमन गया है, सो गुरु मेरी खोटी कहेगा, मेरी रीत जांतकों अदल बदल कर देवेगा, मेरे स्वामीको जूत साच कह कर मेरी नौकरी तुडा देवेगा, तब मैं क्या करूँगा? इसका कुछ उपाय करना चाहिये, तिसके नियह वास्ते यंत्र, मंत्र, ध्यान, मोहन, वशीकरण करे, तिसको जूत कजंक देवे, वज्रदान देने वास्ते तिस जीवको मारे, यह सब अपने शत्रुके नियह वास्ते करे तथा मृत शत्रुके मारा चाहे, परंतु वो मूर्ख यह नहीं विचारता कि:-जे करतुं अपणे दिजसे सच्चा है, तो तुजे क्या फिकर है? अरु जहां तक अगलेका पु

एषोदय है, तहां तक तूं यंत्र, मंत्रसें उसका कुठ बुरा नहीं कर सकता। ये सर्व संसारी जीवकी मूर्खता है, यह सर्व अनर्थदंम है, तथा प्रथम पणी आतुरतासेंति मनमें कुविकल्प करे, कि मेरे वैरीके कुलमें अमुक अरदस्त उत्पन्न हुआ है, सो मेरेकों दुःख देवेगा, इसकी राजदरबारमें जावे, अरु दंम होवे, तो ठीक है, तथा इसका कोई विघ्न मिले तो सरारमें कह कर इसकों गामसें निकलवाय देवं तो ठीक है, ऐसा विचार पठ, अज्ञानी करता है, तथा यहां चोर बहुत पडते हैं, सो पकड़े जाय फांसी दीये जाय, तो बड़ा अच्छा काम होवे, तथा अमुक पुरुष, मेरे अर हो कर चलता है, इस हगमजादेका कुठ बंदोबस्त करना चाहिये, जो फेर कदापि शिर न उठावे, इत्यादि खोटे विकल्प करके अनर्थदंम को, क्योंकि किसिकी चितवणासें दूसरोका त्रिगाड नहीं होता है, जे कुठ होना है, सो तो सब पुण्य पापके अधीन है, तो फेर तूं काहेकों बिलीवत मनोरथ करता है? क्यों कि:- यह विना प्रयोजनके पाप लगता है, सो अनर्थदंम है, ये दूसरा आर्त्तध्यानका जेद कहा।

३ तीसरा रोगनिदानार्त्त ध्यान. सो मेरे शरीरमें किसी वखत रोग होता है, वो न होवे तो अच्छा है, लोकोकों पूठे कि अमुक रोग क्यों कर न होवे? तब कोइ कहेकि अमुक अमुक अनरु वस्तु खानेसें नहीं होता है, तब अनरुची खा लेवे, तथा जब शरीरमें रोग होवे, तब बहुत हाय हाय शब्द करे, बहुत आरंज करे, घडी घडीमें ज्योतिपीकों पूठे, कि मेरा रोग कब जायगा? तथा वैद्यकों वार वार पूठे, तथा मेरे उपर किसीने जाइ करा है? ऐसी शंका करे, अरु रोग दूर करने वास्ते कुल विरुद्ध, धर्मविरुद्ध करे, तथा अनरु खानेमे तत्पर होवे, रोग दूर करनेके वास्ते औषधि, जडी, बूटी, मंत्र, यंत्र, तंत्र, सीखे तथा सीखे हुए किसी वखत मेरेकाम आवेगा, यह रोगनिदानार्त्तनामा आर्त्तध्यानका तीसरा जेद है.

४ चौथा अग्रशोचनामा आर्त्तध्यान. सो अनागत कालकी चिंता करे, कि आवता वर्षमें यह विवाह करुंगा, तथा ऐसी हाट, हवेजी बनाऊंगा, जिसकों देख कर सर्व लोक आश्चर्य करे, तथा अमुक लजाना है, जिसके आगे सर्व वाग निकम्मे होजावे सर्व जले, तथा अमुक वस्तुका नैन सौदा करा है, सो वस्तु

जावे तो ठीक है मुझे बहुत नफा मिल जावे, इत्यादि अनागत कालकी चिन्ता अनेक कुविकल्प शोखशीलकी तरें चिते, इसका नाम अग्रशोच नामा आर्त्तध्यान है. इति आर्त्तध्यानका संक्षेप स्वरूप लिखा ॥

१ अथ रौद्रध्यानका स्वरूप कहते हैं? प्रथम हिसानंद रौद्र. सो त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसा करके मनमें आनंद माने, तथा बहुत पाप करके सुंदर हाट, हवेली, बाग प्रमुख बनावे, उसको देखके जब लोक प्रशंसा करे, तब मनमें सुख माने कि मैंने कैसी हिकमतसे बनाया है, मेरे समान अकल किसीमेंजी नही है, तथा रसोइ प्रमुख खानेकी वस्तु बनावे, तब बहुत मसाले माले, नरु वस्तुको अजरु सदृश बनाके खावे, तथा मानके उदयसे ऐसी जमणवार (ज्योंनार) करे, कि जिसको सर्व लोक सराहैं, तथा राजाओंकी जडाइ सुन कर खुसी माने, एक राजा का पट्टी वन कर महिमा करें, दूसरेकी निंदा करे, तथा अमुक योद्धेने एक तरवारसे सिंहादिक मारा है, बाह रे सुनट! ऐसी प्रशंसा करे, तथा अपने इशमनको मरा सुन कर राजी होवे, मुख मरोडे, मूठ उपर हाथ फेरे, हाथ घसे, अरु मुखसे कहे कि ये हरामखोर मेरे पुण्यसे मर गया, ऐसी ऐसी खोटी चितवणा करके कर्म बांधे, परंतु ऐसा न विचारे कि.— दूसरा कोइ किसीका मारणे वाला नही है, उसकी आयु पूरी हो गई इस वास्ते मर गया, एक दिन इसीतरे तूंजी मर जायगा. जूठा अजिमान करना ठीक नहीं, ऐसा विचार न करे, सो हिसानंद रौद्रध्यान कहियें.

२ दूसरा मृपानंद रौद्रध्यान. सो जूठ बोलके खुशी होवे अरु मनमें ऐसा चिते कि मैंने कैसीकवात बनाके करी किसीकोजी खबर न पडी, मैं बडा अकलवंत हूं? मेरे समान कौन है? मेरे सन्मुख कौन जवाब करनेको समर्थ है? बोलना है, सो करामात है, बोलना किसीको आता है, इस अवसरमें जेकर मैं ना होता, तो देखते क्या होता? ऐसा मनमें फूले और अपने इशमनको संकटमें गेरके मनमें आनंद माने अरु कहे कि देखा मैंने कैसी हिकमत करी? राज दरवारमें लोकोंकी चुगली करके स्थानत्रष्ट करे, मनमें खुसी माने. इत्यादि मृपानंद रौद्र है.

३ तीसरा चौर्यानंद रौद्र. सो नरु जीवोंसे कूड कपटकी वार्ता बना करके बहु मूली वस्तु थोडे दाममें ले लेवे, तथा पराया धन, लेखेसे अधि

एषोदय है, तहां तक तूं यंत्र, मंत्रसें उसका कुछ बुरा नहीं कर सकता। ये सर्व संसारी जीवकी सुखिता है, यह सर्व अनर्थदंम है। तथा प्रथम पणी आतुरतासेंति मनमें कुविकल्प करे, कि मेरे वैरीके कुलमें अमुक खरवस्त उत्पन्न हुआ है, सो मेरेकों दुःख, देवेगा, इसकी राजदरवारमें जावे, अरु दंम होवे, तो ठीक है, तथा इसका कोई ठिड् मित्र तो तस्करमें कह कर इसकों गामसें निकलवाय देवं तो ठीक है, ऐसा विचार बूढ अज्ञानी करता है, तथा यहा चोर बहुत पडते है, सो पकडे जाँय, फांसी दीये जाँय, तो बडा अड्डा काम होवे, तथा अमुक पुरुष, मेरे ऊपर हो कर चलता है, इस हगमजादेका कुछ बंदोबस्त करना चाहिये, जो फेर कदापि शिर न उठावे, इत्यादि खोटे विकल्प करके अनर्थदंम को, क्योंकि किसिकी चितवणासें दूसरोका बिगाड नहीं होता है, जे कुछ होना है, सो तो सब पुण्य पापके अधीन है, तो फेर तूं काहेकों बिलीवत मनोरथ करता है ? क्यों कि— यह विना प्रयोजनके पाप लगता है, सो अनर्थदंम है, ये दूसरा आर्त्तध्यानका चेद कह्या.

३ तीसरा रोगनिदानार्त्त ध्यान. सो मेरे शरीरमें किसी वखत रोग होता है, वो न होवे तो अड्डा है, लोकोको पूठे कि अमुक रोग क्यों करे न होवे ? तब कोइ कहेकि अमुक अमुक अनरु वस्तु खानेसे नहीं होता है, तब अनरुनी खा लेवे, तथा जब शरीरमें रोग होवे, तब बहुत हाय हाय शब्द करे, बहुत आरन करे, घडी घडीमें ज्योतिपीकों पूठे, कि मेरा रोग कब जायगा ? तथा वैद्यकों वार वार पूठे, तथा मेरे उपर किसीने जाड करा है ? ऐसी शंका करे, अरु रोग दूर करने वास्ते कुल विरुद्ध, धर्मविरुद्ध करे, तथा अनरु खानेमें तत्पर होवे, रोग दूर करनेके वास्ते औषधि, जडी, बूटी, मंत्र, यंत्र, तंत्र, सीखे तथा सीखे हुए किसी वखत मेरेकाम आवेगा, यह रोगनिदानार्त्तनामा आर्त्तध्यानका तीसरा चेद है.

४ चौथा अग्रशोचनामा आर्त्तध्यान. सो अनागत कालकी चिंता करे, कि आवता वर्षमें यह विवाह करुंगा, तथा ऐसी हाट, हवेली बनाऊंगा, कि जिसकों देख कर सर्व लोक आश्चर्य करे, तथा अमुक क्षेत्रमें वगीचा लगाना है, जिसके आगे सर्व बाग निकम्मे होजावें सर्व दुश्मनकी ठाती जले, तथा अमुक वस्तुका मैंने सौदा करा है, सो वस्तु आगेकों महंगी हो

तो ठीक है मुझे बहुत नफा मिल जावे, इत्यादि अनागत कालकी चेष्टा अनेक कुविकल्प शंखशीलकी तरें चिंते, इसका नाम अग्रशोच नामा आर्त्तध्यान है. इति आर्त्तध्यानका संक्षेप स्वरूप लिखा ॥

अथ रौडध्यानका स्वरूप कहते हैं? प्रथम हिंसानंद रौड. सो ब्रह्मण्यार जीवोंकी हिंसा करके मनमें आनंद माने, तथा बहुत पाप करके सुंदर हाट, हवेली, बाग प्रमुख बनावे, उसको देखके जब लोक प्रशंसा करे, तब मनमें सुख माने कि मैंने कैसी हिकमतसे बनाया है, मेरे समान अकल किसीमेंनी नही है, तथा रसोड प्रमुख खानेकी वस्तु बनावे, तब बहुत मसाले माले, जह वस्तुको अजह सदृश बनाके खावे, तथा मानके उदघसें ऐसी जमणवार (ज्योनार) करे, कि जिसको सर्व लोक सराहै, तथा राजाओंकी लडाइ सुन कर खुसी माने, एक राजा का पट्टी बन कर महिमा करे, दूसरेकी निंदा करे, तथा अमुक चोडेनें एक तरवारसें सिंहादिक मारा है, वाह रे सुनट ! ऐसी प्रशंसा करे, तथा अपने इशमनको मरा सुन कर राजी होवे, मुख मरोडे, मूठ उपर हाथ फेरे, हाथ घसे, अरु मुखसें कहे कि ये हरामखोर मेरे पुण्यसें मर गया, ऐसी ऐसी खोटी चिंतवणा करके कर्म बांधे, परंतु ऐसा न विचारे कि:- दूसरा कोड किसीका मारणे वाला नहीं है, उसकी आयु पूरी होगइ इस वास्ते मर गया, एक दिन इसीतरे तूनी मर जायगा. फूग अजि मान करना ठीक नहीं, ऐसा विचार न करे, सो हिंसानंद रौडध्यान कहिये.

२ दूसरा मृपानंद रौडध्यान. सो फूठ बोलके खुशी होवे अरु मनमें ऐसा चिंते कि मैंने कैसीकवात बनाके करी किसीकोनी खबर न पडी, मैं बडा अकलवत हूं? मेरे समान कौन है? मेरे सन्मुख कौन जवाब करनेके समर्थ है? बोलना है, सो करामात है, बोलना किसीको धाता है, इस अवसरमें जेकर मैं ना होता, तो देखते क्या होता? ऐसा मन में फूले और अपने इशमनको संकटमें गेरके मनमें आनंद माने अरु कहे कि देखा मैंने कैसी हिकमत करी? राज दरवारमें लोकोंकी चुगली करके स्थानचष्ट करे, मनमें खुसी माने. इत्यादि मृपानंद रौड है.

३ तीसरा चौर्यानंद रौड. सो नडक जीवोंसे कूड कपटकी वार्ता बना करके बहु मूली वस्तु थोडे दाममें ले लेवे. तथा पराचा धन, लेखेसें अथि

क लेवे, तथा चोरी करके किसीकी वहीमें अधिका उठा जित्त आप पैसा खाय जावे, अनेक कपटकी कलासें शेरकों राजी कर पीठे विचारे कि मै कैसा चतुर हूं, कि पैसानी खाया, अरु संतके सन्धानी बन गया? तथा व्यापार करे, तब खोटी जूठी सौगंद खावे, मीठा बोल कर दूसरोंको विश्वास उपजा कर न्यून अधिक देवे, अरु मनमें राजी होके कहेकि मेरे समान कमाऊ कौन है? तथा करके मनमें आनंद मानें कि मैने कैसी चोरी करी, कि जिसकी खबरची नहीं पड़ी? तथा जूठे खत पत्र बनाकर सरकारसें फते तब मनमें बड़ा आनंदित होवे, जो में बड़ा चलाक हूं, मैने धोखा दीया, इत्यादि चौथानंद, सो रौड ध्यानका तीसरा जेद है.

४ चौथा संरक्षणानंद रौड. सो परिग्रह, धन, धान्य, बहुत बढ़ावे, पीठ औरनी इत्ता करे, पाप कुटुंबके पोषणे वास्ते परिग्रहकी वृद्धि करे, बहुत कुबुद्धि करे, जैसे तैसे कामकों अंगीकार करे, लोक विरुद्ध, राजविरुद्ध, कुलविरुद्ध, धर्मविरुद्धादिक कामकी उपेक्षा न करे, ऐसे करतां पूर्व पुण्योदयसें पाप परिग्रह पावे, धन बहुत हो जावे, तब मनमें बहुत खुशी माने कि इतना धन मैने एकिलाने पैदा कीया है, ऐसा और कौन दुस्वार है, जो पैदा कर सके? ऐसा अहंकार करे, अहंकारमें मग्न रहे, रातबिन मनमें चिंता रहे, कि मत कनी मेरा धन नष्ट हो जावे. रातकों पूरा सो बेनी नहीं, हाट हवेलीके ताले टटोलता रहे, सगे पुत्रकाजी विश्वास न करे, लोकोंको कुबुद्धि सिखावे, इत्यादि संरक्षणानुबंधी रौडध्यान है, ये आति अरु रौड मिलकर प्रथम अपध्यानार्थदंमके जेद हैं, सो न करना चाहिये.

५ अब दूसरा पापकर्मोपदेश अनर्थदंम कहते हैं. सो हरेक अवसरमें परसंबंधि तथा दाक्षिण्यता वर्जिके पापोपदेश करे, जैसे तुमारे घरमें बड़े बड़े हो गये है, इनको बद्धीया करके समारो, नाकमें नथ गेरो, घोडेको घावक अस्वारको देवो, वो ईसको फेरके सिखावे, तथा तुमारे क्षेत्रमें सूड बहुत हो रहा है, उसको काटना तथा जलाना चाहिये, इत्यादि जो पापकारी काम है, तिसका विना प्रयोजन अज्ञानपणेसें उपदेश करे, यह दूसरा पापकर्मोपदेश अनर्थदंम है.

३ तीसरा हिंस्रप्रदान अनर्थदंम, सो हिंसाकारी वस्तु गाढी, हल, हल

लवारादि, अग्नि, मूशल, उखल, धनुष, तरकस, चक्र, झुरी, दातृ प्र  
दूस्तराँकों दक्षिणता विना, मागे विना, देवे सो हिंसप्रदान.

४ चौथा प्रमादाचरण अनर्थदंन. सो कुतूहलसैं गीत, नाटक, तमाशा,  
पेला प्रमुख सुनने देखने जानां, इंडियोंकी विषय पोषणी, इहां कुतूहल कह  
सैं जिनयात्रा, संघ, अछाश्महोत्सव, रथयात्रा, तीर्थयात्रा, इनके देखने  
गस्ते जावे, तो प्रमादाचरण नही, किंतु यह तो सम्यक्त्व पुष्टिके कारण है,  
तथा कामशास्त्र वात्सायनादिकोंके कर्म तिनमै अत्यंत गृहि वार वार उसका  
अन्यास करनां तथा जूआ खेलनां, मद्य पीनां, शिकार मारने जानां, तथा  
बलक्रीडा (तलाव प्रमुखमें कूदनां) जल उठालनां, तथा वृद्धशाखाके साथ  
रसां बांधकर फूलना (हिंचनां) हिंचोले (फुजानां) हिंचनां, तथा लाल,  
तीक्ष्ण, वटेरे, कूकडे, मिढे, जैसैं, हाथी, बुलबुल, इनको आपसमें लडानां  
तथा अपने शत्रुके बेटे पोतेसैं वैर रखना, वैर लेनां, तथा नक्तकथा सो  
“मांस, कुलमाप, मोदक, उंदनादि बहूत अन्न नोजन है, जो खाते है, उ  
नकों बड़ा स्वाद आता है, अरु हमनी यह खायंगे” इत्यादि कहनां, तथा स्त्री  
कथा, सो स्त्रीयोंके पहननेकी तथा अंगप्रत्यंग हावनावादि कथन रूप,  
तथा “कर्णाटी सुरतोपचारकुशला, लाटी विदग्धा प्रिये” इत्यादि. तथा स्त्री  
के रूपोत्पादन, कुच कंठन करणां, योनिसंकोच, इत्यादि स्त्री कथा करणी ति  
था देशकथा सो जैसैं दक्षिण देशमें अन्न, पाणी, अरु स्त्रीयोंसैं संजोग  
करनां बहूत अन्न है इत्यादि. तथा पूर्वदेशमें विचित्र वस्तु गुड, खंद,  
शालि, मद्यादि प्रधान चीजे होती हैं, तथा उत्तरदेशके लोक सूरमे है,  
घोड़े बड़े शीघ्र चलने वाले अरु दृढ होते हैं, तथा गेहू प्रमुख धान्य बहू  
त होता है, तथा केशर, मीठी झाड़ू, दाडिम, कौवादि जहां सुजज हैं.  
इत्यादि तथा पश्चिम देशमें इंडियकों सुखकारी सुख स्पर्शीवाले वस्त्र हैं,  
इत्यादि. तथा राजकथा सो जैसैं हमारा राज बड़ा सूरमा है, बड़ा धनवा  
न है, अश्वपति तुरक इत्यादि है. यह जैसैं चार अनुकूल कथा कही, जैसें  
ही चारो प्रतिकूल कथानी जान लेनी, तथा ज्वरादिरोग अरु मार्गका थ  
केवा, यह दोनों वर्जके संपूर्ण रात्रिकों सो रहनां (निद्रा लेनी) यह स  
र्व पूर्वोक्त प्रमादाचरणकों श्रावक वर्ज, तथा देशविशेषमेंनी प्रमाद न क  
रनां, तथा जिनमंदिरमें कामचेष्टा, हांती, लडाइ, हसना, थूकनां, निद्र



लेनां, चोर परदारिकादिकी खोटी कथा करनी, चार प्रकारका आचार खानां, यह चौथा अर्थदंभ है. इस व्रतके पांच अतिचार कहते हैं.

१ प्रथम कंदर्पचेष्टा. सो मुखविकार, भ्रूविकार, नेत्रविकार, हाथकी संज्ञा बतावे, पगकों विकारकी चेष्टा करके औरोंको हसावे, किसीको क्रोध उत्पन्न हो जावे, कुठका कुठ हो जावे, अपणी लघुता होवे, धर्मकी निंदा होवे, ऐसी कुचेष्टा करे, सो प्रथम कंदर्पचेष्टा अतिचार है.

२ दूसरा मुखसेंती मुखरता करे, असंबंध वचन बोले, जिस्से दूसरा का मर्म प्रगट होवे, कष्टमें गेरे, अपणी लघुता करे, वैर वधे, ढीठ, जबाब, चुगल खोरु, इत्यादि नाम धरावे, लोकोमें लज्जनीय होवे, इसी तरें त वाचालपणा करणां, सो दूसरा मुखारिचचन अतिचार.

३ तीसरा जोगोपजोगातिरिक्त अतिचार है, सो यहां स्नान, पान, जोजन, चंदन, कुंकुम, कस्तूरी, वस्त्र, आभरणादिक अपणे शरीरके जोगसें अधिक करणे, सो अर्थदंभ है. इहां वृद्ध आचार्योंकी यह संप्रदाय है, कि—तेल, आमले, दही प्रमुख, जे कर स्नानके वास्ते अधिक ले जावे, तो तद् लाभ्यता करके स्नान वास्ते बहुत लोक तलाव आदिकमें जायगे, तदा पाणीके पूरे, तथा अप्कायके जीवोंकी बहुत विराधना होवेगी, इस वास्ते श्रावककों ऐसे स्नान न करनां चाहिये. क्योंकि श्रावकके स्नानका यह विधि है कि.—श्रावकने प्रथम तो घरमेंही स्नान करनां चाहिये. तिसके अजावसें तेल, आमले, आकदिसें घरमेंही शिर घस करके मेल गेर करके तलावके कांठे उपरि बैठके अंजलिसें पाणी शिरमे माल करके स्नान करनां, तथा जिस फूलादिकमें जीवोंकी संसक्ति जाने, तिनकों परिहरे, ऐसे सर्व जगे जान लेनां. यह तीसरा जोगाधिक आरंभ अतिचार है.

४ चौथा कौकुब्ध अतिचार. सो जिसके बोलने करनेसें अपणी तथा औरोंकी चेतना, कामक्रोधरूप हो जावे, तथा विरहकी वात संयुक्त कथा, दोहा, साखी, वैत, फूलना, कवित, बंद, परजराग, श्लोक, शृंगाररसकी चरी हूइ कथा कहनी, यह चौथा काममर्म कथन अतिचार है.

५ पांचमा संयुक्ताधिकरण अतिचार. सो उखलके साथ मूसल, साथ फाला, गाडीसें युग, धनुपसें तीर. इत्यादि. इहां श्रावकने अधिकरण नही रखनां, क्योंकि संयुक्त रखनेसें कोइ ले लेवे, तो फेर जा

हिं करी जाती है, अरु जब अलग अलग होवे, तब उसको सुखसे उ  
 ढर दे सकेगा, ये पांचमा अतिचार कहा ॥ इति अष्टमव्रतं संपूर्ण ॥

अथ नवमा सामायिकव्रतका स्वरूप लिखते हैं इन पूर्वोक्त आगे व्र  
 तोंको तथा आत्मगुणोंको पुष्टिकारक अविरति कषायमें तादात्म्यभावसे  
 मिली अनादि अशुद्धता रूप विजाव परिणति, तिसके अन्यासको मिटाने  
 वास्ते अरु आत्मअनुभव करने वास्ते तथा सहजानंद स्वरूपरस प्रगट कर  
 ने वास्ते यह नवमा शिष्टाव्रत है, अर्थात् शुद्ध अन्यासरूप नवमा सामायिक  
 व्रत लिखते हैं. दो घडी काल प्रमाण समतामें रहना, राग द्वेषरूप हेतुओंमें  
 मध्यस्थ रहणां, तिसको पंमित सामायिक व्रत कहते हैं, (सम) नाम है राग  
 द्वेषरहित परिणाम होनेसे जो ज्ञान दर्शन चरित्ररूप मोक्ष मार्ग, तिसका  
 "आय" नाम जान होवे प्रथमसुख रूप इनका जो एक केतां जाव सो  
 सामायिक है, मन, वचन, कायकी खोटी चेष्टा एतावता आर्तध्यान तथा  
 रौड्यान त्यागके अरु सावद्य मन, वचन, काया, पाप चिंतन, पापोपदे  
 श, पापकरणरूप वर्जके श्रावक सामायिक करे. इहां आवश्यक शास्त्रमें  
 लिखा है, कि जब श्रावक सामायिक करता है, तब साधुकी तरें हो  
 जाता है, इस वास्ते श्रावक सामायिकमें देवस्नात्र, पूजादिक, न करे,  
 क्यों कि जावस्तवके वास्ते इव्यस्तव करनां है, सो जावस्तव सामायिकमें  
 प्राप्त हो जाता है, इस वास्ते श्रावक सामायिकमें इव्यस्तव रूप जिनपूजा  
 न करे, सामायिक करने वाला मनुष्य बत्तीस दूपण वर्जके सामायिक करे,  
 सो बत्तीस दूपणमें प्रथम कायाके बार दूपण कहते हैं.

१ सामायिकमें पग उपर पग चढा करके उंचा आसन ( पालवी ) ज  
 गाकर बैठे, सो प्रथम दूपण है, कारण कि गुरुविनयकी हानि कारक होने  
 तें यह अनिमानका आसन है, इस वास्ते जिस बैठनेसे विनयगुण रहे, और  
 उदता मालुम न होवे, तथा अजयणा न होवे, ऐसे आसन उपर बैठे.

२ दूसरा चलासन दोष. सो आसन स्थिर न रखे, वारं वार आगे पीठें  
 हलावे, चपलाइ करे, मुख्य मार्ग तो यह है, कि श्रावक एक जगे एकही  
 आसन उपर सामायिक पूरा करे, अग्निग पणसे रहे, कदापि रोग निर्बल  
 तादि कारण करके एक आसन उपर टिका न जाय, फिरनां पडे, तो उ

लेना, चोर परवारिकादिकी खोटी कथा करनी. चार प्रकारका अन्न खाना, यह चौथा अनर्थदंभ है. इस व्रतके पांच अतिचार कहते हैं.

१ प्रथम कंदर्पचेष्टा. सो मुखविकार, ब्रूविकार, नेत्रविकार, हाथ संज्ञा बतावे. पगकों विकारकी चेष्टा करके औरोंको हसावे, किसीको को उत्पन्न हो जावे, कुठका कुठ हो जावे, अथवा लघुता होवे, धर्मकी निंदा होवे, अथवा कुचेष्टा करे, सो प्रथम कंदर्पचेष्टा अतिचार है.

२ दूसरा मुखसेती मुखरता करे, अतंबंध वचन बोले, जिससे दूसरे का मर्म प्रगट होवे, कष्टमे गेरे, अथवा लघुता करे, वैर वधे, डीठ, लडा, चुगल खोरु, इत्यादि नाम धरावे, जोकोमें लज्जनीय होवे, इती तरे त वाचालपणा करणा, सो दूसरा मुखारिवचन अतिचार.

३ तीसरा जोगोपनोगातिरिक्त अतिचार है, सो यहां स्नान, पान, नोजन चंदन, कुंकुम, कस्तूरी, चम्पू, आनरणादिक अथवा शरीरके जोगसे अतिकरणे, सो अनर्थदंभ है. इहां दूध आचार्योंकी यह संप्रदाय है, कि तेल, आमले, दही प्रमुख, जे कर स्नानके वास्ते अधिक ले जावे, तो त लौब्यता करके स्नान वास्ते बहुत लोक तजाव आदिकमें जायगे, तद पाणीके पूरे, तथा अप्कायके जीवोंकी बहुत विराधना होवेगी. इस वस्ते श्रावककों असे स्नान न करना चाहिये. क्योंकि श्रावकके स्नानका यह विधि है कि.— श्रावकने प्रथम तो घरमेंही स्नान करना चाहिये. तिससे अजावसे तेल, आमले, आकदिसे घरमेंही शिर घस करके मैल गेर करवे तजावके काठे उपरि बैठके अंजलिसे पाणी शिरमें माल करके स्नान करना तथा जिस फूलदिकमें जीवोंकी संसक्ति जाने, तिनको परिहरे, असे स जगे जान लेना. यह तीसरा जोगाधिक आरंज अतिचार है.

४ चौथा कौकुच्य अतिचार. सो जिसके बोलने करनेसे अथवा तथा औरोंकी चेतना, कामक्रोधरूप हो जावे, तथा विरहकी बात संयुक्त कथा दोहा, साखी, वैत, फूलना, कवित, वंद, परजराग, श्लोक, शंगाररसकी चरी दूह कथा कहनी, यह चौथा काममर्म कथन अतिचार है.

५ पांचमा संयुक्ताधिकरण अतिचार. सो उखलके साथ मूसल, हलके साथ फाला, गाडीसे युग, धनुषसे तीर. इत्यादि. इहां श्रावकने संयुक्त अधिकरण नहीं रखना, क्योंकि संयुक्त रखनेसे कोइ ले लेवे, तो फेर ना

हीं करी जाती है, अरु जब अजग अजग होवे, तब उसको सुखसे उर दे सकेगा, ये पांचमा अतिचार कहा ॥ इति अष्टमव्रतं संपूर्ण ॥

अथ नवमा सामायिकव्रतका स्वरूप लिखते हैं. इन पूर्वोक्त आठों व्रतों तथा आत्मगुणोंको पुष्टिकारक अविरति कपायमें तादात्म्यभावसे मेली अनादि अद्युद्धता रूप विजाव परिणति, तिसके अन्यासको मिटाने वास्ते अरु आत्मअनुभव करने वास्ते तथा सहजानंद स्वरूपरस प्रगट करे वास्ते यह नवमा शिक्षाव्रत है, अर्थात् अद्युद्ध अन्यासरूप नवमा सामायिक व्रत लिखते हैं. दो घडी काल प्रमाण समतामें रहना, राग द्वेषरूप हेतुओंमें स्थिर रहना, तिसको पंडित सामायिक व्रत कहते है, (सम) नाम है राग द्वेषरहित परिणाम होनेसे जो ज्ञान दर्शन चारित्ररूप मोक्ष मार्ग, तिसका 'आय' नाम जान होवे प्रथमसुख रूप इनका जो एक केतां जाव सो सामायिक है, मन, वचन, कायकी खोटी चेष्टा एतावता आर्तध्यान तथा इध्यान ध्यागके अरु सावय मन, वचन, काया, पाप चिंतन, पापोपदे, पापकरणरूप वर्जके श्रावक सामायिक करे. इहां आवश्यक शास्त्रमें लेखा है, कि जब श्रावक सामायिक करता है, तब साधुकी तरें हो जाता है, इस वास्ते श्रावक सामायिकमें देवस्नात्र, पूजादिक, न करे, सो कि जावस्तवके वास्ते इव्यस्तव करनां है, सो जावस्तव सामायिकमें पास हो जाता है, इस वास्ते श्रावक सामायिकमें इव्यस्तव रूप जिनपूजा करे, सामायिक करने वाला मनुष्य बत्तीस दूषण वर्जके सामायिक करे, सो बत्तीस दूषणमें प्रथम कायाके वार दूषण कहते है.

१ सामायिकमें पग उपर पग चढा करके उंचा आसन ( पालवी ) ली जाकर बैठे, सो प्रथम दूषण है, कारण कि गुरुविनयकी हानि कारक होने से यह अजिमानका आसन है, इस वास्ते जिस बैठनेसे विनयगुण रहे, अर्थात् अद्युद्धता मालुम न होवे, तथा अजयणा न होवे, ऐसे आसन उपर बैठे.

२ दूसरा चलासन दोष. सो आसन स्थिर न रहे, वारं वार आगे पीछे जावे, चपलाइ करे, मुख्य मार्ग तो यह है, कि श्रावक एक जगे एकही आसन उपर सामायिक पूरा करे, अग्निग पणसे रहे, कदापि रोग निर्वृत्ति आदि कारण करके एक आसन उपर टिका न जाय, फिरनां पड़े, तो ३

पयोग संयुक्त जयणा पूर्वक चरयलासें जहां तहां पूंजना प्रमार्जना आसन फिरावे, यह पूर्वोक्त विधि न करे, तो दूसरा दूषण लगे.

३ तीसरा चलदृष्टि दोष है. सो सामायिक करे, पीठे नासिका ऊपर रखे, अरु मनमें शुद्ध उपयोग राखे, मौन पणोंसें ध्यान करे, अरु सामायिकमें शास्त्रान्यास करनां होवे, तो यत्नपूर्वक मुख आगे मुखवर्षिका दे कर, दृष्टि पुस्तक उपर रख के पढे, अरु सुणे, तथा जब कायां त्तर्ग करे, तब चार अंगुल पीठें पग चौड़ा राखे, ऐसी योग मुद्रासें खडा हो कर दोनो वाहु प्रलंबित करे, दृष्टि नासिका उपर रखे, अथवा सङ्के (दहिने) पगके अंगूठे ऊपर रखे, यह शुद्ध सामायिक करनेकी विधि है, इस विधिकों ठोडके चल पणोंसें चकितभृगकी तरें चारोंदिशि आंखें-फिरावे, सो तीसरा दोष है.

४ चौथा साव्यक्रियादोष. सो क्रिया तो करे, परंतु तिसमें कबुक् साव्य क्रिया करे, अथवा साव्य क्रियाकी संज्ञा करे, सो चौथा दोष.

५ पांचमा आलंबन दोष. सो सामायिकमें नीतादिकका आलंबन अर्थात् पीठ लगा कर बैठे, यह बिना पूंजी नीतमें अनेक जीव बैठे हुए होते हैं, सो मर जाते हैं. तथा आलंबनसें नीटनी आ जाती है.

६ षष्ठा आकुंचन प्रसारण दोष. सो सामायिक करके बिना प्रयोजन हाथ, पग, संकोचे, लांवा करे, सामायिकमें तो महोटे कारण बिना हलनां नहीं, जरूरी काममें चरयलासें पूंजन प्रमार्जन करके हलवे.

७ सातमा आलस दोष. सो सामायिकमें अंगमें आलस मोडे, अंगुलियांके कडाके काढे, कमर बांकी करे, ऐसी प्रमादकी वाहुव्यतासें प्रतम अनाडर होता है, कायामें अरति उत्पन्न हो जाती है, जब कठे, तब आलस मोड कर अतिअशोजनिक बढे. यह सातमा आलस दोष.

८ आठमा मोटन दोष. सो सामायिकमें अंगुली प्रमुख टेढ़ करी कडाका काढे. ए पण प्रमादकी प्रबलतासे होता है.

९ नवमा मल दोष. सो सामायिक ले करके खाज करे, मुख्यवृत्ति तो सामायिकमें खाज नहीं करणी, परंतु जब लाचार होवे, तब चरबल प्रमुखसें पूंजन प्रमार्जन करके हलवे हलवे खाज करे यह शैली है.

१० दशमा विमासण दोष. सो सामायिकमें गलेमें हाथ दे कर बैठे

- ११ इग्यारवा निडा दोष. सो सामायिकमें नींद लेवे.
- १२ बारमा शीत प्रमुखकी प्रबलतासें अपने समस्त अंगोपांग वस्त्र करके ढांके, यह बारां दोष कायासें उत्पन्न होते हैं, इनको सामायिकमें बनें. अब वचनके दश दोष हैं सो लिखते हैं.
- १ प्रथम कुबोल दोष. सो सामायिकमें कुवचन बोले.
- २ दूसरा सहसात्कार दोष. सो सामायिक ले करके विना विचारे बोले.
- ३ तीसरा असदारोपण दोष. सो सामायिकमें दूसरोंको खोटी मति देवे.
- ४ चौथा निरपेक्ष वाक्य दोष सो सामायिकमें शास्त्रकी अपेक्षाविना बोले.
- ५ पांचमा संक्षेप दोष. सो सामायिकमें सूत्र, पाठ, संक्षेप करे, अक्षर पाठ हीना कहे. यथार्थ कहे नहीं, सो पांचमा दोष है.
- ६ षष्ठा कलह दोष. सो सामायिकमें साधर्मियोंसें क्लेश करे, सामायिकमें तो कोइ मिथ्यात्वी गालीयां देवे, उपसर्ग करे, कुवचन बोले, तोनी तिसके साथ लडाइ नही, करनी चाहियें, तो फेर अपने साधर्मिके साथ तो विज्ञोप करके लडाइ करणीहीं नही, जेकर करे, तो षष्ठा दोष लगे.
- ७ सातमा विकथा दोष. सो सामायिकमें बैठके देशकथादि चार विकथा करे, सामायिकमें तो स्वाध्याय अरु ध्यानही करना चाहिये.
- ८ आठमा हास्य दोष. सो सामायिकमें दूसरोंकी हांसी करे, मस्करी करे.
- ९ नवमा अशुद्धपाठ दोष सो सामायिकमें सामायिकका सूत्रपाठ शुद्ध न उच्चारै, हीनाधिक उच्चारै, यक्षा तक्षा सूत्र पढे.
- १० दशमा मुणमुण दोष. सो सामायिकमें प्रगट स्पष्ट अक्षर न उच्चारै, दूसरोंको तो जैसा मह्वर जणजणाट करता होवे, ऐसा पाठ मालुम पडे, पद अरु गाथाका कुठ ठिकाना मालुम न पडे गडबड करके उतावलसें पाठ पूरा करे. यह दश दोष वचनके हैं. अब मनके दश दोष लिखते हैं.
- १ प्रथम अविवेक दोष. सो सामायिक करके सर्वक्रिया करे, परंतु मनमें विवेक नहीं निर्विवेकतासें करे, मनमें ऐसा विचारे कि सामायिक करनेसें कौन तरा है? इसमें क्या फल है? इत्यादि विकल्प करे.
- २ दूसरा यशोवाढा दोष. सो सामायिक करके यशःकीर्तिकी इच्छा करे.
- ३ तीसरा धनवाढा दोष. सो सामायिक करनेसें मुजे धन मिलेगा.
- ४ चौथा गर्वदोष. सो सामायिक करके मनमें गर्व करे कि मुजे

लोक धर्मी कहेंगे, मैं कैसे सामायिक करता हूँ, मूर्ख लोक क्या समझता है।

५ पांचमां जय दोष. सो लोकोकी निंदासें करता हुआ सामायिक क्योंकि लोक कहेंगे कि देखो आवकके कुलमें उत्पन्न हुआ है, बड़ा कहनेमें आता है, परंतु धर्म कर्मका नामनी नहीं जानता, धर्म तो दूर रखे परंतु हररोज सामायिकनी नहीं करता, ऐसी निंदासें करता हुआ करे।

६ षष्ठा निदान दोष. सो सामायिक करके निदान करे कि इस सामायिकके फलसें मुझे धन, स्त्री, पुत्र, राज्य, जोग, इंद्र, चक्रवातिका पद मिले।

७ सातमा संज्ञय दोष. सो क्या जाने सामायिकका फल होवेगा कि नहीं होवेगा ? जिसको तत्त्वकी प्रतीति न होवे, सो यह विकल्प करे।

८ आठमा कपाय दोष. सो सामायिकमें कपाय करे, अथवा क्रोध करके तुरत सामायिक करके बैठ जाय. सामायिकमें तो कपाय त्याग नां चाहिये।

९ नवमा अविनय दोष. सो विनय हीन सामायिक करे।

१० दशमा श्रवहुमान दोष. सो सामायिक बहुमान जक्तिनाव उस्ता ह पूर्वक न करे. यह दश मनके दोष कहे. श्रु पूर्वोक्त बारह कपाय तथा दश वचनके मिल कर बचीस दूषण रहित सामायिक करे, इस सामायिक व्रतके पांच अतिचार टाले, सो पांच अतिचार कहते हैं।

१ प्रथम कायडुप्रणिधान अतिचार. सो शरीरके व्यवय हाथ, पा प्रमुख, बिना पूंजे प्रमार्जे हलावे, नीतके पीठ लगा कर बैठे।

२ दूसरा मनोडुप्रणिधान अतिचार. सो मनमें कुव्यापार चिंतन क्रोध, लोच, झोह, अन्निमान, ईर्ष्या, व्यासंग, संत्रमचित रहित सामायिक करे।

३ तीसरा वचन डुप्रणिधान अतिचार. सो सामायिकमें सावय वचन बोले, सूत्राक्षर हीन पढे. सूत्रका स्पष्ट उच्चार न करे।

४ चौथा अथनवस्था दोषरूप अतिचार. सो सामायिक वखत सिर न करे, जेकर करेनी तोनी वे मर्यादासें आदर विना उतावलसें करे।

५ पांचमा स्मृतिविहीन अतिचार. सो सामायिक करी, कि नहीं ? सामायिक पारीकि नहीं ? ऐसी चूल करे. इति नवम सामायिक व्रतं संपूर्ण ॥

अथ दशमा विशावकाशिक व्रत लिखते हैं. उछे व्रतमें जो दिशोंका परिमाण करा है, सो जावङ्गीवे तहां तक है, उसमे तो क्षेत्र बहुत लुट रखा है, तिसका तो रोज काम पडता नहीं, इस वास्ते दिन दिन प्रत्ये संक्षेप

करे, जैसें आजके दिन दश कोश वा पंद्ररां कोश वा पांच कोश, अथवा नगरके दरवाजे तक, वा कोश, अर्धकोश, बाग बगीचे तक, घरका हृद तक जाना आनां है, उपरांत नियम करनां, सो दिशावकाशिकव्रत है ए ठठे व्रत का संक्षेपरूप है, उपलक्षणसें पांच अणुव्रतादिकका संक्षेप थोड़े कालका सोनी इसी व्रतमें जान लेनां, यह व्रत चार मास, एक मास, वीश दिन, पांच दिन अहोरात्रि, अथवा एक दिन, एक रात्रि, तथा एक मुहूर्त्तमात्रनी हो सक्ता है, इसका नियम जैसें करे कि मैं अमुक ग्रामादिकमें काया कर के जाउगा, उपरांत जानेका निषेध है, इस व्रत वाले प्राणीके देश परदे सका जिनके व्यापार होवे, सो जैसें कहे कि मुजकों काय करके इतने दूरे उपरांत जानां नहि, परंतु दूर देशका कागज प्रमुख जिखां दूथा आवे, सो बांचुं अथवा कोई मनुष्य जेजना पडे, उसका आगार है. परदेशकी बात सुननेका आगार है, अरु जिसका दूरका व्यापार नहि होवे, सो चीछी खत, पत्रनी न बांचे, अरु आदमीनी न जेजे, तथा चित्तकी वृत्तिसें जेकर संकल्प विकल्प न होवे, तो परदेशकी बातनी न सुने. जेकर नहि रहा जावे, तो आगार रक्के, परंतु जान करके दोष न लगावे. यह देशवकाशिक व्रत सदा सवेरके वखत चौदह नियमकी यादगिरीमें उपयोगसें रक्के, अरु रात्रिकों जूदा रक्के, यह व्रत जैसें गुरुमुखसें धारे, तैसें करे (पाले) अरु इस व्रतके पांच अतिचार टाले, सो कहते हैं.

१ प्रथम आणवण प्रयोग अतिचार. सो नियमकी जूमिकासें बाहिरकी कोइ वस्तु होवे, तिसकी गरज पडे, तब विचारे की मेरे तो नियमकी जूमिकासें बाहिर जानेका नियम है, तब कोइ जाता होवे, तदा तिसकों कह करके वो वस्तु मंगवा लेवे, अरु मनमे यह विचारेकी मेरा व्रतनी जंग नहि दूथा, अरु वस्तुनी आ गइ, यह प्रथम अतिचार है.

२ दूसरा पेसवण प्रयोग अतिचार. सो दूसरे आदमीके हाथ नियमसें बाहिरली जूमिकामें कोइ वस्तु जेजे, सो दूसरा अतिचार है.

३ तीसरा सहाणुवाय अतिचार. सो नियमकी जूमिकासें बाहिर, कोइ आदमी जाता है, तिस्से कोइ काम है, तब तिसकों खुंवारादि शब्द करके बोलावे, फेर कहे कि अमुक वस्तु ले आनां, तब तीसरा अतिचार लगे.

४ चौथा रूपानुपाती अतिचार. सो कोइक पुरुष उसके नियमकी जूमि



लोक धर्मी कहेंगे; मैं कैसे सामायिक करता हूँ; मूर्ख लोक क्या समझे ?  
 १५ पांचमा नव दोष. सो लोकोंकी निंदासें मरता हुआ सामायिक करे,  
 क्योंकि लोक कहेंगे कि देखो श्रावकके कुलमें उत्पन्न हुआ है, बड़ा पुस्तक  
 कहनेमें ध्याता है, परंतु धर्म कर्मका नामनी नहीं जानता, धर्म तो दूर रहा,  
 परंतु हररोज सामायिकनी नहीं करता, अैसी निंदासें मरता हुआ करे.

६ ठछा निदान दोष. सो सामायिक करके निदान करे, कि इस सामायिकके फलसें मुझे धन, स्त्री, पुत्र, राज्य, जोग, इंद्र, चक्रवर्तिका पद मिले.

७ सातमा संशय दोष. सो क्या जाने सामायिकका फल कि नही होवेगा ? जिसको तत्त्वकी प्रतीत न होवे, सो यह विकल्प करे.

८ आठमा कषाय दोष. सो सामायिकमें कषाय करे, अथवा सो तुरत सामायिक करके बैठ जाय. सामायिकमें तो कषाय त्याग ना चाहिये.

९ नवमा अविनय दोष. सो विनय हीन सामायिक करे.

१० दशमा अशुभमान दोष. सो सामायिक बहुमान नकिनाव उस्ताह पूर्वक न करे. यह दश मनके दोष कहे. अरु पूर्वोक्त बारह कायाके तथा दश वचनके मिल कर बत्तीस दूषण रहित सामायिक करे, इस सामायिक व्रतके पांच अतिचार टाले, सो पांच अतिचार कहते है.

१ प्रथम कायडुःप्रणिधान अतिचार. सो शरीरके अवयव हाथ, पैर, प्रमुख, बिना पूजे प्रमार्जे हलावे, नीतके पीठ लगा कर बैठे.

२ दूसरा मनोडुःप्रणिधान अतिचार. सो मनमें कुब्यापार चिंतन क्रोध, लोच, डोह, अजिमान, ईर्ष्या, व्यासंग, संभ्रमचित्त सहित सामायिक करे.

३ तीसरा वचन डुःप्रणिधान अतिचार. सो सामायिकमें सावध वचन बोले; सूत्राक्षर हीन पढे. सूत्रका स्पष्ट उच्चारन करे.

४ चौथा अशुभवस्था दोषरूप अतिचार. सो सामायिक वखत सिर न करे, जेकर करेनी तोनी वे मर्यादासें आदर विना उतावलसें करे.

५ पांचमा स्मृतिविहीन अतिचार. सो सामायिक करी, कि नहीं ? सामायिक पारीकि नहीं ? अैसी चूल करे. इति नवम सामायिक व्रत संपूर्ण ॥

अथ दशमा दिशावकाशिक व्रत लिखते है. उठे व्रतमें जो दिशोंका परिमाण करा है, सो जावळीवे तहां तक है, उसमें तो क्षेत्र बहुत बृष्ट रक्ता है, तिसका तो रोज काम पडता नहीं, इस वास्ते दिन दिन प्रत्ये संक्षेप

करे, जैसे आजके दिन दश कोश वा पंद्रां कोश वा पांच कोश, अथवा  
 गणके दरवाजे तक, वा कोश, अर्धकोश, बाग बगीचे तक, घरका हृद तक  
 जाना आना है, उपरांत नियम करना, सो विशावकाशिकव्रत है ए ठठे व्रत  
 का संक्षेपरूप है, उपलक्षणसें पांच अणुव्रतादिकका संक्षेप थोड़े कालका  
 सोनी इती व्रतमें जान लेनां, यह व्रत चार मास, एक मास, बीस दिन, पां  
 च दिन अहोरात्रि, अथवा एक दिन, एक रात्रि, तथा एक मुहूर्त्तमात्रनी हो  
 सका है, इसका नियम जैसे करे कि मैं अमुक ग्रामादिकमें काया कर  
 के जाउंगा, उपरांत जानेका निषेध है, इस व्रत वाले प्राणीके देश परदे  
 शका जिनके व्यापार होवे, सो जैसे कहे कि मुज्जकों काय करके इतने के  
 न उपरांत जानां नहि, परंतु दूर देशका कागज प्रमुख लिखा हुआ आवे,  
 सो बांचुं अथवा कोइ मनुष्य जेजनां पडे, उसका आगार है. परदेशकी  
 बात सुननेका आगार है, अरु जिसका दूरका व्यापार नहि होवे, सो चीछी  
 खत, पत्रनी न वांचे, अरु आदमीनी न जेजे, तथा चित्तकी वृत्तिसें जे  
 कर संकल्प विकल्प न होवे, तो परदेशकी बातनी न सुने. जेकर नहि रहा  
 जावे, तो आगार रक्के, परंतु जान करके दोष न लगावे. यह देशावकाशि  
 क व्रत सदा सवेरके वखत चौदह नियमकी यादगिरीमें उपयोगसें रक्के,  
 अरु रात्रिकों जूदा रक्के, यह व्रत जैसें गुरुमुखसें धारे; तैसें करे (पाले)  
 अरु इस व्रतके पांच अतिचार टाले, सो कहते हैं.

१ प्रथम आणवण प्रयोग अतिचार. सो नियमकी जूमिकासें बाहिरकी  
 कोइ वस्तु होवे, तिसकी गरज पडे, तब बिचारेकी मेरे तो नियमकी जूमि  
 कासें बाहिर जानेका नियम है, तब कोइ जाता होवे, तब तिसकों कह  
 करके वो वस्तु भंगवा लेवे, अरु मनमे यह बिचारेकी मेरा व्रतनी जंग  
 नहि हुआ, अरु वस्तुनी आ गइ, यह प्रथम अतिचार है.

२ दूसरा पेसवण प्रयोग अतिचार. सो दूसरे आदमीके हाथ नियम  
 से बाहिरकी जूमिकामें कोइ वस्तु जेजे, सो दूसरा अतिचार है.

३ तीसरा सदाणुवाय अतिचार. सो नियमकी जूमिकासें बाहिर, कोइ  
 आदमी जाता है, तिससें कोइ काम है, तब तिसकों खुंखारादि शब्द कर  
 के बोलावे, फेर कहे कि अमुक वस्तु ले आनां, तब तीसरा अतिचार लगे.

४ चौथा रूपानुपाती अतिचार. सो कोइक पुरुष उसके नियमकी जूमि

कासें बाहिर जाता है, तिसके साथ कोइ काम है, तब हाट हवेली र चढके उसको अपणा रूप दिखावे, तब वो आदमी उसके पास आवे पीठें आपणे मतलबकी उस्सें बातां करे, तब चौथा अतिचार लगे।  
 ५ पांचमा पुज्जाक्षेप अतिचार. सो नियमकी नूमिकासें बाहिर को पुरुष जाता है, तिसके साथ कोइ काम है, तब तिसको कंकरा मारे, जब वो देखे, तब तिसके पास आवे, तब उसके साथ बात चीत करे, यह पांचमा अतिचार ॥ इति दशम देशाचकाशिकं व्रतं संपूर्ण ॥

अथ इग्यारहवा पोपधोपवास नामा व्रत लिखते है. यह पौपधव्रतके चार जेद हैं, उसमें प्रथम आहार पोपध है, तिसकेजी दो जेद हैं. एक देशतः दूसरा सर्वत. तहां देशसें तो त्रिविहार उपवास करके पोपध करे, अथवा आचाम्ल करके पोपध करे, अथवा त्रिविहार एकाशनां करके पोपध करे, यह तीन प्रकारसें देश पोपध होता है, तिसकी विधि लिखते हैं.

पोपध करनेसें पहिले अपने घरमें कह ररेके कि मै आज पोपध करुंगा, इस वास्ते आचाम्ल अथवा एकाशना करा है, नोजनके अवसरमें आहार करनेको आउंगा, अथवा तुमने पोपधशालामें ले आनां, पीठेसें पोपध करने को जावे, तहां पोपध करके देववदन करके, पीठे चरवला, मुखवस्त्रिका, पूंठणा, ये तीन उपकरण साथ ले करके चादर ओढ करके साधुकी तरें अपयोग संयुक्त मार्गमें यत्नसे चल कर नोजनके स्थानकमें जा करके, इ रियावहिया पडिक्रमे, गमनागमनकी आलोचना करे. पीठे पूंठणा उप र वैठके आहार करनेका नाजन प्रतिलेखके पीठें अपने लेने योग्य आहार लेवे, साधुकी तरें रसगृहसें रहित आहार करे, मुखसें आहारको अ ह्वा बुरा न कहे, आहारका जूठ गेरे नही, आहार करे पीठे उष्ण जल से आहारका बरतन धो कर पी जावे, बरतन शुद्ध करके सूका करके उपयोग संयुक्त पोपधशालामें आवे, पूर्वस्थानमें जा कर वैठे, परंतु मार्गमें जाते आते किसीके साथ बात न करे, इत रीतसें स्वस्थानकमें आवे. इ रियावही पडिक्रमके चैत्यवदन करके धर्मक्रियामें प्रवर्त्ते, तथा आहार अपना कोइ संबंधी अथवा सेवक ले आवे, तोजी पूर्वोक्त रीतसें आहार करके बरतन पीठें दे देवे, पीठें धर्मक्रियामें प्रवर्त्ते, तिसको देशसे पोपध कहते है, तथा जो चउविहार करके पोपध करे, सो सर्वसें पोपध कहिये, यह प्रथम जेद.

२ दूसरा शरीरसत्कार पोषध. सो सर्वथा शरीरका सत्कार, स्नान, धोवन, धावन, तैलमर्दन, वस्त्राञ्जरादि शृंगार प्रमुख कोइनी शुश्रूषा न करे, साधुकी तरें अपरिर्कर्मित शरीर रहे, तिसको सर्वथा शरीर सत्कार पोषध कहते हैं तथा पोषधमें हाथ, पग प्रमुखकी शुश्रूषा करनी, तिसका आगार रक्के, उसको देशसत्कार पोषध कहते है.

३ तीसरा अब्रह्मपोषध. सो त्रिकरण शुद्ध ब्रह्मचर्यव्रत पाले, वो सर्वथा ब्रह्मचर्य पोषध है. अरु मन, वचन, दृष्टि प्रमुखका आगार रक्के, अथवा परिमाण रक्के, सो देशसें ब्रह्मचर्य पोषध है.

४ चौथा सर्वथा सावद्य व्यापारका त्याग. सो सर्वसें अव्यापार पोषध है. अरु जे एकादि व्यापारका आगार रक्के, सो देशसें अव्यापार पोषध जाननां.

एवं चार प्रकारके पोषधके दो दो जेठ है, सो प्रथम जब आगम व्यवहारी गुरु होते थे, अरु श्रावकनी शुद्ध उपयोग वाले होते थे, तब जो जो प्रतिज्ञा लेते थे, सो सो प्रतिज्ञा अखंडित तैसीही पालते थे, परंतु नूलते नहीं थे, अरु न्यूनाधिकनी नहीं करते थे, और गुरुनी अतिशय ज्ञानके प्रभावसे योग्यता जान कर देश, सर्व, पोषधका आदेश देते थे, तथा श्रावक कदाचित् नूलनी जाते थे, तो नी तत्काल प्रायश्चित्त ले लेते थे, अरु इस कालमें तो जैसे उपयोगी जीव है नहीं, इखमकालके प्रभावसे जडबुद्धि जीव बहुत है, इस वास्ते पूर्वाचार्योंने उपकारके अर्थ आहार पोषध तो दोनों करने, अरु जेप तीन पोषध जीतव्यवहारके अनुसारें निषेध कर दी है यही प्रवृत्ति वर्तमान संघमें प्रचलित है, पोषध तो श्रावकों जरूर करना चाहिये. कारणकि कर्मरूप नावरोगकी यह औपधि है, ताते जब पर्वदिन आवे, तब जरूर पोषध करे. इसका पांच अतिचार टाले, सो कहते हैं.

१ प्रथम अप्पडिलेहिय डुप्पडिलेहिय सिंघासथारक अतिचार. सो जिस स्थानमें पोषध संस्थारक करा है, तिस जूमिकी तथा संथाराकी पडिलेहणा न करे, एतावता संथारेकी जगा अड्डी तरें निगाह करिके नेत्रोंसे देखे नहीं अरु कदापि देखे, तोनी प्रमादके उदयसें कुठ देखी कुठ न देखी जैसे करे.

२ दूसरा अप्पमच्चिय डुप्पमच्चिय सिंघासथारक अतिचार. सो संथाराको रजोहरणादिक करके पूजे नहीं, कदापि पूजे, तोनी यथार्थ न पूजे, गड बड कर देवे, जीवरक्षा न करे, तो दूसरा अतिचार लागे.

३ तीसरा अण्डिलेहिय डण्डिलेहिय उच्चारपासवण नूमि अतिचार, सो लघुशंका, बडीशंका, परिष्ठवणेकी नूमिका, नेत्रोंसें अवलोकन करे, अरु अवलोकन करे, तोजी अलसु पलसु करके काम चलावे, जी वयत्त विना करे, परिष्ठवे, तो तीसरा अतिचार लागे.

४ चौथा अण्डमधियडण्डमधिय उच्चारपासवणनूमि अतिचार, सो जहां मूत्र, विष्ठा करे, उस नूमिकाको उच्चारप्रसवण करनेसें पहिलां पूंजे नहीं, जे कर पूंजे, तोजी यदा तदा पूंजे, परंतु यत्तसें न पूंजे.

५ पांचमा पोषधविद्विवरीए अतिचार. सो पोषधमें कृथा लगे तब पारणेकी चिंता करे, जैसेकि प्रजातमे अमुक रसोइ अथवा अमुक वस्तुका आहार करुंगा, तथा अमुक कार्य करणा है, तहां जाना पडेगा, अमुक उपर तगादा करुंगा, तथा प्रजातमें पोषध पारके अही तरें तेजम र्वन कराउंगा, अहे गरम पानीसें स्नान करुंगा, तथा अमुक पोसाक करुंगा, स्त्रीके साथ जोग करुंगा, इत्यादि सावध्य चिंतवणा करे, तथा सध्या समयें पोषधके मंगल शोधन न करे, सर्व रात्रि सूता रहे, विकथा करे, पोषधके अक्षरह दूपण हैं, सो वर्जे नही, सो अक्षरह दूपण लिखते हैं.

१ विना पोषेवालेका व्याया हूआ जल पीवे, २ पोषध वास्ते सरस आहार करे, ३ पोषधके अगले दिन विविध प्रकारका संयोग मिलाय के आहार करे, ४ पोषध निमित्त अथवा पोषधके अगले दिनमें विनूपा करे, ५ पोषध वास्ते वस्त्र धोवावे, ६ पोषध वास्ते आचरण घडाके पहिरे, स्त्रीनी नय, कंकणादि सोहागके चिन्ह वर्जके दूसरा नवा गदनां घडाके पहिरे, ७ पोषध वास्ते वस्त्र रंगा कर पहिरे, ८ पोषधमें शरीर की मैल उतारे, ९ पोषधमें विना काल निडा करे, १० पोषधमें स्त्रीकथा करे, स्त्रीकों जली बूरी कहे, ११ पोषधमें आहार कथा करे, जोज नकों अहा बूरा कहे, १२ पोषधमें राजकथा करे, बुद्धकी वात सुने कहे, १३ पोषधमें देश कथा करे, अहा बूरा देश कहे, १४ पोषधमें लघुशंका अरु बडीशंका सो नूमिका पंज्या विना करे, १५ पोषधमें दूत रोकी निंदा करे, १६ पोषधमें स्व माता, पुत्र, जाइ प्रमुखसे स्त्रीके अ

गोपांग, स्तन, जघनादि देखे, यह अक्षरह दूषण पोषधमें वर्जे, तो शुद्ध पोषध जाननां. अन्यथा पांचमा अतिचार लागे. इति एकादश व्रत॥

अथ बारहवा अतिथिसंविनागव्रत लिखते हैं. अतिथि उसको कहते है, कि जिसने लौकिक पर्वोत्सवादि तिथियोंको त्याग दीया है, सो अतिथि है, जैसे प्रादुणा विनातिथि आता है, एतावता तिथि देखके नहीं आता है, जैसेही जो साधु अण चित्याही आ जावे है, सो अतिथि जाननां. जैसे मधुकर वृत्तिवालेसें जो विनाग करे, एतावता शुद्ध व्यवहार न्यायोपार्जित धन करके अपना उदर पूरणे योग्य जो रसोई करी है, उत्तम कुल आचार पूर्वक पूर्वकर्म पश्चात्कर्मादि दोष रहित ऐसा शुद्ध निर्दोष आहार नक्तिपूर्वक जो देवे, सो अतिथिसंविनाग व्रत है. तहां प्रथम दान देनेवालेमें पांच गुण होवे, तो वो दाता र शुद्ध होता है, सो पांच गुण लिखते है.

१ प्रथम जैनमार्गी दातारकूं, शुद्ध पात्रकी प्राप्ति पा करके अपने घरमें मुनिका दर्शन मात्र होनेसें अंतरंगमें बहुत दिनकी चाहनाके उद्घाससें आनंदके आंसु आवे, जैसे अपना प्यारा अति हितकारी बहजन विठडके परदेशमें गया है, उसको मनसें कच्ची विसरता नहीं, मिलाही चाहाता है, उस मित्रके अकस्मात् मिलनेसें आनंद आंसु आवे, तैसें मुनिकों घरमें आया देखके आनंद आंसु त्यावे, अरु मन में विचारे कि मेरा बड़ा नाग्य है, जो ऐसा मुनि मेरे घरमें आया है? अरु कैसा हूं? तदिका जूट्या, इव्य सबल रहित, दरिद्रपीडित,

३ तीसरा अण्डिलेहिय डुण्डिलेहिय उच्चारपासवण नूमि अतिचार सो लघुशंका, बडीशंका, परिचवणेकी नूमिका, नेत्रोंसें अवलोकन न करे, अरु अवलोकन करे, तोजी अलसु पलसु करके काम चलावे, ज वयत्न विना करे, परिचवे, तो तीसरा अतिचार लागे.

४ चौथा अण्णमधियडुण्णमधिय उच्चारपासवणनूमि अतिचार. सो जहां मूत्र, विष्ठा करे, उस नूमिकाको उच्चारप्रस्रवण करनेसें पहिलां पूंजे नहीं, जे कर पूंजे, तोची यदा तदा पूंजे, परंतु यत्नसें न पूंजे.

५ पांचमा पोसहविहिविवरीए अतिचार. सो पोपधमें कृथा लगे तब पारणेकी चिंता करे, जैसेकि प्रजातमें अमुक रसोइ अथवा अमुक वस्तुका आहार करुंगा, तथा अमुक कार्य करणा है, तदा जानां पडेगा, अमुक उपर तगादा करुंगा, तथा प्रजातमें पोपध पारके अह्मी तरें तेजम देन कराकंगा, अह्ने गरम पानीसें स्नान करुंगा, तथा अमुक पोसाक करुंगा, स्त्रीके साथ जोग करुंगा, इत्यादि सावध चिंतवणा करे, तथा संध्या समयें पोपधके मंमल शोधन न करे, सर्व रात्रि सूता रहे, विकथा करे, पोपधके अक्षरह दूपण हैं, सो वर्जे नही, सो अक्षरह दूपण लिखते हैं.

१ विना पोपेवालेका ह्याया हूथा जल पीवे, २ पोपध वास्ते सरस आहार करे, ३ पोपधके अगले दिन विविध प्रकारका संयोग मिलायके आहार करे, ४ पोपध निमित्त अथवा पोपधके अगले दिनमें विनूपा करे, ५ पोपध वास्ते वस्त्र धोवावे, ६ पोपध वास्ते आचरण घडाके पहिरे, स्त्रीनी नथ, कंकणादि सोहागके चिन्ह वर्जेके दूसरा नवा गहेनां घडाके पहिरे, ७ पोपध वास्ते वस्त्र रंगा कर पहिरे, ८ पोपधमें शरीर की मैल उतारे, ९ पोपधमें विना काल निडा करे, १० पोपधमें स्त्रीकथा करे, स्त्रीकों नली बूरी कहे, ११ पोपधमें आहार कथा करे, नोजनकों अह्ना बूरा कहे, १२ पोपधमें राजकथा करे, सुदकी ज्ञात सुने कहे, १३ पोपधमें देश कथा करे, अह्ना बूरा देश कहे, १४ पोपधमें लघुशंका अरु बडीशंका सो नूमिका पूंज्या विना करे, १५ पोपधमें दूत रोंकी निंदा करे, १६ पोपधमें स्त्री, पिता, माता, पुत्र, जाइ प्रमुखसें वार्त्तालाप करे, १७ पोपधमें चोरकी कथा करे, १८ पोपधमें स्त्रीके अ

गोपांग, स्तन, जघनादि देखे, यह अष्टारह दूषण पोषधमें वर्जे, तो शुद्ध पोषध जाननां. अन्यथा पांचमा अतिचार लागे. इति एकादश व्रतं॥

अथ वारहवा अतिथिसंविनागव्रत लिखते है. अतिथि उसकों कहते है, कि जिसने लौकिक पर्वोत्सवादि तिथियोंकों त्याग दीया है, सो अतिथि है, जैसे प्रादुणा विनातिथि आता है, एतावता तिथि देखकें नहीं आता है, जैसेही जो साधु अण चित्याही आ जावे है, सो अतिथि जाननां. ऐसे मधुकर वृत्तिवालेसैं जो विनाग करे, एतावता शुद्ध व्यवहार न्यायोपार्जित धन करकें अपना उदर पूरणे योग्य जो सोई करी है, उत्तम कुल आचार पूर्वक पूर्वकर्म पश्चात्कर्मादि दोष रहित ऐसा शुद्ध निर्दोष आहार नक्तिपूर्वक जो देवे, सो अतिथिसंविनाग व्रत है. तहां प्रथम दान देनेवालेमें पांच गुण होवे, तो वो दाता शुद्ध होता है, सो पांच गुण लिखते हैं.

१ प्रथम जैनमार्गी दातारकूं, शुद्ध पात्रकी प्राप्ति पा करकें अपने घरमें मुनिका दर्शन मात्र होनेसैं अंतरंगमें बहुत दिनकी चाहनाके उद्वाससैं आनंदके आंसु आवे, जैसे अपना प्यारा अति हितकारी बखन विठडके परदेशमें गया है, उसकों मनसैं कजी विसरता नहीं, मिलाही चाहाता है, उस मित्रके अकस्मात् मिलनेसैं आनंद आंसु आवे, तैसें मुनिकों घरमें आया देखकें आनंद आंसु व्यावे, अरु मनमें विचारे कि मेरा बड़ा नाग्य है, जो ऐसा मुनि मेरे घरमें आया है? अरु मैं कैसा हुं? अनादिका जूट्या, इव्य संबल रहित, दरिद्रपीडित, ज्ञानजोचनरहित, अधजाव करि पीडित, अपार संसारचक्रमें जटक ता हुआ, बहुत अकथनीय दुःख संयुक्त देख कर मेरे पर परमदया दृष्टि करकें प्रथम मेरेकों ज्ञानांजन शलाकासैं ज्ञानरूप देखने वाला नेत्र खोल दीना, अरु तीन तत्त्व सेवा रूप व्यापार सिखलाया, तथा मुझकों ब्रह्मत्रयीरूप पूंजी (रात) दे कर मेरा अनादि दरिद्र दूर करा, मुझे नले आदमीयोंकी गिणतीमें करा, ऐसे गुरु मुनिराज विना गरजके परोपकारी मेरे घरांगणमें आया, ऐसी पुष्ट जावना प्रशस्त राग नावकें उद्वाससैं आनंदके आंसु आवे, यह दातारका प्रथम गुण है,

२ दूसरा जैसे संसारमें जीवकों अत्यंत इष्ट वस्तुके संयोगसैं रोमावली



खडी होती है, तैसें बडी, नक्तिके प्रभावसें मुनिकों देखके रोमाक  
विकस्वर होवे, हृदयमें दर्प समावे नहीं, यह दूसरा गुण है।

३ तीसरा मुनिकों देखके बहुमान करे, जैसे कित्ती गरीबके घरमें  
जा आप चल कर आवे, तब वो गरीब गृहस्थ जैसा राजेका आकर  
रे, अरु मनमें विचारे कि महाराजा मेरे घरमें आया है, तो मैं अर्थात्  
स्तु इनको नेट करूं तो ठीक है, क्योंकि राजाका आवनां वारंवार मेरे  
रमें कहा है? ऐसा विचारके जैसे वस्तु नेट करे, तैसें आवकनी साधु  
कों घरमें आया देखके बहुत मान करे, अरु मनमें ऐसा विचारे कि यह  
ऐसा निःस्पृहीयोमें शिरोमणि, जगद्वंधु, जगत् हितकारी, जगदस्तल, निष्काम  
मी, आत्मानंदी, करुणासागर, संसारजलधि उद्धरण, परोपकार करणीमे  
चतुर, क्रोधादि कषाय निवारक, आप तरे परतारक, ऐसा मुनिराज, मेरे  
घरमें चल कर आया, इस्से मेरा अहो जाग्य है? ऐसा जान कर संभ्रमे  
संयुक्त सन्मुख जावे, त्रिकरण शुद्ध परिणामसें कहे कि हे स्वामी ! दीनद  
पाल ! पधारो, मेरे गृह अंगण पवित्र करो, ऐसा बहुमान दे कर घरमें प  
धरावे, मनमें विचारे कि मेरे बडा पुण्योदय है, जो साधु आहार पाणीका  
अनुग्रह करते हैं, क्योंकि साधुके आहार लेनेमें बडी विधि है, साधु शु  
द्ध ज्ञात पाणी जाणे, तो लेवे, इस वास्ते मत मेरेसें कोड दोष उपजे?  
ऐसा विचार के त्रिकरण शुद्ध बहुमान पूर्वक उपयोग संयुक्त विधिपूर्व  
क आहार व्यावे, अरु मधुरस्वरसे विनति करे, कि हे स्वामी ! यह शुद्ध  
आहार है, इस वास्ते सेवक उपर परम कृपा नजर करके पात्र प्रसारके  
मेरा निस्तार करो. ऐसे वचन बोलता हूया आहार देवे, मुनिजी उस  
आहारको योग्य जाण कर ले लेवे, अरु आवकनी जितनी दान देने योग्य  
वस्तु है, उसके सर्वकी निमंत्रणा करे, इस विधिसें दान दे कर हा  
थ जोडके पृथिवी उपर मस्तक लगा कर नमस्कार करे. पीठे सीते वचनोसें  
विनति करे की हे कृपानिधान ! सेवक उपर बडी कृपा करी, आज मेरा घर प  
वित्र हूया, क्योंकि पुण्योदयविना मुनिका योग कहां होता है ? फेरनी हे स्वा  
मी ! कृपा करके अशन, पान, खादिम, स्वादिम, औषध, वस्त्र, पात्र, शय्या,  
संस्तारकादिसे प्रयोजन होवे, तब अवश्य सेवक उपर अनुग्रह करके  
पधारनां, तुम तो मुनिराज गुणवान् वे परवाह हो, तुमको कित्ती बात

की कमी नहीं, किसीके साथ प्रतिबंध नहीं, पवनकी तरें अप्रतिबंध हो, तेजी मेरे उपर जरूर रुपा करणी, ऐसे मुखसे कहता हुआ अपणे रकी सीमा तक पहुंचावे, यह तीसरा गुण है.

४ चौथा तहांसे वंदना करके पीछे आ कर नोजन करे, परंतु मनमें प्रानंद समावे नहीं, विचारे कि मेरा बड़ा नाग्योदय हुआ, आज कोइ तली बात होवेगी क्योंकि आज मुनि, निःस्पृही, सहजउदासी, स्वसुख वेलासीकों मैं विनतिकरी आहार दीया, अरु आहार देतां विचमें कोइ पत्र न हुआ, इस वास्ते मेरा बड़ा नाग्य है, फेरनी कदे ऐसे मुनिका योग मेलेगा ? ऐसी अनुमोदना वारंवार करे, यह चौथा गुण है.

५ पांचमा जैसे कोइ मंदनाग्यवान् व्यापार करतां थोडा थोडा क माता है, तिसकों किसी दिन कोइ सौदेमें लाख रूपैयेकी प्राप्ति होवे, तब वो कैसा आनंदित होवे है. अरु फेर उस व्यापारकी कितनी चाहना रखता है, तिससेंजी अधिक साधुकों दान देनेकी चाहना भावक रके, यह पांचमा गुण है यह पांच गुणयुक्त शुद्ध दान देवे. तो अतिथि संविनाग व्रत होवे इस व्रतके पांच अतिचार बर्जे, सो जिनते है.

१ प्रथम सच्चित्तनिक्षेप अतिचार. सो सच्चित्त सजीव पृथ्वी, जल, कुंज, चुल्हा, इंधनादिकोंके उपर न देनेकी बुद्धिसे आहारकों रख ठोडे. अरु मनमे ऐसा विचारे कि ए आहार साधु तो नहीं लेवेगा, परंतु निमंत्रणा करनेसें मेरा अतिथि संविनागव्रत पल जावेगा, यह प्रथमातिचार.

२ दूसरा सच्चित्त पीहण अतिचार. सो सच्चित्त करके ढक ठोडे, सूर ए, कंद, पत्र. पुष्प, फलादि करके न देनेकी बुद्धिसे ढक ठोडे.

३ तीसरा काजातिक्रम अतिचार. सो साधुओंके निहाका काल जेप करके अथवा निहाके कालसें पहिलां अथवा साधु आहार कर चुके तब आहारकी निमंत्रणा करे, सो तीसरा अतिचार है.

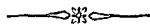
४ चौथा परव्यपदेश मत्सर अतिचार. सो जब साधु मागे तब क्रोध करे, तथा वस्तु पासमे है, तेनी माग्या न देवे, अथवा इस कंगालने ऐसा दान दीया, तो मैं क्या इस्से हीन हू, जो न देजं ? इस जावनासें देवे.

५ पांचमा गुड, खंम प्रमुख अपणी वस्तु है, सो न देनेकी बुद्धिमें औरोकी कहे, यह पांचमा अतिचार ॥ इति श्रीअतिथिसंविनागव्रतं संपूर्ण॥

यह सम्यक्त्वपूर्वक वारह व्रतरूप गृहस्थधर्मका स्वरूप धर्मरत्न प्रकार तथा योगशास्त्रादि ग्रंथोंसे संक्षेप लिखा है. जे कर विशेष देखनां होवे, तो धर्मरत्नशास्त्रवृत्ति तथा योगशास्त्र देख लेनां.

इति तपोगृहीये गणि श्रीमणिविजय तद्धिष्य श्रीमुनि बुद्धिविजय तद्धिष्य मुनिआत्माराम आनंदविजयविरचिते जैनतत्त्वादर्शे श्रावकव्रतनिर्णय पणं नामा अष्टम परिच्छेदः संपूर्ण ॥ ८ ॥

### ॥ अथ नवम परिच्छेद प्रारंभः ॥



यह परिच्छेदमें श्रावकोंका जो दिनकृत्य, रात्रिकृत्य, पर्वकृत्य, चातुर्मासिककृत्य, संवत्सरकृत्य, जन्मकृत्य, यह छै प्रकारका कृत्य हैं. तिनमेंसुं प्रथम दिनकृत्यविधि, श्राद्धविधि ग्रंथ तथा श्रावक कौमुदी शास्त्रके अनुसार लिखते हैं.

प्रथम तो श्रावकों निज्ञा थोड़ी लेनी चाहियें, जब एक प्रहर रात्रि गोप रहे, तब निज्ञा ठोडकें कठनां चाहिये, जेकर किसीकों बहु नांद आती होवे, तब जघन्य चौदमे ब्राह्म मुहूर्तमें जरूर कठना चाहिये, क्योंकि सवेरे उठनेसे इस लोक अरु परलोकके अनेक कार्य सिद्ध होते हैं, उस अवसरमें बुद्धि टीकी दुइ अरु निर्मल होती है, पूर्वापर अच्छी तरेसे विचार कर सका है, अरु ग्रंथकार अैसेंजी कहते हैं कि जिसके नित्य सूतेके सूर्य जाग जावे, तिसकी आशु अल्प होती है, इस वास्ते ब्राह्म मुहूर्तमें अवश्य सूता उठनां चाहिये, जब सूता उठे, तब मनमें विचारे कि मै श्रावक हूं, अपने घरमें तथा पर घरमें इन दोनोमेंसुं कहां सूता था? तथा हेवले मकानमें सूता था कि चोवारे प्रमुखमें सूता था? दिनमें सूता था कि रात्रिकों सूता था? इत्यादि विचार करतेजी जेकर निज्ञाका वेग नभिमटे तब नाक अरु मुखका उन्नास रोके, उस करके निज्ञा तत्काल दूर हो जाती है, पीठें दरवाजा अच्छी तरेसे देखके लघुशंकादि करे, तथा रात्रिमें कि सीकों कुठ कहनां पड़े, तब मंड स्वरस कहे, परंतु उंचे स्वरसें न कहे, क्योंकि रात्रिमें उंचा शब्द करनेसें उपकली प्रमुख हिसक जीव जाग

जाते हैं, फेर वो मन्हीयों आदिक जीवोंकी हिंसा करते हैं, तथा कसाइ जाग जावे तो गौ, बकरी, चेडी प्रमुखकों मारने वास्ते चला जावे, तथा माही, जाल ले कर मडली मारनेकों चला जावे, तथा बावरी, अहेडी, खून करनेवाला, मदिरा बनाने वाला, परखी गमन करने वाला, तस्कर, लूटेरा, पाडी, धोवी, कुंजार, अरु जूआरी प्रमुख, अनेक हिंसक जीव जाग कर अनेक तरेंके पाप करनेमें प्रवृत्त हो जाते है, यह रात्रिमें उंचे शब्दसें बोलने वालोंकों सर्व पाप लगे वास्ते रात्रिमें उंचे शब्दसें न बोलना चाहिये.

जब सवेरकी बखत निडा छेद होवे, तब तत्त्वोंके जानने वाले आ बरुकों तत्त्वविचार करना चाहिये. सो तत्त्व पांच है, तिसका नाम कहते है. १ पृथ्वी, २ जल, ३ अग्नि, ४ वायु, ५ आकाश, उसमें निडा छेद समयमें जेकर पृथ्वी तत्त्व अरु जल तत्त्व वहे, तब तो शुन है, अरु जेकर अग्नि, वायु, तथा आकाश तत्त्व वहे, तो दुःखदायक है. शुक्ल पक्षकी पडिवाके दिन जेकर वामी नासिकाका स्वर चले, तो पंदरा दिन तक आनंद आरोग्य रहे, अरु कृष्ण पक्षकी एकमके दिन जेकर दक्षिण नासिकाका स्वर वहे, तो पंदरा दिन तक सुख आनंद रहे. इस्सें विपर्यय होवे, तो विपर्यय फल होवे.

तथा शुक्ल पक्षके प्रथम तीन दिन वामी नासिका सवेरे उठते वहे, तो शुन है. आगले तीन दिन दक्षिण स्वर चले तो शुन है, फेर आगले तीन दिन वाम स्वर चले तो शुन है, ऐसेही क्रमसे पंदरा दिन तक जान लेने. अरु कृष्ण पक्षकी पडिवाके दिनसे लेकर जेकर तीन दिन तक दक्षिण स्वर चले तो शुन है, आगले चौथे दिनसें लेकर तीन दिन तक वाम स्वर चले तो शुन है, फेर आगले तीन दिन दक्षिण स्वर चले तो शुन है, ऐसे पंदरा दिन तक जान लेना. तथा चंडस्वरमें सूर्य उगे अरु सूर्यस्वरमें सूर्य अस्त होवे तो शुन है तथा सूर्यनाडीमें सूर्य उदय होवे अरु चंडनाडीमें अस्त होवे, तोजी शुन है, किस्ती शास्त्रके मतमें रवि, मंगल, गुरु. अरु शनि, इन चार वारोंमें दक्षिण स्वरमें सूर्यनाडी दिन उगता चले, तो शुन है, अरु सोम, बुध तथा शुक्र, इन तीनों वारोंके दिन सुता, उठता, चंडस्वर वामस्वर चले, तो शुन है विपर्यय चले, तो अशुन है.

तथा किस्तीके मतमें संक्रातिके क्रमसें सूर्य चंड नाडी वहे तो शुन है,

जैसें मेघ संक्रांतिके दिन सूर्यस्वर चले, अरु वृषसंक्रांति दिन चंद्र नाडा चले, तो शुन जाननी इत्यादि. तथा किसीके मतमें चंडमा राशि पलक तिस क्रम करके अढाइ घड़ी तक एक नाडी बहती है इत्यादि. परंतु जे नाचार्य श्री हेमचंडादिकोंका तो प्रथम जो लिखा है, सो मत है. उनीस गुरु अक्षरोंके उच्चारणमे जितना काल लगता है, तितना काल वायु नाडीकों दूसरी नाडीमें संचार करते लगता है.

अब पाच तत्त्वोंकी पहिचान इसी तरें है, सो कहते हैं. नासिकाकी पवन जेकर उंची जावे, तब तो अग्नि तत्त्व है, जेकर नीची जावे, तो जल तत्त्व है, तिर्गी जावे, तो वायुतत्त्व, जेकर नासिकासे निकलके सुयी तिर्गी जावे, तो पृथ्वीतत्त्व, जेकर नासिकाके दोनो पुटोंके अंदर बहे, वा हिर नही निकले. तो आकाश तत्त्व जानना.

पहिला पवन तत्त्व बहता है. पीठें अग्नि तत्त्व बहता है, पीठें जल तत्त्व बहता है, पीठें पृथ्वीतत्त्व बहता है, पीठें आकाश तत्त्व बहता है. क्रम इनका सदा यही है दोनोही नाडीयोंमें पांचो तत्त्व बहते है, उसमें पृथ्वी तत्त्व पंचाश पल प्रमाण बहता है, जल तत्त्व चालीश पल प्रमाण बहता है, अग्नि तत्त्व तीस पल प्रमाण बहता है, वायुतत्त्व बीस पल प्रमाण बहता है, आकाश तत्त्व दश पल प्रमाण बहता है.

पृथ्वी अरु जल तत्त्वमे शांतिकार्य करणां, अरु अग्नि, वायु, तथा आकाश इन तीन तत्त्वमें दीप्तिमान् अरु स्थिरकार्य करणा, तो फलान्नति शुन होवे है; तथा जीवणका प्रश्न पूठनां. जयप्रश्न, लाजप्रश्न, धन उत्पन्न करण का प्रश्न, मेघ वर्षनेका प्रश्न, पुत्र होनेका प्रश्न, युद्धका प्रश्न. जाने ध्यान का प्रश्न, इतने प्रश्न जेकर पृथ्वी अरु जलतत्त्वमें करे, तो शुन होवे. जे कर अग्नि तत्त्व अरु वायु तत्त्वके बहता ये प्रश्न करे, तो शुन नही, पृथ्वी तत्त्वमें प्रश्न करेतो कार्यकी सिद्धि स्थिरपणे होवे अरु जलतत्त्वमें शीघ्रकार्य होवे.

जब पहिल पहिला जिनपूजा करे, तथा धन कमावनेके वास्ते जावे, पाणिग्रहणकी ( द्विवाहकी ) वेला, गढ लेनेकी वेला, नदी उतरनेकी वेला. तथा है सो आवेगाकि नही ? ऐसे प्रश्न करते वेला जीवनेके प्रश्नमे तथा घर केंद्रादि छेंती वेला, क्रियाणां जेता, वेचता, वर्षके प्रश्नमें, नौकरी करणकी वेला,

ती करनेके वखत, शत्रुके जीतनेमें, विद्यारंजमें, राज्यानिपेकमें. इत्यादि  
नकार्यमें चंडनाडी बहे, तो कल्याणकारी है.

प्रश्नके समय कार्यके आरंजमें पूर्ण वामी नाडी प्रवेश करती होवे. तदा  
नेश्वर कार्यकी सिद्धि जानती. इसमें संदेह नहीं, तथा कैदसें कद बूटे  
गा? रोगी कब अज्ञा होवेगा? अरु जो अपने स्थानसें व्रष्ट हुआ है, तिस  
का प्रश्नमें तथा युद्ध करनेके प्रश्नमें, वैरीकों मिलती वखत, अकस्मात्  
जय हुआं, स्नान करण लगे, नोजन, पाणी पीने लगे, सोने लगे, गश्  
वस्तुके खोज करनेमें, मैथुन करने लगे, विवाद करणमें, कष्टमें, इतने  
कार्यमें सूर्य नाडी चुन है. कोष्क आचार्य अैसेंजी कहते है कि विद्या  
रंजमें, दीहामें, शास्त्रान्यासमें, विवादमें, राजाके देखनेमें, मंत्र यंत्रके  
साधनेमें, सूर्यनाडी चुन है. अथवा जो चंडादि स्वर चलता होवे, निरतर  
तिस पासैका पग उठाके प्रथम चले तो कार्य सिद्धि होवे.

पापी जीवोंके शत्रुओंके चार प्रमुख जे क्लेशके करने वाले है, ति  
नके सन्मुख जो नासिका बंध होवे, सो पासा, इनके सामने करे, जो सु  
ख जान जयार्थी है, उसमें प्रवेश करता हुआ पूरा स्वर, वामा पग चुक्क  
पङ्कमें, अरु जीमणा पग रुष्ण पङ्कमें, शय्यासें उठता हुआ धरती ऊपर रख  
ता. इसविधिसैं श्रावक निद त्यागे.

अरु श्रावक अत्यंत बहुमान पूर्वक मंगलके वास्ते पंचपरमेष्टि नम  
स्कार स्मरण करे, शय्यामे बैठा हुआ मनमे पंचपरमेष्टि नमस्कारमत्र स्म  
रण करे, परंतु वचनसें उच्चारण न करे, जेकर मुखसें उच्चार करे, तो शय्या  
गोड कर धरती उपर बैठ कर नमस्कार मंत्र पढे, अैसे नमस्कार मंत्र  
हृदयमें स्मरण करता हुआ शय्यासे उठे, पवित्र जूमिका उपर बैठे,  
तथा पूर्व अथवा उत्तरदिशि सन्मुख मुख करके खडा रह कर चित्त  
की एकाग्रताके वास्ते कमलबंध कर जपादि करके नमस्कार मत्र पढे  
तदा अग्नि पांखडीका कमल चिंते, उसकी कर्णिकामें अरिहंत पदक  
स्थापन करे, पूर्व पांखडीमे सिद्ध, दक्षिण पांखडीमें आचार्य, पश्चिम  
पांखडीमें उपाध्याय, उत्तर पांखडीमे साधु स्थापन करे, अरु बाकी चूर्ण  
काके चार पद जो हैं, सो अनुक्रमें अग्न्यादि चारों कूलोंमें स्थापन क  
उत्तरदिशि शोणशास्त्रे ॥ श्रीहेमचन्द्ररिनि. ॥ अष्टपत्रे सितांजो

कर्णिकायां करस्थितिः ॥ अर्घ्यं सप्ताक्षरं मंत्रं, पवित्रं चिंतयेत्ततः ॥  
 सिद्धादिकचतुष्कं च, द्विकूपत्रेषु यथाक्रमं ॥ चूलापादचतुष्कं च, विद्विष्य  
 चितयेत् ॥ १ ॥ त्रिगुणचिंतयन्नस्य, शतमष्टोत्तरं मुनिः ॥ जुंजानोपि ज  
 त्येव, चतुर्थतपसः फलम् ॥ ३ ॥

हाथके आवर्त्त करके जो पंच मंगल मंत्र स्मरण नित्य करे, उक्त  
 पिशाचादिक नही उलते है, बंधनादि कष्टमें विपरीत शंखावर्त्तकादि  
 अक्षरों करके अथवा विपरीत पदों करके पंचमंगल मंत्र लक्षादि जा  
 करे, तो शीघ्र क्लेशादिकोंका नाश होवे, जे कर हाथ उपर जाप न क  
 सके तो सूतकी, रत्नकी, रुद्राक्षादिककी, माला उपर जाप करे, माल  
 वाला हाथ, हृदयके सामने रखे, शरीरसें तथा शरीरके चर्या  
 तथा नूमिकासें माला न लगने देनी, अंगुठेके उपर माला रक्क करे  
 तर्जनी अंगुलीसें नख, बिना लगाया मणका फेरे, मेरु उल्लंघन न करे  
 शास्त्रकार लिखते हैं कि जो अंगुलीके अग्रसें जाप करे, अरु जो मे  
 उल्लंघके जाप करे, तथा जो विखरे दूए चित्तसें जाप करे, यह तीन  
 जाप थोडा फल देते है, जाप करने वाला बहुतोसें एकजा अष्टाश  
 करके जाप करनेसें मौन करके करे, सो अष्टा है, जेकर जप करतां य  
 जावे, तो ध्यान करे, ध्यान करनेसें थक जावे, तो जप करे, दोनो  
 थक जावे, तो स्तोत्र पढे.

श्रीपादजित्त अचार्यरुत प्रतिष्ठाकल्प पद्धतिमें लिखा है, कि जाप ती  
 तरेंका है, एक मानस, दूसरा उपाद्यु, तीसरा जाप्य, इन तीनमें मान  
 उसकों कहते है कि जो मनकी विचारणासे होवे, स्वसंवेद्य होवे, अ  
 उपाद्यु उसकों कहते है कि जो दूसरा तो न सुणे, परंतु अतर्ज  
 रूप होवे, तथा जो दूसरोंको सुनाऽ देवे, सो जाप्य यह तीनों क  
 करके उत्तम, मध्यम, अरु अधम जान लेने. उसमें मानससें शां  
 होती है, एतावता शांतिके वास्ते मानस जाप करणां अरु पुष्टिके वास्  
 उपाद्यु जाप करणां. तथा आकर्षणादिकमे जाप्यजाप करणां.

नमस्कार मंत्रके पांच पद, नवपद, अथवा अनानुपूर्वी, चित्तकी एव  
 यताके वास्ते गुणे, तथा जो नवकार मंत्रका एक अक्षर एक पदनी जप  
 तोनी जाप हो सकता है ॥ चडक्त योगशास्त्रे अष्टमप्रकाशे ॥ पंचपरमे

मंत्रके "अरिहंत सिद्ध आयरिय उवशाय सादू" इन सोलां अक्षरका जाप करे, तथा "अरिहंतसिद्ध" इन पड़ वर्ण (तै अक्षर) का जाप करे, तथा "अरिहंत" इन चार अक्षरका जाप करे, तथा आकार जो वर्ण है, सोनी मंत्र है इनके जापसें स्वर्ग मोक्षका फल होता है, अरु व्यवहार फल अैसा जाननां, कि—पड़वर्णका जाप तीन सौ वार करे, तथा चार वर्णका जाप चार सौ वार करे, अरु सोलां अक्षरका जाप दो सौ वार करे, तो एक उपवासका फल होता है, तथा नानिकमलमे स्थित तो अकार ध्यावे, अरु सि वर्ण, मस्तक कमलमें स्थित ध्यावे, तथा आकार मुख कमलमें स्थित ध्यावे, उकार हृदय कमलमें स्थित ध्यावे, तथा साकार कंठ पिंजरमें स्थित ध्यावे, सर्व कल्याणकारी यह जाप है, अस्मिन्ना वंसा यह पांच बीज है, इन पांचों बीजोंका उँकार वनता है.

तथा और बीज मंत्रोंकानो जाप करे, जैसें "नमः सिद्धेच्य" अैसा मंत्र तो जे कर इस लोकके फलकी इच्छा होवे, तब तो उँकार पूर्वक पढनां चाहिये, अरु मोक्ष वास्ते जपे, तो उँकाररहिन पढना चाहिये, यह जपादि करनेसें बहुत फल होता है ॥ यत् ॥ पूजाकोटिसमं स्तोत्रं, स्तोत्रकोटिसमोजपः ॥ जपकोटिसमं ध्यानं, ध्यानकोटिसमो जयः ॥ १ ॥ ध्यान की सिद्धि वास्ते श्रीजिनजन्मदीक्षादि कल्याणक नूमिरूप तीर्थमें जावे, अथवा और कोइ विविक्त स्थान होवे, तहां ध्यान करे, ध्यानका स्व रूप देखना होवे, तब आवश्यक सूत्रांतर्गत ध्यानशतक देख लेनां. नमस्कार मंत्रका जो जाप है, सो इस लोक परलोकमें बहुत गुणकारी है, ॥ उक्तं हि महानिशीथे ॥ नासेइ चोर सावय, विसहर जल जलण वधण जयाइ ॥ चित्तिकृतो रक्तस, रण राय जयाइ नावेण ॥ १ ॥ अर्थ.— चोर, मिंह, सर्प, पाणी, अग्नि, बंधन, संग्राम, राजनय, इतने जय पंचपरमेष्ठि मंत्रके स्मरणसें नष्ट हो जाते है. तकाग्रता जावसें जपे, तो यह फल होता है, पंच परमेष्ठि मंत्र सर्व जगे पढनां चाहिये, नमस्कार मंत्रका एक अक्षर जपे, तो सात सागरोपमका करा दूआ पाप नष्ट होता है, जे कर सपूर्ण पंच परमेष्ठिमंत्र जपे, तो पांच सौ सागरका करा दूआ पाप नष्ट हो जाता है, तथा जो पुरुष एक लक्ष वार पंच परमेष्ठि मंत्रका जाप करे, अरु यह नमस्कार नामक मंत्र जो है, तिसकी विधिते पूजा



करे, तो तीर्थंकर नाम कर्मगोत्रका बंध करे. इस बातमें संदेह नही तथा आठ कोडी, अठ लाख, आठ हजार, आठ सौ, आठ वार, आठ पंच परमेष्ठिमंत्रका जाप करे, वो जीव, तीसरे जन्ममें सिद्ध हो जाता है. इस वास्ते सूते, उठते, प्रथम नमस्कार स्मरण करणां तिसके पीछे धर्मजागरणा करणी, सो इसी तरेंकि:- /

यथा में कौन हूं ? क्या मेरी जाति है ? क्या मेरा कुल है ? कौन मेरा इष्ट देव है ? कौन मेरा गुरु है ? क्या मेरा धर्म है ? क्या मेरे अज्ञियत है ? क्या मेरी अवस्था है ? क्या मैंने सुकृतादि करा है ? क्या मैंने दुःसुतादि नही करा है ? क्या मैं करने समर्थ हूं ? क्या मैं नहीं कर सका हूं ? मुझको कोइ देखता है कि नही ? अपनी नूलकों आत्मा जानता है फेर क्यों नहीं उडता ? तथा आज कौनसी तिथि है ? क्या अहैंतक कल्याणिक दिन है ? आज मेरा क्या कृत्य है ? मैं किस देशमें तथा किस कालमें हूं ? सबेरे उठके ऐसे स्मरण करणसें जीव सावधान हो जाता है जो विरुद्ध कृत्य है, उसका परिहार करता है अपने नियमका निर्वाह अरु नवीन गुणकी प्राप्ति होती है, येही धर्मजागरणा, आणंद कामदेवदि श्रावकोंने करके प्रतिमादि विशेष धर्मकरणी करी है.

तस पीठें जो श्रावक प्रतिक्रमण करनेवाला होवे, सो प्रतिक्रमण करे, अरु जो प्रतिक्रमण न करे, सोनी रागादिमय कुस्वप्न प्रदेपादिमय अनिष्ट फलका सूचक तिसके दूर करणे वास्ते तथा स्वप्नमें स्त्रीसैं प्रसंगादि करनेका खोटा स्वप्न उपलेज्न दूआ होवे, तब एक सौ आठ उच्छ्वास प्रमण कायोत्सर्ग करे, अन्यथा सौ उच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करे. चार लोगस्तका काउस्तग करे. यह कथन व्यवहार नाप्यमें है, तथा विवेक विलासादि ग्रंथोमें ऐसा लिखा है, कि स्वप्न देख्यां पीठें फेर नही सोवणां, अरु स्वप्न, दिनमें सकुरुके आगें कहना, जे कुर खोटा स्वप्न आवे तो फेर सोवनां ठीक हे, किसीके आगें कहनां न चाहिये, तथा समधातुवाला, प्रशांतचित्तवाला, धर्मी और नीरोगी, जितेंदिय, इनकों जो शुनाशुन स्वप्न आवे, सो सत्यही होता है, स्वप्न जो आता है, सो नव कारणोसे आता है, सो नव कारण कहते है.

एक तो अनुभव करी हुई वस्तुका स्वप्न आता है, दूसरा सुणी हुई बातका, तीसरा देखा हुआ, चौथा प्रकृति वात, पित्त, अरु कफके विकारसे, पांचमा त्रिंशत वस्तुका. उष्ण सहज स्वप्नवासें, सातवा देवताके उपदेशसें, आठमा पुण्यके प्रभावसें, नवमा पापके प्रभावसें, दसमें आदिके छे कारणोंसें, जो स्वप्न आवे, सो निरर्थक है, अरु अगले तीन कारणोंसें जो स्वप्न आवे तो सत्य होवे.

रात्रिके पहिले प्रहरमें स्वप्न आवे, तो एक वर्षमें फल देवे, अरु दूसरे प्रहरमें स्वप्न आवे, तो छे महीनेमें फल देवे, तीसरे प्रहरमें स्वप्न आवे, तो तीसरे महीनेमें फल देवे, चौथे प्रहरमें स्वप्न आवे, तो एक मासमें फल देवे, सवेरे दो घड़ी रात्रिमें स्वप्न आवे, तो दश दिनमें फल देवे, सूर्योदयमें स्वप्न आवे, तो तत्काल फल देवे.

एक जो स्वप्नमें बहुत आल जंजाल देखे, तथा दूसरा जो रोगोदयसें स्वप्न आवे, तथा तीसरा जो मलमूत्रकी बाधासें स्वप्न आवे, यह तीनों स्वप्न निरर्थक है. जे कर पहिला अशुन स्वप्न आवे, अरु पीठसें शुन स्वप्न आवे, तो शुन फल देवे, तथा पहिला शुन स्वप्न आवे, पीठ अशुन आवे, तो अशुन फल देवे, जेकर खोटा स्वप्न आवे, तो शांति अर्थात् देवपूजा दानादिक करणां, तथा स्वप्नचिन्तामणि नामक ग्रंथमेंनी लिखा है, कि अनिष्ट स्वप्न देख कर सो जावे, अरु किसीको कहे नहीं, तो फेर वो स्वप्न, फल नहीं देता है, सूता उसके जिनेश्वरदेवकी प्रतिमा को नमस्कार करके जिनेश्वरका ध्यान करे, स्तुति करे, स्मरण करे, पंच परमेष्ठिमंत्र पढे, तो खोटा स्वप्न वितथ हो जाता है. अरु जो पुरुष देव गुरुकी पूजा करते हैं, तथा निजशक्त्यनुसार तप करते हैं, निरंतर धर्मके रागी हैं, तिनोंको खोटा स्वप्ननी अबा फल देता है. तथा जो पुरुष, देवगुरुका स्मरण करके अरु शत्रुंजय समेतशिखर प्रमुख शुन तीर्थोंका नाम, तथा गौतमस्वामी, सुधर्मस्वामी प्रमुख आचार्योंका नाम स्मरण करके सोवे, उसको कदापि खोटा स्वप्न नहीं होता है.

शूकनां होवे, तो राखमें शूकनां चाहिये, शरीरको दृढ करने वास्ते हाथों करके वज्रीकरण करे, अग्नितत्त्व, अरु पवनतत्त्व, जब वहता होवे, तत्र धाप करके आकंठ तांड़ दूध पीवे, केइ आचार्य कहते हैं कि

आठ पसली पाणीकी पीवे, इसका नाम वज्रीकरण कहते हैं. तथा त्र  
 वेरे उठके माता, पिता, पितामह, बडा चाइ प्रमुखकों नमस्कार करे,  
 तो तीर्थयात्रा समान फल है. इस वास्ते दिन दिन प्रत्ये करणी चाहिये.  
 तथा जिसने वृद्धोंकी सेवा नही करी है, उसकों धर्मकी प्राप्ति नही  
 होती है, वृद्ध उसकों कहते हैं कि जो शीलमें, संतोपमें, तथा ज्ञान,  
 ध्यानादिकमें बडे होवे, तिनकी सेवा अवश्य करनी चाहिये. तथा जि  
 सने राजाकी सेवा नहीं करी है, अरु जिसने उत्पन्न होते हुए अपने  
 शत्रुकों बंद नहीं करा, तिस पुरुषसें धर्म, अर्थ, अरु सुख दूर है.  
 ४ श्रावककों सवेरे उठ करके चौदह नियम धारण करणे चाहिये, ति  
 नका स्वरूप उपर लिख आये है. तथा विवेकी पुरुष प्रथम सम्यक्त्व प  
 र्वक द्वादश व्रत, विधि पूर्वक गुरुके मुखसें धारण करे, अरु विरति जो  
 पलती है, सो अन्याससें पलती है, इस वास्ते धर्मका अन्यास करना  
 चाहिये. विना अन्यासके कोइ क्रियाजी अठ्ठी तरे नही करी जाती है.  
 ध्यान मौनादि सर्व अन्यास करनेसें दुःसाध्य नही. जो जीव, इस जन्ममें  
 अज्ञा वा बुरा जैसा अन्यास करता है, सोइ प्रायः अगले जन्ममें पाता  
 है, तथा पंचमी, अष्टमी, चतुर्दश्यादिकीके दिनमें तपादि नियम जो जो  
 धर्मी पुरुषने अंगीकार किया है, उसमें जो तिथ्यंतरकी प्रांत्यादि करके  
 सचित्त जलादि पान, तबोल नक्षण, कितनाक नोजननी कर लीया है,  
 पीठेसें ज्ञान हुआ कि आज तो तपका दिन था? तब जो कुछ मुखमें होवे,  
 उनकों राखादिकमें गेर देवे, प्राशुक पाणीसे मुखशुद्धि कर तप करेकी  
 तरें रहे, तो नियम जंग नहीं होता है, अरु जे कर संपूर्ण नोजन  
 करा पीठे जान पडे कि आज तपका दिन है, तब अगले दिन दंभके नि  
 मित्त सो तप करे. समाप्ति हुआ उसके उपर पोरिस्ती एकाशनादि तप  
 अधिक करे, अरु जे कर तपका दिन जान कर एक दाणानी खावे, तो व्र  
 तजंग हो जाता ह, अरु जो व्रतका जंग जान करके करना है, सो नरका  
 दिकका हेतु है, तथा जे कर तप करे पीठे गाढा मांदा हो जावे, अथवा  
 चूतादि दोपसें परवश हो जावे, अथवा सर्पादिक काटे, ऐसी अतमाधिमें  
 तप करने समर्थ न होवे, तोजी चार आगार उच्चारण करनेसें व्रतजंग  
 नहीं होता है, ऐसे सर्व नियमोंमें जान लेना ॥ उक्तं च ॥ वयजंगे गुरुदो

तो, शिवस्सवि पालणा गुणकारि ॥ गुरु लाघवं च नेयं, धम्ममिथ्य उ आ  
गारा ॥ १ ॥ अस्वार्थः— व्रतजंग करनेसें महा दूषण होता है, अरु जो  
पाजन करे, तो थोडा व्रतजी गुणकारी है, इस वास्ते गुरु जघु जानके  
धर्ममें आगार जगवाननें कहे है. /

तथा नियम जैसें ग्रहण करणां, सो कहते हैं प्रथम तो मिथ्यात्व  
त्यागणे योग्य है, तिस पीठें नित्य यथाशक्ति एक, दो, तीन वार जिन  
पूजा, जिनदर्शन, संपूर्ण देववदन, चैत्यवंदन करे, जैसेही गुरुका योग  
मिले दीर्घ, जघु वंदन करे, जेकर गुरु हाजर न होवे, तब धर्माचार्यका  
नाम लेके वंदना करे, तथा नित्य वर्षा ऋतुमें (चौमासेमें) पांच पर्वके  
दिन अष्ट प्रकारी पूजा करे, जहां लग जीवे, तहां लग नवा अन्न, नवा  
फल, पक्वान्नादिक देवकों चढावे विना खावे नही, नित्य नैवेद्य, सो  
पारी, वदामादि देवके आगें चढावे, तथा तीन चौमासें संवत्सरी दीवा  
ली प्रमुखमें चावलोंके अष्ट मंगल जरके ढोवे. नित्य अथवा पर्वके दिन  
तथा वर्षमें खादिम, स्वादिम, सर्व वस्तु देव गुरुकों दे कर नोजन करे,  
प्रतिमास, प्रतिवर्ष, महाध्वजादि उत्सव आसंवर करके चढावे, स्नात्र  
महोत्सव, अष्टोत्तरी पूजा, रात्रिजागरण करे, नित्य चौमासे आदिकमें  
कितनोक वार जिनमंदिर, धर्मशाला, प्रमार्जन करे, देहरा समरावे, पौ  
षशाला लीपे, प्रतिवर्ष प्रतिमास जिनमंदिरमें अंगलूहनां तथा टीपकके  
वास्ते पूणी देवे, दीवे वास्ते तेल देवे, चंदन खंदादि मंदिरमें देवे, पोष  
शालामें मुखवस्त्रिका, जपमाला पूठणा, चरवला, कितनेक वस्त्र, सूत,  
कंबली, कनादि देवे, वर्षमें आवकोके बैठने वास्ते कितनेक पाट,  
चौकी प्रमुख देव, जेकर निर्धन होवे, तो जो वर्ष दिन पीठें सूत मोरा  
थडी प्रमुख दे कर संघ पूजा करे, कितनेक साधर्मीयोंको शक्ति अनुसार  
नोजन देके, साधर्मीवात्सव्यादि करे, दररोज कितनेक कायोत्सर्ग करे, स्वा  
ध्याय करे. नित्य जघन्य नमस्कार सहित प्रत्याख्यान करे, रात्रिमें दिवस  
चरम प्रत्याख्यान करे, दोनों वखत प्रतिक्रमण करे, यह करणी प्रथम  
कर लेवे, तो पीठेंसे बारा व्रत स्वीकार करे. तिन व्रतोंमें सातमे व्रतमें  
सवित्त, अचित्त, अरु मिश्र वस्तुका स्वरूप अही तरें जाननां चाहियें.

जैसें प्रायः सर्व धान्य, अन्न, अरु धनीया, जीरा, अजवयन, लौफ,

सोआ, राइ, खसखस प्रमुख सर्व कण, सर्व पत्र, सर्व हरे फल, तथा लूण, खारी, खारक, अर्थात् बुहारे, रक्त (जाल) रंगका सिंधालूण, खारक का सौंचल लूण, खारा, मट्टी, खरी, हिरमची, हरे दांतण. इत्यादि. ये सर्व व्यवहारसें सचित्त सजीव है. तथा पाणीमें निंजोये चणे, गेहूं, अन्न, अन्न, तथा चणे, मूंग, उदद. तूअर प्रमुखकी दाल, जिसमें नक्क रह गया होवे, ये सर्व मिश्र है, तथा पहला लूण लगा करके अग्निकी चाँपादि दीया विना तप्त वालु (रेतके) विना गेरें चणे, गेहूं, जूवारादि जूजे, तथा खारादि दीयां विन मसले हूये तिल, होलां, कंबियां, सिट्टे, पट्टक. इत्यत् सेकी फली. मिरच, राइ, हिंग प्रमुख करके चिर्नटादि फल, वधारे, तथा जिसके अंदर बीज सचित्त है, ऐसे पके हूये सर्व फल, यह सब मिश्र है. तथा तिलवट, तिलकूट, जिस दिन करे उस दिन मिश्र है, अरु जेकर तिलोंमें अन्न रोटी प्रमुख गेरकें कूटे, तो एक मुहूर्त पीठें अचित्त होवे, तथा दक्षिण मालवादि देशोंमें बहुत गुड प्रक्षेप करनेसें उनी दिन अचित्त हो जाते है, तथा वृक्षसें तत्कालका उखड्या गूद, लाख, तिलक, तत्कालका फोड्या नालियर, तथा निंबू, दाडिम, अनार, आव, नांव, इव. इनका तत्कालका काढ्या रस, तथा तत्कालका काढ्या तिलादिका तेल, तत्कालका चांग्या हूया बीज, तथा काटे हूये नलेर, सिघाडे, सोपारी आदि, तथा बीज रहित कीया पक फल खरजूजादि, गाढा मर्दन करके कण काढ्या जीरादि. ये सर्व अंतर्मुहूर्त लग मिश्र हैं, पीठें प्राणुकका व्यवहार है, तथा औरनी प्रबल अग्निके योगविना प्राणुक करे हूये अंतर्मुहूर्त ताँड मिश्र है, पीठें प्राणुकका व्यवहार है, तथा अग्राणुक पाणी, कच्चा फल, कच्चा अन्नको जेकर बहुत मर्दननी करे है, तोनी लवण अग्न्यादिक प्रबल शस्त्र विना प्राणुक नहीं होते है क्योंकि श्रीपंचमांग जगवतीसूत्रके उनीस मे शतकके तीसरे उद्देशेमे लिखा है, कि—वज्रमयी शिला, वज्रमयी लोटा, आमले प्रमाण पृथ्वीकाय लेके एकवीश वार पीसे, तब कितनेक पृथ्वीके जीवोको लोटेका स्पर्शनी नहीं हूया है, ऐसी उनजीवोंकी सूक्ष्म काया है, तथा सौ गोजनसे उपरात आये हूये हरडा, खारक, किसमिस, जाल डाहा, मेवा, खजूर, काली मिरची, पापर, जायफल, वदाम, अखोड, ते उजा, जरगोजा, पिस्ता, सीतल, चीनी, स्फटिक समान उज्ज्वल सिंधा

लूण, सझी नझीमें पकाया लूण, बनावटका खार, कुंजारकी कमाइ हूइ  
 मिट्टी, एलायची, लवंग, जावंत्री, सूकी मोथ, कोकणदेश प्रमुखके केले, क  
 पलीफल, उवाले हूये संगाडे, सोपारी, इन सर्वका प्राशुक व्यवहार है,  
 साधुनी कारण पडे ले लेवे. यह बात कल्पनाप्यमेंनी लिखी है. "जोय  
 ण सयं तु गंतु, अणाहारे जंम संकंति" इत्यादि. इनमेंसूं हरड, पीपल  
 प्रमुख तो आचीण है, इस वास्ते लेते हैं, अरु खजूर, झाडा प्रमुख अ  
 नाचीण है, तथा उत्पलकमल, पद्म कमल, धूपमें रस्क, एक प्रहरके अ  
 न्यतरही अचित्त हो जाते है. तथा मोगरेके फूल, अहिके फूल, यह धूपमें  
 बहुत चिरनी पडे रहे, तोनी अचित्त नहीं होते है. तथा मगदंतिना अर्थात्  
 मोगरेके फूल पाणीमें गेरे रहें तो एक प्रहरके अंदरही अचित्त होजाते है,  
 तथा उत्पल, नीलकमल अरु पद्मकमल, ये दोनो पाणोमें गेर रखनेसें  
 बहुत कालमेंनी अचित्त नहीं होते हैं, "शीतयोनिकलात्" तथा पत्रोंका  
 फूलोंका जिनफलोमें अनीतक गुठली बंध नहीं हुइ. तिनका तथा वधुआ  
 प्रमुख हरित वनस्पतिका, इन सबनका वृंत, ( मंजी ) कुमलाय जावे, तब  
 जीव रहित हूये जानने. यह कथनश्रीकल्पनाप्य वृत्तिमें लिखा है.

तथा श्रीपंचमांगके ठेके शतकके पाचमे उद्देशेमे सचिनाचित्त वस्तुका  
 स्वरूप ऐसा लिखा है, शालि, त्रिहि, गेहूं, जव, जवजव, ये पांच धान्य  
 की जाति कठोरमें तथा ठेके पालेमें तथा मंचा. माझा, कोठारविशेषोमें  
 मुख ढांकके रस्के, लीप्या होवे, तथा चारो तर्फसें लीप्या होवे, उपर  
 कोइ और ढकणा दीया होवे, मुडित लाठित करके रस्के. तो कितने काल  
 तांइ जीवयोनि रहे ? ऐसा प्रश्न पूठनेसें जगवान् कहते हैं कि हे गौतम !  
 जयन्य तो अंतर्मुहूर्त्त रहे, अरु उत्कृष्ट तो तीन वर्ष रहे, फेर अचित्त हो  
 जावे. तथा मटर, मसूर, तिल, मूंग, उडद, बाल, कुलथी, चवला, तूपर,  
 गोल चणे, इत्यादि धान्य सर्व उपर वत् जाननां. नवर, उत्कृष्टसें पांच  
 वर्षे उपरात् अचित्त होते ह, तथा अलसी, कुसुंनेकी करड, कोड, कंगु  
 नी, वरटी, राज, कोहुसक, सण, सरसों, मूलीके बीज, इत्यादि धान्यनी  
 उपरवत् नवर, उत्कृष्टसें सात वर्षे उपरात् अचित्त हो जाते है. तथा कर्पा  
 सके बिनौले, उत्कृष्ट तीन वर्षसें उपरांत अचित्त जीव रहित हो जाते है.  
 यहनी कल्पनाप्यवृत्तिमें है. तथा बिना ठाणा आटा (चून) भावण, जा

इवाके महिनेमें पांच दिन तक मिश्र रहता है, पीठें अचिंत होता है, सोज, कार्तिक, मासमें चार दिन तक मिश्र रहता है, पीठें अचिंत हो जाता है. तथा मगसिर, पौष मासमें तीन दिन मिश्र रहता है, पीठें अचिंत होता है, तथा माघ, फागून मासमें पाच प्रहर मिश्र रहता है, तथा वैशख वैशाख मासमें चार प्रहर मिश्र रहता है, तथा ज्येष्ठ आषाढमें तीन प्रहर मिश्र रहता है, उपरांत अचिंत हो जावे, जे कर तत्काल ठान लेवे, तब अंतर्मुद्दत्त लग मिश्र रहे, पीठें अचिंत होवे.

शिष्य प्रश्न करता है, कि पीठ्या दूध्या आटा कितने दिनका अचिंत चीनी कों तथा श्रावककों खाना चाहिये ?

उत्तर:- सिद्धांतमें हमने आटेकी मर्यादाका नियम नहीं देखा है. परंतु बुद्धिमान् नवा, जीर्ण अन्न, तथा सरस नीरस क्षेत्र, तथा वर्षा, शीत, उष्ण वि क्रतु, तिनमें तिस आटेका पंद्रह दिन मासादि कालमें वर्ण, गंध, रस, स्पर्शादि विगडा देखे. तथा सुरसली प्रमुख जीव पडा देखे, तब न खावे, जे कर खावे, तो जीवहिंसा अरु रोगोत्पत्तिका कारण है.

तथा मिठाइकी मर्यादा, अरु विदलका निषेध, उपर सातमें व्रतमें लिख आये हे, तहांसं जान लेना. तथा ठहीमें सोला प्रहर उपरांत जीव उत्पन्न होते है, तथा विवेकी जीवकों वैगन, टींवरु, जामन, विटव, पीलं, पक कर्मदा, पक्का गूदा, लसूडा पेंचु, मधुक. (महुवा) मौर, बालोज, बडे बोर, जाडीके बोर, कच्चा कौठफल, खसखस तिल, इत्यादि न खाने चाहिये, इनमें त्रस जीव होते हैं तथा जो फल रक्त (लालरंग) देखनेमें बुरा लगे, पक, गोल, कंकोडा, फणस, कटेल प्रमुखनी बुरी जावनाके हेतु होनेसं, न खाने चाहिये तथा जो फल जिस देशमें खानां विरुद्ध होवे, जैसे कडूवा तूवा, कूम्भान् अर्थात् कोहला हलुवा (कडु) सोनी न खानां चाहिये, अरु अचक्षु, अन्नंतकाय, कदमूल. परवरके अचिंत करे, रांधे दूधेनी न खाने चाहिये. क्योंकि एक तो निश्चकता अरु दूसरी रस लंपटता तथा दृष्ट्यादि दोषका प्रसंग होता है. इसी वास्ते न खानां, तथा उकाला दूध्या सेलरा, राध्या दूध्या आर्षादि कंद, सरण, वैगनादि, यद्यपि अचिंत है, तोनी श्रावक, प्रसंग दूषण त्यागने वास्ते न खावे, तथा मूली तो पंचांगही खाने योग्य नहीं. निषिद्धत्वात्, तथा

शुभ, हलद, नाम अरु स्वाद जेद होनेसें अजह्य नहीं है. तथा उष्ण जल, तीन उवाले आ जावें, तब अचित्त होता है, यह कथन पिमनिर्युक्तिमें है. चावजोंके धोवणका पाणी जब नितरके निर्मज हो जावे तब अचित्त होता है, तथा उष्णजलको मर्यादा प्रवचनसारो धारादि ग्रंथोंमें ऐसी लिखी है, सो कहते हैं. त्रिदंभोद्धृत उष्ण जल, उष्णकालके चारों मासमें पांच प्रहर अचित्त रहता है, यह चुब्हेसें उतारे पीठेंकी मर्यादा है. तथा वर्षाके चारों मासमें तीन प्रहर अचित्त अरु शीत कालके चारों मासमें चार प्रहर अचित्त रहता है, पीठें सचित्त होता है, जे कर ग्लान, बाल, वृक्षादि साधुके वास्ते मर्यादा उपरांत रखनां होवे, तब द्वारादि वस्तुका प्रक्षेप करके रखनां, फेर सचिन नहीं होता है. प्रवचनसारो-धाराके (१३६)में धारमें यह कथन है तथा कोकडु मोठ, मूंग अरु हरडाडिककी मीजी (गिटक) यह यद्यपि अचेतन है, तोनी यो नि रखने वास्ते तथा नि शूकताडिके परिहार वास्ते दांतोंसें तोडना (जांगनां) न चाहिये. इत्यादि सचित्त वस्तुका स्वरूप जानके सातमा व्रत अंगीकार करनां चाहियें.

आवककों प्रथम तो निरवद्य (दूषण रहित) आहार खानां चाहियें. ऐसें न कर सके तो सर्व सचित्त खानेका त्याग करे, ऐसेंजी न कर सके तब बावीश अजह्य अरु बत्तीस अनंतकाय तो अवश्यमेव त्यागने चाहियें. तथा चौदह नियम धारने चाहिये ऐसे सूता उठके यथाशक्ति नियम ग्रहण करे, पीठें यथाशक्ति प्रत्याख्यान करे, नमस्कार सहित पौरुष्यादि काल प्रत्याख्यान जो है, सो जेकर सूर्य उगनेसें पहिजां उच्चारण करियें, तो शुद्ध है, अन्यथा शुद्ध नहीं. अरु शेष प्रत्याख्यान सूर्योदयसें पीठेंनी हो सके है, यह तथा नमस्कार सहित जेकर सूर्योदयसें पहिजा उच्चार करा दूआ होवे, तब तिसके पूर्व दूआ तिसके बीचही पौरुषी साहु पौरुष्यादि काल प्रत्याख्यान हो सक्ता है, जे कर नमस्कार सहित सूर्योदयसें पहिजां उच्चारन न करिये, तब तो कोइनी काल प्रत्याख्यान करना शुद्ध नहीं, अरु जे कर प्रथम नमस्कारादि प्रत्याख्यान मुष्टि सहतादि करे, तब सर्वकाज प्रत्याख्यान करे, तो शुद्ध है.

तथा रात्रिम चौविहार करे अरु दिनमें एकासना करे, पीठें ग्रंथि स



हित प्रत्याख्यान करें, तब तिसको प्रतिमास एगुन तीस उपवासका फल होता है, दो वार जोजन उक्त रीतिसें करे, तो अष्टावीस उपवासका फल होता है, क्योंकि दो घडोका काल जोजन करतां लगता है, शेष काल तपमें व्यतीत हुआ, यह कथन पद्मचरित्रमें है, प्रत्याख्यान उप योग पूर्वक पूरा हो जावे, तो पारे.

अरु चार प्रकारके आहारका विभाग ऐसें है, एक तो अन्न, पकान, मंमक, सन्नूआदि जो कृधा दूर करनेकूं समर्थ होवे. सो प्रथम अन्न नामक आहार है, दूसरा ठाठका पाणी, तथा उष्ण जलादि, यह सर्व पानक नामक आहार है. तीसरा फल, फूल, इरकुरस, पडुंक, सूखडी, आदिक यह सर्व खादिम नामक आहार है. चौथा सूठ. हरडे, पिप्पली, काली मिर, च, जीरा, अजमक, जायफल, जावंत्री, असेलक, कडा, खयरवडी, ज्येष्ठी मधु, तज, तमालपत्र, एलायची, कोठ, विडंग, विडलवण, अजमोद, कुलिजण, पिप्पलीमूल, चीणकबाव, कचूर, मुस्ता, कंटासेलिठ, कर्पूर, सांघल, हरड, बहेडां, कुंठनठ, बंबूल, धव, खदिर. खेजकी ठाल, पान, सोपारी, हिंगुलाएक, हिगु, त्रेवीसठ, पंचकूल. पुष्करमूल, जवासामूल, बावची, तुलसी, कर्पूरिकंदादिक, जीरा. यह सर्व जाप्य अरु प्रवचनसारो धारादिक ग्रंथोंके लेखसें स्वादिम नामक आहार है, अरु कल्पवृत्तिमें उनकूं खादिम लिखा है. कोइक अजवयनकोंजी खादिम कहते है. यह मतांतर है, यह सर्व स्वादिम नामक आहार है, तथा एलायची कर्पूरदि वासित जल द्विविध आहार प्रत्याख्यानमें पीनां कल्पता है, तथा वेशण, सौफ, सोय, कोठवडी, आमलागांठ, आंबकी गुटली, निंबूके पत्र प्रमुख खादि म होनेसें द्विविध आहार प्रत्याख्यानमें नहीं कल्पते है. अरु त्रिविध आहार प्रत्याख्यानमें तो जलही पीनां कल्पता है, तिसमेंनी फूंकारा हुआ पाणी, साकर, कर्पूर, एलायची, कडा, खदिर, चूर्णक, सेलक, पाड लादि वासित जल, जे कर नितार अरु ठानके लेवे तो कल्पे, अन्यथा नहीं.

तथा शास्त्रोंमें मधु, गुड, साकर, खमादिनी स्वादिम कहे हैं. अरु डाक्ता, शंकरादि, जल, तरु, ठाठादिकों पानक कहे हैं. तोनी द्विविध आहार प्रत्याख्यानमें नहीं कल्पते है ॥ उक्तं च नागपुरीय गव्वकी करी दूइ प्रत्याख्याननाप्यमे ॥ दक्ता पाणार्इयं, पाणं तह साइमं गुडार्इयं ॥ पदियं

सूर्यमि तद्विद्म, तिन्नीजणगंति नायरिञ्चं ॥ १ ॥ स्त्रीके साथ जोग करने के चौविहार जंग नहीं होता है, परतु बालकके तथा स्त्रीके होठ मुखमें ले कर चर्वण करे, तो जंग होवे, अरु द्विविध आहार प्रत्याख्यानमें यह जो करे तो जंग नहीं होता, प्रत्याख्यान जो है सो कवल आहारका है, परतु रोम आहारका नहीं है. इस वास्ते लेपादि करनेसे जंग नहीं.

तथा इतनी वस्तु किसी आहारमेंनी नहीं है उसका नाम लिखते हैं. पंचांग नींब, गोमूत्र, गलोय, कडु, चिरायता, अतिविष, कुडेकी ढाल, चीड, चंदन, राख, हरिडा, रोहणी, उपलोड, वज. त्रिफला, वांबूलकी विन्नक, धमासा, नाहि, आसंध, रीगणी, एलुवा, गुगल, हारडां, दाल, कर्पास की जड, जाड, वैरी, कंथेरी, करीर, इनकी जड, पुआड, वोहथोरी, आठि मंजीठ, बोल, चीउकाष्ठ, कूंआर, चित्रक, कुंदरु प्रमुख जो वस्तु खानेमें अनिष्ट लगे, वो सर्व अनाहार है, यह अनाहार वस्तु रोगादि कष्टमें चौ विहार प्रत्याख्यानमेंनी खा लेवे, तो जंग नहीं. इस तरे आहारके जेद जानके प्रत्याख्यान करे.

पीठें मलोत्सर्ग, दंतधावन, जिह्वालेखन, कुरला करनां. यह सर्व देश स्नान करके पवित्र होवे, यह कहनां अनुवाद रूप हे. क्योंकि यह पू वीक कर्म सबेरे उठके प्राय सर्व गृहस्थ करते हे. इसमें शास्त्रोपदेशकी अपेक्षा नहीं. स्वतःही सिद्ध है, परतु इनकी विधि शास्त्र कहता है, उसमें प्रथम मलोत्सर्ग विधि यह है, कि मलोत्सर्ग मौनसें करनां चाहिये, सो निर्दूषण योग्य स्थानमें करे ॥ यत उक्तं विवेकविलासग्रंथे ॥ मूत्रोत्सर्ग म लोत्सर्ग, मैथुनं स्नानजो जने ॥ संध्यादि कर्म पूजा च, कुर्यात्कृत्यं च मौनवा ॥ १ ॥ अर्थ - मूतना, दिसा फिरनां, मैथुन करना, स्नान, जोजन, संध्या दि कर्म, पूजा, जाप, यह सर्व मौनपणे करने, तथा दोनो संध्या बख पहिरके करे, तथा दिनमें उत्तरके सन्मुख मुख करके, अरु रात्रिकों दक्षिणदिशि सन्मुख मुख करके लघु शंका उच्चार करे, तथा सर्व नक्षत्रोका तेज सूर्य करके जब त्रष्ट हो जावे, जहां तक सूर्यका आधा मांमजा उगे, तहातरु सबेरेकी संध्या करणी, तथा सूर्य आधा अस्त होवे. तद पीठें दो तीन नक्षत्र जहां तक नजर न पडे, तहां तक सार्पकाल कहते हैं, तथा राखका ढेर, गोबरका ढेर, गौके वैठनेके स्थानमें, सर्पकी बंधी ऊपर तथा

जहां बहुत लोग पुरीपोत्सर्ग करते हों, तथा उत्तम वृद्धके देव, रस्ते वृद्ध देव, तथा रस्तेमें, तथा सूर्यके सन्मुख, तथा पाणोंकी जगामें, तामसाणोंमें, तथा नदीके कांठे उपर, तथा जिस जगोको स्त्री पूजती हो, इत्यादि स्थानोंमें मलोत्सर्ग न करे, परंतु जहां वैठनेसे कोई मार पीठ करे, पकड़के न ले जावे, धर्मकी निंदा न होवे, तथा जहां वैठनेसे गिफिसले नहीं, पोली जूमि न होवे, मासादि न होवे, त्रस जीव बीज होवे, इत्यादि उचितस्थानमें मलोत्सर्ग करे, गामके तथा किसी घरके समीप मलोत्सर्ग न करे, तथा जिस तर्फसे पवन आती होवे, तथा गामकी सूर्यकी पूर्वदिशिके तरफ पीठ करके मलोत्सर्ग करे, दिसा अरु मूत्रका वेग रोकनां नहीं, क्योंकि मूत्रका वेग नेत्रोंमें हानी होनी है, तथा दिसाका वेग रोकनेसे काल हो जाता है तथा वमन रोकनेसे कुष्ठ रोग हो जाता है, जेकर ये तीनों बातें न होवेगी तो रोग तो जरूर हो जावेगा, श्लेष्मादि करके ऊपर धूनि गेर देवे, क्योंकि श्रीप्रज्ञापनोपांगके प्रथम पदमें लिखा है, कि चौदह जगे समाधि जीव उत्पन्न होते हैं, सो चौदह स्थानक कहते हैं, १ पुरीपमें, २ मूत्रमें, ३ मुखके अकमें, ४ नाकके मैलमें, ५ वमनमें, ६ पित्तोंमें, ७ वीर्यमें, ८ वीर्यरुधिर दोनोंमें, ९ राधमें, १० वीर्यका पुञ्ज अलग निकल पड़े उसमें, ११ जीव रहित कलेवरमें, १२ स्त्री पुरुषके संयोगमें, १३ नगरीकी मारोंमें, १४ सर्व अशुचि स्थानमें, कानकी मैल, आंखकी गीडमें, काखकी मैल प्रमुखमें, यह सर्व चौदह बोल मनुष्यके संसर्गवाले ग्रहण करणें अरु जब शरीरसे अलग होवे, तब जीव उत्पन्न होते हैं.

तथा दातनजी निरवय स्थानमें करे, दातण अचित्त जाने हुए वृद्धकी कोमल करे, तथा दातोंके टूट करने वास्ते तर्जनी अंगुली करके दातोंकी बीड घसे, जो दातोंकी मैल पड़े, उसके ऊपर धूनि गेर देवे, तथा दातणजी कैसी करे जो दातण सूखी होवे, बीचमें गाठ न होवे, कूर्च अन्ना होवे, आगेसे पतली होवे, चेंटी अंगुली तमान मोटी होवे, चुन्मिकी उत्पन्न होइ होवे, अैसी दातण कनिष्ठा अनामिकाके बीच ले कर करे, पहिलां दाहिनी दाढा घसे, फेर वामी घसे, उपयोगवंत स्वस्थ, दात अरु पीढके मांसको पीडा न देवे, उत्तर तथा पूर्व सन्मुख करके निश्चलासन,

न युक्त दातण करे, दुर्गंध, पोली, सूकी, खट्टी, खारी, वस्तु दांतकों न ले. तथा, व्यतीपात, रविवार, संक्रांति दिनें ग्रहण लगेमें, नवमी, अष्टमी, पडवा, चौदश, पूर्णमासी, अमावस, इन दिनोंमें दातण न करे. जे कर दातण न मिले, तब मुखशुद्धिके वास्ते चारां कुरले करे, अरु जिब्हा खेखन तो सदा करे. दातणकी फांकसें जिब्हाका मैल हलवे हलवे सर्व उतारके शुचिस्थानमें दातण धो करके आपणे मुखके सामने गेरे. तथा खांसी, श्वास, तप, अजीर्ण, शोक, तृषावाला, मुख पक्केवाला, मसूक, नेत्र, हृदय, कान, इतने रोग वाला, दातण न करे.

मस्तकके केशोंकों सदा समारे, जिसमें जूआं न पडे, जे कर तिलक करे अरीसा देखे, उसमें मुख नहीं देखे, सिर नहि देखे, तो पांच दिनके अदर उतका मरना जानना अरु जिसने उपवास पोरुष्यादिक प्रत्याख्यान करा होवे, वो दात धोया विनाची शुद्ध है, क्योंकि तपका बडा फल है, लौकिक शास्त्रों में उपवासादि करे, तो दातण विनाही देवपूजा करते हैं, इत वास्ते लौकिक शास्त्रोंमेंनी उपवासादिमें दातण करनेका निषेध है ॥ यदुक्त विष्णुनक्तिचंद्रोदयग्रथे ॥ प्रतिपदार्शपष्टौषु, मध्यांते नवमीतिथौ ॥ संक्रांति दिवसे प्राप्ते, न कुर्याद्वतथावनं ॥ १ ॥ उपवासे तथा श्राद्धे, न कुर्यात् दंतथावनं ॥ दंतानां काष्ठसंयोगो, हति सप्त कुजानि वै ॥ २ इत्यादि.

तथा जब स्नान करे, तब उत्तिग पनक कुंशुआदि जीवोंसें रहित जू मिमें करे, सो जूमि उंची, नीची, पोली, न होवे, प्रथम तो उष्ण प्राशुक जलसें स्नान करे, जेकर उष्ण जल न मिले, तब ब्रह्मसें ठान करके प्रमाण संयुक्त शीतल जलसें स्नान करे, तथा व्यवहार शास्त्रमें अैसा लिखा है, कि.— नम्र हो कर तथा रोगी तथा परदेशसें आयां हूआ जोज न करे पीठें आनूपण पहेरके किसीकों विटा करके पीठें आ करके मगल कार्य करके स्नान न करे, तथा अनजाने पानीमे, दुष्प्रवेश जलमें, मैले जलमें, चूड़ों करके आघ्रादित जलमे, शैवल करके आघ्रादित जलमें, स्नान न करे, तथा शीतल जलसें स्नान करके उष्ण नोजन न खाना चाहिये. अरु उष्ण जलसे स्नान करके शीतज नोजन न खाना चाहिये. तैलमर्दन सदाही करना चाहिये तथा स्नान कछा पीठें जिसकी कांति फोकी वीसे तथा जिसके दांत परस्पर घसे, अरु शरीरसे मृतक कैसी

गंध ध्यावे, तिसका मरण तीन दिनके अंदर होगा, तथा स्नान कखां पीठे जिसके हृदयमें, तथा दोनो पगोंमें तत्काल पाणी शोष जावे, तब ठे दिनोके बीच उसका मरन जाननां. मैथुन सेवकें तथा वमन करकें इन दोनोमें कबुक देर पीठें स्नान करे, तथा मृतककी चिताके धूम लगनेसे मस्तरु मूं म्वा करकें, ठाने दूये शुद्ध जलसें स्नान करे, तथा तेलमर्दन करी स्नान कखां पीठें उज्ज्वल वस्त्र आचरण पहिरनां. पीठें प्रयाण करनेके दिनमें, सं ग्राममें जातां दूआ, विद्यामंत्र साधतां, रातकों, सांजको, पर्वदिनमें, नवमे दिनमें स्नान न करे, मस्तक मुंननी न करावे, तथा पक्षमे एक बार दाढी मस्तकके केश तथा नख दूर करावे, परंतु अपणे दांतों करी तथा अपणे हाथ करकें नख न कतरे, स्नान करनेसें शरीर पवित्र चैतन्यसुख कर जाव शुद्धिका हेतु हो जाता है ॥ उक्तं च दिनाये अष्टकप्रकरणे ॥

श्लोक ॥ जलेन देहदेशस्य, कृणं यद्बुद्धिकारणं प्रायोऽन्यानुपराधेन, इ व्यस्नानं तदुच्यते ॥ १ ॥ अर्थ— देहदेश त्वचामात्रहीको कृणमात्र शुद्धि है, परंतु प्रनूत काल नहीं, शुद्धि जो है, सोनी प्राये है, कुछ एकांत नहीं है, क्योंकि अतिसारादि रोग वालोंको कृण मात्रनी शुद्धि नहीं हो सक्ती है, धोने योग्य मैलसें अन्य दूसरा मैल नासिकादि अंतर्गत जो है, सोनी स्नानसें दूर नहीं होता है, अथवा पाणी विना और जीवोकी हिंसा न करनेसें जो स्नान है, सो बाह्य स्नान है, जो पुरुष स्नान करके जगवानकी तथा साधुकी पूजा करे, तिसका स्नाननी अज्ञा है, क्योंकि जावशुद्धिका निमित्त है, स्नान करनेमें अपूकायके जीों की विराधनानी है, तोनी सम्यग्दर्शनकी शुद्धि रूप गुण है ॥ यदुक्तं ॥ पूआए कायवहो, पडिक्को सोउ किंतु जिणपूआ ॥ सम्मत्त सुद्धिहेउ, ति जावणोयाउ निरवज्जा ॥ १ ॥ अर्थ— कोइ कहते हैं कि पूजा करनेसें जीववध होता है, अरु जीववध तो शास्त्रमें निषेध करा है, इस वास्ते पूजा न करणी चाहिये. इसका उत्तर कहते हैं, कि पूजा जो जिनराज की है, सो सम्यक्त्व निर्मल करने वाली है, इस वास्ते जिनपूजा निरवध है, असें देवपूजाके वास्ते गृहस्थको स्नान करना कहा है, तथा शरीरके चैतन्य सुखके वास्तेनी स्नान है, परंतु जो स्नान करनेसें पुण्य मानते हैं, सो वात मिथ्या है. क्योंकि जो कोइ तीर्थमेंनी जान कर स्नान

करता है, तिसकोंजी शरीर शुद्धिके शिवाय और कुछ फल नहीं होता है, यह बात, अन्यदर्शनके शास्त्रोंमेंनी कही है ॥ उक्त च ॥ स्कंदपुराणे काशी खंडे पष्ठाध्याये ॥ श्लोक ॥ मृदोचारसहस्रेण, जलकुंभशतेन च ॥ न ह्युद्यंते दुराचाराः, स्नानतीर्थशतैरपि ॥ १ ॥ जायंते च म्रियंते च, जलेष्वेव जलौकसः ॥ नच गच्छति ते स्वर्गं, मविशुद्धमनोमलाः ॥ २ ॥ चित्तं समाधिनिः शुद्धं, वदन सत्यज्ञापणैः ॥ ब्रह्मचर्यादिभिः कायः, शुद्धो गंगाविनाप्यसौ ॥ ३ ॥ चित्तं रागादिभिः क्लिष्टं, मलोकवचनैर्मुखं ॥ जीवहिंसादिभिः कायो, गंगा तस्य पराङ्मुखी ॥ ४ ॥ परदारपरद्वयं, परद्रोहपराङ्मुखं ॥ गंगाप्याह कदागत्य, मामयं पावधिष्यति ॥ ५ ॥ जलसें स्नान करनेसें असख्य जीवोंकी विराधना होती है, इस वास्ते पुण्य नहीं है, जलमे जीवोका होना मीमांसा शास्त्रसेंनी सिद्ध होता है. यदुक्त उत्तरमीमांसाया ॥ श्लोक ॥ जलास्यतनुगलिते, ये कृष्णः संति जंतवः ॥ सूक्ष्माश्च समाणास्ते, नैव यांति त्रिविष्टपं ॥ १ ॥ इत्यादि.

किसीके स्नान करनेकी जे कर गुमडादिमेसे राधादि श्रवे, तदा तिसनें अंगपूजा फूलादिकसें आप नहीं करनी, दूसरोंसें करावे. अरु अग्रपूजा तथा जावपूजा आपनी करे, तो कुछ दोष नहीं, थोडासाजी अर्पवित्र होवे, तव देवका स्पर्श न करे, तथा स्नान कखा पवित्र मृदु, गंध, कापायिकादि वस्त्र, अंगलूहणा, पोतीयां ठोड करके पवित्र वस्त्रातर पहिरनेकी युक्तिसे पाणीके नीजे पगोसें धरतीको अस्पर्शता दूआ पवित्र स्थानमें था करके उत्तर सन्मुख मुख करके अडी तरे मनोहर नवा वस्त्र जो फाटा दूआ तथा सिवाया दूआ न होवे, अरु वर्षमें धवला होवे, असा वस्त्र पहरे, तथा जिस वस्त्रको कटिमें पहिरा होवे, तथा जिस वस्त्रसें दिसा गया होवे, तथा जिस वस्त्रसें मैथुन सेव्या होवे, तिस वस्त्रको पहिरके पूजादि न करे, तथा एक वस्त्र पहिनके नोजन तथा देवपूजादि न करे, तथा स्त्री, कंचुकी विना पहने देवपूजा न करे, इस रीतिसे पुरुष को दो वस्त्र तथा स्त्रीको तीन वस्त्र विना पूजा करनी नहीं कल्पे है, देवपूजामे ओती अतिविजिष्ट धवली करनी चाहिये, निगीथचूर्णा तथा आश्विनरुत्यादि शास्त्रोंमे असाही लिखा है, तथा पूजा पोडशमें असाजी लिखा है, कि रेशमी आदिक जो सुंदर वस्त्र लाल पीजा होवे,

सोनी पूजामें पहिरे तो ठीक है, तथा “ एगसाडियं उत्तरासंगं करे, ५  
 त्यादि आगमके प्रमाणसें उत्तरासंग अखंम वस्त्रका करे, दो टुकड़े सीया  
 वस्त्र न कल्पे, तथा रेशमी कपड़ेसें जोजनादि करे, अरु मनमें समजे कि  
 यह तो सदा पवित्र है, तोनी तिस्सें पूजा न करे. तथा जिस वस्त्रको प  
 हिरके पूजा करे, उसकोनी वारंवार पहिननेके अनुसार धोवावे, धूप दे  
 कर पवित्र करे, धोती थोडाही काल तक पहननी चाहिये, उस धोतीसें प  
 सीना श्लेष्मादि न दूर करना चाहिये. क्योंकि उस्सें अपवित्रता हो  
 जाती है, तथा पहिने दूए वस्त्रोंके साथ पूजाके वस्त्र बुढाने (अडाते)  
 नहीं चाहिये, दूसरायोंकी पहनी दूऽ धोती पहननी न चाहिये, तथा  
 बाल, वृद्ध, स्त्रीके पहननेमें आऽ होवे, तो विशेष करके न पहननी चा  
 हिये, तथा जले स्थानसें ज्ञातगुण, सुमनुष्य पासों पवित्र जाजन आश्वा  
 दनुसंयुक्त रस्तेमें लानेकी विधिसंयुक्त पाणी अरु फूल, पूजा वास्ते मंगावे  
 ने चाहिये. अरु फूलादि लाने वालेकों अड्डी तरें मोल दे कर प्रतप्त कर  
 नां चाहिये, ऐसे मुखकोश बांध के पवित्रस्थानादि युक्तिसें जिसमें कोऽ  
 जीव पडा न होवे, ऐसा शोथ्या हुवा केशर कर्पूराविकसे मिश्र, चंदन घसे,  
 शोथ्या दूआ सुंदर धूप, प्रदीप, अखंम चावलादि तूत रहित प्रशांता करने  
 योग्य ऐसा नैवेद्य फलादि सामग्री मेलकें इत रीतें इव्यसें शुचि करके  
 अरु जावसें शुचि तो राग, द्वेष, कपाय, ईर्ष्या रहित तथा ५त लोक पर  
 लोकके सुखोंकी इन्हा रहित हो कर अरु कुतूहल चपलादि त्याग करके  
 एकाग्र चिन्तारूप जावशुद्धि करे ॥ उक्तं च ॥ श्लोक ॥ मनोवाक्कायवस्त्रोर्वा,  
 पूजोपकरणस्थितेः ॥ शुद्धिः सप्तविधा कार्या, श्रीअर्हंतपूजनदृशे ॥ १ ॥

ऐसें इव्य जाव करके शुद्ध हो कर जिनघर (वेहरेमें) दक्षिणदिशें पुरुष,  
 अरु वामा दिशें स्त्री, यत्न पूर्वक प्रवेश करे, प्रवेशके अवसरमें दक्षिण पग  
 पहिलां धरे, पीठें सुगंध वाले मीठे सरस इव्यों करके पराङ्मुख वामाक्षर  
 चलते मौनसें देवपूजा करे. इत्यादि तीन नैवेद्यिकी करण. तीन प्रदक्षिणा,  
 इत्यादि विधिसें शुचि पाट उपर पद्मासनादि सुखासन पर बैठके, चंदनका  
 जाजनसें चंदन ले कर दूसरी कटोरीमें तथा हथेलीमें ले कर मस्तकमें  
 तिलक करके हस्तकंकण, श्रीचंदनचर्चित धूपित, हाथों करी जिन अर्ह  
 तकों पूजके आगें लिखते है जो १ अंगपूजा, २ अग्रपूजा, ३ जावपू

जा, तिनोंसें पूजकें प्रत्याख्यान जो पूर्वे करा था, सो यथाशक्ति देवकी सा  
हीसें उच्चारण करे, तद् पीठें विविसें बडे पंचायती मंदिरमें जा कर पूजा  
करे, सो इत विधिसें करे.

यदि राजादि महर्षिक होवे, सो तो सर्व ऋद्धि, सर्वदीप्ति, सर्वयुक्ति,  
सर्वसैन्या, सब उद्यमसें जिनमतकी प्रजावना वास्ते महा आम्बर पूर्वक  
जिनमंदिरमें पूजा करनेको जावे, जैसें दशार्णजद् राजा श्रीमहाबीर जग  
वंतको वंदना करने गया था तैसें जावे.

अरु जो सामान्य ऋद्धिवाला होवे, सो अजिमान रहित लोकोपहास्य  
त्यागके यथायोग्य आम्बर नाइ, मित्र, पुत्रादिकोंसे परिवृत हो कर जावे,  
ऐसें जिनमंदिरमें जा कर १ पुष्प, तबोल, सरस, डुर्वादि त्यागे, तथा २  
दूरी, पावडी, मुकुट, हाथी प्रमुख सचित्ताचित्त वस्तु गरीरके जोगकी त्यागे,  
तथा ३ मुकुट वर्जकें शेष आचरणादि अचित्त वस्तु न त्यागे, अरु एक  
बडे वस्त्रका उत्तरासंग करे, ४ जिनेश्वरकी मूर्ति दीखे अंजलि बांधकें म  
स्तक उपर चढाकें 'नमो जिणाणं' ऐसा कहे, ५ मन एकाग्र करे, इत री  
तिसें पांच अजिगम संनालकें ( सांचके ) नैपेधिकी पूर्वक प्रवेश करे.

जे कर राजा जिनमंदिरमें प्रवेश करे, तव तत्काल राजचिन्ह दूर करे,  
१ तलवार, २ डत्र, ३ असवारी, ४ मुकुट, ५ चामर. ये पाचो चिन्ह रा  
जाके त्यागे, अग्रद्वारमें प्रवेश करतां घर व्यापारका निषेध करने वास्ते  
नैपेधिकी तीन करे, परतु तीनो निस्तहोकी एक नैपेधिकी गणतीमें कर  
णी, क्योंकि एकही घर व्यापार एककाही निषेध कीया है. तद् पीठें मूल  
बिंबकों नमस्कार करके सर्व कृत्य, कल्याणवाठरु पुरुषनें दक्षिणके पासें  
करणा, इत वास्ते मूलबिंबकों दक्षिणके पासें करता दूया ज्ञान, दर्शन,  
अरु चारित्र, इन तीनोके आराधनार्थ प्रदक्षिणा तीन देवे, प्रदक्षिणा देता  
दूया समवसरणस्थ चाररूप संयुक्त जिनेश्वरजीकों ध्यावे, गंनारेमें पूर्वे  
वामा दक्षिणा दिशिमें जो बिंब होवे, तिनको वदे, इली वास्ते सर्व मंदिर  
में चारों तर्फ समवसरणके आकारें तीन तर्फ तीन बिंब स्थापे जाते हैं,  
ऐसे करनेसें जो अरिहंतकी पीठें वसणोमें दोष था, सो दूर हो गया, पीठ  
किली पासेनी न रही, तिस पीठें चैत्यप्रमार्जनादि जो आगें जिखेंगे, सो  
करे, पीठें सर्व प्रकारकी पूजा सामग्री प्रत्ये तथा देहराके समारनेके कामके



निषेध करने वास्ते दूसरी सुखमंदपादिकमें नैषेधकी करे, पीठें भूलविचकों तीन प्रणाम करके पूजा करे, नाप्यकारनेनी ऐसा कहा है, कि निस्सही तीन करके प्रवेश करी मंदपमें जिनेश्वरके आगे धरती उपर स्थापन करके, हाथ गोडे करे, विधिसें तीन वार प्रणाम करे, तिस पीठें हर्षसैं उट्हास हो करके सुखकोश बाध करके जिनप्रतिमाका निर्माव्य, फूज प्रमुख मोर पीठी करके दूर करे, जिनमंदिरका प्रमार्जन आप करे, अथवा औरोसे करावे, पीठें जिनविचकी पूजा विधिसैं करे, सुखकोश आठ पुडका करे, जिस्से नामिका अरु सुखका निश्वास निरोध होवे, वर्षातमे निर्माव्यमें कुंभुआदि जीवनी होते हैं इस वास्ते निर्माव्य अरु स्नात्र जल न्यारा न्यारा पवित्र स्थानमें गेरे, गिरा वे, ऐसैं आशातनानी नही होती है. पूजा, कजशजलसैं करता हूया ऐसी जावना द्यावे, सो लिखते है.

हे स्वामिन ! बालपणेमें मेरु शिखर पर सुवर्णकजरां करी इंद्र देवतागे स्नान कराया था. सो धन्य थे, जिनोंने तुमारा दर्शन करा था. इत्यादि वि तवणा करके पीठें सुयत्नसैं बालाकूंचीसैं जिनविचके अंग उपरसैं चदनादि उतारे, पीठें जलसैं प्रह्वालन करके दो अंगलूहणसैं जिनप्रतिमाकों निर्जल करे, पंग, जानु, कर. मस्तकें पूजा यथाक्रमसे नव अंगमें श्रीचंदनादि करके चर्चे, (पूजे) कोई आचार्य कहते है, कि पहिला मस्तकमें तिलक करके पीठें नचांग पूजा करणी, श्रीजिनप्रजसूरिकृत पूजाविधि ग्रंथमे ऐसा लिखा है - कि:- सरस सुरजि चदन करी देवके. दाहिण जानु. दाहिण स्कंध, ति लाड, वामा स्कंध, वामा जानु, इस क्रमसैं पूजा करे. हृदय प्रमुखमें पूजा करे, तव नव अंगकी पूजा होती है. अंगोंमें पूजा करके पीठें सरस पांच वणकें प्रत्यग्र फूजों करके चदन सुगंध वास करी पूजे, जे कर पहिलां फिलीने बड़े मंदाणसे पूजा करी होवे, अरु अपणे पास वैसी सामग्री पूजाकी न द्यावे, तव पहिली पूजा उतारे नही, क्योकि विशिष्ट पूजा देखनेमें जन्मोंको जो पुण्यानुबंधी पुण्य होता था, तिसकी अंतराय हो जाती है, किंतु तिस वास्ते तिसी पूजाकों गोचनिक करे, यह कथन वृहज्जाप्यमें है.

तथा जो पूजा उपर पूजा करणी, सो निर्माव्यके लक्षण न होनेसे निर्माव्य नही, जो जोगविनष्ट इव्य है, सोऽ निर्माव्य गीतार्थोने कहा है, आनु पण वार वार पहराये जाते हैं, परंतु निर्माव्य नही होते हैं, नही तो गंध,

कराय वस्त्र, करकेँ एक सौ आठ जिनप्रतिमाके अंग क्योँ कर लूहे ?-इ  
त वास्ते जिनबिंवारोपित जो वस्तु, शोभा रहित सुगंध रहित दीख पड़े,  
अरु नव्य जीवोंकोँ प्रमोदका हेतु न होवे, तिसहीकोँ बहुश्रुत निर्माल्य  
कहते है. यह कथन संघाचारवृत्तिमें लिखा है, चढे हूये चावलादि  
निर्माल्य नही, कोइ आचार्य निर्माल्यजी कहते है, तत्त्व केवली  
जाणे क्योँ कर है ?

चंदन फूलादि पूजा तैसेँ करणी, जैसेँ नगवानके नेत्र मुखादि ढके न  
जावे, अरु बहुत शोचनिक दीखे, जिस्सेँ देखने वालोंकोँ प्रमोद  
पुण्यादिककी वृद्धि होवे.

तथा १ अंगपूजा, २ अग्रपूजा, ३ नावपूजा, यह तीन प्रकारकी पूजा  
है, तिनमें जो निर्माल्य दूर करनां, प्रमार्जना करनां, अंगप्रक्षालन करनां,  
वालकुंचीका व्यापारण, पूजना, कुसुमाजलिमोचन, पंचामृतस्नात्र, शुद्धो  
दकधारा देनी, धूपित स्वच्छ मृदुगंध कपायकादि वस्त्रसेँ अंगलूहण करना, क  
पूर कुंकुमादि मिश्र गोशीर्ष चंदन विलेपन अंगी रचनी, तथा गोरुचन क  
स्तूरीसेँ तिलक करणां, पत्र, वेल, फूल प्रमुखकी रचना करनी, बहु मोल  
रत्न सुवर्ण मोती रूपेँ पुष्पादिकेँ आचरण (अजंकार) पहिरावे, जैसेँ श्री  
वस्तुपालने अपने कराये हूये सवालक विवोंके तथा श्रीशत्रुंजयजीमें सर्व  
विवोंके रत्न सुवर्णके आचरण कराये थे, तथा दमयंतीने पिठले चवमें अ  
ष्टापद पर्वतपर चौवीस अर्हतोंके तिलक कराये होते. क्योँकि प्रतिमाजी  
की जितनी उत्कृष्ट सामग्री होवे, उतनेही अधिक नव्य जीवोंके गुन जा  
वोकी वृद्धि होती है तथा पहरावणी, चडवादि विचित्र डकूजादि वस्त्र प  
हिरावे, तथा १ अंगिम, २ वेष्टिम, ३ पूरिम, ४ सधातिम रूप, चतुर्विध  
प्रधान अम्लान विधिसे ल्याया हूया शतपत्र, सहस्रपत्र, जाइ, केतकी,  
चंपकादि विज्ञेप फूलो करी माला, मुकुट, सेहरा, फूजधरादिककी रचना  
करे. तथा जिनजीके हाथमें त्रिजोरा, नालियर, तोपारी, नागवल्ली, मोहो  
र, रूपश्या, लडु प्रमुख रखनां. अरु धूपद्वेप, सुगंध, वासप्रक्षेपादि, यह सर्व  
अंगपूजाकी गिणतीमें है. महाजाप्यमेंनी कहा है ॥ गाथा ॥ न्हवण वि  
जेव आहरण, वड फल गंध धूप पुष्पेहिं ॥ कोरइ जिणगपूया, तछ विही  
एत नायवो ॥ १ ॥ वड्ढेण वंधिउणना, स अहवा जहा समाहीए ॥ व

ज्येष्ठं तु तथा, देहमवि कंमुअणमाई ॥ २ ॥ अन्यत्रापि गाथा ॥ का  
कंमुअणं वळे, तह खेलविगिचणं ॥ धुइ धुत्तनणणं चैव, दुअंतो जगव  
णो ॥ १ ॥ देवपूजनके अवसरमें मुख्यवृत्ति तो मौनही करणी चाहिये,  
कर न कर सके तो नी पापहेतु वचन तो सर्वथाही त्यागे, नैपेथिकी क  
नेसें गृहादि व्यापारका निषेध करनेसें इस वास्ते पापकी संज्ञानी वजे, म  
लविंबकी विस्तार सहित पूजा करे, पीठे अनुक्रमसें सर्व और विंबोंक  
पूजा करे, द्वारविंब समवसरण विंबोंकी पूजाकी मूलविंबकी पूजा कर  
पीठे, गंजारासें निकलती वखत करनी चाहिये, असा संनव है, परंतु प्र  
ग करतां तो मूलविंबकीही पूजा करणी, उचित मालुम होती है, संघ  
चारमें ऐसेही लिखा है, इस वास्ते मूलनायककी पूजा, सर्व विंबोंसें पहि  
लां और सविशेष करनी चाहिये ॥ उक्तमपि ॥ उच्चिअत्त पूअए, विसे  
सकरणं तु मूलविंबस्स ॥ जं पडइ तड पढमं, जणस्स दिछी सहमणेणं ॥ १ ॥

शिष्य प्रश्न करता है कि:- चंदनादि करके प्रथम एक मूलनायकको  
पूजीये अरु दूसरे विंबोंकी पीठे पूजा करनी, यह तो स्वामी सेवक जाव उ  
हारा, सो तो लोकनाथ तीर्थकरमें है नहीं, क्योंकि एकविंबकी बहुत आव  
रसें पूजा करणी, अरु दूसरे विंबोंकी थोडी पूजा करणी, यह बडी जारी  
आशातना मुजकों मालुम पडती है ?

गुरु उत्तर कहते है - अर्हत प्रतिमाओंमें नायक सेवककी बुद्धि हा  
नवंत पुरुषकों नहीं होती है, क्योंकि सर्व प्रतिमाजीके एक सरीखाही  
परिवार प्रातिहार्य प्रमुख दीख पडते है, यह व्यवहार मात्र है, जो विंब  
पहिलांही स्थापन कीया गया है, सो मूलनायक है, इस व्यवहारसें शेष  
प्रतिमाओंका नायक जाव दूर नहीं होता है.

एक प्रतिमाकों वंदन करनां, पूजा करनी, नैवेद्य चढानां, यह उचित  
प्रवृत्तिवाले पुरुषकों आशातना नहीं है, जैसें माटीकी प्रतिमाकी पूजा  
फूलादि रहित उचित है, अरु सुवर्णादिककी प्रतिमाकों स्नान विज्ञेपना  
दि उचित है, तथा कल्याणक प्रमुखका महोत्सव एकही विंबका विशेष  
करके कीया जाता है, परंतु वो महोत्सव दूसरी प्रतिमाओंकी आशातनाका  
कारण नहीं होता है, जैसें धर्मी पुरुषकों पूजतां और लोकोंकी आशातना  
नहीं, इस प्रकारकी उचित प्रवृत्ति करतां जैसें आशातना नहीं होती.

है, तैसैंही मूत्रविंबकी विशेष पूजा करतां आशातना नहीं होती है, जि मंदिरमें जिनविंबकी जो पूजा करते हैं, सो तीर्थकरोंके वास्ते नहीं कर ते हैं, किंतु अपने छुन जावोंके निमित्त है, जिस निमित्तसैं आत्माका उ पादान समर जाता है, अरु दूसरोकों बोधकी प्राप्ति होती है. कोइ जीव तो श्रीजिनमंदिरकों देखकें प्रतिबोध हो जाता है, अरु कोइ जीव जिनप्रतिमाका प्रशान्तरूप देखकें प्रतिबोध हो जाता है, कोइ पूजा की महिमा देखके, अरु कोइ गुरुके उपदेशसैं प्रतिबोध हो जाता है. इत वास्ते चैत्य जिनविंबकी रचना बहुत सुंदर बनानी चाहियें. अरु अपनी शक्ति अनुसार मुख्यविंबकी विशेष अद्भुत शोभा करनी चाहियें.

तथा घर देहरासर तो अन्नची पीतल ताम्र रूपामय करावनेकूं समर्थ है, जदा पीतलादिकका बनानेका सामर्थ्य न होवे, तदा दांतादि मय पीतल सिंगरफकी रंगावे, कोरणी विशिष्ट काष्ठादिमय करावे. घरचैत्य तथा चैत्य समुच्चयमें दिनप्रत्ये सर्व जगें प्रमार्जन तैलादिसैं काष्ठ चोपडे, जिस्सैं घुण न लगे, तथा खडियांसैं धवला करे, श्रीतीर्थकरके पंचकल्या एकादिकका चित्राम करावे, समग्र पूजाके उपकरण समरावे, पडदा, क नात, चंडुवादि देवे, अिसैं करे कि, जैसैं जिनमंदिरादिककी अधिक अधिक शोभा होवे. घर देहरेके उपर धोती प्रमुख न गेरे, घर देहरेकीनी चौरा ती आशातना टाले, पीतल पापाणादिमय जो प्रतिमा होवे, तिन सर्वकों एक अंगलूहणोसैं सर्व विंबोका पाणी लूहे, पीठें निरंतर दूसरे सुकोमल अंगलूहणोसैं वारं वार सर्व अंगो उपर फेरकें पाणीकी गीजास बिलकुल रहने न देवे, अिसैं करनेसैं प्रतिमा उज्ज्वल हो जाती है, जहां जहां प्रति माके अंगोपांग पर जल रहि जावे, तहां तहां प्रतिमाके श्यामता हो जाती है, इत वास्ते पाणीकी स्निग्धता सर्वथा प्रकारें टाले, केशर बहुत अरु घद र थोडा, अिसा विलेपन करनेसैं प्रतिमा अधिक अधिक उज्ज्वल हो जाती है.

नव, पंचतीर्थी, चोवीलीका पट्टाडिमैं स्नात्रजलका जो प्रतिमाजीकों पर पर स्पर्श होनेसैं आशातना होती है? अिसी आगंका न करणी चाहियें, प्रशक्य परिहार होनेसे. १ एक अर्हतकी प्रतिमा होवे, तिसका नाम शक है. २ एकही पापाणादिकमें नरत ऐरवत-क्षेत्रकी चोवीली बनवावे, तेनका नाम क्षेत्रप्रतिमा है. ३ अिसैंही एक सौ सिनेर प्रतिमा माहारभ्य

कहते हैं, ४ फूजकी वृष्टि करतां जो माजाधर देवता है, तिसका रूप पंचतीर्थीके ऊपर बनाते है, जिनप्रतिमाको न्हवण करतां पहिला मानाधरकों पाणी स्पर्शके पीठें जिनविंश उपर पढता है, सो दोष नहीं है, यह वृक्षोंकी आचरणा है, इसी तरे चौबीसी गृहे आदिकमेंनी जान लेता, अथोंमेंनी ऐसी रीति देखनेमें आती है ॥ बृहज्जाप्येषुक्त ॥ जाप्यकारका कहनां यहा लिखते है ? जिनराजकी रुद्रि, देखने वास्ते कोइ नक्तजत एक प्रतिमा बनवाता है, प्रगटपणे अष्ट प्रातिहार्य देवागमसुगोजित, ४ दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी धाराधना वास्ते कोइ तीन तीर्थी प्रतिमा बनवाता है. ३ कोइ नक्त पंचपरमेष्टिके धाराधनार्थ उद्यापनमे पंचतीर्थी प्रतिमा नराता है. ४ चौबीस तीर्थकरोंके कल्याणक तप उजमने वास्ते नक्त क्षेत्रमें जो रूपनादि चौबीस तर्थकर हुए हे, तिनके बहुमान वास्ते कोइ चौबीसी बनवाता है, कोइ नक्ति करके मनुष्य लोकमे उल्लष्टे एक काल मे एक सौ सिन्धेर तीर्थकर विहरमानकी एक सौ सिन्धेर प्रतिमा बनवाता है, तिस वास्ते तीन तीर्थी, पाचतीर्थी, चौबीसी आदिकका बनानां युक्ति युक्त है, यह पूर्वोक्त सर्व अंगपूजा है.

अथाग्रपूजा लिख्यते ॥ रूपके, सुवर्णके, चावल धवला सरसव प्रमुख अक्षतों करके अष्टमगल आलेखन करे, जैसे सैनिकराजा रोजकी रोज एक सौ आठ सोनेके चवा करी त्रिकाल जगवानकी प्रतिमा आगें सांथीया करता था, अथवा ज्ञान, दर्शन, चारित्रकी धाराधनाके वास्ते क्रममें पट्टादिकमें चावलोंके तीन पूज करणे, तथा एक जातप्रमुख अन्न, दूग्ग सकर गुडादि पान, तीसरा पक्वान्न फलादि खादिम, चौथा तंबोजादि स्वादिम, इनका चढानां, तथा गोशीर्ष चदनके रस करी पंचांगुली तलेमें मंजील आलेखनादि पुष्पप्रकर, आरती प्रमुख करणी, यह सर्व अग्रपूजाकी गिणतीमें है ॥ यन्नाप्यं ॥ माथा ॥ गंधव नष्ट वाइय, लवण जलागतिआइ दीवाई ॥ ज किञ्च संवंपित्त, अरई अग्ग पूआए ॥ १ ॥ नैवेद्यपूजा तो दिन दिन प्रत्ये करणी सुखाजी है, अरु इसमें फलनी मोटा है, कोग अन्न सावीत तथा रांधा हुआ चढावे, लौकिक शास्त्रोंमेंनी लिखा है ॥ श्लोक ॥ धूपावहति पापानि, दीपोमृत्पुविनाशकः ॥ नैवेद्य विपुत्रं राज्ञं, सिद्धिदात्री प्रवर्षिणा ॥ २ ॥ नैवेद्यका चढानां, आरति करणी प्रमुख आगममेंनी लिखा

“ कीरऽ बलि ” ऐसा पाठ आवश्यक निर्युक्तिमें है, तथा निशीथचूर्णी  
 मनी बलि चढानी लिखा है, तथा कल्पजाप्यमेंनी लिखा है, कि जो जिन  
 प्रतिमाके आगे चढाने वास्ते नैवेद्य करा है, सो साधुकों न कल्पे, तथा  
 प्रतिष्ठाप्रानृतसे रची श्रीपादलिप्त आचार्यकृत प्रतिष्ठापद्धतिमेंनी लिखा है,  
 कि आरति उतारणी, मंगलदीवा करके पीठें चार स्त्री मित्र कर नैवेद्य,  
 गीतगान, विधिसें करे ॥ तथा च माहानिशीथे तृतीये अध्ययने ॥ अरिहंताणं  
 जगर्वताणं गंध मल्ल पद्म समज्जणोवलेवण विचित्त बलि वल्ल धूर्वईएहिं पू  
 था सक्कारेहिं पद्दिणमच्चणंपि कुवाणा तिब्बुपर्णं करेमोति ॥ इति अग्रपूजा ॥  
 नावपूजा जो है, सो इव्यपूजाका जो व्यापार है, तिसके निषेधने  
 वास्ते तोतरी निस्तही तीन वार करे, श्रीजिनेश्वरजीके दक्षिणके पासे पु  
 रुष अरु वामी दिशा स्त्री रह कर आशातना टालने वास्ते जघन्य मदि  
 रमं नूमिके संजव हूए नव हाथ प्रमाण अरु घर देहरेमें जघन्य एक  
 हाथ प्रमाण अरु उत्कृष्टसें तो साठ हाथ प्रमाण अवग्रह है, तिस्से वा  
 हिर वैठकें चैत्यवदना, विशिष्ट काव्यों करकें करे, श्रीनिशीथमे तथा व  
 सुवेवहिममें तथा अन्यशास्त्रोंमें श्रावकोंनेनी कायोत्सर्ग शुद्ध आदि करी  
 चैत्यवंदना करी है, सो चैत्यवदनाची तीन तरेकी जाप्यमें कही है, सो  
 कहते हैं एक तो जघन्य चैत्यवदना, सो अंजलि बांध कर शिर नमा कर प्र  
 णाम करणा, यथा ‘नमो अरिहंताण’ इति. अथवा एक शक्रस्तव पढकें  
 नमस्कार करणा, अथवा एक शक्रस्तव पढे, तो जघन्य चैत्यवदना होवे. दू  
 तरी मयम चैत्यवदना, सो चैत्यस्तवदंकरु युगज ‘अरिहंत चेइयाण’ इत्या  
 दि कायोत्सर्गके पीठें एक स्तुति कहनी, यह मध्यम चैत्यवंदन है, अरु  
 तीसरा उत्कृष्ट चैत्यवदन सो पंचदंरु, जो १ शक्रस्तव, २ चैत्यस्तव, ३  
 नामस्तव, ४ श्रुतस्तव, ५ सिद्धस्तव, प्रणिधान, जयवीरराय, इत्यादि  
 यह सर्व उत्कृष्ट चैत्यवदना है. तथा कोइ आचार्यका ऐसा मत है कि—  
 एक शक्रस्तव करी जघन्य चैत्यवंदना हाती है, दो तीन शक्रस्तव करी म  
 ध्यम चैत्यवदना होती है, तथा चार अथवा पाच शक्रस्तव करी उत्कृष्ट  
 चैत्यवंदना होती है, इसकी विधि चैत्यवदनजाप्यसे जान लेनी. यह तो  
 न प्रकारकी चैत्यवदना कही.

अब यह चैत्यवंदना नित्यप्रत्ये सात वार करणी. महानिशीथमें साधुकों

कही है, तथा श्रावककोनी उत्कृष्ट सात वार करणी कही है ॥ यज्ञाय ॥ एक प्रतिक्रमणमें, दूसरी मंदिरमें, तीसरी आहार करणसें पहिलां करणी, चौथी द्विसचरिमं करतां, पांचमी देवली पडिक्रमणमें, ठी सोती वखत.नातमी सूता उठे उस वखत. यह सात वार चैत्यवंदन साधुको करणी कही है, तथा जो श्रावक आठों प्रहरमें प्रतिक्रमण करता होवे, वोतो निश्चयें सात वार चैत्यवंदन करे, दो प्रतिक्रमणमें दो चैत्यवंदन करे, तीसरी सोतां वखत. चौथी ऊठतां वखत, तथा तीन काल पूजा कखां पीजे, तीन वार, एव सात वार श्रावक चैत्यवंदन करे, तथा जो श्रावक एकही वार पडिक्रमणां करे, सो ठे वार चैत्यवंदन करे, तथा जो पडिक्रमणां न करे, सो पांच वार चैत्यवंदन करे, तथा जो सूतां ऊठतांनी चैत्यवंदन न करे, सो तीन वार करे, जे कर नगरमें बहुत जिनमंदिर होवे, तहां सातसे अधिक नी करे, तथा जे कर त्रिकाल पूजा न कर सके, तो त्रिकाल देववंदना करे, क्योंकि महानिशीथमें लिखा है, कि:-जिसको गुरु प्रथम जैनमतकी श्रद्धा करावे, उसको प्रथम ऐसा नियम देवे कि:-सबेरेकी वखत जिन प्रतिमाका दर्शन करे विना पाणीनी नही पीनां, तथा मध्यान्ह कालमें जहां तक देव, (जिनप्रतिमा) धरु साधुओंको वंदना न करे, तहां तक जोजन क्रिया न करे, तथा संध्याके समय चैत्यवंदन करे विना शय्या उपर पग न देवे, ऐसा नियम करावे.

तथा गीत, नृत्य, जो अग्रपूजामें कहे हैं, सो जावपूजामेंनी बन सके है. सो गीत, नृत्य, मुख्यवृत्ति करिकें तो श्रावक आप करे, जैसे निशीथवृत्तिमें उदायनराजाकी राणी प्रजावतीका कथन है. तथा पूजा करणके अवसरमें श्रीअर्हतकी तीन अवस्थाकी कल्पना करे, उसमें स्नान करती वखत उद्वस्थ अवस्थाकी कल्पना करे, तथा आठ प्रातिहार्यकी शानं करतां केवली अवस्थाकी कल्पना करे, तथा पर्यकासन कायात्सर्गासन देखके निद्रावस्थाकी कल्पना करे, इसमें उद्वस्थ अवस्था तीन तरेकी कल्पे, एक जन्मावस्था, दूसरी राज्यावस्था, तीसरी साधुपणेकी अवस्था. तहां स्नानकी वखत जन्म अवस्था कल्पे, तथा माला, फूज, आचरण, पहिलानेकी वखत, राज्यावस्था कल्पे, तथा दाढी, मुंठ, शिरके बालोंके न दोनेसे साधु अवस्था विचारे, इनमें साधु, केवली मोक्ष अवस्थाको वंदना करे.

तहां पूजा पंचोपचार सहित, अष्टोपचार सहित, अरु धनवान् होवे, तहां सर्वोपचारसैं पूजा करे, तहां फूल, अक्षत, गंध, धूप अरु दीपसैं पूजा करे, सो पंचोपचार पूजा जाननी. तथा फूल, अक्षत, गंध, दीप, धूप, नैवेद्य, फल अरु जल, यह अष्टोपचार पूजा है, सो अष्टविध कर्मकी मंजरी बानी है, तथा स्नात्र, विलेपन, वस्त्र, आनूपणादिक, फल, दीप, गीत, नाटक, आरति आदिक करे, सो सर्वोपचार पूजा है इति बृहन्नाप्ये॥

तथा पूजाके तीन जेद हैं. एक आपही कायासैं पूजाकी सामग्री द्यावे, दूसरी बचनो करके दूसरोसैं मंगवावे, तीसरी मन करके जला फूल फल प्रमुख करी पूजा करे, असैं काया, बचन अरु मन, यह तीनो योगों करके पूजा करे, करावे अरु अनुमोदे, यह तीन तरोंसैं पूजा है.

तथा एक फल, दूसरा नैवेद्य, तीसरी शुद्ध, अरु चौथी प्रतिपत्ति, सो वीतरागकी आज्ञापालन रूप, यह चार प्रकारे पूजा, यथा शक्तिसैं करे. जिनतविस्तरादिक ग्रंथोमें "पुषामिषस्तोत्र प्रतिपत्ति" अर्थात् फूल, नैवेद्य, स्तोत्र, अरु आज्ञा आराधनीय, ये उत्तरोत्तर प्रधान हैं ॥ इत्यागमोक्तं पूजाजेदचतुष्टयं ॥

तथा पूजा दो प्रकारकी है, एक इव्यपूजा, दूसरी नावपूजा, जो फूलादिकसैं जिनराजकी पूजा करणी, सो इव्यपूजा है, दूसरी श्रीजिनेश्वरकी आज्ञा पालनी, सो नावपूजा है. तथा पुष्पारोहण गंधारोहण इत्यादि सत्तरह जेदसैं तथा स्नात्रविलेपनादि एकवीश जेदें पूजा है, परंतु अगपूजा, अमपूजा अरु नावपूजा, यह तीनों पूजा, सर्व पूजायोंके अतर्जाव है, तिनमें सत्तरह जेद, पूजाके लिखते हैं.

एक १ स्नात्र करना, जिनप्रतिमाको विलेपन करनां, २ चक्रजोडा, वास सुगंध, ३ फूल चढाने, ४ फूलकी माला चढानी, ५ पंच रंगें फूल चढाने, ६ बरास जीमसेनी प्रमुखका चूर्ण चढाना, ७ आनरण चढाने, ८ फूलोंका घर करनां, ९ फूलपगर सो फूलोंका ढेर करनां, १० आरति, मंगल दीवा, ११ दीपकपूजा, १२ धूपोपहेप, १३ नैवेद्य, १४ शुनफल डोकन, १५ गीतपूजा, १६ नाटक करणां, १७ वाजत्र. यह सत्तरह जेदोंकरि पूजा है. अथ पूजाके एकवीश जेद लिखते हैं.

तहां प्रथम तो पूजा करणोकी विधि लिखते हैं, १ पूजा करने वाला पू



कही है, तथा श्रावककोंची उत्कृष्ट सात वार करणी कही है ॥ यज्ञाप्य ॥ एक प्रतिक्रमणमें, दूसरी मंदिरमें, तीसरी ध्याहार करणसे पहिला करणी, चौथी दिवसचरिमं करतां, पांचमी देवसी पडिक्कमणमें, ठी सोती बखत सातमी सूता उठे उस बखत, यह सात वार चैत्यवंदन साधुकों करणी कही है, तथा जो श्रावक आठों प्रहरमें प्रतिक्रमण करता होवे, वोतो निश्चयें सात वार चैत्यवंदन करे, दो प्रतिक्रमणमें दो चैत्यवंदन करे, तीसरी सोतां बखत, चौथी ऊठतां बखत, तथा तीन काल पूजा कक्षां पीठें, तीन वार, एवं सात वार श्रावक चैत्यवंदन करे, तथा जो श्रावक एकही वार पडिक्कमणा करे, सो ठे वार चैत्यवंदन करे, तथा जो पडिक्कमणां न करे, सो पांच वार चैत्यवंदन करे, तथा जो सूतां ऊठतांनी चैत्यवंदन न करे, सो तीन वार करे, जे कर नगरमें बहुत जिनमदिर होवे; तदा सातसे अधिक नी करे, तथा जे कर त्रिकाल पूजा न कर सके, तो त्रिकाल देववंदना करे, क्योंकि महानिशीथमें लिखा है, किः—जिसकों गुरु प्रथम जैनमतकी श्रद्धा करावे, उसकों प्रथम ऐसा नियम देवे कि—सबरेको बखत जिन प्रतिमाका दर्शन करे विना पाणीची नही पीनां, तथा मध्याह्न कालमें जहां तक देव, (जिनप्रतिमा) धरु साधुओंकों वंदना न करे, तहां तक नोजन क्रिया न करे, तथा संध्याके समय चैत्यवंदन करे विना शय्या उपर पग न देवे, ऐसा नियम करावे.

तथा गीत, नृत्य, जो अग्रपूजामें कहे हैं, सो चावपूजामेंची बन सके हैं. सो गीत, नृत्य, मुख्यवृत्ति करिकें तो श्रावक आप करे, जैसें निशीथवृत्तिमें उदायनराजाकी राणी प्रजावतीका कथन है. तथा पूजा करणके अवसरमें श्रीअर्हतकी तीन अवस्थाकी कल्पना करे, उसमें स्नान करती बखत उद्वस्थ अवस्थाकी कल्पना करे, तथा आठ प्रातिहार्यकी शोना करता केवली अवस्थाकी कल्पना करे, तथा पर्यकासन कायोत्सर्गासन देखके सिद्धावस्थाकी कल्पना करे, इसमें उद्वस्थ अवस्था तीन तरेकी कल्पे, एक जन्मावस्था, दूसरी राज्यावस्था, तीसरी साधुपणकी अवस्था. तहां स्नानकी बखत जन्म अवस्था कल्पे, तथा माजा, फूल, आचरण, पहिरा नेकी बखत, राज्यावस्था कल्पे, तथा दाढी, मूठ, शिरके वालांके न होनेसे साधु अवस्था विचारे, इनमे साधु, केवली मोक्ष अवस्थाकों वंदना करे.

तहां पूजा पंचोपचार सहित, अष्टोपचार सहित, अरु धनवान् होवे, त  
सर्वोपचारसें पूजा करे, तहां फूल, अरुहत, गंध, धूप अरु दीपसें पूजा  
करे, सो पंचोपचार पूजा जाननी. तथा फूल, अरुहत, गंध, दीप, धूप, नै  
वेद्य, फल अरु जल, यह अष्टोपचार पूजा है, सो अष्टविध कर्मकी म  
नने वाली है, तथा स्नात्र, विलेपन, वस्त्र, आनूपणादिक, फल, दीप,  
गीत, नाटक, आरति आदिक करे, सो सर्वोपचार पूजा है. इति बृहन्नाप्ये॥

तथा पूजाके तीन चेद है. एक आपही कायासें पूजाकी सामग्री द्यावे,  
दूसरी वचनो करके दूसरोसें मंगवावे, तीसरी मन करके जला फूल फल  
प्रमुख करी पूजा करे, ऐसें काया, वचन अरु मन, यह तीनों योगों कर  
के करे, करावे अरु अनुमोदे, यह तीन तरेंसें पूजा है.

तथा एक फल, दूसरा नैवेद्य, तीसरी शुद्ध, अरु चौथी प्रतिपत्ति, सो वी  
तरागकी आज्ञापालन रूप, यह चार प्रकारें पूजा, यथा शक्तिसें करे. ज  
लितविस्तरादिक ग्रंथोमें "पुषामिपस्तोत्र प्रतिपत्ति" अर्थात् फूल, नैवेद्य,  
स्तोत्र, अरु आज्ञा आराधनीय, ये उत्तरोत्तर प्रधान हैं ॥ इत्याग  
मोके पूजाचेदचतुष्टयं ॥

तथा पूजा दो प्रकारकी है, एक इव्यपूजा, दूसरी नावपूजा, जो फूला  
विकसें जिनराजकी पूजा करणी, सो इव्यपूजा है, दूसरी श्रीजिनेश्वरकी  
आज्ञा पालनी, सो नावपूजा है. तथा पुष्पारोहण गंधारोहण इत्यादि स  
त्तरह चेदसें तथा स्नात्रविलेपनादि एकवीश चेदें पूजा है, परतु अंगपूजा,  
अथपूजा अरु नावपूजा, यह तीनों पूजा, सर्व पूजायोके अतर्जाव हैं, ति  
नमें सत्तरह चेद, पूजाके लिखते है.

एक १ स्नात्र करनां, जिनप्रतिमाको विलेपन करनां, २ चक्रुजोडा,  
वास सुगंध, ३ फूल चढाने, ४ फूलकी माला चढानी, ५ पंच रंगें फूल च  
ढाने, ६ बरास जीमसेनी प्रमुखका चूर्ण चढानां, ७ आनरण चढाने, ८  
फूलोंका घर करनां, ९ फूलपगर सो फूलोंका ढेर करनां, १० आरति, मं  
गल दीवा, ११ दीपकपूजा, १२ धूपोपदेप, १३ नैवेद्य, १४ सुजफल  
ढोकन, १५ गीतपूजा, १६ नाटक करणां, १७ वाजत्र. यह सत्तरह चेदों  
करि पूजा है. अथ पूजाके एकवीश चेद लिखते हैं.

तहा प्रथम तो पूजा करणेकी विधि लिखते है, १ पूजा करने वाला पू

वैदिकी तर्फ मुख करके स्नान करे, २ पश्चिम दिशकों मुख करके दातण  
 करे, ३ उत्तरदिशाके सन्मुख श्वेत वस्त्र पहिरे, ४ पूर्वोत्तर मुख करके पूजा करे,  
 ५ घरमें प्रवेश करतां वामे पासें शय्य रहित जूमिमें देहरासर करावे, ६ मेढ  
 हाथ जूमिकासे ऊंचा देहासर करावे, जेकर देहरासर नीची जूमिकामें क  
 रावे, तब तिसका संतान दिन दिन नीचा होता जावेगा, ७ दक्षिणदिशि  
 तथा विदिशिके सन्मुख मुख न करे, ८ घर देहरेमें पश्चिम सन्मुख मुख  
 करके, पूजा करे, तो चौथी पेढीमें संतानोद्भेद होवे, ९ दक्षिण दिशिकी  
 तर्फ मुख करी करे, तो संतान हीन होवे, १० अग्निकूपे करे, तो धन हानी  
 होवे, ११ वायुकूपे करे, तो संतान न होवे. १२ नैऋत्यकूपे कुजहृय  
 होवे, १३ ईशानकूपे करे, तो एक जगे रहणां न होवे, १४ दोनो पग,  
 दोनो जानु, दोनो हाथ, दोनो स्कंध, मस्तक, ये नव अंगमें क्रमसे पूजा  
 करे, १५ चंदन विना पूजा नहीं होती है, १६ मस्तकमें, कर्णमें, हृदयमें,  
 पेटमें, तिलक करे. १७ नव अंगमें, नव तिलक करके निरंतर पूजा करे,  
 १८ सवरे पहिलां वास पूजा करे, १९ मध्यान्हमें फुजोंसे पूजे, २० सं  
 ध्याकों धूप, दीप, करके पूजा करे, २१ जो फूज, हाथसे धरतीमें गिर  
 पड़े, तथा पगोंकों लग जावे, तथा जो मस्तकसे ऊंचा चला जावे, तथा  
 जो मैले वस्त्रसें रस्का होवे, तथा जो नाचीसे नीचे रस्का होवे, तथा जो  
 छुट जनोने स्पर्शा होवे, जो बहुत ठेकाणोंमें हत होवे, जो जीवोने खा  
 या होवे, असा फूल, फल, नैक जनोनें जिनपूजामें नही रखनां, २२ एक  
 फूलके दो टुकडे न करे, २३ कलीको छेदे नहीं, चपक, उत्पल, फूजक जो  
 गनेसें बडा दोष है, २४ गंध, धूप, अक्षत, फुजमाला, दीपक, नैवेद्य,  
 पाणी, प्रधानफल, इनो करके जिनराजकी पूजा करे, २५ शांतिककार्यमें  
 श्वेत वस्त्र पहिरके पूजा करे, २६ इव्यलाजके वास्ते पीत वस्त्र पहिरके  
 पूजा करे, २७ शत्रु जीतने वास्ते काले वस्त्र पहिरके पूजा करे, २८ मां  
 गलिककार्य वास्ते लाल वस्त्र पहिरके पूजा करे, २९ मुक्तिके वास्ते पाच व  
 र्णके वस्त्र पहिरके पूजा करे, ३० शांति कार्यके वास्ते पंचामृतका होम,  
 दीवा, घी, गुड, लवणका अग्निमें प्रक्षेप, शांति पुष्टिके वास्ते जाननां. ३१  
 फाटा दूआ, जोडा दूआ, छिड़ वाला, काटा दूआ, जिसका रक्तवर्ण नयानक,  
 असें वस्त्र पहिरके दान, पूजा, तप, होम अरु सामाधिक प्रमुख करे, तो

होवे. ३२ पद्मासन बैठकें, नासाग्र लोचन स्थापन करकें मौन धारी मुखकोश करके जिनराजकी पूजा करे.

अथ इक्कीस प्रकारकी पूजाका नाम लिखने हैं १ स्नात्रपूजा, २ विक्षेपन पूजा, ३ आनरए पूजा, ४ फूज, ५ वासपूजा, ६ धूप, ७ प्रदीप, ८ फल, ९ अक्षत, १० नागरवेलके पान, ११ सोपारी, १२ नैवेद्य, १३ जलपूजा, १४ वस्त्रपूजा, १५ चामर, १६ बत्र, १७ वाजिंत्र, १८ गीत, १९ नाटिक, २० स्तुति, २१ जंमारवृद्धि यह एकवीश प्रकारकी पूजा है, जो वस्तु बहु त अथवा हीवे, सो जिनराजकी पूजामें चढानी चाहिये ॥ इति ॥ यह पूजा प्रकार, श्री उमास्वातिवाचककृत पूजाप्रकरणमें प्रसिद्ध है.

तथा ईशानकूपमें देवघर बनानां, यह वात विवेकविलासमें है, तथा विपमासन बैठकें, पग उपर पग धरकें, उकडुआसन बैठकें, वामा पग उचा करकें तथा वामे हाथसैं. इतने करिकें पूजा न करे, सूके दूए फूजों सें पूजा न करे, तथा जो फूज धरतीमें गिरा होवे, तथा जिसकी पांखडो सह गइ होवे, नीच लोकोंका जिसकों स्पर्श दूआ होवे, जो शुन न हीवे, जो विकसे दूए न होवे, जो कीडेने खाये दूए, सडे दूए, रातकों वासी रहे, मकड़ीके जाले वाले, जो देखनेमें अछ न लगे, दुर्गंधवाले, सुगंधरहित, खट्टी गंधवाले, मलमूत्रकी जगामें उत्पन्न दूये होवे, अपवित्र करे दूए, अैसें फूजोंसैं जिनेश्वर देवकी पूजा न करणी. तथा विस्तार सहित पूजाके अवसरमें, तथा नित्य, अरु विशेष करकें पर्वदिनमें, सात तथा पाच कुसुमाजलि चढावे, पीठें नगवान्की पूजा करे, तथा यह विधि करे, सो कहते है.

प्रजात समय पहिजा निर्माव्य उतारे, पीठें प्रह्वाल करे, संक्षेपसैं पूजा करे, आरति मगज दीवा करे, पीठें स्नात्रादि विस्तार सहित दूसरी वार पूजाका प्रारभ करे, तव देवके आगे केसर जल संयुक्त कलश स्थापन करे, पीठें "मुक्तालंकार विकार सार सौम्यत्वकातिकमनीय ॥ सहजनिज रूपनिर्झत, जगच्चर्यं पातु जिनविवं ॥ १ ॥" यह आर्या कह कर थलंकार उतारे, पीठें "अवणयि कुसुमाहरणं, पयइ पइष्ठिय मनोहर घाय ॥ जिएरुवं मङ्गणपीठं, सठियं वो सिव दिसउ ॥ १ ॥" यह कह कर निर्माव्य उतारे, पीठें प्रायुक्त कलश डालन पूजा करे, कलश यो कर, धूप दे कर,

चरणोंके आगें रक्त देनां, आरति वृजा देनेमें दोष नहीं, आरति अरु मंगल दीवा मुख्यवृत्तिसें घृत, गुड, कर्पूरादिकसें करे, विशेष फल होनेसैं. यज्ञ मुक्तालंकार इत्यादि जो गाथा है, सो श्रीहरिचन्द्रसूरिजीकी करी हूइ मां लुम होती है, क्योंकि श्रीहरिचन्द्रसूरिकृत समरादित्यचरित्र नामक ग्रथकी आदिमे “उवणोउ मंगलेवो ॥ इति नमस्कारस्य दर्शनात्” अरु यह गाथा तपगृहमें प्रसिद्ध है. इस वास्ते सर्व गाथा इहां नही लिखी.

स्नात्रादिकमें समाचारि विशेषसैं विविध प्रकारकी विधि देखनेसैं व्या मोह न करणा, क्योंकि सर्व आचार्योंको अर्हज्ञकिरूप फलकी सिद्धि वा स्तेही प्रवृत्त होनेसैं गणधरादि समाचारीयोमेंनी बहुत जेठ होता है, तिस वास्ते जो जो धर्मसैं विरुद्ध न होवे, अरु अर्हत जकिका पोषक होवे, वो कार्य किसीकोंनी असम्मत नही, जैसेंही सर्वधर्म कार्यमें जाण लेनां. यंहा लवण, आरति प्रमुखका उतारणां, संप्रदायसैं सर्व गह्वोंमें अरु परव शीनोंमेंनी करते हुवे दीखते हैं, तथा श्रीजिनप्रचन्द्रसूरिकृत पूजाविधिशास्त्रमें तो जैसें लिखा है ॥ गाथा ॥ लवणाई उतारण, पालित्तय सूरिमाइ पुवपुरिसैं हिं ॥ संहारेण अणुन्नयपि, सपयं तिष्ठी एकारिक्कई ॥ १ ॥ अस्यार्थ— लवणादि उतारणां श्रीपादलिप्तसूरि प्रमुख पूर्व पुरुषोनें एक वार करने की आज्ञा दीनी है, हम इसकालमे उनके अनुसारे कराते है. स्नात्रके करणोंमें सर्व प्रकार विस्तार सहित पूजा प्रनावनादिकके करणोंसे परलो कमें उरुष्ट मोह प्राप्तिरूप फल होता है, जैसें चौसठ इंद्रोने जिनजन्म स्नात्र करा है, तिसहीके अनुसारे मनुष्य करते है, इस वास्ते इस लोक में पुण्य निर्झरा अरु परलोकमें मोह फल होता है, यह कथन राजप्र श्रौय उपांगमें लिखा हे ॥ इति स्नात्रविधिः समाप्तः ॥

अब प्रतिमानी अनेक प्रकारकी है, तिनकी पूजाकी विधि सम्यक्त्व प्रकरणमें जैसे कही है ॥ गाथा ॥ गुरु कारिआइ केइ, अन्नेसय कारिआइ त विति ॥ विहिकारिआइ अन्ने, पडिमाए पूअणविहाणं ॥ १ ॥ व्याख्या— गुरु कहियें माता, पिता, दादा, पडदादा प्रमुख तिनकी कराइ हूइ प्रति मा पूजनी चाहियें कोइ जैसें कहते है, तथा कोइ कहते हैं कि अपणी कराइ प्रतिष्ठी हूइ पूजनी चाहियें, कोइ कहते है कि विधिसैं कराइ प्रतिष्ठी प्रतिमा पूजनी चाहिये, इनमें यथार्थ पक्ष तो यह है, कि— समत्व रहि

सर्वप्रतिमाकों विशेष रहित पूजना चाहियें, क्योंकि सर्व जगें तीर्थकर आकार देखनेसें तीर्थकर बुद्धि उत्पन्न होती है, जे कर जैसें न मांगें, तब जिनविंवकी अवज्ञासें डरंत संसारमें भ्रमण रूप उसकों निश्चय ही दंड होवेगा.

तथा जैसें कुविकल्प न करणां कि:- जो अविधिसें जिनमंदिर जिनप्रतिमा बनी है, उसके पूजनेसें अविधि मार्गकी अनुमोदनासें जगवत की आज्ञाचंग रूप दूषण लगता है, तथाही श्रीरूपनाम्ये ॥ गाथा ॥ निस्तकड मनिस्तकडे, चेइए सवहिं शुइतिनि ॥ वेजं च चेईआणिय, नाठ इक्कि किया वावि ॥ १ ॥ व्याख्या:- एक निश्चाकृत उसकों कहते है, कि - जो गणके प्रतिबंधसें बनी है, जैसाकि यह हमारे गणका मंदिर है, दूसरा अविधि; सो जिस उपर किसी गणका प्रतिबंध नहीं है, इन सर्व जिनमंदिरोंमें तीन शुद्ध पढनी, जे कर सर्वमंदिरोंमें तीन तीन शुद्ध देता बहुत काल लगता जाणे, तथा जिनमंदिर बहुत होवें, तदा एक एक जिनमंदिरोंमें एक एक शुद्ध पढे, इस वास्ते सर्व जैनमंदिरोंमें विशेष रहित नकि करे.

तथा जिनमंदिरमें मकड़ीका जाला लग जावे, तिसके उतारनेकी विधि, जिनके सपूर्व जिनमंदिर होवे, तिनकों साधु निर्घ्रठना करे, कि - जिनमंदिरकी नोकरी खाते हो, तो सार सनाल क्यों नहीं करते हो? मकड़ीका जालानी तुम नहीं उतारते हो? तथा जिनकी कोई सार सनाल न करे, तिनकों अस्वविग्र देवकुजिका कहते है, तिन मंदिरोंमें जो मकड़ीका जाला होवे, तिसके दूर करणै वास्ते सेवकोंको प्रेरणा करे, कि तुम जिनमंदिरोंको मखफलककी तरे चमक दमक वाला ररको, जेकर वे सेवक लोक न माने, तब निर्घ्रठना करे, पीठें साधु जयणासें आप दूर करे, क्योंकि जिनमंदिर ज्ञानचंमारादिककी सर्वथा साधुनी उपेक्षा न करे, यह पूर्वोक्त वैत्यगमन पूजा स्नात्रादि विधि जो कही है, सो सब भनवान् आवककी अपेक्षा कही है, अरु जो आवक धनवान् न होवे, वो अपने घरमें सामायिक करके किसीके साथ लेणे देणेका जगडा न होवे, तदुपयोग समुक्त साधुकी तरे ईयां शोयता दूआ नैपेधिकी तीन करी जाव पूजानुयायि विधि जावे, पूजादि सामग्रिके अभावसे इव्यपूजा करणे असमर्थ है, इस वास्ते सामायिक पारकें कायासें जो कुठ फूलगुथनादिक कृत हांवे सो करे.

प्रश्नः— सामायिक त्यागके इव्यपूजा करणी उचित नहीं?

उत्तरः— सामायिक तो तिसके स्वाधीन है, चाहे जिस वस्त्र कर लेवे, परंतु पूजाका योग उसकों मिलना दुर्लभ है, क्योंकि पूजाका मंमाण तो संघ समुदायके आधीन है, कदेश होता है, इस वास्ते पूजामें विशेष पुण्य है ॥ यदागमः ॥ “जीवाण बोहि जानो, सम्मदिष्ठीण होइ पिअकरणं ॥ आणाजिणिंदनत्ति, तिब्बस्स पनावणा चेव ॥ १ ॥ इस वास्ते अनेक गुण हैं, तातें चैत्यकार्य करे, यह कथन दिनकृत्य सूत्रमें है, दश त्रिक, पांच अतिगम, इत्यादिविधि प्रधानही सर्वदेवपूजा वंदनकादि धर्मानुष्ठानका महाफल होता है, अन्यथा अल्प फल है, तथा अविधिसें करतां उपड्वनी हो जाता है ॥ उक्तं च ॥ धर्मानुष्ठानवैतथ्या, त्प्रत्यवायो महान् जवेत् ॥ रौड्डुःखौघजननो, दुष्प्रयुक्तादिचौपधात् ॥ १ ॥ चैत्यवदनादि अविधिसे करतां आगममें प्रायश्चित्त कहा है, महानिशीयके सातमे अध्यायनमें अविधिसें चैत्यवदना करे, तो प्रायश्चित्त कहा है देवता, विद्या मंत्रकी विधिसेंही सिद्ध होते हैं.

जो कोई कहे कि विधि न होवे, तब न करणां श्रेष्ठ है? यह कहना अयुक्त है ॥ यदुक्तं ॥ अविद्विकया वरमकयं, असूया वयणं जणति समयचू ॥ पायञ्चित्तं अकए, गुरुअं वितहं कए लहुयं ॥ १ ॥ अत्यार्थः— अविधि करणेसे न करणां श्रेष्ठ है, जैसे जो कहते हैं, सो असूया वचन है, यह कहने वाला जैन सिद्धांतकों जानता नहीं, क्योंकि जैनशास्त्रके ज्ञाता तो जैसे कहते हैं, कि— जो न करे. उसकों गुरु प्रायश्चित्त आता है, अरु जो अविधिसें करे, उसकों लघु प्रायश्चित्त आता है, इस वास्ते धर्म जरूर करनां चाहियें. अरु विधिमांगकी अन्वेपणा करणी, यही तत्त्व है, यही श्रद्धावतका लक्षण है, सर्व कृत्य करके अविधि आशातनां निमित्त, मिथ्यादुष्कृतं दातव्यं ॥

अंग अग्रादि तीनों पूजाके फल, शास्त्रमें जैसे लिखे हैं, कि— विघ्न उपज्ञांत करणेवाली अंग पूजा है, तथा मोटा अन्युदय पुण्यकी साधने वाली अग्रपूजा है, तथा मोरुकी दाता जावपूजा है, पूजा करने वाला संसार प्रधान जोग जोगके पीछे सिद्धपद पाता है, क्योंकि पूजा करणेसे

शांत होता है, अरु मन शांतसे उत्तम शुच ध्यान होता है, अरु शुच ध्यानसे मोक्ष होता है, मोक्ष हुए अबाध सुख है.

तथा श्रीजिनराजकी जक्ति पांच प्रकारें है ॥ श्लोक ॥ पुष्पाद्यर्चा तदाज्ञा च, तद्व्यपरिरक्षणं ॥ उत्सवास्तीर्थयात्रा च, जक्तिः पंचविधा जिने ॥ १ ॥ इव्यपूजा आचोग अरु अनाचोगसें दो प्रकारें है, तिसमें श्रीवीतराग देवके गुण जानके वीतरागकी जावना करके आदर संयुक्त जिनप्रतिमाकी जो पूजा, सो प्रथम आचोगइव्यपूजा है, इस्सें चारित्रका जान होता है, कर्मका नाश होता है, इस वास्ते बुद्धिमान् ऐसी पूजा अवश्य करे. तथा जो पूजाकी विधि जानता नहीं तथा श्रीजिनराजके गुणकी नहीं जानता सो दूसरी अनाचोग पूजा है. यह शुचपरिणाम पुण्यका कारण है, अरु बोधिजानका हेतु है, पापहृय करणेका कारण है, उस पुरुषका जन्म धन्य है, आगमे कालमें उसका कल्याण है, क्योंकि यद्यपि वो वीतरागके गुण नहीं जानता, तोनी जक्ति प्रीतिका उद्वास उसके अदर उठलता है, अरु जिस पुरुषको अरिहंतविबमें वेष है, वो पुरुष नारीकमीं तथा नवा जिनंदी है, जैसें रोगीको अपथ्यमे रुचि अरु पथ्यमे वेष होवे, तदा मरणका समय होता है, जैसेंही जिनविबमें जिसको वेष है, तिसकानी दीर्घ संसार जाननां.

इहां सर्व जो जावपूजा है, सो श्रीजिनाज्ञाका पालनां है, सो जिनाज्ञा दो प्रकारकी है, एक अंगीकार करणां, एक त्यागना, तहां सुकृतका अंगीकार करणां, अरु निपेधका त्याग करणां, परतु स्वीकार पदसें परिहार पद बहुत श्रेष्ठ है, क्योंकि जो निषिद्ध आचरण करता है, उसका सुकृत नी बहुत गुणदायक नहीं होता है, जेकर दोनों वातां होवे, तदा पूर्ण फल है, इव्यपूजाका फल अच्युत देवलोक है, अरु जाव पूजाका फल अतर्मुहूर्तमें मोक्ष है.

इव्यपूजामें यद्यपि पट्कायकी किंचित् विराधना होती है, तोनी कूवेके दृष्टांत करके गृहस्थको करणे योग्य है, क्योंकि करनेवाले अरु देखनेवालोंको गिणती रहित पुण्यबंधनेका कारण होनेसें करने योग्य है, जैसें नवे गारुमें स्नान पानादिके वास्ते लोक कूवा खोदते है, तिनको प्यास, अम, अरु कीचडसें मजिनादि होते है, परतु कूवेके जल निकलनेसें तिनकी तथा



औरोंकी तृपादि, पूराणा मैल, सर्व अगला पिठजा दूर हो जाता है, अरु सर्वांगीण सुख हो जाता है, जैसेही इव्य पूजामें जान लेनां, यह कथन आवश्यक निर्युक्तिमें है, तथा और जग्गेजी लिखा है ॥ गाथा ॥ आरंज पत्त चाणं, गिहीणह्व जीव वह अविरयाणं ॥ नवअडवि निवडियाणं, दव्वडउ चव आलवो ॥ १ ॥ श्लोक ॥ वृत्तं शार्दूलविक्रीडितं ॥ स्थेयोवायुवलेन निर्वृति कर निर्वाणनिर्घातिना, स्वायत्तं बहुनायकेन सुवहुस्वल्पेन सार पर ॥ नि.सारेण घनेन पुण्यममलंकृत्वा जिनाच्यर्चनं, योगृह्णाति वणिक् स एव निपुणो वाणिव्यकर्मण्यलम् ॥ १ ॥ यास्याम्यायतनं जिनस्य लनते, ध्यायंश्चतुर्थ फलं, षष्ठं चोद्धितउद्यतोऽष्टममथो गंतुं प्रवृत्तोऽध्वनि ॥ अद्वालुर्दशम व हिर्जिनगृहात्प्राप्तस्ततो द्वादशं, मध्ये पाद्विक्रमीकृते जिनपत्तौ, मासोपवासं फलम् ॥ २ ॥ पद्मचरित्रमे तो जैसे लिखा है, कि १ जब जिनमंदिरमें जानेका मन करे, तब एक उपवासका फल होता है, २ यदि उठे, तो दो लाका फल होता है, ३ चल पड़ेनेका उद्यमीकों तेलेका फल होता है, ४ चल पड़े. इनकूं चौलेका फल, ५ किंचित् गयेकूं पंचौलेका फल, ६ अर्ध मार्गमें गये एक पद्मके उपवासका फल होता है, ७ जिनराजके देखेसं एक मासके तपका फल होता है, ८ जिनश्रुवनमें संप्राप्त हुए उमासी तपका फल होता है, ९ जिनमंदिरके दरवाजे पर स्थित दूआं एक वर्षके तपका फल होता है, १० जिनराजकों प्रदक्षिणा दीया सौ वर्षके तपका फल होता है, ११ पूजा करे हजार वर्षके तपका फल होता है, १२ स्तुति करे, अनतगुणा फल होता है, १३ जिनमंदिर पूजे, सौ गुणा पुण्य होता है, १ लीपे, तो हजार गुणा पुण्य होता है, १५ फूलमाला चढाये, लाख गुणा पुण्य हाता है, १६ गीत वाजित्र पूजा करे, अनतगुणा पुण्य होता है.

पूजा दिनप्रत्येमें तीन संध्यामें करणी चाहियें ॥ यत् ॥ जिनस्य पूजनं दंति प्रातः पापं निशानव ॥ आजन्मविहित मध्ये,सप्तजन्मरुत निगि ॥ १ ॥ जलाहारोपधस्वाप, विद्योत्सर्गेरुपिक्रिया ॥ सत्फलाः स्वस्वकालेस्यु, रवं पूजा जिनेश्वरे ॥ २ ॥ गाथा ॥ जिण पूआण तिसज, कुणमाणो मोहएव सम्मत्तं ॥ तिहयरनाम गोत्तं, पावई सेणीअ नरिंडुव ॥ १ ॥ जो पूएइ तिसज, जिणंदराय सया विगय दोसं ॥ सो तईय नवे सिद्धई, अहवा सत्तत्तमे ज

॥ १ ॥ सत्वायरेण जयवं, पूर्झंतोवि देवनाहेहिं ॥ नो होइ पूञ्च खलु,  
त गुणो जयव ॥ ३ ॥ यह गाथा सुगम है.

तथा देव पूजादिकमें हृदयमें बहुमान अर्द्धी विधिसें नक्ति करे, तथा जिनमतमें चार प्रकारका अनुष्ठान कहा है, एक प्रीतिसहित, दूसरा नक्ति सहित, तीसरा वचन प्रधान, अरु चौथा असंग अनुष्ठान, तिनमें जिसके प्रीतिका रस बढे, अरु ऊँचु नइक स्वभाव वाला होवे, जैसे बालकोंको रतनमें देखके प्रीति होती है. ऐसी जिसको प्रीति होवे, सो प्रीति अनुष्ठान है, तथा बहुमान संयुक्त शुद्ध विवेकवाला होवे, अरु बाकी दोष पहिले अनुष्ठानकी तरे करें, सो नक्ति अनुष्ठान है, यद्यपि स्त्रीका अरु माताका पालणां. पोषणा, सरीखा है, तोनी स्त्री उपर प्रीति राग है, अरु माता उपर नक्तिराग है, यह प्रीति अरु नक्तिका स्वरूप कहा, तथा जो जिनगुणका जानकार, सूत्रोक्तविधि करके जिनप्रतिमाको वंदना करे, सो वचनानुष्ठान है, यह अनुष्ठान चारित्रवंतकों निश्चय करके होता है, तथा जो अन्यासके रससे सूत्राजोचना विनाही फलमें निश्चय हो कर करे, सो असंगानुष्ठान है, जैसे कुंजार चक्रकों पहिजां तो दंमसे फिरता है, पीठसे दंम दूर करे, तोनी चाक फिरता है, यह दृष्टांत, वचनानुष्ठान अरु असंगानुष्ठानमें है.

इन चारोंमें प्रथम तो जावनाके लेशसें प्राय. बालक प्रमुखोंको होता है, आगे अधिक अधिक जान लेनां. यह चारों प्रकारका अनुष्ठान बहुमान विधिसंयुक्त करे, तो रूपइयांकी खरा अरु खरे सन समान, प्रथम चेद है. दूसरा जो पुरुष, नक्तिराग बहुमान संयुक्त होवे, अरु विधि जानता न होवे. तिसका कृत्य एकांत छुट नहीं, अशुभ पुरुषका अनुष्ठान अतिचार सहितनी शुद्धिका कारण है, क्योंकि जो रतन अंदरसे निर्मज है, उसका बाह्यमज सुखें दूर हो सकता है, यह रूपइयां खरा, अरु मिका खोटा समान, दूसरा चेद है. तथा जो पुरुष, कपट जूठादि दोष संयुक्त है, अरु अपणी महिमा पूजाके वास्ते तथा लोकोंके उगने वास्ते त्रिपिपूर्वक नर्वा अनुष्ठान करता है, उसको बडा अनर्थ फल होता है, यह रूपइयां खोटा, अरु सन खरा समान, तीसरा चेद जानना. तथा अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवका जो कृत्य है, सो तो रूपइयांकी खोटा, अरु सनकी खोटा समान, चौ

थानेद है. इस वास्ते जो देवपूजादिक करणकों बहुमान अरु विधिपूर्वक करे, उसकों संपूर्ण फल होता है.

तथा उचित चिंता सो मंदिरप्रमार्जन करनां जित जगेंसे मंदिर गिर कर बिगड गया होवे, उसका समरानां, प्रतिमा प्रतिमाके परिवारकों निर्मल करणां, विशिष्ट पूजा दीपोत्सव फूल प्रमुखकी शोभा करणां, तथा आगें लिखेंगे जो आशातना सो सर्व वर्जनां, तथा अद्भुत नैवेद्यादि चिंता, चंदन, केशर, धूप, दीप, तेलका सग्रह करे, विनाश न होवे; अस्ती रीतिसें चैत्यइव्यकी रक्षा करे, तीन चारादि श्रावकके सामने देवइव्यकी उधराणी करे, देवइव्यकों बहुत यत्नसें अष्टी जगे स्थापन करे, देवइव्यके लान अरु खरचका नाम प्रगट पणे लिखे, आप तथा औरोंसें देवइव्य देवे, देवावे, देव इव्य किसी पासों लेहणां होवे, तहां देवके नौकरकों जे ज कर जिसी रीतिसें देवइव्य जाय नहीं, तैसें करे, उधराणी वास्ते नौकर रक्के, इसी तरें इव्यकी चिंता सार संजाल करे.

देहग प्रमुखकी चिंता अनेक तरेकी है, तिनमें धनाढ्यकों धनसें, तथा स्वजनके बलसें, चिंता सुकर है अरु धन रहितको अपणे शरीर तथा स्वजनके बलसें साध्य है, जिसका जहां जैसा बल होवे, वो विशेष तैसा यत्न करे, जो चिंता थोडे कालमें हो सके तिसकों दूसरी निस्तहसिं पहिलां करे, शेषकों यथायोग्य पीठें करे. जैसेंही धर्मशाला, गुरुज्ञानादिककीनी यथोचित सर्व शक्तिसें चिंता करे, क्योंकि देव गुरु आदिककी सार संजाल श्रावक विना और कोइ करने वाला नहीं, इस वास्ते श्रावककों देवादि नक्ति सार संजालमें शिथिल नहोनां चाहियें, देव गुरु प्रमुखकी नक्ति, सेवा, सार संजाल, जेकर श्रावक न करे, तो उसकी सम्यक्त्व कलंकित हो जाती है. अरु जो श्रावक देव गुरुका नक्त है, उससें कदाचित् कोइ आशातनाची हो जावे, तो नी अत्यंत ड खदायी नहीं, इस वास्ते चैत्यादि कृत्यमें नित्य प्रवृत्त होवे ॥ अथोचाम च ॥ देहे इव्ये कुंडुवे च, सर्व संसारिणां रति. ॥ जिने जिनमते संये, पुनर्मोक्षानिलापिणां ॥

देव गुरु प्रमुखकी आशातना जो है, सो जघन्यादि नेद करके तीन प्रकारें है, तहां प्रथम ज्ञानकी आशातना कहते है. पुस्तक, पट्टी, टीपणी, जपमालादिककों मुखको थूंक लेशमात्र लग जावे, हीनाधिक अद्भुत

अधारे, ज्ञानोपकरण पाटी, पोथी, नवकरवाली प्रमुख पास हुए, अधो  
 वात निःसर्गादि होवे, सो जघन्याशातना है. तथा अकालमे पठनादि,  
 उपधान बिना सूत्र पढनां, त्रांति करकें अर्थ अन्यथा कल्पना करणां, पु  
 स्तकादिकों प्रमादसें पगादिकका स्पर्श करणां, नूमिमें गेरना, ज्ञानोपकर  
 णके पास हुए आहार सूत्रादि करनां, सो मध्यम आशातना है. तथा  
 थूंक करकें अक्षर मांजे, पाटी, पोथी प्रमुख ज्ञानोपकरणकें उपर बैठना  
 वि करे, ज्ञानोपकरण पासें हुए उच्चारदिक करे, तथा ज्ञानकी ज्ञानीकी  
 निंदा प्रत्यनीक पणा उपघात करे, उत्सूत्र चापणादि करे, सो  
 उत्कृष्ट आशातना है.

अब देवकी आशातना कहते है तहा जघन्य देवाशातना सो वास, व  
 रास, केसर प्रमुखके मन्वेकों वजावे, श्वास तथा वस्त्रके ठेहडे करकें देवका  
 स्पर्श करणां, सो जघन्य आशातना है, तथा पवित्र वस्त्र, धोती प्रमुख  
 करे बिना पूजा करे, पूजाके वस्त्र नूमिमें गेरे, इत्यादि मध्यम आशा तना  
 है, तथा प्रतिमाकों पगसें संघटना, श्लेषम अरु थूंकका लगाना, प्रतिमा  
 कों जंग करणां. जिनेश्वर देवकी हेजनादि करणा, सो उत्कृष्ट आशातना  
 है, अब देवकी जघन्य दश आशातना, अरु मध्यम चालीश आशातना  
 तथा उत्कृष्टी चौरासी आशातना है, सो क्रम करकें कहते हैं.

प्रथम जघन्य दश आशातना न करणी, सो लिखते है. जिनमंदिरमें  
 १ पान सोपारी खावे, २ पाणी पीवे, ३ नोजन करे, ४ पगरखा पहिरे, ५  
 खीसे नोग करे, ६ सोवे, ७ थूंके, ८ सूत्रे, ९ उच्चार करे. १० जूथ्या खेले.  
 जघन्यसें यह दश जिनमंदिरमें वर्जे, तो आशातना न होवे.

दूसरी मध्यम चालीश आशातना वर्जे, तिसका नाम कहते है. १ मृत  
 ना, २ दिशा जानां, ३ जूता पहरनां, ४ पानी पीना. ५ खानां, ६ सोनां,  
 ७ मेधुन. सेवना ८ तंबोल खाना, ९ थूंकना, १० जूथ्याखेलनां, ११ जूथ्या  
 देखे, १२ विकथा करे, १३ पालठी करी बैठे, १४ पग जूजूआ पसारे,  
 १५ जगडा करे, १६ हांसी करे, १७ किस्ती उपर डर्प्या करे, १८ उंचे  
 आसने बैठे. १९ केश शरीरकी विचूपा करे, २० शिर पर ठत्र लगाना. २१  
 खड्ड रके, २२ मुकुट धरनां, २३ चामर कराने, २४ खीसे कामविलास स  
 हित हांसी करणी २५ धरणां लगानां, २६ क्रीडा (खेल) करणा. २७

मुखकोश विना पूजा करणी, १७ मैले शरीरसें मैले वस्त्रोंसें पूजा करणी।  
 १८ पूजा करतां मन चपल करणां, २० शरीरके नोगके सचित्त इव्यका  
 विना उतारे मंदिरमें जाना, २१ अचित्तइव्य आनूषणादि उतारकें जावे,  
 २२ एकसाडीका उत्तरासग न करे, २३ नगवानुकों देखकें हाथ न जोडे,  
 २४ शक्तिके दूये पूजा न करे, २५ अनिष्ट फूलोंसें पूजा करे, २६ पूजा  
 प्रमुख आदर रहित करे, २७ जिनप्रतिमाके निंदककों हटावे नही, २८  
 मंदिरके इव्यकी सार सजाल न करे, २९ शक्तिके दूयेची अस्वारी उपर चढ़  
 के मंदिरमें जावे, ४० देहरेमे वडासें पहिजां चैत्यवदन करे, जिनेंइनवनमें  
 तथा जहा प्रतिमा होवे, तिहा यह चालीज मध्यमसें आशातना टाले।

अव उत्कृष्ट चौरासी आशातनाका नाम कहते है । जिनमंदिरमें  
 खेल खंखार गेरे, १ जूए आदिककी क्रीडा करे, २ कलह करे, ४ धनुष्यादि  
 कला शिखे, ५ कुरला करे, ६ तंबोल खावे । ७ तंबोलका उगाल गेरे,  
 ८ गाली देवे, ९ दिसा मात्रा करे, १० हस्तादि अंग धोवे, ११ केश समारे,  
 १२ नख समारे, १३ रुधिर गेरे, १४ सुखडी प्रमुख देहरेमें खावे, १५ गुंम  
 डे आदिककी त्वचा गेरे, १६ औपधि खाकें पित्त गेरे, १७ वमन करे, १८  
 दांत गेरे, १९ हाथ, पग, मसलावे, २० घोडादि बांधे, २१ दातका मैल  
 गेरे, २२ आखका मैल गेरे, २३ नखका मैल गेरे, २४ गालका मैल गेरे,  
 २५ नाकका मैल गेरे, २६ माथाका मैल गेरे, २७ शरीरका मैल गेरे,  
 २८ कानका मैल गेरे, २९ जूतादिके खीलने वास्ते मंत्र साधे, अथवा  
 राजा प्रमुखका काम होवे, तिसका विचार करे, ३० मंदिरमें विवाहादिक  
 की पंचायत करे, ३१ व्यापारका लेखा करे, ३२ राजका काम वाटके  
 देवे, अथवा जाइ प्रमुखको धनका हिस्ता वाटके देवे, ३३ घरका चंमार  
 मंदिरमें रक्के, ३४ पगोपरि पग रक्केके छुटासन करके बैठे, ३५ मंदिरकी  
 नीतसें ठाणा लगावे, गोबरका ढेर लगावे, ३६ वस्त्र सुकावे, ३७ ढाल  
 दले, ३८ पापडवेनी सुकावे, ३९ वडा बनावे, उपलक्षणसें कयर, चीनडा,  
 शाक प्रमुख सुकाने वास्ते गेरे, ४० राजा, जाइ, लहणे वालेके नयसें नाठके  
 मूलगंजारेमे लुक जावे, ४१ पुत्रकजत्रादिके मरणमें मंदिरमे रोवे, ४२  
 स्त्रीकथा, नक्तकथा, राजकथा, देशकथा, यह चार विकथा करे, ४३ बाण  
 ईहुका गन्ना घडे, तथा धनुष्यादि शस्त्र घडे, ४४ गाय बैलादि मंदिरमें

४५ शीत दूर करणों अग्नि तापे, ४६ धान्यादि रांधे, ४७ रूपइये  
 ४८ विविसे नैपेधिकी न करे. ४९ ठत्र, ५० पगरखी, ५१  
 चामर. यह चार, मंदिरके बाहिर न ढोडे, ५२ मन एकाग्र न  
 करे, ५३ तैलादिकका मर्दन करे, ५४ शरीरके जोगके सचित्त फूलादिकका  
 त्याग न करे, ५५ द्वार, मुद्रा, कुंजलादि, तिनकों बाहिर ढोड आवे, तो  
 आशातना लगे, क्योंकि लोकोंमें ऐसा कहनां हो जावे. कि अर्द्धतके जक्त  
 मर्द कंगाल जिह्वाचर हैं, ऐसी तरें जिनमतकी लघुता होती है, ५६ जग  
 वानुकों देखकें हाथ न जोडे, ५७ एक साडीका उत्तरासग न करे, ५८  
 मुकुट मस्तकमें राखे, ५९ मौलि शिरका लपेटना रक्के, ६० फूलका सेह  
 रा रक्के, ६१ नालियर आदिकका ठोत गेरे, ६२ गँदसैं खेले, ६३ पिता  
 प्रमुखकों जुहार करे, ६४ नाम चेष्टा करे, ६५ तिरस्कारके वास्ते रेका  
 रा तुंगारा देवे, ६६ लेहणे वास्ते धरणां देवे, ६७ संग्राम करे, ६८ म  
 स्तकके केश सुकावे, ६९ पालठी मारी बैठे, ७० काष्ठ पाङ्कटादि पगमे  
 रक्के, ७१ पग पसारे, ७२ सुखके वास्ते पुड पुडी देवावे, ७३ देहरमें शरी  
 रका अवयव धोकें कीचड कूडा करे, ७४ पगादिकके लगी दूइ धूल  
 जाडे, ७५ मैथुन, (कामक्रीडा) करे, ७६ जूआ गेरे. ७७ जोजन जीमे,  
 ७८ गुह्य चिन्ह ढकके न बैठे, ७९ वैदकका काम करे, ८० क्रय विक्रय  
 रूप वाणिज्य करे, ८१ शय्या बनाकें सोवे, ८२ पानी पीनेके वास्ते जल  
 का मटका रक्के, तथा मंदिरके पतनालेका पाणी लेवे, ८३ स्नान करने  
 की जगा बनावे, यह उक्कष्ट चौरासी आशातना जिनमंदिरमें वर्जे.

अब गुरुकी तेचीस आशातना वर्जे, सो लिखते है. १ गुरुके आगें  
 चले, तो आशातना है. जेकर रस्ता बतावनेके वास्ते चले, तो आशा  
 तना नही होती है, २ गुरुके बराबर चले, ३ गुरुके पीठें अडके चले,  
 यह जैसे चलनेकी तीन आशातना कही है, ऐसेही बैठनेकीनी तीन  
 आशातना जान लेनी. तथा खडा होनेकीनी तीन आशातना जान लेनी,  
 यह सर्व नव आशातना दूइ १० जोजन करता गुरुसे पहिलां शिष्य  
 चसु करे, ११ गमनागमन गुरुसे पहिजा आजोचे. १२ रात्रिमें कौन  
 जागता है, अमें गुरुके कहेकों सुन कर जागता दूआनी शिष्य उत्तर न  
 देवे, तो आशातना लगे, १३ जब किसीकों कुछ कहनां होवे, तो गुरुसे

पहिलांही शिष्य कह देवे. १४ दूसरे साधुवोंके आगें पहिलां अशनादि आलोवे पीठें गुरु आगें आलोवे, १५ अैसेही अशनादिक पहिलां दूसरे साधुवोंको दिखाके पीठें गुरुको दिखावे, १६ अन्नादिककी पहिलां औरोंको निमंत्रणा करके पीठें गुरुको निमंत्रणा करे, १७ गुरुके बिना पूठे स्वेच्छासें औरोंको स्निग्ध मधुरादि आहार दे देवे, १८ गुरुको अ किंचित् अन्नादि दे कर पीठें यथेच्छासें स्निग्धादि आहार आप खावे, १९ गुरु बोलावे, तब बोले नही. २० गुरुको बहुत कर्कश (कठोर)वचन बोले, २१ जब गुरु बोलावे, तब आसन उपर बैठाही उत्तर देवे, २२ गुरु बोलावे तब कहे, क्या कहते हो ? २३ गुरुको तुंकारा देवे, २४ गुरुने प्रेरणा करी तब गुरुकी प्रेरणाको उत्तर करके हणें, जैसें गुरु कहे कि.— हे शिष्य ! तुमने ग्लानकी वैधावृत्त्य क्यों नहीं करी ? तब शिष्य कहे कि तुम क्यों नहीं करते ? २५ गुरुकथा कहते हुए मनमें प्रसन्न न होवे, किंतु निमन होवे, २६ सूत्रादि कहते गुरुको कहे तुमको अर्थ याद नहीं है ? यह अर्थ अैसें नहीं होवे है ? २७ गुरु कथा कहता है, तिस कथाको बीचमें ठेद करे, अरु कहे, में कथा करुंगा ? अैसें कहे, २८ पर्षदाको जागे जैसें कहेकी अब तो जिह्वाका अवसर है, इत्यादि कहे, २९ पर्षदाके विना उठयां गुरुकी कही कथाको अपनी चतुराई दिखलाने वास्ते विशेष करके कहे, ३० गुरुकी शय्या संधारकादिकों पगोंसें सघटा करे, ३१ गुरुकी शय्यादि उपर बैठनादि करे, ३२ गुरुसें उंचे आसन उपरि बैठे, ३३ गुरुके बराबर आसन करे, यह तेजीस गुरुकी आशातना है.

ये गुरुकी आशातनानी तीन प्रकारकी है, एक पगादिसें संघटा करे, सो जघन्य आशातना, दूसरी श्लेष्म थूकादि गुरुके जवमात्र लगावे, तो मध्यम आशातना है, तीसरी गुरुका आदेश न करे, जेकर करे, तोजी उजटा करे, कठोर वचन बोले, गुरुका कथा न सुणो, इत्यादि उत्कृष्ट आशातना है.

स्थापनाचार्यकी आशातनानी तीन प्रकारकी है, एक तो इधर उधर हलावे पगोंका स्पर्श करे, तो जघन्य आशातना, दूसरी नूमिमें गेरे, अवज्ञासें धरे, सो मध्यम आशातना, तीसरी स्थापनाचार्यको खोवे, तथा तोडे तो उत्कृष्ट आशातना है. अैसेंही ज्ञानोपकरण, दर्शनोपकरण, तथा चारित्र्योपकरण, रजोहरणादि, मुखवस्त्रिका, दंभक, दंभिका प्रमुखकीनी आशातना टाले.

श्रावककों सर्वधर्मोपकरण चरवला मुखवस्त्रिकादि विधि पूर्वक स्वस्था में स्थापना प्रमुख करणी चाहियें, अन्यथा धर्मकी अवज्ञादि प्रमुख षणोंकी आपत्ति होवे, शास्त्रमें लिखा हैकि जो उत्सृज नाखे, तथा अतकी अरु गुरुकी अवज्ञादि महा आशातना करे, तो सावद्याचार्य, मरीच, जमाली, कुलवाजिकादिककी तरें अनंत जन्म मरणकी वृद्धि होवे ॥ १ ॥ उत्सृज नासगाणं, बोहीनासो अणंत संतारो ॥ पाणञ्चएवि धीरा, उत्सृजं ता न जासंति ॥ १ ॥ तिञ्चयर पवयण सुयं, आयरियं गणहर महेद्धियं ॥ आसायंतो बहुसो, अणंत संतारिउं होइ ॥ २ ॥ अत्यार्थः सुगमः ॥

अैसेही देव, ज्ञान. साधारण इव्यका तथा गुरुका इव्य, वस्त्र, पात्रादिका विनाश तिनकी उपेक्षादिक जो करनी है, सोनी महा आशातना है. यदूचे ॥ गाथा ॥ चेइअ दव्व विणासे, इ सिघाए पवयणस्त उड्डाहे ॥ संजई चउवजंगे, मूलग्गी बोहिलाजस्त ॥ १ ॥ तथा श्रावकदिनकृत्य दर्शनशुद्धि आदि शास्त्रोंमेंनी लिखा है ॥ गाथा ॥ चेइअ दव्वं साहा, रणं च जो उहइ मोहिअमईउं ॥ धम्मं च सो न याणाइ, अहवा वडाउ उं नरए ॥ १ ॥ अर्थः— चैत्यइव्य तथा साधारण इव्य जो नाश करे, मोहितमति जातों वो धर्म नहीं जानता है, अथवा उसने नरकका आशु बाधा है, उसके वास्तेही ऐसा अयोग्य काम करता है, तथा चैत्यइव्यका नाश, नक्षण, उपेक्षण कोइ करे, तिसकों जेकर साधु न हटावे, तो वो साधुनी अनंत संतारी हो जावे.

प्रश्न— मन, वचन अरु काया करके जिसने सावद्य त्यागा है, अैसे यतिकों चैत्यइव्यकी रक्षामें क्या अधिकार है ?

उत्तर.— जे कर राजा तथा वजीरकों याचना करकें तिनोके पाससे घर, हाट, गामादि लेकर विधिसें नवा पेढास उत्पन्न करे, तब तेरा विवहित दूषण होवेगा, परंतु यथा नइकादि करकें जो किलीने पहिला दीया होवे. वसका नाश देखकें रक्षा करे, तब कोइ दूषण नहीं होता है, वजिके जिनाज्ञाकी आराधना होनेसैं धर्मकी पुष्टि हाती है.

नवे जिनमदिरके बनानेसे जो पूर्वे बना दूया है उसके प्रतिपंथि अर्थात् शत्रुकों जो साधु हटावे, तो वो साधुकों न प्रायश्चित्त है. तथा न वो साधुकी प्रतिज्ञा जग हाती है, आगमनी अैसेही कहता है. इत वास्ते



जिनइव्य जो खावे, उपेक्षा करे, वो श्रावक, आगले जन्ममें बुद्धिहीन होवे, अरु पापकर्मसें लेपायमान होता है।

॥ तथा ॥ आयणं जो जंजइ, पडिवन्नं धणं न देइ देवस्त ॥ नस्तं तं स मुविक्खइ, सोविहु परिजमइ संसारे ॥ १ ॥ अर्थार्थ.— जो पुरुष मंदिरकी आमदनी जागे, अरु जो मुखसे कह कर जिनइव्य न देवे, सोजी संसारमें प्रमण करे ॥ तथा ॥ जिणवयण बुद्धिकरं, पचावगं नाणदंसण गुणाण ॥ नत्तं तोजिणदवं, अणंतं ससारीउ होइ ॥ १ ॥ अर्थ.— जो जिनमतकी वृद्धि करे, चैत्यपूजा, चैत्यसमारणां, महापूजा सत्कारादि करके ज्ञान दर्शनकी प्रभावना करे, परंतु जिनइव्यका नाश करे, तो अनंत संसारी होवे, अरु जे कर जिनइव्यकी रक्षा करे, तो अल्प संसार हो जावे, देवइव्यकी वृद्धि करे, तो तीर्थकर नामकर्म बांधे, परंतु पंढरा कर्मादान, खोटा वणिज्य व जेके सद व्यवहार करके जिनइव्यकी वृद्धि करे ॥ यत् ॥ जिणवर आणा रहियं, वक्षारंतावि केवि जिणदवं ॥ बुद्धिति नवसमुदे, मूढा मोहेण अन्नाणी ॥ १ ॥ इसका अर्थ सुगम है

कोइ कहते हैं कि श्रावक विना औरोंके अधिक गहना रखके कालांतरमें व्याजकी वृद्धि करे, सो उचित है, ऐसा कहनांजी ठीक है, क्योंकि सम्यक्त्व पच्चीसी आदिक ग्रंथोंमें सकाशकी कथामै तैसेही लिखा है, चैत्यइव्यके खानेसें बहुत कष्ट होते है, सागर श्रेष्ठीवत् यह कथा श्राद्धविधि ग्रंथसें जान लेनी, ज्ञान इव्यकी देव इव्यकी तरें अकटपनीय है, अर्थात् नाश करना, नरुण करनां, विगडतेकी सार सजाज न करणी ऐसेही साधारण इव्यकी संघका दीया दूआही कल्पता है, विना दीया काममें लानां न कल्पे, सधकोंजी सात क्षेत्रमेही साधारण इव्य लगानां चाहिये, मंगने वालोंको उसमेसें देनां न चाहिये, ऐसीही ज्ञान संबंधी कागज पत्रादि साधुका दीया दूआ श्रावकनें अपने कार्यमें नहीं लगाना, अपनी पोथीमेंजी न रखना, स्थापनाचार्य अरु जपमालादि ले, लेनेका व्यवहार तो दीखता है, तथा गुरुकी आज्ञा विना साधु साध्वीकों लिखारी पास लिखाना अरु बख सूत्रादिकका लेनांजी नहीं कल्पता, इत्यादि विचार लेना, तिस वास्ते थोडासांजी ज्ञान अरु साधारण इव्यका जोग न करनां चाहिये.

जो देवके नामका बोले, सो इव्य तत्काल देवे, क्योंकि देवइव्य जि  
तना शीघ्र देवे, उतना अज्ञा है, कदापि विलंब करे, तो पीछे क्या जाने  
बनहानि मरणादि होवे ? तदा देवइव्यका ऋण रहजाये, और संसा  
रिका देनांजी श्रावककों शीघ्र दे देनां चाहिये, तो फेर देवइव्यका क्या क  
दनां हे ? जिस वखत माला पहराइ तथा और कुठ इव्य देवके जंमा  
सें देनां करा, उसी वखतसें वो देव इव्य हो चुका, उस इव्यसें जो लाज  
हावे, सोनी देवइव्य है, उस इव्यकों श्रावकनें नोगनां नही, इस वास्ते  
शीघ्र दे देनां चाहिये, जे कर मासादिक पीछे देनेका कौल करे, तदा क  
रार उपर विना माग्या जरूर दे देवे, जे कर करार उल्लंघकें देवे, तो देवइव्य  
सायेका दूषण है. देवइव्यकी उगराहीनी श्रावक अपनी उगराहीकी तरें  
बनसैं करे, जेकर देवइव्य लेनेमें ढील करे, अरु कदाचित् डार्निह् दरि  
इदि अ्यवस्था आ जावे, तो फेर मिलना दुष्कर हो जावे, तथा देने  
वालांनी उत्साह पूर्वक कपट रहित हो कर शीघ्र दे देवे, नहीं तो देव  
इव्यचरणका दोष है.

तथा देव ज्ञान साधारण संवंधी हाट, खेत, वाडी, पापाण, ईट, काष्ठ,  
वांत, मिट्टी, खडीया, चदन, केसर, वरास, फूल, फूलचंगेरी, धूपपात्र,  
कलश, वासकूपी, ठत्रसहित सिंहासन, चमर, चडोदय, जालर, चेरी, चान  
णी, तबू, कनात, पडदे, कवल, चौकी, तखत, पाटा, पाटी, घडा, वडा उ  
रसा, कज्जल, जल, दीवा प्रमुख चैत्यशाला. प्रनालादिकका पाणी, ये सर्व  
पूर्वोक्त वस्तु देवकी अपने काममें न वर्त्तनी चाहियें, टूट फूट मलीनादि हो  
जावे, तो महापाप होवे, देव आगें दीवा वालकें उस दीवेके चानणेमे कोइ  
सासारिक काम करे, तो मरके तिर्यच होवे, उस वास्ते देवके दीवेसे खतपत्र  
नी न वाचनां चाहिये, रूपकनी न परखणा, घरका कामनी देवके दीवे  
मे न करणा, तथा देवके चदन. केसरसें तिलक न करे. देवके जलसे हाथ  
न धोवे. स्नात्रजलनी थोडासा लेनां चाहिये. तथा देवसंवंधी जह्नरी, मृ  
दंग, चेरी प्रमुख गुरुके तथा सघके न बजावे. जे कर कोइ देवके उपकर  
ण जह्नरी आदिकसें कोइ कार्य करना होवे तो बहुत निकराणा देव आ  
गे रसके लेवे, कदाचित् कोइ उपकरण टूट जावे. तत्र अपना धन ख  
रचकें नवा बनवावे, देवका दीवा लालटैन (फानूप) प्रमुखमे जुदाही राखे,

तथा साधारण इव्यसें जो जल्लरी प्रमुख बनावे, तब तो सर्वधर्म कार्यमें वर्ते, तो दोष नहीं जैसें नावोंसें करे, सोई प्रमाण है.

देवका तथा ज्ञानका घरादिकनी श्रावककों निःशुक्रतादि दोष होनेसे जाड़े लेनां न चाहिये. साधारण संबंधि घरादिक संघकी अनुमतिसें लोक व्यवहार का जाड़ा ठे कर वरते, तो दोष नहीं, परंतु जाड़ा करारके दिनमें स्वयमेव दे देवे, उस मकानके समरानेमें जो धन लगे. तिसकों जाड़ेमें गिन लेवे, तो दोष नहीं. अरु जो साधर्मी संकट (निर्धनपणेसें डुखी) होवे, वो संघकी आज्ञासें विना जाड़े दीयांजी रहे, तो दोष नहीं तथा तीर्थादिकमें अरु देहरेमें जो बहुत काल रहनां पड़े, उहां सोवे. तो तहानी लेखे अनुसार अधिक जाड़ा ठे देवे, थोड़ा देवे. तो दोष है. जाड़ा विना दीयां देव, ज्ञान, साधारण संबंधी वस्त्र नालियर सोने रूपेकी पाटी. कलश, फूल, पक्वान्न, सुखडी प्रमुख उजमणेमें, पुस्तक पूजामे, नंदी मांननेमें, न मेलनी चाहिये, क्योंकि उजमणादि तो उसनें अपणे नामका करा है फेर देव. ज्ञान, अरु साधारण संबंधी पूर्वोक्त वस्तु जाड़े विना वर्ते, तो स्पष्ट दोष है.

तथा घर देहरेमें अकृत, सोपारी, फल, नैवेद्यादिकके वेचनेसें जो धन होवे, तिसके लीये फूलादिककों घर देहरेमें न चढावे, तथा पंचायती बडे मंदिरमेंनी आप न चढावे, पूजारी आगें सर्व स्वरूप कहे कि यह मंदिरही का इव्य है, परंतु मेरा नहीं, पूजारी न होवे, तो संघ समझ कह देवे, जैसें न कहे, तो दूषण है घर देहरेका नैवेद्यादि मालीकों देवे, परंतु वो मालीकी नौकरीमें न गिन लेवे, जे कर पहिलांही सामग्री नौकरीमें देणी कर लेवे, तो दोष नहीं मुख्यवृत्तिमे तो नौकरी चढावेसें अलग देनी चाहिये.

घर देहरेके चढे हुए चावलादि बडे मंदिरमे जेज देवे. अन्यथा घर देहरेके इव्यसें घर देहरेकी पूजा होवेगी, नतु स्वइव्य करके होवेगी, तब अनादर अवज्ञादि दोष है, जैसें करणा युक्त नहीं, क्योंकि स्वइव्यसेंही पूजा करणी उचित है, तथा देहरेका नैवेद्य अकृतादि अपणे धनकी तरें रखने चाहिये, पूरे मूलासें वेचके देव इव्यकों वधारनां चाहिये, परंतु जैसें तैसें मोलसे न जाने देवे, नहीं तो देवइव्यके नाश करेका दूषण लग जावेगा.

तथा सर्व तरें रक्षा करताजी चौर, अग्नि, आदिकके उपइवसे देवइव्य नष्ट हो जावे, तो चिता कारकको दोष नहीं.

तथा देव, गुरु, यात्रा, तीर्थ अरु संघकी पूजा, साधर्मिवात्सल्य, स्नात्र, प्रजावना, ज्ञान लिखानां इत्यादिक कारणो वास्ते दूसरोंके पाससें जव धन लेवे, तब चार पांच पुरुषोंकी साक्षीसें लेवे, फेर खरचनेके अवसरमें नी गुरु संघादिकके आगें प्रगट कह देवे, कि यह धन मैने अमुकका दीया खरचा है, परंतु मेरा नहीं है.

तथा तीर्थादिमें अरु पूजा स्नात्र ध्वजा चढाने आदि आवश्यक कर्त्तव्यमें दूसरोंका सीर न करे, कितु स्वयमेवही यथाशक्ति करे, जेकर कि तीर्थ धर्म खरचमें धन दीया होवे, तब तिसका प्रगट नाम ले कर सर्व समझ न्याराही खरच करनां चाहियें, यदा बहुते मिल कर यात्रा साधर्मि वात्सल्य संघपूजादि करे, तब जितना जितना जिसका हिस्सा होवे, उत ना उतना प्रगट कह देवे, नहीं तो पुण्यफलकी चोरी लगे.

\* तथा मरणांत समयमें माता, पितादिक जो धर्मका खरच करनां कहे, तथा पुत्रादि जो खरच करनां माने, सो बहुत श्रावकादिकोंके आगें क हना चाहियें, जैसें मैं तुमारे नामसें इतने दिनोके बीचमें इतना धन खर चुंगा, तुम उसकी अनुमोदना करो, पीठें, सो धन सर्व समझ अपने ना मसें नहीं, कितु माता पितादिके नामसें तत्काल खरच कर देना चाहियें, धर्मका खरच मुख्यवृत्ति करके तो साधारण इव्यहीका करनां चाहियें, क्योंकि जहा जहां काम पड़े, तहां तहां खरचमें लावे, सात क्षेत्रोंमें जौनसा क्षेत्र सीढाता देखे, तिसमें धन खरचके तिसको उपपंच देवे, कोइ श्रावक निर्धन हो जावे, तोनी उसको उसी धनसें उपपंच देवे, लोकेप्युक्तं ॥श्लोक॥ दरिद्रं नरराजेंड, मा समृद्ध कदाचन ॥ व्याधितस्वौपथं पथं, नीरोगस्य किमौ पयं ॥ १ ॥ इती वास्ते प्रजावना संघ पहिरावणी, सम्यक्त्वका लमुलंज नादिकमें जो निर्धन साधर्मि हूवे, तिनको विशेष वस्तु देनी चाहिये, अन्य या धर्मावज्ञादि दोष होवे. यह बात युक्त है, जो धनवानसें निर्धनको अधिक वस्तु देनी चाहियें, यदा शक्ति न होवे, तदा दोनोको बराबर देवे.

अपणा खरच धर्मइव्यसें न करणा, यात्रादिकके निमित्त जो धन काटे, सो सर्व देवादि निमित्त हो गया. जे कर वो इव्य अपने नोजनमें अपवा गाढी आदिकके जाडेमें लगावेगा, तब जरूर उसको देवइव्य खा

नेका पाप लगेगा, कदाचित् अज्ञान करके चूकिके वे समजीसे इत्यादि कारणोंसे कोऽश्रावकादि देवादि इव्यका उपजोग कर लेवे, तो तिसके प्रायश्चित्तमें जितना इव्य खाया होवे, उतना इव्य देव साधारण संबंधि करे, मरण अवस्थामें शक्तिके अभावसे धर्मस्थानमें थोडाही खरचे, परंतु देणा किसीका न रके, देवादि इव्य तो विशेष करके न रके, इती रीतिसे श्री जिनराजजीकी पूजा दृढनावोंसे करनी चाहिये ॥ इति संक्षेपतो जिनेश्वर परमेश्वर पूजनविधिः संपूर्णः ॥

अब गुरु वदनाकी विधि लिखते है, जो ज्ञानादि पांच आचार करके संयुक्त होवे, और शुद्ध प्ररूपक होवे, सो गुरु है, पांच आचारका स्वरूप देखनां होवे, तदा श्री रत्नशेखरसूरिकृत आचारप्रदीप ग्रंथ देख लेनां.

यह पूर्वोक्त गुरु आचार्यादिकके पास जो प्रत्याख्यान पूर्वे अर्पण आप करा था, सो विशेष करके विधि पूर्वक गुरु मुखसे उचारावे, क्योंकि प्रत्याख्यान तीन तरेंसे करा जाता है, एक आत्मसाद्धिक, दूसरा देवसाद्धिक, तीसरा गुरुसाद्धिक, तिसकी विधि यह है, कि—

मंदिरमें देवबंदनाथे, स्नात्रादि देखनेके अर्थे, धर्मोपदेश देनेके अर्थे, गुरु जिनमंदिरमें आया होवे, तथा वस्तिमें होवे. तहां मंदिरकी तरें तीन निस्सही पंचाजिगमनादि यथायोग्य विधिसें जा करके गुरुके धर्मोपदेशसे पहिली तथा पीठें, यथाविधिसें पंचवीश आवश्यक शुद्ध षाडशावर्त्त वदना देवे, बंदनाका बडा फल कहा है. कृष्णवासुदेववत्. तथा नाप्यमें बंदना तीन तरेंकी कही है, एक तो मस्तक नमावणादि मो फेटा बंदना, दूसरी संपूर्ण दो खमासमण पढनेसे स्तोत्रबंदना होती है, तीसरी षाडशावर्त्त करनेसे षाडशावर्त्त वदना होती है. तिसमें प्रथम वदना तो सर्व सधकों करणी दूसरी वंदना सर्व स्वदर्शनी साधुउको करणी, अरु तीसरी वंदना जो है, सो पदवीधर आचार्यादिकको करनी.

जिसने सवेरेका पडिकमणां न करा होवे, तिसने विधि पूर्वक वदना करणी, क्योंकि नाप्यमें ऐसेही लिखा है ? नाप्योक्तविधि ईर्वापथप्रतिक्रमे ३ पीठें कुस्वप्नका कायोत्सर्ग करे. सो उन्नास प्रमाण करे, जेकर सप्तम स्त्रीसे संगम करा होवे. तदा अच्युचिकी सर्व जगा धोके पीठें एक नौ आठ श्वासोन्नास प्रमाण कायोत्सर्ग करे, ३ पीठें चैत्यबंदन करे, ४ पीठें ह

माश्रमण पूर्वक मुखवस्त्रिका प्रतिलेखे, ५ पीठें दो वंदना देवे, ६ पीठें देवसिद्धिआदिक आलोवे, ७ फेर वंदना दो देवे, ८ पीठें अंप्रुच्छिउमि कहे, ९ पीठें दो वंदना करे, १० पीठें प्रत्याख्यान करे, ११ पीठें नगवन् अहं इत्यादि चार कृमाश्रमण देवे, १२ पीठें स्वाध्याय संदिसावउ कहे, फेर कृमाश्रमण पूर्वक स्वाध्याय करूं, जैसें कहे, पीठें स्वाध्याय करे, यह स वेरकी वंदनाविधि है.

तथा प्रथम १ ईर्वापथ पडिक्कमे, २ पीठें चैत्यवंदना करे, ३ पीठें कृमाश्रमण पूर्वक मुखवस्त्रिकाका प्रतिलेखन करे, ४ पीठें दो वंदना करे, ५ पीठें दिवसचरिमका प्रत्याख्यान करे, ६ पीठें दो वंदना करे, ७ पीठें देवसिद्धि आलोवं कहे, ८ पीठें दो वंदना करे, ९ पीठें अंप्रुच्छिउं कहे, १० पीठें नगवन् इत्यादि चार स्तोत्रवंदना करे, ११ पीठें दैवसिक प्रायश्चित्त का कायोत्सर्ग करे, १२ पीठें पूर्ववत् दो कृमाश्रमण देकर स्वाध्याय करे, यह संख्याकी वंदन विधि है.

जे कर किसी कार्य करणादिसैं गुरुका चित्त और तर्फ होवे, तदा संक्षेप मात्र वंदना करे, जैसें वंदना पूर्वक गुरु पासों प्रत्याख्यान करावे, क्योंकि श्रावकप्रज्ञप्तिस्त्रुत्रमें लिखा है, कि प्रत्याख्यान करणेके परिणाम दृढनी होवे, तोनी गुरुके पासों करावे, गुरु पासों प्रत्याख्यान करानेमें यह गुण है, सो लिखते है. १ दृढता होती है, २ आज्ञाका करणां होता है, ३ कर्म का क्षय होता है, ४ उपशमकी वृद्धि होती है.

जैसेंही दैवसिक चातुर्मासिक नियमादिनी गुरुका संजव होवें, गुरु सा हिकही करनां चाहियें, योगशास्त्रमें गुरुकी नक्ति जैसें लिखी है ॥ श्लोक ॥ अन्वुष्ठानं तदालोके. ऽनियानं च तदागमे ॥ शिरस्यज्जितस्रलेपः, स्वयमासनढोकनं ॥ १ ॥ आसनानिग्रहो नक्त्या, वदना पर्युपासनं ॥ तदधानेऽनुगमभेति, प्रतिपत्तिरियं गुरौ ॥ २ ॥ अस्यार्थः— १ गुरुको आता देखके खडा हो जानां, २ सन्मुख लेने जानां, ३ मस्तक उपर अँजलि बाध कर प्रणाम करणां, ४ गुरुको आसन देनां, ५ जब गुरु आसन उपर बैठा जायेगा, तब मै आसन उपर बैठुंगा, जैसें अनिग्रह लेवे, ६ नक्तिसं वंदना पर्युपासना करे, ७ जब गुरु जावे, तब पौढुचाने जावे, ८ यह गुरुकी नक्ति है. तथा १ अडके गुरुके बराबर न बैठे, २ आगें न बैठे, ३ गुरुकी

तर्फी पीठ दे कर न बैठे, ४ पग उपर पग चढ़ा करके गुरुके पास न बैठे  
 ५ पालती मारके न बैठे, ६ हाथोंसे जंघाको लपेटके न बैठे, ७ पग पसर  
 रके न बैठे, ८ विकथा न करे, ९ बहुत हसे नहीं, १० नीद न लेवे, ११ मन  
 वचन, काया गोप करके हाथ जोड़ी नक्ति बहुमान पूर्वक उपयोग सहित सुणे  
 क्योंकि गुरु पासों धर्म सुननेसे इस लोक परलोकमें बहुत गुण होता है.

तथा गुरुको पूजे, किसी साधुको रोगादि होवे, तदा वैद्यको बोलावे? आप  
 धिका योग मिलावु? इत्यादि गुरु गह्वकी सर्व तरसे खबर सार लेवे, जोजनके अ  
 वसरमें उपाश्रयमें जा करके साधुओंको निमंत्रणा करे, तथा औषधि पथ्या  
 दि जो जिसको योग्य होवे, सो देवे, जब साधु, श्रावकके घरमें आवे, तब जो  
 जो वस्तु साधुके योग्य होवे, सो सो सर्व वस्तुको देने वास्ते निमंत्रणा करे,  
 सर्व वस्तुओंका नाम लेवे, जेकर साधु नहीं नी लेवे, तोनी दाताको जीर्णोत्तवत्  
 पुण्य फल है. रोगी साधुकी प्रतिचर्या करणसे जोवानद वैद्यवत् महापुण्य फल  
 होता है. साधुओंके रहनेको स्थान देवे, तथा जिनशासनके प्रत्यनीकको  
 सर्वशक्तिसे निवारण करे, तथा साधवीयोंको डप्ट, नास्तिक, दुःशील ज  
 नोंसे रक्षा करे, अपने घरके पास बंदोबस्त वाला गुप्त उपाश्रय रहनेको  
 देवे, उनोंकी अपणी स्त्री, बहू, बहिन, बेटी प्रमुखसे सेवा नक्ति करावे,  
 अपणी बेटीयोंको साधवीयोसे विद्या शिखलावे, जेकर किसी बेटीको वैरा  
 ग्य चढे, तब साधवीयोको दे देवे, जे कर कोइ साधवी धर्मकृत्य नूल जावे,  
 तदा स्मरण करा देवे, जेकर कोइ साधवी अन्यायमें प्रवृत्त होवे, तो निवार  
 ण करे, तथा आप रोज गुरुपासों नवीन नवीन शास्त्र पढे, जेकर बुद्धि  
 थोड़ी होवे, तदा ऐसा विचारे कि सुरमेंदानीमेसे थोडा थोडा अंजन नि  
 कलनेसे अंजन ह्य हो जाता है, तथा वर्माका बधणा, ऐसे परिश्रम अन्या  
 स करणसे निःफल दिन न जाने देवे, थोड़ी बुद्धिनी होवे तोनी पढनेका  
 अन्यास न ठोडे, इत्यादि धर्मकृत्य करके पीठे जेकर राजा श्रावक होवे,  
 तदा राजसनामें जावे, प्रधान होवे, तो न्याय सनामें जावे, बणिया होवे,  
 तदा हट्टीबजारमें जावे, इत्यादि उचित स्थानमें जा करके धर्मसे विरुद्ध न  
 होवे, उसी रीतिसे धन उपार्जनेकी चिंता करे.

प्रथम राजा किस रीतिसे प्रवृत्त, सो लिखते है. १ जो राजा होवे, सो  
 दरिडी, मान्य, अमान्य, उत्तम, अधमादि सर्वलोकोंका पक्षपात रहित मध्य

हो कर न्याय करें, २ राजाके कारनारी (मंत्री) आदिक तिनका धर्मविरोध यह है, कि राजाका अरु प्रजाका नुकसान न होवे, तैसें प्रजा, क्योंकि जो मंत्री राजाका हित वांछता है, उस उपर प्रजा द्वेष करती है, अरु जो प्रजाका हितकारी है, उसको राजा ठोड देता है, इसी वास्ते राजमंत्री आदिकोंको दोनोका हितकारी होना चाहिये.

वणिक् व्यापारी लोकोका धर्मविरोध यह है. जो व्यापारकी बुद्धि करे ॥ तथैव चाह ॥ विवहारबुद्धि देसा.९ विरुद्ध ज्ञाय उचिय चरणेहिं ॥ तो कुण्ड अर्द्धचित्तं, निवृद्धितो नियं धम्मं ॥ १ ॥ अस्यार्थ— व्यापारकी बुद्धि, देशादि विरुद्धका त्याग, उचित आचरण, इन तीनों प्रकारें करके धन उपार्जनेकी चिन्ता करे, अरु अपने धर्मका निर्वहण करे, क्योंकि ऐसा कोई कार्य नहीं है, कि— जो धनसें सिद्ध न होवे ? तिस वास्ते बुद्धिमान् धन उपार्जनेमें यत्न करे ॥ यदाह ॥ नहि तद्विद्यते किंचि, यदर्थेन न सिद्धयति ॥ यत्नेन मतिमांस्तस्मा, दर्शमेकं प्रसाधयेत् ॥ १ ॥ इहां जो अर्थ चिन्ता है. सो अनुवादरूप है, क्योंकि धन उपार्जनेकी चिन्ता लोकमें स्वत ही सिद्ध है. कुठ शास्त्रकारके उपदेशसें नहीं, 'अरु धर्म निर्वहण' यह जो कहना है, सो विधेय करने योग्य है, क्योंकि इसकी प्राप्ति नहीं है, शास्त्रका जो उपदेश है, सो अप्राप्त अर्थकी प्राप्ति वास्ते है, शेष सर्व अनुवादादि रूप है. अब आजीविका चलानेके प्रकार कहते है.

आजीविका जो है, सो सात प्रकारसें है. १ व्यापार करनेसें, २ विद्यासें, ३ खेती करनेसें, ४ पशुओंके पालनेसें, ५ कारीगरी करनेसें, ६ नौकरी करनेसें, ७ जीव मांगनेसें, तिनमें वणिज्य करनेसें वणिक् लोकोकी आजीविका है, २ विद्यासें वैद्यादिकोंकी आजीविका है, ३ खेती करनेसें जाटादिकोंकी है, ४ पशुपालनेसें गोपाल अजापालादिकोंकी है, ५ शिल्प करके चितारादिकोंकी है, ६ नौकरी करनेसें सिपाही लोकोका है, ७ निहा करके मांग खानेवालोंकी आजीविका है. तिनमें १ वणिज्य सो धान्य, पृत, तैल, काष्पास, सूत्र, वस्त्र, धातु, मणि, मोती, रूपड्या, सोनड्या प्रमुख जितनी जातका किरियाणा है, सो सर्व व्यापार है. अरु जो आहु देना है, सोनी व्यापार है.

२ विद्यानी औपधि, रस, रसायन, चूर्ण, अजनादि, वास्तुरु शास्त्र, पंखी



का शकुन, नूत नविष्यतादि निमित्त, सामुद्रिक, चूडामणि, जवाहिर परंतु  
 नैका शास्त्र, धर्म, अर्थ, काम, ज्योतिष तर्कादि जेदसैं अनेक प्रकारकी है  
 इस वैद्यविद्यामें अतारपणां, पंसारीपणां करनां ठीक नहीं, क्योंकि इसमें  
 प्रायः डुध्यान होनेसैं बहुत गुण नहिं दिखता है, क्योंकि जिसकों जिस्से  
 जान होता है, वो उसी बातकों चाहता है ॥ तडुक्तं ॥ आर्या ॥ विग्रहमि  
 षंति नटा, वैद्याश्च व्यापिपीडित लोकं । मृतकं बहुलं विप्रा, हेम मुनिहं च  
 निर्ग्रथाः ॥ १ ॥ अर्थः— सुनट संग्राम चाहते है, वैद्य रोगपीडित लोकों  
 कों चाहते है, अरु ब्राह्मण बहुत लोकोंकों मरणों चाहते है, तथा निरूप  
 डव, सुकालकों साधु निर्ग्रथ चाहते है परंतु जो वैद्य अत्यंत लोनी होवे,  
 धन लेने वास्ते उलटा औपधि जानके देवे, जिसके मनमें दया न होवे,  
 जो त्यागी साधुओंकी औपधि न करे, जो दरिडी, अनाथादि लोकोंकों म  
 रते जानकेनी धन खोस लेवे, मांस मद्यादि अजह्य वस्तुका जहूण क  
 रनां बतावे, जूठी औपधि बनाके लोकोंकों उगे, वो वैद्यविद्या नरककी वेने  
 वाली है, सो न करनी चाहियें. अरु जो वैद्य सत् प्रकृति वाला होवे,  
 लोनी न होवे, पूर्वोक्त दूषण रहित होवे, परोपकारी होवे, ऐसेकी वैद्य  
 विद्या श्रीकृपजदेवजीके जीव जीवानंद वैद्यकी तरें दोनों जवोंमें गुण  
 देने वाली है, ऐसी वैद्यविद्यासैं आजीविका करे, तो अच्छी है.

३-४ तीसरी खेती, चौथा पशुपालक, उसमें खेतीजी तीन तरेंसैं होत  
 है, एक मेषसैं, दूसरी कूप नहरादिसैं, तीसरी दोनोसैं चौथा पशु पालक  
 पणा, सो गौ, महिष, बकरी, ऊट, बैल, घोडा, हाथी, इनकों वेच वेचके आ  
 जीविका करणी, ये खेती अरु पशुपालक, यह दोनो काम शिवेकीकों क  
 रने उचित नहीं. जे कर इनके करे बिना निर्वाह न होवे, तदा बीज वो  
 नैका काल जाणे, नूमि सरस नीरस जाणे, अरु जो खेत पहिलां बाह्यां  
 बिना बोया न जावे, दूसरा रस्तेका क्षेत्र, यह दोनो, क्षेत्रकों वर्जे, तो धन  
 की वृद्धि होवे, अरु जो पशुपालक पणां करे, तो पशुओं ऊपर निर्दय न  
 होवे, पशुका कोइ अवयव न ठेदे. इसी तरें पशुपालकपणा करे

५ पाचमी शिल्प आजीविका है, सो शिल्प सौ तरेंका है, मूल शिल्प  
 तो पांच है, १ कुंजार, २ लोहार, ३ चितारा, ४ वणकर, अर्थात् बुनने  
 वाला, ५ नाइ, इन पांचोके वीश वीश जेद है, यद्यपि इस कालमें न्यूनाधि

होवेंगें, परंतु श्रीकृष्णदेवजीने प्रथम सौ तरेंहीका शिल्प पर्याकों  
 था, इस वास्ते सौही लिखा है. जो सांसारिक विद्या है, सो स  
 शिल्पमें है, कोइ कर्ममें है, शिल्प, गुरु उपदेशसें आता है, सोही है,  
 प्ररु कर्म स्वयमेवही आ जाता है, यह कर्मनी सामान्यसें चार प्रकारें  
 है, १ उत्तम बुद्धिसें धन कमाता है, २ मध्यम हाथोंसें कमावे, ३ अधम  
 णोंसें कमावे, ४ अधमाधम मस्तकसें बोजा ढो कर कमावे.

६ सेवा करकें आजीविका करे. सो सेवा राजाकी, मंत्रीकी, शौचकी,  
 सामान्य लोकोकी, नौकरी यह चार प्रकारे है. प्रथम तो नौकरी किसी  
 कीनीन करनी चाहियें, क्योंकि नौकर परवश हो जाता है, जे कर नि  
 वाह न होवे, तदा नौकरीनी करे, परंतु जिसकी नौकरी करे, उसमें यह  
 कहे हुए गुण होवे, तो उसके उहां नौकर रहे, जो १ कानोंका दुर्वल न  
 होवे, २ सूरमा होवे, ३ कृतज्ञ होवे, ४ सात्विक, गंजीर, धीर, उदार,  
 शीजवान, गुणोंका रागी होवे, उसकी नौकरी करे, अरु जो क्रूर प्रकृति  
 वाला होवे, कुव्यसनी होवे, लोनी होवे. चतुर न होवे, सदा रोगी रहे,  
 मूर्ख होवे, अन्यायी होवे, अैसोकी नौकरी न करे, क्योंकि कामंदकीय ना  
 मक नीति शास्त्रमें लिखा है, कि जिस राजाको वृद्ध पुरुषोंने सेवा करी  
 होवे, सो राजा अद्वा है, स्वामीकोनी चाहियें कि जैसा सेवक होवे, तैसा  
 उसका सन्मान करे, सेवकनी थके हुए, जूखे दूये, क्रोधमें दूये, व्याकुल  
 होये, तृपावत होये, शयन करने लगे, दूसरेके अर्ज करते दूये, इन अथ  
 स्थायोंमें स्वामीकों विनति न करे, तथा राजाकी माता, राजाकी राणी,  
 राजकुमार, मुख्यमंत्री, अदालती, राजेका दरवाजेवान, इनके साथ रा  
 जाकी तरें वर्तना चाहियें. इस रीतीसें प्रवर्त्ते, तो धनकी प्राप्ति दुर्जन  
 नहीं ॥ यदूचे ॥ श्लोक ॥ इच्छेत्त्रं समुद्भ्रं योनिपोषणमेव च ॥ प्रसादां  
 नृज्जलां चैव, सद्योग्प्रति दरिद्रता ॥ १ ॥ निर्दंतु मानिनां सेवा, राजादीना सु  
 खैषिण. ॥ स्वजना. स्वजनोदार, संहारो नविनातया ॥ २ ॥ मंत्री, श्रेष्ठी,  
 सेनानी इत्यादि व्यापारजी सर्व नृपसेवाके अंतर्जविही है, परंतु जेहलखा  
 नेका दरोगादि, नगरका कोटवाल पणा, सीमापाल, इत्यादि नौकरी न  
 करणी चाहिये, क्योंकि यह नौकरीयो निर्दयी जांकोके करनेकी है, तिस  
 वास्ते श्रावकको नहीं करनी. जे कर कोइ श्रावक राजाधिकारी हो जावे,

तब वस्तु पात्रादिक, मंत्रीयोकी, तरें महाधर्म-कीर्तिका करनेवाला श्रावक मुख्यवृत्ति करके तो सम्यग्दृष्टिकीही नौकरी करे.

३ सातमी नीख मांगनेसें आजीविका है, सो नीख मांगनेकेनी अनेके जेद है, तिनमें धर्मोपष्टेन मात्र आहार, वस्त्र, पात्रादिककी जिह्वा लेवे, सो नी जिस साधुने सर्वसंसार और परिग्रहका संग त्यागा है, तिसको मांगनी वृत्ति है, क्योंकि उसकी नीख मांगनेसें और गति नहीं है, श्रीहरिचन्द्र रिजीने पांचमे अष्टकमें जिह्वा तीन प्रकारकी लिखी है, प्रथम जिह्वा सर्व संपत्करी, दूसरी पौरुपत्री, तीसरी वृत्तिजिह्वा है, जो साधु परिग्रहका त्यागी, धर्मध्यान संयुक्त, जिनाज्ञासहित होनेसें पट्कायके आरंभसे रहित, तिसकी जिह्वा सर्व संपत्करी है, तथा जो साधु तो बन गया है, परंतु साधु के गुण उसमें नहीं है, तथा जो गृहस्थावासमें लष्ट पुष्ट पट्कायका आरंभ नी पडिमावहे विनाका श्रावक, तथा और गृहस्थ जो मांगके खावे, तिसकी पौरुपत्री जिह्वा है, वो पुरुष धर्मकी लाघवताका करने वाला है, पूर्वजन्ममें जिनाज्ञा खंभने वाला है, आगे अनंत जन्म जग दुःखी रहेगा, तथा जो निर्धन, अंधा, पांगला, असमर्थ, और कोऽ काम करने समर्थ नहीं, वो नीख मांगके खावे, तो तीसरी वृत्तिजिह्वा है, यह जिह्वा डुष्ट नहीं. इस नीखके मांगनेसें लघुतादि धर्मके दूषण नहीं होते है, क्योंकि जो इनको देता है, वो अनुकपा (दया) करके देता है, देनेवाला पुण्य उपार्जन करता है, इस वास्ते गृहस्थको नीख न मांगनी चाहिये धर्मो श्रावकको तो विज्ञेप करके नीख न मांगनी चाहिये, जिह्वा मांगनेसें धर्मकी निदा, अरु धर्मकी निदासें डर्जनबोधी होता है, नीख मांगनेसें उठर पूर्ण तो हो जाता है, परंतु लक्ष्मी नहीं होती है ॥ यतः ॥ लक्ष्मीर्वसति वाणिज्ये, किंचिदस्ति च कर्षणे ॥ अस्ति नास्ति च सेवायां, जिह्वाया न कदाचन ॥ १ ॥

मनुस्मृतिके चौथे अध्यायमेंनी लिखा है, कि जब वाणिज्य करे, तब कष्टमें सहायक, पूंजीका बल, स्वजाग्योदय, देश, काल, देखके करे, वाणिज्य करणे लगे, तब पहिला थोडा करे, पीठे लग्न जाणे, तो यथायोग्य करे, कदाचित् निर्वाहके न हूये खरकर्मनी करे, तोनी अपणे आपको निंदता हूया करे, विना देखा विना परीक्षाके सौदा न लेवे, जो सौदा संबंद वाला

होवे, वो बहुतोंके साथ मिल कर लेवे, जहां स्वचक्र परचक्रादिका उपस्व  
क्र होवे, अरु धर्म सामग्री होवे. तिस क्षेत्रमें व्यापार करे.

कालसें अछाही तीन, पर्वतियिके दिन व्यापार न करे, जो वस्तु वर्षा  
कालके साथ विरोधि होवे, सो त्यागे, जावसेंती जो कृत्रिय जातिका व्या  
पारी राजा प्रमुख होवे, तिसके साथ व्यापार न करे, अपणे विरोधीकों  
उधारा न देवे, तथा नट विट वेड्या, जुआरी प्रमुखकों तो विशेष करके  
उधारा नहींही देवे, हथीपारबंधके साथ तथा व्यापारी ब्राह्मणके साथ  
लेन देन न करे, मुख्य तो अधिक मोलका गहनां रखके व्याजु देवे,  
क्योंकि उससें मांगनेका क्लेश, विरोध, धर्महानी, धरणादिक कष्ट नहीं होते  
है, जे कर ऐसे निर्वाह न होवे, तदा सत्यवादीको व्याजु उधार देवे, व्याज  
नी एक, दो, तीन, चार, पांच प्रमुख सैकडे पीठें महीनेमें नले लोक जि  
सकों निंदे नहीं, ऐसा लेवे,

जेकर देनां होवे, तदा करार उपर बिन मांग्याही देनां चाहियें, कदा  
चित् निर्धनपणेसें एकवारमें दे न सके, तो किशत प्रमाणें जरूर दे देवे,  
क्योंकि देना किस्तीका न रखना चाहियें ॥ यजुक्तं ॥ धर्मरत्ने ऋणवेदे, कन्यादा  
ने धनागमे ॥ शत्रुघातेऽग्निरोगे च, कालक्षेपं न कारयेत् ॥१॥ जे कर देना न  
उतरे, तब उसका नौकर रहकर जी देनां उतार देवे, नहीं तो नवातरोमें  
उसका कर्मकर (चाकर) महिप, बैल, उंट, खर, खच्चर, घोडा प्रमुख व  
न कर देनां पडेगा, लेने वालाजी जब जान लेवे, कि यह देने समर्थ नहीं  
तब बिलकुल मांगनां ठोड देवे, ऐसे कहै कि जब तूं देने समर्थ होवेगा,  
तब दे देनां, नहीं तो यह धन मैं अपणें धर्ममे लगाया, वहीमें लिख ले  
ता हूं, तेरेसें मैं कुछ नहीं लेबुंगा ?

भावकों मुख्यवृत्ति तो धर्मीजनोंसेंही व्यवहार करनां चाहियें, क्योकि  
दोनों पास धन रहेगा तो धर्ममें लगेगा, अरु किसी म्लेच्छ पास धन रहि  
जावे, तदा व्युत्सर्जन कर देवे, व्युत्सर्जन करां पीठें जेकर वो म्लेच्छ फेर धन  
दे देवे, तदा वो धन धर्ममे खरचणे वास्ते संघकों सौप देवे, अरु व्युत्सर्जन  
करा ह, ऐसानी कह देवे, ऐसेही जो कोइ वस्तु खोइ जावे, अरु टुंढनसें  
नमिले, तो तिस वस्तुकाजी व्युत्सर्जन कर देवे, पीठें कदाचित् अपने पास

धनहानी हो जावे, धनकी अप्राप्ति हो जावे, तोजी खेद न करे, क्योंकि न करणां, यही लक्ष्मीका मूल कारण है,

बहुत धन जाता रहे, तोजी धर्म करणमें आलस न करे क्योंकि पदा अरु आपत्त बडे आदमीकोंही होती है, सदा एक सरिखे दिन कि के नहीं जाते है, पूर्व जन्म जन्मांतरके पुण्यपापोदयसे संपदा, विष होती है, इस वास्ते धैर्यका अवलंबनां श्रेष्ठ है, यदा अनेक उपाय व नेसेंजी दरिद्र दूर न होवे, तदा किसी नाग्यवानका आधार लेवे. अर्था सांजी वनके व्यवहार करे, क्योंकि काष्ठके संग लोहानी तर जाता है.

जे कर बहुता धन हो जावे, तदा अजिमान न करे, क्योंकि लक्ष्मीके सा पांच वस्तु होती हैं, १ निर्दयत्व, २ अहंकार, ३ तृष्णा, ४ कठिन वच बोलनां, ५ वेश्या, नट, विट, नीच पात्र, वद्वज्न होते है, इस वास्ते बहु धन हो जावे, तो इन पांचोको अवकाश न देवे, किसीके साथ लडाइ करे. जबरदस्तके साथ तो विशेष करके लडाइ नहिं करे, तथा १ धनवत २ राजा, ३ पट्टवाला, ४ बलवान, ५ दीर्घरोपी, ६ गुरु, ७ नीच, ८ पस्वी, इन आठोंके साथ वाद न करे, जहा तक नरमाइसें काम वने, तह तक कठिनाइ न करे, लेने देनेमें त्राति जूलादिकसें अन्यथा हो जावे, त विवाद न करे, किंतु न्यायसें जगडा मिटावे, न्याय करनेवालेकोंजी जि लोनी पट्टपात रहित होना चाहियें, तथा जिस वस्तुके महंगे होनेसे पर्यायकों पीडा होवे, ऐसी वस्तुके महंगे होनेकी चिंता न करे, परंतु कर्मयोगसें छुनिहादिक हो जावे, तबजी सौदेमें डुपे तिणे लान हो जावे, तदा अन्नमे अधिक न लेवे, तथा एक, दो, तीन, चार, पांच रूपये सैंकडेसे अधिक व्याज न लेवे, किसीका गिर पडा धन न लेवे, तथा का लांतरमें क्रयविक्रयादिमें देशकालादि अपेक्षा उचित शिष्टजन अनिश्चित लान होवे, सो लेवे, यह कथन प्रथम पंचाशकसूत्रमें लिखा है तथा खोटा तोल, खोटा मापा, न्यूनाधिक वाणिज्य रसमे जेल संजेल न करे, वस्तुका अनुचित मौल, अनुचित व्याज, लंचा अर्थात् घूस, कोडवट्टी न लेवे, धसा दूआ तथा खोटा रूपकादि किसीको खरेमे न देवे, दूसरोंके व्या पारमें जंग न करे, ग्राहक न बकावे, वानकी और न दिखावे, अंधेरा करके वस्तु न बेचे, जाली खत पत्रादि न बनावे, इत्यादि परवचन प

आकों वजें, सर्वथा प्रकारें व्यवहार शुद्धि करे, क्योंकि व्यवहार शुद्धिही गृहस्थ धर्मका मूल है.

तथा स्वामिदोह, मित्रदोह, विश्वासघात, बालदोह, वृद्धदोह, देवगृहदोह न करे, थापणमोसा न करे, ये सर्व महापापके काम वजें, तथा बूढ़ी साह्वी, रोप, विश्वासघात, कृतघ्नपणा, ये चारों, कर्मचमालपणां है, तिसकों वजें, फूठ जो है, सो सर्व पापोंसें बड़ा पाप है, इस वास्ते फूठ सर्वथा न बोले, न्यायसें धन उपार्जन करे, अरु जो अन्यायी लोक सुखी दिखते है. वो अन्यायसें सुखी नहीं है, किंतु उनके पूर्व जन्मके पुण्यके फलसें सुखी हैं, क्योंकि कर्मफल चार तरेंका है ॥ यदाहुर्धर्मघोषसूरिपादा. ॥ एक पुण्यानुबंधी पुण्य है, दूसरा पापानुबंधी पुण्य है, तीसरा पुण्यानुबंधी पाप है, चौथा पापानुबंधी पाप है. यह चार प्रकार जो हैं, तिनकुं किंचित् विस्तार पूर्वक कहते हैं.

१ जिसने जिनधर्म नहीं विराध्या है, किंतु संपूर्ण आराधकें जो संसारमें जवांतरमें माहा सुखी धनाढ्य उत्पन्न होवे, नरत बाहुबलकी तरें, सो पुण्यानुबंधी पुण्य है.

२ जो पुरुष नीरोगादि गुणयुक्त होवे, अरु धनाढ्यनी होवे, परतु कोणिकराजाकी तरें पाप करणेमें तत्पर होवे, यह पुण्य पूर्व जन्ममें अज्ञान कष्ट करणेसें होता है, सो पापानुबंधी पुण्य है.

३ जो पुरुष पापके उदयसें दरिद्री अरु दुःखी होवे, परतु श्रीजिनधर्ममें बड़ा अनुरक्त होवे. धर्म करणोंमें तत्पर होवे, सो पुण्यानुबंधी पाप है, यह दुमकमहर्षिवत्. पूर्व जन्ममें लेश मात्र दयादि सुकृत करणेसें होता है.

४ पापी चम कर्मका करनेवाला निर्धर्मी, निर्दय, पाप करके पश्चात्ताप रहित यह पुरुष दुःखीया है. तोनी पाप करणेमें तत्पर है, सो पापानुबंधी पाप है, काल सौकरिकादिवत्

बाह्य जो नव प्रकारका परिग्रह रूप ऋदि है, अरु अंतरंग जो आत्माकी अनंत गुण रूप ऋदि है, सो पुण्यानुबंधी पुण्यसे होती है, ऐसे जेकर कोइ जीव पापानुबंधी पुण्यके प्रजावसें इस लोकमें सुखी दीखना ह, तोनी आगले जन्ममें महा आपदा पावेगा, अरु जो महसूलकी चोरी है, सो स्वामिदोहमें है, यह चोरी इस लोक अरु परलोकमें धनर्थकी दाता

है. जिसमें दूसरोंको पीडा होवे, जैसे व्यवहार न करे ॥ यतः ॥ इन्द्रजा  
वृत्तं । शाठ्येन मित्रं कपटेन धर्म, परोपतापेन समृद्धिजावं ॥ सुखेन विद्या परुषे  
ण नारी, वांछति ये व्यक्तमपंकितास्ते ॥ १ ॥ तथा जिसतरें लोकोंको राग  
भाव होवे तैसैं यत्न करे ॥ यतः ॥ वंशस्थ वृत्तं ॥ जितेंद्रियत्वं विनयस्य का  
रणं, गुणप्रकर्षो विनयादवाप्यते ॥ गुणप्रकर्षेण जनानुरंज्यते, जनानुरागप्र  
नवाहि संपदः ॥ १ ॥ तथा धनहानिवृद्धि, संग्रहादि, गुह्य, दूसरोंके धर्मों  
प्रकाश न करे ॥ यतः ॥ अनुष्टुप्वृत्तं ॥ स्वकीयं दारमाहार, मुकृत इविष  
गुणं ॥ दुष्कर्म मर्म मंत्रं च, परेषां न प्रकाशयेत् ॥ १ ॥ तथा जुवनी न  
बोले, जेकर राजा गुरु आदिक पूठे, तो सत्य कह देवे सत्य बोलनां सोही  
पुरुषकी परमदशा है.

तथा यथार्थ कहनेसैं मित्रका मन हरे, तथा बांधव जनोको सन्मानसैं  
वश करे, तथा स्त्रीको प्रेमसैं वश करे, तथा चाकरोंको दान देनेसैं वश  
करे, तथा दाहिण्यता करके इतरलोकोंका मन हरे, तथा किसी जगे अ  
पणे कार्यकी सिद्धि करने वास्ते पुष्ट जनोकोनी अगुवे, (आगडी) करे,  
तथा जिस जगे प्रीति होवे, तहां लेने देनेका व्यापार न करे, यह के  
थन सोमनीतिमेंनी है.

तथा साक्षी विना मित्रके घरमेंनी धनादिक रखना न चाहियें, क्योंकि  
लोन बडा दुर्दांत है, तथा जो धन रखनेवाला मर जावे तो वो धन उसके  
पुत्रादिकको दे देनां चाहियें, जे कर धन रखने वालेका कोइनी संबंधी न  
होवे, तब वो धन सर्वलोकोंके समस्त धर्मस्थानमे लगा देवे, तथा आ  
वक, देवगुरु, चैत्य, जिनमंदिरकी चाहे सञ्ची, चाहे जुवनी शपथ अर्थात्  
सौगंद न खावे, तथा दूसरोंका साक्षीनी न बने, यत् कर्षासिक कृषि क  
हता है ॥ श्लोक ॥ अनीश्वरस्य हे नार्ये, पथि क्षेत्रं दिवा कृषि. ॥ प्रातिना  
व्यं च साह्यं च, पंचानर्याः स्वयं कृता ॥ १ ॥

तथा आवक मुख्यवृत्तिसैं तो जिस गाममें रहे, तहांही व्यापार करे. क्या  
कि जैसे करनेसैं कुटुंबका अविद्योग तथा घरका कार्य अरु धर्मकार्यादिक सब  
वने रहते हैं, कदापि अपने गाममे निर्वाह न होवे, तदा निकट देशांतरमें  
व्यवहार करे, जहासैं कोइ योग्य काम पड़े, तो शीघ्र घरमे आ जावे, अ  
सा कौन पामर है. कि:- जिसका स्वदेशमें निर्वाह हांवे, तोनी परे

हमें जावे, उक्तमपि ॥ जीवंतोपि मृताः पंच, भ्रूयन्ते किल नारते ॥ दरिद्री  
 व्याधितो मूर्खः, प्रवासी नित्यसेवकः ॥ जे कर निर्वाह न होवे, तदा ध्याप  
 तथा पुत्रादिकोंकों परदेशमें न जेजे, किंतु सुपरीक्षित गुमास्तेकों जेजे, जे  
 कर स्वयमेव देशांतरमें जावे, तदा नजा मुहूर्त्त शकुन निमित्त देखकें धरु  
 देव गुरुकों बंदना करके मंगलपूर्वक जाग्यवान् साथके बीचमें निडादि प्र  
 माद वर्जकें कितनेक अपने ज्ञातियोंकों साथ ले कर जावे, क्योंकि जाग्य  
 वानके साथ जाता विघ्न टल जाता है, तथा लेनां, देनां, गडा दूवा धन,  
 सर्व, पिता, नाइ, पुत्रादिकोंकों कह जावे, अपणे संबंधीयोंकों नजी शिक्षा  
 दे जावे, बहुमान पूर्वक सर्वकों बोलाकें जावे, परंतु जो जीवनेकी इडा  
 होवे, तो देव गुरुका अपमान करकें, किसीकों निंत्रितिके, स्त्रीयादिककों ता  
 इना कूटना करकें, बालककों रुदन करवा करकें न जावे. कदापि कोइ पर्व  
 महोत्सवादिकका दिन निकट होवे, तदा उत्सव करके जावे ॥ यत् ॥ उत्स  
 रमशनं सर्वं, प्रगुण चोपेक्ष्य मंगलमज्ञेयं ॥ अस्मापिते च सतक, युगेंऽग  
 न्तौ च नो यायात् ॥ १ ॥ तथा दूध पीकें, मैथुन करकें, स्नान करकें, अ  
 णी स्त्रीकों हणके, वमन करकें, थूंककें, रुदन करकें, कतिन शब्द सु  
 गकें, गालीयां सुणकें, प्रदेशको न जावे, तथा शिर मुंफन करवाकें, आसु  
 गिराकें, खोटे शुकनके दूये ग्रामांतर न जावे.

तथा कार्यके वास्ते जब चले, तब जौनसा स्वर बढ़ता होवे, उस पा  
 संका पग पहिला उठाकें धरे, जिस्ते कार्यतिदि होवे, तथा रोगी, बूढा,  
 ब्राह्मण, अंधा, गौ, पूजनिक, राजा, गर्भवती स्त्री, नार उठानेवाला, इनकों  
 कुछ दे कर ग्रामांतरमें जावे, तथा धान्य पक्का वा कच्चा पूजा योग्य मत्र  
 मंगल, इनकों त्यागे नहीं, तथा स्नानका जल, रुधिर, सुरदा, थूंक, श्लेष्म,  
 विषा, मूत्र, बलती अग्नि, साप, मनुष्य, शस्त्र, इनकों उल्लये नहीं, तथा  
 नदीके काठे, गौश्योंके गोकुलमें, बड वृद्धके हेठ, जलाश्रयमें, धरु कूपकाठे,  
 इतने जगो पर विष्टा न करे, तथा रात्रिकों वृद्ध हेठ न रहे, उत्सव, सतक,  
 पूरा दूये परदेशको जावे, विना साथके न जावे. वासके साथ न जावे,  
 तथा अर्द्धरात्रिमे मार्गमें न चले, तथा क्रूर प्ररुतिवाला मनु  
 कोटवाल, चुगल, दरजी, धोवी प्रमुख धरु कुमित्र, इतनोंके साथ  
 न करे, इनोके साथ अकालमें चले नहीं, तथा महिप, गर्दन, धरु



गौ, इनकी असवारी न करे, तथा हाथीसँ हजार हाथ, गाड़ेसँ पाँच हाथ अरु घोड़े तथा सिंग वाले जनावरोसेनी पाँच हाथ दूर रहे, विना रस्तेमें न चले, बहुत सोवे नहिं, रस्तेमें किसीका विश्वास न करे, एकीला किसीके घरमें न जावे, जीर्ण नावां ऊपर चढे नही, एकला नदीमें न पैसे, कठिन जगामें उपाय विना न जावे, अगाध पाणीमें प्रवेश न करे, जहां बहुते क्रोधी होवे, अरु बहुते सुखोके इत्क होवे, तथा जहां घणों सूम होवे ऐसे सथवाराके साथ कदापि परदेश न जावे, तथा बांधनेके, मारणोके, जूआ खेलनेके, पीडाके, खजानेके, अंतोउरके, स्थानमें न जावे, तथा बूरे स्थानमें, श्मशानमें, शून्यस्थानमें, चौकमें, शूके घातमें, कूडेमें, ऊंची नीची जगामें, उकरूडीमें, वृहदाग्रमें, पर्वताग्रमें, नदीके काठेमें, कूपके कांठेमें, इतने स्थानोमें वैठे नहीं, तथा जो जो कृत्य जिस जिस कालमें करना है, सो करे, परतु ठोडे नहिं.

तथा पुरुषकों जो जला वध्वादि पहरनेका आम्बर चाहियें सो न ठोडे, परदेशमें तो विशेष करके आम्बर, नहीं ठोडनां, क्योंकि आम्बरसँ अनेक कार्य सिद्ध हो जाते है, तथा जो कार्य करणां सो पंच परमेष्ठिस्मरण पूर्वक तथा गौतमादि गणधरोका नामग्रहण पूर्वक करे, तथा देव गुरु की जक्ति वास्ते धनकी कल्पना करे, क्योंकि जब धन कमावनेका प्रारंभ करनां, तबही नफेमेंसूँ इतना हिस्सा सात क्षेत्रमें जगावुंगा ? असी जावना जरूर करनी चाहियें.

जदा जान हो जावे, तदा चित्त अनुसारें मनोरथ सफल करे, क्योंकि व्यापारका फल यह है, किः—धन होना, अरु धन होनेका फल यह है, कि धर्ममें धन जगानां, नहीं तो व्यापार करनां सो नरक तियचगति होनेका कारण है, जे कर धर्ममें खरचे, तो धर्मधन कहा जावे, जेकर नहीं खरचे तो पापधन कहा जावे क्योंकि क्रुद्धि तीन प्रकारकी है, एक धर्मक्रुद्धि, दूसरी जोग क्रुद्धि, तीसरी पापक्रुद्धि. उसमें जो धर्मकार्यमें लगावे, सो धर्म क्रुद्धि तथा जो शरीरके जोगमें आवे सो जोगक्रुद्धि अरु धर्म तथा जोगसँ जो रहित, सो पाप क्रुद्धि जाननी, इस वास्ते नित्य प्रत्ये स्वधनको ठानादि धर्ममें लगानां चाहिये, जेकर थोडा धन होय तो थोडा लगाने, क्योंकि किसीको इच्छानुसारिणी शक्ति होती है. तथा धन उत्पन्न करनेका उपाय.

करना चाहिये, परंतु अत्यंत लोभ न करना चाहिये, तथा धर्म, अर्थ, काम तथा अवसरमें सेवना, परंतु अत्यंत कामासक्त न होना चाहिये, जो धन उत्पन्न करना सोजी न्यायसे उत्पन्न करना चाहिये, यहां न्यायार्जित धन सत्पात्रमें देना, लगाना, तिसके चार जंग है, सो लिखते है.

१ न्यायोपार्जित सत्पात्रविनियोग रूप प्रथम जंग. पुण्यानुबंधी पुण्यका हेतु होनेसे वैमानिक देवतापणा जोगजूमि मनुष्यपणा सम्यक्त्वादिककी प्राप्ति निकट मोक्ष फल है, धनसार्थवाह तथा शालिन्नडादिवत्.

२ न्यायोपार्जित असत्पात्रविनियोगरूप दूसरा जंग. पापानुबंधी पुण्यका हेतु होनेसे जोग मात्र फलनी है, तोनी छेकड विरस फल है, जैसे लक्ष्य गोज्यकरणे वाला ब्राह्मण बहुत जवोंमें किंचित्सुख जोगके सेचनक ना श सर्वांग सुलक्षणो नष्ट हस्ती दूआ.

३ अन्यायसे आया सत्पात्रपरिपोषरूप तीसरा जंग है, तिसका अष्ठे त्तमें जैसे सामक वो देने वत् फल है, यह सुखानुबंधी होने करके राजके राजनारीयोके बहुत आरंजोपार्जित धनवत् है परंतु ऐसा धननी ममें लगावे, तो अज्ञा है, जैसे आजूके पर्वतोपरि जिनमंदिर बनाने वाले मजबूत अरु तेजपाल मंत्रीकी तरें अज्ञा है, जेकर ऐसा धननी धर्ममें लगावे, तो दुर्गति अरु अपकीर्तिका फल है, मम्मन शोचवत्.

४ अन्यायार्जित कुपात्रपोष रूप चौथा जंग है, यह जंग सर्वथा प्रकारे त्यागने योग्य है, क्योंकि अन्यायार्जित जो धन कुपात्रको देना, सो सा है, कि:- जैसा गौको मारके उसके मांससे कागोंका पोषण करना, वास्ते गृहस्थको न्यायसे धनार्जन करना चाहिये.

आधदिनकृत्य सूत्रमें लिखा है, कि:- व्यवहारशुद्धि जो है, सोही मिका मूल है, जिसका व्यापार शुद्ध है, उसका धननी शुद्ध है, जिस धन शुद्ध है, उसका आहार शुद्ध है, जिसका आहार शुद्ध है. उसकी शुद्ध है, जिसकी देहशुद्ध है, वो धर्मके योग्य है, ऐसा पुरुष जो जो करे, सो सर्व सफल होवे. अरु जो व्यवहार शुद्ध न करे, वो धर्मकी वा करानेसे स्वपरको दुर्लभबोधी करे, इस वास्ते व्यवहार शुद्ध जरूर की चाहिये ॥ इति व्यवहारशुद्धिस्वरूपं समाप्तं ॥

तथा देशादि विरुद्ध त्यागे, सो देश, काल, राजविरुद्धादि परिहरे,

यह कथन हितोपदेशमालामें लिखा है, कि देश, काल, राज, धरु धन विरुद्ध जो त्यागे, सो पुरुष सम्यग्धर्मको प्राप्त होता है.

तिनमें देशविरुद्ध तो जैसे कि.—सौवीरदेशमें खेती करणी, लाट देशमें ढिरा बनानी, यह देश विरुद्ध है, तथा औरजी जो जिस देशमें शिष्ट नोंके अनाचीसि है, सो तिस देशमें विरुद्ध जाननां. जाति कुलादि अपेक्ष जो अनुचित होवे, सो देशविरुद्ध है, जैसे ब्राह्मण जातिको सुरापान करनां, तिल लूणादि बेचनां, सो कुजापेक्षा विरुद्ध है, तथा जैसे चोहाणको मद्यपान करनां, तथा और देशवालोंके आगें और देशवालोंकी निंदा करणी, यहजी देशविरुद्ध है.

तथा कालविरुद्ध, सो जैसे हिमालयके पास अत्यंत शीतगर्मी गल तथा मरुदेशमें वर्षातमें अत्यंत पिन्डिल (पंक) संयुक्त दक्षिण समुद्रके पर्यंत जागोमें, तथा अति दुर्निहमें, दो राजाओंका परस्पर विरोध होनेसें, धाडने रस्ता रोका होवे, इरुत्तार महाअटवीमें, सांजकी बेला नयमें, इतने स्थानकोंमें तैसा सामर्थ्य सहायादि दृढ बल बिना जावे, तो प्राण धन नाशादि अनर्थकारि है, तथा फागुण मास पीठें तिलोंका व्यापार, तिल पीजाने, तिल नक्षत्र करने वर्षाकृत चउमासेमें पत्र शाकका ग्रहण करणां, तथा बहुजीवाकुल जूमिमें हल फेराना, यह महा दोषका कारण है, यह सर्व कालविरुद्ध जान लेनां.

तथा राजविरुद्ध यह है कि.—राजाके दोष बोलनां, जिसको राजा माने तिसको न माननां, तथा राजाके वैरीयोंसें मेल करना, राजाके शत्रुके स्थानमें लोचसें जाना, राजाके शत्रुके पासों आयेके साथ व्यापार करनां, राजाके काममें अपनी इच्छासें विधि निषेध करणां,

तथा लोकविरुद्ध यह है कि.—नगरनिवासियोंके साथ प्रतिकूल पण करणां, तथा स्वामिइह करणां, लोकोंकी निंदा करणी, गुणवान् धरु धनवान्की निंदा करणी, अपनी बड़ाइ करणी, सरलकी हासी करणी, गुणवान्में मत्सर रखनां, कृतघ्नत्व करणां, बहुत लोकोंके जो विरोधी होवे, उसकी संगति करणी, लोकमान्यकी अवज्ञा करणी, जले आचारवालेको कष्ट पड़े, तब राजी होनां, अपनी शक्तिके दुये साधर्मिके कष्टको दूर न करनां, देशादि उचिताचार लंघन करना. छोड़े धनके दूए गुं

लोकों का वेप रखनां, मैले वस्त्र पहिरने, इत्यादि लोकविरुद्ध है. यह सर्व इस लोकमें अपयशका कारण है ॥ यद्वाच वाचकमुख्यः ॥ लोकः खल्वधारः, सर्वेषां धर्मचारिणां यस्मात् ॥ तस्मात्लोकविरुद्धं, धर्मविरुद्धं च संत्याज्यम् ॥ १ ॥ अर्थः—उमास्वाति पूर्वधारी आचार्य कहते हैं, किः—सर्वधर्म करने वालोंके लोकजन समुदाय आधार है, तिस वास्ते लोकविरुद्ध अरु धर्म विरुद्ध यह दोनों, त्यागने योग्य हैं, क्योंकि ऐसे करनेसे धर्मका सुखे निर्वाह होता है, लोक विरुद्धके त्यागनेसे सर्व लोकोको वल्लन होता है, अरु जो लोकोको वल्लन होना है, सोइ सम्यक्त्व तरुका बीज है.

अथ धर्म विरुद्ध लिखते हैं. मिथ्यात्वकी करणी, सर्व गौ आदिकोंके निर्दय होके ताडना, बांधना, जूं, मांकडादिको निराधार गेरणे, धूपमे गेरणे, शिरमे कंधीसें लीख फोडनी, उष्ण कालमे तथा श्रेष्ण कालमें बौडा, लंबा, गाढा गलनां पाणी गलनेके वास्ते न रखनां, पाणी गलनेके पीठे जीवोंको युक्तिसें पाणीमें न गेरनां, तथा अन्न, इंधन, शाक, फल, तांबूल, अरु फलादिकोंको विना शोधे खानां; तथा अद्वत, सोपा पी, खारीक, वाढह, उलि, फली प्रमुख संपूर्ण मुखमें गेरे, टूटीके रस्ते, तथा पाणी आदिकों धारा बांध कर पीवे, तथा चलतेमें, बैठनेमें, स्नान करतां, हरेक वस्तु रखतां, लेतां, रांधतां, धान उडतां, पीसतां, औपधि रसतां, तथा मूत्र, श्लेष्म, कुरजादि, काजज, तबोलका उगाल गेरतां, उपयोगसें न करे, तथा धर्ममे अनादर करे, देव, गुरु, अरु साधर्मसे वेप धरे, जिनमंदिरका धन खावे, अधर्मीकी संगति करे, धर्मियोंका उपहास करे, कषाय बहुलता होवे, तथा बहुत पापकारी क्रय विक्रय खरकमें ररनां, पापकी नौकरी करनी, इत्यादि सर्व धर्मविरुद्ध है, यह पांच प्रका का विरुद्ध आवककों त्यागना चाहिये.

अथ उचित आचरण कहते हैं. उचित आचरण सो, पितादि नव प्रकारकी है. स्नेहवृद्धि कीर्त्यादि हेतु, सो हितोपदेशमाला ग्रंथसें लिखते हैं. एक पिताके साथ उचित, दूसरा माताके साथ उचित, तीसरा नाइयोंके साथ. चौथा स्त्रीके साथ, पांचमा पुत्रके साथ, उष्ण स्वजनके साथ, सातमा गुरुके साथ, आठमा नगरवालोके साथ, नवमा परतीर्थी प्रथमा दूसरे मतवालोंके साथ, यह नवके साथ उचित आचरण करणां.

हो जावे, अरु लोकोंमें निंदा होवे. अैसेही माता, पिता अरु जाइके मान जो और जन हैं, तिनोंके साथनी यथोचित उचिताचरण विचार नां ॥ यतः ॥ जनकश्रोपकर्ता च, यस्तु विद्यां प्रयच्छति ॥ अन्नदः प्राणशैव, पंचैते पितरः स्मृताः ॥ १ ॥ राजपत्नी गुरोः पत्नी, पत्नीमाता तथैव च ॥ स्वमाता चोपमाता च, पंचैता मातरः स्मृताः ॥ २ ॥ सहोदरः सहध्यायी, मित्रं वा रोगपालकः ॥ मार्गं वाक्ष्यसखा यश्च, पंचैते त्रातरः स्मृताः ॥ ३ ॥ अर्थः सुगम ॥ तथा अपणे जाइको धर्मकार्यमे अवश्य प्रेरणा करे, जाइकी तरें मित्रके साथनी उचिताचरण करे

४ अथ स्त्रीके साथ उचित कहते हैं स्त्री विवाहिताके साथ स्नेह संयुक्त वचन बोलके स्त्रीको अजिमुख करे, वद्वजन, और स्नेह संयुक्त वचन, निश्चय प्रेमका जीवन है, तथा स्त्री पासों स्नान करावे, अपना स्नान पगचंपी प्रमुखमें स्त्री प्रत्ये प्रवर्त्तावे, जब स्त्री विश्वास पा करके सच्चा स्नेह धरेगी, तब कदापि बुरा आचरण न करेगी, तथा देश काल कुटुंब धनादि उचित वस्त्रानरण देवे, क्योंकि अलंकार संयुक्त स्त्री लक्ष्मीकी रुद्धि करती है, तथा स्त्रीको रात्रिमें कहीं जाने न देवे, तथा कुशील पुरुषकी अरु पाखंडी जगत योगी योगीको सगति न करणे देवे, स्त्रीको घरके काममे जोड देवे, तथा राजमार्गमें वेश्याके पाडेमे न जाने देवे, धर्मकृत्य पढिक्रमणा सामायिकादिक जे कर करणे वास्ते धर्मशाला उपाश्रयमें जावे, तदा माता बहिनादि सुशील धर्मिणी स्त्रीयोकी टोलीमें जावे, आवे घरका काम, दान देना, सगे संबंधीका सन्मान करणां, रसोइका कारण करणां, यह सब करे, तथा प्रजात समये शय्या उठावे, घर प्रमार्जन करे, दूधके बर्त्तन धोवे, चौकादि चुल्हेकी क्रिया करे, तथा जामे धोने, अन्न पीतणां, गौ, जैस दोहनी, दहि विलोनां, रसोइ करणी, खाने वालोंको पुरोसनां, लूठे बर्त्तन शुचि करने, सासु, जरतार, नणंद, देवर, इतनोका विनय करनां इत्यादि पूर्वोक्त कामामे स्त्रीको जोडे, अर्थात् काम करणेमें तत्पर का जे कर स्त्रीको पूर्वोक्त कामोमें न जोडे, तब स्त्री, चपलतासे विकारक प्राप्त हो जाती है, काममे लगे रहनेसे स्त्रीकी रक्षा, गोपना होती है तथा जरतार स्त्रीके सन्मुख देखे, बोलावे, गुणकीर्त्तन करे, धन, वस्त्र, आभूषण देवे, जिस तरे स्त्री कहे, उस तरे करे, स्त्रीको दूर न ठोडे, तब

जरतार उपर अत्यंत प्रेम हो जाता है, तथा स्त्रीकों न देख अतिदेखनेसें, देख कर न बुलानेसें, अपमान देनेसें, अहंकार कर इन पूर्वोक्त बातोंसें प्रेम टूट जाता है.

तथा जरतार बहुत परदेशमें रहे, तब स्त्री कदाचित् अनुचित काम करे, इस वास्ते बहुत काल परदेशमेंनी न रहनां चाहिये, तथा स्त्रीका अपमान न करे, स्त्री जूल जावे, तो शिक्षा देवे, रूस जावे, तो मना देवे, तथा धनकी हानी वृद्धि, घरका शुद्ध, स्त्रीके आगे प्रगट न करे, तथा गोपमें आ करके दूसरी स्त्री न विवाहे, क्योंकि दो स्त्री करनी महा दुःखों का कारण है, कदाचित् संतानादिकके वास्ते दो स्त्रीनी कर लेवे, तदा दोनों उपर समजावसें प्रवर्त्ते, तथा स्त्री किसी काममें जूल जावे, तदा किसी शिक्षा देवे, कि जे कर फेर वो स्त्री, उस कामकों न करे, तथा रूसी स्त्रीकों जे कर नहिं मनावे, तो सोमनष्ट जार्या अंवावत् कूवेमें गिर पड़े, त्यादि अनर्थ करे. इस वास्ते स्त्रीसें सर्वकाम, स्नेहकारी वचनोंसें क आवे, नतु कठिनतासें.

जेकर निर्गुण स्त्री मिले, तब विशेष करके नरमाइसें प्रवर्त्ते, परंतु स्त्रीकों परमें प्रधान न करे, जिस घरमें पुरुषकी तरे स्त्री सामर्थ्य प्रधान पणा करे, वो घर नष्ट हो जाते हैं, यह कहनां, बाहुल्यतासें है, क्योंकि को स्त्री तो ऐसी बुद्धिमान् होती है, कि:- जेकर उसको पृथके कार्य करे, तो बहुत गुणके ताइ होता है, जैसें तेजपालकी जार्या, अनुपदे वीको तेजपाल अरु वस्तुपाल पृथके काम करते थे, तथा स्त्री जब धर्म कार्योंमें तप करे, चारित्र्य लेवे, उद्यापन करे, दान देवे, देवपूजा, तीर्थयात्रादि करे, तथा यह बातोंको करनेका मनमें उत्साह धरे, तब धन देवे, पुशील सहायक दे के उसका मनोरथ पूर्ण करे, परंतु अंतराय न करे, क्योंकि स्त्री जो धर्मकृत्य करेगी उसमेंसें पतिकोंनी पुण्य होगा, क्योंकि रति उस कृत्य कारणमें बहुत राजी रहे है ॥ इति ॥ ५ ॥

५ अथ पुत्रके साथ उचिताचरण लिखते हैं. पिता अपने पुत्रको बाल प्रवस्थामे बहुत मनोज्ञ पुष्टाहारसे पोषे, स्वेच्छा नाना प्रकारकी क्रीडा क आवे, क्योंकि मनोज्ञ पुष्ट आहार देनेसे बालकको बुद्धि, बल, अरु का तिकी वृद्धि होती है, स्वेच्छा क्रीडा करानेसे शरीर पुष्ट होता है, अरु अं

गोपांग संकुचित नहीं होते हैं ॥ पठन्ति ॥ श्लोक ॥ जालयेत् पंच वर्षाणि  
दश वर्षाणि ताडयेत् ॥ प्राप्तिं पौडशमे वर्षे, पुत्रोमित्रवदाचरेत् ॥ १ ॥  
तथा गुरु, देव, धर्म अरु सुखी स्वजन, इनकी संगति करावे, जली जाति  
कुजआचार, शीलवान् असा पुरुषके साथ मित्राचार करावे, क्योंकि गुरु  
आदिकका परिचय होनेसें बाव्यावस्थामें जली वासनावाला हो जाता है  
वटकलचीरीवत् जाति, कुज, आचारशील संयुक्तकी मित्रतासें, वैवयोगसें  
कदापि अनर्थनी आ पड़े, तोजी जले मित्रकी सहायसें कष्ट दूर हो जात  
है, जैसे अजयकुमारके साथ मित्रता करनेसें आर्द्धकुमारको जली वासना  
हो गइ. तथा जब अठार वर्षका पुत्र हो जावे, तब उसका विवाह करे  
क्योंकि बाव्यावस्थामें वीर्यह्य हो जानेसें बुद्धि, पराक्रम अरु आशु  
अधिक नहीं होता है, सर्व जैनमतके शास्त्रोंमें ऐसेही लिखा है, कि जब  
पुत्रको जोगसमर्थ जाने, तब पुत्रका विवाह करे, तथा जिस कन्यासें  
विवाह करावे, उस कन्याका कुज, जन्म, रूप, सरिखा होवे, तब विवाह  
करावे, तथा पुत्रके उपर घरका चार सर्व गेरे, घरका स्वामी बना देवे  
तथा जिस कन्यामें सरिखे गुण न होवे, उसके साथ विवाह कराना मह  
विडंबना है, विवाहजेठ आगे लिखेंगे, जब पुत्रके उपर घरका चार ह  
वेगा, तब चिताक्रांत होनेसें कोइनी स्वहृद उन्मादादि न करेगा, क्योंकि  
वो जान जावेगा कि धन, बडे क्लेशोंसे प्राप्त होता है, इस वास्ते अरु  
चित व्यय न कराना चाहिये, ऐसा वो आपसें जान जावेगा, परंतु पुत्रके  
परीक्षा करके पीछे उसके घरका चार माल देवे, जैसे प्रसेनजित राजाने  
एकपुत्रको दीया, तथा पुत्रकी तरें पुत्रीके साथ अरु नत्तीजादिकके साथ  
नी यथायोग्य उचित जान लेना, ऐसेही वेटेकी बहूके साथनी धन  
प्रीती तरें उचिताचरण करे, तथा प्रत्यह पणे पुत्रकी प्रशंसा न करे, तब  
जब कष्ट पड़े, तब डुख सुखकी बात कहे, तथा आय व्ययका स्वरूप  
कहे, तथा पुत्रको राजसजा देखावे, क्योंकि क्या जाने बिना विचार  
कोइ कष्ट आ पड़े, तब क्या करे? तथा कोइ इष्टजन उपडव कर देवे  
तब राजसजा बिना बूटकारा नहीं होता है ॥ श्लोक ॥ तत्पठति ॥ आर्या ॥ गंत  
व्यं राजकुले, इष्टव्याराजपूजितालोका ॥ यद्यपि न जवंत्यर्था, स्याप्यनर्थ  
विलीयंते ॥ १ ॥ तथा पुत्रको परदेशका आचार, व्यवहारादिकसें जानका

क्योंकि प्रयोजनके वशसे कदा काल देशांतरमें जी जाना पड़े, तो कोई छिप न होवे, तथा दो मातके पुत्रके साथ विशेष उचित करे.

६ अथ सगोंके साथ उचित करणां लिखते हैं, पिता, माता, स्त्रीके पक्षके जो लोक हैं, तिनकों स्वजन कहते हैं, यह स्वजनोंका कोई घरके बड़े काममें तथा सदा काल सन्मान करे, तथा आपनी स्वजनोंके काममें अश्रेयशरी बने, जो स्वजन धनहीन होवे, रोगातुर होवे, तिसका उद्धार करे, क्योंकि स्वजनका जो उद्धार करणां है, सो तत्त्वसे अपणाही उद्धार करणां है तथा स्वजनके परोक्ष उनकी निंदा न करे, तथा स्वजनके वैरीयोंसे मित्राचारी न करे, स्वजनादिकसे प्रीति करणी होवे, तदा शुष्क कलह, हास्यादि, बचनकी लडाइ न करे, स्वजन घरमें न होवे, तो उसके घरमें एकिला न जावे, देव, गुरु, धर्म अरु धनके कार्यमें स्वजनोंके साथ सामिल रहे. जिस स्त्रीका पति परदेशमें गया होवे, ऐसे स्वजनके घरमें एकिला न जावे, तथा स्वजनोंके साथ लेने देनेका व्यापार न करे ॥ तथाह ॥ यदीद्वेद्विपुलां प्रीति, त्रीणि तत्र न कारयेत् ॥ वाग्वाटमर्थसंबंध, परोक्षे दारदर्शनम् ॥ १ ॥ तथा इस लोकके कार्यमें स्वजनोंके साथ एक चित्त रहे, अरु जिनमंदिरादि कार्यमें तो विशेष करके स्वजनसे ही मिलके करे, क्योंकि ऐसे कार्य जे कर बहुतांसे मिलके करे, तोही शोना है. इत्यादि स्वजनोचित जाननां.

७ अथ गुरु उचित कहते हैं. धर्माचार्यके साथ उचित जक्ति आंतरंगकी बहुमान, वचन, कायाका आवश्यक प्रमुख कृत्य करणां, गुरु पासों शुद्ध श्रद्धा करके धर्मोपदेश श्रवण करणां. गुरुकी आज्ञा माने मनसे जी गुरुका अपमान न करे, गुरुके अवरुणवाद किसीको बोलने न देवे, गुरुकी प्रशंसा सदा प्रगट करे, गुरुके प्रत्यक्ष वा परोक्ष स्तुति करे, गुरु स्तुति जो है, सो अगणित पुण्यवधनेका कारण है, गुरुके विष् कदापि न देखे, गुरुसे मित्रकी तरें अनुवर्त्तन करे, गुरुके प्रत्यनीक निंदकको सर्व शक्तिसे निवारण करे, कदाचित् गुरु, प्रमादके वशसे कहीं चूक जावे, तब एकांत हितशिक्षा देवे, अरु कहे कि हे जगवन् ! तुम सरीखाको यह काम करणां उचित नहि, गुरुका विनय करे. गुरुके सन्मुख जावे, गुरु निरुट श्रावे, तो आसन ढोडके खडा हो जावे, गुरुको आसन देवे, गुरुकी पग



चंपी करे, गुरुकों शुद्ध, निर्दोष, बल, पात्राहारादि देवे, यह इव्योपचार करे, अरु जावोपचार सो गुरुका परदेशमें सदा स्मरण करे, इत्यादि.

८ अथ नगर निवासी जनोंका उचित कहते है. जिस नगरमें रहे, उस नरके निवासी जनोके साथ उचित इसी प्रकारसें करनां कि—अपणे रीखी जीन व्यापारीयोकी वृत्ति होवे, उनके साथ जो एकचित्तसें सुख, दुःख, व्यसन, कष्ट, राजउपडवादिमें बराबर रहे, उनके उत्साहमें उत्साहवान होवे, राजदरबारमें किसीकी चुगली न करे, तथा नगरनिवासीयोसें फटे नहीं, सर्वसें मिल कर राजका दुकुम करे, क्योंकि जब निर्वल पुरुष बहुते एकित्ते होके कार्य करे, तब तृणरज्जुवत् बलवान् हो जाते हैं, जब विवाद हो जावे, तब निःपट्ट होके कार्य करे, किसीसे लंचा ले के कुतूहल काम न करे, तथा किसीसें थोडीसी लडाइ हो जावे, तो उसका राजमें पुकार न करे, तथा राजाके कारजारीयोसें लेने देनेका व्यापार न करे, क्योंकि उनलोकोको नाणां देनेके अवसरमें क्रोध आ जाता है, तब वो कोइ और अनर्थ कर देते है, तथा समानवृत्ति नागरोकी तरें असमान वृत्ति वाले नगरनिवासीयोके साथजी यथायोग्य उचितचरण करे ॥ ९ ॥

९ अथ परतीर्थी परमत वालोके साथ उचितचरण लिखते हैं. जो परमतवाला निह्काके वास्ते उसके घरमें आवे, वो सर्वका उचित करे, तथा राजाका माननीयका विशेष उचित करे, उचित कृत्य सो यथायोग्य दान देना चाहे, जे कर उन साधुयोकी मनमें नक्ति नहीनी होवे, तोनी घरमें मांगने आयेको देना चाहिये, क्योंकि—दान देनां यह गृहस्थका धर्मही है, तथा महंत कोइ घरमें आ जावे, तो आसन, दान, सन्मुख जाना, उसके खडा होनां प्रमुख करे, तथा परमतवाला किसी कष्टमें पडा होवे, तदा उसका उद्धार करे, दुःखी जीवोंकी दया करे, पुरुषापेक्षा मधुर आलापादि करे, तथा अन्यमतवालोके कामका पृथनादि करे. जैसे कि आपका आना किस प्रयोजनके वास्ते हुआ है? पीठें जो कार्य वो कहे, सो कार्य जे कर उचित होवे, तो पूरा कर देवे, तथा दुःखी, अनाथ, अंधा, वधोर, रोगी प्रमुख दीन लोकोकी दीनताको यथाशक्तिसें प्रतिकार करे, जो श्रावकादि पूर्वोक्त लौकिक उचितचरणमें कुशल नहीं होवे, तो वो जिनमतमेंनी क्यां

कर कुशल होवेंगे? तिस वास्ते अवश्य धर्मार्थीयोने उचिताचरणमें नि  
 ण होना चाहिये ॥ इति नवविध उचिताचरणं समाप्त ॥

अब अवसरमें उचित बोलनां, यही बड़ा गुणकारी है, तथा औरनी  
 ली कुशोभाकारी होवे, सो ल्यागे ॥ उक्तं च विवेकविलासादौ ॥ जंजाइ, ठीक,  
 मकार, तथा हसनां, यह सब मुख ढांरुके करे, तथा सजाके बीच नाकमें  
 अंगुली मालके मैल न काढे, हाथ मोडे नही, पर्यस्तिका न करे, पग न प  
 सारे, निज्ञा विकथा न करे, सनामें कोइ बुरी चेष्टा न करे, जो कुजीन  
 पुरुष है, सो अवसरमें हसे, तो होठ फरकने मात्र हसे, परंतु मुख फा  
 ढके न हसे, अपणा अंग बजावे नहिं, तृण तोडे नहि, व्यर्थ चूमिमें लि  
 खे नहि, नखों करकें दांत घसे नहिं, दांतों करी नख न तोडे, अनिमान  
 न करे, जाट चारणकी करी हुइ प्रशंसा सुनके गर्व न करे, अपणे गु  
 णोंका निश्चय करे, बातकों ममऊके बोले, नीच जन जो अपनेकों हीन  
 वचन कहे, तो उसकों बदलेका हीन वचन न बोले, जिस वस्तुका निश्चय  
 न होवे, सो बात प्रगट न कहे, जो कोइ पुरुष कार्य करे, अरु उस  
 कार्य कारणमें वो समर्थ न होवे, तिसकों पहिलां वज्र देवे, कहे कि यह  
 काम तुम न करो, तथा किसीका बुरा न बोले, जेकर वैरीका बुरा बोले, तो  
 उसका अटकाव नहिं, परंतु सोनी अन्याक्ति करकें बोले, तथा माता,  
 पिता, रोगी, आचार्य, पराहुणा, अन्यांगत, जाइ, तपस्वी, वृद्ध, बाल,  
 स्त्री, वैद्य, पुत्र, गोत्री, पामर, बहिन, बहिनोइ, मित्र, इन सर्वके साथ  
 वचनकी लडाइ न करे, सदा सूर्यकों न देखे, तथा चंद्र सूर्यके ग्रहणकों  
 न देखे, ऊंके (गहिरे) कूवेकों ऊककें न देखे, संध्या समय आकाश न  
 देखे, तथा मैथुन करतेकों, शिकार मारतेकों, नंगी स्त्रीकों, यौवनवंती  
 स्त्रीकों, पशुकीडाकों, कन्याकी योनिकों, इतनेकों देखे नहीं. तथा तेलमें,  
 बलमें, शस्त्रमें, मूतमें, रुधिरमें, इतनी वस्तुओंमें अपणा मुख न देखे,  
 क्योंकि इस कामसे आयु टूट जाती है, तथा अंगीकार करेकों ल्यागे  
 नहिं, नष्ट हो गइ वस्तुका शाक न करे, किसीका निज्ञाछेद न करे, बहु  
 गोसे वैर न करे, जो बहुतोंकों सम्मत होवे, सो बोले, जिस काममें रस  
 न होवे, सो न करे, कदापि करनां पडे, तोनी बहुतोसे मिलकें करे, तथा  
 धर्म, पुण्य, दया, दानादि शुभ काममें बुद्धिमान् मुख्य होवे, अग्नेश्वरी

बने, तथा क्रिस्तीके घूरे करनेमें जलदी अग्नेश्वरी न बने, तथा सुपात्र त धुमें कदापि मत्सर ईर्ष्या न करे, तथा अपने जातिवालेके कष्टकी पेक्षा न करे, पंच एकिते मित्र कर आदरसें उनकी कष्ट दूर करे, तथा माननीयका मानचंश न करे, तथा दरिद्रपीडित, मित्र, सार्धार्थिक, न्यातिमें बुद्धिवाला होवे, तथा गुणों करके बड़ा होवे, वहिन संतान रहित होवे, इन सर्वकी पालना करे, अपने कुत्रमें जो काम करने योग्य न होवे, तो न करे, इत्यादि. तथा नीतिशास्त्रोक्त तथा और शास्त्रोंमें जो उचितारण होवे, सो करे, अरु अनुचित होवे, सो वर्जे, मय्यान्हमे पूर्वोक्त विधिमें विशेष करके प्रधान शाल्योदनादि निष्पन्न निःशेष रसवती होवे, दूसरी वार जिनपूजा, जो मध्यान्हकी पूजा, अरु नोजन, इन दोनोका कालनियम नहीं, क्योंकि जब नूख लगे, सोइ नोजनकाल है, इन वास्ते मध्यान्हमें पहिलांनी प्रत्याख्यान पारके देव पूजापूर्वक नोजन करे, तो दोष नहीं. वैदकग्रथोंमेंनी लिखा है, कि:- एक प्रहरमें दो वार नोजन न करे, तथा दो प्रहर उलंघे नहीं, क्योंकि एक प्रहरमें दो वार खानेसें रसोत्पत्ति होती है, अरु जेकर दो प्रहर पीठे न खावे, तो बलह्य होता है.

अब सुपात्रदानादिककी युक्ति लिखते हैं. सो जैसे है कि:- नोजन वेलामें नक्ति सहित साधुओंको निमंत्रणा करके, साधुके साथ घरमें आवे, अथवा साधु स्वयमेव आता होवे तब सन्मुख जाके आदर करे. विनयसहित संविज्ञावित अनावित क्षेत्र देखे, तथा सुनिद्रा ज्ञानरू दिक काल देखे, तथा सुलज्ज उर्लजादि देने योग्य वस्तु देखे, तथा आचार्य, उपाध्याय, गीतार्थ, तपस्वी, बाल, वृद्ध, ग्लान, सह अतहादि अपने करके महत्त्व, स्पर्धा, मत्सर, स्नेह, लज्जा, जय, दाक्षिण्य, परानुयायि पणा, प्रत्युपकार, इष्टा, माया, विलंब, अनादर, घूरा बोलना, पश्चात्तापकी ये सर्व दानके दूषण वर्जके आत्माको सत्कारसें तारनेके वास्ते ऐसी बुद्धिसें बेंतालोश दूषण रहित जो कुछ घरमें अन्न, पकान्न, पाणी, वस्त्रादि होवे, तिसकी अनुक्रमसें सर्व निमंत्रणा करे, अपने हाथमें पात्र लेके पास रही नार्यादिकसे दान दिलावे, पीठे वंदना करके अपने घरके दरवाजे तक साथ जावे, फेर पीठा आवे, जे कर साधु न होवे, तदा गिनावाइलों मेघकी तरें साधुका आना देखे, जे साधु आ जावे, तो मेरा जन्म स

हो जावे, इस वास्ते दिशावलोकन करे, जो नोजन साधुकों न  
 या होवे, सो नोजन श्रावक न खावे, तथा जो श्रावक लष्ट पुष्ट सा  
 ढुकों बिना कारण अशुद्ध आहार देवे, तो लेने देने वाले दोनोंकों रो  
 षिके दृष्टांत करिकें हितकारी नहिं है. तथा जिस साधुका निर्वाह न  
 होवे. छुर्किहू होवे, साधु रोगी होवे तथा और कोइ कारण होवे, तो  
 उस साधुकों अशुद्ध अप्राशुक्त आहार देवे, तो लेने देने वाले दोनोंकों  
 हितकारी होवे, तथा रस्तेके थकेकों, रोगीकों, शास्त्र पढने वालेकों,  
 मोच करेकों, पारणोके दिनकों, दान देवे, तो बहुत फल होता है, इस सु  
 पात्रदानका नाम अतिथिसंविनाग कहते है ॥ यदागमः ॥ अतिथि संविना  
 गो नाम नायगयाणं ॥ इत्यादि पाठका अर्थ कहते है, अतिथि संविनाग उ  
 ढुकों कहते हैं, कि जो न्यायसैं आया कल्पनीय अन्न, पाणी प्रमुख, देश,  
 ताल, श्रद्धा सत्कार क्रमयुक्त उत्कृष्ट नक्तिसैं आत्माकों अनुग्रह बुद्धिसैं,  
 संयत साधुकों दान देवे, सुपात्र दानसैं देवता संबंधी तथा औदारिकादि  
 सबधी अद्भुत जोग इष्ट सर्व सुखसमृद्धि राज्य प्रमुख मनगमतासंयोगादि  
 प्राप्ति, और निर्विलंब, निर्विघ्न, मोक्षफलप्राप्ति है, क्योंकि अन्नदान, अरु  
 सुपात्र दान, तो मोक्ष देते है, और अनुकंपादान, उचितदान, अरु कीर्त्ति  
 दान, यह तीनों सांसारिक सुखजोगोंके देने वाले हैं

पात्रती तीन तरेका कहा है. एक उत्तम पात्र साधु है, दूसरा मध्य  
 मपात्र श्रावक है, तीसरा अविरतिसम्यग्दृष्टि, सो जयन्यपात्र है. तथा  
 अनादर, कालविलंब, विमुख, खोटा वचन बोलनां, अरु दान देके पश्चा  
 ताप करणां, ये पांच सत्दानके कलंक है. तथा आनदके आशु आवे, रो  
 माच होवे, बहुमान देवे, मीठा बोले, दान दीये पीठें अनुमोदना करे,  
 यह पांच सुपात्र दानके नूपण है, सुपात्रदानका परिग्रह परिमाण कर  
 नेका फल, रत्नसार कुमारकी तरे होता है, यह कथा श्राद्धविधि ग्रंथसैं  
 जान लेनी. इस वास्ते ऐसे साधु आदि संयोगके मिलेसैं सुपात्रदान, दिन  
 प्रतिदिन विवेकवान् अवश्य करे. /

तथा यथाशक्ति नोजनावसरमे आये साधुमीयोंकों अपने साथ नोजन  
 करावे, क्योंकि बोजी पात्र है, तथा अधे आदि मागनेवालोंकी यथा  
 योग्य देवे, परंतु किसी मागनेवालेको निराश न जाने देवे, धर्मकी निंदा

न करावे, कठिन हृदयवाला न होवे, जोजनके अवसरमें दयावंतक। पाठ लगाने न चाहियें, उसमें जो धनवान् तो विशेष करके कपाट गावेही नहि ॥ आगमेऽप्युक्तं ॥ नेव दार पिहावेई, जुंजमाणो सुतावउ ॥ ४ ॥ पुंका पा जिणदेहिं, सड्डाणं न निवारिया ॥ १ ॥ दिहूण पाणिनिवहं, नीं नव सायरमि डुकत्तं ॥ अविसेस अणुकपं, उहाविसामडउं कुणई ॥ २ ॥ ॥  
 स्यार्थः— जोजन करतां हूया दरवाजा जडे नहिं, क्योंकि अनुकेपादां आवश्यकों जिनेश्वर जगवान्ने मने नहीं करा है, जीवोंका समूहकों जे नक ससारमें दुःखपीडित देखके विशेष रहित इव्य अरु जाव दोनों तसे अनुकपा करे, उसमें इव्यसे तो यथायोग्य अन्नदि देवे, अरु जावसे नकों सन्मार्गमें प्रवर्त्तवे, श्रीपंचमागादिकमें जहां आवश्यकोंका वर्णन करे है, तहां ऐसा पाठ है, “अवगुंविअ डुवारा” इत विशेषण करके जिहुक दिकोंके प्रवेश वास्ते सदा किंवाड उघाडे ररेक, दीनोदार तो सवत्सरी वा देनेसे तीर्थकरोनेजी करा है, कदापि काज डुकाल पड जावे, तव तो अवक जो होवे, सो विशेष करके दीनोदार, दानादिसें करे. क्योंकि आगेन विक्रमादित्यके संवत् १३१५ में जेसर गामके वसने वाला श्रीमाद जाति शाह जगडु आवकने ( ११२ ) एक सौ बारह दानशाला करके दान दीया है, तथा विक्रमादित्यके संवत् १४२९ में सोनी सिंहा आवकने १४००० मण अन्न, दीन जीवोंको डुकालमें दीया है, तथा निर्दूषण आहार देवे, तो सुपात्र दान शुद्ध है.

तथा माता, पिता, नाइ, बहिन, पुत्र, बहू, सेवक, ग्लान, अरु बांधे हूये गौ प्रमुख इन सर्वकी चिंता करके अर्थात् इन सर्वको जोजन कराके पीठे पच परमेष्टि स्मरण करके, प्रत्याख्यान पारके, सर्व नियम स्मरण करके, साम्यतासे जोजन करे. साम्यता ऐसे जाननी कि जो अन्न, पाणी, आपसमें विरुद्ध न होवे, तथा उजटा न परिणमे, आपणे स्वजावके मा फक होवे, तिसको साम्य कहते ह. जो पुरुष संपूर्ण जन्म तक साम्यतासे जोजन करे, वो कदी विपत्ती खावे, तोजी अमृत हो जावे, अरु साम्यतासे अमृत खायानी विष हो जाता है, परंतु इतना विशेष दे कि.— साम्यतामेजी पथ्यही खाना चाहियें, नतु अपथ्य. तथा खानेका अत्यंत शुद्ध न होना चाहियें, कउ नाडिसें जन्न देव उतर जाता है, तब

वर्ष नोजन बराबर हो जाता है, इस वास्ते एक कृणमात्रका स्वादके वास्ते अति लोढ्यता न करनी चाहियें, तथा अनक्षय अनंतकाय, बहु सावद्य वस्तु, अर्थात् बहुत पापवाली वस्तु न खावे, तथा जो थोडा खाता है, सो बहुत बलादिवान् होता है, तथा जो बहुत खाता है, सो अल्प खानेके फलवाला होता है, तथा अधिक खानेसें अजीर्ण वमन विरेचनादि मरणांत कष्टनी हो जाता है ॥ श्लोक ॥ हितमितविपक्वन्नोजी, वा मशयी नित्यचंक्रमणशीलः ॥ उक्षितमूत्रपुरीषः, स्त्रीषु जितात्मा जयति रोगान् ॥ १ ॥ अर्थः—जो नूख लगे तो हितकारी ऐसा अन्न थोडा जीमे, वामा पासा हेठ करके सोवे, नित्य चलनेका स्वभावशील होवे, जब बाधा होवे, तबही दिसामात्रा करे, स्त्रीसें नोग न करे, वो पुरुष रोगोंको जीत लेता है.

अथ नोजनविधि, व्यवहार शास्त्रादिकोंके अनुसार लिखते हैं. अतिप्रजातमें, अतिसंध्यामें, तथा रात्रिमें नोजन न करना चाहिये, तथा सडा, वास्या, अन्न न खावे, चलता दूआ न खावे, तथा जीमणा ( दाहिण ) पग ऊपर हाथ रखके न खावे, हाथ उपर रखके न खावे, खुल्ले आकाशमें न खावे, धूपमें बैठके न खावे, अंधारेमें वृद्धके तले न खावे, तर्जनी अंगुली उंची करके कदापि न खावे, मुख, हाथ, पग, अरु वस्त्र, विना धोयां न खावे, नंगा हो कर मैले वस्त्रोंसें, दाहिणे हाथसें, आलकों विना पकडे, न खावे. धोती आदिक एक वस्त्र पहिरके न खावे, नीजे वस्त्र पहिरके न खावे, नीजे वस्त्रसें मस्तक लपेटके न खावे, यदा अपवित्र होवे, तदा न खावे, अति गृह रस लंपट हो कर न खावे, तथा जूते सहित, व्यग्रचित्त, नि.केवल जमि उपर बैठके, अरु मंजे उपर बैठके न खावे. विदिशिकी तर्फ तथा दक्षिणकी तर्फ मुख करके न खावे, पतले आसनपै बैठके नोजन न करे, तथा आसन उपर पग रखके नोजन न करे, चमालके देखते न खावे, जो धर्मसे पतित होवे, उसके देखते न खावे, तथा फूटे पात्रमे अरु मज्जीन पात्रमें न खावे. जो शाकादिक वस्तु विष्टासें उत्पन्न होवे, सो न खावे, आजहत्यादि जिसने करी होवे इनने तथा रजस्वला स्त्रीने जो वस्तु स्पर्शी होवे, तथा जो वस्तुको गाय, श्वान, पंखीने सूंघी होवे, तथा जो वस्तु अजाणी होवे, तथा जो वस्तु फेरके उष्ण करी होवे, सो न खावे,

तथा वचवचाट शब्द करके न खावे, तथा मुख फाटे तो घुरा लगे अथवा मुख करके न खावे, तथा जोजनके अवसरमें दूसरोंको बुलाके प्रीति न जावे, अपने देवगुरुका नामस्मरण करके समासन उपर बैठके, जो अपनी माता, बहिन, ताइ, (पितासें बडे जाइकी औरत) चाणजी. श्री प्रमुखने राव्या होवे, सो पवित्र पणे जोजन परोसा दूथा उसको, मौन करके दाहिना स्वर चलते खावे. जो जो वस्तु खावे, सो नासिकासें सूंधके खावे, इसमें दृष्टिदोष नष्ट हो जाता है, तथा अति खारा, अति खट्टा, अति उष्ण, अति शीतल. अति शाक, अति मीठा, ये सर्व न खावे, मुखके स्वाद मात्र खावे, क्योंकि अति उष्ण खावे, तो रस हण्णा जाता है, अति खट्टा खावे, तो इंद्रियोंकी शक्ति कम हो जाती है, अति लवण खावे, तो नेत्र बिगड जाते है, अति स्निग्ध खावे, तो नासिका विषय रहित हो जाती है, तथा तीक्ष्णइव्य अरु कौडा इव्य खावे, तो कफ दूर हो जाता है, तथा कपायेला अरु मीठा खावे, तो पित्त नष्ट हो जाता है, स्निग्ध घृतादिक खावेसें वायु दूर हो जाता है, बाकी शेष रोग जो हैं, सो न खानेसें दूर हो जाते हैं

जो पुरुष शाक न खावे, अरु घृतसें रोटी खावे, तथा जो दूधसें चावल खावे, तथा बहुत पाणी न पीवे, अजीर्ण होवे, तदा खावे नहिं, सो पुरुष, रोगीको जीत लेता है, जोजन करती बखत पहिलां मीठा अरु स्निग्ध जो जन करे, बीचमें तीक्ष्ण जोजन करे, पीठें कौडी वस्तु खावे ॥ उक्तं च ॥ सुविग्धमधुरैः पूर्व, मशनीयादन्वित रसैः ॥ इव्याम्लजवणैर्मध्ये, पर्यते कटुतिककः ॥

तथा जो पहिलां इव अर्थात् नरम वस्तु खावे, मध्यमें कटुथा रस खावे, अंतमें फेर नरम रस खावे, सो बलवत अरु नीरोगी रहे, तथा पाणीको जोजनसे पहिलां पीवे, तो मंदाग्रिका जनक है, तथा जोजनके विचमे पीवे, तो रसायन समान गुणकारी है, तथा जोजनके अंतमें पीवे, तो विष समान है, जोजनके अनंतर सर्वरससें लिप्त हुये हाथसे एक चबु रोज पीवे; पशुको तरे पाणी न पीवे, पीया पीठें जो पाणी रहे सो गे देवे, अंजलिसे पाणी न पीवे. पाणी थोडा पीणा पच्य है. पाणीसें नीजे हुये हाथोंको गला, तथा कपोल, हाथ, नेत्र, इतने स्थानोंमें न लगावे, न पूजे, गोमे (जानु) का स्पर्श करे, तथा अंगमर्दन, दिता जानां, नार उगानां, वचनां, स्नान

करतां, ये सर्वे नोजन कीया पीठें न करे, तथा कितनेक काल तांइ बुद्धिमा  
न पुरुष नोजन करकें बैठ जावे, तो पेट बडा हो जाता है, तथा उपरि  
कों मुख करकें चित्त हो कर सोवे, तो बल वधे, वामे पासें सोवे, तो  
श्रायु वधे, नोजन करकें दौडे, तो मरण होवे, नोजन कीयां पीठें वामे  
पासें दो घडी तांई सोवे, परंतु निद्रा न लेवे, अथवा सोवे नही तो सौ प  
ग (सौ मिंग) चले, (फिरे) अन्यत्रनी कहा है कि देवकों, साधुकों, नगरका  
स्वामी राजाकों तथा स्वजनोंकों, जब कष्ट होवे, तब तथा चंद्रसूर्यके ग्र  
हणमें जे कर शक्ति होवे, तो विवेकवान् पुरुष नोजन न करे. ऐसेही  
"अजीर्ण प्रनवारोगा" इस वास्ते अजीर्णमेंनी नोजन न करे.

ज्वरकी आदिमें लंघन करना श्रेष्ठ है, परंतु वायुज्वर, श्रमज्वर, क्रोध  
ज्वर, शोकज्वर, कामज्वर, घावकीज्वर, इतने ज्वरकों वर्जकें शेष ज्वर त  
था नेत्ररोगके हूये लंघन करे.

तथा देव गुरुके वंदनादिके अयोगसें, तथा तीर्थ अरु गुरुकों नमस्कार  
करण जाते वखत, तथा विशेष धर्मांगीकार करता, बडा पुण्य कार्य प्रा  
प्त करतां, अरु अष्टमी, चतुर्दशी आदि विशेष पर्वके दिन, नोजन न कर  
ना चाहियें. तपका जो करणां है, सो इस लोक अरु परलोकमें बहुत गु  
णकारी है, तथा नोजन करा पीठें नमस्कार स्मरण करके उठे, चैत्यवंद  
ना करकें देव गुरुकों यथायोग्य वंदना करे, तथा नोजनके पीठें गंतिस  
हित दिवसचरिमं प्रत्याख्यान विधिसें करे, पीठें गीतार्थ साधु, गीतार्थ श्रा  
वक, तथा सिद्धपुत्रादिकोंके समीपे स्वाध्याय (पठन पाठन) यथायोग्य  
करे, योगशास्त्रमें लिखा है, कि जो गुरुमुखसें पढा होवे, सो औरोंकों  
पढावे, स्वाध्याय करे, पीठें संध्यामें जिनपूजा करे, पीठें पढिक्रमणा करे,  
पीठें स्वाध्याय करे, पीठें वैद्यावृत्य अर्थात् मुनिकी पगचपी करे, पीठें घर  
जा कर सकल परिवारकों जोडकें धर्मका स्वरूप कथन करे, उत्सर्गमागें  
तो श्रावककों एक वारही नोजन करना चाहियें ॥ यदज्ञाणि ॥ उत्सर्गेषां  
तु सद्गोय, सचिन्ताहार वक्लुत् ॥ इक्कासणग नोश्च, वंनवारि तहेव ध  
॥ १ ॥ जेकर एक लुक न करने सामर्थ्य होवे, तदा दिनका अष्टमा नाग  
अर्थात् चार घडी दिन जब रहे, तब नोजन कर लेवे, (जीम लेवे) दो घडी  
दिन रहनेसें पहिलांही नोजन कर लेवे, पीठें यथाशक्ति चार आहार, तीन



आहार, दो आहारका त्यागरूप दिवसचरिम सूर्य उगते तांइ करे, तो मुख  
वृत्तसे तो दिन होतेही करना चाहिये, परंतु अषवाढमें रातकोंजी को

इतिश्रीतपगह्वीयगणेश्रीमणिविजय तद्विष्य मुनिश्रीबुधिविजय तद्वि  
ष्य मुनि आत्माराम आनंदविजयविरचिते जैनतत्त्वादर्शे आशुविधिशा  
स्त्रानुसारेण श्रावक दिनकृत्यप्रकाशक नामा नवम परिच्छेदः सपूर्णः ॥ ए

### ॥ अथ दशम परिच्छेद प्रारंभः ॥

इस परिच्छेदमें श्रावकोंका एक रात्रिकृत्य, दूसरा पर्वकृत्य, तीसरा  
चौमासिककृत्य, चौथा संवत्तरीकृत्य, अरु पाचमा जन्मकृत्य, यह पांच  
कृत्य अनुक्रमसें लिखेंगे. तिसमें प्रथम रात्रिकृत्य लिखते हैं.

साधुके पास तथा पौपधशालादिमें यत्नपूर्वक प्रमार्जना पूर्वक सामा  
यिक करके प्रतिक्रमण करे, पीठें साधुओंकी पगचपी करे, यद्यपि साधुने  
श्रावकके पासों उत्सर्गमार्गमें विश्रामणादि नही करावणी, तोनी श्रावक  
विश्रामणा करणेके जाव करे, तो महाफल है. पीठें आशुदिनकृत्य,  
श्रावकविधि, उपदेशमाला अरु कर्मग्रंथादि शास्त्रोंकी स्वाध्याय करे, पीठें  
सामायिक पारके घरमें जावे.

पीठें सम्यक्त्वमूल वारह व्रतमें, सर्वशक्तिसें यत्न करणादिरूप तथा सर्व  
था अर्हत् चैत्य, अरु सार्वभौमिक वर्जित वासस्थानमें अनिवासरूप तथा पूजा  
प्रत्याख्यानादि अतिग्रहरूप, यथाशक्ति सप्त क्षेत्रमें धन खरचनरूप एता  
यथायोग्य सकल परिवारकों धर्मोपदेश कथन करे, जेकर श्रावक अपने  
परिवारकों धर्म न कहे, तब उन परिवारकों धर्मकी प्राप्ति न होवेगी. तो इस  
लोक परलोकमें जो वे पापकर्म करेगे, सो सर्व उस श्रावकको लगेगे, क्योंकि  
लोकमें यह व्यवहार है कि— जो चोरकों खाने पीनेकों देवे, सोनी चोर  
गिना जाता है जैसे धर्ममेनी जान लेनां, इस वास्ते श्रावकने इच्छ्य तथा  
जावसें अपने कुटुंबको शिक्षा देनी चाहिये, उसमें इच्छ्यसें तो पुत्र, कजत्र,  
वेटी प्रमुखकों यथायोग्य वस्त्रादि देवे, अरु जावसें तिनकों धर्मका उपदेश  
करे, तथा दुःखीये सुखीयेकी चिंता करे ॥ अन्वत्राप्युक्तं ॥ राज्ञि राष्ट्रकृतं पापं  
राज्ञः पापं पुरोहिते ॥ नर्त्तरि स्त्रीकृतं पापं, शिष्यपापं गुरावपि ॥ १ ॥ धर्म  
देशना दीये पीठें, रात्रिका प्रथम प्रहर वीट्या पीठें, शरीरकों हितकारी

शामें विप्रिसैं निडा अल्पमात्र करे, गृहस्थ वाहुल्यता करकें मैथुनसैं व  
 जत होवे,जे कर गृहस्थ जावजीव तक ब्रह्मव्रत पालने समर्थ न होवे,तदा  
 वि तिथिके दिन तो अवश्य ब्रह्मचर्यव्रत पालना चाहिये

नाद लेनेकी विधि नीतिशास्त्रके अनुसारें यह है:- जिस मांचेमें जीव  
 ढे होवे, जो खाट ढोटी होवे, नांगी दुइ होवे, मैली होवे, दूसरे पाये संयु  
 ५ होवे, तथा अग्निके बले काष्ठकी खाट होवे, सो त्यागे, खाटमें तथा  
 प्रासनमें चार जातकी लकड़ी लगे,तब तांइ तो शुन है,परंतु पांचादि काष्ठ  
 गो, तो अशुन है, तथा पूजनिक वस्तुके उपर न सोवे, तथा पाणीतें  
 ग नीजे न सोवे, तथा उत्तर दिशि अरु पश्चिमदिशि तर्फ शिर करके न  
 सोवे, बासकी तरें न सोवे, पगोंके ठिकाणे न सोवे, हाथीके दांतकी तरें  
 सोवे, देवताके मंदिरके मूलगंगारेंमें. सर्पकी बंबी उपर, वृद्धके हेठ,  
 या इमशानमें सोवे नही, किलीके साथ लडाइ दुइ होवे, तदा मिटाके  
 सोवे, सोने वखत पाणी पास रस्के, तथा दरवाजा जडके, इष्टदेवकों नम  
 स्कार करके वडी शय्यामें अह्नी तरें उठनेके वत्स समाकरकें, सर्वाहार त्या  
 गकें, वामा पासा नीचें करकें सोवे.

दिनकों सोवे नहीं. परंतु क्रोध, शोक, अरु मद्यके मिटाने वास्ते  
 तथा स्त्रीकर्म, अरु नारके थकेवेकें मिटाने वास्ते तथा रस्तेके खेदके मि  
 टाने वास्ते तथा अतिसार, श्वास, हिजकी प्रमुख रोग दूर करने वास्ते  
 सोवे, तथा जो बाल होवे, वृद्ध होवे, बलहीण होवे, सो सोवे, तथा  
 वृषा, शूल, गड, गूंमडकी वेदना करकें विव्दल होवे, सो सोवे, तथा जि  
 सकां अजीर्ण दुवा होवे, वायु दुवा होवे, जिसको खुसकी दुइ होवे,  
 तथा जिसको रात्रिमें निडा थोडा आती होवे, वो दिनमेंनी सो जावे.  
 तथा ज्येष्ठ अरु आषाढ महीनेमे दिनमेंनी सोनां अथा है, और म  
 हीनोमें सोवे, तो कफ अरु पित्त करता है, तथा बहूत नाद लेनी बहुत  
 काल लग सूता रहनां, अथा नही, तथा रातकों सोवे तदा दिशाचकाशिक  
 व्रत उच्चारकें सोवे तथा चार सरणां लेवे, सर्व जीवराशिसे खामणां करे,  
 अन्धकारह पाप स्थानक व्युत्सर्जन करे, दुष्कृतकी निदा करे, सुकृतानुमादन  
 करे, तथा ॥ जइ मे दुक्क पमाउ, इमस्त देहस्त इमाइ खणीये ॥ आहा  
 रमुचहि देहं, सवं तिविहेण वोसरिय ॥ १ ॥ नमस्कार पूर्वक इत गा

थाकों तीन वार पढे. साकार अनसन करे, पंच नमस्कार स्मरण सोनेके  
 थवसरमें पढे, स्त्रीसँ दूर अलग शय्यामें सोवे, जेकर निकट सोवे, तब  
 क तो विकार अधिक जागता है, तथा दूसरा जिस वासना युक्त पुरुष सोवे  
 सो जितना चिर जागे नहीं. उतना चिर उँही वासना उस पुरुषको रहती है.  
 इस वास्ते स्त्रीसँ अलग दूसरी शय्यामें सोवे, तथा पागल (दीवाना) हो जावे,  
 तथा मरणावसरमें गफलत हो जावे, तोनी तिसके जो सचिच अथवा  
 वासनाथी, उँही वासना है, ऐसँ जाननां ॥ इत्याप्तोपदेशः ॥ इस वास्ते सर्वथा  
 उपशांतमोह हो करके, धर्म वैराग्यादि जावना करके, वासित हो करके निष्ठा  
 करे, तो खोटा स्वप्न न होवे, जिस रीतिसँ अंबा धर्ममय स्वप्न देखे. इसी  
 रीतिसँ सोवे, जे कर कदाचित् उसका आयु समाप्तिनी हो जावे, तोनी  
 वो अंबी गतिमें जावे.

तथा सूता पीठें रात्रिमें जब जाग जावे, तदा अनादि कालका अन्याय  
 रससे कदाचित् काम पीडा करे, तब स्त्रीके शरीरका अशुचिपणा वि  
 चारे, अरु श्रीजवूस्वामी तथा यूनिनडादि महा ऋषियोंका तथा सुग्री  
 नादि महा श्रावकोंकी कुण्ठित शील पालनेमें दृढता विचारे, तथा कया  
 यादि दोषके जीतनेका उपाय जो अवस्थिति अत्यंत दुःखदाता है, धर्म  
 मनोरथ इनकी चितवणा करे, तिनमें स्त्रीके शरीरको अपवित्रता, जुगुप्त  
 नीयादि सर्व विचारे, जैसे श्रीहेमचन्द्रसूरिजीने योगशास्त्रमें लिखा है, तथा  
 पूज्यश्री मुनिचंद्र सूरिजीने अथ्यात्मकल्पजुममें लिखा है, तैसँ विचारे,  
 सो लेशमात्र इहा लिखते है.

चाम, हाड, मक्का, आंवरा, चरबी, नसा, रुधिर, मांस, विषा, मूत्र, खे  
 ल, खंकारादि अशुचि पुज्जका, पिंम स्त्रीका शरीर है. इस पिंममें तुं प्पा  
 रमणिक वस्तु देखता है? जो विष्टेको दूरसँ देख कर लोक यूथकार करते  
 है, वेही मूढ लोक विष्टे अरु मूत्रसे पूर्ण, ऐसँ स्त्रीके शरीरकी अजिजाया  
 करते है? विष्टेकी कोथली बहुत ठिड्ठवाली जिसके ठिड्ठारा रुमीजा  
 ल निकलते है, अरु रुमीजासँ चरी है. ऐसी स्त्री है, तथा चपजता  
 माया, जूब, उगी, इनो करके सस्कारी हुइ है, नातें जो पुरुष मोहसँ इस  
 का संग करे, जोगविलास करे. तिसको नरकके तांड है, ऐसी स्त्री विष्टे  
 की कोथली जिसके श्यारों ढारोंसँ अशुचि फरती है, जिस ढारको श्यो,

जतीमें महा सडे हूये कुत्तेके कलेवर समान दुर्गंध आती है, तो फेर कामीजन क्यों कर उन स्त्रीके शरीरमें रागांध होते है? इत्यादि स्त्रीके शरीरकी अशुचि विचारे, वो पुरुषकों धन्य है, वो पुरुष जंबुकुमार, जिसने न बपरिणीत आठ पद्मिनी स्त्री, अरु नितानवे क्रोड सौनइये तिनकमे त्याग दीया, तिसका माहात्म्य विचारे, तथा श्रीयूजिनइ अरु सुदर्शन शैतके शीतका माहात्म्य विचारे.

कपाय जीतनेका उपाय इस तरें करे:—क्रोधकों ह्रमा करकें जीते, मानकों नरमाइसैं जीते, मायाकों सरजताइसैं जीते, लौनकों संतोपसैं जीते, रागकों वैराग्यसैं जीते, द्वेषकों मित्रतासैं जीते, मोहकों विवेकसैं जीते, कामकों स्त्रीके शरीरकी अशुचि जावनासैं जीते, मत्सरकों परकी संपदा देखके पीडा न करनेसैं जीते, विषयकों संयमसैं जीते, अशुच मन, वचन, अरु काया इन तीनोंकों तीन गुप्तिसैं जीते, आलसकों उद्यमसैं जीते, अवि रतिपणाकों विरतिपणासैं जीते, इस प्रकार करकें यह सब, सुखसैं जीते जाते है, आर्गेजी बहुत महात्माउने इनकों इसी तरें जीता है.

नवस्थिति महाडुःखरूप है, क्योंकि चारों गतिमें जीव नाना प्रकारके डुःख पा रहे हैं, तिनमें नरकगतिमें तो सातों नरकोंमे क्षेत्रवेदना है, तथा पांच नरकोंमें परस्पर शस्त्रों करकें उदीरी वेदना है, तथा तीन नरकमें परमार्थिक देवताकृत वेदना है, आख मीचके उघाड़े, इतना कालजी नरकवा सी जीवोंकों सुख नहीं है. निःकवेल डुःखही पूर्व जन्मका करा हुआ पापोंसे उदय हुआ है. रात, अरु दिन. एक सरीखे डुःखमें जाते हैं, जितना नरकगतिमें जीव डुःखकों पावे है, उससैं अनंतगुणा डुःख निगोटमें जीव पावे है; तथा तिर्थचगतिमें अंकुश, पराणा. लाठी, सोटा, शृंगमोडन, गजमोडन, तोडन, ठेदन, जेदन, दहन, अंकन, परवशादि, अनेक डुःख पावे है. तथा मनुष्य गतिमें गर्भ, जन्म, जरा, मरण, नानाप्रकारकी पीडा, रोग, व्याधि, दरिद्रता, माता, पिता, स्त्री, पुत्रका मरणादि अनेक डुःख पावता है, तथा देवगतिमें चवनका डुःख, दासपणका डुःख, पराजय, इत्यादि अनेक डुःख है, इत्यादि नवस्थिति विचारे.

तथा धर्ममनोरथ जावना. सो श्रावकके घरमें जो ज्ञान, दर्शन, व्रत सहित मैं दासजी हो जाकं, तोनी अज्ञा है, परंतु मिथ्यादृष्टिमें चक्रवर्ती राजाजी

न होवं ? तथा क्व मै संविद्ध सो संवेगी वैराग्यवंत गीतार्थे गुरुके च  
स्वजनादि संग रहित प्रब्रज्या ग्रहण करुंगा ? तथा क्व मै तिर्यक्के वि  
चके नयसें निःप्रकंप हो कर श्मशानादिमें विधिपूर्वक कार्यात्सर्ग करुंगा  
तथा क्व मै तपसें रुश शरीर हो के उत्तम पुरुषोंके मार्गमें चलुंगा ? इत्य  
दिक जावनासें कामके कटककों जीते ॥ इति श्राद्धविधि ग्रंथानुसार रात्रिकृत्या

अथ श्रावकका पर्वकृत्य लिखते है. पर्व जो अष्टमी, चतुर्दशी आदिक दि  
वस, तिसमे धर्मकी पुष्टि करे तिसका नाम पौषध है, सो पौषधक जे  
व्रतवाले श्रावककों पर्वके दिनमें अवश्य करना चाहिये, जे कर पर्वके दि  
न शरीरमें शाता न होवे तदा पौषध न कर सके, तो दो वार प्रतिक्रमण  
करे, तथा बहुत वार सामायिक अरु दिशावकाशिक व्रत अंगीकार करे,  
तथा पर्वदिनोंमें ब्रह्मचर्य पाले, आरंज वर्जे, विज्ञेप तप करे, चैत्यपरिवा  
डी करे, सर्वसाधुओंको नमस्कार करे, तथा सुपात्रदान, देवपूजा अरु पु  
रुचक्ति, यह सर्व, और दिनोंसें विज्ञेप करे, धर्मकरणी तो सर्वदिनोंमें कर  
णी अछी है, जे कर सदा न करी जावे, तो पर्वके दिन तो अवश्यमेव कर  
णी चाहिये सो, पर्व ये है अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णमासी. अमावास्या, यह  
एक मासमे ठै पर्व, अरु पक्षमें तीन पर्व, तथा दूज, पंचमी, अष्टमी, एका  
दशी, चतुर्दशी, यह पाच तिथि, तीर्थकरोंनें कहो है. उसमें दूजके दिन  
दो प्रकारका धर्म आराधना करना. पंचमीके दिन ज्ञानकों आराधना, अष्ट  
मीकों अष्टकर्मका नाश करणा, एकादशीमे इग्यारह अंगकों आराधना,  
चतुर्दशीकों चौदह पूर्वकों आराधना, यह पांच तथा पूर्वोक्त अमावास्या  
अरु पूर्णमासी एव षट् पर्व हूये. अरु वर्षमें ठै अछाड पर्व है चौमासी प  
र्वदि पर्वोंमें जेकर सर्वथा आरंज न त्याग सके, तो स्वल्प स्वल्पतर आ  
रंज करे. तथा पर्वके दिन सर्व सचिन्ताहार वर्जे, श्रावकको तो तिल्यदी  
सचिन्ताहार वर्जना चाहिये, जेकर शक्ति न होवे, तदा पर्वके दिन तो अ  
वश्य वर्जे, तथा ऐसे पर्वके दिनोंमें स्नान, शिर दिखाने, गुंथन कराना,  
बस्त्र धोना, बस्त्र रगना, गाढा हलादि चजाना, धान्यका मूढक बंधना, को  
ब्दु, अरहट्ट चलाना, दलना, ठठना, पीपणा, पत्र, पुष्प, फल तोडना,  
सचिन्त खडी हरमन्त्रीका मर्दन कराना, धान्य काढना, लोपना, माटी ख  
दनी तथा घर बनाना, इत्यादि आरंज सर्व यथाशक्तिसे त्यागना चाहिये,

तथा सर्वे सचिन्ताहार न त्याग सके, तो नाम लेके कितनीक वस्तु खानेकी  
रूक रहे, उपरांत त्याग देवे तथा ठेहों अष्टाश्योंमें जिनवर पूजा करना,  
तेप करना. ब्रह्मचर्य पाजना, ठेहों अष्टाश्योंमें चैत्र तथा आसोजकी यह  
जो दो अष्टाश है, सो शाश्वती है, इन दोनोमें वैमानिक देवताजी नंदी  
शरदिमे यात्रोत्सव करते है तथा तीन चौमासेकी तीन अष्टाश अरु चौथी  
पर्यपणकी तथा दो चैत्र अरु आसोजकी, यह सब मिल कर ठे अष्टाश हैं.

तथा तिथि जो प्रजातसमय प्रत्याख्यानकी वेजामे होवे, सो जैनमतमें  
माननी प्रमाण है, सूर्योदय अनुसारे लोकमेनी दिनका व्यवहार होनेसें  
माननी प्रमाण है, तथा च निशीथजाष्ये ॥ चउमासी अ वरीसे, परिक्रिय पंच  
हमीसु नायवा ॥ ताउ तिहिउ जासि, उदेइ सूरु न अन्नाउ ॥ १ ॥ पूआ  
पञ्चक्राणं, पडिक्कमणं तहय नियम गहण च ॥ जीए उदेइ सूरु, तीए ति  
हिए उ कायव्वं ॥ २ ॥ उदयम्मि जा तिहि सा, पमाणमिअरी कीरमाणी  
ए ॥ आणांनंगणवजा, मिञ्च विराहण पावे ॥ ३ ॥ अस्यार्थः— चौ  
मासी, संवत्सरी, पद्दो, पंचमी, अष्टमी, ये तिथियां सूर्योदयमे होवे, त  
ब प्रमाण है, नान्यथा. पूजा, पडिक्कमणा. प्रत्याख्यान, तैसेंही नियम ग्र  
हण करनां सो जिस तिथिमें सूर्योदय होवे, तिसमें करनां चाहिये, जो  
तिथि सूर्योदयमें होवे, सो प्रमाण है, तथा उदय तिथि विना जो कोइ  
अरि तिथि करे, माने, सो आज्ञाका विराधक, अनवस्था कारक, मिथ्या  
दृष्टि है. पाराशरस्मृत्यादिमेनी लिखा है ॥ श्लोक ॥ आदित्योदयवे  
जायां, या स्तोकापि तिथिर्नवेत् ॥ सा संपूर्णैति मंतव्या, प्रसुता नोदयं  
विना ॥ १ ॥ उमास्वातिवाचकप्रथोपश्रैवं श्रूयते ॥ क्ये पूर्वा तिथिः कार्या, वृ  
क्षौ कार्या तथोत्तरा ॥ श्रीवीरज्ञाननिर्वाणं, कार्यं लोकात्रुगैरिह ॥ २ ॥

तथा श्रीअर्हतोंके जन्मादि पंचकल्याणकके दिननी पर्व है, जव दो,  
तीन, कल्याणरु होवे, तव तो विशेष करके पर्व माननां चाहिये, शास्त्रों  
में सुनते हैं, कि श्रीरुष्ण वासुदेव सर्व पर्व आराधनेमे अरणको अंसमर्थ  
जान कर श्रीनेमिनाथ अरिहंतकों पूठता हूआ कि, उल्कृष्ट पर्व कौनसा  
है? तव नगवान् कहते जये कि हे रुष्ण वासुदेव ! मगतिर शुक्ल एकाद  
की, यह पर्व सर्वोत्तम है, क्योकि इस दिन श्रीजनेंशोंके पांच कल्याणिक  
जये है, सर्व क्षेत्रोंके मूढ सो कल्याणिक हूये है, तव श्रीरुष्ण वासुदेवने

मौन पौषधोपवास करके तिस दिनकों माना, तबसेही "यथा राजा तथा प्रजा." यह रीतिसें सब लोक एकादशी मानने लगे, सो आज तांइ प्रति-इति

तथा दूज, पंचमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, इन तिथियोंमें प्रायः जो वोंका परजवायु बंधता है, इस वास्ते इन तिथियोंमें विशेष धर्मकरणी करे, तथा पर्वके महिमाके प्रभावसे अधर्मी निर्दयादिनी धर्मी अरु दयावान् हो जाता है, रूपणनी धन खरच देते हैं, कुशीलनी तुशील हो जाते हैं. वो जयवंत रहो, कि जिसने संवत्सरी, चातुर्मासी आदि अष्ट पर्व कथन करे हैं, क्योंकि जो अनायोंके चलाये पर्व है, तिनमें आग जलाना, जीव मारने, रोना, पीटना, धूल उड़ानी, वृद्धोंके पत्रादि तोड़ने, इत्यादि नाना प्रकारके पाप होते है, अरु जो पर्व, परमेश्वर अरिहंतने कहे हैं, उनमें तो निःकेवल धर्मकृत्यही करना कहा है, इस वास्ते पर्वदिनमें पौषधादि को, पौषधके जेद, अरु विधि, यह सब आशुविध्यादि शास्त्रोंसे जान लेना ॥ इति

अथ चौमासिककृत्य विधि लिखते है, चौमासेमें विशेष करके नियम व्रत परिग्रह परिमाण करना चाहिये, वर्षा (चौमासेमें) बहुत जीव उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते विशेष नियमादि करना चाहिये, वर्षादिमें गाढा च जाना, तथा हल फेरना न करे, तथा राजादन, अर्थात् हिरनी आदि दिमें कीड़े पड जाते है, सो न खाने चाहिये, देशोंका विशेष अपनी बुद्धिसें समज लेना, तथा नियमनी दो तरके है, एक सुनिर्वाह, दूसरा इर्निर्वाह, तिनमें धनवतोंकों व्यापार, अरु अविरतियोंकों सच्चिका त्याग, रसका त्याग, तथा शाकका त्याग करना, अरु सामायिकादि ये अंगीकार करना, यह इर्निर्वाह है. अरु पूजा, दान, महोत्सवादि सुनिर्वाह है, अरु निर्धनोंकों इस्सें विपरीत जान लेना, तथा चित्त एकाग्र करना. यह तो सर्वहीकों इ. फर है, इनमें इर्निर्वाह नियम न हो सके तो सुनिर्वाह नियम अंगीकार करे, तथा चौमासेमें ग्रामांतर न जावे, जे कर निर्वाह न होवे तो जिस गाममें अवश्य जाना है, तिसको वरुके और जगें न जावे. सर्व सच्चिका त्याग करे, निर्वाह न होवे. तो परिमाण करे, तथा वो, तीन बार जिनराजकी अष्टप्रकारी पूजा करे. संपूर्ण देववंदन सर्व जिन मंदिरोंमें जिनविघोंकी पूजा वदना करनी, स्नात्रपूजा महामहोरसव, प्रणवनादि करे, गुरुकों वृहत्वंदना तथा और साधुओंको प्रत्येक वंदना करे.

पूर्वशक्तिस्तवका कायोत्सर्ग करे, अपूर्वज्ञान पढे, गुरुकी वैश्यावृत्त्य करे, ब्र  
 अर्च्य पाले, अचित्त पाणी पीवे, सचित्तका त्याग करे, वासी, विदल, रोटी,  
 पूरी. पापड, बडी, सूका साग, पत्ररूप हरिया साग, खारक, खच्चूर, डाह,  
 खान, गुंठ्यादि, यह सर्व, नीली फूलण, कुंथुआदि जट कीडे पडनेसें खाने  
 योग्य नहीं रहते है, इस वास्ते इनका त्याग करे, कदाचित् औषधादि  
 विशेष कार्यमें लेनी पड़े, तो सम्यग्रीतिसें शोधके लेवे, तथा खाट,  
 स्नान, शिरगुंदानां, दातण, पगरखा, इनका त्याग करे, तथा जूपण, वस्त्र  
 रगनेका निषेध करे, तथा घर, हाट, चीत, स्तंभ, खाट, पाट, पट्टक, पट्टिका,  
 ठाका, अरु घृत तैलादिकका वासण, इंधन धान्यादि सर्व वस्तुमें नीली  
 फूनी हो जाती है. तो इसकी रक्षा वास्ते पहिलाही चूना आदि खार  
 लगा देवे, मैल दूर करे, धूपमें न गेरे, शीतल स्थानमें रख देवे, तथा दि  
 नमें दो तीन वार जल ढाणे, स्नेह, गुड, ठाठ प्रमुखके वासणका मुख  
 यत्नसें ढकके रक्के, तथा उंलामणका अरु स्नानका पाणी, जहां जीव न  
 होवे, तहां पृथक् पृथक् जूमिमें थोडा थोडा गेरे, तथा चूला अरु  
 दीपक प्रमुख उघाडा न ठोडे, तथा खंभनां, पीतनां, रांधनां, वस्त्र जा  
 जन धोने, इत्यादि कामो देख के यत्नसें करे, तथा जिनमंदिर अरु धर्म शा  
 लाको समराके रक्के, तथा यथाशक्ति उपधान तप प्रतिमा मासादि वहै, तथा  
 कराय अरु इंडियकों जाते, तथा योगसुद्धि तप. बीशस्थानक तप, अमृत  
 अष्टमी तप, एकादशांग तप, चौदह पूर्वतप, नमस्कार तप, चौबीश तीर्थरु  
 के कत्याणिक तप, अक्षयनिधि तप, दमयंती तप, जइमहानडादि तप,  
 संतारतारण अष्टाड तप, पक्ष मासादि विशेष तप करे, तथा रात्रिकों  
 अतुर्विध आहार, त्रिविध आहार त्याग करे, पर्वदिनमें विकृति त्यागे, पर्व  
 दिनमें पौषधोपवासादि करे, तथा निरंतर पारणोमे अतिथिसंविनाग करे,  
 चातुर्मासिक अग्निग्रह पूर्वाचार्योंनें इस तरेसें लिखा है, ज्ञानाचारमें, दर्श  
 नाचारमें, चारित्राचारमें, तपश्चाचारमें, तथा वीर्याचारमें इव्यादि अनेक प्र  
 कारका अग्निग्रह करे. सो इस रीतिसें है - ज्ञानाचारमे शक्ति अनुसारे सूत्र  
 पढ़े, सुने. चिते, तथा सुक्क पंचमोंको ज्ञानकी पूजा करे, तथा दर्शनाचारमें  
 काजा काढे. अर्थात् समार्जना करे, देहरेमें लीपे, गुंहली करे, मांमली करे,  
 चैत्यजिनप्रतिमाकी पूजा करे, देववंदना करे, जिनविवाकों निर्मल करे,



तथा चारित्र्यमें जूयांकी यज्ञा करे, वनस्पतिमें कीड़े पड़े खार न देवे, इधनमें, जलमें, अग्निमें, धान्यमें जीव होवे, तिनकी रक्षा करे, किसीको कलंक न देवे, कठिन वचन न बोले, रूखा वचन न बोले, तथा देवकी अरु गुरुकी सोगंद न खावें, किसकी चुगजी न करे, किसीके अघर्षेबाद न बोले, माता पितासें ठाना काम न करे, निधान तथा पडा हूआ धन देवके जैसें शरीर और धर्म न विगडे, तैसें करे, दिनमें ब्रह्मचर्य पाले, रात्रिकों स्वदारासें संतोष करे, तथा धनधान्यादि नव प्रकारके परिग्रहका इच्छा परिमाण व्रत करे, दिशावकाशिक व्रत करे, तथा स्नानका, उबटनेका, विलेपनका, आचरणका, फूजनका, तंबोलका, बरासका, अग्ररका, केशरका, कस्तूरिका, इतनी जोगनेकी वस्तुओंका परिमाण करे. तथा मंजीव, लाल, कुंसुंना, नील, इनसें रंगे वस्त्रोंका परिमाण करे, तथा रत्न, वज्र, नीलमणि, सुवर्ण, रूपा, मोती प्रमुखका परिमाण करे, तथा जवीर, जंबूद, जंबू, राजदन, नारंगी, शंतरा, बीजोरां, काकडी, अखोड, वदाम, कोठफल, टीवरू, विल, खजूर, झाड़, दाडिम, उत्तिजका फल, नालिशर, अंबजी, वोर, बीजूक फल, चीनडा, चीनडी, कयर, कर्मदा, जोरड, निंबू, आंधली अथाणा (आचार) तथा अंकूरिया हूआ नाना प्रकारके फूल, पत्र, सविन, बहुबीजा, अनंतकाय, इतनी वस्तु वर्जे, तथा विगय अरु विगयगनका परिमाण करे, तथा वस्त्र धोनेका, लीपणेका, हल वाहनेका, स्नानकी वस्तुका परिमाण करे, तथा खंननां, पीतनां, इत्यादिकका परिमाण करे, पूती साख न देवे, तथा पाणीमे कूदनां अरु अन्न गंधनेका परिमाण करे, आचारका परिमाण करे, चोरीका त्याग करे, तथा स्त्रीके साथ सजापण करना, स्त्रीकों देखनां त्यागे. तथा अनर्थदम त्यागे, सामाधिक, पापध करे, अतिथितविनाग करे. इन सर्व वस्तुओंका प्रतिदिन परिमाण करे, तथा जिन मंदिरको देखे, तथा जिन मंदिरकी वस्तुकी सार संजाल करे, पूर्वमें तप करे, उजमणे करे, धर्मके वास्ते मुखवस्त्रिका अरु पाणीका ठजनां देवे, तथा औषधी देवे, साधर्मवत्तज यथाशक्तिस करे, गुरुकी विनय करे, मात मातमें सामाधिक करे, वर्षमें प्रापध करे ॥ इत्यादि ॥ इति आ-ध्यायिका चौथे मासिक नियमस्वरूप कथनं समाप्तं ॥

अथ श्रावणोंका वर्षकृत्य षादश षारों करी लिखने हैं.

१ प्रथम संघपूजा करे, सो स्वइव्यकुजादि अनुसारे बहुत आदर मा नसें साधु साध्वी योग्य निर्दोष वस्त्र, कंबल, पूंठणां. सूत, ऊन, पाणीका पात्र, तुंबकादि, दंम, दंमिका, सूइ, कागद. दवात, लेखिनी, पुस्तकादिक, श्रीगुरुकों देवे, औरनी जो संघमका उपकारी उपकरण होवे, सोनी देवे, औरसैंही प्रातिहारक, पीठ, फलक, पट्टिकादि सर्व साधुओंकों देवे, औरसैंही श्रावक, श्राविकारूप संघकी नक्ति यथाशक्तिसें पहरावणादि करके स त्कार करे, देवगुरुके गुण गाने वाले गंधर्वादिक याचकोंकोंनी यथोचित दान देवे, संघकी पूजा तीन प्रकारकी है, एक जघन्य, दूसरी मध्यम, ती सरी उत्कृष्ट, तिसमे सर्वदर्शन सर्व संघकों करे,सो उत्कृष्टी पूजा, तथा सू त मात्रादि देवे, तो जघन्य पूजा, तथा श्रेय सर्व मध्यम पूजा है, तथा अ धिक खरच करनेकी शक्ति न होवे, तो गुरुकों सूत, मुखवस्त्रिका देवे, तथा एक दो तीन श्रावक श्राविकाकों सोपारी प्रमुख वर्ष वर्ष प्रत्ये देवे, इस रीतिसें संघ पूजा करे, तो निर्धनकोंनी महा फल है ॥ यत्. ॥ संपत्तौ निय माशक्तौ,सहनं यौवने व्रतं ॥ दारिद्र्ये दानमप्यल्प,महालानाय जायते॥१॥

२ दूसरी साधर्मिक वात्सल करे,सो सर्व साधर्मियोंकी अथवा कितनेक कोंकी यथाशक्ति यथायोग्य नक्ति करे,तथा पुत्रके जन्मोत्सवमें, विवाहमें, तथा और किसी कार्यमें पहिलें तो साधर्मियोंकों निमंत्रण करके विशिष्ट नोजन, तांबूल, वस्त्रान्तरणादि देवे, तथा किसी साधर्मियों कोइ कष्ट पडे, तब अथपणा धन खरचके उसका कष्ट दूर करे,जे कर कोइ साधर्मि निर्धन होवे, तो धनसें सहाय करे, परदेशसें देशमें पहुंचावे, तथा धर्मसें सीइ ताकों जैसें वने तैसें स्थिर करे, जे कर कोइ साधर्मि प्रमादी होवे. तो तिसकों प्रेरणादि करे, साधर्मियोंकों विद्या पढावे, पूठना, परिवर्तना, अनु प्रेक्षा, धर्मकथामे यथायोग्य जोडे, तथा धर्मकरणे वास्ते साधारण पौषध शालादि करावे, तथा श्राविकाके साथनी श्रावकोंवत् वात्सल्य करे, क्योंकि श्राविकाकी ज्ञान, दर्शन, चारित्र, शीज संतोष वाली होती है. तथा स धवा विधवा जो जिनशासनमे अनुरक्त होवे, वो सर्वको साधर्मिकरणे मा नना चाहिये, तिसकाकी माताकी तरें वहिनकी तरें वेटीकी तरें हितक र्ता चाहियें, बहुत करके राजाका तो अतिथि संविज्ञाग व्रत साधर्मिवा

सकल करनेसेही हो सका है, क्योंकि मुनिकों तो राजपिन लेनाही नहीं है। तिस वास्ते श्रीनरतचक्री, तथा दंभवीर्य राजादिकोंने ऐसेही करा है। तथा श्रीसंनवनाथ अर्हतके जीवनें तीसरे जवमें धातकीखंन ऐरावतके त्रमें केमापुरी नगरीमें विमलवाहनराजाने-महा डुभिहमें सकल साधन कादिकोंको नोजनादिक देनेसे तीर्थकरनामकर्म उपार्जन करा है, तथा देवगिरि मांभव गढमें शाह जगत्सिंहने तथा पिरापड नगरमें श्रीमाज या चूने तीन सौ साठ साधमियोंको धन देके अणणे तुल्य करा, तथा शाह सारंगादि अनेक पुरुषोंने बडा बडा साधमिवात्सल्य करा है ॥ इति ॥ २ ॥

३ तीसरी यात्राविधि कहते हैं, वर्ष वर्षमें जघन्यसें एक यात्रा तो अवश्य करनी चाहिये, यात्राजी तीन तरेंकी है, एक अष्टाश्यात्रा, दूसरी रथयात्रा, तीसरी तीर्थयात्रा, तिसमें अष्टाशमें वित्तर सहित सर्व वैत्यपरिवाडी करे, इसका नाम चैत्ययात्राजी कहते है, तथा रथयात्रा श्रीहेमचंद्रसुरिकृत परिशिष्ट पर्वमें जैसी सांप्रतिराजाने करी है, तैसें करे, तथा महापद्मचक्रवर्तीने जैसें माताके मनोरथ पूरणे वास्ते करी है, तैसें करे, तथा जैसी कुमारपाल राजाने रथयात्रा करी तैसें करे ॥ इति ॥ ३ ॥

तीसरी तीर्थयात्राका स्वरूप लिखते है, तहां श्रीशत्रुंजय रैवतादि तीर्थ तथा तीर्थकरोंके जन्म, वीक्षा, ज्ञान, निर्वाण, अरु विहारजूमि, यह सर्व प्रज्जत जव्यजीवोंको बुजनावका संपादक है, इस वास्ते सत्तारसें तारण का कारण होनेसें इसको तीर्थ कहना चाहिये। तिन तीर्थोंमें जानेसें मय्य कूल निर्मल होता है, अब जिनशासनकी उन्नति करनेके वास्ते जिस विधिमें यात्रा करे, सो विधि यह है, कि:-चलनेके स्थानसें ले कर यात्रा करे, तहां तरु, एक वार नोजन करे, दूसरा सच्च परिहार, तीसरा जूमिशपन, चौथा ब्रह्मचारी, पांचमा सर्व सामग्रीके दूयेजी पणें चलना, उष्ठा सम्पत्त्वधारी पणां। तथा यात्रा वास्ते राजासें थ्याज्ञा लेवे, विशिष्ट मंदिरोंको ग जावे, विनय बहुमान सहित स्वजन और साधमियोंको बुजावे, तथा गुस्को साथ ले जाने वास्ते निमंत्रणा करे, थमागी ढंढेरा फिरावे, मंदिरमें महापूजा महोत्सव करावे, खरची रहितोंको खरची देवे, वाहन बिनाहो वाहन देवे, निराधारोंको यथायोग्य आधार देवे, सार्थवाहकी तरें दौंकी फिराके लोकोंको उत्साहवत करे, तथा आमंत्र सहित बडा चरु, पडा,

थाल, मेरा, तंबू, कडाहिया साथ लेवे, चजतां कूपादिककों सज करे, तथा गाढा, सेजवाजा रथ, पर्यक, पालखी, कंठ, घोडा प्रमुख साथ लेवे, तथा श्रीसंघकी रक्षा वास्ते बडे योद्धोंकों नौकर रस्के, योद्धोंकों कवच अंगकादि उपस्कर देवे, तथा गीत, नाटक वाजित्रादि सामग्री मेलवे, तथा अर्धे मुहूर्तमें, गृह शकुनमें प्रस्थान (चलना) करे, नोजनादिसें श्रीसंघका सत्कार करके संघप तिकातिलक देवे, आगे पीछे रखवाला रस्के, संघके चलने उतरणोका संकेत करे, तथा संघवालोंकी गाडी आदिक टूट जावे, तो समरा देवे, अपनी शक्तिअनुसार सर्वसंघकों सहाय देवे, तथा गाम नगरमें जहां जिनमंदिर आवे, तहां महाध्वज देवे, चैत्यपरिवाडी आदि बडा महोत्सव करे, जीर्णचैत्यका उद्धार करे, तथा जत्र तीर्थोंकों देखे, तब सुवर्ण, रत्न, मोती आदिकसें वर्धापना करे, लापसी, लक्ष्म प्रमुखका लाहणा करे, तथा साथ मिवात्सव्य, यथोचित दान देवे, बडे उत्सवसें जब तीर्थकों प्राप्त होवे, तब प्रथम हर्षपूजा धन चढावे, तथा अष्टोपचारविधि, स्नात्रमालोद्घटन, धीकी धारा देवे, पहरावणी मोचन करे, तथा नवांगजिनपूजन, फूजघर कदलीघरादि महापूजा करे, डुकूलादिमय महाध्वज देवे, मांगनेवालोंकों नहिं न करे, तथा रात्रिजागरण नाना प्रकारके गीतनृत्यादि उत्सव करे, तथा तीर्थोपवास ठठ प्रमुख तप कोडि लाख अर्द्धनादि विविध प्रकारका उजमणां होवे, तथा नाना प्रकारकी वस्तु फल एक सौ आठ. चौबीस, व्यासी, बावन, बहत्तरादि होवे, सर्व नदय नोजनके थाल होवे, डुकूलादि मय चंडुवा पहरावणी करे, तथा अंगलूहणां, दीपक, तेल, धोतो, चंदन, केसर, कस्तूरी, चंगेरी (ठावडी) कलश, धूपधाणां, आरति, आनरण, प्रदीप, चामर, जंगार, स्थाल, कचोलक, घटा, जालरी, पडहादि विविध प्रकारके वाजित्र देवे, देहरी करावे, कारीगरोंकों सत्कार देवे, तीर्थके वि गडे कामकों समरावे, सार संचाल करे, तीर्थके रक्षकोंकों बहु सन्मान देवे, जैनके मंगतोंकों, टीनोंकों, उचित दान देवे, तथा साथमिवात्सव्य धरुनक्ति करे, इस रीतिसें यात्रा करके तैसेही पीठा फिरे, वर्षादि तक तीर्थ व्रत करे ॥ इति यात्राविधि ॥ इति यात्रात्रयस्वरूपं समाप्तम् ॥३॥

॥ अथ स्नात्रविधिर्लिख्यते ॥ मंदिरमें स्नात्र महोत्सवना घृतका मेरु

करे, अष्ट मांगलिक नैवेद्यादि ढोवें, बहुत बहुत जातिवत चंदन, केसर, पुष्प, अवरादि द्यावे. सकल श्रावकस्तमुठाय मेले, गीत नृत्यादि आ मंत्र रचावे, डुकूजादि महाध्वज देवे, प्रौढामंत्रसे प्रनावनादि. निरंतर तथा पर्वदिनमें करे. जेकर निरंतर अथवा पर्वदिनमेंनी न कर सके, तोनी वर्षमें एक बार तो अवश्य करे स्नात्र महोत्सवमें स्वयनकुजप्रतिष्ठादि अनुसारें सर्वशक्तिसें करे. जिनमतका महा-उद्योत करे ॥ इति स्नात्रविधि ॥ ३॥

तथा देवद्वयकी वृद्धि वास्ते प्रतिवर्ष मालोद्घटन करे. इंदुमाला तथा और मालाकी यथाशक्ति करे, जैसेही पहरावणी, नवीन धोती, विचित्र प्रकारका चडुआ, अंगलूहणा, दीपक, तेल, जातिवत केसर, चंदन, वरास, कस्तूरी प्रमुख चैत्योपयोगी वस्तु, प्रतिवर्ष यथाशक्तिसें देवे ॥ ५॥

तथा सुंदर अंगी, पत्रजंगी, सर्वांगानरण, पुष्पगृह, कदलीगृह, पूतजी, पाणोके यत्रादिककी रचना करे, तथा नाना गीत नृत्यादि उत्सवसे महापूजा रात्रि जागरण करे ॥ ६ ॥ ७ ॥

तथा श्रुतज्ञानकी पुस्तकादिककी पूजा कर्पूरादिसें सदा सुकर है, अरु प्रशस्त्र वस्त्रादिकसे विशेषपूजा तो प्रतिमास शुक्लपंचमीके दिन श्रावकको करनी योग्य है, जे कर शक्ति न होवे, तोनी वर्षमें एक बार तो अवश्य करे, इनका विस्तार, जन्मकृत्यमें ज्ञानचक्रिद्वारमें लिखेंगे ॥ ८ ॥

तथा पंचपरमेष्ठि नमस्कार, श्रावश्यकसूत्र, उपदेशमाला, उत्तराव्यय नादि ज्ञान दर्शनका तप, इत्यादिमे जघन्य एक बार उद्यापन करे, जिसमें लक्ष्मी सफल होवे, जब जप तपका उद्यापन करे, तब चैत्य उपर कजरादी पण करे, फल चढावे. अर्द्धत पात्रक मस्तक उपर अर्द्धत देवे, जेमें जो जन उपर तांबूज देते है, तैसी तरें वहनी जान लेना. यह उपधान, उद्यापनविधि. शाखांतरसे जान लेनी ॥ इति उद्यापनविधिः ॥ ९ ॥

तथा तीर्थकी प्रनावना वास्ते बाजे गाजे प्रौढामंत्रसे गुस्का प्रवेश करावे, यह व्यवहारजाप्यमें कहा है, क्योंकि इस्ते जिनमनकी प्रनावना होती है, तथा यथाशक्ति श्रीसंघका बहुमान करणा, तिलक करणा, अन्न, वरास, कस्तूरी प्रमुखसे विलेपन करे, तथा सुगंधि फुल, जनिमें नाजियरादि विविध तांबूजप्रदानरूप चक्रि करे. क्योंकि शासनकी उन्नति करनेसे तीर्थकर गोत्र उपार्जन करता है, यह कवन ज्ञातासूत्रमें है ॥ १० ॥

तथा गुरुके योग मिले हुए लघन्यसेंजी एक वर्षमें एक वार आलोचना लेवे, अपने करे हुए सर्व पापकों गुरुके आगे कह देवे, पीछे गुरु जो प्रायश्चित्त देवे, सो लेवे, फेर उस पापकों न करे, तिसका नाम आलोचना लेनी है, ऐसी श्राद्धजितकल्पादिमें विधि लिखी है. पक्ष पीछे, चार मास पीछे, एक वर्ष पीछे, उत्कृष्ट बारा वर्ष पीछे, निश्चंही आलोचना करे, अपना शय्य काढनेकों क्षेत्रसें सात सौ योजन, अरु कालसें बारा वर्ष तक गीतार्थ गुरुका अन्वेपण करे, तथा जिस गुरुके आगे आलोचना करे, सो गुरु कैसा होवे ? सो लिखते हैं. गीतार्थ होवे, मन, वचन, काया स्थिर होवे, चारित्रवंत होवे, आलोचना ग्रहणमें कुगल होवे, प्रायश्चित्तका जाणकार होवे, विपाद रहित होवे, ऐसा गुरु होवे, सो आलोचना प्रायश्चित्त देने योग्य होता है.

तिनमें गीतार्थ उसकों कहते हैं, कि जो १ निशीथादि वेद शास्त्रोंका मूलपाठ, निर्युक्ति, जाण्य, चूर्णी, इनका जानकार होवे, तथा ज्ञानादि पंच चाचार युक्त होवे, तथा २ आधारवत आलोचितपापका धारणे वाला होवे, ३ आगमादि पांच व्यवहारका जानने वाला होवे, तिसमेंजी इस कालमें तो जितव्यवहार मुख्य है, तिसका जानने वाला होवे, ४ प्रायश्चित्त आलोचककी लज्जा दूर करानेवाला होवे, ५ आलोचककी शुद्धि करने वाला होवे, ६ आलोचकके पापकर्म, औरके आगे न कहे, ७ जैसे वो आलोचक निर्वाह कर सके, तैसें प्रायश्चित्त देवे, ८ जो प्रायश्चित्त न करे, तिसकों इस लोक अरु परलोकका नय दिखावे, यह आठ गुण युक्त गुरु होता है.

साधुने तथा श्रावकने १ प्रथम तो अपने गणमें गणके आचार्य आगे, २ तदयोगे ( तदज्ञावे ) उपाध्यायके पास, ३ तदज्ञावे प्रवर्तकके पास, ४ तदज्ञावे स्थविरके पास, ५ तदज्ञावे गणावहेदकके पास, स्वगणमें इन पांचोंके अज्ञावसे संज्ञोगी एकसमाचारी वाले गणातरमें पूर्वोक्त आचार्यदि पांचोंके पास क्रमसे आलोचे, तिनकेनी अज्ञावसे अज्ञानोगी तं चेंगी गणमें पूर्वोक्त क्रमसे आलोचे, तिनकेनी अज्ञाव हूआ गीतार्थ पार्थव्यके पास आलोचे, तिसके अज्ञावसे गीतार्थ साहूपीके पास आलोचे, तिसके अज्ञावे पश्चात्कृतके पास आलोचे, साहूपी उसकों कहते हैं, कि

जो शुक्लवस्त्रधारी होवे, शिरमुंमित, श्रवणकण्ठ, रजोहरण रहित, ब्रह्मचारी, स्त्रीरहित निष्कावृत्ति होवे, श्रु जो सिद्धपुत्र होता है, सो शिखर सहित. अर्थात् चोटी सहित, स्त्री सहित होता है, तथा जो पश्चात्कृत होता है, सो चरित्र ठोडकें गृहस्थके वेपवाला होता है आलोचनावे श्रवणरमें पार्श्वस्थादिककोंनी गुरुकी तरें बंदना करे, क्योंकि विनयमूर्ध धर्म है, इस वास्ते बंदना करे, जे कर वो पार्श्वस्थादिक अपने आपकी गुणहीन जान कर बंदना न करावे, तब तिसकों आसन उपर बैठा कर प्रणाम मात्र करके आलोचना लेवे, तथा पश्चात्कृतकों इत्तर सामाधिक आरोपण लिंग ठे कर पीठसे उसके पास चयाविधिसं आलोचना लेवे, तथा पार्श्वस्थादिकके अज्ञावें जहा राजगृहादि गुणशील चेत्यादिकमें जहां श्री अर्हत गणधरादिकोंने बहुत बार प्रायश्चित्त लोकोंको बीधा है, सो तहां रहनेवाले देवतानें देखा है, वास्ते तिस देवताको अष्टमादि तपसे आराधके तिसके आगे आलोचे, कदाचित् वो देवता चव गया होवे, श्रु उसकी जगे और उत्पन्न हुआ होवे, तदा वो देवता महाविदेहके अर्हत तकों पूठके प्रायश्चित्त देवे. तिमके अज्ञावें अर्हत प्रतिमाके आगे आलोचे, आप प्रायश्चित्त लेवे, तिसके अज्ञावें पूर्वोत्तर मुख करके अर्हतसिद्धोंके समक्ष आलोवे, परंतु शक्य न रक्के, आलोचना करनेवाला पुरुष, मायारहित बालककी तरें सरल हो कर आलोवे, जो कोई किसी कारण से आलोचना न करे, वो आराधक नहीं है.

आलोचना करनेवाला दश दोष बर्णके आलोचना करे, सो दश दोषका नाम लिखते हैं. १ गुरुको वैवाचितादिकसे खुशी करके पीठें आलोवे, जिससे वो गुरु थोडा प्रायश्चित्त देवे, २ यह गुरु थोडा दंग देता है, ऐसे अनुमान करके आलोवे, ३ जे दूसरोंने देखा हांवे, सो आलोवे, परंतु जो अपणा कीया अपराध दूसरा कोइने न देखा होवे, उसको न आलोवे, ४ वादर दोषको आलोवे, परंतु सूक्ष्म दोषको न आलोवे, ५ सूक्ष्मदोष आलोवे, परंतु वादर दोष न आलोवे, ६ अथक सरसे आलोवे, ७ जैसे गुरु समजे नहीं, ऐसे रौला करके आलोवे, ८ आलोचा दूरा बहुतोंको सुणावे, ९ अव्यक्त अगीतार्थके पाम आलोवे, १० अपराध जो गुरुने कहा होवे, तिसही अपने अपराधको आलोवे, यह दश दोष हैं.

आलोचना करनेसे जो गुण होता है, सो कहते हैं. जैसे बोजा उ  
ने वाला चारके दूर दूए हलका होता है, तैसा पापसे वो हजका हो  
जाता है, तथा पापरूप शक्य दूर हो जाता है, प्रमोद उत्पन्न होता है,  
आत्मपरके दोषोंसे निवृत्ति तिसकों देखके औरनी आलोचना करेंगे, सर  
जाती होती है, शुद्ध हो जाता है, वो दुष्कर कामके करने वाला है,  
योंकि दोषकों सेवनां तो दुष्कर नहीं है, किंतु आलोचना प्रकाश क  
तां, यह दुष्कर है, तथा श्री तीर्थकरकी आज्ञाका आराधक होता है,  
शक्य होता है, आलोचनावालेकों ये गुण होते हैं. यह आलोचना  
विश्व आश्रितकल्पसूत्रवृत्तिके अनुसार लिखा है, आलोचना करनेसे  
आल, स्त्री, यति हत्यादि पाप तथा देवादिद्व्यनरूप पाप, तथा राज  
नी गमनादि महापापनी सम्यकरीतिसें आलोवे, गुरुदत्त प्रायश्चित्त करे,  
तो दूर हो जाते हैं, नहीं तो दृढपरिहारि प्रमुख उसी जवमें मोक्ष कैसे  
जाते ? इसी वास्ते वर्ष वर्ष प्रति चौमासे चौमासे आलोचना लेवे ॥ इति  
आश्रितवृत्तिसंस्कारे वर्षकृत्यं संपूर्णम् ॥

अथ जन्मकृत्य, अष्टारह द्वारों करके लिखते है. १ तिसमें प्रथम  
उचित द्वार है, सो पहिलां तो उचित योग्य वसनेका स्थान करे, जहां  
रहनेसे धर्म, अर्थ अरु काम, तीनोंकी सिद्धि होवे, तहां आवककों वास  
करना चाहिये. क्योंकि और जगे वसनेसे दोनों नव बिगड जाते हैं, नी  
त्रपत्नीमें, चोरोंके गाममें, पर्वतके फिनारे, हिंसक लोकोमें, दुष्ट लोकोमें.  
धर्मालोकोंके निंदकोंमें, इत्यादि स्थानमें वास न करे, परंतु जहां जिन  
धर्म होवे, जहां मुनि आते होवें, जहां आवक वसते होवें, जहां बुद्धि  
मान् लोक स्वभावसेही शीलवान् होवे, जहां प्रजा धर्मशील होवे, बहुत  
जन, ईधन, होवे, तहां वास करे. जैसा अजमेरके पास हर्षपुर नगर था,  
धर्म नगरमें रहनेसे धनवत, गुणवत अरु धर्मवंतकी संगतिसें विनय, वि  
चार, आचार, उदारता, गंजीरता, धैर्य, प्रतिष्ठा आदि गुणकी प्राप्ति होती  
है, धर्मकृत्यमें कुशलता प्रगट होती है, इस वास्ते चुरे गामोंमें चाहो धन  
प्राप्ति होवे, तोनी वास न करे ॥ उक्तं च ॥ यदि वाठसि मूर्खत्व, ग्रामे वस  
नत्रयं ॥ अपूर्वस्यागमोनास्ति, पूर्वाधीतं च नश्यति ॥१॥

उचितस्थाननी स्वचक्र, परचक्र, परस्पर विरोध, डनिद्ध, मारी, (हैजा)



प्रजाविरोध, अन्नादि वस्तुक्षय, इत्यादि कारण हो जावे, तो तल्ल ठोड जाना चाहिये, नहीं तो त्रिवर्गकी हानी हो जावेगी, जैसे धान कोके नयमें लोक द्विदिकों ठोडके गुजरातादि देशोंमें जानेसे सुखी धनी हुए हैं, तथा क्वितिप्रतिष्ठित, चनरूपुर, रूपनपुर, प्रमुखके उजडके व्यवस्था जान लेनी. मो इस रीतिसें है कि:- क्वितिप्रतिष्ठित उजडके नकपुर वसा, अरु चनकपुर उजडके रूपनपुर वसा, अरु रूपनपुर उजडके राजगृह वसा. तथा राजगृह उजडके चंपा वसी, अरु चंपा उजडके पामलीपुर अर्थात् पटना वसा ऐसे श्रावकनी पूर्वोक्त हानी जाने नगरकों ठोडके और जगें जा कर वसे.

तथा रहनेका घरनी अष्ट पडोसीयोंके पास करे. परतु वेध्या, र्च, निह्वाचर, श्रमण, वौश्र, तापतादि ब्राह्मण, मशाण, कोटवाज, मज्जूशारी, चोर, नट, नचानेवाला. जाट, कुकुर्मी, इत्यादिकोंके पडोसमें हाट न लेवे, न वसे, जे कर वेहरेके पास रहे, तो हानी होवे, तथा कर्म, धूर्तके अरु प्रधानके पास रहे, तो धन अरु पुत्र दोनोंका रक्ष होवे. तथा मूर्ख, अधर्मी, पाखंडी, पतित, चोर, रोगी, मोधी, चना मडोन्मत्त, गुरुतल्पग, वैरी, स्वामीवचन, लोनी, तथा रूपि, स्त्री, अरु लहत्या करनेवाजा. इनने लोक जे कर अपणा जला चाहे, तोनी इ पडोसमें न रहे, क्योंकि इनकी संगतिमें गुणहानी प्रमुख अनेक उप होते है, इन वास्ते इनके पडोसमें न रहे.

तथा जला स्वान वो होता है, कि जहा हम्मीका शव्य न होये, न होवे, जहा मान उगती होवे, जला वर्ण, गंधवाली मिट्टी हावे, म जल होवे, खोदता धन निकले, वो जगा शुन हे तथा जां नूमि, कालमें उष्ण स्पर्शीवाजी होवे, अरु उष्ण कालमें जीनस्पर्शीवाली वा वो जगा बहुत शुन है. एक हाथमात्र नूमि पट्टिजा रोकके कर दि मट्टी करके पीठें वो खाड जरे, जे कर मट्टी अग्रिक रह, तो अग्रतमि न नती, अरु जो मट्टी बराबर रह, तो समाननूमि जाननी. अरु मट्टी उ हो जावे तो नेष्टनूमि जाननी, तथा लो पग चाले इनने कालमें जिन नूमि कामे पाणी न शूके, ता उत्तम नूमि जाननी, अरु जे कर नो पग चावे इनने कालमें एक अंगुली जर पाणी शोन हावे, तो मध्यम नूमि जानती

गुरु एक अंगुलीकेनी उपरात पाणी शूके, तो अधमनूमि जाननी, तथा  
 क्वांतरमें जिस नूमिके खातमें फूज गेरे, वो फूज जे कर शूके नही, तो  
 उत्तम नूमि जाननी, अर्ध शूके, तो मध्यमनूमि जाननी, अरु सर्व शूक  
 जावे, तो अधम नूमि जाननी, तथा जिस नूमिमें त्रीहि बोड़ दुई तीन  
 दिन पीठें उगे, तो उत्तम, पांच दिन पीठें उगे तो मध्यम, अरु सातदि  
 न पीठें उगे, तो हीन नूमि जाननी

सर्पकी बंडी उपर घर बनावे, तो रोग होवे, पोली नूमि उपर घर ब  
 नावे, तो निर्धन होवे, शल्ययुक्त नूमि उपर घर बनावे, तो मरण पावे,  
 मनुष्यका हाड अरु केशका शल्य होवे, तो मनुष्योंकी हानी करे. खरका  
 शल्य होवे. तो राजा प्रमुखका जय होवे, श्वानका हाड होवे, तो बालक  
 मरण पावे, बालकका हाड होवे, तो गृहस्वामी परदेशमें उजड जावे,  
 गौका शल्य होवे, तो गौरूप धनकी हानी हावे, मनुष्यके केश तथा क  
 राज अरु नरुम होवे, तो मरण देवे.

तथा प्रथमप्रहर अरु पश्चिम प्रहर वर्जकें शेष प्रहरमें वृद्धकी अरु  
 बजाकी ठाया घर ऊपर पडे, तो दुःखदायी है, अर्हतके मंदिरके पीठें न  
 से, ब्रह्मा और रुणके पास न रहे, चमिका और सूर्यके सन्मुख रहे  
 नही, महादेवके तो किसी पासेंजी न रहे, रुणके वामें पासें अरु ब्रह्माके  
 दहिणे पासें न रहे, निर्माद्वय ( स्नानका पाणी ) ध्वजकी ठाया, विले  
 न वर्जे, जिनमंदिरके शिखरकी ठाया अरु अर्हतकी दृष्टि होवे, तहां न  
 से. तथा नगर अथवा गामके ईशान कोणमे घर न बनावे. बनावे, तो  
 च जातिवालेकों दुःखदायी है.

घर बनावे, तो पूरा मोल देवे, पडोसीकों दुःख न देवे, घर जेती ब  
 तत किसीको दुःख न देवे, जैसेही ईट. काष्ठ, पापाण प्रमुख वस्तु नि  
 पी. दृढ, बलवान्, अरु जो नवीन होवे, सो योग्य मोल दे कर लेवे,  
 जो विक्रय होती होवे, तिसका योग्य मोल दे कर लेवे. परतु आप ईट  
 यावा न लगावे, तथा जिनप्रासादादिककी ईटादि न ग्रहण करे, क्योंकि  
 शर्मनो कहा है, जो देहरा, कूवा, चावडी, असाण, मठ, अरु गजाके  
 मंदिर, इनके पापाण, ईट, काष्ठकों, असाण मात्रनो वर्जे, क्योंकि इनका

पाषाणके, स्तंभ, पीढ, पट्टा, द्वार, शाखा, ये सर्व गृहस्थके घरमें, बिकारी हैं, अरु धर्मके स्थानमें सुखदायी हैं.

तथा पाषाणमय घरमें काष्ठके स्तंभ, अरु काष्ठमय घरमें, पाषाण स्तंभ, मंदिरमें तथा घरमें बनानां वज्रें, तथा हलका काष्ठ, कोठ्ठु काष्ठ, गाढेका काष्ठ, अर्द्धटका काष्ठ, चरखेका काष्ठ, कांटेवाले वृक्ष काष्ठ, पंच उंबरका काष्ठ, थोहरका काष्ठ, ये काष्ठ घरमें न लगावे, तबीजोरा, केला, दाडिम, बेरी, जंबोरी, हलड, आंबलीकी कर अरु धतूरा इतनेका काष्ठ वज्रें, तथा इन वृक्षोंकी जड़ पडोसमें घरमें प्रवेश करे, अथवा इनकी छाया घरमें पड़े, तो कुजका नाश करे, तथा पूर्वदिशिकी तरफ घर उंचा होवे, तो धनका नाश करे, तथा दक्षिणदिशें उंचा होवे, तो धन वृद्धि करे, पश्चिमदिशें उंचा होवे, तो धनादिकी वृद्धि करे, उत्तर दिशि उंचा होवे, तो उजड जावे, तथा जो गोल घर होवे, बहुत कूणें वाला होवे, अथवा एक कूणा दो कूणा तीन कूणा होवे. अरु दक्षिण वामो तरफ होवे, ऐसे घरमें न बसे. तथा जिस घरके कवाड स्वयमेव उघड़े अरु निचो घर सुखकारी नहीं.

तथा घरके द्वार आगे कलशादि चित्राम होवे, तो शुभ है, तथा गनी, नाटारन, चारत रामायणका युद्ध, राजाथोंका युद्ध, क्रियाका चित्र, देवचरित्र, ये चित्राम करानां, घरमें शुभ नहीं, तथा फलवृक्ष, फलवेज, सरस्वती, नवनिधान, यज्ञस्तंभ, लक्ष्मीदेवी, फलश, बर्धमान, बह स्वप्नावलि, ये चित्राम करानां शुभ है

तथा खजूर, दाडिम, केजां, कोहला, बीजोरां, ये जिसघरमें उगे, उन्घरका नाश करते हैं, बटवृक्ष उगे तो लक्ष्मीका नाश करे, कांटावाले वृक्ष उगे, तो शत्रुका नश करे, बड़े फल वाला वृक्ष उगे, तो संतानका नाश करे, इन वृक्षका काष्ठनी वज्रें, तथा कोइ शान्त्र अथवा कहुता है कि घरके पूर्व बटवृक्ष होवे, तो अशुभ है. दक्षिणपासे उंबरवृक्ष शुभ है. पश्चिमनासे पीपल, उत्तरपासे छीकणवृक्ष अशुभ है.

तथा घरमें पूर्वदिशिमें लक्ष्मीका घर करे, अग्निकोणमें रसोइ करे, दक्षिणदिशिमें शयनरुी जाग करे, नैऋतकोणमें शस्त्रशाखा करे, पश्चिम दिशें नोजनक्रिया करे, वायुका पासे अन्न संग्रह करे, उत्तर पासे जल

खनेका स्थान करे, ईशानकोणमें देवगृह करे, तथा दक्षिणपासें अग्नि, पाणो, गाय, वायु, दीवेकी नूमि बनावे, तथा वामे पासें नोजन, धान्य, इन्द्र, वाहन, देवताकी नूमि करे, यह पूर्वादि दिशा सो घरके दरवाजेकी अपेक्षासे जाननी. ठीकवत्. ननु सूर्यपेक्षा.

तथा घर बनानेवाले सूत्रधार मजूर प्रमुखकों बोले प्रमाणसें कठुक अधिक मजूरी देवे, इसमें शोना है, गृहस्थकों चाहिये वैसा घर बनावे. परंतु व्यर्थ बड़ा घर न बनावे, क्योंकि उसमें व्यर्थ धन खरचनां है, घरका द्वार, मर्यादासें योग्य जाणकें रखे क्योंकि बहुत दरवाजे बनानेसें उष्ट्र जनोंके आने जानेसें स्त्री अरु धनका नाश हो जाता है, तथा दरवाजेका किंवाड हठ बनावे, सांकल अर्गलादिसें सुरक्षित करे, किंवाडनी सुखें खुल जावे, ऐसे बनावे, नीतमें नोगल रखनेसें पंचेंद्रिय जीवकी विराधना होती है, किंवाड चेडे, तब यत्नसें चेडे. ऐसे प्रणाला खालादि कानी यथाशक्तिसें उद्यम करे, इसी तरें देश, काल, स्वविभव उचित स्वजाति उचित घर बनाकें विधि सहित स्नात्रपूजा, साधार्मिकवात्सल्य, संघपूजा करकें नले मुहूर्तमें नले शकुनमें प्रवेश करे, तो बहुत सुखदायी होवे, त्रि वर्गीकी सिद्धिका हेतु होवे ॥ इति प्रथम उचित द्वार ॥ १ ॥

२ दूसरा विद्या द्वार कहते है विद्या सो लिखित, पठित, वाणिज्यादि कलाका ग्रहण करे, अर्थात् अध्ययन करे, क्योंकि जो विद्या नहीं शीखता है, सो मूर्ख रहता है, पग पगमें पराजय पाता है, अरु विद्यावान् परदे शमेंनी माननीय होता है, इस वास्ते सर्व प्रकारकी कला शीखनी चाहिये. क्या जाने क्षेत्र कालके विशेषसे किस कलासें आजीविका करणी पड़े ? जिसने सर्वकला शीखी होवे, उसनेनी पूर्वोक्त सात प्रकारकी आजीविकामेसें जिस करकें सुखे निर्वाह होवे, सो आजीविका करणी. जे कर सर्वकला शीखने समर्थ न होवे, तब जिस कलासे अपनां सुखें निर्वाह होवे, अरु परलोकमें अच्छी गति होवे, सो कला शीखे, पुण्यकों दो बातें अवश्य शीखनी चाहिये, उसमें एक तो जिस्सें सुखें निर्वाह होवे सो, अरु दूसरी जिस्सें मरके अच्छी गतिमे जावे, यह दो बातें अवश्य शीखनी. २ तीसरा विवाह द्वार. सो विवाह करने लिये सिद्धिका हेतु होनेसे उचित ही करणा चाहिये, विवाह अन्वगात्रै, सो करना चाहिये, तथा समान

शुद्ध होवे, मजूरोंसे ठज न करे, सूत्रधार कारीगरोंको सम्मान देवे, तथा पूर्वे जो घर बनानेकी विधि कही, वो सर्व इहां विशेष करके जाननी काष्ठादि जो व्यावे, सोनी देवाधिष्ठातावनादिसें सूका व्यावे, परंतु अविधि न व्यावे, तथा ध्याप. इट पकावे, तो अष्ठा नहीं, नौकरोको काम करवाजोंको उहरावसेंजी कबुक महीना अधिक देवे, क्योंकि ये लोक तु मान होके अष्ठा पक्का काम करे, अरु मंदिरादि करानेमें शुभ परिणाम वास्ते गुरु संघ समझैसैं कहे, कि जो इहां अविधिमें पारका धन में पास आया होवे, तिसका पुण्य तिसको होवे, इसी तरें जिनमंदिर बनाये परंतु चूमि खोदनी, पूरणी, पापाणदलसें कपाट लाने, शिला फोडनी, नि नने प्रमुखमें महा आरंज होता है, इस वास्ते जिनमंदिर न बनाना चाकिये ? ऐसी आशंका न करनी, क्योंकि यज्ञसें करके प्रवृत्त होनेसें निर्दिष्ट है, अरु नाना प्रतिमास्थापन, पूजन, संघसमागम, धर्मदेशना करणी, दर्शन व्रतादिककी प्रतिपत्ति, शासनप्रभावना, अनुमोदनादि, अनंत पुण्यका हेतु होनेसें तथा शुभोदयका हेतु होनेसें कूपके दृष्टांतसें महालाजका कारण है. अरु जीर्णोद्धारमें ऐसी रीति है. यतः ॥ नवीनजिनगोहस्य, विधान यत्फलं नवेत् ॥ तस्मादष्टगुणं पुण्यं, जीर्णोद्दारेण जायते ॥ १ ॥ जीर्णसमुद्धृते याव, तावत्पुण्यं न नूतने ॥ उपमर्दोमहांस्तत्र. स्वचैत्यख्यातिरीरपि ॥ २ ॥ तथा ॥ राय अमञ्ज सेछी, कोढंवीएवि देसेणं काठं ॥ जिमं पुवायणे, जिणकप्पीवावि कारवई ॥ १ ॥ अर्थः— राजा, मंत्री, श्रेष्ठी, कौटंबीकोको उपदेश दे कर जीर्ण जिनमंदिरका उद्धार जिनकल्पी साधुजी करावे, जो जिननवनका उद्धार करे, तिसनें जयंकर संसारसें अर्पणी आत्माका उद्धार करा हे, ऐसा जान लेना. जीर्णचैत्योद्धारकरणपूर्वकही नवीन चैत्य कराना योग्य है, इसी वास्ते संप्रति राजाने नवासी हजार जीर्णोद्धार कराये हैं, अरु नवीन जिनमंदिर तो नतीश हजारही बनवाये हैं. असेही कुमारपाल राजा तथा वस्तुपालाधिकोंनेजी नवीन जिनमंदिरों बनानेसे जीर्णोद्धार कराने कराये हैं.

तथा जब चैत्य बन जावे, तब शीघ्रही प्रतिमा विराजमान करनी चाहिये ॥ यदाह श्रीहरिजिज्ञस्रि. ॥ जिननवने जिनविंव. कारयितव्यं पुन व बुद्धिमता ॥ साधिष्ठानं ह्यवं. तन्नवनं वृद्धिमन्नयति ॥ १ ॥ देहरेमें कुमी

कलश, उरसा, प्रदीप, चंद्रार, वाग, वाडी, गाम, नगर प्रमुख राजा देवे, जैसे सिद्धराजराजाने, श्रीवैवताचल उपर श्रीनेमिनाथके चैत्य वास्ते बारा गाम दीये थे, तथा जैसे कुमारपालराजाने वीतजय पाटनके खुदानेसें त्रांबापत्रमें श्रीउदयन राजाके दीये गाम निकले, सो कबूल करके दीये, तैसें देवे, श्रीजिनमंदिरके बनानेका फल यह है कि:- जो यथाशक्तिसें अण्डे धनके अनुसार श्रीजिनवरका नवन करावे, सो देवता जिसकी स्तुति करे, बहुत काल लग आनंद रूप, ऐसा देवविमानादिका परम सुख पावे ॥५॥

६ अथ षष्ठ प्रतिमा द्वार. सो श्रीअर्हंतका विंव, मणि, सुवर्ण, धातु, चंद्र नाडि काष्ठ अरु पाषाण, माटी प्रमुखका पांच सौ धनुष प्रमाण यावत् अंगुष्ठ प्रमाण यथाशक्तिसें बनावे, श्रीजिनप्रतिमा बनानेवालेको फल होता है. सो कहते है ॥ श्लोक ॥ वसंततिलकावृत्तं ॥ सन्मृत्तिकामजगिला तलदंतरौप्य, सौवर्णरत्नमणिचदनचारुविवम् ॥ कुर्वति जैनमिहये स्वधना नुरूपं, ते प्राप्नुवति नृसुरेषु महासुखानि ॥ १ ॥ आर्या ॥ दारिद्र दोहृगं, कुजाऽ कुसरीर कुगऽ कुमईत् ॥ अवसाण रोग सोगा, न हुंति जिणविव कारीणं ॥ १ ॥ अर्थ- जो जिनविंवका कराने वाला है, सो दारिद्र, दौर्भाग्य, कुजाति, विरूप शरीर, नरक तियेचकी गति, दूरी बुद्धि, परवशपणा, रोगी, अरु शोकी पणाको न पावे.

तथा प्रतिमाची वास्तु शास्त्रमें कही विधिपूर्वक बनावे, सुलक्षणा संततिकी बुद्धि करनेवाली बनावे, तथा जो प्रतिमा अन्यायोपार्जित इव्यसें बने, दोंगाडि रगवाले पापाणकी बने जिसका अंग हीनाधिक होवे, सो प्रतिमा स्वपरकी उन्नतिकी नाश करने वाली है, तथा जिस प्रतिमाका सुख, नाक, नेत्र, नाभि, कटि, इतने अंग, जंग होवे, तो वो प्रतिमाकी मूल नायक न करना चाहिये, अरु आचरण सहित, वस्त्रसहित मरण निरहित, लंठन सहित पूजे, तथा जिस प्रतिमाको सौ वर्षसें बन कर देवे, हो गया होवे, अरु अंग जो प्राणाविक पुरुषकी प्रतिष्ठी दुःख लेपना अतिमा जे कर खंभित होवे, तोनी पूजने योग्य है, तथा विंवके अंगीकार पापाणमयमें, जेकर दूसरा रग होवे, तो वो विंव, सुखकारी नैनराजाके विंव, सम अंगुल प्रमाण होवे. सो शुन नहीं, तथा एक अंगुलमें मोह अपारह अंगुल प्रमाण विंव घरमें पूजना चाहिये. इत्तें उपमें वस्ती.

शुद्ध होवे, मज्जुरोंसें ठज न करे, सूत्रधार कारीगरोंको सन्मान देवे, तथा पूर्वे जो घर बनानेकी विधि कही, वो सर्व इहां विशेष करके जाननी, काष्ठादि जो व्यावे, सोची देवाधिष्ठातावनादिसें सूका व्यावे, परंतु अविधिसें न व्यावे, तथा आप. ईट पकावे, तो अग्ना नही, नौकरोंको काम करने वालोंको ठहरावसेंजी कबुक महीना अधिक देवे, क्योंकि वे लोक तुष्ट मान होके अग्ना पक्का काम करे, अरु मंदिरादि करानेमें शुभ परिणामके वास्ते गुरु संघ समक्ष ऐसैं कहे, कि जो इहां अविधिसें पारका धन में पास आया होवे, तिसका पुण्य तिसकां होवे, इसी तरे जिनमंदिर बनावे, परंतु नूमि खोदनी, पूरणी, पापाणदलसें कपाट लाने, शिला फोडनी, चिनने प्रमुखमें महा आरंभ होता है, इस वास्ते जिनमंदिर न बनाना चाहियें ? ऐसी आशका न करनी, क्योंकि यज्ञसें करके प्रवृत्त होनेसें निर्दोष है, अरु नाना प्रतिमास्थापन, पूजन, संघसमागम, धर्मदेशनां करणी, दर्शन व्रतादिककी प्रतिपत्ति, शासनप्रभावना, अनुमोदनादि, अन्तं पुण्यका हेतु होनेसें तथा शुनोदयका हेतु होनेसें कूपके दृष्टांतसें महालाजका कारन है.

अरु जीर्णोद्धारमें ऐसी रीति है. यतः ॥ नवीनजिनगेहस्य, विधाने यत्फलं जवेत् ॥ तस्मादष्टगुणं पुण्यं, जीर्णोद्दारेण जायते ॥ १ ॥ जीर्णं समुद्धृते याव, चावत्पुण्यं न नूतने ॥ उपमर्दोमहांस्तत्र, स्वचैत्यख्यातिधीरपि ॥ २ ॥ तथा ॥ राय अमञ्च सेच्छी, कोडंबीएवि देसेणं काठं ॥ जिसे पुत्रायणे, जिणकप्पीवावि कारवई ॥ १ ॥ अर्थः— राजा, मंत्री, श्रेष्ठी, कौटंबीकोको उपदेश दे कर जीर्ण जिनमंदिरका उद्धार जिनकल्पी साधुनी करावे, जो जिननवनका उद्धार करे, तिसनें जयंकर संसारसें अपणी आत्माका उद्धार करा है. ऐसा जान लेनां. जीर्णचैत्योद्धारकरणपूर्वकही नवीन चैत्य करानां योग्य है, इसी वास्ते संप्रति राजाने नवासी हजार जीर्णोद्धार कराये है, अरु नवीन जिनमंदिर तो बत्तीश हजारही बनवाये हैं. ऐसेही कुमारपाल राजा तथा वस्तुपालादिकोंनेनो नवीन जिनमंदिरों बनानेसें जीर्णोद्धार करानु कराये हैं.

तथा जब चैत्य वनेजावे, तब शीघ्रही प्रतिमा विराजमान करनी चाहिये ॥ यदाह श्रीहरिचन्द्रसूरिः ॥ जिननवने जिनविवं. कारघितव्यं दुतं बुद्धिमता ॥ साधिष्ठानं ह्येव, तद्भवन् वृद्धिमभवति ॥ १ ॥ देहरेमे कुनी

कलश, उरसा, प्रदीप, जंमार, वाग, वाडी, गाम, नगर प्रमुख राजा देवे, जैसे सिद्धराजराजाने, श्रीवैताचल उपर श्रीनेमिनाथके चैत्य वास्ते वारा गाम दीये थे, तथा जैसे कुमारपालराजाने वीतजय पाटनके खुदानेसें त्रावापत्रमें श्रीवदयन राजाके दीये गाम निकले, सो कबूल करके दीये, तैसें देवे, श्रीजिनमंदिरके बनानेका फल यह है कि.- जो यथाशक्तिसें अण्ड धनके अनुमार श्रीजिनवरका जवन करावे, सो देवता जिसकी स्तुति करे, बहुत काल लग आनंद रूप, अैसा देवविमानादिका परम सुख पावे ॥५॥

६ अथ षष्ठ प्रतिमा द्वार. सो श्रीअर्हंतका विव, मणि, सुवर्ण, धातु, चंद नादि काष्ठ अरु पाषाण, माटी प्रमुखका पांच सौ धनुष प्रमाण यावत् अंगुष्ठ प्रमाण यथाशक्तिसें बनावे. श्रीजिनप्रतिमा बनानेवालेकों फल होता है, सो कहते है ॥ श्लोक ॥ वसंततिलकावृतं ॥ सन्मृत्तिकामज्जशिला तलदंतरौप्य, सौवर्णरत्नमणिचटनचारुविवम् ॥ कुर्वति जैनमिहये स्वधना नुरूपं, ते प्राप्नुवन्ति नृसुरेषु महासुखानि ॥ १ ॥ आर्या ॥ दारिद्र दोहगं, कुजाइ कुसरीर कुगइ कुमईउ ॥ अवसाण रोग सोगा, न हुति जिणविंव कारीणं ॥ १ ॥ अर्थ:- जो जिनविंवका कराने वाला है, सो दारिद्र, दौ नाग्य, कुजाति, विरूप शरीर, नरक तियेचकी गति, दूरी बुद्धि, परवशपणा, रोगी, अरु शोकी पणाकों न पावे

तथा प्रतिमाजी वास्तु शास्त्रमें कही विधिपूर्वक बनावे, सुजहणा संत तिकी वृद्धि करनेवाली बनावे, तथा जो प्रतिमा अन्यायोपार्जित इध्यसे बने, दौरगादि रगवाले पाषाणकी बने जिसका अंग हीनाधिक होवे, सो प्रतिमा स्वपरकी उन्नतिकी नाश करने वाली है, तथा जिस प्रतिमाका मुख, नाक, नेत्र, नाजि, कटि, इतने अंग. जंग होवे, तो वो प्रणिष्ठाओं मूल नायक न करना चाहिये, अरु आचरण सहित, बखसहि मरण ति सहित, लंठन सहित पूजे, तथा जिस प्रतिमाकों सौ वर्षसें बन कर देवे, हो गया होवे, अरु आंगें जो प्राजाविक पुरुषकी प्रतिष्ठी हुइ संलेपना अ प्रतिमा जे कर खंफित होवे, तोजी पूजने योग्य है. तथा विवके अंगीकार पाषाणमयमें, जेकर दूसरा रग होवे, तो वो विव, सुखकारी देवराजाके विव, सम अंगुल प्रमाण होवे, सो शुभ नहीं, तथा एक अंगुलसें मोट्ट अरु अंगुल प्रमाण विव घरमें पूजनां चाहिये. इस्ते उद्गमें वत्, श्री.



शुद्ध होवे, मज्जुरोंसे बल न करे, सूत्रधार कारीगरोंको सन्मान देवे तथा पूर्वे जो घर बनानेकी विधि कही, वो सर्व इहां विशेष करके जानने काष्ठादि जो व्यावे, सोची देवाधिष्ठातावनादिसें सूका व्यावे, परंतु अविधि न व्यावे, तथा आप, ईट पकावे, तो अष्ठा नही, नौकरोंको काम करवालोंको उहरावसेंजी कलुक महीना अधिक देवे, क्योंकि वे लोक तुमान होके अष्ठा पक्का काम करे, अरु मंदिरादि करानेमें शुभ परिणाम वास्ते गुरु संघ समूह अैसे कहे, कि जो इहां अविधिमें पारका धन मे पास आया होवे, तिसका पुण्य तिसको होवे, इसी तरें जिनमंदिर बनाने परंतु चूमि खोदनी, पूरणी, पापाणदलसें कपाट लाने, शिला फोडनी, बनने प्रमुखमें महा आरन होता है, इस वास्ते जिनमंदिर न बनाना चाहिये ? ऐसी आशका न करनी, क्योंकि यत्नसें करके प्रवृत्त होनेसें निर्देश है, अरु नाना प्रतिमास्थापन, पूजन, संघसमागम, धर्मदेशना करणी, दर्श व्रतादिककी प्रतिपत्ति, शासनप्रचावना, अनुमोदनादि, अनंत पुण्यका हेतु होनेसें तथा शुनोदयका हेतु होनेसे कूपके दृष्टांतसें महालाजका कारन है.

अरु जीर्णोद्धारमें ऐसी रीति है. यत् ॥ नवीनजिनगेहस्य, विधा यत्फलं नवेत् ॥ तस्मादष्टगुणं पुण्यं, जीर्णोद्दारेण जायते ॥ १ ॥ जी समुद्धृते याव, तावत्पुण्यं न नूतने ॥ उपमर्दोमहांस्तत्र, स्वचैत्यख्यातिरपि ॥ २ ॥ तथा ॥ राय अमञ्ज सेष्ठी, कोढंवीएवि देसेणं काठं ॥ जिसे पुढायणे, जिणकप्पीवावि कारवई ॥ १ ॥ अर्थ— राजा, मंत्री, श्रेष्ठ कौटंबीकोको उपदेश दे कर जीर्ण जिनमंदिरका उद्धार जिनकल्पी साधु करावे, जो जिनजवनका उद्धार करे, तिसनें नयंकर-संसारसें अपनी अत्माका उद्धार करा है, ऐसा जान लेना. जीर्णचैत्योद्धारकरणपूर्वकही नवीन चैत्य कराना योग्य है, इसी वास्ते संप्रति राजाने नवासी हजार जीर्णोद्धार कराये हैं, अरु नवीन जिनमंदिर तो उचीश हजारही बनवाये हैं अैसेही कुमारपाल राजा तथा वस्तुपालादिकोंनेजी नवीन जिनमंदिरों बनानेसे जीर्णोद्धार वास्तु कराये है.

तथा जब चैत्य बने जावे, तब शीघ्रही प्रतिमा बिराजमान करनी चाहिये ॥ यदाह श्रीहरिज्ञसूरि ॥ जिनजवने जिनबिंबं. कारयितव्यं दुर्तं बुद्धिमता ॥ साधिष्ठानं ह्येव, तन्नवनं वृद्धिमञ्जवति ॥ १ ॥ देहरेमे कुंभी

कलश, उरसा, प्रदोष, चंद्रार, वाग, वाही, गाम, नगर प्रमुख राजा देवे, जैसे सिद्धराजराजाने. श्रीरैवताचल उपर श्रीनेमिनाथके चैत्य वास्ते बारा गाम दीये थे, तथा जैसे कुमारपालराजाने वीतनय पाटनके खुदानेसे प्राबापत्रमें श्रीउदयन राजाके दीये गाम निकले, सो कबूल करके दीये, तैसे देवे, श्रीजिनमदिरके बनानेका फल यह है कि— जो यथाशक्तिसे अण्ये धनके अनुभार श्रीजिनवरका जवन करावे, सो देवता जिसकी स्तुति करे, बहुत काल लग आनंद रूप, ऐसा देवविमानादिका परम सुख पावे ॥५॥

६ अथ षष्ठ प्रतिमा द्वार सो श्रीअर्हतका विंव, मणि, सुवर्ण, धातु, चंद्र नादि काष्ठ अरु पाषाण, माटी प्रमुखका पांच सौ धनुष प्रमाण यावत् अंगुष्ठ प्रमाण यथाशक्तिसे बनावे, श्रीजिनप्रतिमा बनानेवालेको फल होता है, सो कहते है ॥ श्लोक ॥ वसंततिलकावृत्तं ॥ सन्मृत्तिकामलशिला तलदंतरीप्य, सौवर्णरत्नमणिचंदनचारुविवम् ॥ कुर्वति जैनमिह्ये स्वधना गुरुपं, ते प्राप्नुवन्ति नृसुरेषु महासुखानि ॥ १ ॥ आर्या ॥ दारिद्रं दोहृगं, कुजाइ कुसरीर कुगइ कुमईउ ॥ अघसाण रोग सोगा, न ह्यति जिणविंघ कारीण ॥ १ ॥ अर्थः— जो जिनवित्रका कराने वाला है, सो दारिद्र, दौर्भाग्य, कुजाति, विरूप शरीर, नरक तिर्यचकी गति, बूरी बुद्धि, परवशपणां, रोगी, अरु शोकी पणांको न पावे.

तथा प्रतिमाजी वास्तु शास्त्रमें कही विधिपूर्वक बनावे, सुलक्षणा संततिकी वृद्धि करनेवाली बनावे, तथा जो प्रतिमा अन्यायोपाजित इव्यसे बने, दोरंगादि रंगवाले पाषाणकी बने. जिसका अंग हीनाधिक होवे, सो प्रतिमा स्वपरको वन्नतिकी नाश करने वाली है, तथा जिस प्रतिमाका मुख, नाक, नेत्र, नाजि, कटि, इतने अंग, जंग होवे, तो वो प्रतिमाके मूल नायक न करना चाहिये, अरु आचरण सहित, बस्त्रसहितको देखके सहित, लंठन सहित पूजे, तथा जिस प्रतिमाको सौ वर्षसे जाना, तो हो गया होवे, अरु अंग जो प्राणाविक पुरुषकी प्रतिष्ठी दुइ हो जैसे पुरुष प्रतिमा जे कर स्वमित होवे, तोनी पूजने योग्य है. तथा विवके प्रकरस्वामी पाषाणमयमे, जेकर दूसरा रंग होवे, तो वो विव, सुखकारी है. गात्र व विव, सम अंगुल प्रमाण होवे, सो गुन नहीं, तथा एक अंगुलसे अधिक अंगुल प्रमाण विव घरमें पूजनां चाहिये. इस्ते उपमें बतें, पर

शुद्ध होवे, मजूरोंसें ठज न करे, सूत्रधार कारीगरोंको सन्मान दे तथा पूर्वे जो घर बनानेकी विधि कही, वो सर्व इहां विशेष करके जानत काष्ठादि जो ब्यावे, सोची देवाधिष्ठातावनादिसें सूका ब्यावे, परंतु अविधि न ब्यावे, तथा आप, ईट पकावे, तो अष्ठा नही, नौकरोंको काम कर वालोंको ठहरावसेंजी कलुक महीना अधिक देवे, क्योंकि वे लोक तु मान होके अष्ठा पक्का काम करे, अरु मंदिरादि करानेमे शुज परिणाम वास्ते गुरु संघ समूह ऐसें कहे, कि जो इहा अविधिसें पारका धन मे पास आया होवे, तिसका पुण्य तिसको होवे, इसी तरें जिनमंदिर बना परंतु नूमि खोदनी, पूरणी, पापाणदलसें कपाट लाने, शिला फोडनी, नने प्रमुखमें महा आरज होता है, इस वास्ते जिनमंदिर न बनाना चायें ? ऐसी आशंका न करनी, क्योंकि यज्ञसें करके प्रवृत्त होनेसें निर्दे है, अरु नाना प्रतिमास्थापन, पूजन, संघसमागम, धर्मदेशनां करणी, दर्श व्रतादिककी प्रतिपत्ति, शासनप्रभावना, अनुमोदनादि, अनंत पुण्यका होनेसें तथा शुचोदयका हेतु होनेसे कूपके दृष्टांतसें महाजाजका कारन

अरु जीर्णोद्धारमें ऐसी रीति है. यत् ॥ नवीनजिनगेहस्य, विध यत्फलं नवेत् ॥ तस्माददृष्टुणं पुण्यं, जीर्णोद्दारेण जायते ॥ १ ॥ ज समुद्धृते. याव, चावत्पुण्यं न नूतने ॥ उपमर्दोमहास्तत्र, स्वचैत्यख्याति रपि ॥ २ ॥ तथा ॥ राय अमञ्च सेष्ठी, कोढंवीएवि देसेणं काठं ॥ जि पुवायणे, जिणकप्पीवावि कारवई ॥ १ ॥ अर्थः— राजा, मंत्री, अ कौटंबीकोको उपदेश दे कर जीर्ण जिनमंदिरका उद्धार जिनकल्पी साधु करावे, जो जिनजवनका उद्धार करे, तिसनें नयंकर ससारसें अपणी त्माका उद्धार करा है, ऐसा जान लेना. जीर्णचैत्योद्धारकरणपूर्वकही वीन चैत्य कराना योग्य है, इसी वास्ते संप्रति राजाने नवासी हजार णोद्धार कराये है, अरु नवीन जिनमंदिर तो ठत्तीश हजारही बनवाये असेही कुमारगल राजा तथा वस्तुपालादिकोंनेजी नवीन जिनमंदिरों नानेसें जीर्णोद्धार कराने कराये है.

तथा जब चैत्य बने जावे, तब शोधही प्रतिमा विराजमान करनी हिये ॥ यदाह श्रीहरिनन्दसूरिः ॥ जिनजवने जिनविभं. कारयितव्यं सुत बुद्धिमता ॥ साधिष्ठानं ह्येवं, तद्भवत्तं वृद्धिमभवति ॥ १ ॥ देहरेमें कु

तिस नानिकुलकरकी मरुदेवी नामक नार्याकी कूखमें आपाढवदि चौथकी रात्रिकों सर्वार्थसिद्ध देवलोकसें च्यवकें रूपनदेवका जीव, गर्भमें पुत्र पणे उत्पन्न हुआ, मरुदेवीने चौदह स्वप्न देखे, इंद्रमहाराजने स्वप्न फल कहा, चैत्रवदि अष्टमीकों रूपनदेवजीका जन्म हुआ, ठप्पनदिगुकुमारी और चौशठ इंद्रने मिलके जन्ममहोत्सव करा, मरुदेवीने चौदह स्वप्नकी आदिमें बैलका स्वप्न देखा था, तथा पुत्रके दोनो साथलोंमें बैलका चिन्ह था, इस वास्ते पुत्रका नाम रूपन दीया.

वाल अवस्थामें श्रीरूपनदेवकों जब नूख लगती थी, तब अपने हाथका अंगूठा मुखमें लेके चूस लेते थे. उस अंगूठेमें इंद्रने अमृत संचार कर दीया था, जब रूपनदेवजी बड़े हुए, तब देवता उनको कल्पवृक्षोंके फल व्या कर देते थे, वे फल खा लेते थे, जब रूपनदेव कूठ न्यून एकवर्षके हुए, तब इंद्र आया, हाथमें इक्षुदंभ व्याया, क्योंकि रीते हाथसें स्वामीके समीप न जाना चाहिये, इस वास्ते इक्षुदंभ व्याया, उस वखतमें श्रीरूपन देवजी नानिकुलकरकी गोदीमें बैठे थे, तब रूपनदेवकी दृष्टि, इक्षुदंभ उपर पडी, तब इंद्रने कहा के हे नगवन् ! इक्षु अक्षु अर्थात् इक्षु नक्षण क रोगे ? तब रूपनदेवजीने हाथ पसाखा, तब इंद्रने रूपनदेवजीका इक्षुवा कुवश स्थापन करा, तथा श्रीरूपनदेवजीके वंशवालोंने काशकार पीया, इस वास्ते गोत्रका नाम काश्यप हुआ, श्रीरूपनदेवजीके जिस जिस वयमें जो जो काम उचित था, सो सो शक्र (इंद्र)ने करा, यह अनादिसें जो जो शक्र (इंद्र) होते है, तिनका जीतकल्प है, जो प्रथम नगवान्के वयोचित सर्वकाम करने.

इस अवसरमें एक लडकी लडका बहिन और नाइ बालावस्थामें ताडवृक्षके हेठ खेलते थे, उहा ताडके फल गिरनेमे लडका मर गया. तब लडकीकों नानिकुलकरने यह रूपनदेवजीकी नार्या हुईकी ? ऐसा विचार करके अपने पास रख लीनी, तिसका नाम सुनंदा था, और दूसरी जो रूपनदेवजीके साथ जन्मी थी, तिसका नाम सुमंगला था, इन दोनोंके साथ रूपनदेव बालावस्थामे खेलते हुए बौवनके प्राप्त हुए, तब इंद्रने विवाहका प्रारंभ करा, आगे युगलके समयमें विवाह विधि नहीं थी, इस वास्ते यह विवाहमें पुरुषके कृत्य तो सर्व इंद्रने करे, और स्त्री

योंकी तर्फसें सर्वकृत्य इंशाणीयोंनें करे, -तहांसें विवाहविधि जगत्में प्रचलित हुई, तब श्रीरूपनदेव दोनों नार्योंके साथ सांसारिक विषयसुख नोगता, जब बै लाख पूर्व, वर्ष व्यतीत हुए, तब सुमंगला राणीके-जरत और ब्राह्मी यह युगल जन्मे; तथा सुनंदाके बाहुबली और सुंदरी यह युगल जन्मे, पीछेसें सुनंदाके तो और कोई पुत्र पुत्री नहीं जन्मे, परंतु सुमंगला देवीके उणपंचास (४९) अर्थात् एक कम पंचास जोड़े पुत्रोंकी जन्मे. यह सब मिल कर सौ पुत्र और दो पुत्रीयों, श्रीरूपनदेवके अर्थात् पुत्र पुत्री हुए हैं.

तिन सौ पुत्रके नाम लिखते है १ जरत, २ बाहुबली, ३ श्रीमस्तक, ४ श्रीपुत्रांगारक, ५ श्रीमद्विठेव, ६ अंगज्योति, ७ मलयदेव, ८ चार्गेव, ९ वंगदेव, १० वसुदेव, ११ मगधनाथ, १२ मानवार्त्तिक, १३ मानशुक्ति, १४ वैदर्भदेव, १५ बनवासनाथ, १६ महीपक, १७ धर्मराष्ट्र, १८ मायकदेव, १९ आत्मक, २० दंभक, २१ कलिंग, २२ ईषकदेव, २३ पुरुषदेव, २४ अकल, २५ नोगदेव, २६ वीर्यनोग, २७ गणनाथ, २८ तीर्णनाथ, २९ अंबुदपति, ३० आयुवीर्य, ३१ नायक, ३२ काक्कि, ३३ आनर्त्तिक, ३४ सारिक, ३५ ग्रहपति, ३६ करदेव, ३७ कञ्चनाथ, ३८ सुराष्ट्र, ३९ नर्मद, ४० सारस्वत, ४१ तापसदेव, ४२ कुरु, ४३ जंगल, ४४ पंचाल, ४५ शूरसेन, ४६ पुट, ४७ कालंगदेव, ४८ काशीकुमार, ४९ कौशत्य, ५० नडकाश, ५१ विकाशक, ५२ त्रिगर्त्त, ५३ ध्यावर्ष, ५४ सालु, ५५ मत्स्यदेव, ५६ कुलियक, ५७ सुपकदेव, ५८ बाल्हीक, ५९ कांबोज, ६० मञ्जनाथ, ६१ साङ्क, ६२ आत्रेय, ६३ यवन, ६४ आनीर, ६५ वानदेव, ६६ वानस, ६७ कैकेय, ६८ सिंधु, ६९ सौवीर, ७० गंधार, ७१ काष्ठदेव, ७२ तोमक, ७३ शौरक, ७४ नारदाज, ७५ शूरदेव, ७६ प्रस्थान, ७७ कर्णक, ७८ त्रिपुरनाथ, ७९ अवतिनाथ, ८० चेदिपति, ८१ विष्कंन, ८२ नैषध, ८३ दशार्णनाथ, ८४ कुसुमवर्ण, ८५ नूपालदेव, ८६ पालप्रभु, ८७ कुशल, ८८ पद्म, ८९ महापद्म, ९० विनिड, ९१ विकेश, ९२ वैदेह, ९३ कञ्जपति, ९४ नडदेव, ९५ वज्रदेव, ९६ सांडनड, ९७ सेतज, ९८ वत्सनाथ, ९९ अंगदेव, १०० नरोत्तम, यह रूपन देवके सौ पुत्रोंका नाम जाननी.

इस अवसरमे जीवोंके कपायो प्रबल हो जानेसें पूर्वोक्त हकारादि तीनों

दंमका लोक नय नहीं करने लगे, इस अवसरमें लोकोने सर्वसँ अधिक ज्ञानवानादि गुणों करके संयुक्त श्रीरूपनदेवको जानके युगलक लोक, श्रीरूपनदेवको कहते हुए कि अबके सब लोक दंमका नय नहीं करते है ? श्री रूपनदेवजी गर्नेमेंनी मति, श्रुत, अरु अवधि, यह तीन ज्ञानों करके संयुक्त थे, यह श्रीरूपनदेवजीके पूर्वजवोंका वृत्तांत आवग्यक तथा प्रथमानुयोगसँ जान लेना, तब श्रीरूपनदेव वो युगलक पुरुषोंको कहते नये कि जो राजा होता है, सो दंम करता है, और राजा जो होता है, सो मंत्री कोटवालादि सेना संयुक्त होता है, अरु कृतानिपेक होता है, फेर उसकी आज्ञा अनतिक्रमणीय होती है, ऐसा वचन सुन कर, वे मिथुनक बोले कि ऐसा राजा हमाराजी हो जावे ? तब रूपनदेवजी बोले जो तुमारी मनसा ऐसी है, तो नानिकुलकरसँ याचना करो, पीठें तिनोनें नानिकुलकरसँ विनति करी, तब नानिकुलकरने कहा, जाउ रूपनदेवजी तुमारा राजा हुआ, तब वे मिथुनक, रूपनदेवको राज्यानिपेक करने वास्ते पद्मिनी सरोवरमें गये, इस अवसरमें इंद्रका आसन कंपमान हुआ, तब अवधिज्ञानसँ राज्यानिपेकका अवसर जानके यहां आ कर श्रीरूपनदेवको राज्यानिपेक करा, मुकुटादि सर्व अलंकार जो कुठ राजाके योग्य थे, सो पहिराये, इस अवसरमें मिथुनक लोक पद्मसरोवरसे नलिनीकमलोंमें पाणी व्याये, उनोने आ कर जब श्रीरूपनदेवजीको अलंरुत देखा, तब सजनोंने चरणों उपर जल गेर दीया, तब इंद्रने मनमें चिंता करी कि ये बड़े विनीत पुरुष है, ऐसा जान कर वैश्रमणको आज्ञा दीनी कि इन विनीतोंके रहने वास्ते विनीता नामा नगर, बसाउ, तब विनीता नगरी वैश्रमणनें बसाइ. इसका स्वरूप, शत्रुंजयमर्हात्सुसँ जान लेना.

अथ संग्रहके वास्ते हाथी, घोड़े, गौ प्रमुख श्रीरूपनदेवके राज्यमे वनोंसँ पकड़े गये, तब श्रीरूपनदेवने चार प्रकारका संग्रह करा १ उग्रा, २ नोगा, ३ राजन्या, ४ हृत्रिया, उसमे जिनको कोटवालाकी पदवी दीनी, सो दंमके करनेसँ उग्रवंश कहलाया, तथा जिनको श्रीरूपनदेवजीने गुरु अर्थात् उंचे बड़े शूरके माने, तिनोका नोगवंश कहलाया, तथा जो श्रीरूपनदेवजीके मित्र थे उनोका राजन्यवंश नाम ररका गया, तथा ग्रेप जो रहे, तिनका हृत्रियवंश हुआ.

अथ आहारकी विधि कहते हैं, जब कल्पवृक्षोंके फलोंका अनाज हुआ, तब पकाहारका खाना किस तरसें हुआ ? सो लिखते हैं. कालके प्रभावसें कल्पवृक्ष फल देनेसें रह गये, तब लोक, और वृक्षोंके कंद, मूल, पत्र, फूल, फल, खाने लगे, केइक इहुका रस पीने लगे, तथा सत्तरे जातका कच्चा अन्न खाने लगे, परंतु कितनेक दिनो पीठें कच्चा अन्न उनको जीर्ण न होनेसें रूपनदेवजीने उनको कहा कि तुम हाथोंसें मसलके तूतडा दूर करके खाव फेर कितनेक दिनो पीठें वैसेनी पाचन न होने लगा, तो फेर दूसरी तरें कच्चा अन्न खानेकी विधि बताइ, ऐसे बहुत तरसे कच्चा अन्न खानेकी विधि बताइ, तोनी कालदोपसें अन्न पाचन न होने लगा. इस अवसरमें जगलोंमें वांसादिके घसनेसें अग्नि उत्पन्न हुआ.

प्रश्न:— तुम कहते हो कि रूपनदेवजीको जातिस्मरण और अवधि ज्ञान था, तो फेर रूपनदेवजीने प्रथमसेंही अग्नि बनाना उस अग्निसे अन्न रांधके खाना क्यों न बतलाया ?

उत्तर.— हे नव्य ! एकांत स्निग्ध कालमें और एकांत रुद्धकालमें अग्नि किसी वस्तुसेंनी उत्पन्न नहीं हो सक्ति, कदाचित् कोइ देवता विदेहके त्रसें अग्निको लेनी आवे, तोनी यहां तत्काल वृज जाती थी, इस वास्तव अग्निसे पकाके खानेका उपदेश नहीं दीया, पीठें तिस अग्निको तृणादि दाह करता देखके अपूर्व रत्न जानके पकडने लगे, जब हाथ जले, तब मर खा कर दौडके श्रीरूपनदेवजीसें सर्व वृत्तांत कहा, तब श्रीरूपनदेवने अग्नि ले आनेकी विधि बताइ, तिस विधिसें अग्नि घरमें ले आये, तब हस्ती उपर बैठे हुये रूपनदेवने हाथके शिर उपरही मिट्टिका एक कुंभासा बना कर उनोके पास अग्निमें पका कर उसमें अन्न रांध कर खाना बताया, पीठें जिसके हाथसें वो कुंभा पकडाया वो कुंभार नामसें प्रसिद्ध हुआ, इसी वास्तव

बने. यह एकेक शिल्पके अवांतर जेद वीश वीश हैं, इत वास्ते सर्व मिल कर एक सौ शिल्प उत्पन्न हुए.

अथ कर्मदार लिखते हैं. कर्मदारमें १ खेती करणी, वाणिज्य करणां, धनका ममत्व करणां, इत्यादि कर्म बताये. प्रथम मट्टीके संचर्योंमें जरकें, अहरण, हथोड़ी प्रमुख बनाये, पीछें उनसे सर्व वस्तु काम लायक बनाइ गइ.

तथा जरतादि पर्यालोकोंको बहत्तर कला सिखलाइ, तथा स्त्रीयोंको चौशठ कला सिखलाइ इन, सनोंका नाम मात्र ऐसे हैं— १ लिखनेकी कला, २ पढनेकी कला, ३ गणितकला, ४ गीतकला, ५ नृत्यकला, ६ ताल बजानां, ७ पटह बजानां, ८ मृदंग बजाना, ९ वीणा बजानां, १० वंशपरीक्षा, ११ जेरीपरीक्षा, १२ गजशिखा, १३ तुरगशिखा, १४ धातु चांद, १५ दृष्टिवाद, १६ मंत्रवाद, १७ बलिपलितविनाश, १८ रत्नपरीक्षा, १९ नारीपरीक्षा, २० नरपरीक्षा, २१ ठंढबंधन, २२ तर्कजल्पन, २३ नीतिविचार, २४ तत्त्वविचार, २५ कविशक्ति, २६ ज्योतिषशास्त्रका ज्ञान, २७ वैद्यक, २८ पड्नापा, २९ योगान्यास, ३० रसायणविधि, ३१ अंजनविधि, ३२ अक्षरह प्रकारकी लिपि, ३३ स्वप्नलक्षण, ३४ इंड जालदर्शन, ३५ खेती करणी, ३६ वाणिज्य करणां, ३७ राजाकी सेवा, ३८ शकुनविचार, ३९ वायुस्तंजन, ४० अग्निस्तंजन, ४१ मेघवृष्टि, ४२ विलेपनविधि, ४३ मर्दनविधि, ४४ ऊर्ध्वगमन, ४५ घटबंधन, ४६ घट प्रमन, ४७ पत्रहेदन, ४८ मर्मनेदन, ४९ फलाकर्षण, ५० जलाकर्षण, ५१ लोकाचार, ५२ लोकरजन, ५३ अफलवृद्धोंको मफल करणा, ५४ खड्गबंधन, ५५ ठुरी बंधन, ५६ मुद्राविधि, ५७ ला. विगन, ५८ दांत स मारणे, ५९ काललक्षण, ६० चित्रकरण, ६१ बाहुयुद्ध, ६२ मुष्टियुद्ध, ६३ दंभयुद्ध, ६४ दृष्टियुद्ध, ६५ खड्गयुद्ध, ६६ वायुयुद्ध, ६७ गारुड विद्या, ६८ सर्पदमन, ६९ नूतमर्दन, ७० योग सौ इयानुयोग, अक्षरा नुयोग, व्याकरण, औपधानुयोग, ७१ वर्षज्ञान, ७२ नाममाला. यह पु र्योंको बहत्तर कला सिखलाइ, तिसका नाम कहा

अब स्त्रीयोंको चौशठ कला सिखलाइ, तिसका नाम कहते हैं, १ नृत्य कला, २ औचित्यकला, ३ चित्रकला, ४ वादित्र, ५ मंत्र, ६ तंत्र, ७ ज्ञान,



अथ आहारकी विधि कहते हैं, जब कल्पवृक्षोंके फलोंका अन्न ब्रह्मा, तब पकाहारका खाना किस तरसें ब्रह्मा ? सो लिखते हैं. कालके प्रभावसें कल्पवृक्ष फल देनेसें रह गये, तब लोक, और वृक्षोंके कंद, मूल, पत्र, फूल, फल, खाने लगे, केइक इहुका रस पीने लगे, तथा सचरे जातफ कच्चा अन्न खाने लगे, परंतु कितनेक दिनो पीठें कच्चा अन्न उनकों जीर्ण न होनेसे रूपनदेवजीने उनकों कहा कि तुम हाथोंसें मसलकें तूतडा दूर करके खाउ फेर कितनेक दिनो पीठें वैसेजी पाचन न होने लगा, तो फेर दूसरी तरें कच्चा अन्न खानेकी विधि बताइ, ऐसें बहुत तरसे कच्चा अन्न खानेकी विधि बताइ, तोजी कालदोपसे अन्न पाचन न होने लगा, इस अवसरमें जगलोंमें वांसादिके घसनेसें अग्नि उत्पन्न हुआ

प्रश्न:- तुम कहते हो कि रूपनदेवजीकों जातिस्मरण और अविधि ज्ञान था, तो फेर रूपनदेवजीने प्रथमसेही अग्नि बनाना उस अग्निसें अन्न रांधके खाना क्युं न बतलाया ?

उत्तर.- हे नव्य ! एकांत स्निग्ध कालमें और एकांत रुद्धकालमें अग्नि किसी वस्तुसेंजी उत्पन्न नहीं हो सक्ति, कदाचित् कोइ देवता विदेहदेवसें अग्निकों लेनी आवे, तोजी यहां तत्काल वृज जाती थी, इस वास्ते अग्निसें पकाके खानेका उपदेश नहीं दीया, पीठें तिस अग्निकों तृणादि दाह करता देखके अपूर्व रत्न जानके पकडनें लगे, जब हाथ जले. तब मर खा कर दौड़के श्रीरूपनदेवजीसें सर्व वृत्तात कहा, तब श्रीरूपनदेवने अग्नि ले आनेकी विधि बताइ, तिस विधिसें अग्नि घरमें ले आये, तब हस्ती उपर बैठे दूये, रूपनदेवने हाथीके शिर उपरही मिट्टिका एक कुंमासा बना कर उनोंके पास अग्निसें पका कर उसमें अन्न रांध कर खाना बताया, पीठें जिसके हाथसें वो कुंमा पकडाया वो कुंनार नामसे प्रसिद्ध हुआ, इसी वास्ते कुंनारको प्रजापति पर्यापति कहते हैं, फेर तो शनैःशनैः सर्वतरेंका आहार पकाके खानेकी विधि प्रवृत्त हो गइ, सर्वविधि श्रीरूपनदेवजीनेही बताइ है.

अथ शिल्पकार कहते हैं. श्रीरूपनदेवजीके उपदेशसें पाच मूल शिल्प अर्थात् कारीगर बने, तिसका नाम लिखते हैं. १ कुंनकार, २ जोहकार, ३ चित्रकार, ४ वस्त्र बुनने वाले, ५ नापित अर्थात् नाइ, ये पाच शिल्प

वने. यह एकेक शिल्पके अर्वांतर जेद वीश वीश हैं, इस वास्ते सर्व मिल कर एक सौ शिल्प उत्पन्न हुए.

अथ कर्मद्वार लिखते हैं कर्मद्वारमें १ खेती करणी, वाणिज्य करणां, धनका ममत्व करणां, इत्यादि कर्म बताये. प्रथम मट्टीके संचयोंमें नरके, अहरण, हथोड़ी प्रमुख बनाये, पीछें उनसें सर्व वस्तु काम लायक बनाइ गइ.

तथा नरतादि पर्यालोकोकों बहत्तर कला सिखलाइ, तथा स्त्रीयोंकों चौशष्ठ कला सिखलाइ इन, सनोंका नाम मात्र ऐसे हैं— १ लिखनेकी कला, २ पढनेकी कला, ३ गणितकला, ४ गीतकला, ५ नृत्यकला, ६ ताल बजानां, ७ पटह बजानां, ८ मृदंग बजानां, ९ वीणा बजानां, १० वशपरीक्षा, ११ जेरीपरीक्षा, १२ गजशिक्षा, १३ तुरंगशिक्षा, १४ धातु वाद, १५ दृष्टिवाद, १६ मंत्रवाद, १७ बलिपलितविनाश, १८ रत्नपरीक्षा, १९ नारीपरीक्षा, २० नरपरीक्षा, २१ ठंदबंधन, २२ तर्कजल्पन, २३ नीतिविचार, २४ तत्त्वविचार, २५ कविशक्ति, २६ ज्योतिषशास्त्रका ज्ञान, २७ वैद्यक, २८ पड्नापा, २९ योगान्यास, ३० रसायणविधि, ३१ अंजनविधि, ३२ अक्षरह प्रकारकी लिपि, ३३ स्वप्नलक्षण, ३४ इंद्र जालदर्शन, ३५ खेती करणी, ३६ वाणिज्य करणां, ३७ राजाकी सेवा, ३८ शकुनविचार, ३९ वायुस्तंजन, ४० अग्निस्तंजन, ४१ मेघवृष्टि, ४२ विलेपनविधि, ४३ मर्दनविधि, ४४ ऊर्ध्वगमन, ४५ घटबंधन, ४६ घट घ्रमन, ४७ पत्रहेदन, ४८ मर्महेदन, ४९ फलाकर्षण, ५० जलाकर्षण, ५१ लोकाचार, ५२ लोकरंजन, ५३ अफलवृद्धोंको फल करणा, ५४ खड्गबंधन, ५५ बुरी बंधन, ५६ मुद्राविधि, ५७ लांघान, ५८ दांत स मारणे, ५९ काललक्षण, ६० चित्रकरण, ६१ बाहुयुद्ध, ६२ मुष्टियुद्ध, ६३ दंशयुद्ध, ६४ दृष्टियुद्ध, ६५ खड्गयुद्ध, ६६ वाग्युद्ध, ६७ गारुड विद्या, ६८ सर्पदमन, ६९ नूतमर्दन, ७० योग सौ इव्यानुयोग. अद्वारा नुयोग, व्याकरण, औषधानुयोग, ७१ वर्षज्ञान, ७२ नाममाला. यह पु रूपोंको बहत्तर कला सिखलाइ, तिसका नाम कहा

अब स्त्रीयोंको चौशष्ठ कला सिखलाइ, तिसका नाम कहते हैं, १ नृत्य कला, २ औचित्यकला, ३ चित्रकला, ४ वादित्र, ५ मंत्र, ६ तत्र, ७ ज्ञान,



त्पन्न होती है, जो कलाव्यवहार, श्रीरूपनदेवजीनें चलाया है, वो सर्व आवश्यक सूत्रमें देख लेनां।

ब्राह्मी जो नरतके साथ जन्मी थी, तिसका विवाह बाहुबलीके साथ कर दीया, और बाहुबलीके साथ जो सुंदरी पुत्री जन्मी थी तिसका विवाह नरतके साथ कर दीया, तबसें माता पिताकी दीनी कन्याका व्यवहार प्रचलित हुआ।

श्रीरूपनदेवजीने युगल अर्थात् एक उदरके उत्पन्न हुए बहिन नाइका विवाह दूर कीया, श्रीरूपनदेवकों देखके लोकजी ५सी तरें विवाह करने लगे, श्रीरूपनदेवने बहुत काल तांइ राज्य करा, प्रजाके वास्ते सर्वतरेंके सुख उत्पन्न हुए, इस हेतुसें श्रीरूपनदेवकों जैनीजोक, जगत्का कर्त्ता मानते हैं, दूसरे मतवाले जो ईश्वरकी करी सृष्टि कहते हैं, वेनी ईश्वर, आदीश्वर, जगदीश्वर, योगीश्वर, जगत्का कर्त्ता ब्रह्मा आदि विष्णु आदि योगी आदि जगवान् आदि, अर्हंतआदि, तीर्थकर, प्रथम बुद्ध, सर्वसे बडा, ५ त्यादि जो नाम, और महिमा गाते है, वे सर्व श्रीरूपनदेवजीकेही गुणानुवाद हैं, और कोइ सृष्टिका कर्त्ता नहीं है।

मूर्ख और आज्ञानीयोंने स्वकपोलकल्पित शास्त्रोंमें ईश्वरविषयमें मनमानी कल्पना कर लीनी है, उस कल्पनाकों बहुत जीव आज तांइ सच्ची मानते चले आये है, क्योंकि सर्वमत जैनके बिना ब्राह्मणोंनेही प्रायः चलाये है, इस वास्ते ब्राह्मणोही मतोंके विश्वकर्मा है, अरु लौकिक शास्त्रोंमें जो कुछ है, सो ब्राह्मणोहीके वास्ते है. ब्राह्मणनी लौकिक शास्त्रोंने तार दीये, क्योंकि शास्त्र बनाने वालोंके संतानादि, खूब पाते, पीते, और आनंद करते है, इन ब्राह्मणोंकी तथा वेदोकी उत्पत्ति जैसे आवश्यक आदिक शास्त्रोंमे लिखी है, तैसे नव्य जीवोंके जानने वास्ते यहाँ मैनी लीखुंगा

निदान सर्व जगत्का व्यवहार चला कर, नरत पुत्रकों विनीता नगरीका राज्य दीया, अरु बाहुबली पुत्रकों तद्दिनाका राज्य दीया. शेष पुत्रोंकों और और देशोंका राज्य दीया, उनही पुत्रोंके नामसें बहुत देशोंका नामनी तैसाही पड गया, जैसे अंगदेश, बंगदेश, मगधदेश, इत्यादि नाम देशोंकाजी पुत्रोंके नामसें पड गया.

७ विज्ञान, ८ दंज, १० जलस्तंज, ११ गीतगान, १२ तालमान, १३ मेघ  
 वृष्टि, १४ फलवृष्टि, १५ आरामारोपण, १६ आकार गोपन, १७ धर्मविचार,  
 १८ शकुनविचार, १९ क्रियाकल्पन, २० संस्कृतजल्पन, २१ प्रसादनीति,  
 २२ धर्मनीति, २३ वर्षिकावृद्धि, २४ स्वर्णसिद्धि, २५ तैलसुरजीकरण,  
 २६ लीलासंचरण, २७ गजतुरंगपरीक्षा, २८ स्त्री पुरुषके लक्षण, २९  
 कामक्रिया, ३० अष्टादश लिपि परिच्छेद, ३१ तत्कालबुद्धि, ३२ वस्तुबुद्धि,  
 ३३ वैद्यकक्रिया, ३४ सुवर्ण रत्ननेद, ३५ घटत्रम, ३६ सारपरिश्रम, ३७  
 अंजनयोग, ३८ चूर्णयोग, ३९ हस्तलाघव, ४० वचनपाठव, ४१ जोष्य  
 विधि, ४२ वाणिज्यविधि, ४३ काव्यशक्ति, ४४ व्याकरण, ४५ शालिखंभन,  
 ४६ मुखमनन, ४७ कक्षाकथन. ४८ कुसुमगुंथन, ४९ वरवेष, ५० सकलजा  
 पाविशेष, ५१ अनिधानपरिज्ञान, ५२ आचरण पहनने, ५३ नृत्योपचार,  
 ५४ गृह्याचार, ५५ शाठ्यकरण, ५६ परनिराकरण, ५७ धान्यरथन, ५८  
 केशबंधन, ५९ वीणादि नाद, ६० वितमावाद, ६१ अंकविचार, ६२ लोक  
 व्यवहार, ६३ अंत्याह्निका, ६४ प्रश्नप्रहेलिका. यह स्त्रीकी चौशठ कला कही.

अबकी सर्व सांसारिक कला पूर्वोक्त कलायोंका प्रकरनूत है, इस वास्ते  
 सर्व कला इनहीके अंतर्भाव है, जैसे प्रथम लिपि कलाके अष्टारह जेद  
 दक्षिण हाथसे ब्राह्मीपुत्रीकों सिखाइ, तिराके नाम कहते हैं १ दंसलिपि,  
 २ नूतलिपि, ३ यक्षलिपि, ४ राक्षसलिपि, ५ यावनी लिपि, ६ तुरकीलिपि,  
 ७ कीरीलिपि. ८ डावड़ीलिपि, ९ सैधवीलिपि, १० मालवीलिपि, ११ नही  
 लिपि. १२ नागरीलिपि, १३ लाटालिपि, १४ गग्गीलिपि, १५ अतिमिती  
 लिपि, १६ चाणक्यलिपि, १७ मूलदेवी, १८ उम्नीलिपि, यह अष्टारह प्रकार  
 की ब्राह्मीलिपि, देशविशेषके जेदसे अनेक तरेकी हो गइ, जैसेकी १ ला  
 टी, २ चौडो, ३ माहेल्ली, ४ कानडी, ५ गौर्जरी, ६ सोरठी, ७ मरहठी, ८ कोंक  
 णी, ९ खुरासाणी, १० मागधी, ११ सिंहली, १२ हाडी, १३ कीरी, १४  
 हम्मिरी, १५ परतीरी, १६ मसी, १७ मालवी. १८ महायोधी, इत्यादि लिपि  
 सिखाइ, तथा सुंदरो पुत्रिकों वाम हाथसे अक्षविद्या सिखाइ, जो जगतमें  
 प्रचलित कला है, जिनसे अनेक कार्य सिद्ध होते हैं, वे सर्व श्रीकृष्णदेवने  
 प्रवर्चाइ है. तिसमे कितनीक कला कइ वार लुप्त होजानी हैं, फिर सामग्री  
 पा कर प्रगटनी हो जाती है, परतु नवीन विद्या वा कला कोइनी नहीं उ

त्पन्न होती है, जो कलाव्यवहार, श्रीरूपनदेवजीनें चलाया है, वो सर्व आवश्यक सूत्रमें देख लेनां।

ब्राह्मी जो भरतके साथ जन्मी थी, तिसका विवाह बाहुबलीके साथ कर दीया, और बाहुबलीके साथ जो सुंदरी पुत्री जन्मी थी तिसका विवाह भरतके साथ कर दीया, तबसें माता पिताकी दीनी कन्याका व्यवहार प्रचलित हुआ।

श्रीरूपनदेवजीने युगल अर्थात् एक उदरके उत्पन्न हुए बहिन जाइका विवाह दूर किया, श्रीरूपनदेवकों देखकें लोकनी इसी तरें विवाह करने लगे, श्रीरूपनदेवने बहुत काल तांइ राज्य करा, प्रजाके वास्ते सर्वतरेंके सुख उत्पन्न हुए, इस हेतुसें श्रीरूपनदेवकों जैनीलोक, जगत्का कर्ता मानते हैं, दूसरे मतवाले जो ईश्वरकी करी सृष्टि कहते हैं, वेनी ईश्वर, आदीश्वर, जगदीश्वर, योगेश्वर, जगत्का कर्ता ब्रह्मा आदि विष्णु आदि योगी आदि जगवान् आदि, अर्हतआदि, तीर्थकर, प्रथम बुद्ध, सर्वसें बडा, इत्यादि जो नाम, और महिमा गाते हैं, वे सर्व श्रीरूपनदेवजीकेही गुणानुवाद हैं, और कोइ सृष्टिका कर्ता नही है।

मूर्ख और आज्ञानीयोंने स्वकपोलकल्पित शास्त्रोंमें ईश्वरविषयमें मन मानी कल्पना कर लीनी है, उस कल्पनाकों बहुत जीव आज तांइ सब्बी मानते चले आये हैं, क्योंकि सर्वमत जैनके बिना ब्राह्मणोंनेही प्रायः चलाये हैं, इस वास्ते ब्राह्मणोही मतोंके विश्वकर्मा है, अरु लौकिक शास्त्रोंमें जो कुछ है, सो ब्राह्मणोहीके वास्ते है. ब्राह्मणनी लौकिक शास्त्रोंने तार दीये, क्योंकि शास्त्र बनाने वालोंके सतानादि, खूब पाते, पीते, और आनंद करते हैं, इन ब्राह्मणोंकी तथा वेदोंकी उत्पत्ति जैसे आवश्यक आदिक शास्त्रोंमें लिखी है, तैसें जव्य जीवोंके जानने वास्ते यह मैनी लीखुंगा।

निदान सर्व जगत्का व्यवहार चला कर, भरत पुत्रकों विन्दीता नगरीका राज्य दीया, अरु बाहुबली पुत्रकों लह्मिजाका राज्य दीया, शेष पुत्रोंकों और और देशोंका राज्य दीया, उनही पुत्रोंके नामसें बहुत देशोंका नामनी तैसाही पड गया, जैसे अगदेश, वंगदेश, मगधदेश, इत्यादि नाम देशोंकाजी पुत्रोंके नामसें पड गया।

७ विज्ञान, ८ दंज, १० जलस्तंज, ११ गीतगान, १२ तालमान, १३ मे-  
 वृष्टि, १४ फलवृष्टि, १५ आरामारोपण, १६ आकार गोपन, १७ धर्मविचार  
 १८ शकुनविचार, १९ क्रियाकल्पन, २० संस्कृतजल्पन, २१ प्रसादनीति  
 २२ धर्मनीति, २३ वर्णिकावृद्धि, २४ स्वर्णसिद्धि, २५ तैलसुरजीकरण  
 २६ लीलासंचरण, २७ गजतुरंगपरीक्षा, २८ स्त्री पुरुषके लक्षण, २९  
 कामक्रिया, ३० अष्टादश लिपि परिच्छेद, ३१ तत्कालबुद्धि, ३२ वस्तुशुद्धि  
 ३३ वैद्यकक्रिया, ३४ सुवर्ण रत्ननेद, ३५ घटत्रम, ३६ सारपरिश्रम, ३७  
 अंजनयोग, ३८ चूर्णयोग, ३९ हस्तलाघव, ४० वचनपाठव, ४१ नोच्य  
 विधि, ४२ वाणिज्यविधि, ४३ काव्यशक्ति, ४४ व्याकरण, ४५ शालिखंमन  
 ४६ मुखमंमन, ४७ कथाकथन, ४८ कुसुमगुंथन, ४९ वरवेप, ५० सकलजा  
 पाविशेष, ५१ अग्निधानपरिज्ञान, ५२ आचरण पहनने, ५३ नृत्योपचार  
 ५४ गृह्याचार, ५५ शाठ्यकरण, ५६ परनिराकरण, ५७ धान्यरथन, ५८  
 केशबंधन, ५९ वीणादि नाद, ६० वित्तमावाद, ६१ अंकविचार, ६२ लोक  
 व्यवहार, ६३ अंत्याह्निका, ६४ प्रश्नप्रहेलिका. यह स्त्रीकी चौड़ाव कला कही

अवकी सर्व सांसारिक कला पूर्वोक्त कलायोंका प्रकरजुत है, इस वास्त  
 सर्व कला इनहीके अंतर्भाव हैं, जैसे प्रथम लिपि कलाके अक्षरह ने  
 दक्षिण हाथसे ब्राह्मीपुत्रीको सिखाइ, तिसके नाम कहते हैं १ हंसलिपि  
 २ नूतलिपि, ३ यक्षलिपि, ४ राक्षसलिपि, ५ यावनी लिपि, ६ तुरकीलिपि  
 ७ कीरीलिपि, ८ डाव्डीलिपि, ९ सैधवीलिपि, १० मालवीलिपि, ११ नई  
 लिपि. १२ नागरीलिपि, १३ लाटालिपि, १४ गम्भीलिपि, १५ अनिमित्त  
 लिपि, १६ चाणक्यलिपि, १७ मूलवेवी, १८ उम्नीलिपि, यह अक्षरह प्रका  
 की ब्राह्मीलिपि, देशविशेषके नेदसे अनेक तरकी हो गई, जैसेकी १ ल  
 टी, २ चौडी, ३ माहेजी, ४ कानडी, ५ गौर्जरी, ६ सोरठी, ७ मरहठी, ८ कों  
 णी, ९ खुरासाणी, १० मागधी, ११ सिंहली, १२ हाडी, १३ कीरी, १४  
 हम्मीरी, १५ परतीरी, १६ मसी, १७ मालवी १८ महायोधी. इत्यादि लि  
 सिखाइ, तथा सुंदरी पुत्रिको वाम हाथसे अंकविद्या सिखाइ, जो  
 प्रचलित कला है, जिनसे अनेक कार्य सिद्ध होते हैं, वे सर्व  
 प्रवर्त्ताइ हैं. तिसमें कितनीक कला कइ वार लुप्त होजाती है, फिर  
 पा फर प्रगटनी हो जाती है, परंतु नवीन विद्या वा कला का

धुओंको दे देता था, एकदा समय मरीची मांदा ( रोग ग्रस्त ) हुआ, तब विचार किया कि मैं तो असंयती हूँ, इस वास्ते साधु मैरी वैयावृत्त नहीं करते हैं, अरु मुझे करानीनी युक्त नहीं है, तो कोऽ चेलाजी मुझे वैयावृत्त वास्ते करना चाहियें, तिस कालमें श्रीरूपनदेवजी निर्वाण हो गये थे, पीछे एक कपिलनामक राजाका पुत्र था, सो मरीचीके पास धर्म सुननेको आया, तब मरीचीने उसको यथार्थ साधुका लिंग आचार कहा, तब कपिलने कहा तो तेरा लिंग विलक्षण क्यों कर है? तब मरीचीने कहा कि मैं साधुपणा पालने समर्थ नहीं हूँ, इस वास्ते मैं यह लिंग निर्वाहके वास्ते स्वकपोलकल्पित बनाया है, तब कपिलने कहा कि मुझे श्रीरूपनदेवके साधुओंका धर्म रुचता नहीं है, तुम कहो. तेरे पासनी कुठ धर्म है, या नहीं है,? तब मरीचीने जाना, यह नारीकर्मी जीव है, मैं राही शिष्य होने योग्य है, इस लोचसे मरीचीने कह दिया कि वहांनी धर्म है, अरु मेरे पासनी कठुक धर्म है, यह सुन कर कपिल मरीचिका शिष्य हो गया, यह कपिल मुनिकी उत्पत्ति है उस बखत मरीचीके पास तथा कपिलके पास कोऽनी पुस्तक नहीं था, निःकेवल जो कुठ आचार मरीचीने कपिलको वता दिया. सोऽ आचार कपिल करता रहा, मरीचीने उत्सूत्र जापण करनेसे एक कोटाकोटी सागरोपम लग संसारमें जन्म मरणकी वृद्धि करी, मरीचि तो काल कर गया अरु पीछेसे कपिल ग्रंथार्थ ज्ञान शून्य मरीचीकी वताऽ हूऽ रीति ऊपर चलता रहा, उस कपिलका आसुरीनामा शिष्य हुआ, कपिलने आसुरीकोनी आचार मात्रही मार्ग बतलाया, कपिलने औरनी बहुत शिष्य बनाये, उनके प्रेममें तत्पर था, मरके ब्रह्मनामक पाचमे देवलोकमें देवता हुआ, तब उत्पत्तिके अनंतर अवधिज्ञानसे देखा, कि मैंने क्या दानादि अनुष्ठान करा है? जिस्से मैं देवता हुआ, हूँ, तब अवधिज्ञानसे ग्रंथज्ञानशून्य अपने आसुरीनामा शिष्यको देखा, तब विचार करा कि मेरा शिष्य कुठ नहीं जानता? इसको कुठ तत्त्व उपदेश करुं? ऐसा विचार कर, कपिल देवता आकाशमें पचवर्णके मंजलमें रह कर तत्त्वज्ञानका उपदेश करता गया, कि अथ्य कसें व्यक्त प्रगट होता है, तिस अवसरमें पण्डितत्र शास्त्र, आसुरीने बनाया, तिसमें ऐसा कथन करा कि प्रकृतिसे महान् होता है, अरु महा



शत्रुंजय तीर्थ ऊपर देह त्यागकर, मोह गया, इस वास्ते शत्रुंजयका नाम पुंमरीकगिरि रक्का गया.

जरतके पांच सौ पुत्रोने जो दीक्षा लेनी थी, तिनमें एकका, नाम मरीची था, वो मरीचीने जैन दीक्षाका पालनां कठिन जान कर थपणी आजीविकाके चलाने वास्ते नवीन मनःकल्पित उपाय खडा कीया, क्योंकि उसने गृहवास करनेमें तो बड़ी हीनता जाणी, तब एक कुलिंग बनानां चाहा, सो इसी रीतिसें बनाया कि साधु तो मनदंभ, वचनदंभ, अरु काय दंभ, इन तीनों दंभोंसैं रहित है, और मैं तो इन तीनों दंभों करके संयुक्त हूं, इस वास्ते मुजकों त्रिदंभ रखनां चाहियें, दूसरा साधु तो इव्य अरु जाव करके मुंभित है, सो लोच करते हैं, अरु मैं तो इव्य मुंभित हूं, इस वास्ते मुजे उस्तरे पाठनेसैं मस्तक मुंभवानां चाहियें, शिखानी रखनी चाहियें, तीसरा साधु तो पांच महाव्रत पालते है, अरु मैरे तो सदा स्थूल जीवकी हिंसाका त्याग रहो चौथा साधु तो निःकचन है, अर्थात् परिग्रह रहित है, अरु मुजकों एक पवित्रकादि रखनी चाहियें, पांचमा साधु तो शीलसैं सुगंधित है, अरु मैं ऐसा नहीं हूं इस वास्ते मुजे चंडनादि सुगंधी लेनी ठीक है, ठछा साधु तो मोह रहित है, अरु मैतो मोह संयुक्त हूं, इस वास्ते मुजे मोहाद्वादितकों ठत्री रखनी चाहियें. सातमा साधु जूते रहित है, मुजकों पगोंमे कुठ उपानह ( छुती ) प्रमुख चाहियें. आठमा साधु तो निर्मल है, इस वास्ते उनके शुक्लांबर वस्त्र है, अरु मै तो क्रोध, मान, माया, अरु लोभ, इन चारों कपायों करके मैला हूं इस वास्ते मुजे उपाय वस्त्र अर्थात् गेरुके रंगे ( जगवे ) वस्त्र रखने चाहियें, नवमा साधु तो सचित्त जलके त्यागी है, इस वास्ते मै ठानके सचित्त प्राणी पीडगा, स्नाननी करुंगा, इस तरें स्थूलमृपावादादिसैं जो निवृत्त हूआ, इस् प्रकारके मरीचीने स्वमतिसैं थपणी आजीविकाके वास्ते लिंग बनाया, यही लिंग, परिव्राजकोंका उत्पन्न हूआ.

मरीची जगवान्के साथही विचरता रहा, तब साधुओंसैं विसदृश लिंग देखके लोक पूठते हुए, तब मरीची साधुका यथार्थ धर्म कहता था, अरु थपणा पाखंभवेप पूर्वोक्त रीतिसैं प्रगट कह देता था, जो पुरुष, इसके पास धर्म सुन कर दीक्षा लेनी चाहता था, तिसको जगवान्के सा-

पुत्रोंको दे देता था, एकदा समय मरीची मांदा ( रोग ग्रस्त ) हुआ, तब विचार किया कि मैं तो असंयती हूँ, इस वास्ते साधु मैरी वैयावृत्त नहीं करते है, अरु मुझे करानीजी युक्त नहीं है, तो कोइ चेलाजी मुझे वैयावृत्त वास्ते करना चाहिये, तिस कालमें श्रीरूपनदेवजी निर्वाण हो गये थे, पीछे एक कपिलनामक राजाका पुत्र था, सो मरीचीके पास धर्म सुननेको आया, तब मरीचीने उसको यथार्थ साधुका लिंग आचार कहा, तब कपिलने कहा तो तेरा लिंग विलक्षण क्यों कर है? तब मरीचीने कहा कि मैं साधु पणा पालने समर्थ नहीं हूँ, इस वास्ते मैं यह लिंग निर्वाहके वास्ते स्वकपोलकल्पित बनाया है, तब कपिलने कहा कि मुझे श्रीरूपनदेवके साधुओंका धर्म रुचता नहीं है, तुम कहो. तेरे पासजी कुठ धर्म है, या नहीं है, ? तब मरीचीने जाना, यह नारीकर्मा जीव है, मैं राही शिष्य होने योग्य है, इस लोचसे मरीचीने कह दीया कि वहांजी धर्म है, अरु मेरे पासजी कुठुक धर्म है, यह सुन कर कपिल मरीचिका शिष्य हो गया, यह कपिल मुनिकी उत्पत्ति है उस बखत मरीचीके पास तथा कपिलके पास कोइजी पुस्तक नहीं था, नि.केवल जो कुठ आचार मरीचीने कपिलको वता दीया. सोइ आचार कपिल करता रहा, मरीचीने उत्सृज्य ज्ञापण करनेसे एक कोटाकोटी सागरोपम जग संसारमें जन्म मरणकी वृद्धि करी, मरीचि तो काल कर गया अरु पीछेसे कपिल ग्रंथार्थ ज्ञान शून्य मरीचीकी वताइ हूइ रीति ऊपर चलता रहा, उस कपिलका आसुरीनामा शिष्य हुआ, कपिलने आसुरीकोजी आचार मात्रही मार्ग बतलाया, कपिलने औरजी बहुत शिष्य बनाये, उनके प्रेममें तत्पर था, मरके ब्रह्मनामक पाचमे देवलोकेमें देवता हुआ, तब उत्पत्तिके अनंतर अवधिज्ञानसे देखा, कि मैंने क्या दानादि अनुष्ठान करा है ? जिसे मैं देवता हुआ, हूँ, तब अवधिज्ञानसे ग्रंथज्ञानशून्य अपने आसुरीनामा शिष्यको देखा, तब विचार करा कि मेरा शिष्य कुठ नहीं जानता ? इसको कुठ तत्त्व उपदेश करुं ? ऐसा विचार कर, कपिल देवता आकाशमें पंचवर्णके ममलमे रह कर तत्त्वज्ञानका उपदेश करता गया, कि अव्यक्तसे व्यक्त प्रगट होता है, तिस अवसरमे पष्ठितत्र शास्त्र, आसुरीने बतनाया, तिसमें ऐसा कथन करा कि प्रकृतिसे महान होता है, अरु महा

पीठें नरतका बेटा आदित्ययश हूआ, अर्थात् सूर्ययश जिसके संतान वाले नरत क्षेत्रमें सूर्यवंशी कहे जाते है, अरु बाहुवलीका बडा पुत्र चंद्रयश आ तिसके संतानवाले चंद्रवसी कहे जाते हैं. श्री रूपनदेवजीके कुरु नामा पुत्रके संतान सब कुरुवशी कहे जाते है. जिनमें कौरव पांडव हूये हैं.

जब नरतका बडा बेटा सूर्ययश सिंहासन पर बैठा, तब तिसके पास का कणी रत्न नही था, क्योंकि काकणी रत्न, चक्रवर्तीके शिवाय और किसी पास नही होता है, इस वास्ते सूर्ययश राजानें ब्राह्मण श्रावकोंके गलेमें सुवर्णमय यज्ञोपवीत करवा दीयें जन्नेउ इतिजापा तथा नोजन प्रमुख सर्व नरत महाराजकी तरें देता रहा. जब सूर्ययशका बेटा महायश गदी पर बैठा, तब तिसने रूपेके यज्ञोपवीत बनवा दीये, आगे तिनोकी संतानोने पंचरंगे रेशमी पटसूत्र मय यज्ञोपवीत बनाते रहे, आगे सादे सूतके बनाये गये, यह यज्ञोपवीतकी उत्पत्ति है.

नरतके आव पाट तक तो ब्राह्मणोंकी नक्ति नरतकी तरे करते रहे पीठें प्रजानी ब्राह्मणोंको नोजन कराने लगे, तब सर्व जगे ब्राह्मणपूजनीक समझे गये, आवमां तीर्थकर श्रीचंद्रप्रन स्वामीके बखत तक सर्व ब्राह्मण तधारी, जैनधर्मा श्रावक रहे, अरु श्रीचंद्रप्रन नगवानके पीठें कितनाकि काल व्यतीत जये, इस नरत खंममें जैनमत अर्थात् चतुर्विधसष और सर्व शास्त्र विच्छेद हो गये, तब तिन ब्राह्मणानासोंको लोक पूठने लगे कि धर्मका स्वरूप हमको वतलाउ, तब तिनोने जो मनमें माना, और अणु जिसमें जान देखा सो धर्म वतलाया, अनेक तरेंके ग्रंथ बनाते रहे.

जब नवमे श्रीसुविधिनाथ पुष्पदंत अरिहंत हूए, तिनोने जब फेर जैन धर्म प्रगट करा, तब कितनेक ब्राह्मणानासोंने न माना, स्वकपोलकल्पित मतहीका कदाग्रह रक्का, साधुओके ढपी बन गये, चारों वेदोंका नामनी बदल दीया, अरु उन वेदोंमें मतजबनी औरका और जिख दीया.

अब चारोवेदोंकी उत्पत्ति जिखते हैं. जब नरतराजाने ब्राह्मणोंको पूजा, तब दूसरा लोकनी ब्राह्मणोंको बहुत तरेका दान देने लग गये, तब नरत चक्रवर्तीने श्रीरूपनदेवजीके उपदेशानुसार तिन ब्राह्मणोंके स्वाध्याय करने वास्ते श्रीआदीश्वर रूपनदेवजीकी स्तुति और श्रावकके धर्मका स्वरूपगर्जित ऐसे चार आर्यवेद रचे, तिनके यह नाम रत्के ।

संसारदर्शन वेद, २ संस्थापनपरामर्शन वेद, ३ तत्त्वावबोध वेद, ४ विद्या प्रबोध वेद, इन चारोंमें सर्वनय, वस्तुके कथन संयुक्त तिन ब्राह्मणोंको पढाये, तब वे ब्राह्मण, अरु पूर्वोक्त चार वेद, आठमे तीर्थकर तक यथार्थ चले आये, परंतु जब आठमे तीर्थकरका तीर्थ विच्छेद हुआ, तद् पीछे, तिन ब्राह्मणाजासोनें धनके लोचसें तिन वेदोंमें जीवहिंसा आदिकी प्ररूपणा करके उलट पुलट कर माले, जैनधर्मका नामची वेदो मेंसें निकाल दीया, बलकि अन्योक्ति करके "दैत्यदस्युवेदवाह्य" इत्यादि नामोंसें साधुओंकी निंदा गर्जित १ रुग्, २ यजु, ३ साम, ४ अथर्व, ये चार नाम कल्पन कर दीये. तिन ब्राह्मणोंमेंसूं जिनोनें तीर्थकरोंका उपदेश मान्या, उनोनें पूर्ववेदोंके मंत्र न त्यागे, सो आज तक दक्षिण करणाटक देशमें जैन ब्राह्मणोंके कंठ है. ऐसा सुना और देखानी है. तथा उन प्राचीन वेदोंके कितनेक मंत्र मेरे पासजी हैं यत उक्त आगमे ॥ तिरिजरह चक्रवट्टी, आयरिय वेद्याणविस्सु उप्पत्ती ॥ माहण पढणडमिणं, कहियं सुहखाण विवहारं ॥ १ ॥ जिणतिच्छे बुद्धिन्ने, मिच्चन्ने माहणेहिं तेठ विया ॥ अस्संजयाण पूआ, अप्पाणं काहिया तेहिं ॥ २ ॥ इत्यादि यहांसें आगे तिनवेदोंकी रचना हिंसा संयुक्त याज्ञवल्क्य, सुजसा, पीपलाद, अरु पर्वत प्रमुखोने विशेष कर रचना रच दइ, तिसकाजी स्वरूप किंचित् मात्र यहां लिख देते है.

वृहदारण्यक उपनिषद्की नाप्यमें लिखा है, कि जो यज्ञोंका कहने वाजा सो याज्ञवल्क्य तिसका पुत्र याज्ञवल्क्य इत कहनेसेंजी यही प्रतीत होता है, जो यज्ञोंकी रीति प्रायः याज्ञवल्क्यसेंही चली है, तथा ब्राह्मण लोकोंके शास्त्रोंमें लिखा है, कि याज्ञवल्क्यने पूर्वजी ब्रह्मविद्या वमके सूर्यपासों नवीन ब्रह्मविद्या सीखके प्रचलित करी, इस्सेंजी यही अनुमान निकलता है, जो याज्ञवल्क्यने प्राचीन वेद ठोड दीये, और नवीन बनाये.

तथा श्रीत्रिशव सलाका पुरुष चरित्र ग्रंथमें आठमे पर्वके दूसरे सर्गमें ऐसा लिखा है, कि काशपुरीमें दो संन्यासिणीया रहती थी, तिसमे एकका नाम सुजसा था, अरु इसरीका नाम सुजडा था, यह दोनोही वेद अरु वेदांगोंकी जानकारथी तिन दोनो बहिनोने बहुवादीयोंको वादमें जीता, इत अक्सरमें याज्ञवल्क्य परिव्राजक तिनके साथ वाद करनेको

ध्याया, ध्यायसमें ऐसी प्रतिज्ञा करी कि जो द्वार जावे, वो जीतने वाले की सेवा करे, तब याज्ञवल्क्यने सुलसाकों वादमें जीतके अणो सेवा करने वाली बनाइ, सुलसांजी रात दिन याज्ञवल्क्यकी सेवा करने लगी, याज्ञवल्क्य अरु सुलसां यह दोनों यौवनवंत (तरुण) थे, इस वास्ते दोनों कामातुर हो के जोगविलास करने लग गये, सचतो है कि अग्नि और फुल मिलके अग्नि क्यों कर प्रज्वलित न होवे? निदान दोनो काम मीडामें मग्न होकर काशपुरीके निकट कुटीमें वास करते थे, तब याज्ञवल्क्य सुलसांसें पुत्र उत्पन्न हुआ पीठें लोकोंके उपहासके जयसैं उस लडकेका पीपलके वृद्धके देठ ठोड कर दोनों नठके कहींकों चले गये, यह सुनात सुनडा जो सुलसांकी बहिनथी उसने सुना, तब तिस बालकके पाम ध्याइ, जब बालककों देखा, तो पीपलका फल स्वयमेव मुखमें पढेको बबोल रहा है, तब तिसका नामजी पिप्पलाद ररका, और तिसकों अणो स्थानमें ले जाके यत्नसैं पाला, अरु वेदादि शास्त्र पढाये, तब पिप्पलाद बडा बुद्धिमान हुआ, बहुत वादीयोंका अग्निमान दूर करा, पीठें, तिस पिप्पलादके साथ सुलसां और याज्ञवल्क्य यह दोनो वाद करनेकों आए, तिस पिप्पलादनें दोनोकों वादमें जीत लीया, और सुनडा मासीके कहनेसैं जान गया कि, यह दोनो मेरे माता पिता है, और मुके जन्मतेकों निर्देय हो कर ठोड गये थे, जब बहुत क्रोधमें ध्याया तब याज्ञवल्क्य अरु सुलसाके आगें मातृमेध पितृमेध यज्ञोंकों युक्तिसैं सम्यक् रीतिमें स्थापन करके पितृमेधमें याज्ञवल्क्यकों और मातृमेधमें सुलसांकों मारके होम करा, मीमांसक मतका यह पिप्पलाद मुख्य आचार्य हुआ, इसका वातली नामा शिष्य हुआ, तबसैं जीवहिंसा संयुक्त यज्ञ प्रचलित हुए.

याज्ञवल्क्यके वेद बनानेमे कुठजी शंका नहीं, क्योंकि वेदमें लिखा है, "याज्ञवल्केति होवाच" अर्थात् याज्ञवल्क्य जैसे कहता हुआ, तथा वेदमें जो शाखा है, वे वेदकर्ता मुनियोकेही सबबसे है, इस वास्ते जो ध्याय श्यक शास्त्रमें लिखा है, कि जीवहिंसा संयुक्त जो वेद है, वे सुलसा अरु याज्ञवल्कादिकोंने बनाये हैं, सो सत्य है, क्योंकि कितनीक उपनिषदोमे पिप्पलादकाजी नाम है, तथा और मुनियोकाजी कितनेक जगेमें नाम है.

जमदग्नि कश्यप तो वेदोंमें खुद नामसें लिखे हैं, तो फेर वेदोंके नवीन हो नेमें क्या शंका रहती है ?

तथा लंकाका राजा रावण जब दिग्विजय करनेके वास्ते देशोंमें चतुरंग बल ले कर राजायोंको अपणी आज़ा मना रहा था, इस अवसरमे नाख मुनि, लाठी, सोटे, और, लात, धूसर्योंका पीटा दूआ पुकार करता दूआ रावणके पास आया, तब रावणने नारदको पूछा कि तुझको कि सने पीटा है ? तब नारदने कहा कि राजपुर नगरमें मरुत नामा राजा है, सो मिथ्यादृष्टि है, वो ब्राह्मणानासोंके उपदेशसें यज्ञ करने लगा, हो मके वास्ते सौनिकोंकी तरें वे ब्राह्मणानास अरराट शब्द करते हुए, ऐसे विचारे पशुओंको यज्ञमें मारते हुए मैंने देखा, तब मैं आकाशसें उतरके जहां मरुतराजा ब्राह्मणोंके साथमें बैठा था, तहां आ कर मरुत राजाको कहा कि यह तुम क्या करने लग रहे हो ? तब मरुतराजाने कहा ब्राह्मणोंके उपदेशसें देवताओंकी तृप्ति वास्ते और स्वर्ग वास्ते यह यज्ञ में पशुओंकी बलिदानसें करता हूं. यह महाधर्म है, तब नारद कहता है, कि मैं वो मरुतराजाको कहा कि हे राजा जो चारोंवेदोंमे यज्ञ करना कहा है, वो यज्ञ में तुमकुं सुनाता हूं, आत्मा तो यज्ञका यष्टा अर्थात् करनेवाला है, तथा तपरूप अग्नि है, ज्ञानरूप धृत है, कर्मरूपी ईंधन है, क्रोध, मान, माया, अरु लोभादि पशु हैं, सत्य बोलनेरूप यूप अर्थात् यज्ञस्तंभ है, तथा सर्व जीवोंकी रक्षा करणी यह दक्षिणा है, तथा ज्ञान, दर्शन, अरु चारित्र, यह रत्नत्रयी रूप त्रिवेदी है. यह यज्ञ वेदका कहा हुआ है. औरसा यज्ञ जो योगान्यास संयुक्त करे, तो करनेवाला मुक्त रूप हो जाता है, और जो राक्षस तुल्य होके ढागादि मारके यज्ञ करता है, सो मरके घोर नरकमें चिरकाल तक महादुःख भोगता है, हे राजा ! वृत्तमवंशमें उत्पन्न दूआ है, बुद्धिमान् और धनवान् है, इस वास्ते हे राजन् तूं इस व्याधोचित पापसे निवर्त्तन हो जा, जेकर प्राणीवधसेही जीवोंको स्वर्ग मिलता होवे तब तो थोड़ेही दिनोंमे यह जीवलोक खाली हो जावेगा, यह मेरा वचन सुनके यज्ञकी अग्निकी तरें प्रचरन हुए होये ब्राह्मण हाथमे लाठी, सोटे, ले कर सर्व मेरेको पीटने लगे, तब जैसे कोइ पुरुष नदीके पूरसें मरकर दीपेमें चला आता है तैसें मैं दौडता दूआ

तेरे पास पहुंचा हूं. हे रावण राजा ! विचारे निरपराधि पशु मारे जाते हैं, तूं तिनकी रक्षा करणेमें तत्पर हो, जैसे मैं तेरे शरणसे बचा हूं ऐसे तूं पशुओंकी बचा तब रावण विमानसे उतरके मरुत राजाके पास गया मरुत राजाने रावणकी बहुत पूजा, जकि आदर, सन्मान करा. तब रावण कोपमें हो कर, मरुत राजाको ऐसे कहता हुआ:-अरे ! तूं नरक का देने वाला यह यज्ञ क्या कर रहा है ? क्योंकि धर्म तो अहिंसारूपसर्वह तीर्थकरोने कहा है, सोइ जगत्के हितका करनेवाला है, जब तुमने पशुओंको मारके धर्म समजा, तब तुमको हितकारक क्योंकर होवेगा ? इस वास्ते यह यज्ञ तुमको दोनो लोकमें अहितकारक है, इसमें ठोड धो, नहीं तो इस यज्ञका फल तेरेको इस लोकमें तो मैं देता हूं, और परलोकमें तु मारा नरकमें वास होवेगा, यह सुन कर मरुत राजाने यह करना ठोड दीया, क्योंकि रावणकी आज्ञा उस वखत ऐसी जयंकरथी, कि कोइ उसको उल्लंघन नहीं कर सका था, इस कथानकसें यहनी मालुम हो जाता है, कि जो ब्राह्मण लोक कहते हैं कि आगे राक्षस यज्ञ विध्वंस कर देते थे, सो क्या जाने रावणादि जबरदस्त जैनधर्मी राजाओं पशुवध रूप यज्ञका करणं बुडा देते थे, तबसेंही ब्राह्मणोने पुराणादि शास्त्रोमें उन जबरदस्त जैनराजाओंको राक्षसोंके नामसें लिखा है ? तथा यहनी सुननेमें आया है, कि नारदजीनेनी मायाके वशसें जैनमत धारके वेदोंकी निंदा करी थी तो क्या जाने ? इस कथानकका यही तात्पर्य लोकोने लिख लीया हो ?

पीछे रावणने नारदको पूठा कि ऐसा पापकारी पशुवधात्मक यह यज्ञ कहासें चला है तब नारदजीनें कहा कि:-शुक्तिमती नदीके किनारे उपर एक शुक्तिमती नगरी है सो वीशमें श्रीमुनिमुव्रत स्वामी हरिवश तीर्थकरकी औलादमें जब कितनेक राजा व्यतीत होगये, तब अग्निचंडनामा गजा हुआ, तिस अग्निचंडराजाका वसुनामा बेटा हुआ, वो वसु महाशुद्धि मान, सत्यवादी, लोकोमें प्रतिष्ठ हुआ, तिस नगरीमें खीरकंदबक उपाध्याय रहता था तिसके पर्वत नाम पुत्र था, उहां एक तो राजाका बेटा वसु दूसरा पर्वत और तीसरा में (नारद) हम तीनों खीरकंदबक उपाध्यायके पास पढते थे, एकदा समय हमतो तीनों जन पाठ करनेके अमसे रात्रिकों सो गये थे और उपाध्याय जागता था हम ठत ऊपर सते,

थे तब दो चारण साधु ज्ञानवान्, आकाशमें परस्पर वार्ता करते चले जाते थे, कि यह खीर कदंबक उपाध्यायके तीन ढात्रोंमेंसुं दो नरकमें जायेंगे अरु एक स्वर्गमें जायेगा, यह मुनियोंका कहनां सुन करके उपाध्यायजी चिंता करने लगा कि जब मेरे पढाये हूये नरकमें जायगे, तब यह मुझको बहुत डःख है, परंतु इन तीनोंमेंसुं नरक कौन जायगे ? और स्वर्ग कौन जायगा ? इस बातके जानने वास्ते तीनोंको एक साथ बुलाया, पीठें वो गुरुने हम तीनोंको एकेक पीठिका कुक्कड दीया और कह दीयाकि इ नकों ऐसी जगेमें मारो जहां कोइनी न देखता होवे ! पीठें वसु अरु पर्वत यह दोनो तो शून्य जगाओंमें जाकर दोनो पीठके बनाये कुक्कडोंको मार ल्याये और में उस पीठके कुक्कडको ले कर बहुत दूर नगरसें बाहिर चला गया, जहां कोइनी नहीं था, तहां जा कर खडा हुआ, चारों उर देखने लगा और मनमें यह तर्क उत्पन्न हुआ, कि गुरु महाराजने तो यह आज्ञा दीनी है, कि हे वरस यह कुक्कड तू तहां मारी, जहां कोइ देखता न होवे, तो यह कुक्कड देखता है, अरु मेंनी देखता हूं, खेचर देखते हैं, लोकपाल देखते हैं, ज्ञानी देखते हैं, ऐसा तो जगत्में कोइनी स्थान नहीं जहां कोइनी न देखता होवे, इस वास्ते गुरुके कहनेका यही तात्पर्य है, कि इस कुक्कडका वध न करनां क्योंकि गुरुपूज्य तो सदा दयावत और हिंसासें पराडमुख है, निःकेवल हमारी परीक्षा लेने वास्ते यह आदेश दीया है, तब मैंनें ऐसा विचार करके विनाही मारे कुक्कडको लैके गुरुके पास चला आया, और कुक्कडेके न मारनेका सबब सर्व गुरुको कह दीया, तब गुरुने मनमें निश्चय कर लीया कि यह नारद ऐसे विवेकवाला है, सो स्वर्ग जायगा तब गुरुजीने मुझकों ठातीसें लगाया, और बहुत सा धुकार कहा, तथा वसु और पर्वतजी मेरेसें पीठे गुरुके पास आये, और गुरुकों कहते हूये कि हम कुक्कडाकों ऐसी जगे मारके आये है, कि जहां कोइनी देखता नहीं था तब गुरुने कहा तुम तो देखते थे, तथा खेचर देखते थे, तब हे पापिष्ठो ! तुमने कुक्कड क्यों मारे ? ऐसे कह कर गुरुने शोचा कि पर्वत, और वसुके पढानेकी मेहनत मैंनें व्यर्थही करी, मैं क्या करूं ? पानी, जैसे पात्रमें जाता है, वैसाही बन जाता है. विद्याकाजी यही स्वभाव है. जब प्राणोसें प्यारा पर्वतपुत्र और पुत्रसें प्यारा वसु



तेरे पास पहुंचा हूं. हे रावण राजा!-विचारे निरपराधि पशु मारे जाते हैं, तूं तिनकी रक्षा करणेमें तत्पर हो, जैसे मैं तेरे शरणसे बचा हूं और तूं पशुओंकी बचा तब रावण विमानसे उतरके मरुत राजाके पास गया मरुत राजाने रावणकी बहुत पूजा, नक्ति आदर, सम्मान करा. तब रावण कोपमें हो कर, मरुत राजाको ऐसे कहता हुआ:-अरे! तूं नरक का देने वाला यह यज्ञ क्या कर रहा है? क्योंकि धर्म तो अहिंसारूपसर्वेद तीर्थकरणे कहा है, सोइ जगत्के हितका करनेवाला है, जब तुमने पशुओंको मारके धर्म समजा, तब तुमको हितकारक क्योंकर होवेगा? इतना वास्ते यह यज्ञ तुमको दोनो लोकमें अहितकारक है, इसे ठोड द्यो. नहीं तो इस यज्ञका फल तेरेको इस लोकमें तो मैं देता हूं, और परलोकमें तुम मारा नरकमें वास होवेगा, यह सुन कर मरुत राजाने यज्ञ करना ठोड दीया क्योंकि रावणकी आज्ञा उस वखत ऐसी जयंकरथी, कि कोइ उसको उल्लंघन नहीं कर सका था, इस कथानकसे यहनी मालुम हो जाता है कि जो ब्राह्मण लोक कहते हैं कि आगे राक्षस यज्ञ विध्वंस कर देते थे सो क्या जाने रावणादि जबरदस्त जैनधर्मी राजाओं पशुवध रूप यज्ञका करणं बुडा देते थे, तबसेही ब्राह्मणोंने पुराणादि शास्त्रोंमें उन जबरदस्त जैनराजाओंको राक्षसोंके नामसे लिखा है? तथा यहनी सुननेमें आया है, कि नारदजीनेनी मायाके वशसे जैनमत धारके वेदोंकी निंदा करी थी तो क्या जाने? इस कथानकका यही तात्पर्य लोकोने लिख लीया हो?

पीछे रावणने नारदको पूछा कि ऐसा पापकारी पशुवधात्मक यह यज्ञ कहासे चला है तब नारदजीने कहा कि:-शुक्तिमती नदीके किनारे उपर एक शुक्तिमती नगरी है सो वीशमे श्रीमृणिसुव्रत स्वामी हरिवंश तीर्थकरकी औलादमें जब कितनेक राजा व्यतीत होगये, तब अजिचन्नामा राजा हुआ, तिस अजिचन्द्रराजाका वसुनामा वेटा हुआ, वो वसु महाबुद्धिमान, सत्यवादी, लोकोमे प्रसिद्ध हुआ, तिस नगरीमें खीरकदंबक उपाध्याय रहता था तिसके पर्वत नाम पुत्र था, उहा एक तो राजाका वेटा वसु दूसरा पर्वत और तीसरा में (नारद) हम तीनों खीरकदंबक उपाध्यायके पास पढते थे, एकदा समय हमतो तीनों जन पाठ करनेके असमसे रात्रिको सो गये थे और उपाध्याय जागता था हम उठ ऊपर चले

ये तब दो चारण साधु-ज्ञानवान्, आकाशमें परस्पर वार्ता करते चले जाते थे, कि यह खीर कदंबक उपाध्यायके तीन ढात्रोमेंसुं दो नरकमें जायेंगे और एक स्वर्गमें जायेगा, यह मुनियोंका कहनां सुन करके उपाध्यायजी चिंता करने लगा कि जब मेरे पढाये दूयें नरकमें जायगे, तब यह मुझको बहुत दुःख है, परंतु इन तीनोंमेंसुं नरक कौन जायगे ? और स्वर्ग कौन जायगा ? इस बातके जानने वास्ते तीनोंको एक साथ बुलाया, पीछे वो गुरुने हम तीनोंकों एकेक पीठिका कुकड दीया और कह दीयाकि इ नकों ऐसी जगेमें मारो जहा कोइनी न देखता होवे ! पीछे वसु और पर्वत यह दोनो तो शून्य जगाओंमें जाकर दोनो पीठके बनाये कुकडोंकों मार व्याये और मैं उस पीठके कुकडकों ले कर बहुत दूर नगरसें बाहिर चला गया, जहां कोइनी नहीं था, तहा जा कर खडा दूआ, चारों उर देखने लगा और मनमें यह तर्क उत्पन्न दूआ, कि गुरु महाराजने तो यह आज्ञा दीनी है, कि हे वत्स यह कुकड तूं तहां मारी, जहां कोइ देखता न होवे, तो यह कुकड देखता है, और मंत्री देखता हूं, खेचर देखते है, लोकपाल देखते है, ज्ञानी देखते है, ऐसा तो जगत्में कोइनी स्थान नहीं जहां कोइनी न देखता होवे, इस वास्ते गुरुके कहनेका यही तात्पर्य है, कि इस कुकडका वध न करनां क्योंकि गुरुपूज्य तो सदा दयावंत और हिंसासें पराडमुख हैं, नि केवल हमारी परीक्षा लेने वास्ते यह आदेश दीया है, तब मैंने ऐसा विचार करके विनाही मारे कुकडेकों लेके गुरुके पास चला आया, और कुकडेके न मारनेका सबब सर्व गुरुकों कह दीया, तब गुरुने मनमें निश्चय कर लीया कि यह नारद ऐसे विवेकवाला है, सो स्वर्ग जायगा तब गुरुजीने मुझकों ढातीसें लगाया, और बहुत सा धुकार कहा, तथा वसु और पर्वतजी मेरेसें पीछे गुरुके पास थाये, और गुरुकों कहते दूये कि हम कुकडाकों ऐसी जगे मारकें थाये हैं, कि जहा कोइनी देखता नहीं था तब गुरुने कहा तुम तो देखते थे, तथा खेचर देखते थे, तब हे पापिष्ठो ! तुमने कुकड क्यों मारे ? ऐसे कह कर गुरुने शोचा कि पर्वत, और वसुके पढानेकी मेहनत मैंने व्यर्थही करी, मैं क्या करूं ? पानी, जैसे पात्रमे जाता है, वैसाही बन जाता है. विद्याकानी यही सनाव है. जब प्राणोसे प्यारा पर्वतपुत्र और पुत्रसें प्यारा वसु

यह दोनो नरकमें जायगे तो मुझे फेर घरमें रह कर क्या करणा है? जैसे निर्वेदसें क्षीरकदंबक उपाध्यायने दीक्षा ग्रहण करी, साधु हो गया, तिसके पद उपर पर्वत बैठा क्योंकि व्याख्या करणेमें पर्वत बड़ा विचक्षण था और मैं ( नारद ) गुरुके प्रसादसें सर्वशास्त्रोंमें पंडित हो कर अपने स्थानमें चला आया, तथा अग्निचंद्रराजाने तो संयम लीया, और वसु राजा राजसिंहासन ऊपर बैठा, वसुराजा जगत्में सत्यवादी प्रसिद्ध हो गया अर्थात् वसुराजा फूट नहीं बोलता है, ऐसा प्रसिद्ध हो गया, वसु राजानेजी अपनी प्रसिद्धिकों कायम रखने वास्ते सत्य बोलनाही अंगीकार कीया, वसुराजाकों एक स्फटिकका सिंहासन गुप्त पणे ऐसा मिला कि:- सूर्यके चांदणेमें जब वसुराजा उसके ऊपर बैठताथा, तब सिंहासन लोकोंकों बिलकुल नही दीख पडताथा, इसी तरें वसुराजा आकाशमें अधर बैठा दीख पडताथा, तब लोकोंमें यह प्रसिद्धी होगइ, कि सत्यके प्रभावसें वसुराजाका सिंहासन देवता आकाशमें थांजे रक्ते हैं, तब सब राजा नरकें वसुराजाकी आज्ञा मानने लग गये, क्योंकि चाहो सब्ही हो चाहो फूटी हो तोजी प्रसिद्धि जो है सो पुरुषके जयकारी होती है

तब एकदा प्रस्तावमें ( नारद ) वो सक्तिमतीनगरीमें गया, वहां जा कर पर्वतकों देखा तो वो अपने शिष्योंकों ऋग्वेद पढा रहा है, और उसकी व्याख्या करता है, तब ऋग्वेदमें एक ऐसी श्रुति आई "अजैर्यप्यमिति" तब पर्वतने इस श्रुतिकी ऐसी व्याख्या करी जो अजानाम ऋगका ( बकरीका ) है तिनोसें यह करना तिनकों मारके तिनके मांसका होम करना, तब मैने पर्वतकों कहा हे प्राता? यह व्याख्या तूं क्या प्रातिसें करता है? क्योंकि गुरु श्रीक्षीरकदंबकने इस श्रुतिकी ऐसैं व्याख्या नहीं करी है, गुरुजीने तो तीन वर्षका धान्य पुराणे जोका ऐसा अर्थ यह श्रुतिका करा है, "न जायंत इत्यजा" जो बोलनेसें न उत्पन्न होवे, सो अजा, ऐसा अर्थ श्रीगुरुजीने तुमकों और हमकों शिखलाया था वो अर्थ, तुमने किस हेतुसे नूजा दीया? तब पर्वतने कहा कि तुमने जो अर्थ करा है, यह अर्थ गुरुजीने नहीं कहा था, किंतु जो अर्थ मैने करा है, यही अर्थ गुरुने कहा था क्योंकि निघंटमेंनी अजा नाम बकरीका ही लिखा है, तब मैने ( नारदने ) पर्वतकों कहा कि शब्दोंका अर्थ दो तरेंके होते है, एक

मुख्यार्थ दूसरा गौणार्थ तो यहां श्रीगुरुने गौणार्थ करा था गुरु धर्मोप  
 देष्टाका वचन और यथार्थ श्रुतिका अर्थ, दोनोंको अन्वया करके हे मित्र  
 तूं महापाप उपार्जन मत कर तव फेर पर्वतने कहा कि अजा शब्दका  
 अर्थ श्रीगुरुजीने मेपेका करा है, निघंटमेंजी ऐसेही अर्थ है, इनको उल्लं  
 घन करके तूं अधर्म उपार्जन करता है ? इस वास्ते वसुराजा आपणा स  
 हाध्यायी है, तिसको मध्यस्थ करके इस अर्थका निर्णय करो, जो ऊठा  
 होवे तिसकी जीव्हाह्वेद करणी, ऐसी प्रतिज्ञा कही, तब मैनेजी पर्वतका  
 कहना मान लीया क्योंकि साचकों क्या आंच है ? तब पर्वतकी माताने  
 पर्वतकों ठाना कहा कि हे पुत्र ! तूं ऐसा ऊठा कदाग्रह मत कर क्योंकि  
 मैनेजी इस श्रुतिका अर्थ तीन वर्षका धान्यही सुना है, इस वास्ते तूंने  
 जो जीव्हाह्वेदकी प्रतिज्ञा करी है, सो अड्डी नहीं करी, क्योंकि जो विना  
 विचारें काम करता है, वो अवश्य आपदामें पडता है, तब पर्वत कहने  
 लगा कि हे माताजी ! जो में प्रतिज्ञा करी है, वो अबमैं कितीतरेसेंजी  
 दूर नहीं कर सका हूं, तब माता अपने पर्वत पुत्रके डु.खकी पीडी दूइ  
 डु.खिनी हो कर वसुराजाके पास पहुंची क्योंकि पुत्रके जीवत्व्य वास्ते  
 कौन ऐसो है, जो उपाय न करे ? जब वसुराजाने अपनी गुरुकी पत्नीकों  
 आता देखा तब सिंहासनसें उठके खडा हुआ, और कहने लगाकि मैने  
 आज क्षीरकदंबकका दर्शन करा जो माता तुज्को देखा, अब हे माता !  
 कहो ( आज्ञा करो ) मै क्या करूं ? और क्या देऊं ? तब ब्राह्मणी कहणे  
 लगी कि तूं मुजे पुत्रकी निष्ठा दे क्योंकि विना पुत्रके मैनें हे पुत्र ! धन-  
 धान्य क्या करणां है ? तब वसुराजा कहने लगा हे माता ! मेरेकोतो प  
 र्वत पूजने और पालने योग्य है, क्योंकि गुरुकी तरे गुरुके पुत्रके सा  
 यनी वर्तना चाहियें, यह श्रुतिका वाक्य है, तो फेर आज किसको का  
 लने कोपमें आकर पत्र नेजा है, जो मेरे जाइ पर्वतको मारा चाहता  
 है ? इस वास्ते हे माता ? तूं मुजे सर्व वृत्तांत कह दे, तब ब्राह्मणीने अ  
 पणे पुत्रका अज व्याख्यान और जीव्हाह्वेदनेकी प्रतिज्ञा कह सुनाइ,  
 और कहाकि जो तैने अपने जाइकी रक्षा करनी है, तो अजा शब्दका  
 अर्थ मेप अर्थात् बकरी बकरा करानां क्योंकि महात्मा जन परोपकारके  
 वास्ते अपने प्राणनी दे देते हैं, तो वचनसें परोपकार करनेमें तो क्या क

हना है ? तब वसु राजाने कहा कि हे माताजीमें मिथ्यावचन क्यों कर बोलुं ? क्योंकि सत्यबोलनेवाले पुरुष जेकर अण्ण प्राणजी जाते देखें तोनी असत्य नहीं बोलते हैं, तो फेर गुरुका वचन अन्यथा करणा और जूठी साक्षी देणी, इसका तो क्याही कहना है ? तब ब्राह्मणीने कहा यातो गुरुके पुत्रकी जान बचेंगी, यां तेरा सत्यव्रतका आग्रहही रहेगा, और मैंनी तुजे अण्ण प्राणकी हत्या देकगी तब वसुराजाने लाचार हो कर ब्राह्मणीका वचन माना, पीछे क्षीरकंदंबककी चार्या प्रमुदित हो कर अपने घरकों गइ, इतनेहीमें मैं (नारद) और पर्वत दोनो जने वसुराजाकी सनामें गये, तब तहां बड़े बड़े विद्वान् एकिते सनामें मिले, और स्फटिकके सिंहासन ऊपर बैठके वसुराजा सनाके बिचमें सनापति बन कर बैठा, तब पर्वतने और मैंने अण्ण अण्ण व्याख्याका पद वसुराजाकों सुनाया, और ऐसानी कहाकि हे राजन् तूं ! सत्य कह दे कि गुरुने इन दो अर्थोंमेंसुं कौनसा अर्थ कहा था ? तब वृद्ध ब्राह्मणीने कहा हे राजा तूं सत्य सत्य जो होवे सो कह दे क्योंकि सत्यसेंही मेघ वर्षता है, और सत्यसेंही देवता सिद्ध होते हैं, सत्यके प्रभावसेंही यह लोक खडा है, और तूं पृथ्वीमें सत्य वादी सूर्यकी तरें प्रकाशक है, इस वास्ते सत्यही कहनां तुमकों उचित है, और हम इस्सें अधिक क्या कहें ? यह वचन सुनकरनी वसुराजाने अपने सत्य बोलनेकी प्रतिज्ञाकों जलाजली दे कर "अजान्मेपान्गुरुव्याख्यदिति" अर्थात् अजाका अर्थ गुरुने मेप (वकरे) कहे थे, ऐसी साखी वसुराजाने कही, तब इस असत्यके प्रभावसें व्यंतर देवताने वसुराजाके सिंहासनकों तोडके वसुराजाकों पृथ्वीके उपर पटकके मारा, तब तो वसुराजा मरके सातमें नरकमें गया, पीछे वसुराजाके राज सिंहासन उपर वसुराजाके आठपुत्र १ पृथुवसु, २ चित्रवसु, ३ वासव, ४ शक्त, ५ विनावसु, ६ विश्वावसु, ७ सूर, ८ महासूर, ये आठो अनुक्रमसें गद्दी ऊपर बैठे. वो आठोंहीकों व्यंतर देवताओंने मार दीये, तब सुवसुनामा नवमा पुत्र तहांसें नाग कर नागपुरमें चला गया और दसमा बृहध्वज नामा पुत्र नाग कर मधुरामे चला गया, और मधुरामे राज करणे लगा. इस बृहध्वजकी संतानोंमें यजुनामा राजा बहुत प्रतिष्ठित हुआ, इस वास्ते हरिवंशका न वृट गया और यजुवंशी प्रतिष्ठित हो गये.

यह राजाके सूर नामक पुत्र हुआ, तिस सूर राजाके दो पुत्र हूवे, एक बड़ा शौरि और दूसरा छोटा सुवीर हुआ, शौरि राजा पिताके पीछे बना, शौरिने मथुराका राज्यतो अपने छोटे नाइ सुवीरको दे दीया, और आप कुशावर्च देशमें जा कर अपने नामका शौरिपुर नगर बसा के राजधानी बनाइ, शौरिका बेटा अंधकविष्णु, आदि पुत्र हुआ, और अंधकविष्णुके दश बेटे हूयें १ समुद्रविजय, २ अक्रोन्ध, ३ स्तिमित, ४ सागर, ५ हिमवान्, ६ अचल, ७ धरण, ८ पूर्ण, ९ अनिचंड, १० वसुदेव, तिनमें समुद्रविजयका बड़ा बेटा अरिष्टनेमि जो जैनमतका बावीशमा तीर्थकर हुआ, और वसुदेवके बेटे प्रतापी कृष्णवासुदेव, अरु बलजङ्गी हूये, तथा सुवीरका बेटा नोजवृष्णि और नोजवृष्णिका उग्रसेन और उग्रसेनका कंस बेटा हुआ, और वसुराजाका दूसरा बेटा सुवसु जो नागके नागपुर गया था, तिसका बृहस्प नामा पुत्र हुआ तिसने राजगृहमें आ कर राज करा, तिसका बेटा जरासिंधु हुआ, यह मैंने यहां प्रसंगसें लिख दीयाहै.

तब उहांतो नगरके लोक और पंडितोंने पर्वतका बहुत उपहास करा, सबने पर्वतको कहा कि तूं फूग है, क्योंकि तेरे साखी वसुको फूग जान कर देवताने मार दीया, इस वास्ते तेरेसें अधिक पापी कौन है ? ऐसें कह कर लोकोनें मिलके पर्वतको नगरसें बाहेर निकाल दीया, तब महाकाल, असुर, उस पर्वतका साहायक हुआ.

यहां रावणने नारदको पूछाकि वो महाकाल असुर कौन था ? नारदने कहा यहां चरणा युगल नामा नगर है, तिसमें अयोधन नामा राजा था, तिसकी दिति नामा नार्याथी, तिन दोनोंकी सुलसा नामक बहुत रूपवान् बेटी थी, तिस सुलसाका स्वयंवर उसके पिताने करा उहा और सर्व राजे बुजवाये, तिन सर्व राजाओंमेंसूं सगर राजा अधिक था तिस सगरराजाकी मंदोदरी नामा रणवासकी दरवाजेदार सगरकी आज्ञासें प्रति दिन अयोधनराजाके आवासमें जाती हूइ, एकदिन दिति घरके बागके फलधीरमे गइ, और सुलसाके साथ मंदोदरीनी तहां आ गइ, तब मंदोदरी, सुलसा और दिति इन दोनोंकी बात सुननेके वास्ते तहां ठिप गइ, तब दिति. सुलसाकों कहने लगी, हे बेटी ! मेरे मनमें इस तेरे स्वयंवरमे बड़ा शक्य है, तिसका उधार करना तेरे अधीन है, इस वास्ते तूं सुनले मूलसें

श्रीकृपणदेव स्वामीके जगत अरु बाहुवली यह दो पुत्र हूये, फेर तिनके दो पुत्र हूये तिनमे जगतका सूर्यवश और बाहुवलीका चंद्रवश जिनोसँ सूर्य वंश और चंद्रवंश चले है. चंद्रवंशमें मेरा नाइ तृणविंडनामा हुआ, तथा सूर्यवंशमें तेरा पिता राजा आयोधन हुआ, और आयोधन राजाकी बहिन सत्यवशा नामा तृणविंडकी चार्या हुई, तिसका बेटा मधुपिंगल नामा मेरा जत्रीजा है, तो हे सुंदरी ! मैं तेरेको तिस मधुपिंगलको दीया चाहती हूं, और तूतो क्या जाने स्वयंवरमें किसको देइ जावेंगी ? मेरे मनमें यह शक्य हे इस वास्ते तूने स्वयंवरमें सर्वराजाओंको ठोडके मेरे जत्रीजे मधुपिंगलको वरना, तब सुलसाने माताका कहना स्वीकार कर लीया, और मंदोदरीने यह सर्ववृत्तांत सुन कर सगर राजाको कह दीया, तब सगर राजाने अपने विश्वनूतिनामा पुरोहितको आदेश दीया, वो विश्वनूति बडा कवि था उसने तत्काल राजाके लक्षणोंकी संहिता बनायी तिस संहितामें ऐसे लिखा कि सगर तो शुनलक्षण वाला बन जावे और मधुपिंगल लक्षण हीन सिद्ध हो जावे, तिस पुस्तकको संदूकमें बंद करके रख ठोडा जब सब राजा आ कर स्वयंवरमें एकिके बैठे, तब सगरकी आज्ञासे विश्वनूतिने वो पुस्तक काटा अरु सगरने कहा कि जो लक्षण हीन होवे, तिसको यातो मार देना, अथवा स्वयंवरसे बाहिर निकाल देना, यह कहना सबोंने मान लीया, तब तो पुरोहित यथायथा पुस्तक वांचता जाता है, तथा तथा मधुपिंगल अपनेको अपलक्षण वाला मान कर लज्जावान् होता जाता है, और स्वयंवरसे आपही निकल गया, तब सुलसाने सगरको वर लीया, दूसरे सर्व राजा अपने अपने स्थानोंको चले गये, अरु मधुपिंगल तो उस अपमानसे बाल तप करके साठ हजार वर्षकी आयुवाला कालनामा असुर परमधार्मिक देव हुआ, तब अधिज्ञानसे सगरका कपट जो उसने सुलसाके स्वयंवरमें फूटा पुस्तक बनाया था, और अपना जो अपमान हुआ था, सो देखा जाना, तब विचार करा कि सगर राजादिकोंको मैं मारुं ? तब तिनके विद् देखने लगा, जब शुक्तिमती नगरीके पास पर्वतको देखा, तब ब्राह्मणका रूप करके पर्वतको कहने लगा कि हे पर्वत ! मैं तेरे पिताका मित्र हूं, मेरा नाम शान्दिव्य है, मैं और तेरा पिता हम दोनो साथ होकर गौतम उपाध्यायके पास पढ़े थे, मैंने सुना था कि नारदने और दूसरे लोकोंने तुजे

बहुत डुखी करा, अब मैं तेरा पक्ष पुरंगा, और मंत्रों कर कें लोकोंको विमोहित करुंगा, यह कह कर पर्वतके साथ मिलके लोकोंको नरकमें मालने वास्ते तिस असुरने बहुत व्यामोह करा, व्याधि नूतादि दोष लोकोंको कर दीये, पीछे उहां जो लोक पर्वतका वचन मान लेता था, तिसको अज्ञा कर देताथा, शान्तिव्यकी आज्ञासे पर्वतनी लोकोंको अज्ञा करने लगा, उपकार करके लोकोंको अपने मतमें मिलाता जाता था, तब तिस असुरने सगर राजाको तथा तिसकी राणीयोंको बहुत नारी रोगादिकका उपद्रव करा, तब तो राजानी पर्वतका सेवक बना, अरु पर्वतने शान्तिमिलके साथ मिलके तिसका रोग शान्ति करा, तब पर्वतने राजाको उपदेश करा कि हे राजा ! सौत्रामणि नामा यज्ञ करके, मद्यपान अर्थात् सराव पीनेमें दोष नहीं, तथा गोसव नामा यज्ञमें अगम्य स्त्री ( चांमाली ) आदि तथा माता वहिन, बेटी आदिसें विषय सेवन करना चाहिये, मातृमेधमे माताका और पितृमेधमें पिताका वध अंतर्वेदी कुरुक्षेत्रादिकमें करे, तो दोष नहीं, तथा कब्रुकी पीठ ऊपर अग्नि स्थापन करके तर्पण करे, कदाचित् कब्रु न मिले तो शुद्ध ब्राह्मणके मस्तककी टटरी उपर अग्नि स्थापन करके होम करे, क्योंकि टटरीनी कब्रुकि तरें होती है. इस बातमें हिंसा नहीं है, क्योंकि वेदोंमें लिखा है, श्लोक ॥ सर्वपुरुषैववेदं, यज्ञतयज्ञविश्यति ॥ इशानोयं मृतत्वस्य, यदन्नेनातिरोहति ॥१॥ इसका नावार्थ यह है, कि जो कुठ है, सो सब ब्रह्मरूपही है, जब एकही ब्रह्म हुआ, तब कौन किसिकों मारता है ? इस वास्ते यथारुचिसें यज्ञोमे जीवहिंसा करो, और तिन जीवोंका मांस नक्षण करो, इसमें कुठ दोष नहीं. क्योंकि देवोदेश करनेसे मांस पवित्र हो जाता है, इत्यादि उपदेश देकर सगरराजाको अपने मतमें स्थापन करके अंतर्वेदी कुरुक्षेत्रादिमें वो पर्वत यज्ञ कराता हुआ तब कालासुरने अब सर पा करके राजस्रयादिक यज्ञनी कराता हुआ, और जो जीव यज्ञमें मारे जाते थे, तिनको विमानोंमे बैठाके देवमायासे दिखाता हुआ, तब लोकोंको प्रतीत था गइ पीछे वो नि.शंक होकर जीवहिसारूप यज्ञ करने लगे और पर्वतका मत मानने लगे, सगरराजानी यज्ञ करनेमें बड़ा तत्पर हुआ, सुजता और सगर दोनों मरके नरकमें गये, तब माहाकालासुरने सगर राजाको नरकमें मार पीटादि महाड ख डेके अथवा वैर लीया, इस वास्ते



हे रावण ! पर्वत पापीसँ यह जीवहंसारूप यह विशेष करके प्रवर्ष हूये हैं. हे राजा रावण ! तो यह यह तैने निषेध करा. यह कथा सुनके राजा रावणने प्रणाम करके नारदको विदा करा, इस तरसँ जैन मतके शास्त्रोंमें वेदोंकी उत्पत्ति लिखी है सो आवश्यकसूत्र, आचारदिनकर, त्रैशुलश लाका पुरुष चरित्रमें सर्व लिखा है, तांहासँ देख लेना.

और इस वर्तमान कालमें जो चारों वेद है इनकी उत्पत्ति मात्र मो कृमूलर साहिव अपने बनाये संस्कृत साहित्य ग्रंथमें तो ऐसा लिखते हैं, कि वेदोंमें दो जाग है, एक ऊदोजाग, दूसरा मंत्र जाग है, तिनमें ऊदोजागमें इस प्रकारका कथन है, जैसे अज्ञानीके मुखसँ अकस्मात् वचन निकला हो, तैसेँ इसकी उत्पत्ति एकतीससौ वर्षसँ हूइ है, और मंत्रजागको बने हूये उनतीससौ वर्ष हूये हैं, इस लिखनेसँ क्या आश्चर्य है ? जो कि सीने उलट पुलटके फेर नवीन वेद बना दीयेँ हों. इन वेदों ऊपर श्वषट, सायण, रावण, महीधर, अरु शंकराचार्यादिकोंनें जाप्य बनाये हैं, टीका, दीपिका, रची हैं, फेर अब उन प्राचीन जाप्य दीपिकाको अयथार्थ जा नकेँ दयानंदसरस्वती स्वामि अपणों मतके अनुसार नवीन जाप्य बना रहे है, परंतु पंडित ब्राह्मण लोक, दयानंद सरस्वतीके जाप्यको प्रामाणिक नहीं मानते हैं अब देखा चाहियेँ क्या होता है ? और जैनमत वालोंनें तो जबसँ उनके शास्त्रोंके लिखने मुजब आर्य वेद, बिगाडे गये उत्तीदिनसँ वेदोंको मानने ठोड दीये हैं ॥ इतिवेदोत्पत्तिः ॥

जब श्रीरूपनदेवजीका कैलास पर्वतके उपर निर्वाण हुआ, तब सर्व देवता निर्वाण महिमा करनेकोँ आये, तिन सर्व देवताओंमेंसँ अग्निकुमार देवतानेँ श्रीरूपनदेवकी चितामें अग्नि लगाइ, तबसेँही यह श्रुति लोकमें प्रसिद्ध हूइ है "अग्निमुखावैदेवा" अर्थात् अग्निकुमार देवता सर्वदेवताओंमें मुख्य है, और अल्पबुद्धियोंनें तो यह श्रुतिका अर्थ ऐसा बनालीया है कि अग्निजो है, सो तेतीसकोड देवताओंका मुख है. यह प्रभुके निर्वाणका स्वरूप सर्व आवश्यक सूत्रसँ जान लेना.

जब देवताओंने श्रीरूपनदेवकी दाढा वगैरे जीनी, तब श्रावक ब्राह्मण मिलकर देवताओंकोँ अतिनक्तिसँ याचना करते हूये, तब वे देवता तिनकोँ बहुत जान करकेँ बडे यत्नसँ याचनेके पीडे हूये देख कर कहते हूये कि

अहो याचका ! अहो याचका तबहीसें ब्राह्मणोंको याचक कहने लगे, तब ब्राह्मणोंने श्रीरूपनदेवकी चितामेंसें अग्नि ले कर अपने अपने घरोंमें स्थापन करते दूये, तिस कारणसें ब्राह्मणको आहिताग्रय कहने लगे.

श्री रूपनदेवकी चिता जले पीठें दाढादिक सर्व तो देवता ले गये, शेष नरम अर्थात् राखा रहगयी सो ब्राह्मणोंने थोड़ी थोड़ी सर्व लोकोंको दीनी, तिस राखको लोकोंने अपने मस्तक ऊपर त्रिपुंजाकारसें लगायी, तबसें त्रिपुंजलगानां, गुरु दूआ. इत्यादि बहुत व्यवहार तबसेंही चला है.

जब नरतने कैलास पर्वतके उपर सिंहनिपया नामा मंदिर बनाया, उसमें आगे होनेवाले त्रेवीश तीर्थकरोंके और श्री रूपनदेवजीकी मिलकर चौबीश प्रतिमाकी स्थापना करी, और मंमरत्नसें पर्वतको ऐसें ढीला कि जिस उपर कोइ पुरुष पगोंसें न चढ सके उसमें आठ पद ( पगथीए ) रके इती वास्ते इन कैलास पर्वतका दूसरा नाम अष्टा पद कहते है, तब सेंही कैलास महादेवका पर्वत कहलाया. महादेव अर्थात् बडेदेव सो रूपनदेव तिसका स्थान कैलास पर्वत जाननां.

नरत अरु बाहुबलि यह दोनी दीक्षा लेके मोक्ष गये, तब नरतके पीठें सूर्ययश गद्दी ऊपर बैठा, तिसकी औलाद सूर्यवशी कहलाये, तिसके पीठें सूर्ययशका बेटा महायश गद्दी उपर बैठा, ऐसेंही अतिवल, महावल, ते जवीर्य, कीर्त्तिवीर्य अरु दंनवीर्य, ये आठ अनुक्रमसें अपने अपने बापकी गद्दी उपर बैठे, अपने अपने राजका प्रबंध करते रहे, परंतु नरतके राजसें इनोंने आधा ( तीन खंफका ) राज्य करा, और अंतें नरतकी तरें राज्य तोड कर मोक्षमें गये, इनके पीठें गद्दी ऊपर असंख पाट दूये, तिनकी अवस्था चितांतरगंमिकासे जान लेनी यावत् जितशत्रुराजा दूये ॥ इति संक्षेपतः श्रीरूपनाधिकार. संपूर्णः ॥

अब अजितनाथ स्वामीके वखतका स्वरूप लिखते हैं. अयोध्या नगरमें श्रीनरतके पीठें जब असंख्य राजा हो चुके, तब इक्ष्वाकुवंशमे जितशत्रु राजा दूआ, विनीता नगरीकाही दूसरा नाम अयोध्या है, परंतु अब जो अयोध्या है सो वो अयोध्या नहीं वो तो कैलास पर्वतके पास थी, और यह तो नवीन अयोध्या उसके नामसें बसी है, जितशत्रु राजाका गंठा नाइ सुमित्र युवराज था, जितशत्रुकी विजया देवी राणी थी,

तिसके चौदह स्वप्न पूर्वक अजितनाथ नामा पुत्र हुआ, और सुमित्रकी राणी यशोमतीकींजी चौदह स्वप्न देखने पूर्वक सगरनामा पुत्र हुआ जब दोनों यौवनवंत हुए तब जितशत्रु और सुमित्रतो दीक्षा लेके मोक्ष रूप हो गये. तब श्रीअजितनाथ राजा हुये अरु सगर युवराजा हुये कितनेक काल राज करके श्री अजितनाथजीने तो स्वयमेव दीक्षा ले कर तप करा, और केवलज्ञान पा कर दूसरा तीर्थकर हुआ पीछे त गर राजा हुआ, सो सगर दूसरा चक्रवर्ति हुआ है, यह सगर राजाने जरतकी तरें पट् खंनका राज्य करा, यह सगर राजाके जन्हु कुमार प्रमुख शाठ हजार वेटे हुये, तिनोंने दंभ रत्नसें गंगा नदीको अपने असली प्रवाहसें फेरके और कैलासके गिरदनवाह खाइ खोदके उस खाइमें गंगाको लाके गेरा, क्योंकि उनोंने विचार करा था कि हमारे बड़े ज रतने जो इस पर्वत ऊपर सुवर्णरत्नमय श्रीरूपनादि तीर्थकरोंका मंदिर बनाया है, तिसकी रक्षा वास्ते इस पर्वतके चारों उर खाइ खोद कर व समें गंगा फेर देउं, जिससें तीर्थकी विशेष रक्षा हो जावेगी, तिन शाठ हंजारको नाग देवताने मार दीया, क्योंकि खाइ खोदने और जल जरनेसें उनको तकलीफ पहुंची थी, तब गंगाके जलनें देशमें बड़ा उपद्रव करा, तब सगरराजाका पोता जन्हुका वेटा जगीरयने सगरकी आज्ञासें दंभ रत्नसें नूमि खोदके गंगाको समुद्रमें मिलाया, इसी वास्ते गंगाका नाम जा न्हवी और जागीरथी कहा जाता है, सगरराजाने श्रीशत्रुंजय तीर्थ ऊपर श्रीजरतके बनाये रूपनदेवजीके मंदिरका उद्धार करा, तथा और जैनती र्थिकांजी उद्धार करा, तथा यह समुद्रनी जरतक्षेत्रमें सगरही देवताके सह्यसें लाया, लंकाके टापूमें वैताढ्य पर्वतसें सगरकी आज्ञासे घनवाहन प हिला राजा हुआ, और लंकाके टापूका नाम राक्षस द्वीप है तिसका यह हेतु हैकि घनवाहन राजाके वसके राक्षस कहलाये, इसी वसमें राजा रा वण और विन्नीपणादि हुये है. इत्यादि सगरचक्रवर्तीके समयका हाल त्रेशठ शलाका पुरुष चरित्रसें जान लेनां, क्योंकि तिस चरित्रके तेजीस हंजार काव्य है इस वास्ते मैं सारा हाल उसका इस ग्रंथमें नहीं लिख सका हूं, परंतु संक्षेप मात्र वृत्तांत लिखुंगा. सगरचक्रवर्ति राज्य करके पीछे श्री अजितनाथजीके पास दीक्षा ले कर, संयम तप करके केवलज्ञान पा

कर मोक्ष पहुंचे, और अजितनाथ स्वामीजी समेतशिखर पर्वतके ऊपर शरीर ठोडकें मोक्ष गये, श्रीकृष्णदेव स्वामीके निर्वाणसें पंचाश लाख कोड़ी सागरोपमके व्यतीत दूयां श्रीअजितनाथ तीर्थकरका निर्वाण दूया तिनोके पीठें तीस लाख कोड़ी सागरोपम व्यतीत दूये, श्रीसंजवनाथजी तीसरे तीर्थकर दूये, राज्य सर्व सूर्यवशी, चंद्रवशी, और कुरुवशी, आदि राजाओंके धरानेमें रहा ॥ इति श्रीअजितनाथ और सगरचक्रवर्तीका अधिकार संपूर्ण ॥

अब श्रावस्ती नगरीमें इन्द्राकुवशी जितारिराजा राज्य करता था, ति सकी सेना नामें पटराणी थी, तिनोका संजव नामा पुत्र तीमरा तीर्थकर दूया, यह चौबीसही तीर्थकरोंका वर्णन प्रथम परिच्छेदमें यंत्र और वाचामें लिख आये हैं. इस वास्ते यहां संक्षेपसें लिखेंगे. और तीर्थकरोंके आपसमें जो अंतरकाल है सोची यंत्रोंमें देख लेनां. इति तृतीय तीर्थकरवृत्तात्

इनके पीठें अयोध्यानगरीमें इन्द्राकुवशी संवरराजाकी सिद्धार्था नामक राणी तिनोका पुत्र अजिनंदन नामक चौथा तीर्थकर दूया पीठें अयोध्या नगरीमें इन्द्राकुवशी मेघराजाकी सुमंगला राणी तिनोकापुत्र सुमतिनाथ नामक पांचमां तीर्थकर दूया, पीठें कौसबी नगरीमें इन्द्राकुवशी श्रीधरराजाकी सुसीमा राणी तिनोका पुत्र पद्मप्रजनामक ठठा तीर्थकर दूया, पीठें वाणारसी नगरीमें इन्द्राकुवशी प्रतिष्ठराजाकी पृथ्वी नामाराणी तिनोका पुत्र श्रीसुपार्थनाथ नामा सातमा तीर्थकर दूया, पीठें चंद्रपुरी नगरीमें इन्द्राकुवशी महासेन राजाकी लक्ष्मणा नामे राणी तिनोका पुत्र श्री चंद्रप्रज नामा आठमां तीर्थकर दूया, पीठें काकंदी नगरीमें इन्द्राकुवशी सुग्रीवराजा की रामा नामक राणी तिनोका पुत्र श्रीसुविधिनाथ अपरनाम पुष्पदंत नामक नवमा तीर्थकर दूया.

यहां तक तो सर्व ब्राह्मण जैनधर्मों आवक और आर्य चारों वेदोंके पढ़ने वाले बने रहे, जब नवमे तीर्थकरका तीर्थ व्यवच्छेद हो गया, तबसें ब्राह्मण मिथ्यादृष्टि और जैनधर्मके द्वेषी और सर्व जगत्के पूज्य कन्या, नृमि, गोदानादिकके लेने वाले, सर्व जगत्में उत्तम और सर्वके हर्ता कर्ता मतोंके मालक बन गये क्योंकि गुना घर देखके कुत्तानि आटा खा जाता है, और जो जगत्में पाखंड तथा तुरे तुरे देवतादिकोंकी पूजा

है, तथा औरनी जो जो कुमार्ग प्रचलित हुआ है, वे सर्व ऊनोंहीने चलाये हैं, मानो आदीश्वर जगवानकी रची हुई सृष्टिरूप अमृतमें जहर मालने वाले हूये, क्योंकि आगे तो जैनमतके और कपिलके मतके विना और को इनी मत नहीं था कपिलके मतवालेनी श्रीआदीश्वर अर्थात् रूपनदेवकोही देव मानते थे, निदान यह इस हुंमा अवसर्पिणमें आश्चर्य गिना जाता है.

तीस पीठें जद्विलपुरनगरमें इक्काकुवंशी वृद्धरथराजाकी नंदा नामा राणी तिनोंका पुत्र श्री शीतलनाथनामा दशमा तीर्थंकर हुआ, इनही तीर्थंकरके शासनमें हरिवंश उत्पन्न हुआ है, तिसकी कथा लिखते हैं.

कौशांविनगरीमें वीरा नामा कोली रहताथा, तिसकी बनमाला नामा स्त्री अत्यंत रूपवंती थी सो नगरके राजाने तीनके अपनी राणी बना लेई, वीरा कोली स्त्रीके विरहसें बाबला हो गया हा बनमाला हा बनमाला जैसे कहता हुआ नगरमें फिरने लगा एकदा वर्षाकालमें राजा बनमालाके साथ महिलके जरोखेमें बैठा था, तब राजा राणीने वीरेको तिस हालमें देखके बड़ा पश्चात्ताप करा, अरु बिचार करने लगे कि हमने यह बहुत बुरा काम करा,ऊसी वखत वीजली गिरनेसें राजा राणी दोनो मरके हरिवासदे त्रमें युगल स्त्री पुरुष हो गये, तब वीरा कोली राजा राणीका मरण सुनके राजी हो गया पीठें तापस बनके तप करा,अज्ञान तपके प्रभावसें किञ्चिप देवता हुआ तब अवधिज्ञानसें राजा राणिकों युगलिये हूये देख कर विचार करा कि यह नइक परिणामी और अल्पारनी है, इस वास्ते मरके देवता होवेंगे, तो फेर में अपना वैर किससे लेकंगा ? इस वास्ते ऐसा करुं कि:- जिससें ये दोनों मरके नरकमें जावे, ऐसा विचार के तिन दोनोंको तहांसें उठा करके नरत क्षेत्रमें चपा नगरीके इक्काकुवंशी चमकीर्ति राजा अपुत्रिया मरा था, लोक सब चितामें बैठे थे कि कौन यहांका राजा होवेगा ? पीठें तिस देवतानें ये दोनो उनको सोंपे, और कहाकि यह तुमारा हरिनामा राजा हुआ, इसकी यह हरणी नामा राणी है, इनके खाने वास्ते तुमने फलमिश्रित मांस देना और इनसें शिकारनी कराना तब लोकोंने तैसेही करा वे दोनों पापके प्रभावसें मरके नरकमें गये, और उनकी औलाद सब हरिवंशकी कहलायें इसी वंशमें चसुराजा हुआ इति हरिवंशोत्पत्ति ॥ इनश्री शीतलनाथजीकानी शासन विच्छेद गया, इसी-

सत्रें पंद्रहवें तीर्थकर तक सात तीर्थकरोंका शासन विभेद होता रहा, और मिथ्याधर्म बढ गये.

तिस पीठें सिंदपुरी नगरीमें इदवाकु वंशी विष्णुराजा दूआ तिसकी विष्णु श्रीराणी तिनोंका पुत्र श्रीश्रेयांसनाथ नामा इग्यारमां तीर्थकर दूआ, तिनके समयमें वैताढघपर्वतसें श्रीकंठ नामा विद्याधरके पुत्रने वझोत्तर विद्याधरकी बेटीकों हरके अपने बहनोइ राक्षसवंशी लंकाका राजा कीर्त्ति धवलकी शरण गया, तब कीर्त्तिधवलने तीनसौ योजन परिमाण वानर द्वीप उनके रहनेकों दीया, तिनोंके संतानोंमेंसें चित्र विचित्र विद्याधरोने विद्यासें बंदरका रूप बनाया, तब वानर द्वीपके रहनेसें और वानरका रूप बनानेसें वानरवशी प्रसिद्ध दूये, तिनोंहीकी औजादमें बाली और सुग्रीवादिक दूये हैं.

तथा श्रेयांसनाथके समयमें पहिला त्रिष्टुट नामा वासुदेव हरिवंशमें दूआ, तिसकी उत्पत्ति ऐसें हैं:- पोटनपुर नगरमें हरिवंशी जितशत्रु नामा राजा दूआ, तिसकी धारणी नामा राणी थी, तिसका अचल नामा पुत्र और मृगावती नामा बेटीथी,सो अत्यंत रूपवान् औ यौवनवती थी, उसकों देखकें उसके पिता जितशत्रुने अपनी राणी बना लीनी तब जो कोने जितशत्रु राजाका नाम प्रजापति ररका, अर्थात् अपनी बेटीका पति ऐसेा नाम ररका, तबहीसें वेदोंमें यह श्रुति लिखी गइ " प्रजापतिर्वैस्वा इहितरमन्य ध्यायद्विनित्यन्यआहुपुरसमित्यन्येतामृश्योजूत्वा तदसावावि त्योचवत्" इसका नावार्थ यह है कि:-प्रजापतिब्रह्मा अपनी बेटीसे विषय सेवनेकों प्राप्ति होता दूआ, हमारे जैनमतवालोंकी तो इस अर्थसें कुछ हानी नहीं, परंतु जिनजोकोने ब्रह्माजीकों वेदकर्त्ता हिरण्यगर्भके नामसें इश्वर माना हैं, औ इस कथाकों पुराणोंमें लिखा है, उनका फजीता तो जरूर दूसरे मतवाले करेंगे ? इसमें हम क्या करे ? क्योंकि जो पुरुष अपने हाथोंसेंही अपना मुह फाला करे, तब उसकों देखने वाले क्योंकर हांसी न करेंगे ? यद्यपि मीमांसाके वार्त्तिककार कुमारिलनें इस श्रुतिके अर्थके कलंक दूर करणेकों मनमानी कल्पना करी है, तथा इस कालमें दयानंद सरस्वतीनेजी वेदश्रुतियोंके कलंक दूर करनेकों अपनी बनाइ ना प्यमें खूब अर्थोंके जोड तोड लगाये है, परंतु जो पुराणवालेने कथानक

लिखा हैं, तिसकों क्योंकर ठिपा सकेंगे ? इसमें यह मशल मगाहूर है कि:- वृन्दकी बात तो विलायत गइ अथ क्यों घडे रुडहाते दौ अडा हमारे मतमेंतो वेदश्रुति और ब्रह्मा (प्रजापति) का अर्थ यथाथेही कराई. अरु जब त्रिष्टु और अचल दोनो योवनवंत हूये तब तिनोने त्रिखंका राजा अश्वघ्रीवकों मारकें तीन खंका राज्य करा.

तिस पीठें चंपा पुरीका इह्वाकुवंशी वसुपूज्य नामा राजा हूया, तिसकी जया नामा राणी तिनोका पुत्र श्रीवासुपूज्यनाथ नामा बारहवां तीर्थ कर हूया, तिनोके वारें दूसरा द्विष्टु वासुदेव और अचल बलदेव हूये. और इनका प्रतिशत्रु रावण समान तारक नामा दूसरा प्रतिवासुदेव हूया, इन सर्व वासुदेव और चक्रवर्ती आदिकोंका संपूर्ण वरनन त्रेशठशलाका पुरुष चरित्रसें जान लेनां.

तिस पीठें कपिलपुर नगरमें इह्वाकुवंशी कृतवर्मा नामा राजा हूया, तिसकी श्यामा नामा राणी, तिनोका पुत्र श्री विमलनाथ नामा तरेहवां तीर्थकर हूया, तिनोके वारें तिसरा स्वयंभु वासुदेव और नइनामा बल देव तथा मैरक नामा प्रतिवासुदेव हूये.

तिस पीठें अयोध्या नगरीमें इह्वाकुवंशी सिंहसेन राजा हूया तिसकी सुयशाराणी तिनोका पुत्र श्रीअनंताथ नामा चौदहवां तीर्थकर हूया, तिनके वारें चौथा पुरुपोत्तम नामा वासुदेव और सुप्रननामा बलदेव तथा मधुकैटज नामा प्रतिवासुदेव हूये.

तिस पीठें रत्नपुरी नगरीमे इह्वाकुवंशी जानुनामा राजा हूया, तिसकी सुव्रतानामा राणी तिनोका पुत्र श्रीधर्मनाथ नामा पंदरहवा तीर्थकर हूया, तिनके वारे पांचमां पुरुपसिंह नामा वासुदेव और सुदर्शन नामा बलदेव तथा निशुंन नामा प्रतिवासुदेव हूया, यहांतक पांच वासुदेव हूये सो पांचोही, अरिहंतोके सेवक अर्थात् जैनधर्मी हूये.

तिस पीठें पंदरहवे धर्मनाथ और शोलवे श्रीशातिनाथजीके अंतरमे तीसरा मधवा नामा चक्रवर्ती और चौथा सनत्कुमार नामा चक्रवर्ती हूये.

तिस पीठें हस्तिनापुरी नगरीमे कुरुवंशी विश्वज्ञेन राजा हूया तिसकी अचिरा राणी तिनका पुत्र श्रीआतिनाथ नामा हूया सो पहिला गृह्वातमें तो पांचमां चक्रवर्तीथा पीठे दीक्षा लेके केवली होकर शोलवां तीर्थकर हूया.

तिस पीठें हस्तिना पुर नगरमें कुरुवंशी सूरनामा राजा हुआ, तिसकी श्रीराणी तिनोका पुत्र श्रीकुंभुनाथ हुआ, सो प्रथम गृहस्थावस्थामें उद्योग चक्रवर्ती था, अरु दीक्षा लीया पीठें सत्तरहवां तीर्थकर हुआ.

तिस पीठे हस्तिनापुरनगरीमें कुरुवंशी सुदर्शन नामा राजा, हुआ तिसकी देवी राणी, तिनोका पुत्र श्रीअरनाथ हुआ, सो गृहस्थावासमें तो सातवां चक्रवर्ती था और दीक्षा लीया पीठें अष्टारहवां तीर्थकर हुआ.

अष्टारहवें और उन्नीसवें तीर्थकरके अंतरमें आठवां कुरुवंशी सुभुज नामा चक्रवर्ती हुआ यह सुभुजके वखतमेंही परशुराम हुआ इन दोनों का संबंध जैनमतके शास्त्रोंमें जैसे लिखा है तैसेमेंनी यहा लिख देता हूं.

यह कथा योग शास्त्रमें ऐसे लिखी है कि, वसत पुर नामा नगरमें उद्योगवंश नामा अर्थात् जिसका कोइनी संबंधी नही था ऐसा अग्नि नामा एक लडका था सो अग्नि एकदा समये किसी साथवाराके साथ देशांतरकों जाता हुआ मार्गमें साथसें जलके जंगलमें एक तापसके आश्रममें गया, तब कुलपति तापसने तिसको अपना पुत्र बनाके रखलीया, पीठें तहां अग्निने बडाजारी घोर तप करा और बडा तेजस्वी हुआ, जगतमें यमदग्नि तापसके नामसें प्रसिद्ध हुआ इस अवसरमें एक जैनमति विश्वानर नामा देव और दूसरा तापसोंका जक्त ध्वनंतरि नामा देव, यह दोनो देव परस्पर विवाद करने लगे तिसमें विश्वानर तो ऐसा कहने लगा कि:- श्रीअर्हंतका कहा धर्म प्रामाणिक है? और दूसरा कहने लगा कि तापसोंका धर्म सच्चा है, तब विश्वानरने कहाकि दोनो धर्मके गुरुओं की परीक्षा कर लो तिसमेंनी अर्हंतधर्मके तो जघन्य गुरुजो होवे तिसकी और तापस धर्मके उत्कृष्ट गुरु जो होवे, तिसका धैर्य देख लो, तब मिथिला नगरीका पद्मरथ राजा नवाही जिन धर्मा हो कर जावयति हुआथा सो चपानगरीमें गुरुओंके पास दीक्षा लेने वास्ते जाताथा तिसको पथमें तिन दोनो देवताओने देखा, तब रस्तेमें डुख देनेवाले बहुत कंठे कंठरे बना दीये, तथा रस्तेके सिवाय दूसरे स्थानमें बहुत कीड़े आदि जीव हरजगें बना दीये तब राजा जावयतिके जावोसें कमल समान कोमल, नंगे पगोंसें उन कांटे कंठरोके उपर चला जाता है, पगोंमेंसें रुधिरकी ततीरीयां बूटती है, तोनी जीवों संयुक्त भूमि उपर नहीं चजता है, तब देवता



अोंने गीत नाटकका बड़ा प्रारंभ करा तोजी वो राजा, होनायमान, न  
 आ तब दोनों देवता सिद्धपुत्रोंका रूप करके राजाको कहने लगे हे मह  
 नाग तेरी आयु अति बहुत है, तूं स्वच्छंद नोगविलास कर क्योंकि यौवनमें  
 तप करना ठीक नहीं इस वास्ते जब तूं वृद्ध हो जावेगा, तब दीक्षा ले  
 लीजो यह बात सुन कर राजा कहने लगा यदि मेरा बहुत आयु है, त  
 व मैं बहुत धर्म करुंगा क्योंकि जितना ऊँचा पाणी होता है, तितनीही कम  
 लकी नाजिन्नी बढ जाती है और यौवनमें जो इन्द्रियोंको जीतना है, सोइ अ  
 सली तप होता है तब तिन देवताओंने जानां यह तो कदापि चलायमान  
 न होगा, पीछे वो दोनों देवता मिल कर सर्वसें उच्छृष्ट जमदग्नि तापसके पास  
 परीक्षा करणोंको गये, तब तिनोंने जिसकी बड़बृहकी जटाकी तरे तो धरतीसें  
 जटा लग रही है, और पगोमे सर्पोंकी बिवीया बन गई है, ऐसे हालमें  
 जमदग्निको देखा, तब वो दोनों देवतानें देव मायासें जमदग्निकी दाहीमें  
 घोंसला बनाकर चिडा और चिडी बनकर घोंसलेमें दोनों बेठ गये पीछे  
 चिडा चिडीसें कहने लगा मैं हिमवत पर्वतमें जाउंगा तब चिडी कहने  
 लगी मैं तुजे कजी न जाने देउगी, क्योंकि तूं तहां जाके किसी और चि  
 डीसें आसक्त हो जावेगा, फेर मेरा क्या हाल होवेगा ? तब चिडा कहने  
 लगा कि जो मैं फिर कर न आउ, तो मुजे गौ घातका पाप लगे, तब  
 चिडी कहने लगी मैं तेरी शपथको नहीं मानती हों, जो मैं सपथ ( सौ  
 गंद ) कहूं वो तूं करे, तो मैं जाने देउगी, तब चिडेने कहा तूं कह वे तब  
 चिडी कहने लगी कि जो तूं किसी चिडीसें घारी करे तो इस जमदग्नि  
 का जो पाप है, सो तुजको लगे चिडाचिडीका ऐसा वचन सुणके जम  
 दग्निको क्रोधोत्पन्न हुआ तब दोनों हाथोंसें चिडा चिडीको पकड लीया  
 और कहता हुआ कि मैं तो बड़ा डुप्कर तप जो पापोंका नाश करने वाला  
 है, सो कर रहा हों तो फेर मेरेमें ऐसा कौनमा पाप जेप रह गया है जिसे  
 तुम मुजे पापी बतलाते हो ? तब चिडा जमदग्निको कहता है, हे ऋषि !  
 तू हमारे उपर कोप मत कर, क्योंकि हमने ऊठ नहीं कहा है, और जो  
 तेरेको अपने तपका धर्म है, सो तप तेरा निष्फल है, क्योंकि तुमारे  
 शास्त्रोमे लिखा है, जो “ अयुत्रस्यगतिर्नास्ति ” अर्थात् पुत्र रहितकी गति  
 नहीं यह तुमने शास्त्रमे नहीं सुना ? तो जिसकी शुभगति न हूइ तिससें

अधिक और पापी कौन है ? तब जमदग्निने शोचा कि हमारे शास्त्रमें तो  
 जैसे विद्येते कहा है, तैसेही है तब मनमें विचारा जब मेरे स्त्री, और  
 पुत्र नहीं, तब मेरा सर्व तप ऐसा है, जैसा पाणीके प्रवाहमें सूतना,  
 तैसा है, पीठें जमदग्निके मनमें स्त्रीकी चाहना उत्पन्न हुई, यह देखके  
 ध्वन्तरि देवता श्रावक जैनधर्मी हो गया अरु उहांसे दोनो देवता अट्ट  
 भ्य हो गये और जमदग्नि तहांसे ऊठके नेमिक कोष्टक नगरमें पहुचा ति  
 स नगरमें जितशत्रुराजा था. तिसके बहुत बेटियां थी तिस राजा पासों  
 एक कन्या मांगु ? ऐसा विचार किया ? राजाजी आसनसें उठके और  
 हाथ जोडके कहता हुआ कि आप किस वास्ते आये हो ? और मुझे  
 आदेश देओ क्या करूं ? तब जमदग्निने कहा मैं तेरे पास तेरी एक कन्या  
 मागने आया हूं तब राजाने कहा मैरी सौ ( १०० ) पुत्री हैं तिनमेंसू जौ  
 नसी तुमकों बांटे सो तुम लेओ, तब जमदग्नि कन्याओंके सहिलमें गया  
 और कहने लगा कि तुममेंसें जितने मेरी धर्मपत्नी ( स्त्री ) बनना है, सो  
 कह देवे कि मैं तुमारी स्त्री बनूंगी, तब तिन राजपुत्रीयोंने जटाजा और  
 पणित धौलेकेशोंवाला दुर्वल और जीव मांगके खानेवाला जब देखा  
 और उसका पूर्वोक्त वचन सुना तब सचोंने थुंका और कहा कि ऐसी  
 बात कहते हूये तुजकों लज्जा नहीं आती है ? यह बात सुनकर जमद  
 ग्निकों बडा क्रोध चढा, तब विद्याके प्रभावसें उन राजपुत्रीयोंकों कूबडी  
 और महाकुरूपवान् बना दीया, अरु आप तहांसें निकलके सहिलोंके अ  
 गनमें आया, तहां एक ठोटी राजाकी बेटा रेणु पुजमें ( मट्टीके ढेरमें ) खेल  
 रही थी, तिसकों हाथमें बिजोरेका फल ले कर कहने लगा हे रेणुका !  
 तूं मुजकों बांठती है ? तब तिस बालिकाने बिजोरेकों देखके हाथ पसा  
 रा तब मुनिने कहा मुजकों यह बांठती है ऐसैं कहकर मुनिने उसको ले  
 लीया पीठें राजाने कितनीक गौआ और धन देकर लडकीका विवाह उ  
 सके साथ विजिसैं कर दीया. तब जमदग्निने शालियोंके स्नेहसें सर्व क  
 न्याओंकों अज्ञा कर दीया, और तिस रेणुका नार्याको लेकर अपणे आश्र  
 ममें आया पीठें तिस सुधा. मधुर आकृति, हरणीतमान लोनाकीको  
 प्रमसें वृद्धि करता गया, जब जमदग्निकों अंगुलियो ऊपर दिन गिणतेको  
 वो रेणुका सुंदर यौवन कामके लीला वनको प्राप्त हुई, तब जमदग्निने

अग्नि की साक्षी करके रेणुकासें फिर विवाह करा, जब रेणुका कृतकालको प्राप्ति हुई, तब जमदग्नि कहने लगा कि मैं तेरे वास्ते चरु साधता हूँ, चरु "होममें मालनेकी वस्तुओंको कहते है" जिस्सें सर्व ब्राह्मणोंमें उत्तम प्रताप वाला तेरेको पुत्र होवेगा, तब रेणुकाने कहा हस्तिना पुरमें कुरुवशी अनंतवीर्य राजाको मेरी बहिन व्याही है तिसके वास्ते तू कृत्रिय चरुनी साध्य, अर्थात् मंत्रोंसें संस्कार करके सिद्ध कर पीठे जमदग्निने ब्राह्मण चरु तो अपनी जायी वास्ते अरु कृत्रिय चरु तिस जायीकी बहिन वास्ते सिद्ध करा तब रेणुकाने मनमें विचार करा कि मैं जैसें अटवीमें हरिणीकी तरे रहती हूँ, तो मेरा पुत्रनी वैसेही जंगलोंमें रहेगा, इस वास्तेमें कृत्रिय चरु नक्षण करुं, जिस्सें मेरा पुत्र राजा होके इस जंगल वाससें बूट जावे, ऐसा विचारके कृत्रिय चरु खा लीया और ब्राह्मण चरु अपनी बहिनको नक्षण कराया, तब तिन दोनोंके दो पुत्र हूये तिसमें रेणुकाके तो राम नामक पुत्र हुये, और रेणुकाकी बहिनके कृतवीर्य पुत्र हूये, क्रमसें दोनों बडे हूये, राम तो आश्रममें पला, और कृतवीर्य राज महेजोंमें पला, राम तो कृत्रीतेज अर्थात् कृत्रिय पणोंकी तेजी देखाने लगा अन्यदा एक विद्याधर अतिसार रोग वाला तिस आश्रममें आ गया, अतिसारके प्रजावसें आकाशगामिनी विद्या जूल गया, तब तिस मांवे विद्याधरकी रामने औपध पथ्यादि करके नाइकी तरे सेवा करी, पीठे तिस विद्याधरने तुष्ट मान होके रामको परशुविद्या दीनी, तब रामनी सरकडेके वनमें जाकर तिस विद्याको सिद्ध करता हुआ, तिस विद्याके प्रजावसें राम परशुराम नाम करके जगत्में प्रसिद्ध हुआ, एकदा अवसरमें अपना जमदग्नि पतिको पूठके रेणुका बडी उल्लंघासें अपनी बहिनके मिलने वास्ते हस्तिना पुरमें गइ, तहां रेणुकाको अपनी शानि जान कर अनंतवीर्य राजा हसी मश करी करने लागा, और रेणुकाका बहुत सुंदर रूप देख कर कामातुर होके उसके साथ निरंकुश हो कर विषय सेवन करने लगा, तब अनंतवीर्यके जोगसें रेणुकाके एक पुत्र जन्मा, पीठे जमदग्नि पुत्र सहित रेणुकाको आश्रममें ल्याया क्योंकि पुरुष जब स्त्रियोंका लुब्ध हो जाता है तब बहुत ताइसें कोइनी दोष नहीं देखता है, जब परशुरामने अपनी माताको पुत्र सहित देखा, तब क्रोधमें आकर परशुसे अपनी माताका और तिस लड

केका दोनोंका शिर काट माला, जब यह वृत्तांत अनंतवीर्य राजाने सुना, तब क्रोधमें नर कर और फौज ले कर जमदग्नि का आश्रम जाल फूट तोड़ फोर गेरा और सर्व तापसोंको ब्रास मान करा, तब तापसोंने दौ डते दूयां जो रौला करा तिसको परशुरामने सुना और सारा वृत्तांत सु नके परशु लेके राजाकी सेना ऊपर दोडा, परशुरामने परशुसे राजा और राजाकी सेना सुनडोंको काटकी तरे फाडके गेर दीया. आप पीछे आश्र ममें चला गया, उधर प्रधान राजपुरुषोंने अनंतवीर्यके बेटे कृतवीर्यको राजसिंहासन उपर बैठाया, परंतु वो उमरमें ठोटा था, एकदिन अपनी माताके मुखसे अपने पिताके मरणका वृत्तांत सुनके सर्पके मंसे दूयेकी तरे आ कर जमदग्नि को मार दीया, तब परशुराम अपना पिताका वध देखके क्रोधमें जाज्वल मान हो कर हस्तिनापुरमें आके कृतवीर्यको मा रके आप राजसिंहासन उपर बैठ गया, क्योंकि राज्य जो है, सो पराक्र मके आधीन है, तब कृतवीर्यकी तारा नामा गर्जवती राणी परशुरामके नयसे दौडकर किसी जंगलमें तापसोंके आश्रममें गइ, तब तिन तापसोंने दया करके तिस राणीको अपने मछके नौदरेमें निधानकी तरे ठिपाके ररका, तहा तिस राणीके चौदह स्वप्न सूचित पुत्र जन्मा तिसका नाम ति सकी माताने सूचूम ररका, कृत्रिय जो जहां मिलता है, तहांही परशुरा मका कुदाडा जाज्वलमान होजाता है, तब परशुराम परशुसे कृत्रियोंका शिर काट देता है, अन्यदा परशुराम जिहां ठिपी दूइ राणी पुत्रसे रहती थी तिस आश्रममें आया तहां परशुरामका परशु जाज्वलमान दूआ, तब परशुरामने तापसोंको पूठा, क्या यहा कोइ कृत्रिय है, तब तापसोने कहा हम गृहस्थावासमें कृत्रिय थे, तब परशुरामनेजी कृत्रियोंको ठोडके सात वार निःकृत्रिय पृथ्वी करी, अर्थात् सात वार चढाइ करके अपनी जाणमें कोइजी कृत्रिय बाकी नही ठोडा, जैसे अग्नि, पर्वत ऊपर घांसको नही ठोडती है, तैसे परशुरामनेजी जो जो कृत्रिय राजादि प्रसिद्ध थे, तिनोको मारके तिनोकी दाढासे एक थाल नरा, और परशुरामने ठाना निमित्तियेको पूठा कि मेरामरणां किसके हाथसे होगा ? तब निमित्तियेने कहा कि जो तैने दाढासे थाल नरा है, सो थाल जिसके देखनेसे दाढाकी शीर बन जायेगी, और इत सिंहासन ऊपर बैठके जो तिस क्षीरको खा

यगा, तिसके हाथसें तेरा मरणा होवेगा, यह सुन कर परशुरामने दानशाला बनाइ, और दानशालाके आगे एक सिंहासन रचाया, तिस ऊपर ऋत्रियोंकी दाढावाला स्थान रखवाया, अब इधर तापसोंके आश्रममें प्रतिदिन तापस सन्म बालककों लाड लडाते, खिलाते, अंगणके वृक्षकी तरे वृद्धि करते दूये रहते है, इस अवसरमें मेघ नामा विद्याधर कोइ निमित्तियेकों पूठने लगा कि मेरी जो पद्मश्रीकन्या है, तिसका वर कौन होवेगा? तब तिस निमित्तियेने सुन्म वर वतलाया, और उसका सर्व वृत्तांतजी सुना दीया, तब मेघ विद्याधरने अपनी बेटी सुन्मकों व्याही, और तिसकाही सेवक बन गया एकदा कूपके मैमककी तरे और कंही जानेंमे रहित हुआ होया सुन्म अपनी माताकों पूठने लगा कि हे माता! इतनाही लोक है, कि जिसमें हम रहते है, क्या इस्सें अधिकजी है? तब माता कहने लगी हे पुत्र! लोक तो अनंत है, तिसमे मद्धिके पग जितनी जगामें यह आश्रम है, इस लोकमें बहुत प्रसिद्ध हस्तिना पुर-नगर है, तिस नगरीका राजा तेरा पिता कृतवीर्य था, परंतु परशुराम तेरे पिताकों मारके हस्तिना पुरका राजा बन गया है, और तिस परशुरामने निःऋत्रिय पृथ्वी कर दइ है, तिस परशुरामके नयसें हम यहां आश्रममे ठिपे दूये बैठे हैं. अपनी माताका यह कहना सुनके सुन्म नौमकी तरे अर्थात् मंगलके तारेकी तरे लाल हुआ, और तहांसें निकलके सीधा हस्तिना पुरमें आया, तब लोकोंने पूठा कि तूं ऐसा अत्यद्भुत सुंदर किसका बेटा है? तब कहा मै ऋत्रियका पुत्र हूं तब लोकोंने कहा तूं यहां ज्वलती आगमें क्यों आया? तब तिसने कहा मै परशुरामकों मारनेके वास्ते आया हूं, तब लोकोने बालक जानके उसकी बात उपर कुठ ख्याल न करा अब सुन्म सिंहाकी तरे उस पूर्वोक्त सिंहासन उपर जाके बैठा, और तहां देवताके विनियोगसें ढाढाकी क्षीर बन गइ, तिसकों सुन्म खाने लग गया तब तहां जो रखवाले ब्राह्मण थे, वे सर्व सुन्मको मारणेकों उठे, तब मेघनाद विद्याधरने सब ब्राह्मणकों मार दीया तब कंपता हुआ और दो ठोकों चावता हुआ, क्रोधमें जरा हुआ, ऐसा परशुराम कोहाडा (परशु) लेके सुन्मकों मारने आया परशुरामने सुन्मके मारणेकों परशु चलाया वो परशु सुन्मतक पहुंचनेसें पहिलाही आगके अंगारेकी तरे बुज गया,

विद्या देवी जो थी, सो सुजूमके पुण्य प्रजावसें परशुकों ठोड के जाग गइ तव सुजूमनें शस्त्रके अजावसें थालही उठाके परशुरामकों मारा तिस थालका चक्र बन गया, तिस चक्रने परशुरामका मस्तक काट गेरा तिस चक्रसेंही सुजूम आठवां चक्रवर्ति हूआ।

इस कथा उपर लोकोंनें जो यह कथा बना रक्की, सो ठीक नहीं है, सो कथा कहते है. जैसें कि परशुराम परशुसें ह्त्रियोंकों काटता हूआ राम चंडजीके पास पहुंचा और परशुसें रामचंडजीकों मारने लगा, तव राम चंडजीने नरमाइसें पग चंपी करके उसका तेज हर लीया, तव परशुरामका परशु हाथसें गिर पडा, और फिर न उठा सका यह श्रीरामचंड नहीं था, परंतु यहतो सुजूम नामा आठमां चक्रवर्ती था, जिसनें परशुरामका काम तमाम कीया, इस कथाके बनाने वालोंनें परशुरामकी हीनता दूर कनेरकों श्रीरामचंडजीका संबंध लिख दीया है, असली सुजूमचक्रवर्ति लिखने वालोंनें यहनी शोचा होगा एक अवतारने दूसरे अवतारका अंस खींच लीया, इसमें परशुरामकी टाघुता न होवेगी, परंतु यह नहीं शोचा होगा कि दोनों अवतार अज्ञानी बन जायेगे जब परशुराम आपही अपने अंशकों कोहाडेसें काटने लगा, तव तिसमे और अधिक अज्ञानी कौन बनेगा ? जब सुजूम चक्रवर्ति आठमा हूआ, तव जैसे परशुरामने सात वार निःह्त्रिया पृथ्वी करी थी, तैसें सुजूमने पिठले वैरसें इक बीस वार निर्वाहण पृथ्वी करी अपनी जाणमें कोइनी ब्राह्मण जीता नहीं ठोडा, इसी वास्ते इन राजायोंकों ब्राह्मणोंनें दैत्य. राक्षसके नामसें पुस्तकोंमे लिख दीया है, यह दोनों मरके अधोगतिमें गये ॥ इति परशुराम और सुजूमचक्रवर्तिका संबंध संपूर्ण ॥

यह सुजूमचक्रवर्तिसे पहिला इसी अंतरेमें उछा पुरुपुंमरीक वासुदेव तथा आनंद नामा बलदेव और बलि नामा प्रतिवासुदेव हूये, तथा सुजूमके पीठे इस अंतरेमें वृत्त नामा सातमा वासुदेव तथा नद नामा बलदेव और प्रव्हाद नामा प्रतिवासुदेव हूये.

तिस पीठे मिथुला नगरीमें इक्ष्वाकुवशी कुंज राजा हूआ, तिनकी प्रजापती राणी तिनकी पुत्री मल्लिनाथ नामा एगुणवीसमा तीर्थकर हूआ. तिस पीठे राजगृह नगरीमे हरिवशी सुमित्र राजा हूआ, तिसकी

पद्मावती राणी तिनका पुत्र मुनिसुव्रतनामा वीशमा तीर्थकर हुआ, इन दोनों समयमें महापद्म नामा नवमा चक्रवर्ती हुआ, तिसका संबंध ब्रेगल राजाका पुरुष चरित्रसें जान लेना परंतु तिसके नाइ विष्णु कुमारका थोडासा संबंध यहां लिखते है.

हस्तिना पुर नगरमें पद्मोत्तर नामा राजा तिसकी ज्वालादेवी राणी तिनका बडा पुत्र विष्णुकुमार, और ठोटा नाइ महापद्म हुआ, तिस अक्सरमें अवंती नगरीमें श्रीधर्मनामा राजेके मंत्रि नमुचि अपर नाम बल यह नामके मिष्यादृष्टि ब्राह्मणने श्रीमुनिसुव्रत तीर्थकरका शिष्य श्री सुव्रताचार्यके साथ अपनी मतका विवाद करा, वादमें हार गया तब रात्रिकों तलवार लेके आचार्यकों मारने चला, रस्तेमें पग थनये यह स्वरूप राजानें सुनके अपने राज्यसें बाहिर निकाल दीया तब नमुचि बल तहांसें चलके हस्तिना पुरमें युवराज महापद्मकी सेवा करने लगा किसी काममें तुष्ट मान होके महापद्मने तिसकों यथेष्टा वर दीया पीठें पद्मोत्तर राजा और विष्णु कुमार दोनोंने सुव्रत गुरुके पास दीक्षा लेके पद्मोत्तर मोह गयां, और विष्णु कुमार तपके प्रभावसें महालब्धिमान् हुआ इस अवसरमें सुव्रताचार्य फेर हस्तिना पुरमें आये, तब नमुचिबलने विचारा कि यह वैर लेनेका अवसर है, तब महापद्म चक्रवर्तीसें विनति करी कि—मैंने जैसे वेदोंमें कहा है, तैसें एक महायज्ञ करना है इस वास्ते मै पूर्वोक्त वर मांगना चाहता हूं, तब महापद्मने कहा मांग तब नमुचिने कहा मुझे कितनेक दिन तक आपनां सर्व राज दे देवो, यह सुनकर महापद्मने उसके कहे दिन तक सर्व राज उसें दे कर आप अपने अंतउरोमें चला गया, तब नमुचिबलने नगरसें निकलके यज्ञ वास्ते यज्ञ पाडा बनाया, उसमें दीक्षा ले के आसन उपर बैठा तब जैनमतके साधु ठोडके दूसरे सर्व पाखंडी जिकु और गृहस्थ जेटना ले के आये जेट दे के सर्वोंने नमस्कार करा, तब नमुचिबलने पूछा कि नहीं आया होये, ऐसा तो कोइ रहा नहीं ? तब लोकोने कहा कि जैनमती सुव्रताचार्य वर्जके सर्व दर्शनी आ गये है, तब नमुचिबलने यह ठिड प्रगट करके और क्रोधमें जरके सिपाही बोलानेको जेजे, और कहला जेजा कि राजा चाहो कैसाही हो, तो जी सर्वकों मानने योग्य है, उसमेंनी साधुओंको तो विशेष करके मान

नां चाहियें, क्योंकि राजासें उपरांत जैसे अनाथ लिंगियोंकी रक्षा करने वाला कौन है? तथा मेरा तुम कुठ करने समर्थ नहीं. और वडे अग्नि मानी हो, तथा हमारे धर्मके निदक हो इस वास्ते मेरे राजसें बाहिर हो जाऊ, जो रहेगा, उसको मैं मार मालूंगा इसमें मुझे पापनी नहीं होगा, तब गुरुने आ कर मीठे वचनसें कहा कि हमारा यह कल्प नहीं जो गृहस्थके कार्यमें जाना, परंतु हम अग्निमानसेंही नहीं आये ऐसा मत समजना क्योंकि साधु समजावसें अपने धर्मकृत्यमें लगे रहते हैं, तब नमुचिवल अति शान्तिवृत्तिवाले मुनियोंको कठोर हो कर कहने लगा कि सात दिनके अंदर मेरे राजसें बाहिर हो जाऊ जो रहेगा, सो मारा जायगा, यह सुनके सब साधु अपने तपोवनमें आये, और शोचने लगे कि अब क्या उपाय करीयें? तब एक साधु कहने लगा कि महापद्म च ऋषिकी बड़ा जाइ विष्णुमुनि लब्धिपात्र है, अर्थात् बड़ी शक्तिवाला मेरु पर्वत ऊपर है, तिसके कहनेसें यह नमुचिवल प्रशांत हो जावेगा, इस वास्ते कोइ चारण साधु उसको यहां बोला द्यावे तो ठीक है तब एक साधु बोला कि मैरी उहां मेरु पर्वत पर जानेकी तो शक्ति है, परंतु पीठे आवनेकी शक्ति नहीं है तब गुरु कहने लगे कि तुमको पीठा विष्णु मुनिही यहां ले आवेंगे. तुम जाऊ तब वो साधु लब्धिसें एक रूपमे तहां गया, और सर्व वृत्तांत सुनाया, तब विष्णु मुनि उस साधुकोनी साथ ले कर तत्काल गुरुके पास आके बंदना करी, पीठे गुरुकी आज्ञासें एकिलाही राज सजामे आया उहां एक नमुचिवलके बिना और सर्व मनाके लोकोंने उसके बंदना करी तब विष्णु मुनिने धर्मोपदेश देकर कहाकि नि संगी साधुओंसें वैर करणा, यह महा नरकरा कारण है, क्योंकि साधु किमीका कुठ बिगाडते नहीं, और जगत् तो और वडे पुरुषोंको नमस्कार करते हैं, किसी शास्त्रमें मुनि निंटे नहीं है, तो फेर यह आश्चर्य है, कि -तुठ, कृष्णिक राजके पानेसे अंधे अधम पुरुष अपणोंको साधुओंसें नमस्कार कराया चाहते हैं, और नमुचिवलको कहा तूं इस बुरे कामको जानेदे जिस्से साधु सब सुखसे रहे, और तूं क्युं मत्तरमें मगन होके अपणा आप बिगाडा चाहता है? साधु चौमासेमें बिहार करते नहीं क्योंकि चौमासेमें जीवोकी बहुत उत्पत्ति हो जाती है और सर्व जगे तेराही राज्य



है, तो सर्व साधु सात दिनमें कहां चले जाय ? तब नमुचि बल कुम्भाष्टकी तरें होकर बोला कि बहुत कहनेसे क्या है ? पांच दिनसे उपरांत जो कोइ तुमारा साधु मेरे राज्यमे रहेगा, तो मैं उसको चोरकी तरे बद्ध करुंगा, और तूं हमारे मानने योग्य है, उसी वास्ते तूं जाकर साधुओंको कहदे जो कि जीवनां चाहते हो तो नमुचिके राज्यसे बाहिर चले जाठ क्योंकि राज्य ब्राह्मणका है, और तेरे मान्यके रहने वास्ते तीन कदम अर्थात् तीन मिंग जगा देता हूं, तिससे बाहिर किसी साधुको देखूंगा तिसका शिरछेद करुंगा, तब विष्णुमुनिने विचारा कि यह साम अर्थात् मीठे वचनोंके योग्य नहीं यह तो बडा पापी साधुओंका घातक है, इसकी जडही उखाडनी चाहिये. तब विष्णुमुनिने कोपमें आ कर वैक्रिय लब्धिसे लाख योजनकी देह बनाइ, एक मिंगसेतो जरतद्धेत्रादि मापा और दूसरी मिंग पूर्वापर स मुद् उपर धरी और तीसरी मिंग नमुचिबलके शिर ऊपर रखके सिद्धास नसे देठ गेरके धरतीमें घसोड दीया नमुचि मरके नरकमें पहुंच गया और विष्णुमुनिकों देवताओंने कानोमें मधुर गीत सुनाकर शांत करा, तब शरीरको संकोचके गुरोंके पास जाकर आलोचना करी, पापका प्रा यश्चित्त लेकर विहार कर गया, जप, तप, कर संयम पालके मोहगया.

इस कथासे ऐसा मालूम होता है कि ब्राह्मणोने पुराणोंमें जो लिखा है, कि विष्णु जगवानने वामन रूप करके यज्ञ करते बलिराजाको ठजा, सो यही विष्णुमुनि अरु नमुचिकी कथाको विगाडके अपने मतके अनुसार औरकी और कथा बना लीनी है, क्योंकि श्रीजगवानको क्या गरज थी, कि जो धर्मी बलिराजा यज्ञ करने वालेके साथ ठल करता ? यह तो निःकेवल बुद्धि हीनोका काम है, जो अपनी बेटियोंसे तथा परस्त्रीयोसे विषय सेवन करा कहनां, तथा जगवानने फूठ धोला, औरोसे बोलाया, चोरी करी, औरोंसे कुशील जगवानने सेवन करा, ठजसे मारा, कपट करा, इत्यादि कामतो नीचजनोंके करनेके है, श्री वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर यह काम कनीनी नहीं करता तो और करने वालेको परमेश्वर नूलकेजी न माननां चाहिये ॥ इति विष्णुमुनि तथा नमुचिबलका संबंध समाप्त ॥

वीतमें और इक्ष्वासुमें तीर्थकरके अंतरमें श्री अयोध्या नगरीके दशरथराजाकी कौशल्या राणीका पद्म (रामचंद्र) नामा पुत्र हुआ, सो आ

तमा वलदेव और दशरथराजाकी सुमित्रा राणीका पुत्र नारायण अपर नाम लक्ष्मण सो आठमां वासुदेव दूआ जिनोका प्रतिशत्रु रावण प्र तिवसुदेव लंकाका राजा दूआ सो जगतमें प्रसिद्ध है. इन तीनोंका य थार्थ स्वरूप पद्मचरित्रसें जान लेनां, परंतु लौकिक रामायणमें जो रावणके दश शिर लिखे हैं, सो ठीक नहीं है, क्योंकि मनुष्यके स्वानाविकही दश शिर कदापि नहीं हो शक्ते है, पद्मचरित प्रथमानुयोग शास्त्रमें लिखा है कि रा वणके बड़े बड़ेरोंकी परंपरायसें एक बड़ा नव माणिकका द्वार चला आता था, सो रावणने बालावस्थासें अपने गलेमें पहिर लीये थे और वे नौही माणक बहुत बड़े थे, सो चार माणक एक पाससें स्कंधके ऊपर द्वारमे जड़े दूये थे, और पांच माणक दूसरे पाससें जड़े थे, दोनों स्कंधो उपर नव माणकमें नवमुख दीखते थे, और एक रावणका असली मुख था इस वास्ते दशमुख वाला रावण कहा जाता है. तथा रावणके समय सेही हिमालयके पहाडमें बड़ीनाथका तीर्थ उत्पन्न दूआ है, तिसकी उत्पत्ति जैनमतके शास्त्रोसे ऐसे जानी जाती है कि.—यह असली पार्श्व नाथकी मूर्तिथी, तिसकाही नाम बड़ीनाथ रखा गया है. इसका पूरा स्वरूप गद्यबंद पार्श्वपुरानसें जान लेना.

तिस पीछे मिथुलानगरीमे इक्ष्वाकुवशी विजयसेनराजाकी विप्रा राणी तिनका पुत्र श्रीनमिनाथ नामा इक्ष्वातमा तीर्थकर दूआ तिनोके वारे ह रिपेणनामा दशमां चक्रवर्ति दूआ है, तथा यह इक्ष्वातमे और वावीतमे तीर्थकरके अतरेमे इग्यारहमा जयनामा चक्रवर्ति दूआ.

तिस पीछे सौरीपुर नगरमे हरिवशी नमुड्विजय राजा तिसकी शिवा देवी राणी तिनका पुत्र श्रीअरिष्ट नेमिनामा बावीशमा तीर्थकर दूआ तिनोके वारे तिनोके चाचेके बेटे नवमे रुष्णवासुदेव और राम बलदेव ( बलचंद्रवल देव) इनका प्रतिशत्रु जरासिंधू प्रतिवासुदेव दूआ. तिगमें रुष्ण अरु बल चड तो जगतमे बहुत प्रसिद्ध है क्योंकि लोक श्रीरुष्ण वासुदेवको साक्षात् ईश्वर तथा ईश्वरका अवतार जगत्काकर्ता मानते है, यह बात रुष्ण वा सुदेवके जीते दूये नहीं दूइ, किंतु उनके मरे पीछे लोक रुष्ण वासुदेवको ईश्वरावतार मानने लगे है, तिसका हेतु त्रेसठ सलाका पुरुष चरित्रमें ऐसे लिखाहै कि.—जब रुष्ण वासुदेवने कुसवी वनमे शरीर ठोडा तब काल क

रकें बालुप्रजा पृथ्वी (पातालमें) गये और बलनञ्जी एक सौ वर्ष जैनदीक्षा पालके पांचमें ब्रह्मदेवलोकेमें गये वहां अविधिज्ञान से अपने जाइ श्रीरूपकों पातालमें तीसरी पृथ्वीमें देखा, तब नाइके स्नेहसे वैक्रिय शरीर बनाकर श्रीरूपके पास पहुँचा और श्रीरूपसे आलिंगन करके कहा कि मैं बलनञ्जनामा तेरे पिछले जन्मका नाई हूँ, मैं काल करके पांचमें ब्रह्मदेवलोकेमें उत्पन्न हुआ हूँ, और तेरे स्नेहसे यहां तेरे पास मिलनेको आया हूँ तो मैं तेरे सुख वास्ते क्या काम करूँ ? इतना कह कर जब बलनञ्जीने आ पने हाथों ऊपर रूपञ्जीको लीया, तब रूपञ्जीका शरीर पारेकी तरें हाथसे ढरके जूमि ऊपर गिर पडा, और मिलकर फेर संपूर्ण शरीर पूर्ववत् हो गया. इसीतरें प्रथम आलिंगन करनेसे फेर विरतात कहनेसे और हाथों ऊपर उछानेसे रूपञ्जीने जान लीया कि यह मेरे पूर्वजका अति वल्लभ बलनञ्ज नाई है तब रूपञ्जीने संभ्रमसे उठके नमस्कार करा तब बलनञ्जीने कहा हे भ्राता ! जो श्रीनेमिनाथने कहाथा कि यह विषय सुख महादुःखदाई है सो प्रत्यक्ष तुमको प्राप्ति हुआ और तुज्जकर्मनियंत्रितकों मैं स्वर्गमेंनी नही लेजा सका हूँ परंतु तेरे स्नेहसे तेरे पासमें रहा चाहता हूँ तब रूपञ्जीने कहा हे भ्राता ! तेरे रहनेसेनी तो मैंने करे दूये कर्मका फल अवश्यमेव नोगनाही है परंतु मुज्जकों इस दुःखसे वो दुःख बहुत अधिक है जो मैं ढारिका और सकल परिवारके दग्ध होजानेसे एकजा कुसंबी वनमें जरा कुमारके तीरसे मरा और मेरे शत्रुओंको सुख तथा मेरे मित्रोंको दुःख दूया जगतमें सर्व यडुवशी बदनाम दूये इस वास्ते हे भ्राता ! तू नरतखंदमें जा कर चक्र, शारंग, शंख, गदाका धरने वाला और पीत ( पीले ) वस्त्र वाला, तथा गुरुड ध्वजा वाला, ऐसा मेरा रूप बना कर विमानमें बैठ कर लोकोंको दिखला तथा नीलवस्त्र और तालध्वज अरु हल, मूशल, शस्त्रका धरनेवाला ऐसा तू विमानमें बैठके अपना रूप सर्वजगें दिखलाकर लोकोंको कहो कि राम रूप दोनो हम अविनाशी पुरुष है, और स्वेच्छा विहारी हैं, जब लोकोंको यह सत्य प्रतीत हो जावेगा तब हमारा सर्व अपयश दूर हो जावेगा यह श्रीरूपञ्जीका कहना सर्व श्रीबलनञ्जीने स्वीकार कर लीया, और नरतखंदमें आकर रूपञ्ज वलनञ्ज दोनोका रूप करके सर्व जगें विमानारूढ दिख लाया और ऐसे क

हने लागा कि जो लोको ! तुम कृष्ण बलनङ्ग अर्थात् हमारे दोनोंकी तुं  
 दर प्रतिमा बनाकर ईश्वरकी बुद्धिसें बड़े आदरसैं पूजो क्योंकि हमही ज  
 गतके रचनेवाले और स्थिति संहारके कर्ता हैं और हम अपनी इच्छासैं स्वर्ग  
 ( वैकुण्ठसैं ) यहां चले आते है, और पीठें स्वर्गमें अर्थात् वैकुण्ठमें अपनी  
 इच्छासैं चले जाता है और धरका हमनेही रची थी तथा हमनेही  
 कलका संहार करा है, क्यों कि जब हम, वैकुण्ठमें जानेकी इच्छा करते है,  
 तब सर्व अपना वंश धरिका सहित दग्ध करके चले जाते है, हमारे उ  
 परांत और कोई अन्य कर्ता, हर्ता नहीं है ऐसा बलनङ्गकी कहना सु  
 ननेसैं सर्व ग्राम ( नगर ) के लोकोंने कृष्ण बलनङ्गकी प्रतिमा सर्व ज  
 गे बना कर पूजी तब प्रतिमा पूजनेवालोंको बहुत सुख धनादिसैं बलन  
 ङ्गने आनंदित करा, इस वास्ते बहुत लोक हरिनक्त हो गये, जबसैं नक्त  
 हूये तबसैं पुस्तकोमें कृष्णजीको पूर्णब्रह्म परमात्मा ईश्वरादि नामोंसैं लि  
 खा, क्याजाने जबसैं बलनङ्गजीने कृष्णकी पूजा कराई, तबसैंही लोकोंने  
 कृष्णकोही ईश्वरावतार माना हो ? और उस समयको पांच हजार वर्ष  
 हूये हों, जिससैं लौकीकमें कृष्ण हूयेको पांच हजार वर्ष कहते हैं.

वाइसमे अरु तेइसमें तीर्थकरके अंतरेमें बारमा ब्रह्मवत्तनामा चक्रव  
 ती हूया, तिस पीठे वाणारसी नगरीमें इन्द्रवाकुवंशी अश्वसेन राजा हूया  
 तिसकी वामादेवी राणी तिनका पुत्र श्रीपार्श्वनाथ नामा तेइसमा तीर्थकर  
 हूया तिस पीठें ऋत्रियकुंभ नामा नगरमें इन्द्रवाकुवंशी दूसरा नाम सूर्यव  
 शी सिद्धार्थ नामा राजा हूया तिसकी तिसला नामा राणी तिनका पुत्र  
 श्रीवर्द्धमान महावीरनामा चौबीसमा चरम ठेला तीर्थकर हूया, आज काल  
 जो जैनमत जरत खंममें प्रचलित है, सो इतही श्रीमहावीरका शासन अ  
 र्थात् उनहीके कहे उपदेशसैं चलता है, और जो जैनमतके शास्त्र है, वे सर्व  
 इतही श्रीमहावीर जगवत के उपदेशानुसार रचे गये है यह श्रीमहावीर  
 जगवतका संपूर्ण वृत्तांत देखना होवे, तदा आवश्यक सूत्रवृत्ति कल्पसूत्र  
 वृत्ति तथा श्रीमहावीर चरितादि ग्रंथोंसैं जान लेनां.

इति श्रीतपगङ्गीय मुनिश्रीगण मणिविजय तद्विष्य मुनिबुद्धिविजय  
 तद्विष्य मुनि आत्माराम आनंदविजय विरचिते जैनतत्त्वादर्शे श्रीरूपनादि  
 महावीर पर्यंत पूर्ववृत्तांत निरूपण नाम एकादश परिच्छेदः संपूर्णः ॥ १ ॥

अथ द्वादश परिच्छेद प्रारंभः ॥

यह परिच्छेदमें श्रीमहावीर जगवानसें लेकर आजकाल पर्यंत कितनाक वृत्तांत लिखते हैं. श्रीमहावीर जगवंतके इग्यारह शिष्य मुख्य, और सर्व साधुओंसें बड़े हूये, तिनका नाम कहते हैं ? इंद्रिचूति, अर्थात् गौतम स्वामी, २ अग्निचूति, ३ वायुचूति, ४ व्यक्तस्वामी, ५ सुधर्मस्वामी, ६ मंमिकपुत्र, ७ मौय्यपुत्र, ८ अचलप्राता, ९ मैतार्य, ११ प्रजास, यह इग्यारह बड़े शिष्य श्रीमहावीर जगवतके हुए और सर्व शिष्य तो चौदह हजार साधु हूये, परतु चौदह हजारसें कदेनी अधिक नहीं हूये, और साध्वी ठत्तीस हजार हूइ, तथा श्रेणिक, उदायन, कोणक, उदायी, वत्सदेशका उदायन. चेटक, नवमल्लिक कृत्रियजातिके, नवलेठिक कृत्रिय जातिके. उषयनका राजा चंडप्रद्योत, अमलकटपा नगरीका स्वेत नामे राजा, पोलासपुरका विजय राजा, कृत्रिय कुंभका नं दिवर्द्धन राजा, वीतजय पट्टनका उदायनराजा, दशार्णपुरका दशार्णजइ राजा, पावापुरीका हस्तिपाल राजा, इत्यादि अनेक राजे श्रीमहावीर जगवतके सेवक थे. अर्थात् श्रावक थे, और आनंद, कामदेव, सख पुष्कली प्रमुख श्रावक, और जयंती, रेवती, सुजसा प्रमुख श्राविका तो लाखोंही थे, तिन श्रावकोंमें एक सत्यकी नामा अविरति, सम्यग्दृष्टि श्रावक दूआ है, तिसका संबंध आवश्यक शास्त्रमें इसी तरें लिखा है. सो कहते हैं -

विशालानगरीके चेटक राजाकी ठत्ती पुत्री सुज्येष्ठानामा कुमारी कन्याने वीह्वा लीनी थी अर्थात् जैनमतकी साध्वी हो गइ थी, वो कित्ती अयस रमें उपाश्रयके अंदर सूर्यके सन्मुख आतापना लेती थी, इस अवसरमे पेढाज नामा परिव्राजक अर्थात् संन्यासी विद्या सिद्ध था, सो आपनी विद्यादेनेके वास्ते पात्र पुरुषकों देखता था, और उसका विचार ऐसाथा कि- चटि ब्रह्मचारणीका पुत्र होवे. तो सुनाथ होवेगा. तब तिस संन्यासीने रात्रिमे सुज्येष्ठाकों नम्र पणै शीतकी आतपना लेतीकों देखा, तब धुंय विद्यासे अंधकारमें विमोह अर्थात् अचेत करके उसकी योनिमें अपने वीथिका संचार करा, तिस अवसरमे सुज्येष्ठाकों कृतुधर्म आ गया था, उन वास्ते गर्न रह गया तब साधकी साध्वीयोमें गर्नकी चर्चा होने लगी, पीठें अति

शय ज्ञानीने कहा कि सुष्येष्ठानें विषयजोग किसीसें नहीं करा, अरु तिस विद्याधरका सर्ववृत्तांत कहां, तब सर्वकी शंका दूर हो गई पीछें समयमें सुष्येष्ठाके पुत्र जन्मा, तब तिस लडकेकों श्रावकने अपने घरमे ले जाके पाला, तिसका नाम सत्यकी रखा, एकदा समय सत्यकी साध्वीयोके साथ श्रीमहावीर जगवानके समक्षसरणमें गया, तिस अवसरमें एक कालसंदीपक नामा विद्याधर, श्रीमहावीरकों वदना करकें पूछने लगा कि मुजकों किससें नय है, तब जगवत श्रीमहावीर स्वामीने कहा कि, यह जो सत्यकी नामा लडका है, इससें तुजकों नय है तब कालसंदीपक सत्यकीके पास गया, अ वज्ञासे कहने लगा कि अरे तूं मुजकों मारेगा ? अैसें कह कर जोरावरीसें सत्यकीकों अपने पगोंमे गेरा तब तिसके पिता पेढालने सत्यकीका पालन करा, और अपनी सर्व विद्यार्योंकों सत्यकीकों दे दई, सत्यकी महारोहिणी विद्याका साधन कर रहा था, इस सत्यकीका यह सातमा नव रोहिणीविद्या साधनमे लग रहा था, रोहिणी विद्याने इस सत्यकीके जीवकों पांच नवमें तो जानसे मार गेरा और ठेके नवमें बै महीने शेष आयुके रहनेसें सत्यकीके जीवने विद्याकी इज्ञा न करी परंतु इस सातमें नवमे तो तिस रोहिणी विद्याकों साधनेका आरज करा तिसकी विधि लिखते है.

अनाथ मृतक मनुष्यकों चित्तामें जलावे और गीले (आले) चमडेकों शरीर उपर लपेटके पगके वामें अंगूठेसें खडा होकर जहां लग वो चित्ता का काष्ठ जले तहां लग जाप करे इस विधिसें सत्यकी विद्या साध रहा था, उहा काल सदीपक विद्याधरनी आ गया, और चित्तामें काष्ठ प्रक्षेप करकें सात दिन रात्री तक अग्नि बुजने न देनी, तब सत्यकीका सत्य देखकें रोहिणी देवी आप प्रगट हो कर कालसंदीपककों कहने लगी कि मत विघ्न कर:- क्योंकि मै इस सत्यकीके सिद्ध होने वाली हूं, इस वास्ते मै सिद्ध हो गई हूं, तब रोहिणी देवीने सत्यकीकों कहा, कि मै तेरे शरीरमे क्रिधरसे प्रवेश करु ? सत्यकीने कहा मेरे मस्तकमें हो कर प्रवेश कर, तब रोहिणीने मस्तकमें हो कर प्रवेश करा, तिस्ते मस्तकमे खडा पड गया तब देवीने तुष्टमान हो कर तिस मस्तककी जगों तीसरे नेत्रका आकार बना दीया तबतो सत्यकी तीन नेत्रवाला प्रसिद्ध हुआ. पीछें सत्यकीने शोचाकि पेढालने मेरी माता राजाकी कुमारी देटीकों विगडा है, अैसा

शोच कर अपने पिता पेढालकों मार दीया, तब लोकोंने सत्यकीका नाम रुड़ (जयानक) रख दीया, क्योंकि जिसने अपना पिता मार दीया उसमें और जयानक कौन है ? पीछे सत्यकीने विचारा कि कालसंदीपक मेरा वैर कहां है ? जब सुना कि कालसंदीपक अमुक जगामें है, तब सत्यकी तिसके पास पहुंचा, फेर कालसंदीपक विद्याधर तहांसे नाग निकला तोनी सत्यकी तिसके पीछे लगा, तब कालसंदीपक हेठ ऊपर नागता रहा, परंतु सत्यकीने तिसका पीठा न ठोडा, फेर कालसंदीपकने सत्यकीके छुलाने वास्ते तीन नगर बनाये, तब सत्यकीने विद्यासें तीनो नगरनी जलादीये तब कालसंदीपक दौडके लवणसमुद्रके पाताल कलशमें चला गया, सत्यकीने तहा जा कर कालसंदीपककों मार माला, तिस पीछे सत्यकी विद्याधर चक्रवर्ति हूआ, तीन संख्यामें सर्व तीर्थकरोंकों वदना करके नाटक करता हूआ, तब इंडने सत्यकीका नाम महेश्वर दीया, तिस महेश्वरके दो शिष्य हूये, एक नंदीश्वर, दूसरा नादीया, तिनमें नादीया तो विद्यासे वैजका रूप बना लेता था, और तिस ऊपर चढके महेश्वर अनेक क्रीडा कुतूहल करता था, महेश्वर श्रीमहावीर जगवतका अविरति सम्पगृष्टि श्रावक था, परंतु बडा चारी कामीया और ब्राह्मणोंके साथ उसका बडा चारी वैर हो गया, तब विद्याके बलसें सैकड़ों ब्रह्मणोंकी कुमारी कन्या योंकों विषय सेवन करके विगाडा, और लोक तथा राजा प्रमुखकी बहु बेटीयोंसें काम क्रीडा करने लगा, परंतु उसकी विद्यायोंके जयसें उते कोइ कुठ कहता नही था, जेकर कोइ मनाची करता था, सो मारा जाताथा, महेश्वरने विद्यासें एक पुष्पक नामा विमान बनाया तिसमें बैठके जहां इहा होती तहा चला जाता था, जैसें उसका काल व्यतीत होता था, एकदा प्रस्तावें महेश्वर उज्जयिन नगरमें गया, तहां चंद्रप्रद्योतकी एक शिवा नामा राणीकों ठोडके दूसरी सर्व राणीयोंके साथ विषय नोग करा, और नी सर्वलोकोंके बहु बेटीयोंकों विगाडना शुरू करा, तब चंद्रप्रद्योतकों बडी चिंता हूइ, अरु विचाराकी कोइ ऐसा उपाय करीये कि जिस्से इत महेश्वरका विनाश (मरणां) हो जावे— परंतु तिसकी विद्याके आगे किसीका कोइ उपाय नही चलताथा, पीछे तिस उज्जयिन नगरमें एक उमा नामा देव्या बडी रूपवंत, रहतीथी, उसका यह कौलथा कि जो कोइ इतना धन

मुझे देवे, सो मेरेसें जोग करे, जो कोइ उसके कहे मूजब धन देता था सो उसके पास जाता था, एक दिन महेश्वर उस वैश्याके घर गया, तब तिस उमावेश्याने महेश्वरके सन्मुख दो फूल करे एकविकशा दूआ दूसरा मिचा दूआ, तब महेश्वरने विकशो फूल ( खिडे फूलकी ) तर्फे हाथ पसारा तब उमावेश्याने मिचा दूआ कमल महेश्वरके हाथमे दीया, और कहा कि यह कमल तेरे योग्य है, तब महेश्वरने कहा क्यों यह कमल मेरे योग्य है ? तब उमानें कहा इस मिचे दूए कमल समान कुमारी कन्या है, सो तुजकों जोग करने वास्ते वद्वन है, और मैं खिले दूए फूल समान हौं, तब महेश्वरने कहा तूंजी मेरेकों बहुत वद्वन है, ऐसा कह कर महेश्वर उसके साथ जोग जोगने लगा, और तिसकेही घरमें रहने लगा, तिस उमाने महेश्वरकों अपने वशमें कर लीया उमाका कहनां महेश्वर वद्वनघन नहीं कर सकता था, जैसें जब कितनाकि काल व्यतीत दूआ तब चंडप्रद्योतने उमाकों बुलायके उसकों बहुत धन, और आदर सन्मान देकर कहा कि तूं महेश्वरसें यह पूछेकि:- ऐसानी कोइ काल है कि जिस कालमें तुमारे पास कोइनी विद्या नहीं रहती ? तब उमाने महेश्वरकों पूर्वोक्त रीतिसें पूछा, तब महेश्वरने कहा कि जबमें मैधुन सेवता हूं तब मेरे पास कोइनी विद्या नहीं रहती, अर्थात् कोइ विद्या चलती नहीं तब उमाने चंडप्रद्योतराजाकों सर्वकथन सुना दीया, तब राजाने उमासे कहा कि जब महेश्वर तेरेसें जोग करेगा, तब हम उसकों मारेंगे तब उमाने कहाकि मुजकों मत मारना तब चंडप्रद्योतने कहाकि तुजकों नहीं मारेगे ? पीछे चंडप्रद्योतने अपने सुनटोंकों गुप्त ( ठाना ) उमाके घरमे ठिपारखा, जब महेश्वर उमाके साथ विषय सेवनमे मग्न होके दोनोका शरीर परस्पर मिलके एक शरीरवत् हो गया, तब राजाके सुनटोंने दोनोंहीको काट माला, और अपने नगरका उपड्व दूर करा, पीछे महेश्वरकी सर्व विद्यायोंने उसके नंदीश्वर शिष्यकों अपना अधिष्ठाता बनाया जब नंदीश्वरने अपने गुरुकों इस विद्वननासें मारा सुना, तब विद्यासें वद्वनके उपर शिला घनाइ, और कहने लगाकि हे मेरे दासो ! अब तुम कहां जाओगे ? मे सबकों मारुगा क्योंकि मैं सर्वशक्तिमान् ईश्वर हूं किसीका मारा मैं मरता नहीं हूं, मैं सदा अविनाशी हू, यह सुनकर बहुत लोक मरे थौ



र सर्वलोक विनती करके पगोंमें पड़े, अरु कहने लगेकि, हमारा अण्णमाहूमा करो, तब नन्दीश्वरने कहाकि जे कर तुम उसी अवस्थामें अर्थात् वामाकी जगमें महेश्वरका लिंग स्थापन करके पूजा, तो मै तुमको जीता ठोडेगा, तब लोकोने तैसेही बना कर पूजा करी, पीछे नन्दीश्वरनेजी अर्थात् ही गाम गाममें नगर नगरमें लोकोको मरा मरा करके मंदिर बनवाये तिनमें पूर्वोक्त आकारे जगमें लिंगस्थापन कराके पूजा कराई, यह श्रीमहावीरके अविरतिसम्यग्दृष्टि श्रावक महेश्वरकी उत्पत्ति है

तथा श्रीमहावीर स्वामीके विद्यमान होते राजगृह नगरमें श्रेणिकराजाकी चेलणा राणीके कोणिक नामा पुत्र हुआ, परंतु कोणिकका श्रेणिकके साथ पूर्व जन्मका वैर था, इस वास्ते कोणिक राजानें श्रेणिक राजाको पकड़के पिंजरेमें दे दीया, और राज सिंहासन ऊपर आप बैठा, जब अपनी माता चेलनाके मुखसे सुना कि श्रेणिकको जैसा तू चढ़न था, जैसा कोइनी पुत्र चढ़न नहीं था, क्योंकि जब तू बालक था तब तेरी अंगुली पक गइ थी, तिससें तुजे रात्रिमें निद नहीं आती थी, और तू सर्व रात्रिमें रोता था, तब तेरा पिता तेरी अंगुलीको अपने मुखमें ले कर चुसके उसकी राध रुधिरकों थुंकता था, इत्यादि तेरे पिताने तेरे साथ राग (स्नेह) करा है, और तुमने उस उपकारके बदले अपने पिताको पिंजरेमें बंद कीया, वाह रे पुत्र! तेरी लायकी! यह सुनके कोणिक राजा बड़ा दुःखी हुआ, और रोता हुआ आप कुहाडा लेकर दौडाकि मै अपने हाथसें पिताका पिंजरा काटके बाहिर निकालूंगा और राजसिंहासन उपर बैठावंगा परंतु जब श्रेणिकराजाने देखा कि कोणिक कुहाडा लेकर दौडा आता है, तब विचार करा कि क्याजाने मुजे किस कुमौतसें मारेगा? तब श्रेणिक राजा कुठ खाके मर गया, जब कोणिकने आकर देखा कि पिता तो मर गया तब बहुत रोया पीटा, महाशोकसें दाह लग गया, जब राजगृहके अंदर बाहिर श्रेणिकके मकान महिज सिंहासनादि देखता है, तब बड़ा दिलगीर (शोकवन्त) होता है, इस दुखसे राजगृह नगरकों ठोडके चंपा नगरी अपनी राजधानी बनाके रहने लगा, तोबी पिताके वियोगसे सेवा न करनेसें दुःखी रहने लगा, तब प्रधान (मन्त्रीयोनें) मता करके एक ठाना पुस्तक बनवाया, उसमें जैसा कथन. कि:-जो पुत्र अपने

तै हूये पिताकों पिंम प्रदान वस्त्र जोडे, आनूपण, शय्या प्रमुख ब्राह्मणोंके देता है, वो सर्व श्राद्धादि सामग्री उसके पिताकों प्राप्ति होते हैं, उस पुस्तककों धुंयेके मकानमें रखके धुंयेसें पुराने पुस्तकवत् बना दीया, व कोणिक राजाकों सुनाया कोणिकनेनी पिताकी जक्तिवास्ते पिंम प्रदादि बहुत धन लगा करके करा, तबहीसें मृतकोंको पिंम प्रदान आदि प्रवृत्त हूये हैं. क्योंकि जगत्में प्रतिष्ठा है कि कर्ण राजाने श्राद्ध चलाये हैं, सो इसी कोणिक राजाका नाम लोकोने कर्ण राजा करके लिखा है.

तथा अत्रिका सुत जैनाचार्य अत्यंत बृह गंगा नदी उतरतेको केवल जान हुआ, और जहां प्रयाग है. तहां शरीर ठोडके मोह हुआ, तिससे देवताओंने तिस मुनिकी महिमा करी तबसें प्रयाग तीर्थकी मानता ली, अर्थात् प्रयाग तीर्थकी उत्पत्ति हुई, महावीर स्वामीके बखतमें जो रूप राजादि व्यवहारोंकाथा तथा जैनमतका जहां तक विस्तारथा आवश्यकसूत्र वीरचरित्र तथा बृहद्कल्पादि शास्त्रोंसें जान लेना.

तथा श्रीमहावीरके समयमें राजगृह नगरीका राजा श्रेणिक तिसके पीठे श्रेणिक हुआ जिसने श्रेणिकके मरनेसें पीठे चपानगरीको अपनी राजधानी नाई तिसका बेटा उदायी हुआ जिनके कोणिकके मरे पीठे उदासीसें चणको ठोडके पामली पुत्र नगर (पटना) बसाके अपनी राजधानी बनाया.

श्रीमहावीर जगवत विक्रम संवत्सें ( ४४७ ) वर्ष पहिला पावापुरी नगरीमें हस्तपाल राजाकी पुरानी राजसनामें बहत्तर वर्षकी आयु नोगके अति बढि अमावास्याकी रात्रिके पीठले प्रहरमें पद्मासन अर्थात् चौकडी परे हूये, शरीरादि चार कर्मकी सर्व उपाधी ठोडके निर्वाण हूये ( मोह हूये ) तिस समयमें गौतमस्वामी और सुधर्म स्वामी यह दो बडे शिष्य लिये, शेष नव बडे शिष्य तो श्रीमहावीरजीके जीते हूयेही एक माताका अन्नशन करके केवलज्ञान पाके मोह चले गये थे, यह इग्यारहही बडे शिष्य जातिके तो ब्राह्मण थे, चार वेद और ठे वेदागादि सर्वशास्त्रोंके अन्कार थे, इन इग्यारहोके चौतालीससें ( ४४०० ) विद्यार्थी थे.

इनोंका संबंध ऐसे है, कि— जब जगवत श्रीमहावीरजीको केवलज्ञान था, तिस अवसरमें मथ्यपापा नगरीमें सोमल नामा ब्राह्मणने यह कथाका धारण करा था, और सर्व ब्राह्मणोमे श्रेष्ठ विद्वान् जान कर इन पू

वोक्त गौतमादि इग्याराही आचार्योंको बुलायाथा तिस समय तिस यह पाडाके ईशान कृणमें महासेन नामा उद्यानमें श्रीमहावीर जगवंतका समवसरण रत्न सुवर्ण रौप्यमय क्रमसे तीन गढ संयुक्त देवोने बनाया तिसके बीचमें बैठके जगवंत श्रीमहावीरस्वामी उपदेश करने लगे, तब आकाश मार्गके रस्ते सैकड़ो विमनोमें बैठे दूये चार प्रकारके देवता जगवत श्रीमहावीरके दर्शनको और उपदेश सुननेको आते थे, तब तिनों यह करने वाले ब्राह्मणोने जाना कि यह देव सब हमारे करे दूये यज्ञकी आहुतियों लेने आये हैं, इतनेमे देवता तो यज्ञ पाडेको ठोडके जगवानके चरणोंमें जाकर हाजर दूये, तथा और लोकनी श्रीमहावीर जगवतका दर्शन करके और उपदेश सुनके गौतमादि पंढितोंके आगे कहने लगे, कि:- आज इस नगरके बाहिर सर्वज्ञ सर्वदर्शी जगवान् आया है, नतो उसके रूपकी कोई तारीफ कर सकता है, अरु न कोई उसके उपदेशसे संशय रहता है और लाखों देवता जिनोके चरणोंकी सेवा करते हैं, ताते हमारे बड़ेना ग्योदध हैं, जो ऐसे सर्वज्ञ अरिहंत जगवतका हमने दर्शन पाया ऐसा जब गौतमजीने सुना कि सर्वज्ञ आया तब मनमें ईर्ष्याकी अग्नि नडकी अरु ऐसे कहने लगाकि:- मरेसे अधिक और सर्वज्ञ कौन है ? मैं आज इसका सर्वज्ञ पणा उडा देता हू ? इत्यादि गर्व संयुक्त जगवान् श्रीमहावीरके पास पहुंचा, और जगवान्को चौत्तीश अतिशय संयुक्त देखा, तथा देवता, इंद्र, मनुष्योंसे परिवृत देखा, तब बोलनेकी शक्तिसे हीन हुवा जगवतके सन्मुख जाके खडा हो गया तब जगवंतने कहा कि:- हे गौतम इंद्र नूति ! तूं आया ? तब गौतमजीने मनमें विचाराकि जो मेरा नामनी ये जानते हैं, तोजी मैं सर्व जगे प्रसिद्ध हूं मुजे कौन नहीं जानता ? तो इंद्र मेरा नाम लीया, इस बातमे कुछ आश्चर्य और सर्वज्ञ इसको नहीं मानता है, किंतु मेरे मनमें जो संशय है तिसको दूर कर देवें तोमें इसको सर्वज्ञ मानू, तब जगवंतने कहा, हे गौतम ! तेरे मनमें यह संशय है - जो जीवहै कि नहीं ? और यह संशय तेरेको वेदोंकी परस्पर विरुद्ध श्रुतियोंसे दूआ है, वो श्रुतियो यह हैं सो कहते हैं.

“विज्ञानघनएवैतेन्योनूतेन्य समुद्राय तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्तीतीत्यादि” इस्से विरुद्ध यह श्रुति है - सबे अथमात्मा ज्ञानमय

यदि इन श्रुतियोंका अर्थ जैसा तेरे मनमें जासन होता है, तैसाही प्र  
 न श्रुतिका अर्थ कहते हैं. नीजादि रूप होनेसे विज्ञानही चैतन्य है, चै  
 य विशिष्ट जो नीजादि तिससे जो घन सो विज्ञानघन सोविज्ञानघन  
 प्रत्यक्ष परिच्छिद्यमान रूप पृथ्वी, अथ, तेज, वायु, आकाश, इन पाच  
 गोंसे उत्पन्न हो कर फेर तिनके साथही नाश हो जाता है अर्थात् जू  
 के नाश होनेसे उनके साथ विज्ञानघनकानो नाश हो जाता है, इस  
 से प्रेत्यसंज्ञा नहीं अर्थात् मरके फेर परलोकमें और कोई नर नार  
 न जन्म नहीं होता, इस श्रुतिमें जीवकी नास्ती सिद्ध होती है, और  
 श्री श्रुति कहती है कि:— यह आत्मा ज्ञान मय अर्थात् ज्ञान स्वरूप है,  
 से आत्माकी सिद्धी होती है, अब ये दोनो श्रुतियों परस्पर विरोधी हो  
 ण प्रमाण नहीं हो शक्ती है, और बहुत परस्पर आत्माके स्वरूपमें वि  
 रोधी मत है, कोइ कहता है कि:— एतावानेवपुरुषो,यावानिद्वियगोचरः ॥  
 १ ॥ वृकपदं पश्य,यददंत्यबहुश्रुता ॥ १ ॥ इस श्लोकका अर्थ चार्वाकम  
 ण लिख आये हैं यहनी एक आगम कहता है, तथा “न रूपं निद्रवः  
 जः” अर्थात् आत्मा अमूर्ति है, यहनी एक आगम कहता है, तथा  
 “कर्त्तानिर्गुणोक्त्यात्मा” अर्थ:— अकर्त्ता सत्व, रज, अरु तम, इन  
 गों गुणोंसे रहित सुख दुःखका जोगने वाला आत्मा है, यहनी एक  
 आगम कहता है. अब इनमेंसे किसको सच्चा और किसको जूठा माने ?  
 परस्पर विरोधी होनेसे सर्व तो कुछ सच्चे होही नहीं शक्ते है, तथा युक्ति  
 णसेनी मरके परलोक जाने वाली आत्मा सिद्ध नहीं होती है, ताते  
 गौतम ! यह तेरे मनमें संशय है, अब इसका उत्तर कहता हूं कि तूं  
 पदोंका अर्थ नहीं जानता है इत्यादि श्रीगौतमजीके संशयकों दूर  
 ण, ये सर्व अधिकार मूलावश्यक और श्रीविशेषावश्यकसे जान लेना,  
 ण ग्रंथके जारी और गहन हो जानेके सबबसे यहां नहीं लिखा क्योंकि  
 १ इग्यारह गणधरोंके संशय दूर करनेका कथनके चार हजार श्लोक  
 पीठें जब गौतमजीका संशय दूर हो गया, तब गौतमजी पांचसौ अ  
 विद्यार्थियोंके साथ दीक्षा लेके श्रीमहावीर जगवतका प्रथम शिष्य हुआ.  
 १ इसीतरें इंद्रजितकों दीक्षित सुनके दूसरा जाई अग्निनूति बड़े अग्निमा  
 ण नर कर चला और कहने लगा कि:— मेरे नाईकों इंद्रजालीयेने उजमे



बराबर करके तिसका पूर्वपद खमन करा, तो विस्तारसें मूलावश्यक तथा विशेषावश्यकसें जानलेनां अग्निनूतिनेजी गौतमवत् दीक्षा लीनी ॥ ३ ॥  
 अग्निनूतिकी दीक्षा सुनके तीसरा वायुनूति आया परंतु आगे दोनो जाईयोंके दीक्षा ले लेनेसें इसकों विद्याका अनिमान कुठनी न रहा, म नमें विचार कराकि मै जा कर नगवानकों वंदना (नमस्कार) करुंगा ऐसा विचारके आया आ कर नगवंतकों वंदना (नमस्कार) करी तव न गवतने कहा तेरे मनमें संशयतो है परंतु द्योनसेतूं पूठ नही शक्ता है संशय यह हैकि:- जो जीव है सो देहही है और यह संशय तेरेकों विरुद्ध वेदपदश्रुतिसें दूआ है, और तूं तिन वेदपदोंका अर्थ नही जानता है वे वेद पद ये है.- “विज्ञानयनइत्यादि” पहिले गणधरकी श्रुति जाननी इस्सें देहसें न्यारा जीव (आत्मा) सिद्ध नही होता है, और इस श्रुतिसें विरुद्ध यह श्रुति है, “सत्येन लन्यस्तपसा ह्येवब्रह्मचर्येण नित्यज्योतिर्मयो हिद्युद्योप पश्यति धीरायतयः संयतात्मानइत्यादि” इस श्रुतिसें देहसें निन्न आत्मा सिद्ध होती है, इस वास्ते तुजकों संशय है, पीठे नगवानने यह सर्व संशय दूर करे, तब तीसरा वायुनूतिनेजी अपने पांच सौ विद्यार्थियोंके साथ दीक्षा लीनी ॥ ३ ॥

वायुनूतिकी तरें त्रैप आठ गणधर क्रमसें आये, तिसमें चौथा अथ कजी आया तिनके मनमें यह संशयथा कि:- पांचनूत है कि नही? यह संशय विरुद्ध श्रुतियोंसें दूआ वे परस्पर विरुद्ध श्रुतियों यह है:- “स्वप्नो पम वै सकलमित्येव ब्रह्मविविरजसाविज्ञेयइत्यादीनि” तथा इससें विरुद्ध यह श्रुति है “द्यावापृथिवी जनयन् देवइत्यादि” तथा पृथिवीदेवता, अपो देवता, इत्यादीनि इनका अर्थ तेरे मनमें ऐसा जासन होता है:- अर्थ स्वप्न सरीखा वैनिपात अवधारणार्थे संपूर्ण जगत है “एष ब्रह्मविप्रि” अर्थात् यह परमार्थ प्रकार है, अंजसा सीधेन्यायसें जाननां योग्य है, यह श्रुति पांचनूतका अनाव कहती है, और श्रुतियों पांचनूतकी सत्ताकों कहतीयां हैं, इस वास्ते तेरेकों संशय है, तेरे मनमें यहनी हैकि:- युक्तिसें पांचनूतसिद्ध नही होते हैं. पीठे नगवानने इसका पूर्वपद खमन करा वेद पदोंका यथार्थ अर्थ कराये, यह अधिकार उक्त ग्रंथोंसें जान लेनां यह सुन कर चौथा वायुनूतिनेजी अपने पांचसौ शिष्योंके साथ दीक्षा लीनी ॥ ४ ॥

ननु गणधर आया इतकानी उत्ती तरे सर्वाधि  
 तरे मनसे यह संशय है कि:- मनुष्यादि तरे जैसे  
 जन्म होते है ? कि मनुष्य कुठ और पशुआ  
 संशय तरेकां परस्पर विरुद्ध वेद श्रुतियोंसे दूया  
 "पुरुषोवैपुरुषत्वमश्रुते पशवः पशुत्वं इत्यादीनि"  
 जन्म पुरुष स्त्री आदि है वे पर जन्ममेंनी जैसेही दो  
 श्रुति है "श्रगाजोवैएपजाहते यः सपुरीषोदद्यत  
 श्रुतियोंका जगवानने अर्थ करके संशय दूर करा, तब थ  
 ताघदीका लीनी ॥ ५ ॥

तिसके मनमें यह संशय था, कि  
 वा नही है ? यह संशयनी विरुद्ध श्रुतियोंसे दूया है, सो  
 "स एष विगुणोविलुर्न बध्यते, संसरति वा न मुच्यते मो  
 एव वाह्यमन्यंतरं वा वेदइत्यादीनि" इस श्रुतिका ऐसा अर्थ  
 जातन होता है, "एषअधिकृतजीवः" अर्थात् यह जीव नि  
 अधिकार है "विगुण." अर्थात् सत्त्वादि गुण रहित सर्वगत सर्वथा  
 पाप करके इसको बंध नही होता है, और संसारमें भ्रमणनी  
 और कर्मोंसे बूढतानी नही है, बंधके अभाव होनेसे दूम  
 कर्मबंधसे बूढातानी नही है, इस कहनेसे आत्मा अरुर्ता है. सोई  
 कहता है:- यह पुरुष अपनी आत्मासे वाहिर महत् अहंकारादि  
 और अन्यंतर स्वरूप अपना जानता नही क्योंकि जानना ज्ञानसे होता  
 और ज्ञानजो है, सो प्रकृतिका धर्म है, और प्रकृति अचेतन है, बंध  
 नही इस श्रुतिसे बंध मोहका अभाव सिद्ध होता है, अब इस्से विरुद्ध  
 श्रुति यह है सो कहते हैं- "नही वैसशरीरस्य, प्रिया प्रिययोरपहतिरन्ति  
 प्रिया प्रिये नस्पृशत इत्यादीनि"

वान्ने तिसके पूर्वपक्षोंको खंन करके संशय दूर करा, तब मंदिपुत्र साढे तीनसौ विद्यार्थियोंके साथ दीक्षित जया ॥ ६ ॥

३ तिस पीठें सातवां मोर्यपुत्र आया तिसके मनमें यह संशयथा कि:— देवता हैं किया नही है? यह संशय परस्पर विरुद्ध श्रुतियोंसें हुआ वो श्रुतियों यह है:— सएपयज्ञायुधीयजमानोंज सास्वर्गलोकं गच्छति इत्यादि श्रुतियों स्वर्ग तथा देवताओंकी सिद्धि करतीयां हैं, इस्सें विरुद्ध श्रुति यह है:— अपामसोमं अमृता अमृत, अगमामद्योतिर्विदामदेवान् ॥ किंनूनम स्मान्मृणवदराति. किमुधूर्ति रमृतमर्त्यस्येत्यादीनि" तथा कोजानाति मा योपमान् गीर्वाणानि इयमवरुणकुबेरादीन् इत्यादि" इनका अइसा अर्थ तेरे मनमे जासन होता है कि:— पाणीकों पीते हूये एतावता सोमजताका रस पीते हूये अमृत (अमरण) धर्मवाले हम हूये हैं, ज्योति स्वर्ग और देवताकों हम नही जानते है तथा देवता हम हूये हैं, यहनी नही जा नते देवता तूणकी तरें हमारा क्या कर शक्ते हैं? यह श्रुति अजाव प्रति पादन करती है, और यह जावकी प्रतिपादक है, "धूर्तिजराअमृतमर्त्य य" अमृतत्व प्राप्त पुरुषकों क्या कर सकती है? इन श्रुतियोंका यथार्थ अर्थ रकें और तिसका पूर्वपक्ष खंन करके जगवतने इनका संशय दूर करा, तब यहनी साढे तीनसौ ढात्रोंके साथ दीक्षित जया ॥ ७ ॥

७ तिस पीठें आठमा अकपिक आया उसके मनमेची वेदकी परस्पर वि रुद्ध श्रुतियोंके पदोंसें नरकवासी है कि नही? यह संशय उत्पन्न हुआ था, वो परस्पर विरुद्ध श्रुतियों लिखते है.— "नारको वै एष जायतेय. शुडान्न मश्नाति इत्यादि" इसका अर्थ:— यह ब्राह्मण नारक होवेगा जो गूडका अन्न खाता है, इस श्रुतिसें नरक सिद्ध होता है, तथा "नह वैप्रेत्यनरके नारका. सतीत्यादि सुगमार्थ: इसश्रुतिसें नरकका अजाव सिद्ध होता है इनका अर्थ करके और पूर्वपक्ष खंन करके जगवान्ने तिसका संशय दूर करा तब अंक पिकनेची तीन सौ ढात्रोंके साथ दीक्षालीनी ॥ ७ ॥

८ तिस पीठें नवमा अचलत्राता आया तिसकोंनी परस्पर वेदकी विरुद्ध श्रुतियोंकेपदोंसें पुण्य पाप है, कि नही? यह संशय था, सो वेद पद यह है — "पुरुषएवेदंअसर्वइत्यादि दूसरे गणधर वत् इस्से विरुद्धपद यह है — "पुण्य.पुण्येन कर्मणा जवति, पापं पापेन कर्मणा जवति इत्यादि" इस्सें



पुण्यपाप सिद्ध होते हैं, यह संशयजी जगवानने दूर करा, तब यद्दत्त  
तीन सौ ठात्रोंके साथ दीक्षा ली ॥ ए ॥

१० तिस पीठें दशमा मेतार्य आया उसकोंनी वेदकी परस्पर विरुद्ध श्रुतियोंसें यह संशय दूआ था, कि:-परलोक है किंवा नहीं है? वो श्रुतियां यह है:- “विज्ञानघन इत्यादि प्रथम गणधरवत् अजाव कथक श्रुति जाननी” तथा “स वैश्वर्य आत्मा ज्ञानमय इत्यादि” परलोक जाव प्रतिपादक श्रुति जाननी इनका तात्पर्य जगवानने कहा तब मेतार्यजीनेत्रिंशक होकें तीन सौ ठात्रोंके साथ दीक्षा लीनी ॥ १० ॥

११ तिस पीठें इग्यारहवा प्रजास नामा गणधर आया, तिसके मनमें जे वेद श्रुतियोंके परस्पर विरुद्ध होनेसें यह संशयथा कि निर्वाण है कि नहीं है? वो श्रुतियों यह है:- “जरामर्थ वा एतत्सर्वं यदग्नि होत्रं” इमे विरुद्ध श्रुति यह है:- “वेदब्रह्मणी वेदितव्ये परमपर च तत्र परं सत्यं ज्ञानमनंतब्रह्मेति” इनका यह अर्थ तेरी बुद्धिमें जासन होता है कि.- अग्निहोत्र जो है, सो जीव हिंसा संयुक्त है, और जरा मरणका कारण के अरु वेदमें अग्नि होत्र निरंतर करणां कहा है, तब ऐसा कौनसा काल है, कि जिसमें मोक्ष जानेका कर्म करीये? इस वास्ते आत्माकों मोक्ष (निर्वाण) कदापि नहीं हो शक्ता है, अरु दूसरी श्रुति मोक्ष प्राप्तिजी कहती है, इस वास्ते संशय दूआ है इसका जब जगवानने उत्तरदे के निशंक करा तब तीनसौ ठात्रोंके साथ दीक्षा लीनी, यह श्रीमहावीर जगवतके वैशाखशुद्धि दशमीके दिन मध्यपापानगरीके महासेन वनमें (४४००) शिष्य दूये. तिस पीठें राजपुत्र श्रेष्ठिपुत्रादि तथा राजपुत्री श्रेष्ठिपुत्री राजाकी राणीयो आदिकने दीक्षा लीनी. तथा जब जगवत श्रीमहावीरजपावापुरीमें मोक्ष गये, तिसही रात्रिमें इंद्रजित अर्थात् गौतमगणधरको केवल ज्ञान दूआ, तब इंद्रोंने निर्वाण महोत्सव करा, और सुधर्मास्वामजीकों श्रीमहावीर स्वामीजीकी गद्दी ऊपर बैठाया श्रीगौतमजीकों गर्द इस वास्ते न दूइ की केवलज्ञानी पुरुष कोइ पाट ऊपर नहीं बैवता है, क्योंकि केवली तो जो पूठे उसका उत्तर अपने ज्ञानसेही देता है, परंतु ऐसा नहीं कहता है कि:- मैं अमुक तीर्थकरके कहनेसें कहता हूँ, इस वास्ते केवलज्ञानी पाट ऊपर नहीं बैवता है, जेकर बैठे तो तीर्थकरका

शासन दूर हो जावे, यह कनी हो न शकी जो अनादि रीतिकों के बली जंग करे, इस वास्ते श्रीगौतमजी केवल ज्ञानी था सो गद्दी ऊपर नहीं बैठे और सुधर्म स्वामी बैठे.

१ श्रीसुधर्म स्वामी पचास वर्ष तो गृहस्थावास (घरमें) रहे, और तीस वर्ष श्रीमहावीर जगवंतकी चरण सेवा करी, जब श्रीमहावीर निर्वाण हुआ, तिस पीछे बारां वर्ष तक तन्मस्थ रहे, और आठ वर्ष केवली रहे, क्योंकि श्रीमहावीर अर्द्धतके पीछे केवली हो कर बारां वर्ष श्रीगौतमजी जीते रहे, और श्रीगौतमजीके निर्वाण पीछे श्रीसुधर्म स्वामीजीकों के वल ज्ञान हुआ, केवली हो कर आठ वर्ष जीते रहे, श्रीसुधर्म स्वामी जीकी सर्वायु एक सौ (१००) वर्षकी थी, सो श्रीमहावीरजीके पीछे बीस वर्ष मोक्ष गये २ श्रीसुधर्म स्वामी के पाट ऊपर श्रीजंबूस्वामी बैठे सो राजगृहनगरका वासी श्रीरूपनदत्तश्रेष्ठकी धारिणी नामा स्त्रीसें जन्मेथे नि नानवे क्रोड सोनइये और आठ स्त्रीघोंकों ठोड कर दीक्षा लेता जया, सो जां वर्ष गृहस्थ वासमें रहे, बीस वर्ष व्रतपर्याय, और चौतालीस वर्ष केवलपर्याय पालके श्रीमहावीरके निर्वाण पीछे चौशठमें वर्ष मोक्ष गये.

यह श्रीजंबूस्वामीके पीछे जरतक्षेत्रमें दश बाते विच्छेद हो गइ तिसका नाम लिखते है.- १ मनः पर्यायज्ञान, २ परमावधि ज्ञान, ३ पुलाक लब्धि, ४ आहारकशरीर, ५ कृपकश्रेणि, ६ उपशमश्रेणि, ७ जिनकल्पमु निकी रीति, ८ परिहारविद्युद्विचारित्र, तथा सूक्ष्मसंपराय, और यथाख्यात, यह तीन तरेके संयम, ९ केवलज्ञान, १० मोक्ष होनां, यह दश वस्तु वि छेद हो गइ, श्रीमहावीर जगवतके केवली हूये, पीछे जब चौदह वर्ष बीते थे; तब जमाली नामा, प्रथम निन्हव हुआ, और शोलां वर्ष पीछे तिप्य गुप्त नामा दूसरा निन्हव हुआ. श्री जंबूस्वामीकी आयु एंसी वर्षकी थी

३ जंबूस्वामीके पाट ऊपर प्रजवा स्वामी बैठे, तिनकी उत्पति ऐसे है:- विंध्याचल पर्वतके पास जयपुर नामा पत्तन था, तिसका विंध्य नामा राजा था तिसके दो पुत्र थे एक बडा प्रजव दूसरा छोटा प्रजु, विंध्यराजाने किसी कारणसे छोटे पुत्र प्रजुको राज तिलक दे दीया, तब बडा वेटा प्रजव छुस्सं हो कर जयपुर पत्तनसे निकल कर विंध्याचलकी विषम जगामे गाम बसा कर रहने लगा, और खात्रखनन, बंदिग्रहण,

वर्षा नवे वर्षे जोगके स्वर्गमें गये, और जड्वाहुस्वामीने १ आचर्यक  
 निर्युक्ति २ दशवैकालिकनिर्युक्ति ३ उत्तराध्ययन निर्युक्ति ४ आचारांगकी  
 निर्युक्ति, ५ सूत्ररुदंग निर्युक्ति, ६ सूर्यप्रज्ञप्ति निर्युक्ति, ७ रूपिनापित निर्युक्ति,  
 ८ कल्प निर्युक्ति, ९ व्यवहार निर्युक्ति, १० दशा निर्युक्ति. ये दश  
 निर्युक्तियों और १ कल्प, २ व्यवहार, ३ दशाश्रुतस्कंध, यह नवमे पूर्वसे  
 उद्धार करके बनाये और एक बहुत बड़ा जड्वाहु नामे संहिता ज्योतिष  
 शास्त्र बनाया, उपसर्गहर स्तोत्र बनाया, जैनमतीयों उपर बहुत उपकार  
 करा इनही जड्वाहुजीका सगा जाइ वराहमेहर हूआ, वो पहिले  
 तो जैनमतका साधु हूआ था, फेर साधुपणां ठोडके वराही संहिता बनाइ  
 और जो वराह मिहर विक्रमादित्यकी सजाका पंजित था, वो दूसरा वराह  
 हमिहर था, संहिता कारक वो नहीं हूआ, इसका संपूर्ण वृत्तांत परिशिष्ट  
 पर्वसें जान लेनां श्रीनड्वाहुस्वामी गृहस्थावासमें पैतालीस वर्ष रहे, सत्तारे  
 वर्षे व्रतपर्याय, अरु चौदह वर्ष युगप्रधान, सब मिल कर उद्धार वर्षकी  
 आयु जोगके श्रीमहावीरसें एकसौ सत्तर ( १७० ) वर्ष पीठे स्वर्ग गये.

७ यह श्रीसंनूतविजय अरु जड्वाहुस्वामीके पाठ ऊपर श्रीस्थूलजड्  
 स्वामी बैठे इनका बहुत वृत्तांत है, सो परिशिष्टपर्वग्रंथसें जान लेनां, १  
 प्रनवस्वामी, २ शिष्यनवस्वामी, ३ यशोनड्स्वामी, ४ संनूतविजय, ५  
 जड्वाहुस्वामी, ६ स्थूलजड्, यह उहाँ आचार्य चौदह पूर्वके वेत्ता थे, श्री  
 स्थूलजड्स्वामी तीस वर्ष गृहस्थावासमें रहे, चौबीस वर्ष व्रतपर्याय, अरु  
 पैतालीस वर्षयुगप्रधान पदवी, सर्वायु निनानवें वर्षकी जोगके श्रीमहावीरके  
 पीठे ( २१५ ) वर्षे स्वर्ग गये श्रीमहावीरसें दोसौ चौदह वर्ष पीठे आपाठा  
 चार्पके शिष्य तीसरे निन्हव हूये

स्थूलजड्के बखतमें नवनंदोंका एक सौ पंचावन ( १५५ ) वर्षना  
 राज्य उद्भेद करके चाणाक्य ब्राह्मणने चंडगुप्तराजाको राजसिंहासन उपर  
 बैठाया, और चंडगुप्तके संतानोंने एक सौ आठ वर्ष तक राज्य कीया चंड  
 गुप्त मोरपालका बेटा था, इस वास्ते चंडगुप्तका मौर्यवंश कहते हैं. यह  
 चंडगुप्त जैनमतका धारक आवक राजा था, यह चंडगुप्त तथा नवनंदका  
 वृत्तांत देखनां होवे, तदा परिशिष्ट पर्व, उत्तराध्ययनवृत्ति तथा आयश्य  
 क वृत्तिते देख लेनां.

श्री स्थूलजङ्घस्वामीके पीठें उपर ले चार पूर्व, प्रथम सहनन, प्रथम संस्थान. व्यवहृद ही गये, तथा श्रीमहावीरसें दोसौ बीस ( २२० ) वर्ष पीठे अश्वमित्र नामा चौथा कृष्णिकवादि निन्हव हूआ, और श्री स्थूलजङ्घीके समयमें बारां वर्षका डूर्जिहू (काल) पडा उस समयमें चंडगुप्तका राज था. तथा श्री महावीरके पीठें ( २२७ ) वर्ष व्यतीत हुए गंग नामा पांचमां निन्हव हूआ.

७ श्री स्थूलजङ्घके पीठे श्री स्थूलजङ्घीके दो शिष्य एक आर्यमहा गिरि, और दूसरा सुहस्ति सूरि, आठमें पाट उपर बैठे, तिसमें आर्यमहा गिरिके शिष्य १ बहुल, २ बलिस्तह, फेर बलिस्तहका शिष्य श्री उमा स्वातीजी जिसनें तत्त्वार्थादि सूत्र रचे हैं, और उमास्वातीका शिष्य श्या माचार्य जिसने प्रज्ञापना ( पन्नवणासूत्र ) बनाया, यह श्यामाचार्य श्रीमहावीरसें तीन सौ त्रिहत्तर वर्ष पीठें स्वर्ग गया, और आर्य महागिरिजी तीस वर्ष गृहवासमें रहे, चालीस वर्ष व्रत पर्याय अरु तीस वर्ष युगप्र धान पदवी सर्वायु एक सौ वर्षकी जोगके स्वर्ग गया.

और दूसरा आठमें पाटवाला सुहस्तिसूरि, जिसने एक निखारीकों दी हा दीनी वो निखारी काल करके चंडगुप्तका बेटा विंडसार और विंडसार का बेटा अशोक और अशोकका बेटा कुणाल तिस कुणालका बेटा सं प्रति राजा हूआ, तिस संप्रति राजाने जैनधर्मकी बहुत वृद्धि करी, क्यों कि कल्प सूत्रके प्रथम उद्देशमें श्रीमहावीरके समयमें अक्की निसवत व हुत थोडे देशोंमें जैनधर्म लिखा है, मारवाड, गुजरात, दक्षिण, पंजाब व गैरे देशोंमें जो जैनधर्म है, सो संप्रति राजाहीसें फैला है, यद्यपि इस कालमें जैनी राजाके न होनेसें जैनधर्म सर्व जगें नही, परंतु संप्रतिराजाके समयमें बहुत उन्नति पर था, क्योंकि संप्रति राजाका राज्य मध्यखंड और गंगापार और सिंधु पारके सर्व देशोंमें था, संप्रति राजाने अपने नौकरोंको जैनके साधुओंका वेप बना कर अपने सेवक राजाओंके जो शक, चचन. फारसादि देशों थे, तिन देशोंमें भेजे, तिनोने तिन राजाओंको जैनके साधुओंका आहार विहार आचारादि सर्व बताया. और समजाया पीठेसें साधुओंका विहार तिन देशोंमें कराकर लोकोको जैन धर्मी करा, और संप्रति राजाने ( ६०००० ) तिनानवे हजार जीण ( ५

राने) जिनमंदिरोंका उद्धार कराया अर्थात् पुराने टूटोफूटोंको नया बनाया, और ठवीस हजार (१६०००) नवीन जिनमंदिर बनवाये, और सोने, चांदी, पीतल, पाषाण, प्रमुखकी सवा क्रोड प्रतिमा बनवाइ, तिसके बनवाये मंदिर नमौल, गिरनार. शत्रुंजय, रतलाम, प्रमुख अनेक स्थानोंमें सडे हमने अपनी आंखोंसे देखे हैं, और संप्रतिकी बनवाइ जिनप्रतिमा तो हमने सैंकडो देखी हैं, इस संप्रति राजाका वृत्तांत परिशिष्ट पर्वादि ग्रंथोंसे समग्र जान लेनां.

तिसही सुहस्ती सूरि आचार्यने उजयनकी रहने वाली जइसेवानीका पुत्र अवंती सुकुमालको दीक्षा दीनी. और जहा उस अवंती सुकुमालने काल करा था, तिस जगे तिस अवंती सुकुमालके महाकाल नाम पुत्रने जिनमंदिर बनवाया, और तिस मंदिरमें अपने पिताके नामसे अवंति पार्श्वनाथकी मूर्ति स्थापन करी, कालांतरमें ब्राह्मणोंने थापना जोर पा कर तिस मंदिरमें मूर्तियोंके हेठ दाव कर उपर महादेवका लिंग स्थापन करके महाकाल ( महादेवका ) मंदिर प्रतिष्ठा कर दीया, पीछे जब राजा विक्रम उजयनमें राजा हुआ, तिस अवसरमें कुमुदचंद्र अर्थात् सिद्धसेन दिवाकर नामा जैनाचार्यने कल्याणमंदिर स्तोत्र बनाया, तब शिवका लिंग फटकर बीचमेंसुं पूर्वोक्त पार्श्वनाथकी मूर्ति फिर प्रगट हुई.

इसका संबंध ऐसा हैकि.— विद्याधर गह्वमें स्कंदिलाचार्य तिनका शिष्य वृद्धवादि आचार्य था, तिस अवसरमें उजयनका राजा विक्रमादित्य था, तिसका मंत्री कात्यायन गोत्री देवर्षिनामा ब्राह्मण तिसकी वैचसिका नामा स्त्री, तिनका पुत्र सिद्धसेन सो विद्याके अजिमानसें सारे जगतके लोकोंको तृणवत् ( घासफूसशमान ) समजता था, और ऐसा जानता था कि:— मेरे समान बुद्धिमान कोइनी नहीं, और जो मुझको वादमें जीत लेवे, तो मैं उसकाही शिष्य बन जाऊंगा पीछे तिसने वृद्धवादीकी बहुत कीर्ति सुनी उनके सन्मुख जाने वास्ते सुखासन ऊपर बैठके नृप कष्ट ( नडोच ) कीतरफ चला जाता था, तिस अवसरमें वृद्धवादीनी र स्तेमें सन्मुख आता हुआ मिला, तब आपसमें दोनोंका आजाप संजाप हुआ पीछे सिद्धसेनजीने कहा कि मेरे साथ तुम वाद करो, तब वृद्धवादीने कहा कि वाद तो करूं, परंतु इस जंगलमें जीते हारेका कहनेवाला कोइ शाही

नहीं, तब सिद्धसेनजीने कहा कि यह जो गौ चरानेवाले गोप है, येही  
 मेरे तुमारे साही रहे, ये जिसकों कहदेंगे हारा सो हारा, तब वृद्धवादीने  
 कहा बहुत अज्ञा, येही साही रहे, अब तुम बोलो तब सिद्धसेनजीने ब  
 तसंस्कृत जापा बोली और चुप करी तब गोपोंने कहा यह तो कुठनी  
 ही जानता, केवल ऊंचा बोलके हमारे कानोंकों पीडा देता है, तब गोप  
 कहने लगे हे वृद्ध ! तू बोल ? पीठें वृद्धवादी अक्सर देख के कडा बाध  
 र तिन गोपोंकी जाषामे कहने लगे, और थोड़े थोड़े कूदनेची लगे, जो  
 उच्चारण सो कहते हैं. " नविमारिये नविचोरिये, परदारागमणनिवा  
 ये ॥ थोवाथोवदाइये, सग्गिमट्टेमट्टेजाइये ॥ १ ॥ फेरनी बोले और ना  
 ने लगे ॥ उंद ॥ कालो कंबल नीचोवट्ट, ठाठें जरिउ दीवडो थट्ट ॥ ए  
 उ पडीउ नीले जाड, अवरकिसोठे सग्ग निजाड ॥ २ ॥ यह सुनकर  
 प बहुत खुशी हूये और कहने लगेकि वृद्धवादी सर्वज्ञ है, इसने कैसा  
 ग कानोंकों सुखदायी हमारे योग्य उपदेश कहा, और सिद्धसेन तो  
 नहीं जानता तब सिद्धसेनजीने वृद्धवादीकों कहा कि हे नगचन् ! तुम  
 कों दीक्षा देके अपना शिष्य बनाउ क्योंकि मेरी प्रतिज्ञा थी के जो  
 मुझे हाराकहेंगे, तो मैं हारा, और तुमारा शिष्य बनूंगा यह सुन  
 वृद्धवादीने कहा कि जगुपुरमें राजसजाके बीच तेरा मेरा वाद होवेगा,  
 तु यह गोपोंकी सजामें वादही क्या है ? तब सिद्धसेनने कहा मैं अब  
 नहीं जानता, तुम अक्सरके ज्ञाता हो, इस वास्ते मैं हारा पीठें वृद्ध  
 ने राजसजामें उसको पराजय करा, तब सिद्धसेनने दीक्षा लीनी. गु  
 उनका नाम कुमुदचंडीजी दीया, पीठें जब आचार्य पदवी दीनी, तब  
 सिद्धसेन दिवाकर नाम रक्का. पीठें वृद्धवादी तो और कहीकों वि  
 कर गये, और सिद्धसेन दिवाकर अवंती (उज्जयिनमें) गये, तब उज  
 ना संघ सन्मुख आया, और सिद्धसेन दिवाकरको सर्वज्ञ पुत्र ऐसा  
 व दीया, ऐसा विरुद्ध बोलते हुए अवंती नगरीके चौकमें लाये, तिस  
 तरमें राजाविक्रमादित्य हाथी ऊपर चढा हुआ सन्मुख मिला तब रा  
 सर्वज्ञ पुत्र ऐसा विरुद्ध सुनके तिनकी परीक्षा वास्ते हाथी उपर वे  
 ने मनसैं नमस्कार करा तब आचार्यने धर्मज्ञान कहा, तब राजाने पू  
 विनाही वंदना करे, आप मेरेकों धर्मज्ञान क्यों कर कहा ? क्या यह

धर्मलाज बहुत सस्ता है? तब आचार्यने कहा यह धर्मलाज क्रोडचित्त मणि रत्नोंसेंजी अधिक है, जो कोइ हमको वंदना करता है, उसको हम धर्मलाज कहते हैं. और जैसेंजी नहीं, जो तुमने हमको वंदना नहीं करी, तुमनेजी अपने मनसें वंदना करी, तो मनही सर्व कार्योंमें प्रधान है, इस वास्ते हमने धर्म लाज कहा है, और तुमनेंजी मेरी परीक्षा वास्तेही मनमें नमस्कार करा है, तब विक्रमराजा तुष्टमान हो कर हाथीसें नीचे उतर कर सर्वसंधकी समझ वंदना करी, और एक क्रोड अशर्फी दीनी परंतु आचार्यने अशर्फीयां नही लीनी क्योंकि वे त्यागी थे, और राजाजी पीता नही लेता, तब आचार्यकी आज्ञासें संवपुरुषोंने जीर्णोद्धारमें लगा दीनी. राजाके वफातरमें तो ऐसा लिखा है ॥श्लोक॥ धर्मलाज इनिप्रोक्ते, दूरा मुक्ति तपाण्ये ॥ सूरये सिद्धसेनाय, ददौकोटिं धराधिपः ॥१॥ श्रीविक्रमराजाके आगे सिद्धसेन दिवाकरने जैसेंजी कहा था कि ॥गाथा॥ पुष्टे वास सहस्रे. सर्षमि वरिसाण नवनवइकलि ए ॥ होइ कुमर नरिंदो, तुहविक्रम राय सारिणो ॥ १ ॥ अन्यदा सिद्धसेन चित्रकूटमें गये तहां बहुत पुराने जिनमंडिरमें एक बड़ा मोटा स्थंज देखा, तब किसीको पूछा कि यह स्थंज किसतरांका है? एह सुन कर किसीने कहा कि यह स्थंज औषध इव्यमय जलादि करके अज्ञेय वज्रवत् है. इस स्थंजमें पूर्वाचार्योंने बहुत रहस्य विद्याके पुस्तक स्थापन करे हैं, परंतु किसीसें यह स्थंज खुलता नहीं यह सुन कर सिद्धसेन आचार्यने तिस स्थंजको सूंघा तिसकी गंधसे तिसकी प्रतिपत्ती औषधीयोंका रस गंटा तिसमें वो स्थंज कमलकी तरें खिड गया, तब तिसमें पुस्तक देखा तिनमें तुं एक पुस्तक ले कर वांचा, तिसके प्रथम पत्रमें दो विद्या लिखी पाइ, एक सरसों विद्या और दूसरी सुवर्णविद्या, तिसमें सरसों विद्या उसको कहते हैं, कि जो काम पडे तब मंत्रवादी जितने सरसोंके दाने जपके जलाशयमें गेरे उतनेही अश्वार वैतालीश प्रकारके आयुधों सहित बाहिर निकजके नैदानमें खडे हो जाते हैं, तिनोंसें शत्रुकी सेना जंग हो जाती है. पीठे जब वो कार्य पूरा हो जाता है, तब अश्वार अदृश्य हो जाते हैं. और दूसरी हेमविद्यासें विनामेहनतके जितना चाहे, उतना सुवर्ण हो जाता है, ये दो विद्या सिद्धसेनने लेलीनी, पीठे जब आगे वांचने लगा तब





पणां, वक्तापणां, यश, प्रताप, मारण, उच्चाटन, स्तंभन, वशीकरण आदि सिद्धियों कि जो सामर्थ्य सो फूल है, अरु केवलज्ञान फल है, अर्थात् तो योगकल्पवृक्षके फूलही लगे है सो केवल ज्ञानरूप फल करके आगे फलेंगे इस वास्ते तिन अप्राप्त फल पुष्पोंको क्यो तोडता है? अर्थात् मत तोड ऐसा नावार्थ है, तथा "मारोवा मोडिहि" जहां पांच महाव्रत आरोपा है तिनको मत मरोड "मणुकुसुमेत्यादि" मनरूप फूल करी निरंजनं जिनं पूजय (निरंजन जिनको पूज) "वनात् वनकिं हि मते" राजसेवादि चुरे नीरस फल क्यो करता है? इतिपद्यार्थ तब सिद्धसेनसूरिने गुरु शिष्याको अपने शिर उपर धरके और राजाको पृथके वृद्धवादी गुरुके साथ विहार करा, और निविड चारित्र धारण करा, अनेक आचार्योसें पूर्वोका ज्ञान सीखा, वृद्धवादी स्वर्गवास हुए पीठे एकदा सिद्धसेनजीने सर्वसंघ एकिठा करके कहा कि जेकर तुम कहोतो सर्वांगमोंको मैं संस्कृतनापामें करदेउं तब श्रीसंघने कहा क्या तीर्थकर गणधर संस्कृत नहीं जानते थे? जो तिनहोंने अर्द्धमागधीनापामे आगम करे? ऐसी बात कहनेसें तुमको पारांचिक नाम प्रायश्चित्त आवेगा हम तुमसें क्या कहें? तुम आपही जानते हो, तब सिद्धसेनने विचार करके कहा कि, मैं मौन करके वारां वर्षका पारांचिक नाम प्रायश्चित्त लेके गुप्त मुख वस्त्रिका, रजोहरणादि लिंग करके और अवधूत रूप धारके फिरंगा, ऐसे कह कर गंधको ठोडके नगराडिकोंमें पर्यटन करने लगे वारां वर्षके पर्यतमें उज्जयिन नगरी मे महाकालके मंदिरमें शोफालिकाके फूलों करके वस्त्ररंगे पहने हुए सिद्धसेनजी जाके बैठा तब पूजारी प्रमुख लोकोने कहा तुम महादेवको नमस्कार क्यो नहीं करता? सिद्धसेन तो बोलतेही नहीं हैं? ऐसे लोको को परंपरासे सुन कर विक्रमादीत्यनेजी तहां आ कर कहा "हीरजिनि ह्योनिह्योकिमित्त्वया देवो न वंच्यते" तब सिद्धसेनने कहा मेरे नमस्कारमें तुमारे देवका लिंग फट जायगा फेर तुमको महाडःख होवेगा मैं इत वास्ते नमस्कार नहीं करता हूं तब राजाने कहा लिंग फटे तो फट जानेयां परतु तुम नमस्कार करो, पीठें सिद्धसेनजी पद्मासन बैठके कहने लगा, सुनो तब द्वात्रिंशका करके देवका स्तवन करने लगा, तथा हि ॥ श्लोक ॥ इष्वज्जवृत्तम् ॥ स्वर्णचुवं नृतसहस्रनेत्र, मनेरुमेकाक्षरनावलिंगं ॥ अथकम

ब्याहृत विश्वलोक, मनादिमध्यांतमपुण्यपापं ॥१॥ इत्यादि प्रथमही श्लोक पढनेसें लिंगमेंसे धूआं निकला तबलोक कहने लगे शिवजीका तीसरा नेत्र खुला है, अब इस निहुकों अग्निनेत्रसें जन्म करेगा तबतो विजलीके तेजकी तरें तडतडाट करता प्रथम अग्नि निकला पीछें श्रीपार्श्वनाथजीका त्रिव प्रगट हुआ, तब वादी सिद्धसेननें कल्याण मंदिरादि स्तवनों करी स्तवन करकें कृमापन मांगा, तब राजा विक्रमादित्य कहने लगाकि हे जगवन् ! यह क्या अदृश्यपूर्व देखनेमें आया ? यह कौनसा नवीन देव है ? और यह प्रगट क्यों कर हुआ ? तब सिद्धसेनजीनें आवंतीसुकुमाल और तिसके पुत्र महाकालने पिताके नामसें आवंती पार्श्वनाथका मंदिर और मूर्ति बनाइ स्थापन करी, तिसकी कितनेक वर्ष लोकोंने पूजा करी अक्सर पाकर ब्राह्मणोंने जिनप्रतिमाकों हेत दाबके ऊपर यह शिवलिंग स्थापन करा इत्यादि सर्व वृत्तांत कहा, और हे राजन् ! इस मेरी स्तुतिसें शासनदेवताने शिवलिंग फाडके वीचमेंसें यह प्रतिमा प्रगट कर दीनी, अब तूं सत्यासत्यका निर्णय कर ले तब विक्रमादित्यने एक सौ गाम मंदिरके खरच वास्ते दीये, और देवके समूह गुरु मुखसें बारां व्रत ग्रहण करे, और सिद्धसेनकी बहुत महिमा करी, अपने स्थानमें गया और वादीं ( सिद्धसेनदिवाकरको ) संघने जिनधर्मकी प्रभावनासें तुष्टमान हो कर संघमें लीया. अरु पूर्ववत् आचार्य बनाया.

एकदा प्रस्तावे सिद्धसेन दिवाकर विहार करते दूये मालवेके देशमें जो 'उ' कारनामें नगर है, तहां गये, तिसनगरके जक्त श्रावकोने आचार्यकों विनती करी, जैसें हे जगवन् ! इसी नगरके समीप एक गाम था, तिसमें सुंदर नामा राजपुत्र ग्रामणी था, तिसकी दो स्त्रीयां थी, एक स्त्रीके प्रथम पुत्री जन्मी वो स्त्री मनमे खीजी तिस अक्सरमें उसकी सौकननी प्रसूत होने वाली थी, तब तिस बेटोवालीनें विचारा कि इसके पुत्र न होवे, तों ठीक है, क्योंकि नहीं तो यह पतिकों बह्व्रज हो जावेगी, तब दाइसें मिलके उससें पैदा हुआ पुत्रकों बाहिर गिरा दीया, और तत्कालका मरा हुआ लडका उसके आगे रख दीया पीछें जौनसा लडका बाहिर गेरा गया था, उसकों कुलदेवीनें गौका रूप करकें पाला जब आठ वर्षका हुआ तब इस 'उ'कार नगरके शिवजय नके अधिकारी जरटनें देखा और अपना चेला बना लीया, एकदा प्रस्तावे

कन्य कुब्ज देशका राजा आंखोंसें आंधाने दिग् विजय कार्यसें तहां पहाव करा तव रात्रिमें उस ठोटे चलेकों शिवनक्त व्यंतर देवतानें कहा कि गेर जोगराजाकों देना, उसकी आंख अन्ही हो जावेगी, तैसेही करा तिससें राजाकी आंख अन्ही हो गइ तव राजाने सौ गाम मंदिरके खरच वास्ते दीये और यह बडा ऊंचा जो शिवका मंदिर है सोनी उसीनें बनवाया, और हम इस नगरमें रहते है परंतु मिथ्यादृष्टियोंके बलवान् होनेसें हम जिनमंदिर बनाने नही पाते हैं, इस वास्ते आपसे विनति करते है, कि इस मंदिरसें अधिक हमारा मंदिर यहां बने तो ठीक है, और आप सर्वतरसें सामर्थ्य हों. तिनका वचन सुनकर वादिष्ने आवतीमें आकर चार श्लोक हाथमें ले कर विक्रमादित्यके द्वार पास आये दरवाजे दारके मुखसें राजाकों कहाया “ दिदमु निहुरायातस्तिष्ठति द्वारवारितः हस्तन्यस्तचतुः श्लोक उतागउतुगउतु ॥ १ ॥ तिस श्लोककों सुनकर विक्रमादित्यनें बदलेका श्लोक लिखकर चेजा ” दत्तानिदशलक्षणि, शासनानिचतुर्दश ॥ हस्तन्यस्तचतुः श्लोकः उतागउतु गउतु ॥ २ ॥ तिस श्लोककों सुनकर आचार्यने कहा चेजा कि निहुरा तुमकों मिला चाहता है, परंतु धन नहीं लेता तव राजाने सम्मुख बुजवाये और पिठानके कहने लगा कि गुरुजी बहुत दिनों पीछे दर्शन दीया तव आचार्य कहने लगे धर्मकार्यके करनेसें बहुत दिन दूये घिरसें थाना दूआ अब चार श्लोक तुम सुनो ॥ अपूर्वेयं धनुर्विद्या, जवताशिक्षिता कुतः ॥ मार्गणोप, समन्येति, गुणोयातिदिगंतरे ॥ १ ॥ गरस्वतीस्थितावके, लक्ष्मीकरसरो रुहे ॥ कीर्त्तिः किंकुपित राजन्, येन देशांतरंगता ॥ २ ॥ कीर्त्तिस्तेजांतजा उद्येव, चतुरंनोधिमङ्गेनात्, ॥ आतपायधरानाथ, गतामात्तममल ॥ ३ ॥ सर्वदासर्वदोसीति, मिथ्या संस्तूयसे जने ॥ नारयोलेजिरे पृष्टं, नवद्वपर योषित ॥ ४ ॥ यह चारों श्लोक सुनके राजा बहुत खुश दूआ, और आचार्यकों कहने लगा जो मेरा राज्यमें सार है, सो मांगो तो देवें तव आचार्यनें कहा मुजेंतो कुठनी नही चाहिता. परंतु उकार नगरमें चतुर्द्वार जैनमंदिर शिवमंदिरसें उचा बनाउ और प्रतिष्ठाणी कराउ तव ग जानें वैसेही करा तव जिनमत प्रभावना देखके संघ तुष्टमान दूआ. ५ त्यादि प्रकारमे जैनधर्मकी प्रभावना करते हुए दक्षिणदेशमें प्रतिष्ठानधुमें जा कर धनशन करके देवलोक गये. तव तहांसे संघने एक नटकों सिद्ध

सेनकी गह्वर पास खबर करनेको जेजा, तिस नटने सरियोकी सनामे आधा श्लोक पढा और वार वार पढताही रहता है, वो आधा श्लोक यह है.— स्फुरति वादिखद्योता. सांप्रतं दक्षिणापथे ॥ जब वार वार यह अर्धा श्लोक सुना तब सिद्धसेनकी बहिन साधवीनें सिद्ध सारस्वत मंत्रसें अर्ध श्लोक पूरा करा नूनमस्तगतोवादी, सिद्धसेनोदिवाकरः ॥ १ ॥ पीठे तिस नटने सर्ववृत्तांत सुनाया तब संघको बडा शोक हुआ ॥ इति सिद्धसेन दिवाकरका प्रसंगसें संबंध कथन करा ॥

यह सुहस्ति आचार्य तीस वर्ष गृहस्थावासमें रहे और चौबीसवर्ष व्रत पर्याय, तथा बैतालेश वर्ष युगप्रधान पढवी सब मिलकर एक सौ वर्षकी आयु जोगके श्रीमहावीरसें पीठे दोसौ एकानवे ( १९१ ) वर्ष पीठे स्वर्ग गये, ये आठमे पाठ आर्यमहागिरि और सुहस्ति आचार्य हुए.

ए श्रीसुहस्तीसरिके पाठ उपर श्रीसुस्थित और सुप्रतिबद्ध नामा दो शिष्य बैठे, तिनोंने क्रोडों वार सरिमंत्रका जाप करा, इसवास्ते गह्वका कोटिक ऐसा दूसरा नाम श्रीसंघने रक्का, क्योंकि सुधर्मस्वामीसें ले कर आठपाठ तक तो अनगार निर्धयगह्व नाम था पीठे दूसरा कोटिक नाम हुआ.

१० श्रीसुस्थितसरिके पाठ उपर श्रीइंद्रिन्नसरि हुआ इस अवसरमें श्री महावीरसें चारसौ त्रेपन ( ४५३ ) वर्ष पीठे गर्हनिहाराजाके उद्देश क रणैवाजा दूसरा कालिकाचार्य हुआ, इसकी कथा कल्पसूत्रमे प्रसिद्ध है, और श्रीमहावीरसें ( ४५३ ) वर्ष पीठे जृगुकह्व ( जडौचमें ) श्रीआर्य ख पुटाचार्य विद्याचक्रवर्ती हुआ, इनका प्रबंध श्रीप्रबंधचितामणिग्रंथ तथा हारिनड्डी आवश्यककी टीकासें जान लेना. और प्रनावक चरित्रमें ऐसा लिखा है कि:— श्रीमहावीरसें ( ४०४ ) वर्ष पीठे खपुटाचार्य और ( ४६४ ) ( ४६७ ) वर्ष पीठे आर्यमंगु, वृद्धवादि, पादजित्त तथा कल्याण मंदिरका कर्ता उपर जिसका प्रबंध लिख आये सो सिद्धसेन दिवाकर हुआ जिनेने विक्रमादित्यको जैनधर्मा करा सो विक्रमादित्य श्रीमहावीरसें ( ४७० ) वर्ष पीठे हुआ सो ( ४७० ) वर्ष ऐसे हुएहै,— जिस रात्रिमें श्रीमहावीरजी निर्वाण हुए उस दिन अश्वति नगरीमें पालक नामा राजेकों राज्यानिपेक हुआ, यह पालक चंद्रप्रद्योतका पोता था तिसका राज्य ( ६० ) वर्ष रहा, तिसके पीठे श्रेणिकका बेटा कोणिक और कोणिकका बेटा उदायी जब वि

ना पुत्रके मरा तब तिसकी गद्दी उपर नंद नामा नाइ वैठा, तिनकी गरी में सर्व नंदनामा नव राजे हुए तिनका राज्य ( १५५ ) वर्ष तक रहा न वमें नंदकी गद्दी उपर मौर्यवंशी चंद्रगुप्त राजा हुआ तिसका वेटा विहसार तिसका वेटा अशोक तिसका वेटा कुषाल तिसका वेटा संप्रति महाज्जादि हुए, इन मौर्यवंशीयोंका सर्व राज ( १०७ ) वर्ष तक रहा यह पूर्वोक्त सर्वराजे प्रायें जैनमत वाले थे तिनके पीठे तीस वर्ष तक पुष्पमित्र राजाका राज्य रहा, तिस पीठें बलमित्र, जानुमित्र, यह दोनो राजाका राज्य ( ६० ) वर्ष तक रहा, तिस पीठे नचवाहन राजाका राज्य ( ४० ) वर्ष तक रहा, तिस पीठें तेरां वर्ष गर्हनिह्रीका राज्य रहा, और चार वर्ष शकोका राज्य रहा, पीठे विक्रमादित्यनें शकोंको जीतके अपना राज्य जमाया यह सर्व ( ४७० ) वर्ष हुए.

११ श्रीइंद्रिन्न सूरिके पाट ऊपर श्रीदिन्नसूरि हूये १२ विन्न सूरिके पाट उपर श्रीसिंहगिरि सूरि हूये, १३ श्रीसिंहगिरिजीके पाट ऊपर श्रीवज्र स्वामी हूये, जिनकों वाव्यावस्थासें जातिस्मरण ज्ञान था, जिनकों आकाशगमन विद्याची थी, जिनोंने दूसरे बारा वर्षी कालमें संवकी रक्षा करी, तथा जिनोंने दक्षिणपथमें बौधोंके राज्यमें श्रीजिनेस्पूजा वास्ते फूज जाके दीये, बौद्धराजाकों जैनमती करा, यह आचार्य पीठला दशपूर्वका पाठक हुआ, जिनोसें हमारी वज्री गाखा उत्पन्न हुई, इनका प्रबंध आचश्यक बुद्धिसें जान लेना. सो वज्रस्वामी श्रीमहावीरसें पीठें चार सौ ठानवे और विक्रमादित्यके संवत् ठवीसमें जन्मे, और आठ वर्ष घरमें रहे चौताजीसत वर्ष समान साधुव्रतमें रहे और ठत्तीस वर्ष युगप्रधान पदवीमें रहे, सर्वाष्ट्र अष्टाशी वर्षकी जोगी, तथा इन आचार्यके समयमें जावडशाह सेठने श्री शत्रुंजय तीर्थका संवत् १०७ ) मे तेरहवा बडा उद्धार करा, तिसकी श्री वज्र स्वामीने प्रतिष्ठा करी यह श्रीवज्र स्वामी श्रीमहावीरसें ( ५०४ ) वर्ष पीठें स्वर्ग गये, इन श्रीवज्र स्वामीके समयमें दशमा पूर्व और चौथा संवत् नन और चौथा सस्थान व्यवघेद होगये, यहा श्रीसुहस्ती सूरि आठमें और श्रीवज्र स्वामी तेरहवे पाटके बीचमें अपर पटावजियोंमें १ श्रीगुण सुंदरसूरि, २, श्रीकालिकाचार्य, ३ श्रीस्कंधिजाचार्य, ४ श्रीरेवतमित्रसूरि, ५, श्रीधर्मसूरि, ६ श्रीनड्युताचार्य, ७ श्रीगुताचार्य, यह सात क्रममें युग

प्रधान आचार्य हूये तथा श्रीमहावीरसें पांचसौ तेतीस ( ५३३ ) वर्ष पीठें श्रीआर्यरक्षितसूरिने सर्व शास्त्रोंका अनुयोग पृथग् पृथग् कर दीये, प्रबंध आवश्यक वृत्तिसें जान लेनां. तथा श्रीमहावीरसें ( ५४० ) में सर्व त्रैराशिके जीतने वाले श्रीगुप्त सूरि हूये, तिनका प्रबंध उत्तराध्यनकी वृत्ति तथा श्रीविशोपावश्यकसें जान लेनां, जिसने त्रैराशिक मत निकाला तसका नाम रोहगुप्त था, वो श्रीगुप्तसूरिका चेलाथा, जिसका उल्लूक गोत्र था जब रोहगुप्त गुरुके आगे हारा, और मत कदाग्रह न ठोडा, तब अं रंजिका नगरीके बलश्रीराजाने अपने राज्यसें बाहिर निकाल दीया, तब तस रोहगुप्तने कणाद नाम शिष्यकरा, उसको १ इन्द्र, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय, ७ इन पट् पदार्थोंका स्वरूप बतलाया, तब तिस कणादने वैशेषिक सूत्र बनाये, तहांसें वैशेषिक मत चला.

१४ श्रीवज्र स्वामीके पाट ऊपर चौदथें श्रीवज्रसेन सूरि बैठे, वे ६ जेहमे श्रीवज्र स्वामीके वचनसें सोपारक पत्तनमें गये तहां जिनदत्तके घ में ईश्वरी नामा तिसकी चार्याने लाख रूपकके खरचनेसें एक हांभी अ नकी रांधी, जिसमें विष ( जहर ) मालने लगी, क्योंकि उनोंने विचाराथा के अन्न तो मिलता नहीं तिस वास्ते जहर खाके सर्व घरके आदमी मर जायेंगे, तिस अवसरमें श्रीवज्रसेन सूरि तहां आये, वो उनको कहने लगे कि तुम जहर मत खाउ कलको सुगल हो जावेगा तैसेंही हूआ तब तिन शोवके चार पुत्रोंने दीक्षा लीनी, तिनके नाम लिखते है.- १ नागें २, २ चंड, ३ निवृत्त, ४ विद्याधर, तिन चारोंसें स्व स्व नामके चार कुज बने. यह वज्रसेन सूरि नव वर्ष तक गृहस्थावासमें रहे और ( ११६ ) वर्ष समान साधुव्रतमें रहे तथा तीन वर्ष युग प्रधान पदवीमें रहे सर्वायु ( १२० ) वर्षकी जोगके श्री महावीरसे ( ६२० ) वर्ष पीठें स्वर्ग गये, यहां श्रीवज्रस्वामी और वज्रसेन सूरिके बीचमें आर्य रक्षित सूरि तथा श्री उर्वजिका पुष्यसूरि, यह दोनो युग प्रधान हूये, श्रीमहावीरसें ( ५०४ ) वर्ष पीठें सातवा निन्हव हूआ, तथा श्रीमहावीरसे ( ६०९ ) वर्ष पीठें श्री कृष्ण सूरिका शिष्य शिवनूति नामें था तिनें दिगंबर मत प्रवृत्त करा, सो अधिकार विशेषावश्याकादिकोंसें जान लेनां.

१५ श्रीवज्रसेन सूरिके पाट ऊपर श्रीचंडसूरि बैठा, तिनके नामसें गद्य

ना पुत्रके मरा तब तिसकी गद्दी उपर नंद नामा नाइ बैठा, तिनकी गद्दी में सर्व नंदनामा नव राजे हुए तिनका राज्य ( १५५ ) वर्ष तक रहा न वमें नंदकी गद्दी उपर मौर्यवंशी चंद्रगुप्त राजा हुआ तिसका बेटा बिंडुसार तिसका बेटा अशोक तिसका बेटा कुणाल तिसका बेटा संप्रति महास जादि हुए, इन मौर्यवंशीयोंका सर्व राज ( १०७ ) वर्ष तक रहा यह पूर्वोक्त सर्वराजे प्रायें जैनमत वाले थे तिनके पीछे तीस वर्ष तक पुष्पमित्र राजाका राज्य रहा, तिस पीछे बलमित्र, जानुमित्र, यह दोनो राजाका राज्य ( ६० ) वर्ष तक रहा, तिस पीछे नचवाहन राजाका राज्य ( ४० ) वर्ष तक रहा, तिस पीछे तेरां वर्ष गर्दनिह्रीका राज्य रहा, और चार वर्ष शकोंका राज्य रहा, पीछे विक्रमादित्यनें शकोंको जीतके अपना राज्य जमाया यह सर्व ( ४७० ) वर्ष हुए.

११ श्रीइंद्रिन्न स्वरिके पाट ऊपर श्रीदिन्नस्वरि हूये १२ दिन्न स्वरिके पाट उपर श्रीसिंहगिरि स्वरि हूये, १३ श्रीसिंहगिरिजीके पाट ऊपर श्रीवज्र स्वामी हूये, जिनकों बाढ्यावस्थासें जातिस्मरण ज्ञान था, जिनकों आकाशगमन विद्याजी थी, जिनोंने दूसरे बारां वर्षों कालमें संघकी रक्षा करी, तथा जिनोंने दक्षिणपथमें बौध्दोंके राज्यमें श्रीजिनेंइपूजा वास्ते फूल लाके दीये, बौद्धराजाकों जैनमती करा, यह आचार्य पीठला दशपूर्वका पाठक हुआ, जिनोसें हमारी वज्री शाखा उत्पन्न हुई, इनका प्रबंध आवश्यक वृत्तिसें जान लेनां. सो- वज्रस्वामी श्रीमहावीरसें पीछे चार सौ ठानवे और विक्रमादित्यके संवत् ठबीसमें जन्मे, और आठ वर्ष घरमें रहे चौतालीस वर्ष समान साधुव्रतमें रहे और ठत्तीस वर्ष युगप्रधान पदवीमें रहे, सर्वांगु अष्टाशी वर्षकी जोगी, तथा इन आचार्यके समयमें जावडशाह सेठने श्री शत्रुंजय तीर्थका संवत् ( १०७ ) में तेरहवा बडा उद्धार करा, तिसकी श्री वज्र स्वामीने प्रतिष्ठा करी यह श्रीवज्र स्वामी श्रीमहावीरसें ( ५०४ ) वर्ष पीछे स्वर्ग गये, इन श्रीवज्र स्वामीके समयमें दशमा पूर्व और चौथा संहनन् और चौथा संस्थान व्यवबेद होगये, यहां श्रीसुहस्ती स्वरि आठमें और श्रीवज्र, स्वामी तेरहवे पाठके बीचमें अपर पटावलियोंमें १- श्रीगुण सुंदरस्वरि, २, श्रीकालिकाचार्य, ३ श्रीस्कंधिलाचार्य, ४ श्रीरेवतमित्रस्वरि, ५, श्रीधर्मस्वरि, ६ श्रीजडगुप्ताचार्य, ७ श्रीगुप्ताचार्य, यह सात क्रमसें युग

प्रधान आचार्य हूये, तथा श्रीमहावीरसें पांचसौ तेतीस ( ५३३ ) वर्ष पीठें श्रीआर्यरक्षितसूरिने सर्व शास्त्रोंका अनुयोग पृथग् पृथग् कर दीये, ये प्रबंध आवश्यक वृत्तिसें जान लेनां. तथा श्रीमहावीरसें ( ५४७ ) में वर्ष त्रैराशिके जीतने वाले श्रीगुप्त सूरि हूये, तिनका प्रबंध उत्तराध्यनकी वृत्ति तथा श्रीविज्ञोपावश्यकसें जान लेनां, जिसने त्रैराशिक मत निकाला तिसका नाम रोहगुप्त था, वो श्रीगुप्तसूरिका चेलाथा, जिसका उलूक गोत्र था जब रोहगुप्त गुरुके आगे हारा, और मत कदाग्रह न ठोडा, तब अंतरजिका नगरीके बलश्रीराजाने अपने राज्यसें बाहिर निकाल दीया, तब तिस रोहगुप्तनें कणाद नाम शिष्यकरा, उसको १ इव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय, इन षट् पदार्थोंका स्वरूप बतलाया, तब तिस कणादनें वैशेषिक सूत्र बनाये, तहांसें वैशेषिक मत चला.

१४ श्रीवज्र स्वामीके पाट ऊपर चौदवें श्रीवज्रसेन सूरि बैठे, वे इच्छिमें श्रीवज्र स्वामीके वचनसें सोपारक पत्तनमें गये तहां जिनदत्तके घरमें ईश्वरी नामा तिसकी चार्याने लाख रूपकके खरचनेसे एक हांमी अन्नकी राधी, जिसमें विष ( जहर ) मालने लगी, क्योंकि उनोंने विचाराथा कि अन्न तो मिलता नहीं तिस वास्ते जहर खाके सर्व घरके आदमी मर जाये गे, तिस अवसरमें श्रीवज्रसेन सूरि तहां आये, वो उनको कहने लगे कि तुम जहर मत खाउ कलकों सुगाल हो जावेगा तैसेंही हूया तब तिन शेरके चार पुत्रोंने दीहा लीनी, तिनके नाम लिखते है- १ नागें २, २ चंड, ३ निवृत्त, ४ विद्याधर, तिन चारोंसें स्व स्व नामके चार कुज बने. यह वज्रसेन सूरि नव वर्ष तक गृहस्थावासमें रहे और ( ११६ ) वर्ष समान साधुव्रतमें रहे तथा तीन वर्ष युग प्रधान पदवीमें रहे सर्वायु ( १२७ ) वर्षकी जोगके श्री महावीरसें ( ६२० ) वर्ष पीठें स्वर्ग गये, यहां श्रीवज्रस्वामी और वज्रसेन सूरिके बीचमें आर्य रक्षित सूरि तथा श्री उर्वजिका पुष्यसूरि, यह दोनो युग प्रधान हूये, श्रीमहावीरसे ( ५७४ ) वर्ष पीठें सातवा निन्हव हूया. तथा श्रीमहावीरसे ( ६०९ ) वर्ष पीठें श्री रुष्ण सूरिका शिष्य शिवचूति नामें था तिनें दिगंबर मत प्रवृत्त करा, सो अधिकार विशेषावश्यकदिकोंसें जान लेनां.

१५ श्रीवज्रसेन सूरिके पाट ऊपर श्रीचंडसूरि बैठा, तिनके नामसें गद्य



का तीसरा नाम चंडगह्व दूआ, ( १६ ) श्री चंडसूरिके पाट ऊपर श्री सा  
मंतजडसूरि दूये, वे पूर्वगत श्रुतके जानकार थे, वैरागके रंगसें निर्मल हुए,  
जंगलोंमें रहते थे, तब लोकोंने चंडगह्वका नाम वनवासी गह्व रखा, १७  
श्रीसामंतजड सूरिके पाट ऊपर श्रीवृद्धदेव सूरि दूये, तथा श्रीमहावीरसें  
( ५९५ ) वर्ष पीठें कोरंट नगरमें नाहड नामा मंत्रीने तथा सत्यपुरमें  
नाहडमंत्रीने मंदिर वनवाया, प्रतिमाकी प्रतिष्ठा जङ्गल सूरिनें करी, प्र  
तिमा श्री महावीरकी स्थापन करी जिसको "जयउवीरसच्चरिमंदण" क  
हते हैं ( १७ ) श्रीवृद्धदेव सूरिके पाट ऊपर श्री प्रद्योतन सूरि दूये.

१९ श्री प्रद्योतन सूरिके पाटऊपर श्रीमानदेव सूरि दूये, इनके सूरिपद  
स्थापनावसरमें दोनो स्कंधोंपर सरस्वती और लक्ष्मी साक्षात् देखके यह  
चारित्रसे च्रष्ट हो जावेगा ? जैसे विचार करके खिन्नचित्त गुरुको जानक  
गुरुके आगे ऐसा नियम करा कि:— नक्तिवाले घरकी जिह्वा और दूध,  
दही, घृत. मीठा, तेल, अरु सर्व पक्वान्नका, त्याग कीया, तब तिनके त  
पके प्रनावसें नमोल पुर जो पालीके पास है तिसमें १ पद्मा, २ जया, ३  
विजया, ४ अपराजिता, ५ चार नामकी चार देवी सेवा करती देखी, कोइ  
मूर्ख कहने लगाकि ए आचार्य स्त्रीयोंका संग क्यों करता है? तब तिन देवी  
योंने तिसको सिद्धा दीनी, तथा तिसके समयमें तिहिला ( गजनी ) नग  
रीमें बहुत आवक थे तिनमें मरीका उपड्व दूआ तिसकी शांतिके वास्ते  
श्री मानदेव सूरिने नमोल नगरीसें शांतिस्तोत्र बना कर जेजा

२० श्री मानदेव सूरिके पाट ऊपर श्रीमानतूंग सूरि दूये जिनोने जला  
मर स्तवन करके बाण अरु मयूर पंढितोंकी विद्या करके चमत्कृत दूआ  
जो वृद्ध जोजराजा तिनको प्रतिबोधा, और जयहर स्तवन करके नागरा  
जा वश करा. तथा नत्तिनरेत्यादि स्तवन जिनोनें करे है प्रनावक चरित्रमें  
प्रथम श्री मानतूंग सूरिका चरित्र कहा. और पीठें देवसूरिका शिष्य श्री प्रद्यो  
तनसूरि तिनका शिष्य श्रीमानदेव सूरिका प्रबंध कहा. परंतु तहां संका न कर  
नी चाहिये क्योंकि प्रनावक चरित्रमें औरनी कई प्रबंध आगे पीठें कहे हैं.

२१ श्रीमानतुंगसूरिके पाट ऊपर श्रीवीरसूरि वैठा, सो वीरसूरिनें श्री  
महावीरसें ( ७७० ) वर्षमें तथा विक्रम संवत्के तीन सौ वर्ष पीठें नाग  
पुरमें श्रीनमि अर्द्धतकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करी, यडुकं ॥ आर्या ॥ नागपुरे

नमिजवन, प्रतिष्ठयामहितपाणिस्तौजाग्यः ॥ अजवधीराचार्य, स्त्रिनिः शतैः  
साधिकै राहुः ॥ १ ॥

२२ श्रीवीरसूरिके पाट ऊपर श्रीजयदेवसूरि बैठे, २३) श्रीजयदेवसूरि  
रिके पाट ऊपर श्रीदेवानंदसूरि बैठे इस अवसरमें श्रीमहावीरसें ( ८४५ )  
वर्ष पीछे बलनी नगरी जंग दूइ, तथा ( ८८१ ) वर्ष पीछे चैत्येस्थिति  
तथा ( ८८६ ) वर्ष पीछे ब्रह्मद्विपिका २४ ) श्रीदेवानंदसूरिके पाट ऊपर  
श्रीविक्रमसूरि बैठे, २५ ) श्रीविक्रमसूरिके पाट ऊपर श्रीनरसिंहसूरि बैठे  
यतः ॥ नरसिंहसूरिरासी, दत्तोऽखिलग्रथपारगोयेन ॥ यद्कोनरसिंहपुरे, मांस  
रतिस्व्याजितास्वगिरा ॥ १ ॥ २६ ) श्रीनरसिंहसूरिके पाट ऊपर श्रीसमुद्र  
सूरि बैठा ॥ २७ लोक ॥ वसंततिलकावृत्तम् ॥ खोमीणराजकुजजोपि समुद्रसूरि,  
गह्वं शशास किल यः प्रवणः प्रमाणी ॥ जित्वातदाहूपनकान् स्ववश वि  
तेने, नागकूदेच्छुजगनायनमस्यतीर्थम् ॥ १ ॥ २७ ) श्रीसमुद्रसूरिके पाट ऊपर  
श्रीमानदेव सूरि दूए ॥ २८ लोक ॥ वसंततिलकावृत्तम् ॥ विद्यासमुद्रहरिनःमुनी  
इमित्रं, सूरिर्वजूव पुनरेव हि मानदेवः ॥ मांघात्प्रयातमपियोनघसूरिमंत्रं,  
लेनेबिकामुखगिरा तप सोऽङ्गयंते ॥ १ ॥ श्री महावीरसें एक हजार वर्ष  
पीछे सत्यमित्र आचार्यके साथ पूर्वाका व्यवहैद दूआ, यहां १ श्रीनाग  
हस्ति, २ रेवतीमित्र, ३ ब्रह्मद्वीप, ४ नागार्कन, ५ जूतद्विन्न, ६ श्रीकाल  
कसूरि, ये ठै युगप्रधान यथाक्रमसें श्रीवज्रसेनसूरि और सत्यमित्रके  
बीचमें दूए, इन पूर्वाक्त ठै युगप्रधानोंमेंसे शक्तानिबंदित और प्रयमानु  
योग सूत्रोंका सूत्रधार कल्प श्रीकालिकाचार्य श्रीमहावीरसें ( ९९३ ) वर्ष  
पीछे पंचमीसें चौथकी संवत्सरी करी तथा श्रीमहावीरात् ( १०५५ )  
वर्ष पीछे और विक्रमादित्यसें ( ५८५ ) वर्ष पीछे यकनी साधवीका धर्म  
पुत्र श्रीहरिनः सूरि स्वर्गवास दूए, तथा ( १११५ ) वर्षपीछे श्रीजिनज  
इगणि युगप्रधान दूआ. और यह जिनजइय ध्यानशतरुका कर्ता हाने  
सें और हरिनःसूरिके टीका करनेसें दूसरा जिनजः है, यह कथन पट्टा  
बलिमें है, परंतु श्रीजिनजइगणिक्रमाश्रमणकी आयु ( १०४ ) वर्षकी थी,  
इस वास्ते जे कर हरिनःसूरिके वखतमें जीते होवे तोनी विरोध नहीं.

२८ श्रीमानदेवसूरिके पाट ऊपर श्रीविवुधप्रजसूरि दूआ, २९ ) श्रीवि  
शुधप्रजसूरिके पाट ऊपर श्रीजयानंदसूरि दूआ, ३० ) श्रीजयानंदसूरिके पा

ट ऊपर श्रीरविप्रजस्वरि दूआ, सो महावीरसें पीठें ( ११७० ) वर्ष और विक्रमसंवत्से ( ७०० ) वर्ष पीठें नमोल नगरमें श्रीनेमिनाथका प्रासाद ( मंदिरकी ) प्रतिष्ठा करी तथा श्रीवीरात् ( ११९० ) वर्ष पीठें उमास्वामि युगप्रधान दूआ, ३१ श्रीरविप्रजस्वरिके पाट ऊपर श्रीयशोदेव स्वरि बैठे, यहां श्रीमहावीरसें ( १२७२ ) वर्ष पीठें और विक्रम संवत्से ( ८०२ ) के सालमें अणहल पुर पट्टन वनराज राजेने वसाया वनराज जैनी राजा था, तथा श्रीवीरात् ( १२७० ) और विक्रमादित्यके संवत् ८०० के सालमें जाडपद शुक्ल तीजके दिन बप नट्ट आचार्यका जन्म दूआ, जिसने गवालियरके ग्राम नाम राजाकों जैनी बनाया. इनका विगोप चरित्र प्रबंधचिंतामणि ग्रंथसे जान लेनां.

३२ श्रीयशोदेवस्वरिके पाट ऊपर श्रीप्रद्युम्नस्वरि दूआ, ३३ ) श्रीप्रद्युम्न स्वरिके पाट ऊपर श्रीमानदेव, स्वरि उपधानवाच्यग्रंथका कर्ता दूआ, ३४ ) श्रीमानदेवस्वरिके पाट ऊपर श्रीविमलचंद्र स्वरि दूआ, ३५ ) श्रीविमलचंद्र स्वरिके पाट ऊपर श्रीउद्योतनस्वरि दूआ, सो उद्योतनस्वरि अर्बुदाचले ( ध्यावू )के पहाड ऊपर यात्रा करणे आये थे, उहां टेली गामके पास बडी बडवृद्धकी ढायामें बैठोने अपने पाटकी वृद्धि वास्ते अज्ञा सुहृत् देख करके श्रीमहावीरसें ( १४६४ ) वर्ष और विक्रमसें ( ९९४ ) वर्ष पीठें अपने पाट ऊपर श्रीसर्वदेवप्रमुख आठ आचार्य स्यापे कोइ एकडे सर्वदेव स्वरिकोंही कहते है, बडे बडके हेठ स्वरि पदवी देनेसें तहांसे बनवासी गह्वका पांचमा नाम बडगह्व दूआ, “ प्रधानशिष्यसंतत्या, ज्ञानारि गुणै. प्रधानचरितैश्वर्यत्वा दृहज्जडइत्यपि ”

३६ ) श्रीउद्योतनस्वरिके पाट ऊपर श्रीसर्वदेवस्वरि दूए, यहां कोइरुत श्रीप्रद्युम्नस्वरि और उपधान ग्रंथका कर्ता श्रीमानदेवस्वरि इन दोनोंके पट्टधर नही मानते है, तिनके अनिप्रायसें सर्वदेवस्वरि चौतीसमें पाट दूआ, सो सर्वदेवस्वरि श्रीगौतमस्वामीकी तरे सुशिष्य लब्धिमान विक्रमसंवत्से ( १०१० ) वर्ष पीठें रामसैन्य पुरमें श्रीरूपनचैत्य तथा चंद्रप्रनचैत्यकी प्रतिष्ठा करी, तथा चंडावतीमें कुंकणमंत्रिकों प्रतिबोधके दीक्षा दीनी, तिसनेही चंडावतीमें जैनमंदिर बनवाया था, तथा विक्रमसें ( १०२९ ) वर्ष पीठें धनपाल पंमितने देशी नाम माला बनाइ तथा विक्रमसें ( १०९६ )

वर्ष पीठें श्रीउत्तराध्ययनकी टीका करने वाला धिरापडीयगडमें वादी वैताल श्री शांति स्वरि हूये.

३७ श्री सर्व देवस्वरिके पाट ऊपर श्री देवस्वरिके रूपश्री औसा राजानें विरुव दीया, (३८) श्री देवस्वरिके पाट ऊपर फिर श्री सर्व देवस्वरिनामा हूये जिसने यशोजङ् नेमिचंडादि आठ आचार्योंको आचार्य पदवी दीनी, तथा श्री महाबीरसें (१४६६) वर्ष पीठें तह्लिजाका नाम गजनी रक्का गया, (३९) श्री सर्व देवस्वरिके पाट ऊपर श्री यशोजङ् अरु नेमिचंड ये दो गुरु जाऽ आचार्य हूये, तथा विक्रमसें (११३५) वर्ष पीठें कोऽ कहता है, (११३६) वर्ष पीठें नवांगीवृत्ति करने वाला श्री अनयदेवस्वरि स्वर्ग वास हूये, तथा कूर्चपुरगड्डीय चैत्यवासि जिनेश्वरस्वरि शिष्य श्री जिनवद्वनस्वरिनें चित्रकूटमें श्री महाबीरके पद कट्याणक प्ररूपे

४० श्री यशोजङ्स्वरि तथा श्री नेमिचंडस्वरिके पाट ऊपर श्री मुनिचंडस्वरि हूये, जिनोंने जावङ्गीव एकसौवीर पाणो पीना रक्का, और सर्व विगयका त्याग करा. तथा जिनोंने श्रीहरिजङ्स्वरिकृत अनेकात जयपताकादि अनेक ग्रंथोंकी पंजिका करी. उपदेशपदकी वृत्ति, योगविंडुकी वृत्ति, इत्यादिकोंके करनेसें तार्किक शिरोमणि जगत्में प्रसिद्ध हुआ, और यह आचार्य बडा त्यागी निस्पृह हुआ. यहां विक्रम राजासे (११५६) वर्ष पीठें चंडप्रजसें पौर्णिमीयक मतोवृत्ति दुऽ तिस चंडप्रजके प्रतिबोधने वास्ते श्री मुनिचंडस्वरिजिने पादिक सप्ततिका करी, है. तथा श्री मुनिचंडस्वरिका शिष्य श्री अजितदेव स्वरि वादी अरु श्री देवस्वरि प्रमुख हूये तहां वादी श्री अजितदेव स्वरिजिने अणहल पुरपाटणमें श्रीजयसिंह देवराजाकी सनामें अनेक विद्वान संयुक्त चोराशीवाव वादियोंसें जीते, दिगंबरमतका चक्रवर्ती कुमुदचंड आचार्योंको जिनोंने वादमें जीता, और दिगंबरोंका पट्टनमें प्रवेश करना बंद कराया, सो आज तक प्रसिद्ध है. तथा विक्रममें (१२०४) वर्ष पीठें फलवादिग्राममें चैत्यबिबकी प्रतिष्ठा करी, सो तीर्थ आजनी प्रसिद्ध है. तथा आरासणमें श्री नेमिनाथकी प्रतिष्ठा करी, तथा जिनोंने (८४०००) चोरासी हजार श्लोक प्रमाण स्यादादरत्नाकर नामा ग्रंथ बनाया, तथा जिनोंसे बडे नामावर चौबीश आचार्योंकी शाखा हूइ, इनोका जन्म सवत् (११३४) में हुआ, (११५२) में दीक्षा लीनी, (११७४) में स्वरिपद

मिजा, ( १२२० ) की श्रावणकृष्णसप्तमी गुरुवारें स्वर्गकों प्राप्त हूये, ति  
नोंके समयमें श्री देवचंद्रसूरिका शिष्य तीन क्रोड ग्रंथका कर्ता, कलिका  
लमें सर्वज्ञ विरुदका धारक, पाटणके राजा कुमारपालका प्रतिबोधक,  
सवा लक्ष श्लोक प्रमाण पंचांग व्याकरणका कर्ता, श्री हेमचंद्रसूरि विद्या  
समुद् हूया, तिनका विक्रमसंवत् ( ११४५ ) में जन्म ( ११५० ) में  
दोहा ( ११६६ ) में सूरिपद धरु ( १२२९ ) में स्वर्गवास हूया, इनोका  
संपूर्ण प्रबंध देखनां होवे, तदा श्री प्रबंध चिंतामणि तथा कुमारपाल  
चरित्रसें देख लेनां. ४१ श्री मुनिचंद्रसूरिके पाट ऊपर श्री अजितदेव सूरि  
हूये, तिनोंके समयमें संवत् ( १२०४ ) में खरतरोत्पत्ति, संवत् ( १२३३ )  
वर्षे आंचलिकमतोत्पत्ति, संवत् ( १२३६ ) वर्षे सार्द्धपौर्णिमीयक मतो  
त्पत्ति, संवत् ( १२५० ) वर्षे आगमिक मतोत्पत्ति, हूइ, तथा श्री वीरजगवा  
नसें ( १६९३ ) वर्षे वागजट मंत्रीने शत्रुंजयका चौदहमां उद्धार कराया,  
साठे तीन क्रोड रूपक लगाया.

४२ श्री अजितदेव सूरिपट्टे श्री विजयसिंह सूरि हूये, जिनोंने विवेकमं  
जरी छुंइ करी, जिनोका बडा शिष्य श्री सोमप्रज सूरि शतार्थतया अर्थात् ज  
नोके बनाये एकेक श्लोकोंके सौ सौ तरेंके अर्थ निकले और दूसरा मणिरत्न  
सूरिया, ( ४३ ) श्री विजयसिंह सूरिपट्टे श्री सोमप्रज सूरि और मणिरत्नसूरि  
हूये. ४४ श्री सोमप्रज तथा श्री मणिरत्न सूरिके पाट ऊपर श्री जगचंद्र  
सूरि हूये, जिनोंने अपणें गह्वकों शिथिल देखकें और गुरुकी आज्ञासें  
वैराग्य रसका समुद् चैत्रवालगह्वीय श्री देवजड उपाध्यायके सहायसें  
क्रिया उद्धार कीया, और हीरलाजगचंद्र सूरि विरुद पाया, क्योंकि जि  
नोंने चितोडके राजाकी राजधानी अघाट अर्थात् ( अहडमें ) बत्तीत दि  
गंबराचार्योंके साथ वाद करता हूया, हीरेकी तरें अजेय रहा, तत्र रा  
जाने हीरलाजगचंद्र सूरि ऐसा विरुद दीया तथा जिनीने यावद्धीव  
आचाम्ततपका अजिग्रह करा तब वारा वर्ष तप करता हूया तब चितो  
डके रानाने तपा विरुद दीया संवत् ( १२८५ ) के वर्षमें वडगह्वका  
नाम तप गह्व हूया, यह ठठा नाम हूया १ निर्ग्रथ, २ कोटिक, ३  
चंद्र, ४ बनवासी, ५ वडगह्व, ६ तपागह्व, इन ठहो नामोंके प्रवृत्त  
होनेके ठे आचार्य हेतुरूप हूये हैं, तिसका नाम अनुक्रममे लिखते

हैं- १ श्री सुधर्मस्वामी, २ सुस्थित स्वरि, ३ श्रीचंद्र स्वरि, ४ सामंतचंद्र स्वरि, ५ श्रीसर्वदेव स्वरि, ६ श्रीजगच्चंद्र स्वरि.

४५ श्री जगच्चंद्र स्वरि पट्टे श्री देवेंद्र स्वरि हूये, सो मालवेकी उज्जयनी नगरीमें जिनचंद्र नामा बडे शेरका वीरधवल नामा पुत्र तिसके विवाह निमित्त महोत्सव हो रहा था, तब वीरधवल कुमारको प्रतिबोध करके संवत् ( १३०२ ) वर्षमें दीक्षा दीनी, तिस पीठें तिसके नाइकोनी दीक्षा देकर चिरकाल तक मालव देशमें विचरे, तिस पीठें गुर्जर देशमें देवेंद्र स्वरि श्री स्तन स्तीर्थमें आये, तहां पहिलां श्री विजयचंद्र स्वरि गीतार्थोंको पृथक् पृथक् वस्त्रके पोडले देता है, और नित्य विगय खानेकी आज्ञा देता है, और वस्त्र धोनेकी तथा फल, शाक लेनेकी और निर्वृत्त तके प्रत्याख्यानमें विगयगतका लेना कहता है और आर्याका ब्याया धार साधु खावे, यह आज्ञा देता है, और दिनप्रत्ये द्विविध प्रत्याख्यान और गृहस्थोंके अर्वाजिने वास्ते प्रतिक्रमण करणेकी आज्ञा देता है, और संविनागके दिनमें तिसके घरमें गीतार्थ जावे, लेपकी संनिधि रखनी, तत्कालोष्णोदका ग्रहण करणां इत्यादि काम करनेसें कितनेक साधु शिष्य जाचार्योंको साथ लेकर सद्योप पौषधशालामें रहा

इन विजयचंद्राचार्यकी उत्पत्ति ऐसें है. मंत्री वस्तुपालके घरमें विजयचंद्रनामा दफतरिया, वो किसी अपराधसें जेहल खानेमें केद हुआ, तब श्री देवचंद्र उपाध्यायने दीक्षा देनेकी प्रतिज्ञा करवा कर बुडा दीया, पीठें तिसने दीक्षा लीनी, सो बुद्धिबलसें बहुश्रुत हो गया, तब मंत्री वस्तुपाल ने कहाकि ये अजिमाना है, इस वास्ते स्वरिपदके योग्य नहीं है. इस तरें मने करते हुए तोनी श्री जगच्चंद्र स्वरिजीने श्री देवचंद्र उपाध्यायके कहनेसें स्वरिपद दे दीया, क्योंकि यह देवेंद्र स्वरिका साहायक होवेगा ऐसा जान कर स्वरिपद दीया, पीठें वो विजयचंद्र बहुत काल तक श्री देवेंद्र स्वरिके साथ विनयवान् शिष्यकी तरें वर्त्तता रहा परंतु जब मालव देशसें श्री देवेंद्र स्वरि आये, तब वदना करनेकोनी नहीं आया, तब देवेंद्र स्वरि जोने कहला जेजा कि एक वस्तिमें तुम बारां वर्ष कैसें रहे? तब विजयचंद्रने कहाकि शांत दांतकों बारां वर्ष एक जगमें रहनेसें कुठ दोष नहीं. तविग्रसाधु सर्व देवेंद्र स्वरिके साथ रहे, और देवेंद्र स्वरिजी तो अनेक

विग्र साधुकेँ समुदाय साथ उपाश्रयमेंही रहे, तब लोकोंने बडीशालामें रहनेसेँ विजयचंडसूरिके समुदायका नाम वृद्धपौशालिक रक्का और देवेँड सूरिजीके समुदायका लघुपौशालिक नाम दीया, और स्थंनतीर्थके चौकमें कुमारपालके विहारमें धर्मदेशा नामे मंत्रि वस्तुपालने चारोवेदोंका निर्णय दायक स्वसमय परसमयके जानकार श्रीदेवेँडसूरिजीकोँ बंदना देके बहुमान दीया, और श्रीदेवेँडसूरिजी विजयचंडकी उपेक्षा करकेँ विचरते हुए क्रमसेँ पाटहणपुरमें आये, तहां चौरासी इंचसेव अनेक पुरुषोंके साथ परिवरे, सुखासन उपर बैठे हुए शास्त्रके बडे श्रोता व्याख्यान सुनने आते थे, और पालनपुरके विहारमें रोजकी रोज एक मूढक प्रमाण अक्षत और सोला मण सोपारी दर्शन करनेवाले श्रावकोंकि चढाइ चढती होती थी, इत्यादि बडे धर्मी लोकोंने गुरुकोँ विनति करी कि हे जगवन् ! यहां आप किस्तीकोँ आचार्य पदवी देओ हमारा मनोरथ पूरा तब गुस्ते उचित जानके पाटहन पुरमें विक्रम संवत् १३३३ ) में वर्ष श्रीविद्यानंद सूरि नाम देकेँ वीरधवलकोँ सूरिपद दीनां, और तिसके अनुज जीमति हकोँ धर्मकीर्त्ति उपाध्यायकी पदवी दीनी, तिस अवसरमें प्रव्हादनविहारके सौवर्ण कपिशर्ष मन्पसेँ कुंकुमकी वर्षा हुई, तब सर्व लोकोंकोँ बडा आश्रय हुआ.— श्री विद्यानंद सूरिजीने विद्यानंद नाम नवीन व्याकरण बनाया यदुक्तं ॥ विद्यानंदाजिधं येन, कृतं व्याकरणं नव ॥ ज्ञाति सर्वोत्तमं स्वल्प, सूत्रं वव्हर्थसग्रह ॥ १ ॥ पीठें श्री देवेँड सूरिजी फेर मालवेकोँ गये श्री देवेँड सूरिजीके करे दूये ग्रंथोंका नाम लिखते हैं. १ आ-६दिन कृत्यसूत्रवृत्ती, २ नव्यकर्मग्रंथपंचकसूत्रवृत्ती, ३ सि-६पंचाशिकासूत्रवृत्ती, ४ धर्मरत्नवृत्ती, ५ सुदर्शनचरित्र, ६ तीननाप्य, ७ वृंदारवृत्ती, ८ सिरि उस्तहव-६माण प्रमुख स्तवन, कोइ कहते हैं कि आ-६दिनकृत्यसूत्रतो धि रंतन आचार्योंका करा है. विक्रम संवत् ( १३३७ ) में वर्ष मालवदेशमें देवेँड सूरि स्वर्गवास दूये दैवयोगसे विद्यापुरमें तेरह दिनों पीठें श्रीविद्यानंद सूरिजी स्वर्गवास दूये, तब ठै मास पीठें सगोत्र सूरिने श्रीविद्यानंद सूरिके नाइ श्री धर्मकीर्त्ति उपाध्यायकोँ सूरिपद देके श्री धर्मघोष सूरि नाम दीया.

४६ श्री देवेँड सूरिपट्टे श्री धर्मघोष सूरि दूये, जिनोने मंमपाचलमें शा० श्री पृथ्वीधरकोँ पंचमानुव्रत लेतेकोँ ज्ञानसे निषेध करा, फ्योंकि

आचार्यने ज्ञानसें जाना कि यह पुरुषके व्रत जंग होजावेगा ? इस नयसें निषेध करा, पीठे वो पृथ्वीधर, मंमपाचलके राजाका मंत्री हुआ, और धन करके तो धनद समान हो गया, पीठे तिसने चौरासी जिनमं द्विर और सात ज्ञानके पुस्तकोंके जंमारे बनाये और श्री शत्रुंजयमें इकी स धडी प्रमाण सोना खरचके रूपे मय श्री कृष्णदेवजीका मंदिर बन बाया, कोइ कहते है कि ठप्पन धडी सुवर्ण खरचके इंडमाला पहिर तथा धरती नगरमें किसी साधर्मीने ब्रह्मचारीका वेप देनेके अवसरमें पृथ्वीधर को महाधनाढ्य जानके तिसकी चेट करा, तब पृथ्वीधरने वोही वेप लेकर तिस दिनसें बत्तीस वर्षकी उमरमें ब्रह्मचर्य व्रत धारण करा, तिसके एकही जांजण नाम पुत्र था, जिसने श्री शत्रुंजय, उक्तयंतगिरिके शिखर उपर वारह योजन प्रमाण सुवर्ण रूप्यमय एकही ध्वज चढाइ, जिसने सारंगदेव राजासें कर्पूरका महसूल बुढाया, तथा जिसने मंमपाचलमें बहतर हजार ( ७१००० ) रूपक गुरुके प्रवेशके उत्सवमें खरच करे.

तथा श्री धर्मघोष सूरिने देवपत्तनमे शिष्योंके कहनेसें मंत्रमय स्तुति बनाइ तथा देवपत्तनमें जिनोंके स्वध्यानके बलसें नवीनोत्पन्न हूये कपर्दी यद्दनें वज्र स्वामीके महात्मसें पुराने कपर्दी मिथ्यादृष्टिकों निकालाथा. उनों ने उसको प्रतिबोधके श्री जैनविर्षोंका अग्रिष्ठाता करा, तथा जिनों आगे समुद्रके अधिष्ठाताने अपने समुद्रके तरगोसें रत्न ढोकन करे, एकदा समय किसी डुष्टखोनें कार्मण संयुक्त बडे बनाकर साधुओंको दीए पर श्री धर्मघोष सूरिजीने वे बडे धरती उपर गिराए, अरु उस खोको मंत्रसें पकडा गीठे जब बहु डुखी हूइ. तब दया करके ठोड दीनी, तथा त्रिचापुरमे पहातरीयोकी स्त्रीयोने धर्मघोषजीके व्याख्यान रसके जंग करने वास्ते के अमे मंत्रसें केश गुह्ररु कर दीया पीठे श्री धर्मघोष सूरिजीने जब जाना, तब तिन स्त्रीयोको स्तनन कर दीया, तब तिन स्त्रीयोने विनति करी के आज पीठे हम तुमारे गह्रकों उपडव न करेगे, तब गुरुजीने श्री संके बहुत आग्रहसें ठोडी, तथा उक्तयनीमें एरु योगी जैनके साधुओंको कहने नहीं देता था जब श्री धर्मघोष सूरि तहां आये तब उस योगीने साधुओंको कहा कि अब तुम इहां आये हो सो तकडे हो कर रहना अब साधुओंने कहा हमजी देखेंगे कि तू क्या करेगा ? पीठे उसने साधु



ओंकों ढांत दिखलाये, तब साधुओंने कफोणि ( कूहनी ) दिखलाइ पीठे साधुओंने जा कर यह सर्व समाचार अपने गुरुकों कहा, वंहा योगी नेनी धर्मशालामें विद्याके बलसे बहुत चूहे बनादीये, तब साधु बहुत मरे पीठे गुरुजीने घडेका मुख, वस्त्रसे ढांककेँ ऐसा मंत्र जपा कि जिसेँ योगी आराटि करता हूआ आकेँ पाऊमें पडा, और अपने अपराधका ह्मापना मांगा, तथा किसी नगरमें शाकनीयोके नयसेँ मंत्रके कपाट दीये जाते थे, एक दिन विना मंत्रे कपाट दीये गये, तब रात्रिकों शाकनीयोनेँ उपड्व करा, गुरुने उनकोँ विद्यासेँ स्तंजित करा, एकदा रात्रिमें गुरुकोँ सर्पके काटनेसेँ जब जहेर चढा, तब गुरुने संघकोँ विधुर देखकेँ कहा कि दरवाजेमें किसी पुरुषके मस्तकोपरिकाष्ठी नरीमें विपापहार एक वेलडी आवेगी वो वेलडी घसके मंकमें देदेनी उससेँ जहर उतर जायगा, संघनेँ तैसेँही करा गुरुराजी ही गये, पीठे तिस दिनसे जावळीव ठै विगयका त्याग करा, और सदा जुवारकी रोटी नीरस जानके खाते रहे, श्री धर्मघोष सूरिजीके करे ये ग्रंथहै.— सो कहते है:— १ संघाचारनाप्यवृत्ती, २ सुश्रद्धमेतिस्तव, ३ कायस्थिति नवस्थिति, ४ चौचीश तीर्थकरोंके चौवीश स्तवन, तथा ५ स्रस्ताशर्मत्यादिस्तोत्रं, ६ देवेदैरनिशंइति श्लेषस्तोत्रं, ७ यूयं युवात्वमिति श्लेषस्तुतीयां, ८ जयवृषनेत्यादि स्तुति, यह जयवृषनेत्यादि स्तुति करणेका यह निमित्त थाकि:— एक मंत्रीने आठ यमक काव्य कह करके कहा, कि ऐसेँ काव्य अथ कोइ नही बना सक्ता तब गरुने कहाकि नास्ति नही तब तिसने कहा तो हमकोँ कर दिखलाउं तब गुरुजीने जयवृषनेत्यादि ठै स्तुति एक रात्रिमें बना कर नीतोँपर लिखकेँ दिखाइ तब तिसने बडा चमत्कार पाया, गुरुजीने तिसकोँ प्रतिबोधके जैनी करा, ये श्री धर्मघोष सूरि विक्रम संवत् ( १३५७ ) में स्वर्ग गये.

४७ श्री धर्मघोष सूरि पढे श्री सोमप्रन सूरि हूये, जिनोंने नमि कण नणइएवमित्यादि आराधना सूत्र करा, तिनका संवत् ( १३१० ) में जन्म, ( १३२१ ) में दीक्षा, ( १३३५ ) में सूरिपदं, जिनोके इग्यारह अंग सूत्रार्थ कंत थे, तथा “गुरुनिर्गीयमानायां मंत्रपुस्तकायां चततचरित्रं मंत्रपुस्तिकां च” ऐसा कह कर तिसमंत्र पुस्तकाको ग्रहण करा, क्योंकि अथर कोइ योग्य नहीं था यह श्री सोमप्रन सूरिने जलकुंकणदेशमें अ

फायकें विराधनाकें जयसें और मरुदेशमें शुद्धजलकी दुर्जनतासें साधुओं का विहार निषेध करा तथा नीमपत्नीमें दोकार्तिक मास दूये तब सोमप्रज्जी प्रथम कार्तिककी एकादशीको विहार कर गए क्योंकि उनोंने जाना कि नीमपत्नीका जंग होगा अरु जंग हुए पीछें जो रहे वो, दुखी हुए, सोमप्रज्ज सूरिके करे ग्रथ जितकल्पसूत्र, यत्राखिलेत्यादि स्तुतीयां, जितेन येनेतिस्तुतीयां, श्री मङ्गलमेत्यादि, तिनके करे बडे शिष्य विमलप्रज्ज सूरि, श्री परमानंद सूरि, श्री पद्मतिलक सूरि, अरु श्री सोमविमल सूरि थे, जिस दिन पूर्वोक्त श्री धर्मघोष सूरि, देवगत हुए तिस दिनही (१३५७) वर्षे श्री सोमप्रज्ज सूरिजीने श्री विमलप्रज्ज सूरिकों सूरिपद दीया क्योंकि तिनोंने अपना स्वल्पही आयु जाना श्री सोमप्रज्जजी (१३७३) वर्षे देवलोक गए

४७ श्रीसोमप्रज्जसूरि पट्टे श्रीसोमतिलकसूरि हुए, तिनोका (१३५५) में वर्षे माघे जन्म, (१३६९) वर्षे दीक्षा, (१३७३) वर्षे सूरिपद, (१४२४) वर्षे स्वर्गगमन, सर्वायु ६९ ) वर्षकी जाननी, तिनके करे ग्रंथ लखते है:-

१ गृहज्ञव्यङ्ग्यसमास सूत्र, सत्तरितयमाणं, यत्राखिलजयवृषजखस्ताशर्मण मुखकी वृत्ति, श्रीतीर्थराज०, चतुरथीस्तुतित वृत्ति, गुणजावानत० श्रीमद्दी स्तुवेदित्यादिकमलबंधस्तवःशिवशिरसि श्रीनानिसंजव० श्रीशैवेय० इत्यादि स्तवन. श्रीसोमतिलकसूरिक्रम करके १ श्रीपद्मतिलकसूरि, २ श्रीचंद्रशेखरसूरि, ३ जयानंदसूरि, ४ श्रीदेवसुंदरसूरियोंको सूरि पद दीया, तिनमें श्रीपद्मतिलक सूरि, सोमतिलक सूरिसें पर्यायमें बडे थे, सो एक वर्ष जीते रहे, और बडे रागी थे तथा श्रीचंद्रशेखर सूरि, विक्रम संवत् (१३७३) में जन्मे (१३७५) में दीक्षा, (१३९३) में सूरिपद, इनके करे ग्रंथ:- १ उषितनोजनकथा, यचराजक पकथा, श्रीमत्स्तनकहारबंधादिस्तवन है, जिनोके मंत्रों सो मंत्री रजहो तिनसेंनी उपद्रव करनेवाले गृह, हरिका, दुर्जरमृगराज, श्वान, सुरिति र हो जाते थे तथा श्रीजयानंदसूरिका विक्रम संवत् (१३७०) वर्षे जन्म, (१३९२) वर्षे आपाठ सुदिसातम सुक्रवारकेदिन धारानगरीमें व्रतग्रहण, (१४२०) में सूरिपद (१४४१) में स्वर्ग गये तिनके करे ग्रंथ १ श्री लज्ज चरित्रं, २ देवाः प्रनोयं प्रमुख स्तवन है

४९ श्री सोमतिलक सूरि पट्टे श्री देवसुंदर सूरि हुए, तिनका (१३९६) में जन्म, (१४०४) वर्षे दीक्षा (१४२०) वर्षे अण्डलपत्तनमें सूरिपद,

ने वाला संवत् (१५३३) में जाणा नामा प्रथम साधु हुआ, इस मतकी उत्पत्ति जैसें हुआ है, सो लिखते हैं:-

गुजरात देशमें अहमदाबादमें जातिका दशाश्रीमालि लुंका नामें निखारी वसता था, सो ज्ञानजी जतीके कृपाश्रयमें पुस्तक लिख कर उसकी अहमदनीसें गुजारा करताथा, एक दिन एक पुस्तककों लिख रहा था, तिसमेंसें सात पत्रे बिना लिखे ढोड दीये, जब पुस्तक वालेने पुस्तक देखा तब पूठाकि इस पुस्तकके सात पत्रे क्यों ढोड दीये ? तब लुंका उसके साथ लडने लगा तिस वखत लोकोंने मार पीटके उपाश्रयसें बाहिर निकाल दीया, और नगरमें कह दीयाकि इस्तें कोइ जननी पुस्तक न निखावे, तब लुंका लाचार और क्रोधमें जरकर अहमदाबादसें ठैतालीत कोसके लग जग नीबडी गाममें चला गया, उस गाममें लुंकेकी बिरादरीका एक लखमसी नामा वणिया राजमें कारनारी था, तिसके आगे बहुत रोया, पीटा, जब तिसने पूठा क्या हुआ ? तब लुंकेने कहाकि मै जगवानका सच्चा मत कहने लगा था, तब तपगडके श्रावकोने मुजे पीटा, अब मैं तेरे पास आया हूं, जेकर तूं मेरा मददकार बने, तो मैं सच्चा मत प्रगट करूं, तब तिस लखमसीने कहाकि नीबडीके राज्यमें तूं बेशक अपने सच्चे मतको प्रगट कर, मै तेरा मददगार हूं, खाने पीनेकोंजी देउंगा, और तेरा शास्त्रजी सुनुंगा, तब लुंकातो श्रीमहावीरके साधुओंकी और श्रीजिनप्रतिमाकी उहापना करने लगा, अरु कहने लगा कि यह साधु नहीं है, ब्रह्मचारी है निर्दयी है, उलटाज्ञान सुनाते हैं, इत्यादि जो आपके मनमानी सो निंदा करी, और शास्त्रोंमेंसेंजी जिन जिन शास्त्रोंमें जिनप्रतिमाका जिकर नहीं था वो शास्त्रकों सच्चे माने, और जिनोमें थोडासा जिनप्रतिमाका कथन था, तिन पातोंके अर्थ कुयुक्तिसें औरके और सुनाने लगा, अरु कहने लगा कि एकतीस शास्त्र सच्चे है, तिनमेंजी आवश्यकसूत्रकों तो बिलकुल बिगाडके लोकोंने स्वकपोलकल्पित औरका और बना दीया है, क्योंकि श्रीआवश्यकमे बहुत जगें जिनप्रतिमाका अधिकार चलता है, पीठें एक दिन तिस लुंकेकों कि सीने कहा कि बिना जैनदीक्षाके लीए शास्त्र पढनेका तो व्यवहारसूत्रमे निषेध करे है, तो फेर तुम गृहस्थ हो कर शास्त्र क्यों कर पढते हो ? तब लुंकेने कहा मै व्यवहारसूत्रकोंही सच्चा नहीं मानता हूं ? इत्यादि प्ररूपणा

पच्चीश वर्ष तक करो, परंतु लुंकेके उपदेशसें साधु कोइनी न हुआ, जब संवत् (१५३३) का शाल आया तब, एक जाणा नामा वनीपके बेटेने लुंकेके उपदेशसें वेप पहना, उसकों रुपिनुणा नाम दीना, तिसका शिष्य संवत् (१५६०) में रूपजी हुआ, तिसका शिष्य संवत् (१५७०) में जीवाजीरुपि हुआ, तिसका शिष्य (१५८७) में वृद्धवरसिंहजी हुए, तिसका शिष्य संवत् (१६०६) में वरसिंहजी हुआ, तिसका शिष्य संवत् (१६४९) में जसवंतजी हुआ, इस लुंपक मतके तीन नाम हुए, १ गुजराती, २ नागोरी, ३ उत्तराधो, ॥ इति लुंपक मतोत्पत्ति ॥

५३ श्रीरत्नशेखरस्वरि पट्टे श्रीलक्ष्मीसागरस्वरि हुए, तिनका (१४६४) में वर्षे जन्म (१४९०) में वर्षे दीक्षा, (१५०१) वर्षे वाचक पद, (१५०८) में स्वरिपद, ५४ श्रीलक्ष्मीसागरस्वरिपट्टे श्रीसुमतिसाधुस्वरि हुआ, ५५ श्रीसुमतिसाधुस्वरिपट्टे श्रीहेमविमलस्वरि हुए, शिथिलसाधुओंके बीचमेंजी रहे, तोजी जिनोंनें साधुका आचार उल्लंघन न करा, तब कितनेक दिन पीछे बहुत साधुओंनें शिथिलपणा ठोडा, तथा रुपिहरगिरि, रुपिश्रीपति, रुपिगणपति, प्रमुख बहुत जनोंने लुंपक मत ठोड के श्रीहेमविमलस्वरिके पास दीक्षा लीनी, तिस अवसरमे संवत् (१५६२) मे कडुये नामक एक शिषियेने कडुयामत निकाला और तीन शूइ मानी अरु इस कालमें साधु कोइनी नहीं दीखता, औरसा पंथ निकाला, परंतु इसग्रंथके लिखनेवालेके समयमें ये मत नहीं है, व्यवहृद हो गया है, तथा संवत् (१५७०) में लुंका मतसें निकलके बीजा नामा वेपधरने बीजामत चलाया, जिसकों लोक विजय गड्ड कहते है तथा संवत् (१५७२) वर्षे नागपुरीया तपगड्डसें निकलके उपाध्याय पार्श्वचंडने अपने नामका मत अर्थात् पासचंदीया मत चजाया.

५६ श्रीहेमविमलस्वरि पट्टे श्रीसुविहितमुनि चूडामणि कुमत तमके मथनेकों सर्वसमान श्रीआनंदविमलस्वरि हुआ तिसका विक्रम संवत् (१५४७) में जन्म (१५५२) में दीक्षा (१५७०) मे स्वरिपद तथा श्रीहेमविमलस्वरिके साधु शिथिलाचारीजी थे, तोजी तिनके वैरागरगका जग नहीं हुआ और जब उनोंने देखाकि जिनप्रतिमाके निषेधने वाले बहुत बडे और गुड साधु तुडमात्र रह गए अरु उत्तत्र प्ररूपण रूप जलमें नयजन वह चले तब मनमे दयादृष्टि जाके और अपने गुरुकी आज्ञासे

कितनेक संविग्र साधुओंको साथ ले कर संवत् (१५८३) में शिथिलाचार परिहार रूप क्रिया उद्धार करा, देशमें विचरके बहुत जन्मजनोंका उद्धार करा, और अनेक इन्होंके पुत्रोंको धन कुटुंबका मोह त्याग कराके दीक्षा दीनी, और सोरठके राजा पासों खत लिखवाया कि जो जीते सो मेरे देशमें रहे अरु जो हारें सो निकाला जावे, तूणसिंह नामा श्रावक जिसको वादशाहने बैठने वास्ते पालकी दीनी दूइथी, और वादशाहने जिसको मलिक श्रीनगद लविरुद दीयाथा ऐसा तूणसिंह श्रावकने गुरुको विनति करी कि साधुओंको सोरठदेशमें विहार कराउ, तब श्रीगुरुजीने गणि जगपिंको साधुओंके साथ सोरठदेशमें विहार कराया, तथा जैसलमेरादि मरवाड देशमें जल झुलन मिलता है, इस वास्ते पूर्वे श्रीसोमप्रज्ञ स्त्रिने साधुओंको मने कर दीया था कि मारवाडमें न जाना, सो विहार कुमतिव्याप्त न हो जावें, तिन जीवोंकी अनुकंपा कर कें और लान जान कर साधुओंको आज्ञा दीनी कि तुम मारवाडमें जा कर कुमतिमत्तको खंमन करो, तब लघु वयमें शीघ्र करके श्रीस्थुलिनइसमान वैराग्यनिधि निस्पृहावधि जावज्जीव जघन्यसें जघन्यनी पष्ठ अर्थात् दोदिनका उपवास करणा अरु पारणोके दिन आचमन करणा ऐसे अन्विग्रहधारी महोपाध्यायश्रीविद्यासागरगणिने मारवाडदेशमें विहार करा, तिनोंने जैसलमेरादिकोंमें खरतरांको और मेवात देशमें बीजामति योंको और मोखी आदिकमें लुं कामतीयोंको प्रबोधके श्रावक बनाए सो आजतक प्रसिद्ध है, तथा पार्श्वचंडके व्युद्ग्राहे वीरमगाममें पार्श्वचंडके साथ वाद करके पार्श्वचंडको निरुत्तर करा, तब बहुत जिनोंने जैनधर्म अंगीकार करा, ऐसेही मालवेमें अरु उज्जयनी प्रमुख देशोंमें फिरके धर्मकी प्रवृत्ति करी, यह श्रीविद्यासागर उपाध्यायजीने तपगह्वकी फिरवृद्धि करी, और क्रियाउद्धार करा पीठे श्रीआनंदविमलस्त्रिजी चौदह वर्ष तक जघन्यसें नी नियत तप वर्जके वेलेसें कम तप नहीं करा, तथा जिनों चतुर्थे, पष्ठ तप करके बोश स्थानककी आराधना करी, यह संवत् (१५९६) वर्षे नवदिनका अनशन करिके स्वर्ग गए.

५९ श्रीआनंदविमलस्त्रि पठे श्रीविजयदानस्त्रि दूआ, जिनोंने स्तन तीर्थ, अहमदावादपत्तन, महीशानरुगाम, गंधार बदिरादिमें महा महोत्सव पूर्वक अनेक जिनबिंबोंकी प्रतिष्ठा करी, तथा जिनोंके उपदेशस वादशाह

महमदका मान्य मंत्री गलराजा दूसरा नाम मलिक श्रीनगदजनें श्रीशत्रुंजयका बड़ा संघ निकाला. तथा जिनोंके उपदेशसें गांधार नगरके श्रावक रामजीने तथा अहमदावादी साह कुंअरजी प्रमुखोंने श्रीशत्रुंजय चौमुख अष्टापदादि जिनमंदिर बनवाए, गिरनार ऊपर जीर्ण प्रासादोद्धार करा तथा जिनके स्वर्यकी तरें उदय होनेसें वादी रूपीये तारे अदृश्य हो गये, श्रीविजयदान स्वरि सर्व सिद्धांतका पारंगामी, अस्वंकित प्रताप वाला तथा अप्रमत्त पणे रूप करके श्रीगौतममुनिवत् था, तथा गूँडर मालवक, कन्न, मरुस्थली, कुंकणादि देशोंमें अप्रतिवद् विहार करता हुआ, महातपस्वी, ज्वावजीव एक घृतविगय विना सर्व विगयका त्यागीथा, जिनोंने एकादशाग सत्र अनेक वार श्रुद्द करे, और जिनोंने बहुत जीवोंको धर्मप्राप्त करा, तिनका संवत् (१५५३) वर्षे जामलामें जन्म, (१५६३) वर्षे दीक्षा (१५७७) में, स्वरिपदं (१६३३) वर्षे, वटपल्लीमें अन्नशनें स्वर्ग प्राप्त हुआ.

५७ श्री विजयदान स्वरि पट्टे श्री हीरविजय स्वरि हुआ. जिनका संवत् (१५७३) वर्षे मार्गशीर्षशुद्धि नवमी दिनें प्रव्हादन पुरका वासी ऊके जाती साण्कूरा चार्या नाथी अहे जन्म हुआ, (१५९६) वर्षे कार्तिकवदि दूज दिने पत्तन नगरें दीक्षा, (१६०७) वर्षे नारदपुरी मे श्रीरूपच देवके मंदिरमें पंक्ति पदं, (१६०७) माघशुक्लपंचमीदिने नारदपुरीमें श्री वरकाणक पार्श्वनाथसनाथे नेमिजिन प्रसादे वाचकपदं, (१६१०) वर्षे सिरोही नगरे स्वरिपदं, तथा जिनका सौभाग्य वैराग्य निःस्पृहतादि गुणोंको वचन गोचर करनेको बृहस्पतिजी चतुर नहींथा तथा श्री स्तनतीर्थमें जिनोंके रहनेसें श्रद्धावानोंने एक क्रोड रूपक प्रजावनादि धर्मकृत्योंमें खरच करा, तथा जिनोंके चरण विन्यासके प्रतिपदमें दो मोहर अरु एक रूपक मोचन करा, और जिनोंके आगे श्रद्धालुओंने मोतीयोंसें साथीये करे, तथा जिनोंने सिरोही नगरमें श्री कुंघुनाथ विवोंकी प्रतिष्ठा करी तथा नारदपुरमें अनेक सहस्राविवोंकी प्रतिष्ठा करी, तथा जिनोके विहारादिमें युगप्रधान अतिशय देखनेमे आती थी, तथा अहमदावादमें लुंके मतका पूज्य रूपि मेघजी नामा था तिसने अपने लुंके मतको इर्गंतिका हेतु जान कर रजकी तरें आचार्य पद ठोडके पच्चीश चतियोंके साथ सकल राजा पिराज वादशाह श्रीअकबर राजाकी आज्ञा पूर्वक वादशाही वाजंत्र व

जते दूये. महामहोत्सवसें श्री हीरविजय स्मरिजीके पास दीक्षा लीनी, ऐसा किसी आचार्यके समयमे नहीं दूया था, तथा जिनोके उपदेशसे अकब्बर बादशाहने अपने सर्व राज्यमें एक वर्ष में ठे सहिने तरु जीहिंसा बंद करी, जिजय ठोड़ाया, इसका विशेष स्वरूप देखना होवे. तो हीरसौभाग्यकाव्यमेसें देख लेना

और संक्षेपसें यहांजी लिखते हैं:- एकदा कदाचित् प्रधान पुरुषोंके मुखसें अकब्बरशाहने श्री हीरविजय स्मरिके निरुपम शम दम संवेग वैराग्यादि गुणो सुणके बादशाह श्री अकब्बरने अपने नामांकित फुरमान जेज के बहुमान पुरस्तर गंधार बंदिरसें आगरेके पास फतेपुर नगरमे दर्शन करनेको बुलाया, तब गुरुजी अनेक नव्यजीवोंको उपदेश देते दूये, क्रमसें विहार करते दूये विक्रम शंवत् ( १६३९ ) वर्षे ज्यैष्ठ्यदि त्रयोदशी दिने तहां आए तिसमें बादशाहका शिरोमणी प्रधान अशुल फजल नाम दारा उपाध्याय श्री विमलदर्शनगणि प्रमुख अनेक मुनियोंसें परिवरे दूए बादशाहको मिले तिस अवसरमें बादशाहने बड़ी खातरसें अपनी सजामें बैठाए, और परमेश्वरका स्वरूप गुरुका स्वरूप अरु धर्मका स्वरूप पूठा, और परमेश्वर कैसे प्राप्त होवे ? इत्यादि धर्मविचार पूठा, तब श्री गुरुने मधुर वाणीसें कहा कि जिसमे अछारह दूपण न होवें, सो परमेश्वर है, तथा पंचमहाव्रतादि धारक गुरु है, और आत्माका शुद्धस्वभाव जो ज्ञान दर्शन, चारित्ररूप है, सो धर्म है तब अकब्बरशाहने ऐसा धर्मोपदेश सुनके आगरासें अजमेर तक प्रतिकोश कूवा मनार सहित बनाए, और जीहिंसा ठोडके दयावान् हो गया, तब अकब्बरशाह अतीव तुष्टमान होके कहनें लगा कि हे प्रभु ! आप पुत्र, कलत्र, धन, स्वजन, देहादिमेजी समत्व रहित हो, इस वास्ते आपको सोना, चादी, देना, तो ठीक नहीं, परंतु मेरे मकानमे जैनमतके पुराने पुस्तक बहुत है, सो आप लीजीये, और मेरे ऊपर अनुग्रह करीये जब बादशाहका बहुत आग्रह देखा. तब श्री गुरुजीने सर्व पुस्तक ले के श्री आगरा नगरके ज्ञानचंमारमे स्थापन कर दीए, तब एक प्रहर तक गुरुजी धर्मगोष्ठि करके बादशाहकी आज्ञा लेके बड़े धामंवरसें कपाश्रयमे आए, उस वखतमें लोकोंमे जैनमतकी उन्नति स्फीती दूइ, तिस वर्षमे आगरे नगरमें चौमासा करके सोरीपुर न

गरमें श्री नेमिजिनकी यात्रा वास्ते गये, तहां श्री कृपचन्देव और नेमिनाथजीकी बडी और बहुत पुरानी दोनो प्रतिमा और उस तत्कालके वनाए श्री नेमिनाथके चरणोंकी प्रतिष्ठा करी, फिर आगरमें शा० गानसिंह कल्याणमल्लका कराया (बनवाया) श्री चिंतामणि पार्श्वनाथादि विवोंकी प्रतिष्ठा करी, सो आज तक आगरमें श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ प्रतिष्ठ है, पीछे श्री गुरुजी फेर फतेपुर नगरमें गए और अरुन्धर वादशाहसे मिले तहा एक प्रहर धर्मगोष्टि धर्मोपदेश करा, तब वादशाह कहने लगा कि:- मैंने आपको दर्शनके उत्कंठित हो कर दूरदेशसे बुलाए है, और आप हमसे कुठनी नहीं लेते हो, इत वास्ते आपको जो रुचे सो मेरेसे मांगना चाहिये, जिस्से मेरे मनका मनोरथ सफल होवे, तब सम्यग्विचार करके गुरुजीने कहा कि तेरे सर्वराज्यमें पर्यूपणोंके आठ दिनोंमें कोइ जनावर न मारा जाय और वंदिजन ठोडे जाय मै यह मागा चाहना हूं, तब वादशाहने गुरुकों निर्जोन्जी, शात, दांत, जान करके कहा कि आठ दिन तुमारी तर्फसे और चारदिन मेरी तर्फसे सर्व मित्रकर बारहदिन तरु अर्थात् जाड्वावदि दशमीसे ले कर जाड्वागुदि ठठ तरु कोइ जनावर न मारा जायगा, पीछे वादशाहने सोनेके हफोंसे लिखवा कर वै फूरमान श्री गुरुजीकों दीए, वै फूरमानकी व्यक्ति ये है:- प्रथम श्री मूर्कारदेशका, दूसरा मालवेदेशका, तीसरा अजमेरदेशका, चौथा दिल्लीफतेपुरके देशका, पाचमा लाहोर मुलतान मंमलका. और ठठा श्री गुरुके पास रखनेका पूर्वोक्त पाचोंदेशका साधारण फूरमान पाच, तो तिन तिन देशोंमें जेजके थमारि पटह बजया दीया, तब तो वादशाहकी आज्ञासे जो नहींजी जानते थे ऐसे सर्व आर्य अनार्य कुज मंमपमें दयारूपिणी वेजडी विस्तारवान् हो गइ. और वदिवान जनजी वादशाहने गुरुपाससे उठ कर तत्काल ठोड दीए, और एक कोशका जीज अर्थात् तजावमे आप जाकर वादशाहने अपने हाथसे नानाजातिके नानादेशवालोंने जो जो जनावर वादशाहकों जेट कर हूए थे, वे सर्व ठोड दीए, वादशाहसे गुरुजी अनेकवार मिले और अनेक जिनमंदिर अरु उपाश्रयोंके उपश्य दूर करे, और जब श्री हीरविजय स्ररि अपर देशकों जाने लगे, तब वादशाहसे ऐसा फूरमान लिखवा ले गए, तिसकी नकलमै इत पुस्तकमें लिखता हूं.



जलालुद्दीन बादशाह.  
अकबर बादशाह.  
गाजीकाफुरमान.

अकबरमोहरकी बंशावली.  
जलालुद्दीनअकबर बादशाह.  
हुमायुन बादशाहका बेटा.  
बाबरशाहका वीन बेटा.  
उमरशेख मीरजांका बेटा.  
सुजतान अबुस इदका बेटा.  
सुजतान महम्मदशाहका बेटा.  
मीर शाहका बेटा.  
अमीर तैमुरसाहि किरानका बेटा

सूबे मालवा तथा अकबराबाद,  
लाहोर, मुलतान, अहमदाबाद, अज  
मेर, मीरत, गुजरात, बंगाला, तथा  
और जो हाल मेरे ताबेके मुलक है  
तथा आंयदा, मुतसद्दी, सूवा, करोरी

तथा जगीरदार इन सबोंको मालुम रहे, कि जो हमारा पूरा इरादा यह  
है कि सर्व रइयतका मन राजी रखनां, क्योंकि रइयतका जो मन है सो  
परमेश्वरकी एक बड़ी अनामत है, और विशेष करके वृद्ध अवस्थामें मे  
रा यही इरादा है, कि:- मेरा जला बांठने वाली रइयत सुखी रहे तिस  
वास्ते हरेक धर्मके लोकोमेंसें जो अछे विचार वाले परमेश्वरकी नक्ति क  
रनेमें अपनी उमर पूरी करते है, तिनको दूर दूर देशोंसे मैने अपने पास  
बुलवाये, और तिनकी परीक्षा करके अपनी सोवतमें रखता हूं, और  
तिनकी बाते सुनके मै बहुत खुश होता हूं, तिस वास्ते हमारे सुननेमें  
आया है कि श्रीहीरविजय स्मरि जैन स्वेतांबरमतका आचार्य गुजरातके वं  
रोमें परमेश्वरकी नक्ति करता है, मैने तिनको अपने पास बुलवाया, और  
तिनकी मुलाकात करके हम बहुत खुश हुए, कितनेक दिन पीछे जब ति  
नोंने अपने वतन जानेकी रजा मांगी, तब अरज करी कि जो गरीबपर  
रकी मरजीसे ऐसा दुकुम होना चाहिये कि - सिद्धाचलजी, गिरना  
रजी, तारगाजी, केसरुआनाथजी, तथा आबुजीका पहाड, जो गुजरातमें  
है, तथा राजगृहके पाच पहाड तथा समेतशिखर उरफे पार्श्वनाथजी के  
बंगालके मुलकमें है, तथा पहाड हेठजी सर्व मंदिरोंकी कोठीयो तथा सर्व  
नक्ति करनेकी जगायोंमें, तथा तीर्थकी जगायोमें जो जैनस्वेतांबरी धर्मके  
जगायों सर्व मेरे ताबेके मुलकोंमें जिस ठिकाने होवे, उन पहाडों तथा म  
दिरोकी आस पास कोइनी आदमी, कोइ जानवरको न मारे, यह अरज

करी अब ये बहुत दूरसें हमारे पास आये हैं, और इनकी अरज वाजवी (सच्ची) है यद्यपि यह अरज मुसलमानानी महजबसें (मतसें) विरुद्ध मालुम होती है, तोनी परमेश्वरके पिढाननें वाले आदमियोंका यह दस्तूर होता है, कि:- कोइ किसीके धर्ममें दखल न देवे, और तिनोंके रेवाज बहाल रखे। इस वास्ते यह अरज मेरी समजमें सच्ची मालुम दुइ, जे सर्व पहाड तथा पूजाकी जगा बहुत अरसेंसें जैनश्वेतांवरी धर्मवालोंकी है, तिस वास्ते इ नकी अरज कबुल करी गइकि, सिन्धाचलका पहाड, तथा गिरनारका पहाड, तथा तारगाजीका पहाड, तथा केशरीयाजीका पहाड तथा आयुका पहाड जो गुजरातके मुलकमें है तथा राजगृहके पांच पहाड तथा समेतशिखर उरफे पार्श्वनाथका पहाड, जो बंगालके मुलकमें है, ये सर्व पूजायोंकी ज गायों तथा पहाड नीचे तीर्थकी जगायों जो मेरे राज्यमें है, चाहो किसी ठिकाने जैनश्वेतांवरी धर्मकी जगायों होवे, सो हीरविजय जैनश्वेतांवरी आचार्यकों देनेमें आइ है, और इनोंनें अन्हीतरसें परमेश्वरकी नक्ति करनी चाहिये.

और एक बात यहनी याद रखनी चाहिये जो कि ये जैनश्वेतांवरी धर्मकी पहाड तथा पूजाकी जगा तथा तीर्थकी जगा, जे मैनें श्रीहीरविजय सरि आचार्यकों दीनी है, परंतु हकीकतमें ये पूर्वोक्त सर्व जगायों जैन श्वेतावर धर्मवालोंकीही है, और जहांतक सूर्यसें दिन रोशन रहे, तथा जहांतक चंद्रमासें रात रोशन रहे, तहा तक इस फुरमानका हुकम जैन श्वेतांवरी धर्मके लोकोंमें सूर्य तथा चंद्रमाकी तरें प्रकाशित रहे, और कोइ आदमी तिनकों हरकत न करे, और किसी आदमीने तिन पहाडों उपर तथा तिनके नीचे तथा तिनकी आस पास पूजाकी जगायोंमें तथा तीर्थकी जगायोंमें जानवर नहीं मारनां, और इस हुकम ऊपर अमल क रना, इस हुकमसें फिरनां नहीं, तथा नवोन सणंद मांगनी नहीं जिला तारीक ७ मी माह उरदी बहेस मुतावेक माह रबीयुल अयज सन् ३७ छुनसी यह अकच्चर बादशाहके दीये फुरमानकी नकल है

तथा थानसिंवकी कराइ अपर साह दूजणमखकी कराइ श्रीफतेपुरमें अनेक लाख रुपइये लगाके बडे महोत्सवसें श्री जिनप्रतिमाकी प्रतिष्ठा करी प्रथम चातुर्मास आगरेमें करा दूसरा फतेपुरमें करा तीसरा निराम नाम नगरमें करा, चौथा फेर आगरेमें करा, फेर वहा बादशाहकी गोष्ट वास्ते

श्रीशांतिचंद्र उपाध्यायकों ढोड गये, और आप गुरुजी मेहडते, नागपुर चौमासा करके सिरोंही नगरमें गये, तहां नवीन चतुर्मुख प्रासादमें श्री अदिनाथके बिंब तथा श्री अजितनाथके प्रासादमें श्री अजितनाथक बिंबोंको प्रतिष्ठा करके अर्बुदाचलमें यात्रा करनेकों गये, और पीछे श्री शांतिचंद्र उपाध्यायने नवीन रूपारस कोश नामा ग्रंथ बनाके अकबर बादशाहकों सुनाया, तिसके सुननेसे बादशाहने दयाकी बहुत वृद्धि करी, तिसका स्वरूप यह है कि:- बादशाहके जन्मके दिनसे एक मास अरु पर्युपणाके वारा दिन, तथा सर्व रविवार, तथा सर्वसंक्रांतिके दिन, नवरोजकामास, सर्व इके दिन, सर्व मिहर वासरा, सर्व सोफी अनादिन इत्यादि सब मिलकर एक वर्षदिनमें ठै महीने तक जीवहिंसा बंद करा, तिसके फुरमान निखवाए सो फुरमान अबतक हमारे लोकोंके पास है, इसमें कुछ शंका नहीं कि श्री हीरविजय सूरिजीने जैनमतकी वृद्धि और उन्नति बहुत करी? मुसलमानोंकोंजी जिनोंने दयावान् करा तथा स्थंनस्तीर्थ संवत् ( १६४६ ) में स्थंनतीर्थवासी शा० तेजपालके बनवाये मंदिरकी प्रतिष्ठा करी.

५९ श्री हीरविजय सूरि पद्ये श्री विजयसेन सूरि दूए इनका ( १६०४ ) वर्षे जन्म ( १६१३ ) वर्षे मातापिता सहित दीक्षा, ( १६३६ ) वर्षे पंक्ति पद, ( १६३७ ) वर्षे उपाध्याय पद पूर्वक आचार्य पद, ( १६५२ ) वर्षे जट्टारक पद, ( १६७१ ) वर्षे स्थंनस्तीर्थ स्वर्गवास जिनके देखहरख, अरु परमानंद येदोशिष्योंने अकबर बादशाहके बेटे जाहांगीरको धर्म सुनाके प्रतिबोधा, और जाहांगीर बादशाहसे फुरमान कराया तिसकी नकल यह है.

उरुद्दीन महम्मद  
जहागीर बादशाह  
गालीका फुर  
मान.

जहागीरकी मोहरमे बशावलि  
नुरदीनमहम्मद जहांगीर बादशाह.  
अकबर बादशाह.  
हुमायुन बादशाह.  
वाबर बादशाह.  
मीरजा उमरउप.  
सुलतानअबुसइस.  
सुलतान मीरजामोहम्मदशाह मीरशाह  
अमीरतैमुर साहिव. किरान.

मेरे सर्वराजके विशेष करके गुजरातके सबे, मोटे हाकिम तथा, कीफायत करने वाले आमील तथा जांगीरदार तथा करोरी तथा सर्व खातोंके कार कुनोंको मालुम हावे कि जो परमेश्वरके पिठानने वाले लोक है, तिनका यह दस्तूर है, कि हरेक मत तथा कोमके लोक इतनाही नहीं बलकि सर्व जीव सुखी रहें, और ध्रुव वेखहरख, तथा परमानंद यतीषाँनें डुनी यांकी रक्षा करने वालोंकी दरवारमें आकर तखतके पास खडेरहनें वालोंसे थरज करी कि विजयसेन सरि तथा विजयदेव सरि और जे अन्नी बुद्धि वाले लोक है, तिनकी हरेक जगें तथा हरेक सहरोमें देहरा अर्थात् जिन मंदिर तथा धर्मशाला है, तिनमें ये लोक ईश्वरकी जक्ति करते है औ प्रार्थना करते हैं, और वेखहरख तथा परमानंद यतीकी परमेश्वरकों राजी रखनेंकी हकीगत हमने अन्नी तरेंसें जान लीनी है, तिस वास्ते डुनीयाकों तावे करने वाला हुकम हुआ कि:—कोइ आदमीने इन जैनलोकोंके मंदिर तथा धर्मशालामें उतरना नहीं तथा कारन विना अडचल नहीं करनी और जेकर ये लोक फिरकर नवा बनाया चाहेंतो तिनकों किसीतरेंकी मनाई तथा हरकत नहीं करणी और तिनके साधुओंके उपाश्रयोंमें कोइनेनी उतरणां नहीं, और जो ये लोक सोरठके मुलकमें शत्रुंजय तीर्थकी यात्रा करने वास्ते जावें तो कोइनी आदमी तिन यात्रालुओंसे कुछ न मांगे ला जचन करे, और पूर्वोक्त वेखहरख अरु परमानंदयतिकि अरज तथा खाहि स ऊपर हुकम बडा जारी हुआ कि दर अठवाडेमें रविवार तथा गुरुवार तथा दर महिनेमें शुद्धि पडिवाका रोज तथा इदके दिन तथा दर वर्षमें न चरोज तथा माहशहरगुरमा जे हमारा सुवारक दिन है तिनमें एक एक चर्पके हिसाब प्रमाण मेरे सर्व राज्यमें कोइ जीवकी हिंसा न हावे, तथा ज कार करना तथा पक्षियोंका पकडना, मारनां, तथा मन्डलीयोंका मारनां, ये बंद कीया जावे तथा इस तरेके औरजी काम इन पूर्वोक्त दिनोंमें न होने चाहिये, ये बात जरूर है, जे पूर्वोक्त हुकम प्रमाण हमेशां चलानेकी को शिकरके मेरे फुरमानके हुकमसे कोइ फिरे नहीं, विरुद्ध चले नहीं जि खा ता० माह सहर गुरमे सन् ३ जुजसी यह फुरमान खाजांहांनके चौ पानीयां तथा सेवक अली तकीके वर्तमान पत्रमें दाखल हुआ तरछुमा करनेवाला मुनशी सइयद ध्रुवइनामीयां साहिव उरैजी.

६० श्री विजयसेन स्मृति पट्टे श्री विजयदेव स्मृति दूधे तिनका (१६३४) वर्षे जन्म (१६४३) वर्षे दीक्षा, (१६५५) वर्षे पंमित पद, (१६५६) वर्षे उपाध्याय पद पूर्वक आचार्य पद, (१६७१) वर्षे स्वर्ग, ६१ श्री विजयदेव स्मृति पट्टे श्री विजयसिंह स्मृति दूधे तिनका (१६४४) वर्षे जन्म, (१६५४) में वर्षे दीक्षा, (१६७३) वर्षे वाचक पद, (१६७३) वर्षे स्मृति पद, (१७०७) वर्षे स्वर्गगत, ६२ श्री विजयसिंह तथा श्री विजयदेव स्मृति पट्टे श्री विजयप्रज्ञ स्मृति दूधे, तिनका (१६७५) वर्षे जन्म, (१६७९) वर्षे दीक्षा, (१७०१) वर्षे पंमित पद, (१७१०) वर्षे उपाध्याय पद, (१७१३) वर्षे चट्टारक पद, (१७४९) वर्षे स्वर्गगमन, इनके समयमें सुहृद्वधे टुंडीयोंका पंथ निकला तिसकी उत्पत्ति ऐसे हैं.—

सुरत नगरमें वोहरा वीरजी साढुकार दशाश्रीमालि वसता था, तिसकी फूलां नामें बालविधवा एक बेटायी, तिसने एक लवजी नामा लडका गोदी लीया, तिस लवजीको लुंकेके उपाश्रयमें पढने वास्ते चेजा, तहां यतीयोंकी संगतसे वैराग्य उत्पन्न हुआ, और लुंकेके यती वज्रंग जीका शिष्य हुआ, तब दो वर्ष पीछे अपने गुरुको कहने लगा कि जैसा शास्त्रोंमें साधुका आचार है वैसा तुम क्यों नहीं पालते हो ? तब गुरुने कहा पंचमकालमें शास्त्रोंक सर्व क्रिया नहीं हो सकि है, तब लवजीने कहा तुम प्रपञ्चारी मेरे गुरु नहीं मैंतो आपही समय फेरके लेकंगा इस तरेका क्लेश करके रूपि लवजीने लुंके मतकी गुरु शिष्टा ठोडके अपने साथ दो यति और लीए तिसमें एकका नाम जूणा, दूसराका नाम सुखजी इन तीनोंहीने अपने आपहीको दीक्षित करा, और मुंहके ऊपर कपडेकी पट्टी बांधी, तब इनका नवीन वेष देखके गामोंमें किसी श्रावकने इनके रहनेको जगा न दीनी, तब ये उजडे दूधे मकानोंमें जा रहे गुजरात देशमें फूटे टूटे मकानको टूंड कहते है, इस वास्ते लोकोंने इनका नाम टुंडिये रक्का, इन तीनोंकी नवे मत चलानेमें बडे बडे क्लेश नोगने पडे परंतु इनके त्यागको देखके कितनेक लुंकेमति इनको माननेची लगे, क्योंकि यह जेडवा ल जगतमें प्रसिद्ध है, और जोले लोक तो ऊपरली ठूठां फूफा देखके रागी हो जाते हैं, और गुजरातके बहुत लोक ऐसे ह्व ग्राही हैकि.—जो बात पकड लेवे उस बातको बहुत मुसकलसे ठोडते है, इसी वास्ते जैनमतमें

के३ फिरके गुजरात देशसेंही निकले है. पीठें तिस लवजीका शिष्य अहम दावादके कालुपुरेका वासी उत्तवाल सोमजी हुआ, तिसने सूर्यकी छात पना बहुत करी, तिमके चेलोंका नाम १ हरिदासजी, २ प्रेमजी, ३ गिरधरजी, ४ कान्हजी, प्रमुख और लुकेमति कुंवरजीके चेलेनी इनके शिष्य बने तिनके नाम १ श्रीपाल, २ अमीपाल, ३ धर्मसी, ४ हरजी, ५ जीवाजी, ६ समरथ, ७ तोडुजी, ८ मोहनजी, ९ सदानंदजी, १० गोधाजी, ये एक गुजरातका वासी धर्मदास ठीपीने मुंरमुंरकें मुख ऊपर पट्टी बांधके अपने आपकों टूटिया साधु मशाहूर कीया, तिनमे हरिदासका चेला वृंदावन हुआ, और वृंदावनका चेला खुवानीदास हुआ, और खुवानीदासका चेला लाहोरका वासी मलूकचंद हुआ, मलूकचंदका महासिंघ, और महासिंघका कुशालराय और कुशालरायका ठजमल, और ठजमलका रामलाल, और रामलालके शिष्य रामरत्न, और अमरसिंह, ये दोनों मैनें देखे है अब इन दोनोंके चले वसंतराय, और रामवकस वगैरे जीते है ये पंजाव देशमें आज काल पडे फिरते है.

और जीवाजीका चेला लालचंद हुआ, लालचंदका अमरसिंह हुआ सो मारवाड देशमें आया तिसके परिवारमें नानकजी जिनोंके चले अब अजमेर अरु रूपणगढके जिल्लेमें बहुत रहते है, और ज्यामिदास जिनोंके परिवारके कन्हीराम, जेखराज, तखतमल, प्रमुख अब मारवाडमे रहते है. और जो कोटेबूंदीमें तथा मालवेमें लालचंद, गणेशजी, गोविंदरामजी, हूये, तथा अमीचंद, हुकमचंद, उदयचंद, फतेचंद ग्यानजी ठगन, मगन, देवकरण, अरु पन्नालाल प्रमुख फिरते है येनी हरिदास केही चले है. तथा अमरसिंघका चेला दीपचंद, दीपचंदका, चेला धर्मदास, धर्मदासका जोगराज, जोगराजका हजारिमल्ल, हजारिमल्लका लाजगीराम, लाजगीरामका गंगाराम, गंगारामका जीवणमल्ल, जो इन वखत दिल्लीके आसपासके गामोंमे फिरते है, तथा अमरसिंघके परिवारमे धनजी, मनजी, नाथुराम, अरु ताराचंदादि हूये, हैं, जिनोंके चले रतीराम, नंदलाल, हूये. नंदलालका चेला रूपचंद, रूपचंदका विहारी, जोकि पंजाबमें कोट जगरावादि गामोमे रहिते है. तथा कानजी और धर्मदास ठीपीके चेलियोंमेंसें दीपचंद, गुपालजी प्रमुख ये जीमडी, बट



विजयगणि इन दोनोंने श्रीविजयसिंहसरिकी आज्ञा लेके गहमें कि शिष्यल साधुओंको देखके और हूँढकमतके पाखंड अंधकारके दूर करवास्ते किया उद्धार करा, और जिनोंने काशीके पंडितोंसे जयपता का ऊना पाया, और गुजरात प्रमुख देशोंसे प्रतिभा उभापक कुलिंगीके मतरूप अंधकारको दूर करा, और जिनोंके रचे हुए (१००) ग्रंथ ध्यात्मसार, स्याद्वादकल्पलता, शास्त्रसमुच्चयकीवृत्ति, मध्ववादी स्मृतितत्त्वचक्र उद्धारदि, अनेक बड़ेबड़े एक सौ ग्रंथ है.

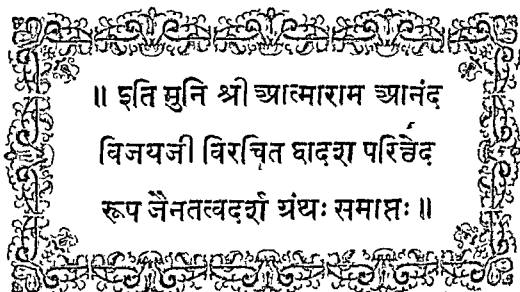
श्रीगणिसत्यविजयजी किया उद्धार करके श्रीआनंदघनजीके साथ वीस वर्ष लग वनवासमें रहे, और बड़ी तपस्या योगान्यासादि करा, जब तब वृद्ध हो गए, जंघामे चलनेका बल न रहा, तब अणहज पटनमे रहे तिनके उपदेशसे तिनके दो शिष्य हुए, एक गणिकपूरविजयपंडित, और दूसरा पंडित कुशलविजयजी, तिनमे गणिकपूरविजयजीने तो अनेक अर्हते विवोंकी प्रतिष्ठा करी, और अनेक ग्राम नगरोंमें धर्मकी प्रवृत्ति करी, बड़े प्रभावक हुए, श्रीगणिकपूरविजयजीके दो शिष्य हुए, एक पंडित वृद्धिविजय गणि, दूसरा पंडित क्षमाविजयगणि, श्रीपंडित गणिकपूरविजयगणिके शिष्य पंडित श्रीजिनविजय गणि, तिनका शिष्य पंडित रामविजयगणि, तिनका शिष्य पंडित पद्मविजयगणि, तिनका शिष्य पंडित रूपविजयगणि, तिनका शिष्य पंडित कीर्तिविजयगणी तिनका शिष्य पंडित कस्तूरविजयगणी तिनका शिष्य मुनिमणिविजयगणि, तिनका शिष्य पंडित बुद्धिविजय गणि, तिनका शिष्य पंडित मुक्तिविजय गणि, तिनोंके अनेक वीद्वित लघु गुरु ब्राह्मण इस जैनतत्त्वादर्शग्रंथके लिखनेवाला मुनि श्रीराम आनंदविजय नामक हू इतिपुरावलिसंपूर्ण ॥

अब इस ग्रंथके लिखनेवालेके समयमें इतने नवीनपंथ निकले है सो खते है - गुजरातदेशमे स्वामी नाराणकापंथ, और बंगालदेशमें ब्रह्म समाजीधोंका पंथ, और पंजाबदेशमें लोदीहानोंसे दश कोशके अंतरे एक खणोनामा गाम है तिसमें रहनेवाला जातिका ब्रह्माणसिक्क तिसके प्रदेशसे कूका नामे पंथ, और कोइलमे मौलवी, अहमदशाहका नवीन पंथका, तथा दयानंदसरस्वतीस्वामीका निकाला आर्यसमाजका पंथ आदि अनेकमत पुराने मतोंको ठोडके निकाले है, क्योंकि इनोंने अ



पनी बुद्धि समान प्राचीनोंके करे पुस्तक तथा वेदार्थोंको नहीं सम-  
जेकर इसीतरें नवीन नवीन मत निकलते रहेतो कोइकदिनमे ब्राह्मण  
मताधिकारियोंकी रोजी मारो जायगो, और धर्म अरु नियम कि-  
सिका कायम रहेगा ?

इति श्रीतपगङ्गीय मुनिगणेश्री मणिविजय तद्विष्य मुनि श्रीबुद्धिवि-  
द्विष्य मुनि आत्मरामआनंदविजय विरचिते जैनतत्त्वादर्शे गुरुआवनि-  
यन रूप द्वादशः परिच्छेदः संपूर्णः ॥ १३ ॥



॥ इति मुनि श्री आत्मराम आनंद  
विजयजी विरचित द्वादश परिच्छेद  
रूप जैनतत्त्वदर्श ग्रंथः समाप्तः ॥

ए चोपडीमुनिचारित्रद्विजयजावीकी

